विज्ञान

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५। ॥

प्रयागकी विज्ञान-परिषत्का मुखपत्र जिसमें अमृतसरका आयुर्वेद-विज्ञान भी सम्मिलित है

भाग ५२

मेष-कन्या, संवत् १९९७ विक्रमी

अक्टूबर-मार्च, सन् १९४१ ईसवी

प्रधान सम्पादक

डा० सत्यप्रकाश डी० एस-सी०

विशेष सम्पादक

गोरखप्रसाद, डी० एस-सी०, (गणित और भौतिक-विज्ञान)
रामशरणदास, डी० एस-सी० (जीवन विज्ञान)
श्रीरंजन, डी० एस-सी० (उद्भिज-विज्ञान)
स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य (आयुर्वेद-विज्ञान)
श्रीचरण वर्मा० एम० एस-सी० (जन्तु विज्ञान)
रामनिवास राय (भौतिक-विज्ञान)

प्रकाशक

वार्षिक मूल्य ३)] विज्ञान-परिषत्, प्रयाग [इस जिल्दका मूल्य १॥)

विषयानुक्रमणिका

अक्टूबर

नवम्बर

दिसम्बर

जनवरी

फरवरी

मार्च

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते.
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ५२ | प्रयाग, तुला संवत् १९९७ विक्रमी | अक्टूबर, सन् १९४० ई० | संख्या १

क्या वैद्युतिक आघातों (झटका) से मृत्यु हो जाती है ?

[ले०—श्री हरिश्चन्द्र गुप्त एम० एस-सी०]

राज्यके दण्ड गृहमें (काल कोठरीमें) अभी तक अभियुक्तको बिजलीके झटके दिये गये । विद्युत् लगानेकी कुर्सीमें रक्खे हुये एक मांसके लोथड़ेमें डाक्टरने शब्द परीक्षक यंत्र लगाया और जीवनका अन्तिम श्वास-स्पन्दन सुननेके लिये कान गड़ा दिये । किञ्चित क्षणोंने गम्भीर स्वरसे घोषणा कर दी कि कोर्टकी डिगरी अर्थात् बिजली लगा कर मार देनेकी आज्ञाका पूर्ण पालन हो गया । ऐसे दृश्योंका उद्घाटन सैकड़ों बार हुआ है । लेकिन ४८ वर्षोंमें जब कि विद्युत्-मृत्यु एक कानूनी मृत्यु-दण्ड रहा है किसी भी डाक्टर ने जनताको यह घोषणा कर विस्मित नहीं किया कि राज्यको अपने प्रयासमें सफलता नहीं मिली । सामान्यतया बिजली लगानेके पश्चात् व्यक्ति तुरंत ही एक पासके कमरेमें चीरनेके लिये ले जाया जाता है । जब चीर-फाड़ हो चुकता है तो अभियुक्त की मृत्यु हो जानेमें कुछ भी सन्देह नहीं रह जाता ।

लेकिन एक विचारणीय प्रश्न यह उपस्थित होता है कि वास्तवमें इस प्रकार विद्युत् द्वारा मृत्यु-दण्ड देनेमें कानूनका अक्षरशः पालन होता है या नहीं । आधुनिक अन्वेषणोंसे पता लगा है कि बिजलीके झटकोंसे केवल मृत्यु हुई सी मालूम पड़ती है, वास्तवमें जीवनकी अन्तिम ज्योति तो चीर-फाड़के कमरेमें ही बुझती है ।

बोस्टन शहरमें कृत्रिम बिजली लगनेसे मनुष्य-शरीर पर क्या असर होता है इसकी खोज करनेके लिए अनेकों प्रयोग किये गये जिनसे अब कुछ निर्णयोंपर पहुँचा जा सका है । अन्य देशोंमें भी इसी समस्याके सुलझानेके लिये प्रयोग किये जा रहे हैं । उनके अनुसंधानोंने विद्युत्-मृत्युकी सफलता पर ही नहीं वरन् आकस्मिक बिजलीके झटके लग जाने पर मनुष्योंको मृत्युसे बचानेके उपचारों पर विशेष प्रकाश डाला है ।

अधिक वाल्टकी विद्युत्-धारासे व्यक्ति सीधा ही नहीं मर जाता । जितनी जल्दी मृत्यु होनेकी धारणा अब तक डाक्टरोंकी रही है उससे कहीं अधिक समयमें प्राण निक-

लता है। नाड़ी-केन्द्र निष्क्रिय हो जाते हैं और श्वासोच्छ्वास जारी न रहनेसे दम घुट जानेपर मृत्यु हो जाती है। यदि मृत्यु के पश्चात् देह अकड़ी न हो तो कम-से-कम १२ घंटे तक कृत्रिम श्वासोच्छ्वासका परिणाम देख कर ही मृतक घोषित किया जा सकता है।

सूअरों, भेड़ों, कुत्तों, बिल्लियों और बछड़ों पर प्रयोग किये गये। अनुसंधानोंसे पता लगा कि अधिक वाल्ट और न्यून वोल्टके आघातोंका बिल्कुल भिन्न प्रभाव होता है। पहलेसे नाड़ी-केन्द्र निष्क्रिय हो जाते हैं और श्वास-क्रिया रुक जाती है। दूसरेसे हृदय पर प्रभाव पड़ता है. हृदयकी पेशियाँ अंड-बंड चलने लगती है. उनके संकुचन और प्रसारणमें सामञ्जस्य नहीं रहता। पेशियोंके भिन्न-भिन्न तन्तु स्वतन्त्र गतिसे चलने लगते हैं और संगठित धमनी स्पंदन अथवा स्फूरण बन्द हो जाता है। यदि यह प्रवृति रोकी न जाय तो चन्द मिनटोंमें मृत्यु हो जाती है।

यह देखनेके लिये कि विद्युतके पहुँचने पर हृदयमें क्या होता है एक यूरोपीय प्रयोगकर्त्ता ने कोमल चोरे सुश्रुत विधिसे लगाये और कुत्ते बिल्लियोंके सीनेमें शीशेकी खिड़कियाँ लगा दीं। अब भिन्न वोल्टको धाराएँ उनके शरीरमें होकर प्रवाहित की गई इन खिड़कियोंसे उनके हृदयमें सब परिवर्तनोंको देखा गया। आश्चर्यकी बात है हृदयकी अनियंत्रित धड़कनको रोकनेका एक मात्र साधन प्रयोगों द्वारा-यह जाननेमें आया कि उसके बाद एक दूसरा और भी तेज़ झटका दिया जाय। विपरीत झटके यदि काफी जल्दी मिलते जायँ तो धमनी-स्पंदन समान गतिसे जारी रहेगा। १०० वाट्के लट्टूको जलाने वाले १ ऐम्पीयरकी धाराने प्राण बचानेका अद्भुत कार्य किया। इन अनुसंधानोंसे यह भी ज्ञात हुआ कि विद्युत्-धारा द्वारा संस्थान और-और भी नाड़ी-संबन्धी आघातोंसे आराम पा सकता है। छुरे भोंकनेकी अवस्थामें मन्द विद्युत्-धाराओंसे आराम तो पहुँचाया ही जाता था, डा० कुबेनहावेनका कहना है कि यही इलाज सड़क पर दुर्घटनाके पश्चात् नाड़ी-मण्डलको जो आघात पहुँचता है इसके दूर करनेमें काम आ सकता है।

लेकिन जिन्हें अधिक वाल्टकी धारासे आघात हुआ है उनके लिये यह इलाज निष्फल है। केवल कृत्रिम श्वास-क्रियासे और (फेफड़े) फुफ्फुसको क्रियाशील रखनेसे लाभ पहुँच सकता है। कई एक ऐसे उदाहरण मिले हैं। जिनमें यह प्राथमिक चिकित्सा इतनी देर तक जारी रक्खी गई कि जिन्हें अभियुक्तको दिये जाने वालेसे कहीं अधिक वोल्टका आकस्मिक आघात पहुँचा वे पुनर्जीवित हो गये।

हालकी बात है कि एक हताश नवयुवक जीवनकी दुःखमयी कहानीको समाप्त करनेके लिये एक अधिक वोल्ट के खम्भेपर चढ़ गया। कूदनेसे पहले गरम (धारा बहते) तारसे छू गया।

३३००० वोल्टका झटका—जो विद्युत्-मृत्युमें प्रयुक्त किये जाने वाले वोल्टसे १५ गुना अधिक है—तड़ितके समान् उसके शरीरमें लगा। ३० फुट नीचे ज़मीन पर धमाकेसे वह गिरा। लेकिन झटके और चोटके लगनेपर भी वह इस आश्चर्यपूर्ण अनुभवकी कथा सुनानेके लिये जीवित रह गया। एक और घटना हुई जिसमें एक व्यक्तिने गरम तारको छू लिया जिसमें ७५,००० वोल्टकी धाराने उसे पकड़ लिया। एक सहयोगीने विद्युत्-धाराको तुरन्त बन्द कर दिया और बेहोश व्यक्तिको श्वास फूँकने वाले यंत्रके पास ले गया। उस यंत्रके लौह-फुफ्फुस (आयरन-लंग्ज़) में उसका शरीर रक्खा गया और ओषजन लगातार अंदर भेजी जाती रही जब तक कि नाड़ी-केन्द्र फिरसे काम न करने लगे।

सामान्यतया ऐसी घटनाओंमें धारा अधिक वाल्टकी लेकिन कम ऐम्पीयरकी होती है। वोल्ट वैद्युतिक शक्तिका परिमाण है और ऐम्पीयरसे प्रवाह अथवा धाराकी मात्राका बोध होता है। विद्युत्-कुर्सीमें २२०० वोल्ट परकी २० से ३० ऐम्पीयर तककी धाराका प्रयोग किया जाता है। न्यूयार्कके बिजली-घरमें एक व्यक्तिने एक गरम तार छू लिया जिससे ५५,००० और ७०,००० के बीच वोल्टकी ४० और ७० के बीच ऐम्पीयरकी धारा उसके शरीरमें होकर बह गई हर तरहसे यह झटका मृत्यु-दण्डमें अभियोगियोंको दिये जाने वाले झटकोंसे कहीं बड़ा था। जब सहयोगियोंने तार को काटा तो उसका हृदय स्थित हो गया था। तब भी लगातार श्वास फूँकने और डाक्टरी उपचार करनेसे उसमें जान आ गई।

अब प्रश्न यह उठता है कि विद्युत्-कुर्सी पर झटका देनेके पश्चात् जब अभियुक्तको चीर-फाड़के कमरेमें ले

जाया जाता है क्या तब भी प्राणका अंश रह जाता है ? क्या ऐसे व्यक्ति तत्काल उपचार करनेसे फिर जीवित किये जा सकते हैं ? इन प्रश्नोंका अभी निश्चित रूपसे उत्तर नहीं दिया जा सकता। इस प्रकारकी जाँच अभी नहीं हुई। हाँ, एक मामलेमें वकील ने विद्युत्-कुर्सी पर झटके लगी एक औरतको चीर-फाड़के कमरेमें ले जानेसे बचाने की कोशिश की लेकिन सफलता नहीं हुई। जिस रात्रिको इस हत्यारी औरतको झटके लगाये गये उसकी तरफके एक वकील ने चीर-फाड़का काम न होनेकी एक दलील पेशकी। वह चाहता था कि अगर मंजूर हो जाय तो पासके अस्पतालमें लेजा (ग्रंथि-स्राव) का एक इंजेक्शन दिया जाय जिससे हृदय फिर चलने लगे। लेकिन यह आयोजना पूरी न हुई। वकीलोंकी रायसे इस दलीलका कुछ ध्यान न दिया गया क्योंकि इस पर जजके हस्ताक्षर न थे। आख़िरकार चीर-फाड़ हो ही गई और यह प्रश्न कि विद्युत-कुर्सी पर झटकोंके पश्चात् प्राण रहता है या नहीं अनसुलझा ही रह गया।

विद्युत्-मृत्युके संबंधमें एक और प्रश्न पर प्रकाश नहीं पड़ा है। वह यह कि इस विधिसे बेहोशी तत्क्षण ही हो जाती है अथवा बेहोशी आनेसे पहिले अत्यंत तीव्र वेदना होती है। अब तक यह विश्वास था कि विद्युत-मृत्युमें बहुत थोड़ा-सा कष्ट होता है। लेकिन, क्या यह ठीक है ? यद्यपि कोई अभियोगी अपनी समवेदनाओंको बतलाने कालकोठरीसे जीवित बाहर नहीं आया। एक विद्युत-शास्त्री ने इस तीव्र वेदनाका जो एक उच्च शक्तिकी धारा पकड़े जाने पर अनुभवमें आती है वर्णन किया है। उनका कहना है कि जब उनपर बिजली गिरी तो वे एक ज़मीनसे छूते हुए तारको पकड़े हुए थे। जैसे ही धारा उनके शरीरमें होकर बही उन्हें ऐसा अनुभव हुआ मानों कि उनकी सब हड्डियाँ टूट रही हों। प्रत्येक तंतुको चटसे टूटनेका आभास हुआ। करोड़ों सुइयाँ मानों उनकी देहको छेद रही हों। इसके बाद उन्हें एक नीली ज्योति बाहर निकलती दिखाई दी और सब दर्द बंद हो गया। प्राथमिक उपचार द्वारा जीवित करनेके पहिले १५ मिनट तक वह मृत हो पड़ा रहा।

मुश्किलसे ५० वर्ष हुए होंगे जब फाँसी देनेकी जगह विद्युत्-मृत्यु देनेका आंदोलन सबसे अधिक ज़ोर पकड़े हुये था। तब मृत्यु-दण्ड-विधिमें यह एक मानवीयताके दृष्टिकोणसे उन्नति समझी जाती थी। मृत्यु-दण्डके लम्बे इतिहासमें अभियुक्तोंकी विविध विधियोंसे मृत्युकी गई है। जीवित ही खौलते तेलमें डाल देना, सूली पर चढ़ाना, जलाना, फाँसी लगा देना, पत्थरोंकी चोटसे मृत्युको प्राप्त करना, गला घोंटना, तलवारसे सिर उड़ा देना, भूखे जंगली जानवरके सामने रख देना, दीवारमें चिनवा देना, आदि, आदि विधियोंका अनुसरण किया गया है। सन् १८१८ में इंगलैंडमें १५० भिन्न अभियोगोंमें मृत्यु-दण्ड दिया जाता था।

६ अगस्त सन् १८६० को दुनियामें सबसे पहिले मृत्यु-दण्ड विद्युत-कुर्सी पर मिला। तब पर्याप्त अनुभव और उचित सामग्रीके अभावके कारण इतनी सफलता नहीं हुई। अभियोगीकी तात्कालिक मृत्यु नहीं हुई। इससे देशमें हलचल-सी मच गई। अब तो इस विधिमें बहुत कुछ सुधार हो गया है। लगभग ४ मिनटमें विद्युत-मृत्युकी क्रिया पूर्ण होती है।

सबसे नये प्रकारकी कुर्सीमें अब पहियों और बकसुओं की आवश्यकता नहीं रहती। छोटे लीवरोंके खींचनेसे जल्लाद कैदीको कुर्सीमें ताँबेके पत्तियों और धातुकी छड़ोंसे नियत कर सकता है। पूरी क्रिया ५ सेकण्डसे कममें ही हो जाती है।

वर्तमान युगमें ४८ राज्योंमेंसे २१ राज्योंने विद्युत्-मृत्युको कानूनी विधि माना है; १२ राज्योंने अभी फाँसी ही रक्खी है; एक राज्य डेटामें कैदीको फाँसी और बन्दूककी गोली दोनोंमेंसे एकको चुनना पड़ता है; ७ राज्योंमें मृत्यु-दण्ड हटा ही दिया गया है और बाकी ७ राज्योंमें कैदीको विषगैसके कमरेमें बन्द कर देते हैं। ऐसे कमरेमें मुलज़िमको कुर्सीमें बाँध कर दरवाज़े पर बन्द कर देते हैं। बाहरसे एक चौकीदार लीवर खींच देता है। कुर्सीके नीचे गन्धकाम्लमें १६ सायनायडके अण्डे गिर पड़ते हैं। कुछ नीलासा और बादामकी गंधका धुआँ उड़ता है और अभियोगीको मार देता है। कुछ व्यक्ति हाइड्रो-साएनिक एसिड गैसकी जगह कार्बन मोनॉक्साइड गैस (जिसमें गन्ध नहीं होती और न यह रंगीन ही है) के प्रयोगको अधिक अच्छा समझते हैं। इसका कारण यह है कि इस गैससे मानसिक पीड़ा बहुत कम होती है।

गैस-कोठरी और विद्युत्-मृत्यु इनमेंसे कौन अधिक मानुषिक विधि है यह विवादास्पद प्रश्न है। लेकिन इसमें संदेह नहीं कि १५ मिनट तक गैस-कोठरीमें बन्द रहनेके पश्चात् आदमी फिर जीवित नहीं किया जा सकता। इन विधियों में मारनेकी क्रिया बिल्कुल भिन्न है।

सन् १९०८ में डा० रेबिनोनिशने विद्युत्-मृत्युको प्राप्त कई एक जानवरों पर अपने प्रयोग किये और जब वे मृत मालूम पड़ते थे उसके बाद भी उनमेंसे कुछमें फिर जान आ गई। अभी हालमें मानव-शरीरपर इस विद्युत्का क्या प्रभाव होता है इसके विषयमें प्रयोग किये हैं और कुछ परिणामोंको एकत्रित किया गया है। उनके अन्वेषणोंके फल-स्वरूप अब विद्युत्-कुर्सीको उपादेयतापर संदेह होने लगा है और दण्ड-विधानके निर्णायकों और जनता उच्च अफसरोंके सामने फिरसे उचित मृत्यु-दण्डकी विधिका प्रश्न उपस्थित हो गया है।

जन्मसे पूर्व शिशु

(ले० — श्री रामस्वरूप चतुर्वेदी, यूनिवर्सिटी चिल्ड्रन स्कूल, हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी)

सबसे पहले हम यह देखेंगे कि किस माहमें गर्भस्थ शिशुका क्या आकार-प्रकार होता है, कौन-सा अंग बनता है उसे किस प्रकार सबल बनाया जाता है, आदि। फिर यह देखेंगे कि क्या पुरुष जाति या स्त्री जातिकी संतान उत्पन्न करनेके निमित्त किये गये वाह्य प्रयत्न सफल हुये हैं व इस विषयमें वर्तमान विज्ञान क्या कहता है, आदि। अन्तमें यह देखेंगे कि गर्भस्थ शिशुके रूप-रंग, मनोभाव, विचार, स्वभाव आदिको गढ़नेके लिये माताको अपनी दिनचर्या किस प्रकारकी बनानी पड़ती है। बस यही तीन बातें जान लेना ही आज तक गर्भके विषयमेंकी गई सम्पूर्ण खोजोंको जान लेना है।

जिस रात्रिको गर्भाधान होता है उस समय कीटाणु $\frac{१}{२००}$ इंचके बराबर होता है। दो सप्ताहोंके समाप्त होते ही जीवाणुका वज़न लगभग एक ग्रेन और आकार $\frac{१}{१२}$ इंच होता है। तीसरे सप्ताहके अन्त तक आकार बाजरेके दानेके समान या दीमकके बराबर होजाता है। चौथे सप्ताह अर्थात् पहले माहके पूरे होते-होते भ्रूणके सिर व पैरोंके आकार झलकने लगते हैं। लम्बाई $\frac{१}{३}$ इंच व तौल सवा माशेसे डेढ़ माशे तक। होता है एक सिरा जो मोटा है आगे चलकर सर बनेगा, दूसरा जो नुकीला पतला है आगे लचकर पैर बनेगा। इसी भागमें नाल लगा है। मुखके स्थान पर एक दरॉंच दीख रही है और आँखोंकी जगह दो काले तिल हैं।

डेढ़ माह होने तक भ्रूणके सिर और वक्ष अलग अलग दीखने लगते हैं। सर वाले मोटे सिरेमें चेहरा, आँख, कान नाक, मुँहके छिद्र स्पष्ट बन गये हैं। हाथोंकी अँगुलियाँ बन गईं। लम्बाई एकसे डेढ़ इंच तक व वज़न तीन माशेसे पाँच माशे तक होता है।

दूसरे माहमें नाक, कान, ओंठ, आँखें अत्यंत स्पष्ट दीखने लगते हैं। जननेंद्रियकी रचना आरम्भ हो जाती है परन्तु लड़का है या लड़की यह साफ़ रीतिसे नहीं कहा जा सकता है। गुदा-मार्ग दिखाई पड़ने लगता है। फेफड़ा, तिल्ली, उपवृक्क दिखाई देने लगते हैं। आतोंका वह भाग जो नालमें चला गया था बालकके पेटमें आने लगता है। लम्बाई १$\frac{१}{२}$ इंच, वजन आठसे बीस माशा तक होता है।

तीसरे महीनेके अंत तक भ्रूणकी आँखोंकी पलकें बन जाती हैं; किन्तु बंद रहती हैं, खुलती नहीं हैं। नाकके दोनों नथुने स्पष्ट और ओंठ अलग अलग दीखने लगते हैं पर मुँह बँद रहता है। इसी माहमें स्त्री पुरुषका भेद बताने वाले अवयव पूर्ण बन चुकते हैं, सर बड़ा किन्तु कठोर नहीं होता है। लम्बाई २-३ इंच और वजन २$\frac{१}{२}$ छटाँकके लगभग होता है।

चौथे माहके अन्त तक हाथों पावोंमें कुछ गति होने लगती है। अँगुलियों पर नाखून बनने लगे हैं। शरीरमें कई स्थानों पर कोमल रोयें दीख रहे हैं। सर पर छोटे छोटे बाल आ जाते हैं किन्तु अभी उनमें कोई रंग नहीं है। त्वचा कुछ कठोर हो जाती। ठुड्डी भी पूरी बन चुकी। लम्बाई छः इंच,

वजन पाव डेढ़ पाव। इस माह सबसे अधिक विशेष बात यह हुई कि बालकके हृदय ने काम करना प्रारम्भ कर दिया। इसी माहसे माताको दौहृदिनी (दो हृदय वाली) कहा जाने लगता है क्योंकि अब एक ही शरीरके भीतर दो हृदय धड़कने लगे।

पाँचवे माहके अन्त तक रोयें कुछ बढ़ जाते हैं। आंतमें कुछ-कुछ मल जमा हो चला। हाथोंकी अपेक्षा पाँव अधिक लम्बे हो गये हैं। नाखून स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं। भ्रूण अब अच्छी प्रकार हरकत करता है जो माताको स्पष्ट विदित होती है—लम्बाई १० इंच व तौल लगभग आध सेर।

छठे महीनेके अन्त तक त्वचामें झुर्रियाँ पड चलीं। कहीं-कहीं खालके भीतर चर्बी आगई। पलकोंकी बरौनी व भौंहें बनने लगीं, सरके बालोंमें रंग आ रहा है। पलकें अभी जुड़ी ही हैं। यदि इस समय भ्रूण बाहर आ जाय तो कुछ देर श्वास लेकर मर जायगा। लम्बाई एक फीट और वज़न सेर भर होगा।

सातवाँ माह समाप्त होनेको ही है कि पलकें खुलगईं, सिर पर बाल खूब निकल आये। आंतोंमें मल इकट्ठा हो गया। भीतरकी चर्बी अधिक बढ़ जानेसे त्वचाकी झुर्रियाँ मिट गईं। इस समयका उत्पन्न बालक अधिक सावधानी द्वारा रक्खे जाने पर भी नहीं जी सकता। लम्बाई चौदह इंच और भार डेढ़ सेर। चौथे माहकी भाँति इस माह भी एक विशेष घटना होती है। वह यह है कि अभी तक तो बालकका सिर ऊपर और पैर नीचेकी ओर रहते थे पर इस माह बालक पलट जाता है अर्थात् सिर नीचेकी ओर और पैर ऊपरकी ओर हो जाते हैं।

आठवें माहके अन्त तक नख अँगुलियोंके छोर तक पहुँच गये हैं। खोपड़ी पर बाल अधिक बढ़ गये। शरीरके अन्य अवयवों पर जो रोयें निकल आये थे अब गायब होने लगे हैं। क्यों निकले थे और क्यों गायब होगये इसका उत्तर विज्ञान ने अभी तक नहीं ढूँढ़ पाया। पसुलियाँ, हाथ, पैर आदि सर्वांग बन चुके हैं। लम्बाई मोटाई बराबर है। इस माहका उत्पन्न हुआ बालक जीवित रह सकता है। बालकको लम्बाई १६ या १७ इंच व तौल दो सेर होगया।

नवें मासमें अण्ड अण्ड-कोषमें पहुँच जाते हैं, त्वचाका रंग पीला व शरीर कोमल होता है। लम्बाई डेढ़ फोट, वज़न सवा दो अथवा ढाई सेरके लगभग होता है।

दसवें माह तक समग्र शरीर पूर्ण हो जाता है। रोयें लुप्त होगये हैं परन्तु कंधों पर अब भी हैं। सब मल आंतमें एकत्र होगया है। नाल (नारा) शरीरके मध्यसे लगभग आधा इंच नीचे लगा हुआ है।

सभी जानते हैं कि गर्भस्थ बालकको माता द्वारा भोजन (रुधिर) मिलता है। माँके पेटसे बालकके पेट तक रुधिर पहुँचानेका काम एक मांसकी रस्सी करती है जिसे 'नाभि-नाल,' या नाल कहते हैं। इस रस्सीका एक सिरा बालककी नाभि-से लगा रहता है और दूसरा गर्भाशय या कमलसे। नाल देखनेमें एक ही नली दिखती है पर वास्तवमें एक नली नहीं कई छोटी-छोटी धमनियों व शिराओंका जाल किसी लसदार पदार्थसे आपसमें एक दूसरेसे चिपका रहता है। उन सबके ऊपर एक खोल चढ़ा रहता है। अतः वे बाहरसे एक दीखते हैं। जब तक बालक गर्भमें रहता है वह मुख अथवा नाकसे मांस नहीं लेता। फेंफड़े अपना काम नहीं करते। कितने आश्चर्यकी बात है कि बालक रुधिर तो नाल द्वारा खींचता ही है वायु भी इसी द्वारा खींचता है, श्वासो-च्छ्वासका कार्य भी यही सम्पादित करता है; फेफड़े चुपचाप सोते रहते हैं। प्रकृतिके स्वतः होते रहने वाले क्रिया-कलाप कितने कौतूहलवर्द्धक हैं।

पाठकों ने पिछले वर्णनसे समझ लिया होगा कि गर्भमें शिशुका कौन-सा अंग किस माह विकसित होता है। परन्तु सबल व पुष्ट अंग तभी बनते हैं जब माताका आहार व दैनिक भोजन स्वाभाविक व वैज्ञानिक हो। यह हो नहीं सकता कि माता तो नित्य मिठाई, नमकीन चटपटे मसाले दार, मिष्टान्न, पकवान आदि गरिष्ट व सत्वहीन पदार्थ खाया करे पर कामना यह करे कि उसके रससे पुष्ट भुजाओं तीव्र दृष्टि व दृढ़ हड्डियों वाली निरोग संतान उत्पन्न हो। जब तक स्वाभाविक व हलका भोजन न करेंगी संतान सहज स्वस्थ न होगी। बहुतेरी स्त्रियाँ भ्रमवश पौष्टिक पदार्थका अर्थ बादाम-पाक, या अन्य कोई शक्तिवर्द्धक योगका सेवन करना समझ लेती हैं। किन्तु इन विशेष रुपसे तैयारकी हुई वस्तुओंके खानेसे अजीर्ण हो जाता है क्योंकि ये देरमें पचती हैं। यह होता है कि लाभके स्थानमें हानि होने लगती है। मेरा तात्पर्य स्वाभाविक आहारसे है।

आहारमें पाँच पदार्थका रहना आवश्यक हैं—प्रोटीन, खनिज पदार्थ, तैल घी (वसा अर्थात् चिकनाई या चर्बी) कार्बोहाइड्रेट और विटेमिन। प्रोटीन जीवनके लिये अत्यन्त आवश्यक है। इसमें नाइट्रोजन तत्व उपस्थित रहता है जो शरीरकी वृद्धि, जीर्ण रक्त-कोषोंको पुनर्नवोभूत करता व नवीन शुद्ध रक्तका निर्माण करता है। यह तत्व जिन वस्तुओंमें अधिक पाया जाता है वे दूध, दही, अंडा, मांस, मछली, हरी पत्तियोंके साग (यथा पालक, मेथी, लेहस गेहूँ व जौका आटा, मडुआ, बिना छटा चावल, मटर, सेम, दाल, चना, बादाम, अखरोट, गाजर, चुकंदर हैं।

खनिज लवणका शरीर-निर्माणमें दूसरा स्थान है। यह चूना, फास्फेट, गन्धक और लवण सदृश पदार्थ हैं। हड्डियों व दाँतोंमें इनका विशेष अंश है। खनिज तत्वोंमें कैलशियमके बराबर महत्व वाला एक भी पदार्थ नहीं। इसकी कमीसे शरीर दुर्बल, हृदय, हड्डी, दांत आदि शक्ति-हीन हो जाते हैं। कुछ पदार्थोंमें कैलशियम होता है, कुछमें नहीं। गेहूँ, चावल, मडुआ, आलू, मूली, गाजर, चुकन्दर, शकर, साबूदाना व मांसमें नहीं होता और दूध, मट्ठा, अण्डाका पीला भाग, बादाम, दालें सब प्रकारके फल, हरी पत्तियोंके सागमें कैलशियमकी पर्याप्त मात्रा पाई जाती है। कैलशियमके लिये दूधसे बढ़कर एक भी पदार्थ धरातल पर नहीं। कैलशियमके साथी गन्धक व लोहा और नमक हैं। शरीरमें इनकी उचित मात्रा पहुँचानेके लिये गर्भवतीको दूध मट्ठा, बादाम, अनाजके दाने, दाल, पालक, प्याज, मूली, मकोई, तरबूज, ककड़ी, टमाटर, गाजर, फूलगोभी, आदि खाना चाहिये। तरकारियोंको उबालकर उनका जल फेंक देना बड़ी भूल है। इससे क्षारभाग हाथसे निकल जाता है।

हमने चर्बी या वसा या चिकनाहटको पाँचवें-छठे माह उत्पन्न होते देखा था। यह चमड़ेके नीचे एकत्रित होती है। इसका काम स्नायु व तंतुओंको दृढ़ करना, ढाँचे, मांसपेशी व पुट्ठोंको भरे रखना है। इसकी प्राप्ति दूध, मक्खन, घी, पालक, मेथी, गाजर टमाटरसे होती है।

कार्बोहाइड्रेटमें दो पदार्थ हैं—स्टार्च व शर्करा। इनका काम शरीरमें ताप उत्पन्न करना है। स्टार्च चावल, गेहूँ, जौ आदिसे प्राप्त होता है। शर्करा चीनी, गुड़, मधुसे प्राप्त होती है साबूदाना, चावल, गेहूँ, आदिमें भी है।

विटेमिन अत्यावश्यक है। इसके अभावमें संतानोत्पत्ति शक्ति नष्ट हो जाती है। अब तक ६ प्रकारके विटेमिनका पता लगा है। उन्हें शरीरमें लानेके लिये काडलिवर आयल, अंडा, मक्खन, दूध घी, पालक, गोभी, पातगोभी, शलजम व मूलीकी पत्तियाँ, गोभी, शकरकन्द, टमाटर, प्याज, ताज़े नीबू, नारंगी, आदि खाना चाहिये। यह है आहारकी वैज्ञानिक खोज।

सारांश यह कि उत्तम वर्ण, शुद्ध रक्त व निरोग शिशु उत्पन्न करनेकी इच्छुक माताको चाहिये कि नित्य ही दूध, आटा, चावल, दाल, नीबू नारंगी, टमाटर, मूली प्याज, हरा मिर्चमें से जो प्राप्त हो सके खाय, पत्तीदार तरकारियाँ मटर, चनाके हरे दाने बड़े लाभदायक हैं।

अल्यूमीनियमके धातुसंकर

[ले० —डा० सत्यप्रकाश]

अल्यूमीनियम प्रायः सभी धातुओंसे मिलकर धातुसंकर बनाता है। सीसासे इसका संयोग होना कठिन है। सब धातुसंकरोंको दो विभागोंमें बाँट सकते हैं। एक तो वे जिनमें अन्य धातुयें ३५% से अधिक न हों और दूसरी वे जिनसे १५% से अधिक अल्यूमीनियम न हों।

सार धातुओंके साथ- अल्यूमीनियम सोडियम, पोटाशियम आदि धातुओंके साथ आसानीसे मिल जाता है पर इन धातुओंके संकर जल या नम वायुमें विभाजित हो जाते हैं। अतः ये धातुसंकर किसी विशेष लाभके नहीं हैं।

बिस्मथके साथ—अल्यूमीनियम बिस्मथके साथ आसानीसे मिल जाता है, और जो धातुसंकर बनता है वह आसानीसे गलाया जा सकता है। इस संकर पर हवाका प्रभाव नहीं पड़ता। पर यदि पिघला लिया जाय तो हवामें यह संकर विभाजित हो जाता है। बिस्मथके कारण अल्यू-मीनियम बड़ा भंजनशील हो जाता है।

कैडमियमके साथ—कैडमियमके साथ अल्यूमीनियमका जो संकर बनता है, उसकी अल्यूमीनियमके लिए सोल्डर अच्छी बनती है।

कोबल्टके साथ—अल्यूमीनियममें ताँबा और थोड़ा सा कोबल्ट मिला दिया जाय तो दृढ़ता अधिक आ जाती है।

(१) कोबल्ट ६० भाग
अल्यूमीनियम १० ”
ताँबा ४० ”

(२) कोबल्ट ३५ भाग
अल्यूमीनियम २५ ”
लोहा १० ”
ताँबा ३० ”

क्रोमियमके साथ—यद्यपि क्रोमियम कुछ ख़र्चीला अवश्य है पर इससे अल्यूमीनियममें दृढ़ता अधिक आ जाती है। यदि क्रोमियम मिला दिया जाय तो गरम करनेके बाद भी दृढ़ता बनी रहती है। यह बात अन्य धातुओंके साथ नहीं है।

ताँबेके साथ—थोड़ा-सा ताँबा मिला देनेसे अल्यूमीनियमके गुण बहुत परिवर्तितहो जाते हैं।

(१) अल्यूमीनियम ९९ भाग
ताँबा १ भाग

संकर कठोर, भंजनशील और नीलापन लिये होगा।

(२) अल्यूमीनियम ९५ भाग
ताँबा ५ भाग

इस संकरके पत्र बनाये जा सकते हैं

(३) अल्यूमीनियम ९० भाग
ताँबा १० ”

इससे काम लेना कठिन है,

(४) अल्यूमीनियम २० भाग
ताँबा ८० भाग

सुन्दर पीले रंगका संकर है।

(५) अल्यूमीनियम १० भाग
ताँबा ९० ”

इसमें शुद्ध सुनहरा रंग है

(६) अल्यूमीनियम ५ भाग
ताँबा ९५ ”

लाली लिये हुए पीला संकर है

(७) अल्यूमीनियम २ भाग
ताँबा ९८ ”

इसमें शुद्ध ताँबेका लाल रंग होता है। ज्यों-ज्यों ताँबेकी मात्रा बढ़ती जाती है, भंजनशीलता कम होती जाती है। १० प्रति शतसे कम अल्यूमीनियम होने पर संकर व्यापारके योग्य बन जाता है। ९० प्रतिशत ताँबा और प्रतिशत अल्यूमीनियम वाला संकर सबसे अच्छा है।

यदि अल्यूमिनियमकी मात्रा ११ प्रतिशतसे कम हो तो ऐसे धातु-संकरको अल्यूमीनियम ब्रौञ्ज़ कहते हैं।

अल्यूमीनियम ब्रौञ्ज़—इसके लिये शुद्धतम ताँबा काममें लाना चाहिये और अल्यूमीनियम भी ९९ प्रतिशत शुद्ध हो। ग्रेफाइटकी घरियामें ताँबेको गलाओ।

इस कामके लिये कोल गैस या कोककी आग काममें लाओ। ताँबेको कोयलेसे ढक दो जिससे कि यह हवासे ख़राब न हो जाय। इसी कोयलेमें हो करके गले हुये ताँबे पर अल्यूमीनियमकी उचित मात्रा डालो। पहले तो तापक्रम कुछ कम हो जावेगा, पर और आग पाकर अल्यूमीनियम भी पिघलेगा और पिघलते ही यह ताँबेसे मिल जायगा। अब तापक्रम हटा लो और कोयलेके क्षारको द्रव पर से अलग कर लो। जले हुये ब्रौञ्ज़को अलग बरतनमें उंडेल लो। उँडेलते समय द्रवको ख़ूब टारते रहो।

अल्यूमीनियम ब्रौञ्ज़में १०-१२ प्रतिशत ही अल्यूमीनियम होना चाहिये। १० प्रतिशत वाली ब्रौञ्ज़ बहुत कठोर होती है। गरम करके इसकी पिटाई अच्छी प्रकारकी जा सकती है। लोहेके समानही इसके गुण होते हैं। इसका तार उतना ही मज़बूत होता है जितना इस्पातका। इसके साँचे भी बड़े मज़बूत होते हैं।

अल्यूमीनियम ब्रौञ्ज़का एक फ्रांसीसी नुसख़ा इस प्रकार है।

ताँबा	८९ से ९८	प्रतिशत
निकेल	१ से २	”
अल्यूमीनियम	शेष मात्रा	”

निकेलकी जितनी मात्रा बढ़ाई जावे, अल्यूमीनियमकी उतनी ही कम कर देनी चाहिये। सबसे अच्छा यह है कि

९·५% अल्यूमीनियम और अधिकसे अधिक १ से १·५% निकेल हो।

संकर बनाते समय ०·५ प्रतिशत फास्फोरस और १·५ प्रतिशत तक मेगनीशिया भी मिला देना चाहिये। फास्फोरस ताँबे या अल्यूमीनियमके साथ अलग मिला कर छोड़ना चाहिये। इन दोनोंके मेलको पहले ताँबे में छोड़ो, तब अल्यूमीनियम और निकेल और बादको गलनेपर मैगनीशियम।

अल्यूमीनियम-बोरन-ब्रौञ्ज़—इसे केवल बोरन-ब्रौञ्ज़ भी कहते हैं। पहले अल्यूमीनियममें बोरन इसी प्रकार मिलते हैं जैसे लोहेमें ग्रेफाइट कार्बन होता है। (अल्यूमीनियम बोराइट नहीं)। यह काम कठिन है। ऑक्सीहाइड्रोजनकी ज्वालामें फ़्लोरस्पार और बोरिक ऐसिड (जल रहित) का मिश्रण गरम किया जाता है। अब ५ से १ प्रतिशत तक इस अल्यूमीनियमकी मात्रा लेकर ताँबेमें मिलाते हैं।

यह ब्रौञ्ज़ साधारण अल्यूमीनियम ब्रौञ्ज़में भी अधिक स्थायी होती है। इसमें भंजनशीलता भी नहीं होती।

भौतिक विज्ञानका स्वातन्त्र्य-नाद

[ले० श्री द्वारिकाप्रसाद गुप्त, एम० एस-सी०, विशारद]

कुछ वर्ष हुए हक्सलेने विज्ञानकी परिभाषा व्यवस्थित साधारण ज्ञान शब्दों द्वाराकी थी। यह परिभाषा विज्ञान की प्रारम्भिक अवस्थामें ठीक हो सकती थी लेकिन वह समय शीघ्र ही आ गया जब 'साधारण-ज्ञान' से ही विज्ञान की तृप्ति न होने लगी—उदाहरणार्थ गणितमें ऋण और विषम संख्याओंसे, जिनसे विद्यार्थियोंको बौद्धिक युद्ध करना पड़ता है, शुरू करके गणितज्ञ ऐसी राशिओंसे व्यवहार करता है और अरिथमेटिकके साधारण जोड़, बाकी, गुणा, भागके नियमोंका पालन नहीं करता कि उन अटपटी विचार-वीथियोंमें भ्रमण करते हुए भी ऐसे निष्कर्ष निकल आते हैं जो व्यावहारिक जीवनमें सच्चे उतरते हैं। आधुनिक विशेषज्ञोंका तो कहना भी यही है कि वे वास्तविकता की खोजमें नहीं है, उनका ध्येय तो उन मान्यताओंका अनिवार्य फल निकालना है जिनकी सच्चाईके विषयमें उन्हें तनिक भी चिन्ता नहीं है।

साधारण-ज्ञान वाला भौतिक विज्ञान उन वस्तुओंसे सम्बन्ध रखता है जो निश्चित स्थान घेरते हैं और खींचने या ढकेलनेसे जो चलते हैं। साधारण-ज्ञान खींचनेकी अपेक्षा ढकेलनेसे अधिक सन्तुष्ट रहता है। बहुत समय तक भौतिक विज्ञानकी उन्नतिमें यह विचार सहायक रहा। इसके अनुसार सक्शनकी क्रियाका आधार वायु द्वारा ढकेलना बतलाया गया, तापको एक प्रकारकी गति और गैसेज तथा विद्युत्को भी एक प्रकारके अभेद्यकण द्वारा निर्मित ठहराया गया परन्तु सत्रहवीं शताब्दीमें ही इस 'साधारण-ज्ञान' में दोष दीखने लगे। न्यूटनको यह माननेके लिए बाध्य होना पड़ा कि भौतिक विज्ञानमें सापेक्षिक गतिका ही महत्त्व है यद्यपि उन्हें निरपेक्ष शान्ति और गतिमें (absolute rest and motion) विश्वास था। अनेक प्रयत्नोंके बाद भी गुरुत्व आकर्षणको पदार्थकी बाह्य दूरसे होने वाली क्रिया माना गया। उन्नीसवीं शताब्दीमें पदार्थके समस्त विशेष और साधारण स्वभावका आधार 'ईथर' माना जाने लगा जिसमें होकर चुम्बकीय और विद्युत शक्ति तथा प्रकाश और अन्य विकीरण आ जा सकते हैं। परन्तु एक पदार्थके परमाणुओंमें उसी प्रकार के गुण विद्यमान समझे जाते थे जो उस पदार्थकी साधारण अवस्थामें उसमें होते हैं। पदार्थ और उसके परमाणु भिन्न नहीं थे।

उन्नीसवीं सदीके अन्तमें यह विचार-पद्धति दो दिशाओं में खटकने लगी। 'ईथर' इस प्रकारके गुण प्रदर्शित करने लगा जो एक दूसरेके विरोधी थे। चलती हुई वस्तुओंके मुकाबिलेमें यह स्थायी मालूम पड़ता था परन्तु उनमें प्रवाहित होते रहनेका कोई प्रमाण नहीं मिलता था। परमाणुके विषयमें काठकी गेंदकी जो धारणा थी वह भी दोषपूर्ण होती जाती थी। बीसवीं शताब्दीमें 'ईथर' के इस

विरोधात्मक व्यवहारने आइन्सटाइनके सापेक्षवाद सिद्धान्त को जन्म दिया। इस सिद्धान्त द्वारा जो कठिनाइयाँ हल हो जाती हैं वे इस प्रकार समझी जा सकती हैं। पदार्थीय मंडलों (systems) के यांत्रिक और प्रकाशसंबन्धी गुण होते हैं जो अकसर समान होते हैं। जब इनमें अन्तर होता है तो यांत्रिक गुणोंको ही सत्य मानते हैं जैसा कि हम कहा करते हैं कि बिम्ब दर्पणके पीछे वास्तवमें नहीं होता और न कोई छड़ी पानीमें रखने पर वास्तवमें टेढ़ी हो जाती है। प्रकाशके परावर्तन और आवर्जन जैसे गुणोंका ध्यान रखकर आकाश और काल (space and time) की व्यवहार-निहित योजनामें प्रकाश और पदार्थका निर्वाह कर सकते हैं। परन्तु यह तभी संभव है जब कि ऐसी वस्तुओंको बरतें जो कदमें एक अणु और ग्रहके आकारके बीचके हों और जिनकी सापेक्षिक गति प्रति घंटा कुछ मीलोंसे अधिक न हो—इस प्रकार काल और आकाश (space and time) सम्बन्धी सामान्य मान्यतायें साधारण व्यवहारमें ठीक उतरती हैं परन्तु इन सीमाओं को लाँघने पर जब हम परमाणुसे न्यून और सूर्यसे बड़ी वस्तुओंको या सितारोंके वेगसे तीव्र चलने वाली वस्तुओंका हिसाब लगाते हैं तो उनके यांत्रिक और प्रकाश-सम्बन्धी गुण आपसमें मेल नहीं खाते। ऐसी अवस्थामें हमें आकाश और काल सम्बन्धी अपने विचारोंमें सुधार करना पड़ता है। ऐसे सुधार कर लेने पर तीव्रगामी शनि ग्रह जैसी वस्तुओं-का गति-विज्ञान भी अधिक ठीक हो जाता है। सापेक्षवाद सिद्धान्तके कुछ गुणात्मक निष्कर्ष बहुत ही सीधे हैं। यदि हम दो घटनाओंका ध्यान करें जिनके होनेके समय और स्थानका अन्तर उस समय और स्थानसे कहीं अधिक है जो कि वे घटनायें स्वयं घेरती हैं तो विभिन्न माप-पद्धतियों के अनुसार विभिन्न दर्शकोंको उन घटनाओंके बीचके समय और स्थानका अन्तर विभिन्न प्रतीत होगा। उदाहरणार्थ राष्ट्रीय महासभाका जन्म और उसकी स्वर्ण जयन्ती इस पृथ्वीकी व्यवहार-निहित ज्यामिति और काल-मापके अनु-सार बम्बईमें ५० वर्षके कालान्तर हुए थे, स्थानान्तर शून्य था। कल्पना कीजिए कि एक सितारा प्रकाशके वेगके आधे वेगसे पृथ्वीको पार कर रहा है। वहाँ चाहे दर्शक हो या न हो, उस सितारे पर की घटनाओंको निर्धारित करनेके लिए भी एक व्यवहार निहित (common sense) ज्या-मिति और कालमाप होगा-वहाँकी घटनायें इसी विशेष ज्यामिति और कालमाप पर आँकी जायँगी। इस सितारेके स्थान और काल विषयक मापमें राष्ट्रीय महासभाकी ये दोनों घटनायें ५७ सालके कालान्तर और स्थानान्तर २८ प्रकाश-वर्षका होता [एक प्रकाश वर्ष = १,८६,००० × ६० × ६० × २४ × ३६५ मील] इसी प्रकार पृथ्वीको काल-स्थानके व्यवहार निहित (common sense) माप-पद्धतिमें यदि दो घटनायें एक ही क्षण हुई हों जैसे कि दौड़-प्रतियोगितामें पटाखेका छूटना और प्रतिद्वन्द्वियों-का दौड़ना—ये एक क्षणमें होने वाली घटनायें उस सिता-रेके स्थानकाल पद्धतिमें कई शताब्दी और इससे भी अधिक स्थानकी दूरी पर प्रतीत होगी—साधारण व्यवहार निहित (common sense) स्थान-कालकी माप-पद्धति कोई मृगतृष्णा नहीं है। वे केवल सुविधायें हैं। परन्तु इस माप-पद्धति द्वारा घटनाओंके काल और समया-न्तरका इतना पूर्ण और निष्पक्ष ज्ञान नहीं हो सकता जैसा कि सापेक्षवाद सिद्धान्तोंकी मापपद्धति द्वारा। भौतिक विज्ञानवेत्ता इस मापकी सहायतासे ज्यादा ठीक नाप ले सकते हैं।

आकाश (स्थान) और काल विषयक हमारे विचारोंकी केंट द्वाराकी हुई टीका दर्शन-शास्त्रके लिए आधारभूत हो सकती है परन्तु भौतिक विज्ञानके लिए वह बिलकुल निर-र्थक है क्योंकि आइन्सटाइनकी भाँति कैंट महोदयने कोई रचनात्मक सुझाव पेश नहीं किए। इसी प्रकार तत्व-ज्ञानियों द्वारा की गई पदार्थ (matter) की टीका भौतिक विज्ञानके लिये लाभकारी सिद्ध नहीं हुई।

१९२७ ई० में हाइसनबर्गने भौतिक विज्ञानमें एक परिमाणात्मक सिद्धान्तका प्रतिपादन किया जिसके अनु-सार हम किसी वस्तुको बिना उसमें परिवर्तन किए हुए नहीं देख सकते। दर्शन-शास्त्रमें इस सिद्धान्तका प्रतिपादन चरम सीमाके आदर्शवादियोंने किया है। इस बातका स्पष्टीकरण करना था कि परमाणु बड़ी चलती हुई वस्तुओं-के समान, धीरे-धीरे न तो सामर्थ्य लेते हैं और न देते हैं वरन् वे विशेष परिमाणके तन्मात्रा (quantum) में सामर्थ्य लेते-देते हैं। चूँकि प्रकाश द्वारा प्रत्येक परीक्षण

में सामर्थ्यका कमसे कम एक तन्मात्रा निकलता है या मिलता है इसलिए एक तन्मात्रा ही परीक्षणकी यथार्थता (accuracy) की सीमा है। हम एक ही समयमें ये दोनों बातें ठीक तरहसे निश्चित नहीं कर सकते कि कोई कण कहाँ पर है और उसकी गति क्या है। तन्मात्रा ही इस अनिश्चितताकी इकाई है। इस प्रकार परमाणुता (atomocity) और घटनाओंके अवलोकन होनेमें घनिष्ठ सम्बन्ध है। ऋणाणु और पदार्थको अन्य इकाइयाँ किसी विशेष वेगसे चलनेके इच्छुक नहीं हैं। स्पष्ट बात तो यह है कि पदार्थ स्थान और कालमें इतना निकट सम्बन्ध नहीं है जैसा कि साधारण ज्ञान मानता है। हाइसनवर्ग और उनके अनुयायियोंके विश्वका यही चित्र है।

बहुतसे विज्ञानवेत्ता इस निष्कर्षसे सहमत नहीं है। डे ब्रोजली और श्रोडिञ्जर लहर-विज्ञानके सिद्धान्त पर चलते हुए कणोंको प्रकाशकी रश्मिके समान लहरोंका रूपान्तर ही मानते हैं। केवल निश्चित लहर-वर्ग ही संभव है और तन्मात्रिक घटनायें (quantum phenomena) इसी कारण होती है जिस कारण सारङ्गीके कंपित तारमें एक, दो, तीन या कोई पूर्ण संख्याके ही अचल बिन्दु होते हैं, परन्तु अपूर्ण संख्यामें नहीं होते। ऐसा मान लेने पर भी यह विवादास्पद है कि कोई घटना एक निश्चित स्थान और समय पर होती है।

कुछ भी हो भौतिक विज्ञानके सिद्धान्त हमारे व्यावहारिक साधारण-ज्ञानसे बहुत पृथक होते जाते हैं। ऐसे ही असाधारण सिद्धान्तोंके आधार पर घटनाओंके विषयमें स्पष्टीकरण और भविष्य वाणी की जाती है। भौतिक विज्ञान का विकास किसी दिशामें क्यों न हो यह तो स्पष्ट ही है कि भविष्यमें इसका आधार इसके ही अपने सिद्धान्त होंगे। जीवन-विज्ञान ऐसी स्थिति पर नहीं पहुँचा है जब कि उसके नियम भौतिक विज्ञानके नियमोंका उल्लंघन करते हों— भविष्य ही यह बतला सकेगा कि जीव जैसी दूसरी पदार्थीय सृष्टिको खोज द्वारा ऐसी अटपटी बातें निकलेंगी जो भौतिक विज्ञान की कार्यविधि और साधनोंसे परे हों अथवा परमाणुके अध्ययन द्वारा ही जीवन का स्पष्टीकरण हो सकेगा। भौतिक विज्ञानकी नवीनतम खोज उस दिनको बहुत समीप ले आई है जब कि समस्त विज्ञान मिलकर उस अवर्णनीय विषम और सुन्दरतम विश्वका दिग्दर्शन कर सकेगा जिसकी कल्पना भी वैज्ञानिक साधनों की सहायता बिना असंभव है।

घरेलू मक्खी

[ले०—श्री गौरीशंकर तोषनीवाल, बी० कॉम०]

कहावत है कि हम दो चीज़ोंसे कभी नहीं बच सकते— एक तो मृत्यु और दूसरे कर। इनमें हम तीसरी संख्या भी जोड़ सकते हैं और वह मक्खियोंका। खिड़कियों पर भनभनाती हुईं, भोजन पर टूटती हुईं, गन्दगी पर बैठती हुईं ये कहीं भी देखी जा सकती हैं। और इनके पालनके लिए हमें भारी रक़म चुकानी पड़ी है, जिसपर हमें ध्यान ही नहीं रहता। हैज़ा, पेचिश, क्षय, कृमि, कुष्ठ, बच्चोंके दस्त, आँख आना, टायफायड आदि इन्हींकी कृपादृष्टिसे आपको प्राप्त होते हैं। चेचक, अन्थ्रेक्स, ट्रकोमा, सुर्खबादा, कनार आदि रोग भी प्रायः इन्हीं द्वारा फैलते हैं।

हमारी घरेलू मक्खीका जीवन कूड़े करकटसे शुरू होता है। मादा मक्खी सुईकी नोंकसे भी छोटे अण्डे देती है, जो सफेदी लिए हुए होते हैं। २४ घण्टेमें ये अंडे रेंगने वाले कीड़े बन जाते हैं। इनकी इस अवस्थाको लहर्वा कहते हैं। अब इनका शरीर इतना फैलने लगता है कि पुराना चमड़ा इनके इस फैलावको सहन नहीं कर सकता। अतएव वह फट जाता है। और फिर उसी प्रकारका एक बड़ा-सा चमड़ा उस लहर्वाको फिर ढक लेता है। लहर्वा अपनी ३ दिनकी आयुमें ३ बार चोलियाँ बदलता है। यह ख़ूब ही खाने वाला और ख़ूब ही रेंगने वाला कीड़ा होता है। गर्मीमें प्रायः यह अपना रूप जल्दी ही बदलता रहता है। लहर्वका अगला सिरा नुकीला और पिछला मोटा होता है। पिछले सिरे पर साँस लेनेके लिए २ छेद होते हैं।

अब चौथे दिन लहर्वा "कुप्पा" बन जाता है। यह एक

स्थिर अवस्था है। इसका रंग प्रायः भूरा होता है। अपने इन ३ दिनकी अवस्थामें कुप्पेके अन्दर ही अन्दर कई परिवर्तन होते रहते हैं। इसी हालतमें मक्खीका शरीर, उसकी ६ टाँगें, दो पर, आँखें आदि बनती हैं। जब यह कुप्पा फटता है और उसमेंसे मक्खी निकलती है। बस ज्योंही इसके पंख सूख जाते हैं, यह अपने ८-१० सप्ताहके जीवनके लिए उड़नेको तैयार हो जाती है।

अण्डेसे मक्खी बननेमें १० दिन तो लगते ही हैं, पर अब यह मक्खी बनते ही फिर अण्डे देनेको तैयार हो जाती है। एक सप्ताहके भीतर ही यह १००-१५० तक अण्डे दे देती है और यह सिलसिला प्रति दसवें दिन चलता रहता है। इससे स्पष्ट है कि इनकी उत्पत्ति कितनी तीव्र गतिसे होती है। आधी अप्रैलसे सितम्बर मास तक इसके ६ वंश उत्पन्न होजाते हैं और यदि एक मक्खीके एक जोड़ेकी सब संतानें जीवित रहें तो उनकी संख्या इस मौसिममें ३३, ५६, ३३,२०,००,००,००० के लगभग होगी।

अब प्रश्न यह उठता है कि आखिर मक्खी अण्डे कहाँ देती है। इस कार्यके लिए प्रायः निम्न स्थान उपयुक्त देखे गये हैं।

१—रसोई घरका कूड़ा करकट—विशेष कर तरकारी आदिके छिलके।
२—शराब खानेमें।
३—मनुष्यके पाखाने पर।
४—जानवरोंकी लीद पर।

और लार्वेके पलनेके लिए तीन बातोंकी आवश्यकता है।

१—तरीदार जगह।
२—थोड़ी-सी गर्मी।
३—अँधेरा स्थान।

मक्खी खानेमें पूरी अघोर और बुद्धिमें बिलकुल ही हीन होती है। उसे भले-बुरेका तनिक भी ज्ञान नहीं होता। उसके लिए तो मनुष्यकी विष्ठा और मनुष्यका स्वादिष्टसे स्वादिष्ट भोजन एक ही समान है। जिस प्यारसे वह मल पर बैठती है उसी चावसे वह हमारे दूध, रोटी और मिठाई पर बैठती है और मुश्किल तो तब होती है जब कि वह एक खाद्य पदार्थसे दूसरे पर बैठती है।

यहाँ पर अब मक्खीकी थोड़ी-सी बनावट जान लेना उचित होगा। मक्खीके तमाम शरीर पर पास ही पास बड़े मुलायम बाल होते हैं। परों और टाँगों पर भी इनकी भर-मार रहती है। इनकी मददसे वह अपने परों और टाँगोंमें कीटाणु लपेट सकती है। तभी तो इसके परों और टाँगों पर ५७० से ४४,००० और इसकी आँतोंमें १६,००० से २,८०,००,००० तक कीटाणु पाए जाते हैं। उसके मुहँके नीचे एक प्रकारकी सूँड होती है, जिसमेंसे वह एक तरल पदार्थ निकालती है। यह किसी ठोस चीज़को नहीं खा सकती। पहले उसे लसदार बना लेती है। दूध, थूक, बलग़म आदि पर जब बैठती है, उन्हें तो योंही चूस लेती है। और साथ ही इन पदार्थोंके कीटाणु भी खा लेती है। साथ ही अपनी टाँगोंके नन्हें-नन्हें बालोंमें भी उन्हें लपेट लेती है। जब यह किसी ठोस पदार्थ जैसे मिश्री मिठाई पर बैठती है, तो यह अपनी सूँड द्वारा अपना थूक निकाल कर उस पदार्थका घोल बना लेती है और फिर उसे चूस जाती है। थूक द्वारा रोगके कीटाणु जो वह अपने पहले वाले भोजन (थूक, बलगम, मल, आदि) से ले आई है, इन मिश्री मिठाईमें मिला देती है। उसके परों और टाँगोंमें लिपटे हुए कीटाणु भी यहाँ छूट जाते हैं। यही नहीं यह खाते-खाते विष्ठा भी करने लगती है, जिसमें सैकड़ों जीवित कीटाणु होते हैं। वे भी भोजनमें मिल जाते हैं। इस प्रकार नाना रोगोंके कीटाणु हमारे भोजनमें मिल जाते हैं। यही नहीं, मक्खी द्वारा एक मनुष्यका पाख़ाना दूसरे मनुष्यके भोजनमें जा पहुँचता है।

सारांशमें मक्खीकी यही जीवनी है। गन्दगीमें जन्म लेना और अपनी पहुँच तक सभी जगह उसे फैला देना बस यही उसका काम है। मनुष्यकी यह सबसे बड़ी शत्रु कही जा सकती है, पर यह इसके जानते हुए भी इससे बचनेकी कुछ चिन्ता नहीं करता। अमेरिकाके प्रसिद्ध डा० एल० ओ० हॉवर्डका कहना है कि, '३० से भी ज़्यादा भयंकर बीमारियोंको फैलानेमें मक्खीका विशेष हाथ रहता है।'' डाक्टर और लेखक हमेशा इससे बचनेके लिए कहते आ रहे हैं।

तब हमें इनमें बचावके लिए क्या करना चाहिये; मक्खी इधर-उधर खूब घूमती रहती है। भोजनकी तलाशमें वह

एक दिनमें १३ मील तक उड़ सकती है। एक मील तो उसके लिए मामूली बात है। इससे यह स्पष्ट है कि वह स्थान जहाँ कूड़ा-करकट इकट्ठा किया जावे, आबादीसे बहुत पास न हो। उन्हें कमसे कम एक मील दूर तो रखना ही चाहिए। कूड़ा जमा करनेके अलावा अगर जला दिया जाय तो बहुत ही अच्छा होगा और यदि खाद बनानेका इरादा हो तो ढेरकी काफी हिफाज़त करनी चाहिए। ढेरमें ढीलापन न रहने दिया ताकि उसमें लहवोंका रहना ही न हो सके। ढेरके ऊपर एक पुराना टाट जिसमें कोई छेद न हो तेलमें भिगोकर अगर ढक दिया जाय तो मक्खी अण्डे ही नहीं दे सकती। जानवरोंकी लीद तुरन्त ही उठवा कर ढक्कनदार बर्तनमें बन्द करवा दी जाय, तो यह मसला बहुत कुछ हल हो सकता है। रसोईघर और अस्तबलके किवाड़ जालीदार हों तो और भी अच्छा। रसोईघर और शराबखानोंका कूड़ा ढक्कनदार टिनोंमें रक्खा जाय। सारांश यह कि ऐसे उपाय काममें लायें जाँय जिनसे मक्खीको अण्डा देनेका स्थान ही न मिले और यदि दे भी दें तो उनमें लहवें भूखे मर जाँय। फिर भी यदि कुछ मक्खियाँ होंगई हों तो मक्खी पकड़ काग़ज़ फ़ॉर्मेलिन, फ़्लिट आदि काममें लाये जायं। जिनसे इनका पूरा ही ख़ात्मा हो जाय।

वायुमंडलका रासायनिक गठन

[ले०—श्री बाबूरामजी पालीवाल]

वायुमंडलको हम पृथ्वीको चारों ओरसे घेरे हुये गैसका एक लिफाफा कह सकते हैं। जब यह शान्त होता है तो लोग इसके अस्तित्व पर विश्वास नहीं कर सकते परन्तु जब यह हवाके रूपमें चलता है तब कोई भी इसके अस्तित्व पर अविश्वास नहीं कर सकता है। क्योंकि वे सब घटनायें जिनका कि अध्ययन वायुमंडल-विज्ञानमें किया जाता है वायुमंडलमें ही प्रकट होती हैं। अतः इन घटनाओंके विज्ञानमें स्पष्ट जानकारी प्राप्त करनेके लिये यह आवश्यक है कि यह जान लिया जाय कि वायुमंडल किन-किन वस्तुओंसे मिल कर बना है; उसका अस्तित्व किस ऊँचाई तक है, और किस ऊँचाईपर किस वस्तुको कितनी मात्रा है।

वायुमंडलकी ऊँचाई

वायुमंडल बहुतसी गैसोंका मिश्रण है जो जितनी चाहे उतनी फैल सकती हैं। इसलिये यह स्पष्ट है कि सिद्धान्ततः यह नहीं कहा जा सकता कि वायुमंडलकी ऊँचाई कितनी है। गैसें धीरे-धीरे ऊँचाईके साथ-साथ पतली होती जाती हैं और अन्तमें शून्याकाशकी चरम सीमा तक पहुँच जाती हैं।

पृथ्वीके वायुमंडलमें दो मुख्य सतहें होती हैं जिन्हें ट्रोपोसफीयर और स्ट्रैटोसफीयर कहते हैं।

ट्रोपोसफीयर या अधोमण्डल

ट्रोपोसफीयर पृथ्वीकी सतहसे लेकर लगभग ११ किलोमीटरको ऊँचाई तक होता है। इस भागमें वहन-धाराओं द्वारा गैसोंकी मात्रा जैसी कि निम्नलिखित सूची (संख्या १) में दी गई है वैसी ही बनी रहती हैं। इस भाग में जैसे-जैसे हम ऊपर उठते जाते हैं वैसे ही वैसे वायुमंडलका तापक्रम क्रमशः कम होता जाता है। अब यह देखना है कि इस सतहका वायुमंडल किन-किन वस्तुओंसे मिल कर बना है।

प्रमुख भाग

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, वायु बहुतसी गैसोंका मिश्रण है जिनमेंसे दो प्रधान गैसें नाइट्रोजन और ऑक्सीजन हैं। हाईड्रोजन भी वायुमंडलमें सदैव विद्यमान रहता है परन्तु पृथ्वीके पास इसकी मात्रा बहुत कम होती है। इसके अलावा और भी बहुतसी गैसें हैं जैसे हीलियम, क्रिप्टन, ज़ीनन, आर्गन और नीओन हैं जिन्हें दुष्प्राप्य गैसें कहते हैं। ये गैसें तथा कार्बन डाइऑक्साइड और जल-वाष्प भी वायुमंडलमें विद्यमान होते हैं। यहाँ एक सूची (सं० १) दी जाती है जिसमें पृथ्वी की सतहके पासके वायुमंडलमें विद्यमान भिन्न-भिन्न गैसोंके नाम, उनका अणु-भार और उनकी प्रतिशत मात्रा आयतनसे दी जाती है।

सूची १

गैस	अणुभार	मात्रा प्रतिशत (आयतनसे)
नाइट्रोजन	२८.०२	७८.०६
ऑक्सीजन	३२.००	२०.६०
आर्गन	३९.९	०.९३७
कार्बन डाइ-ऑक्साइड	४४.०	०.२९ (घटता-बढ़ता रहता है)
जल-वाष्प	१८.०२	अनिश्चित (घटता-बढ़ता रहता है)
हाइड्रोजन	२.०२	०.००३३
नीओन	२०.२	०.००१५
हीलियम	४.०	०.०००५
क्रिप्टन	८३.०	०.०००१ (लगभग)
ज़ीनन	१३०.७	०.०००००५ (लगभग
ओज़ोन	४८.०	सूक्ष्मतम

यद्यपि वायुमंडल एक साधारण मिश्रण है, यौगिक नहीं, तब भी पृथ्वीकी सतहके पासके वायुमण्डलमें (केवल इस अपवादके कि जल-वाष्पकी मात्राका अनुपात भिन्न-भिन्न स्थानोंमें भिन्न-भिन्न होता है) सब गैसें तमाम दुनियाँमें एक ही अनुपातमें विद्यमान होती हैं। इसके मुख्यतया दो कारण हैं :—

(१) क्योंकि हवा वायुको एक स्थानसे दूसरे स्थान तक मीलों उड़ा ले जाती है। इस प्रकार वायुमें एक प्रकारके हिला देनेकी क्रिया उत्पन्न हो जाती है, जिससे वायुमण्डलकी भिन्न-भिन्न गैसें एक दूसरेसे मिल जाती है।

(२) क्योंकि गैसें बहुत जल्दी पृथक्-पृथक् हो जाती हैं। इसलिये हवाके न चलने पर यदि कोई अनुपातमें गड़बड़ी हो जाय तो वह बहुत जल्दी मिट जाती है।

ऑक्सीजनकी मात्रा आयतन २०.८१ प्रतिशतसे २१.०० प्रतिशत तक होती है और कार्बन डाइ ऑक्साइडकी ०.०३ से ०.०४ प्रतिशत तक। कार्बन डाइ ऑक्साइडकी मात्रा समुद्रके निकट कुछ अधिक और पेड़ोंके निकट कम होती है और बड़े-बड़े शहरोंमें यह ०.०४ प्रतिशत तक पहुँच जाती है। इसका कारण तो जगत-प्रसिद्ध है कि पेड़ वायुमंडलमेंसे कार्बन डाइ ऑक्साइड खींचते हैं और कार्बन अपने बढ़ावके लिये रख कर ऑक्सीजन बाहर फेंक देते हैं। इसके विपरीत मनुष्य ऑक्सीजन अपने बढ़ावके लिये रखता है और कार्बन बाहर फेंकता है। इस प्रकार साधारणतया तो कार्बन डाइऑक्सइडकी समता ठीक-ठीक बनी रहती है परन्तु बड़े-बड़े शहरोंमें कार्बनकी मात्रा और जङ्गलों और समुद्रोंके निकट ऑक्सीजनकी मात्रा कुछ अधिक होती है। कार्बन डाइऑक्साइडकी मात्रा ०.०७ प्रतिशत तक तो मनुष्योंके लिये हानिकारक नहीं होती इसके ऊपर हानिकारक होजाती है।

अन्य अप्रमुख भाग

वायुमण्डलके सूक्ष्म भाग नाइट्रिक ऐसिड, सलफ्यूरिक ऐसिड, ओज़ोन, कार्बनिक और अकार्बनिक कण हैं। इन सब गैसोंके अलावा वायुमंडलमें आविष्ट कण या आयन होते हैं जो कि भिन्न-भिन्न मात्राओंमें होते हैं और उन्हींके द्वारा वायुमंडलमें बिजली आदि घटनायें उत्पन्न होती हैं। अधिक ऊँचाई पर इनको मात्रा अधिक होती है।

स्ट्रेटोसफीयर या ऊर्ध्वमंडल

लगभग ११ किलोमीटरकी ऊँचाई तकके वायुमण्डल में सूची १ द्वारा दिये गये अनुपातमें भिन्न-भिन्न गैसें होती हैं, लेकिन ११ किलोमीटरसे ऊँचे गैसोंका अनुपात भिन्न है। स्ट्रेटोसफीयरमें जो कि ट्रोपोसफीयरके ऊपर होता है तापक्रम लगभग समान ही रहता है और इसमें धारायें नहीं होतीं। इसलिये गैसें एक दूसरेसे पृथक् हो जाती हैं और भारी गैसें ऑक्सीजन आदि नीचे और हलकी गैसें जैसे हाईड्रोजन, हीलियम आदि ऊपर होती हैं। नीचे एक सूची (सं०२) दी जाती है जिसमें भिन्न-भिन्न ऊँचाइयों पर भिन्न-भिन्न गैसोंकी मात्रा कितनी है दी गई है।

सूची २

भिन्न-भिन्न ऊँचाइयोंपर वायुमंडलकी गठन (प्रतिशत मात्रा-आयतनसे)

ऊँचाई किलो-मीटरमें	गैसें							Total Pressure in mm
	आर्गन	नाइट्रोजन	जल वाष्प	ऑक्सीजन	कार्बन डाइ ऑक्साइड	हाईड्रोजन	होलियम	सम्मिलित वायु-भार मिलीमीटरमें
१४०	—	०·०१	—	—	—	९९·१५	०·८४	०·००४०
१३०	—	० ०४	—	—	—	९९·००	०·९६	०·००४६
१२०	—	०·१९	—	—	—	९८·७४	१·०७	०·००५२
११०	—	० ६७	० ०२	०·०२	—	९८·१०	१·१९	०·००५९
१००	—	२·९५	० ०५	० ११	—	९५·५८	१·३१	०·००६७
९०	—	९·७८	०·१०	०·४९	—	८८·२८	१·३५	०·००८१
८०	—	३२·१८	०·१७	१·८५	—	६४·७०	१·१०	०·०१२३
७०	०·०३	६१·८३	० २०	४·७२	—	३२·६१	०·६१	०·०२७४
६०	०·०३	८१·२२	०·१५	७·६९	—	१०·६८	०·२३	०·०९३५
५०	०·१२	८६·७८	०·१०	१०·१७	—	२·७६	०·०७	०·०४०३
४०	०·२२	८६·४२	०·०६	१२·६१	—	०·६७	०·०२	१·८४
३०	०·३५	८४·२६	०·०३	१५·१८	०·०१	०·१६	०·०१	८·६३
२०	०·५९	८१ २४	० ०२	१८·१०	०·०१	०·०४	—	४०·९९
१५	०·७७	७९·५२	०·०१	१९·६६	०·०२	० ०२	—	८९·६६
११	०·९४	७८·०२	० ०१	२०·९९	०·०३	०·०१	—	१६८·००
५	०·९४	७७ ८९	०·१८	२०·९५	०·०३	०·०१	—	४०५·००
०	० ९३	७७·१४	१ २०	२०·६९	०·०३	०·०१	—	७६० ००

नोट :—इस सूचीमें उन गैसोंकी मात्रा नहीं दी गई है जो वायुमंडलमें बहुत न्यून मात्रामें होती हैं ।

अब वायुमण्डलके अप्रमुख भागोंमेंसे कुछ वस्तुयें ऐसी हैं जिन पर विचार करना आवश्य है, वे जल-वाष्प, रज एवं दूसरी वस्तुओंके कण ओज़ोन और आयन हैं।

जल-वाष्प

वायुमण्डलमें जल वाष्पकी मात्रा कभी ४ प्रतिशतसे अधिक नहीं होती। इसकी मात्रा मौसमके अनुसार घटती-बढ़ती रहती है। वायुमण्डलमें जल-वाष्पका एक विशेष स्थान है क्योंकि इसकी अनुपस्थितिमें पेड़ पौधे, मनुष्य और पशु कोई भी जीवित नहीं रह सकते और वायुमण्डल-विज्ञानमें तो यह एक बड़े महत्वकी वस्तु है क्योंकि मौसमको निश्चित करनेके लिये बहुत-सी चीज़ों मेंसे यह एक मुख्य वस्तु है। इसीके कारण बहुत-सी घटनायें जैसे ओस, पाला, कुहरा, धुन्ध (mist), बादल, वर्षा, ओला और बर्फ आदि होती हैं। जल-वाष्प कणों ही के कारण सूर्यकी किरणोंके उन पर होकर पड़नेसे इन्द्र-धनुष, कुण्डल और परिमण्डल बनते हैं। इसीके कारण क्यूमलोनिम्बस बादल बन कर बादलोंकी गरजन तथा बिजलीकी तड़पन होती है। हम फिर कभी दूसरे लेखमें वायुमण्डलमें विद्यमान जल-वाष्प पर विस्तृत रूपसे प्रकाश डालनेका प्रयत्न करेंगे।

रज एवं दूसरी वस्तुओंके कणः—वायुमण्डलमें कण दो प्रकारके होते हैं—

कार्बनिक और अकार्बनिक।

कार्बनिक कण संख्यामें कम होते हैं और अधिकांश में पेड़ोंके रतुयें (spores) और कीटाणु होते हैं।

अकार्बनिक कणोंकी संख्या बहुत होती है और अधिकतर उसे रज कहते हैं। वायुमण्डलमें होने वाली घटनाओंमें इनका मुख्य हाथ होता है। ज-कण धुन्ध का मुख्य कारण होता है और बादल तथा कुहरेके लिये भी जल-कण रज-कणों ही के ऊपर जमते हैं। यदि वायुमण्डलमें रज-कण न हों तो कुहरा एवं बादल भी न हो। सूर्योदय तथा सूर्यास्तके समयके लाल-पीले रङ्गों तथा गोधूलीके घटित होनेके बहुतसे कारणोंमेंसे वायुमण्डलके रज-कण भी एक कारण हैं। इस प्रकार रज-कण वायुमंडल विज्ञानके बड़े कामकी वस्तु है। अब हमें यह पता लगाना है कि ये रज-कण वायुमण्डलमें आते कहाँसे हैं। इनके वायुमण्डलके आनेमें मुख्य कारण नीचे दिये जाते हैं:—

(१) कुछ रज-कणोंको हवा पृथ्वीसे ऊपर उठा ले जाती है।

(२) कुछ रज-कण ज्वालामुखी पहाड़ोंके फटनेसे वायुमण्डलमें पहुँच जाते हैं। (सुमात्रा और जावाके बीच क्राकाटोआ ज्वालामुखी पर्वतके सन् १८८३ के फटनेसे २० मील ऊँचाई तक रज-कण वायुमण्डलमें फैल गये थे उनके रङ्ग तीन साल तक बराबर तमाम दुनियामें वायुमण्डलमें देखे जा सके थे)।

(३) तारोंके एक दूसरेके पास टूट कर जानेसे जब वे वायुमण्डलमें होकर गुज़रते हैं तब वे कुछ रज-कण वायुमंडलमें छोड़ते जाते हैं।

(४) समुद्रोंसे भापके साथ कुछ नमकके कण वायुमण्डलमें आ जाते हैं। वायुमण्डलमें विद्यमान रज-कण एटकीनके रज-कण गिनने वाले यन्त्र (Aitken's dust counter) द्वारा गिने भी जा सकते हैं। इस यन्त्र द्वारा वायुका तापक्रम कम होता है तो उसमें जलवाष्पको अपने अन्दर जज़्ब कर रखनेकी शक्ति क्षीण हो जाती है और जल-कण रज-कणों पर जमने लगते हैं जिससे वे भारी होकर एक प्लेटके ऊपर धीरे-धीरे बैठ जाते हैं, जिन्हें फिर खुर्दबीन द्वारा गिना जा सकता है। इस प्रकार कई बार करनेसे वायुके समस्त रज-कण गिन लिये जा सकते हैं।

रज-कण गिननेका एक और भी आसान यन्त्र है जिससे भी रज-कण मामूली तौर पर ठीक-ठीक गिने जा सकते हैं। इसे ओवेनका जेट यन्त्र कहते हैं (Owen's get Apparatus)। इस यन्त्रमें रज-युक्त वायुकी धारा माइक्रोस्कोप-स्लाइडके समान किसी काँचके पट पर अति वेगसे गिरने दी जाती है। क्लेदता तथा गतिकी एक अनुकूल स्थितिमें रज-कण शीशे पर जम जाते हैं और उन्हें अणुवीक्षण यन्त्र द्वारा पढ़ लिया जाता है। इन यन्त्रों की सहायतासे निरीक्षण करके यह देखा गया है कि एक घन सेण्टमीटर वायुमें १००,०० तक रज-कण होते हैं और सिगरेटके धुऐं की एक उड़ानमें ४ करोड़ तक रज-कण होते हैं।

ओज़ोन—ओषद्कारक गुणों द्वारा पानी पोटाशियम आयोडाइड और स्टार्चकी लेई द्वारा वायुमण्डलमें उपस्थित ओज़ोन की मात्रा जानी जा सकती है। पृथ्वीके निकटके वायुमण्डलमें ओज़ोनकी मात्रा बहुत कम होती है। साधारणतया इसकी मात्रा $\frac{१}{१०००००}$ होती है परन्तु दिनमें सर्दी-गर्मीके अनुसार इसकी मात्रा घटती-बढ़ती रहती है। ऋतुओंके अनुसार भी इसका घटाव-बढ़ाव होता है। ग्रीष्मकालकी अपेक्षा शीतकालमें ओज़ोनकी मात्रा अधिक होती है।

ऊपरी वायुमण्डलमें ओज़ोनकी मात्रा पृथ्वीके पासके वायुमण्डलसे अधिक नहीं होती है तथापि वायुमण्डल-विज्ञानमें यह एक महत्वपूर्ण वस्तु है। यह सूर्यकी तीव्र पराकासनी किरणोंको रोकता है। यदि वायुमण्डलमें ओज़ोन न होता तो पृथ्वी सूर्यके तापसे बहुत अधिक गरम हो जाती क्योंकि सूर्य की बहुत-सी गर्मीको पृथ्वी तक पहुँचनेसे पहिले ही ओज़ोन अपने अन्दर सोख लेता है। विज्ञान-वेत्ताओंने पता लगाया है कि सूर्यसे निकलने वाली गर्मीको लगभग ६ प्रतिशत ओज़ोन अपने अन्दर सोख लेता है और इसी कारण ऊपरी वायुमण्डलमें जहाँ कि ओज़ोन होता है यानी ५० किलोमीटर पर तापक्रम नीचे की अपेक्षा अधिक होता है।

लिण्डेमान, फेब्री, डावसन् आदि विज्ञान-वेत्ताओंने गत दस-पन्द्रह सालमें ऊपरी वायुमण्डलमें उपस्थित ओज़ोनके विषयमें बहुत कुछ अध्ययन किया है। इन अध्ययनोंसे यह मालूम हुआ है कि ओज़ोनकी औसत ऊँचाई ५० किलोमीटर है लेकिन अभी यह निश्चित नहीं किया जा सका कि इसकी ऊँचाई कम-से-कम और अधिक-से-अधिक क्या है। शीतोष्ण कटिबन्धमें ओज़ोनकी मात्रा प्रतिदिन घटती-बढ़ती रहती है और कभी तो साधारण मात्रासे ५० प्रतिशत तक अन्तर हो जाता है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि ओज़ोनके कम होने और अधिक होनेका वायु-तापक्रम तथा वायु-भारसे अवश्य ही कुछ सम्बन्ध है, और इस विषयमें खोजकी जा रही है। अब तकके अन्वेषणसे यह निष्कर्ष निकला है कि यदि तापक्रम और वायु-भार कम हो तो ओज़ोनकी मात्रा अधिक होगी। इसके विपरीत वायुभार तथा तापक्रम अधिक होनेसे ओज़ोन कम होगा। इसका सम्बन्धक गुणक ०.८० है।

पार्थिव चुम्बकीय दृश्योंसे भी ओज़ोनका कुछ संबन्ध है। चुम्बकीय परिस्थितियोंमें ओज़ोनकी मात्रा अधिक होती है।

ओज़ोन ऋतुके अनुसार भी घटता-बढ़ता रहता है। उष्ण कटिबन्धके बाहर शरद ऋतुमें ओज़ोनकी मात्रा सब से अधिक होती है और ग्रीष्मकालमें सबसे कम, परन्तु उष्ण कटिबन्धमें भीतर कोई खास परिवर्तन नहीं होता। जैसे ही हम विषुवत् रेखासे ध्रुवोंकी ओर चलें तो शरत-ऋतुमें ओज़ोनकी मात्रा बढ़ती हुई मिलेगी और ग्रीष्मकाल में करीब-करीब एक-सी ही रहती है, कोई खास परिवर्तन नहीं होता।

अब यह प्रश्न उठता है कि ऊपरी वायुमण्डलमें ओज़ोन कैसे उत्पन्न होता है और इसका मौसमसे कैसे और क्या सम्बन्ध है? यह प्रश्न अभी पूर्णतया हल नहीं हो सका है। परन्तु विज्ञान-वेत्ताओंका ध्यान इस ओर गया है और आशा है कि निकट भविष्यमें वैज्ञानिक इस सम्बन्धमें एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचेंगे। यद्यपि यह प्रश्न अभी हल नहीं हुआ तब भी कुछ कारणोंकी तरफ संकेत किया गया है जो नीचे दिये जाते हैं:—

(१) पराकासनी किरणों द्वारा ऑक्सीजन अणु परमाणुओंमें परिवर्तित होता है और फिर मिलकर ओज़ोन बन जाता है।

(२) औरोनियाके प्रभाव द्वारा ओज़ोन बनता है। क्योंकि यह देखा गया है कि बिजली द्वारा ओज़ोन पैदा होता है, इससे दूसरा कारण अधिक विश्वसनीय प्रतीत होता है।

इस विषयमें अभी कुछ व्यावहारिक खोज करनेकी आवश्यकता है। अभी तब कोई इस बातको हल नहीं कर सका कि बवंडरके पाछे ओज़ोनकी अधिक मात्रा क्यों होती है।

विद्युन्मय आयन और मुक्त अणाणु—इस शताब्दी के शुरूमें यह बात सर्वमान्य हो चुकी थी कि रेडियोकी लहरोंमें पृथ्वीकी वक्रताको पार करनेकी क्षमता है और वे किसी भी दूरी पर पहुँच सकती हैं। जैसे लन्दनसे भेजा

हुआ समाचार जब भारतमें आता है तो रेडियो द्वारा भेजी हुई लहर एक सीधी रेखामें नहीं चली परन्तु पृथ्वीकी गोलाईके कारण जितनी वक्रता उसमें हैं उतनी वक्रतासे चली। परन्तु यह बात प्रकाश-गतिके सिद्धान्तके विरुद्ध है। कैनेली और हैविसाइडने सन् १६०० में एक साथ ही इस बातकी तरफ संकेत किया था कि ऊपरी वायुमण्डलमें एक यापित सतह है जो विद्युन्मयकणोंसे मिलकर बनी है।

इस यापित सतहके कारण जिसकी कि ऊँचाई लगभग १००० किलोमीटर है रेडियोकी लहर परावर्तित हो जाती है और ऊपर नहीं जा सकती। इस प्रकार ये लहरें केवल १०० किलोमीटरको ऊँचाई तक ही रहती हैं और एकके बाद दूसरे परावर्तन द्वारा अभीष्ट स्थान पर पहुँच जाती हैं।

इस यापित सतहका अस्तित्व एपिलटन, बार्नेट, ब्राइट और टिन्यू तथा दूसरे वैज्ञानिकों द्वारा पूर्णरूपसे सिद्ध हो चुका है। साधारणतया इस सतहकी ऊँचाई १०० किलोमीटर होती है लेकिन ऋतु, समय तथा अक्षांशोंके अनुसार कम-ज़्यादा भी होती रहती है।

वायुमंडलकी बिजलीके अध्ययनसे यह पता चला है कि आयन वायुमंडलमें कम ऊँचाई पर भी यह विद्यमान होती हैं और ज्यों-ज्यों ऊँचाई बढ़ती जाती है त्यों-त्यों इसकी मात्रा भी पहिले तो धीरे-धीरे और फिर तेज़ीसे बढ़ती जाती है और अन्तमें एक अच्छी खासी चालक सतह बन जाती है जो छोटी लहरोंको आवर्जित करती है और बड़ी लहरोंको परावर्तित करती है। इस चालक सतह में जिसे कैनेली हेविसाइड सतह कहते हैं ऋणाणुका घनत्व १० ऋणाणु प्रति घन सेण्टीमीटरके लगभग होता है। यहाँ एक (चित्र १) दिया जाता है जिसमें यह दिखाया गया है कि ऊँचाईके साथ-साथ विद्युत्-मात्रा किस मात्रामें घटती-बढ़ती है।
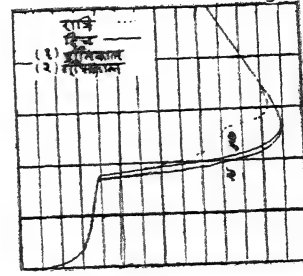
चित्र १—भिन्न भिन्न ऊँचाइयों पर विद्युत मात्रा

इस चालक सतहके अलावा भी ऐपिलटन और ग्रीन ने यह साबित किया है कि २०० किलोमीटरको ऊँचाई पर एक दूसरी यापित सतह है। यह दिनके बहुत थोड़े समय के लिये होता है कि दोनो सतहें साथ हो, लेकिन आमतौर पर एक सतह विद्यमान रहती है। फिर भी दूसरी सतहका अस्तित्व देखा जा सकता है। इसके यह अर्थ हुए कि साधारणतया दो सतहें हैं और जब नीचे वालीका ऋणाणु घनत्व कम हो जाता है तब लहरें इनके नीचेसे होकर निकल जाती हैं और ऊपर वाली सतहसे जाकर परावर्तित होती हैं।

सन् १६२८ में स्टोरमा और वेंडरपोलको ३० सेकंड बाद एक प्रतिध्वनि सुनाई पड़ी। साधारणतया लहर ३० सेकंडमें पृथ्वीकी परिधिके २४० चक्कर काट सकती है। स्टोरमाका कहना है कि इसका कारण सूर्यसे आने वाली एक ऋणाणुकी धारासे लहरका टकराना है। यह धारा लाखों मीलों दूरी पर टोरसकी शक्लमें पृथ्वीके चुम्बकीय क्षेत्र द्वारा मुड़कर एक चालक सतह बनाती है। इसके विपरीत वाण्डर पोल और ऐपिलटनका कहना है कि लहरें कैनेली हेविसाइड सतहको पार नहीं करती वरन् वहाँ एक बोतल सी में भर जाती हैं और फिर थोड़ी देर बाद परावर्तित होती हैं। यह विषय अभी विवादग्रस्त ही है परन्तु आशा की जाती है कि वैज्ञानिक इस पर शीघ्र ही प्रकाश डालेंगे।

—

जीवनका भौतिक आधार

[ले० - श्री जगमोहन]

जीवन एक पहेली है। इस गुत्थीको सुलझानेके लिये प्राचीन कालमें धार्मिक दृष्टिसे विचार किया जाता था और इस सम्बन्धमें बहुतसे वादोंका प्रतिपादन किया गया। परन्तु सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दीमें पाश्चात्य विद्वानोंने धर्म-क्षेत्रको छोड़कर शरीर-क्षेत्रको समीच्य विषय बनाया। अस्तु, इन विद्वानों ने इस जीवन रूपी तत्वके ढूँढ़नेके प्रयत्नमें जीवोंकी चीर-फाड़ प्रारंभ कर दी। इस प्रयासमें उन्हें यह ज्ञात हुआ कि पौधों और जानवरोंके शरीर ऐसे भागोंसे मिलकर बने हैं जिन्हें हम अपनी आँखसे देख सकते हैं। इन भागोंको अंग अथवा अवयव कहते हैं।

जीवोंके परीक्षणमें जीव-शास्त्रज्ञोंने यह बात मालूम कर ली कि प्रत्येक अवयवको शरीरमें कुछ काम करना पड़ता है, मसलन पाँवका काम चलना, आँखका काम देखना, इत्यादि। जिस तरह जानवरोंके शरीरमें भिन्न-भिन्न अवयव होते हैं उसी तरह पौधोंमें भी, जिनके काम पृथक-पृथक होते हैं। बाह्य अंगोंके अतिरिक्त जीवोंमें आभ्यन्तर अंग भी होते हैं, मसलन हृदय, फेफड़े, आमाशय इत्यादि जो शरीरको जीवित रखनेकी क्रियामें संलग्न रहते हैं।

पेचीदे जानवरोंके परीक्षणसे ज्ञात होता है कि किसी व्यक्तिकी प्रत्येक जीवन-क्रिया कई अंगों अथवा इन्द्रियोंके सहयोगसे संपादित होती है। हमें श्वासोच्छ्वासके लिये फेफड़ों नरख़रा और नथुनोंकी आवश्यकता होती है। भोजन पचानेका काम मुँह, आमाशय और अँतड़ियोंमें होता है। इन अवयवोंके साथ कुछ ग्रंथियाँ भी हैं जो भोजन पचानेमें सहायक होती हैं। ऐसे अंगोंके समुदायको जो किसी एक ही कामके संपादनमें समवाय होते हैं संघात कहते हैं।

अंग किस चीज़के बने हुये हैं ?

अंगका ज्ञान प्राप्त कर लेनेके पश्चात् यह स्वाभाविक था कि इस बातकी खोजकी जाय कि अंग किस चीज़के बने हुये हैं। इस खोजमें वैज्ञानिकों ने वर्षों व्यतीत कर दिये। अनायास रॉबर्ट हुक (१६३५-१७०३) एक अंग्रेज़ वैज्ञानिक ने बलूतके वृक्षकी छालके एक टुकड़ेका परीक्षण लेंस और दर्पणके योगकी मददसे किया। उसे ज्ञात हुआ कि वह टुकड़ा छोटे-छोटे ख़ाली संदूकोंसे बना हुआ है। जिनकी दीवारें मोटी हैं। इस छालके टुकड़ेमें और मधु-मक्खीके छत्तेकी रचनामें बहुत सादृश्य पाया गया। रॉबर्ट हुक ने इन संदूकोंका नाम कोष्ठ रक्खा। इसी समय एण्टॉन-वेन ल्यूवेनहॉक (Anton Van Leeuwen hock) (१६३२-१७२३)] हॉलैंडमें और मारसेलो मेलपीघि (Marcello Malpighi (१६२८-१६९४)] इटलीमें और अन्य वैज्ञानिक भी लेंस और दर्पणके योगोंको जाँच कर रहे थे और इन सरल सूक्ष्मदर्शकोंसे प्रत्येक वस्तुका परीक्षण करते थे। इस क्रियामें उन्होंने पौधों और जानवरोंके प्रत्येक अंगका परीक्षण किया तो उन्हें कोष्ठ दिखलाई दिये। ये कोष्ठ भिन्न-भिन्न आकार और आयतनके थे।

चित्र नं० १

सत्रहवीं और अट्ठारहवीं शताब्दियोंके जीव-शास्त्रज्ञ सूक्ष्मदर्शक द्वारा परीक्षित पदार्थोंमें बड़ी अभिरुचि दिखलाने लगे परन्तु वे इन कोष्ठोंकी महत्ताको न समझ सके। वह यह समझते थे कि कोष्ठ पौधों और जानवरोंमें आकस्मिक घटनायें हैं। उनकी धारणा थी कि संभव है कि एक अंगके कोष्ठ गोल, दूसरेके चौकोर हों और तीसरे अंगमें कोष्ठोंका पूर्ण अभाव हो।

कोष्ठोंके संबन्धमें एक विचित्र बात तो यह है कि हुक-ने इनका नामकरण किया, परन्तु वह इनके वास्तविक रूपसे अनभिज्ञ था। मेलपीघि और ल्यूवन हॉक ने हुकसे अधिक देखा परन्तु ये भी कोष्ठोंके वास्तविक रूपको भली-भाँति न देख सके, क्योंकि इनके सूक्ष्मदर्शक काफी बलिष्ट न थे।

लगभग सौ वर्षके उपरान्त वैज्ञानिक इस बातको मानने लगे कि पौधे या जानवरका प्रत्येक अंग कोष्ठका बना हुआ है।

ये कोष्ठ ख़ाली हैं या इनमें कोई पदार्थ मौजूद है ?

ज्यों-ज्यों जीव-शास्त्रज्ञों ने जीवोंकी रचनाके संबन्धमें अधिक खोजकी और उत्तरोत्तर बलिष्ट सूक्ष्मदर्शकका प्रयोग किया उन्हें ज्ञात हुआ कि कोष्ठ ख़ाली नहीं हैं वरन् इनमें एक पदार्थ भरा रहता है। बहुधा इन कोष्ठमें एक पदार्थ स्थानान्तर करता हुआ दीख पड़ा और इस पदार्थको घेरे हुये बहुत पतली दीवार थी। कुछ कोष्ठोंमें दीवार भी मौजूद न थी। शनैः-शनैः जीवाशास्त्रज्ञ इस पदार्थकी महत्ता और दीवारकी निस्सारतासे प्रभावित हुये। जीव-शास्त्रज्ञों ने इस मतको छोड़ दिया कि कोष्ठ केवल ख़ाली संदूक है। वह उसे एक सक्रिय पदार्थका छोटा टुकड़ा समझने लगे। जर्मन वनस्पति-शास्त्रज्ञ ह्यूगो वॉन मॉहल (Hugo Von Mohl) ने इस सक्रिय पदार्थका निरीक्षण पौधोंके कोष्ठोंमें किया और उसने इस पदार्थका नाम मूल-रस रक्खा। यह पदार्थ निर्जीव पदार्थोंमें नहीं होता। हुक कागके कोष्ठोंमें मूल-रस न देख सका क्योंकि ये मृत कोष्ठ थे जिनका मूल-रस विलीन होगया था और अब केवल कोष्ठोंकी दीवारें ही शेष रह गईं थीं। बहुतसे जीवशास्त्रज्ञ मूल रसके निरीक्षणमें लग गये और वे इस नतीजे पर पहुँचे कि सब जीव एक विशेष पदार्थके बने हुये हैं जो स्वयं जीवित है और जिसका नाम जीवन-रस है। जीवन-रस पौधों और जानवरोंमें लगभग एक-सा ही होता है। कई सालके बाद हक्सले (T.H. Huxley) एक अंग्रेज़ जीव-शास्त्रज्ञ ने "जीवनके भौतिक आधार" पर एक निबन्ध सुनाया। इस निबन्धका प्रभाव संसार पर गहरा पड़ा और इस शब्द-समूहकी ख्याति अच्छी हुई, क्योंकि इस शब्द-समूहसे इस विचारको भली-भाँति पुष्टि होती है कि जहाँ जीवन है वहाँ 'जीवन-रस' अवश्य मौजूद होगा। हक्सलेका शब्द समूह "जीवनका भौतिक आधार" 'मूल रस' अथवा 'जीवन-रससे' अधिक सारगर्भित और व्यापक है।

कोष्ठवादका जन्म दाता कौन है ?

एक फ्रांसीसी हकीम और प्रयोगकर्ता हेनरी जोचिम ड्यूट्रोचेट (Henry Joachim Dutrochet) ने कहा था कि पौधे और जानवर कोष्ठों और कोष्ठोंसे बने हुये पदार्थोंसे बने हुये हैं। परन्तु ड्यूट्रोचेट अपने सिद्धान्तके समर्थनमें काफ़ी सबूत न दे सका। अतएव उसका सिद्धान्त मान्य न हो सका। चौदह वर्षके उपरान्त सन् १८३८ और १८३९ में दो जीवशास्त्रज्ञ मेथीएज़ स्लीडन (Matthias Schleiden) और थिओडर स्वान (Theodor Schwann) ने पृथक्-पृथक् इसी सिद्धान्तका निरूपण किया कि प्रत्येक जीव कोष्ठोंका बना हुआ है। इनके वैज्ञानिक कार्यका बहुत आदर हुआ क्योंकि इन दोनों वैज्ञानिकों ने अपने सिद्धान्तके समर्थनमें बहुत-सी बातें पेश कीं। स्लीडन ने इस पहलू पर ज़ोर दिया कि कोष्ठ एक वैयक्तिक जीवन रखता है। उसके विचारानुसार पौधा कोष्ठोंका एक समूह है। प्रत्येक कोष्ठ जीवन-क्रिया करता है और पौधेको सामूहिक जीवन प्रदान करता है।

स्वान ने स्लीडनसे भी अधिक काम किया। एक वैज्ञानिक रिपोर्टके संबन्धमें जिसका शीर्षक "जानवरों और पौधोंकी रचना और वृद्धिके सादृश्य पर सूक्ष्मदर्शकीय खोज" है, उसने कई महत्वशाली विचार प्रकट किये हैं :—

(१) पौधों और जानवरोंको आभ्यन्तरिक रचनामें सादृश्य है।
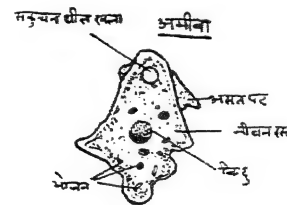
चित्र नं० २

(२) दोनों ही कोष्ठोंके बने हुये हैं और इनके कोष्ठोंकी रचना बहुत समता रखती है। स्वान ने यह भी बतलाया कि पौधों और जानवरोंमें जो अन्य पदार्थ पाये जाते हैं उन्हें कोष्ठ तैयार करते हैं, मसलन शक्कर, निशास्ता। सारा जीव, कोष्ठ और कोष्ठ द्वारा बनाये हुये पदार्थोंसे बना हुआ है।

उसने यह मालूम किया कि कोष्ठ जीवित हैं और ये कुछ क्रियायें भी करते हैं और जीवके संपूर्ण कोष्ठ एक साथ मिलकर काम करते हैं। कोष्ठवादकी यह पहली महत्वशाली व्याख्या है। हुककी खोजके दो सौ वर्ष बाद कोष्ठोंका यथार्थ ज्ञान वैज्ञानिकोंको प्राप्त हुआ। फलतः सन् १८६१ ई० में मेक्स शुल्टज़ (Max Schultz) जर्मन जीव-शास्त्रज्ञ ने कोष्ठकी मीमांसा अच्छी तरह की। उसने साफ़-साफ़ बतला दिया कि कोष्ठ जीवन-रसके छोटे कण हैं।

जीवन-रसके क्या चमत्कार हैं?

जीवन-रसके चमत्कारको देखनेके लिये जीवशास्त्रज्ञों ने अमीबाका निरीक्षण किया। इस छोटेसे जीवमें भी, जो केवल एक कोष्ठका बना हुआ है, जीवनकी आवश्यकीय सभी क्रियायें पाई जाती हैं। यह अपने भोजनको प्राप्त करता है; पचाता है, श्वासोच्छ्वास क्रिया करता है, मलको बाहर निकालता है। यह जीव संकुचन करनेकी शक्ति रखता है। इसमें क्षोभकी भी सामर्थ्य होती है। यह जीव उत्तेजकोंके प्रति प्रतिक्रिया करता है। केवल इतना ही नहीं अमीबा वंशवृद्धि भी करता है। एकसे दो, दोसे चार इस प्रकार यह अपना वंश बढ़ाता है।

सब जीवोंके जीवन-रसमें भी वही शक्तियाँ होती हैं जिनका ज़िक्र अमीबाके संबन्धमें किया गया है। ऐसे जीवके जीवन संबन्धी कार्य भी, जो बहुतसे कोष्ठोंके बने होते हैं, कोष्ठों द्वारा ही होते हैं। जब कोई प्राणी भोजन करता है तो यह अपने कोष्ठोंके लिये ही खाता है। फिर कुछ समयके बाद प्रत्येक कोष्ठ भोजन प्राप्त कर लेता है। जब कोई प्राणी साँस लेता है तो यह अपने कोष्ठोंके लिये ऑक्सीजन प्राप्त करता है क्योंकि कुछ समयके बाद प्रत्येक कोष्ठ ऑक्सीजन प्राप्त करता और कार्बन डाइ ऑक्साइड, पानी और अन्य मल निकालता है जिन्हें वह प्राणी सामूहिक रूपसे बाहर निकालता है। संक्षेपमें हम कह सकते हैं कि प्रत्येक जीवित कोष्ठ ऐसे जीवन संबन्धी कार्योंको करता है जो जीवके विशेष गुण हैं और जिनके कारण हम सजीव और निर्जीव पदार्थोंके भेदको समझ सकते हैं। यह गुण पौधोंके कोष्ठोंमें भी पाये जाते हैं।

बहु कोष्ठीय जीवोंमें कुछ कोष्ठ अन्य कोष्ठोंकी अपेक्षा जीवन-सम्बन्धी कार्योंके अतिरिक्त कुछ विशेष कार्य भी अधिक तीव्रता और कार्य-पटुतासे करते हैं। ग्रंथि-कोष्ठ अन्य कोष्ठोंकी अपेक्षा अधिक तीव्रतामें रस-स्राव करते हैं। स्नायु-कोष्ठ अधिक कार्य-पटुतासे संकुचन करते हैं और तन्तु-कोष्ठ आवेगोंको तेज़ीसे ले जाते हैं। अवयवोंकी रचनामें भिन्नता होती है। एक ही अंगमें भिन्न-भिन्न प्रकारके कोष्ठ पाये जाते हैं। प्रत्येक प्रकारके कोष्ठ क्रमसे समूहोंमें पाये जाते हैं। ऐसे कोष्ठोंके समूहको जो किसी एक ही किस्मका विशेष कार्य करते हैं कोष्ठ-पुंज कहते हैं। यदि भुजाके कोष्ठका निरीक्षण किया जाय तो ज्ञात होगा कि भुजाका बाह्य भाग त्वचासे ढका हुआ है जिसमें त्वचाके कोष्ठ होते हैं जिनका काम रक्षा करना है। इन कोष्ठोंके नीचे उसाके कोष्ठ होते हैं जो आघातको सहन करने और भोजन संग्रहको क्षमता रखते हैं, फिर मांसपेशियोंमें जो स्नायु कोष्ठ होते हैं उनमें संकुचनकी विशेषता होती है, भुजाके अन्दर हड्डियाँ होती हैं जिनमें हड्डियोंके कोष्ठ होते हैं जिनका काम सहारा देना है। अस्तु, कार्यकी विशेषताके साथ-साथ कोष्ठोंके आकार भी भिन्न-भिन्न होते हैं। परन्तु कोष्ठ कितना विशिष्ट क्यों न हो उसे जीवन सम्बन्धी बुनयादी क्रियायें अवश्य करनी होगी। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि पेचीदे प्राणियोंमें प्रत्येक कोष्ठ एक कोष्ठीय जीवोंकी भाँति एक स्वतन्त्र जीवित पदार्थ है। जीव-शास्त्रज्ञ उच्च श्रेणीके पौधों और जानवरोंके कोष्ठकी तुलना किसी स्वतन्त्र एक कोष्ठीय पौधे या जानवरसे नहीं करता। यह बात अब मान ली गई है कि एक कोष्ठीय जीव सादा कोष्ठसे अधिक पेचीदा है। इसलिये तुलना करते समय एक कोष्ठीय जीव बहु-कोष्ठीय जीवके समान माना जाता है।

जीवन-रसकी रचनाका वास्तविक रूप क्या है?

जब चीज़ें किसी द्रवमें घुल जाती हैं मसलन शक्कर पानीमें, तो घुले हुये पदार्थके कण तलीमें नहीं बैठते। इस द्रवको घोल कहते हैं। इसके विपरीत जब पानीमें निशास्ता डाला जाता है तो उसके कण बरतनकी तलीमें बैठ जाते हैं। इनके अतिरिक्त ऐसे भी पदार्थ हैं जिन्हें जब पानीके साथ मिलाया जाता है तो उनके कण इन दोनों किस्मके कणोंके बीचके बनते हैं अथवा यों कहिये कि यह कण निशास्ताके

कणोंसे छोटे और शक्करके कणोंसे बड़े होते हैं। यह निशास्ताके कणोंके समान तलीमें नहीं बैठते और न वास्तविक घोलकी तरह ही क्रिया करते हैं। यह कण द्रवमें अधर तैरते रहते हैं। इस मिश्रणको घोल + अघोल = घोलाघोल (colloid) कहते हैं। घोलाघोल कई तरहसे बनते हैं। जब ठोस कण द्रवमें अधर तैरते हैं (ज़िलेटीनका फालूदा), गैस कण द्रवमें अधर तैरते हैं (सोडावाटरका फ़ेन), गैस कण ठोसमें (डबल रोटी) द्रव कण गैसमें (कुहरा) अथवा जब ठोस कण गैसमें तैरते रहते हैं (धुँआ) घोलाघोल और घोलमें एक अन्तर यह है कि जब घोलाघोल गरम किये जाते हैं अथवा इन पर रासायनिक क्रिया की जाती है तो इनमें असाधारण परिवर्तन होते हैं। जब ज़िलेटीनके फ़ालूदे (Gelatin dessert) को ठंडा किया जाता है तो यह ठोस हो जाता है। अंडेकी सफेदी भी जब गरमकी जाती है तो ठोस हो जाती है।

घोलाघोलके सम्बन्धमें एक दिलचस्प और विशेष बात यह है कि एक ही घोलाघोल में बहुतसी चीज़ें होती हैं और बहुतसे पदार्थ जो इसमें मिले होते हैं अलग किये जा सकते हैं। इनके अलग करनेसे दूसरे पदार्थों पर कुछ असर नहीं होता। इसका कारण यह है कि घोलाघोलके मिश्रणमें जो पदार्थ मौजूद होते हैं वे एक दूसरेसे बहुत पतली झिल्ली द्वारा पृथक्-पृथक् रहते हैं। अस्तु, घोलाघोल-के छोटे भागमें उपरोक्त सब मिश्रण हो सकते हैं (ठोस द्रवमें, गैस द्रवमें, इत्यादि) और उनके साथ घोल भी हो सकते हैं और प्रत्येक अपनी-अपनी प्रणाली पर क्रिया करते हैं जिसका प्रभाव दूसरे पर नहीं पड़ता। इस किस्म के पदार्थमें एक छोटेसे कणकी क्रिया निकटस्थ कणसे सर्वथा भिन्न हो सकती है। परन्तु घोलमें यह बात नहीं पाई जाती।

जब जीव-शास्त्रज्ञोंने रसायनज्ञोंसे घोलाघोलके गुणोंका ज्ञान प्राप्त किया और जब उन्होंने घोलाघोलके परीक्षणकी भाँति जीवन-रसका परीक्षण किया तो उन्हें ज्ञात हुआ कि वे अत्यन्त पेचीदा घोलाघोलका सामना कर रहे हैं। यद्यपि यह संभव नहीं है कि जीवन-रसके गुणोंका स्पष्टीकरण किया जा सके तथापि यह सब मानते हैं कि क्षोभ, वृद्धि, रस-स्राव और अन्य गुण जीवन-रसकी बस पेचीदी रचनाका नतीजा है। यह ज्ञान कि जीवन-रस घोलाघोल है इस बातको स्पष्ट करता है कि गरम किया हुआ अथवा रँगा हुआ जीवन-रस अपनी रचनाका वास्तविक चित्र प्रदर्शित नहीं करता।

जीवन-रसमें कौनसे पदार्थ मौजूद हैं ?

जब जीव-शास्त्रज्ञोंने प्रारंभिक सूक्ष्मदर्शकोंसे जीवन रसका निरीक्षण किया तो उन्हें यह ख़ाकी रंगके एक घने द्रवके समान दिखाई दिया जिसमें छोटे-छोटे कण और अन्य रचनायें भी दिखाई दीं। जब सूक्ष्मदर्शककी उन्नति हुई और जीवन-रसके रँगनेके तरीक़े खोज द्वारा मालूम हुये तो जीवन-रसकी रचनाका गहरा निरीक्षण किया जा सका। जीवन-रसके परीक्षणके लिए उसे मारनेकी भी
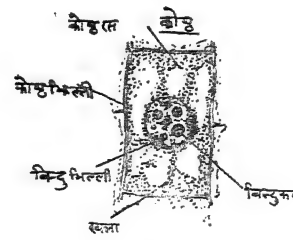
चित्र नं० ३
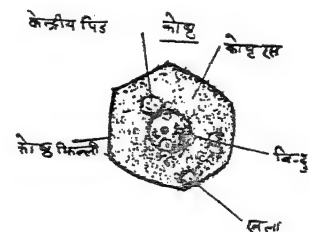
चित्र नं० ४

आवश्यकता हुई। अस्तु, यक़ीनके साथ नहीं कहा जा सकता कि मृत और रङ्गीन जीवन-रसमें जो पदार्थ पाये जाते हैं वे जीवित जीवन रसमें भी होते हैं। जीवन-रसमें पानी उसके वजनका प्रतिशत होता है। पानीमें बहुत-सी किस्म के लवण, शक्कर और अन्य पदार्थ घुले रहते हैं। पानी, जीवन-रससे सर्वाङ्गमें अन्य बहुतसे पेचीदे पदार्थों सहित, फैला रहता है। इन पदार्थोंमें प्रोटीन, चरबी और कुछ

खनिज पदार्थ भी हैं जो पानीमें घुलनेकी क्षमता नहीं रखते। इन पदार्थोंमें प्रोटीन सबसे प्रधान हैं। शक्कर और निशास्ता कोष्ठोंमें संचित पदार्थोंके रूपमें पाये जाते हैं।

जीवन-रसमें कौनसे तत्व पाये जाते हैं ?

बहुत-सी किस्मोंके कोष्ठोंके जीवन-रसका विश्लेषण करनेसे रसायनज्ञोंने मालूम किया है कि जीवन-रसमें नौ तत्व पाये जाते हैं। ये तत्व ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, हाइ-ड्रोजन, कार्बन, गंधक, फॉसफोरस, लोहा, पोटैसियम और मेगनीसियम हैं। जीवन-रसमें अन्य भी तत्व थोड़ी मात्रामें पाये जाते हैं, परन्तु जिन तत्वोंका उपरोक्त वर्णन किया गया है वे सब जीवोंमें पाये जाते हैं और जिनके बिना कोई जीव नहीं बन सकता। परन्तु यह तत्व यौगिकोंके रूपमें पाये जाते हैं।

जीवन-रसके कोष्ठोंकी रचना

कोष्ठ बहुतसे आकारके होते हैं। परन्तु सब कोष्ठोंमें लम्बाई, चौड़ाई और गहराई पाई जाती है। एक तरफ तो एक ही जानवर अथवा पौधेमें भिन्न-भिन्न आकारके कोष्ठ पाये जाते हैं, एक भागमें गोल, दूसरेमें लम्बे और तीसरेमें चपटे। दूसरी तरफ़ ऐसे विभिन्न जानवरोंमें भी जैसे केंचुआ और कुत्ता कुछ प्रकारके कोष्ठोंकी समता पाई जाती है। कोष्ठोंका आकार कार्यानुसार हुआ करता है, न कि जानवरों और पौधोंके वर्गानुसार। कोष्ठमें तीन प्रधान भाग होते हैं—

(१) कोष्ठका पिंड जीवन-रसका बना होता है जिसे कोष्ठ-रस कहते हैं।

(२) कोष्ठको घेरे हुये एक झिल्ली होती है जिसे कोष्ठ-झिल्ली कहते हैं। यह भी कोष्ठ-रसकी बनी होती है।

(३) कोष्ठके केन्द्रमें एक विन्दु होता है जिसके जीवन-रसको विन्दु-रस कहते हैं।

कोष्ठोंमें अन्य रचनायें भी होती हैं। बहुतसे कोष्ठोंमें विशेषकर पौधोंके कोष्ठोंमें एक निर्जीव दीवार होती है जो कोष्ठ-झिल्लीके बाहर मौजूद होती है। ये दीवारें विभिन्न प्रकारके कोष्ठोंमें भिन्न-भिन्न हुआ करती हैं। पौधोंमें यह दीवार सेलूलोज़ की बनी होती है। जब जानवरोंके कोष्ठों को घेरे हुये झिल्ली होती है तो यह एक पेचीदा पदार्थकी बनी होती है जिसे चिटिन (chitin) कहते हैं। यह वह पदार्थ है जिसके बाल और नाखून बने होते हैं जो त्वचाके कोष्ठोंकी निर्जीव कोष्ठ झिल्लीके समूह हैं। कोष्ठ-दीवारें कोष्ठ-पिंडको सहारा देती हैं और उनकी रक्षा करती हैं। इसके कारण जीवन-रसमें पदार्थोंके प्रवेश करने और निकलनेमें कोई बाधा नहीं वरन् कोष्ठ-झिल्ली सी अभि-सरणका मार्ग बनती है।

कोष्ठ-पिंडके कोष्ठ-रसमें बहुत-सी रचनायें मौजूद होती हैं जिनमेंके कुछ कोष्ठके जीवनमें प्रधान भाग लेती हैं। इनमेंसे एक हरित्कण हैं जो जीवन-रसके छोटे-छोटे पिंड हैं। यह कारबोहायड्रेट्स बनाते हैं क्योंकि इनमें हरित द्रव्य पाया जाता है। पौधोंके कोष्ठका खला (vacuole), कोष्ठ जल से भरा रहता है जिसमें बहुत से पदार्थ घुले रहते हैं। बहुधा जानवरोंके कोष्ठोंमें केन्द्रीय पिंड होते हैं जो कोष्ठ विभाजनमें सहायक होते हैं। कुछ पौधे भी ऐसे हैं जिनसे कोष्ठोंमें केन्द्रीय पिंड पाये जाते हैं।
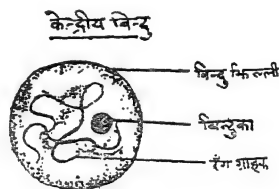
चित्र नं० ५

केन्द्रीय विन्दुका संगठन

भाँति-भाँतिके कोष्ठोंके केन्द्रीय विन्दुओंमें कोष्ठ पिंडों-की अपेक्षा अधिक समता पाई जाती है। केन्द्रीय विन्दुओं-के आकारमें बहुत थोड़ा अन्तर होता है और आभ्यन्तरिक संगठनमें लगभग पूर्णतः समानता होती है। प्रत्येक केन्द्रीय विन्दुमें विन्दु-झिल्ली होती है जो उसे कोष्ठ पिंडसे अलग रखती है। इसमेंसे पदार्थ अभिसरण द्वारा उसी तरह गुजरते हैं जिस तरह कि कोष्ठ-झिल्लीसे। विन्दु-रस, जीवन-रसकी भाँति एक पेचीदा घोलाघोल है। इसमें कुछ ऐसे पदार्थ भी होते हैं जो उसके घेरने वाले कोष्ठ-रससे भिन्न होते हैं।

परन्तु केन्द्रीय विन्दुमें एक विचित्र पदार्थ होता है जो बाक़ीके जीवन-रसमें नहीं होता। कभी तो यह जालकी भाँति फैला-सा-दिखाई देता है मगर वास्तवमें यह कणोंके रूपमें फैला रहता है। प्रत्येक कोष्ठके जीवन-कालमें ही यह पदार्थ अपने आकारको बदलता है परन्तु किसी ही आकारमें क्यों न हो यह कुछ प्रकारके रंगोंसे ऐसा रँगा जाता है कि आसानीसे पहचाना जा सकता है। रंग-ग्रहण करनेके गुणके कारण ही इसका नाम रंग-ग्राहक रक्खा गया है। यह पदार्थ केन्द्रीय विन्दुके विभाजनके समय और प्रजनन क्रियामें भाग लेता है। निस्संदेह यह कोष्ठका मुख्य पदार्थ है।

बहुधा केन्द्रीय विन्दुमें एक छोटा-सा-पिंड पाया जाता है। इसको विन्दुका कहते हैं। बिन्दुका रंग-ग्राहकका बना हुआ नहीं होता परन्तु यह रंग-ग्राहकको रँगने वाले रंगोंको ग्रहण कर लेता है और रंग-ग्राहकसे भी अधिक गहरा दिखाई पड़ता है। इसका काम पूर्ण रूपसे ज्ञात नहीं हुआ है।

"परमाणुके रहस्य"

(ले०—प्रोफ़ेसर रघुबीरसिंह, कोल्हापुर)

जिज्ञासा मनुष्यका स्वाभाविक गुण है और बहुत कुछ ज्ञानकी वृद्धि इसीके कारण हुई है। मनुष्य अपने चारों ओर सैकड़ों चीज़ें देखता है और उसके हृदयमें यह जाननेकी इच्छा उत्पन्न होती है कि क्या वस्तुओंका गुण वास्तवमें वही है जो नेत्रोंको दिखाई देता है या उसमें कुछ रहस्य छिपा हुआ है। उदाहरणार्थ यदि हम एक लकड़ीका टुकड़ा, जो देखनेमें चिकना और समान मालूम पड़ता है, लें तो क्या हमारा यह समझना ठीक होगा कि उसके टुकड़े करने पर उस लकड़ीका गुण और स्वभाव वही रहेंगे जो पहले उसमें मौजूद थे। लकड़ी के बजाय मान लीजिये हम एक सेर नमककी ढेली लें और इसके गुण और स्वभावकी परीक्षा करें तो हमें ज्ञात होगा कि वह चखनेमें नमकीन होता है और पानीमें आसानीसे घुल जाता है। उसमें कोई गन्ध नहीं होती, इत्यदि अनेक गुण होते हैं। इस ढेलीके हम दो भाग करें तो प्रत्येक भागमें हम वही गुण पायेंगे जो प्रथम ढेलीमें थे। इन भागोंके फिर और न्यून भाग करें तो वही बात मिलेगी।

अब प्रश्न उठता है कि कहाँ तक ढेलीके भाग कर सकते है टुकड़ेके आकार और तोलमें विभाजित करने से अन्तर होता जायगा। छटाँकसे आधी छटाँक और आधी छटाँकसे एक तोला, इस प्रकार नमककी ढेलीमें कमी होती जायगी। पाठक कहेंगे कि नमककी ढेली पीसकर बहुत छोटे भागोंमें विभाजित की जा सकती है। नमक मोटा भी पिसता है और बारीक भी। मान लीजिये नमकको इतना बारीक पीसे जितना सम्भव हो और बारीक पिसे हुये नमकका इतना छोटा कण लें जिसे हमारी आँख देख सकती है तो भी उस कणके गुण और स्वभाव वैसे ही रहेंगें जैसे हम पहले प्रथम ढेलेमें पाये थे। यद्यपि एक सेरमें ऐसे कणोंकी संख्या लाखसे भी अधिक होगी किन्तु वैज्ञानिकोंके लिये यह कण सबसे छोटे नहीं। उन्होंने कुछ यंत्रों और सिद्धान्तोंकी। सहायतासे न्यूनसे न्यून भागोंकी खोज निकाली है। हमारा जहाँ तक बस चला था हमने नमककी ढेलीके न्यूनतम भाग किये थे किन्तु वैज्ञानिकोंका कहना है कि उस पिसे हुये नमकके कणोंके भी करोड़से भी अधिक न्यून भाग किये जा सकते हैं और उस छोटेसे छोटे भागको वे अणु कहते हैं। अणु किसी भी पदार्थका वह न्यूनसे न्यून भाग कहलाता है जिसमें मूल पदार्थके गुण और स्वभाव मौजूद हों। अणु इतना छोटा होता है कि सूक्ष्मदर्शक यंत्र द्वारा भी नहीं देखा जा सकता। हम उसकी केवल कल्पना कर सकते हैं।

अणुकी कल्पना

यदि हम पानीकी एक छोटी बूँद लें तो इस बूँदके अन्दर अणुओंकी संख्या करोड़ों पर पहुँच जायगी। यदि कल्पनामें हम इस बूँदको बड़ा करे और बढ़ते बढ़ते इस बूँद-का आकार पृथ्वीके आकारके बराबर हो जाय तो उसके अन्दरका अणु बढ़कर आकारमें टेनिसकी गेंदके सामान मालूम पड़ेगा। इससे यह अर्थ निकला कि जो पृथ्वीके आकार और पानीके

परन्तु केन्द्रीय विन्दुमें एक विचित्र पदार्थ होता है जो बाक़ीके जीवन-रसमें नहीं होता। कभी तो यह जालकी भाँति फैला-सा-दिखाई देता है मगर वास्तवमें यह कणोंके रूपमें फैला रहता है। प्रत्येक कोष्ठके जीवन-कालमें ही यह पदार्थ अपने आकारको बदलता है परन्तु किसी ही आकारमें क्यों न हो यह कुछ प्रकारके रंगोंसे ऐसा रँगा जाता है कि आसानीसे पहचाना जा सकता है। रंग-ग्रहण करनेके गुणके कारण ही इसका नाम रंग-ग्राहक रक्खा गया है। यह पदार्थ केन्द्रीय विन्दुके विभाजनके समय और प्रजनन क्रियामें भाग लेता है। निस्संदेह यह कोष्ठका मुख्य पदार्थ है।

बहुधा केन्द्रीय विन्दुमें एक छोटा-सा-पिंड पाया जाता है। इसको विन्दुका कहते हैं। बिन्दुका रंग-ग्राहकका बना हुआ नहीं होता परन्तु यह रंग-ग्राहकको रँगने वाले रंगोंको ग्रहण कर लेता है और रंग-ग्राहकसे भी अधिक गहरा दिखाई पड़ता है। इसका काम पूर्ण रूपसे ज्ञात नहीं हुआ है।

"परमाणुके रहस्य"

(ले०—प्रोफ़ेसर रघुबीरसिंह, कोल्हापुर)

जिज्ञासा मनुष्यका स्वाभाविक गुण है और बहुत कुछ ज्ञानकी वृद्धि इसीके कारण हुई है। मनुष्य अपने चारों ओर सैकड़ों चीज़ें देखता है और उसके हृदयमें यह जाननेकी इच्छा उत्पन्न होती है कि क्या वस्तुओंका गुण वास्तवमें वही है जो नेत्रोंको दिखाई देता है या उसमें कुछ रहस्य छिपा हुआ है। उदाहरणार्थ यदि हम एक लकड़ीका टुकड़ा, जो देखनेमें चिकना और समान मालूम पड़ता है, लें तो क्या हमारा यह समझना ठीक होगा कि उसके टुकड़े करने पर उस लकड़ीका गुण और स्वभाव वही रहेंगे जो पहले उसमें मौजूद थे। लकड़ी के बजाय मान लीजिये हम एक सेर नमककी ढेली लें और इसके गुण और स्वभावकी परीक्षा करें तो हमें ज्ञात होगा कि वह चखनेमें नमकीन होता है और पानीमें आसानीसे घुल जाता है। उसमें कोई गन्ध नहीं होती, इत्यदि अनेक गुण होते हैं। इस ढेलीके हम दो भाग करें तो प्रत्येक भागमें हम वही गुण पायेगें जो प्रथम ढेलीमें थे। इन भागोंके फिर और न्यून भाग करें तो वही बात मिलेगी।

अब प्रश्न उठता है कि कहाँ तक ढेलीके भाग कर सकते है टुकड़ेके आकार और तोलमें विभाजित करने से अन्तर होता जायगा। छटाँकसे आधी छटाँक और आधी छटाँकसे एक तोला, इस प्रकार नमककी ढेलीमें कमी होती जायगी। पाठक कहेंगे कि नमककी ढेली पीसकर बहुत छोटे भागोंमें विभाजित की जा सकती है। नमक मोटा भी पिसता है और बारीक भी। मान लीजिये नमकको इतना बारीक पीसे जितना सम्भव हो और बारीक पिसे हुये नमकका इतना छोटा कण लें जिसे हमारी आँख देख सकती है तो भी उस कणके गुण और स्वभाव वैसे ही रहेगें जैसे हम पहले प्रथम ढेलेमें पाये थे। यद्यपि एक सेरमें ऐसे कणोंकी संख्या लाखसे भी अधिक होगी किन्तु वैज्ञानिकोंके लिये यह कण सबसे छोटे नहीं। उन्होंने कुछ यंत्रों और सिद्धान्तोंकी। सहायतासे न्यूनसे न्यून भागोंकी खोज निकाली है। हमारा जहाँ तक बस चला था हमने नमककी ढेलीके न्यूनतम भाग किये थे किन्तु वैज्ञानिकोंका कहना है कि उस पिसे हुये नमकके कणोंके भी करोड़से भी अधिक न्यून भाग किये जा सकते हैं और उस छोटेसे छोटे भागको वे अणु कहते हैं। अणु किसी भी पदार्थका वह न्यूनसे न्यून भाग कहलाता है जिसमें मूल पदार्थके गुण और स्वभाव मौजूद हों। अणु इतना छोटा होता है कि सूक्ष्मदर्शक यंत्र द्वारा भी नहीं देखा जा सकता। हम उसको केवल कल्पना कर सकते हैं।

अणुकी कल्पना

यदि हम पानीको एक छोटी बूँद लें तो इस बूँदके अन्दर अणुओंकी संख्या करोड़ों पर पहुँच जायगी। यदि कल्पनामें हम इस बूँदको बड़ा करे और बढ़ते बढ़ते इस बूँद-का आकार पृथ्वीके आकारके बराबर हो जाय तो उसके अन्दरका अणु बढ़कर आकारमें टेनिसकी गेंदके सामान मालूम पड़ेगा। इससे यह अर्थ निकला कि जो पृथ्वीके आकार और पानीके

बूँदमें अनुपात है वही टेनिसकी गेंदके और एक पानीके अणु के बीचमें है। इससे पाठक समझ सकते हैं कि अणुके आकारकी कल्पना करना भी सहज नहीं है।

यद्यपि अणु इतना छोटा होता है किन्तु इस अणुको भी विभाजित कर सकते हैं। यह अणु जब विभाजित किया जा सकता है तो इसके विभाग अपने मूल पदार्थोंके गुणों और स्वभावको छोड़ देते हैं जब। नमकके अणुके भाग किये जाते तो एक अणुके ये भाग होते हैं। यह विभाग दो नवीन पदार्थ सोडियम और क्लोरीन नामके होते हैं।

सोडियम और क्लोरीनके गुण और स्वभाव नमकसे बिल्कुल भिन्न हैं। सोडियम एक धातु है और क्लोरीन एक गैस। अणुके भागोंको परमाणु नाम दिया गया है।

अणु और परमाणुओं पर खोज करनेसे यह फल प्राप्त हुआ है कि पृथ्वीके जितने पदार्थ हैं वे मूलमें ९२ पदार्थों से बने सिद्ध किये जा सकते हैं। इन ९२ पदार्थोंका नाम वैज्ञानिकोंने * तत्व रक्खा है। इन तत्वोंके मेलसे जो पदार्थ बनते हैं उन्हें यौगिक कहते हैं।

तत्व और यौगिक:— लोहा, ताँबा, सोना, चाँदी, पारा तत्व हैं और जल, दूध, घी, नमक, लीलाथोथा, नौसादर यौगिक हैं। अधिकतर खानेकी वस्तु और पहिननेके कपड़े यौगिक ही होते हैं। कार्बन नामके तत्वकी अधिकता बहुत है। कार्बनको साधारण भाषामें कोयला कह सकते हैं। इससे पाठक यह न समझें कि दूध, घी, खाते समय वे कोयला खाते हैं। ऊपर बतलाया गया है कि परमाणुओं के मिलनेसे अणु बनता है। यौगिकके अणु तत्वोंके परमाणुओंसे बिल्कुल भिन्न होते हैं। नमक सभी खाते हैं और वह शरीरके लिये अत्यन्त आवश्यक है किन्तु उन तत्वोंका जिनका वह बना हुआ है कुछ अजीब ही गुण हैं। सोडियम हवामें अपने आप जलने लगता है। क्लोरीन नामका एक दूसरा तत्व एक विषैली गैस है जिसमें मनुष्य रह नहीं सकता। हीरा भी एक तत्व है जो कार्बन तत्वका दूसरा स्वरूप है। कैसी विचित्र बात है कि वैज्ञानिक हीरे और कोयलेको एक ही समझता है।

प्रारम्भमें वैज्ञानिकोंका यह विचार था कि परमाणुके और छोटे टुकड़े नहीं हो सकते। परन्तु प्रयोग द्वारा कुछ ऐसी बातोंका पता लगा कि वैज्ञानिकोंको अपनी राय बदलनी पड़ी। उन प्रयोगोंमें विशेष उल्लेखनीय प्रयोग थे (१) एक नलीमें कम दबाव वाली गैस भर दी जाय और विद्युत्-धारा उसमें प्रवेश कराई जाय (२) किरण चित्रण (३) रश्मि-शक्तित्व।

सर जे० जे० टामसन, विलियम क्रुक्स इत्यादि अनेक वैज्ञानिकोंने इस बात पर प्रयोग किये थे कि जैसे ताँबेके तारोंमें आसानीसे बिजली बह सकती है उसी प्रकार क्या हवामें भी बिजली बह सकती है। वैसे तो साधारणतया हवामें बिजलीकी धाराका बहना कठिन है। अतः उन्होंने हवाका दबाव कम करनेका प्रयत्न किया कि कम दबाव वाली हवा पर बिजलीका क्या असर पड़ सकता है। जब दबाव यहाँ तक कम कर दिया गया कि वह शून्यके बराबर-सा हो गया तो उनको कुछ सफलता प्राप्त हुई और हवाके द्वारा बिजलीको वे प्रवेश करा सके। केवल बिजली ही नहीं बही, किन्तु ऋणोद परसे एक अजीब प्रकारके यतन उत्पन्न होते हुये पाये गये। सबसे अनोखी यह बात थी कि नलीके अन्दर कोई भी गैस (हाइड्रोजन; ऑक्सीजन, क्लोरीन इत्यादि) क्यों न हो हर एकमेंसे एक ही प्रकारके पवन निकलते थे। इसका वैज्ञानिकोंने यह परिणाम निकाला कि यवन ही एक तत्वके आवश्यक भाग हैं और इन यवनका नाम उन्होंने ऋणाणु रक्खा। इन ऋणाणुमें ऋण संचार होता है और मात्रामें यह सबसे हल्की गैस हाइड्रोजनके अणुका $\frac{१}{१८००}$ वाँ भाग होता है।

---

* हिन्दू दार्शनिक शास्त्रमें ऐसा वर्णन है कि विश्वके सब पदार्थ मूलमें पाँच तत्वों (पृथ्वी, आकाश, जल, वायु और अग्नि) से बने हैं। परन्तु आजकलके वैज्ञानिकोंका विचार है कि इन तत्वोंकी संख्या ९२ है। कुछ वैज्ञानिकोंका ऐसा भी विचार रहा है कि ९२ तत्व भी एक ही तत्वसे निकले हैं और वह एक तत्व भी पदार्थ नहीं किन्तु विद्युत्के दो भाग धन और ऋण विद्युत हैं। यह जो हम सब सृष्टिके खेल देखते हैं वे केवल एक तत्वके भिन्न-भिन्न रूप हैं। इस प्रकार इस क्षेत्रमें भी वैज्ञानिकोंने ऊपरी भिन्नतामें एकताके दर्शन किये हैं।

किरण-चित्रण

बहुत लोगोंने आतिशबाज़ी देखी होगी उसमें तरह-तरहके रङ्ग पैदा होते हैं। इन रङ्गोंका यह कारण है कि पदार्थ जब आगमें रक्खे जाते हैं तब गरम होने पर उनमेंसे प्रकाश पैदा होता है। प्रत्येक तत्वका प्रकाश उसी तत्वके ही लिये विशेष होता है। उदाहरणार्थ सोडियमका प्रकाश पीले रङ्गका; ताँबेका हरा, स्ट्रांशियमका लाल होता है। विज्ञानवेत्ता केवल प्रकाशके रङ्ग पर ही निर्भर नहीं रहे किन्तु उन्होंने प्रकाशको लहरकी लम्बाईको किरण-चित्रण मापक एक यंत्र द्वारा नापा है। इस लहरकी लम्बाई नापनेका इतना भारी महत्व है कि यदि कोई तत्व किसी ढेरमें बहुत कम मात्रामें यानो करोड़ोंमें एकके अनुपातमें हो तो भी उसका किरण-चित्र हम ले सकते हैं। जिस प्रकार गवैया ध्वनि सुनकर सुरको पहिचान लेता है। उसी प्रकार वैज्ञानिक प्रकाशको देखकर तत्वको पहचान लेता है। इसी विद्या द्वारा वे इस बातका पता चला सके हैं कि सूर्य, चाँद, गुरुमें कितने प्रकारके तत्व मौजूद हैं। इस समय वैज्ञानिकोंकी यह सम्मति है कि परमाणुओंके अन्दर जब ऋणाणु उछलता-कूदता है तब उसमेंसे प्रकाशकी लहर निकलती है। लहरकी लम्बाई और ऋणाणुकी परमाणुके अन्दरकी स्थितिमें जो सम्बन्ध रहता है उसे भी उन्होंने ढूँढ़ निकाला है। इस प्रकार किरण-चित्रण द्वारा वैज्ञानिकोंने इस बातका पता लगाया है कि किसी परमाणुमें ऋणाणु कितने हैं तथा किस प्रकार वे स्थित हैं।

रश्मि शक्तित्व (radio activity)

कहानियोंमें पाठकोंने पारस पत्थरका नाम सुना होगा। पारस पत्थरसे हम किसी भी चीज़को छुएँ तो वह सोना हो जाती है। पारस पत्थर केवल काल्पनिक पदार्थ है या कुछ वास्तविकता लिये हुये है, इसकी खोज करनेमें अनेक वैज्ञानिकोंने प्रयत्न किये किन्तु वे निष्फल हुये। सन् १८६० में उनका दृढ़ विचार था कि तत्वोंका एक दूसरेमें परिवर्तन नहीं किया जा सकता। सोना भी एक तत्त्व है, अतः वह दूसरे तत्वसे नहीं बनाया जा सकता। यूरेनियम तत्व के आविष्कारके बाद कुछ बात नई ही मालूम पड़ी। यूरेनियमके तत्वोंकी सूचीमें ६२वाँ नम्बर है और वह आख़िरी है। इस तत्वमें अजीब ही गुण पाये जाते हैं। यह अपने आप ही टूट कर दूसरे तत्वोंमें परिवर्तित हो जाता है। इसके परिवर्तनका वेग मनुष्यके वशके बाहर है। यद्यपि मनुष्य गतिको बशमें न कर सका तो भी उसने उन शक्तियोंके जो इसके तोड़नेमें लगती है) विषयमें ज्ञान प्राप्त करनेके भरसक प्रयत्न किये और उसे सफलता हुई। इस तत्वके टूटनेपर जो नये-नये पदार्थ उत्पन्न होते हैं उन पदार्थोंके गुण स्वभाव भी प्रयोग जाने जा सकते हैं। लार्ड रदरफोर्डके* उन प्रयोगोंका जो उन्होंने अपने सह कारियोंके साथ कैम्ब्रिज विश्वविद्यालयकी प्रयोगशालामें किये थे, इस पाठके विषय अर्थात् परमाणुकी बनावटके बारे के विचारोंमें विशेष कर अधिक प्रभाव पड़ा।

ऊपर बताये हुये प्रयोग और इसके अतिरिक्त अन्य सैकड़ों प्रयोगों द्वारा हम अणुके विषयमें कुछ निश्चित परिणामोंपर पहुँच पाये है। हम अणुकी कल्पना अब बड़ी आसानीसे कर सकते। अणुमें दो भाग होते हैं—एक भीतर का जो केन्द्र कहलाता है और दूसरा बाहरका वाह्यकेन्द्र। अणुका सब स्थान भरा नहीं होता। किन्तु इन दोनों भागों के बीचमें खाली जगह होती है। छोटेसे अणुका संसार सौर संसारसे मिलता-जुलता है। जिस प्रकार बीचमें सूर्य रहता और उसके चारों ओर ग्रह दीर्घ वृत्तिक पथमें (वृत पथोंमें नहीं) चक्र लगाते हैं और ग्रहों और सूर्यके बीच शून्य रहता है उसी प्रकार अणुके भीतर केन्द्रके चारों ओर दीर्घ वृतिक पथोंमें ऋणाणु चक्र लगाते हैं ऋणाणुओंको यह हलचल सदैव थी और सदैव रहेगी।

ज्योतिष विद्याके ज्ञाताओंका यह दृढ़ विचार है कि पृथ्वी और अन्य ग्रह सूर्यके चारों ओर चक्र लगाते हैं। किन्तु हमें साधारणतः उनकी चालका कुछ भान नहीं होता। आकाश

---

* लार्ड रदरफोर्ड जनवरी सन् ३८ में कलकत्तेमें भारतीय वैज्ञानिक कांग्रेसकी सिलवर जुबलीके अधिवेशनके प्रधान होकर भारतमें आने वाले थे। परन्तु दुर्भाग्यवश आनेके कुछ ही दिन पहले उनकी आकस्मिक मृत्यु हो गई और भारतके वैज्ञानिक उनकी बुद्धि-अनुभवका लाभ उठाने से वंचित रह गये।

में सारे ग्रह शान्त अवस्थामें मालूम पड़ते हैं। इसी प्रकार अणुके अन्दर जो हलचल होती रहती है उसका पता नहीं लगता। यदि हम एक साधारण लकड़ीका टुकड़ा देखें तो देखनेमें वह शान्त, चिकना और समतल मालूम होता है किन्तु उसके अन्दर सैकड़ों अणु होते हैं। प्रति अणुके अन्दर कार्बन और ऑक्सीजन तथा हाइड्रोजनके परमाणु और प्रति परमाणुके अन्दर अनेक ऋणाणु चक्कर काटते हैं। एक ओर तो वैज्ञानिकों ने दिखावटी भिन्नताके भीतर एकता पाई है तो दूसरी ओर दिखावट शान्तिके अस्तागत उन्हें हलचलका ज्ञान हुआ है। जो स्थान देखनेमें तो भरा मालूम पड़ता है उन्होंनें प्रयोग द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि वास्तवमें अधिकतर शून्यता है।

जुगनूके प्रकाशका रहस्य

[ले०—श्री ब्रजवल्लभ, बी० एस-सी०]

मनुष्यमें जुगनूके प्रकाशके रहस्यको ढूँढ़नेकी बहुत समयसे तीव्र आकांक्षा थी। सबसे प्रथम सत्रहवीं शताब्दीमें राबर्ट बॉयलने इसके ऊपर वैज्ञानिक दृष्टिसे खोज की थी। उन्होंने जुगनूको एक बन्द शीशेके बैलजारमें रक्खा और बैलजारकी वायुको एक वैक्युम पम्प द्वारा बाहर निकालना प्रारम्भ किया। अन्तमें उन्होंने देखा कि जब वायुका बहुत-सा अंश बाहर निकल गया तब जुगनूका प्रकाश भी कम होते-होते अन्तमें बिलकुल अगोचर हो गया।

यह दीप्ति क्यों ?

अमरीकामें प्रिंसटन विद्यालयके प्रोफेसर इ० एन० हारवेने जीव-जन्तुओं और पौधोंके उसी प्रकाशपर बहुत अनुसंधान किये हैं। आपने निश्चित किया है कि जुगनूमें प्रकाश देने वाला पदार्थ दो रसायनोंसे बना है। उनको उन्होंने ल्यूसिफेरिन और ल्यूसिफेरेज़ कहा। दोनोंमेंसे किसीमें भी फॉसफोरस नहीं है। दोनों प्रोटीन जैसे प्राकृतिक पदार्थ हैं परन्तु उनके मिश्रित पदार्थोंका अभी पूर्णरूपसे निश्चय नहीं हो सका है। ऐसा मालूम पड़ता है कि प्रथम ल्यूसिफेरिन नामक पदार्थ ही प्रकाश उत्पन्न करता है। ल्यूसिफेरेज़ इस कार्यके होनेकी गतिको उत्प्रेरकोंके समान बढ़ा देता है। ल्यूसिफेरेज़ रहते हुये ल्यूसिफेरिन वायुके ओषजनके सम्पर्कमें आकर प्रकाश उत्पन्न करता है। इस उत्पत्तिमें जलका होना अनिवार्य है। एक बार पाँच सौ जुगनुओंके जलको बिलकुल सुखाके उनको दीप्तिकारिणी इन्द्रियोंको अलग किया गया। फिर इन्द्रियोंके पदार्थोंको खूब बारीक पीस लिया गया। बहुत वर्षोंके बाद फिर उन पिसे हुये पदार्थोंमें जल मिलाने पर पहला जैसा तेज़ प्रकाश निकला। जुगनूको ये इन्द्रियाँ बहुत गुरुतायुक्त होती हैं। उनका ढाँचा सरलतापूर्वक नहीं मालूम हो सकता। ये पेटके अन्तके दो भागोंके नीचेकी ओर स्थित होती हैं। जुगनूके शरीरके अन्दर उन प्रकाशवान् सेलोंके ऊपर दर्पण लगा होता है। यह पानीमें न घुलने वाले छोटे-छोटे रवोंकी तहसे बना होता है। इनसे प्रकाश नीचेकी ओर परावर्तित होता है। जिसके कारण प्रकाश बहुत तेज़ मालूम पड़ता है। इन सेलोंके अन्दर ही ल्यूसिफेरिन और ल्यूसिफेरेज़ रहते हैं और सेलोंके बीच-बीचमें वायुसे भरी छोटी-छोटी असंख्य नलियाँ होती हैं। जैसे ही जुगनू आकाशमें उड़ता है वायु इन नलियोंमें भर जाती है और वहाँ पर उसका ओषजन दीप्तिकारक पदार्थों पर प्रभाव करके प्रकाश उत्पन्न करता है। जिनके चोट लग जाती है उन जुगनुओंमें यह देखा गया है कि उनसे प्रकाश सदैव स्थिर रूपसे निकलता रहता है। इसका कारण यही है कि उनकी जिन इन्द्रियोंसे वायुका अन्दर आना और बाहर जाना वशीभूत होता है वे ठीक रूपसे अपना कार्य नहीं करतीं। उनसे स्थिर रूपसे वायु नलियोंके अन्दर आती जाती रहती है और इससे प्रकाश भी स्थिरतासे निकलता रहा है।

दीप्तिका अभिप्राय

अब प्रश्न यह उठता है कि इस प्रकाशसे जुगनूको क्या लाभ है। यह प्रकाश नर और मादाके मिलनके लिये आवश्यक है। भाँति-भाँतिके जुगनुओंके नर और मादासे भाँति-भाँतिके प्रकाशका उद्गार होता है। किसीमें पीले रङ्गका, किसीमें नीले रङ्गका प्रकाश होता है। बहुतसे प्रकाश

बहुत थोड़ी देरके लिये, बहुतसे अधिक देर तक, बहुतसे जल्दी, और बहुतसे नाम-मात्रके लिये ही प्रतीत होते हैं। प्रिंसटन विश्व-विद्यालयके प्रोफेसर युबरिक डेहल्मानने एक यन्त्र द्वारा उनमेंसे बहुतसे प्रकाशोंको विद्युतके लेम्प द्वारा नकल की और फिर इन्होंने नरको मादाके नकली प्रकाशकी ओर आकर्षित होते देखा। इसीसे वह जुगुनूके प्रकाशकी आवश्यकता पर पहुँच सके। ग्रीष्मके प्रारम्भमें अथवा वसन्त ऋतुके अन्तमें ये जुगुनू दलदलोंमें उगे हुये घासकी जड़ोंमें अण्डे देते हैं। अण्डोंमें दीप्तिकारिणी इन्द्रियाँ उत्पन्न होकर उन्हें प्रकाशवान् बना देती हैं। यह अण्डे ग्रीष्मके मध्य तक सेहे जाते हैं और फिर जुगुनू निकल आते हैं। उनमेंसे स्थिर रूपसे प्रकाश निकलता रहता है।

दीप्तिमय अन्य जन्तु

जुगुनुओंके अतिरिक्त बहुतसे दूसरे जन्तु और पौधे प्रकाश विकीर्ण करते हैं। समुद्रके किनारे पर रहने वाले मनुष्योंने अवश्य एक मृतक मछलीको देखा होगा। उसके गलने या सड़नेके प्रारम्भमें उसमेंसे रात्रिके समय एक हरा प्रकाश निकलता है। यह एक विशेष प्रकारके सामुद्रिक जीवाणुके कारण होता है। यह कहानी प्रसिद्ध है कि रात्रिके समय किसी कसाईकी दूकानमें एक दैविक वस्तुका
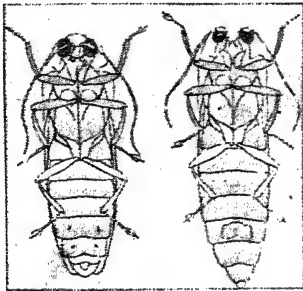
जुगुनूके दीप्तिमान भाग काले बिन्दुसे सूचित हैं।

भ्रमण हुआ करता था। उसके यहाँ अल्प समयके लिये समस्त मांसके टुकड़ों पर दीपकके समान प्रकाश हो जाया करता था। उसका यही कारण था कि मांसमें प्रकाशवान जीवाणु लग गये थे, वही रात्रिको चमका करते थे। इन जीवाणुओंको प्रकाशसे क्या लाभ होता है इसका अभी तक पूर्ण निश्चय नहीं हो सका है। जीवाणुओंसे निकले हुये प्रकाशको किसी भी यांत्रिक, विद्युत अथवा ताप-शक्तिसे नहीं बढ़ाया जा सकता। परन्तु इनको क्षारके घोलमें रखनेसे प्रकाश तेज़ हो जाता है। यह देखा गया है कि तेज़ाबसे भरे स्थानपर कभी प्रकाश नहीं होता। उन जीवाणुओंको छोटेसे स्थानमें बन्द कर देनेसे प्रकाश बहुत तेज़ हो जाता है। इसके अतिरिक्त उनको बहुत अधिक गतिसे चारों ओर घुमानेसे भी यही हो सकता है। प्रकाशका इतनी तेज़ीसे उद्गार बढ़ जाता है कि हम बहुत दूरी से पुस्तक पढ़ सकते हैं। यही विशेषता गहरे समुद्रोंमें रहने वाली मछलियोंमें होती है। उनमेंसे बहुत-सी मछलियोंमें पीठके दोनों ओर प्रकाशवान् बिन्दुओंको एक रेखा होती है। रात्रिमें दूरसे देखने पर मछलियाँ बड़े-बड़े जहाजोंके सूक्ष्म रूपके समान दिखाई देती हैं। गहरे समुद्रोंमें एक एंगलर नामक मछली होती है। इसके सिरे पर एक प्रकारकी कुप्पी होती है जो बहुत ही सुन्दर दीख पड़ती है। यह मछलीके मुँहके बिलकुल सामने लटकी होती है। इसके चारों ओर बिन्दु जैसे प्रकाशवान् कीड़े होते हैं। कुप्पीका प्रकाश तथा प्रकाशवान् कीड़े छोटी-छोटी मछलियोंको अपनी ओर आकर्षित करते हैं। वास्तवमें वे अपनी स्वामिनीके लिये खाना एकत्रित करते हैं। जब कुप्पीसे छोटी मछलियाँ टकराती हैं तब उन्हें यही एङ्गलर नामक मछली हड़पकर जाती है। इस प्रकार प्रकृतिने अपने खाद्य पदार्थ ढूँढ़नेके लिए एक सुन्दर प्रकाशवान् कुप्पी उनके ऊपर प्रदान की है।

मनुष्यका प्रायत्न

भाँति-भाँतिके प्राकृतिक जीवके पदार्थोंमें उष्णता रहित प्रकाशके निरीक्षणके उपरान्त मनुष्यमें उनके नकल करनेकी तीव्र इच्छा उठना भी प्राकृतिक ही था। १८७७ ई० में श्री रेज्वीसिकी ने प्रथम लोफीन नामक पदार्थ बनाया। फिर उसका ओषिदीकृत पदार्थ बनाकर उसमें दीप्यमान गुण देखा। सुन्दर पीला प्रकाश दिखाई दिया। फोटोग्राफीमें प्रयुक्त होने वाले पायरोगैलोल पर फॉर्मेलडिहाइड और हाइड्रोजन परौक्साइडके क्षारीय घोलके प्रभावसे नारंगी रंगके समान लाल प्रकाशका उद्गार होता है। डाक्टर हार्वे महोदय ने पायरोगैलोलका परॉक्साइड और आलूके रस द्वारा ओषिदीकृत पदार्थ बनाकर उसमेंसे

प्रकाश उत्पन्न किया। १९२३ ई० में श्री डबल्यू. बी. एवेन्स तथा आर. टी. डफोर्डने बहुतसे ऐसे रासायनिक पदार्थोंका निर्माण किया। इनको ग्रिगनार्ड यौगिक भी कहते हैं। अभी तक ज्ञात हुये सब पदार्थोंमें पेरा-क्लोरो फिनाइल मेगनेसियम ब्रोमाइडमेंसे सबसे तेज़ प्रकाश देखा गया है। १९२९ ई० जर्मन रासायनिक श्री एलब्रेक्टने एक ऐसे रसायनका आविष्कार किया है जिसके ओषिदीकृत पदार्थने उस समय तकके ज्ञात समस्त पदार्थोंमें सबसे तेज और चमकीला ठंड-प्रकाश दिया। अमरीका-के डाक्टर ई० एच० हण्ट्सने मैसाक्यूसेटेसमें इस रसायन-के ऊपर बहुत अनुसंधान किया है। इस पदार्थको उन्होंने ३-अमिनोथैल हाइड्रेजाइड नाम दिया। इसको व्यापारमें ल्यूमिनोल कहते हैं। इसके ओषिदी-कृत पदार्थमेंसे बहुत चमकीला नीला ठंडा प्रकाश निकलता है। अमरीकामें बहुत-सी खाँड़ तथा कार्बनिक अम्ल आदि पर प्रयोग करके मालूम किया गया है कि अगर उन्हें गरम करके उनके अन्दरके जलको बाहर निकाल दिया जावे तब उनके ओषिदीकृत पदार्थमेंसे प्रकाश निकलता है।

इन रासायनिक पदार्थोंके अतिरिक्त प्रकाश और कई प्रकारसे भी निकल सकता है। जबकि विद्युतकी चिनगारी वायुशून्य शीशेकी नलीमें भेजी जाती है तब उसमें विद्युत् प्रकाशका उद्‌गार होता है। इसी प्रकार जब किसी घोलसे रवे (मणिभ) बनते हैं तब उसमेंसे उद्‌गारित प्रकाश-को "मणिभदीप्ति" कहते हैं। इसी प्रकार जब विशेष प्रकारके रवों को पीसा जाता है तब उसमेंसे उद्‌गारित प्रकाशको "घर्षणदीप्ति" कहते हैं। जीव जन्तुओं और पौधोंसे उद्‌गारित प्रकाशको "जैवदीप्ति" कहते हैं। पेनसिलवेनिया विश्वविद्यालयके डाक्टर लेसली ए० चेम्बर्स ने एक बहुत ही आश्चर्यजनक खोज की है। उन्होंने ध्वनिकी लहरोंमेंसे प्रकाशका उद्‌गार किया है। वे एक शक्ति-शाली स्पन्दकको एक द्रवमें बहुत वेगसे घुमाते हैं। ऐसा करनेसे बहुतसे द्रवोंमेंसे प्रकाश उद्‌गारित होता है। ७७ डिगरी फारेनहाइटपर बहुतसे स्निग्ध द्रवोंमेंसे प्रकाश निकलता है। इसे "ध्वनिदीप्ति" कहते है। गिलि-सरीन जो एक बहुत स्निग्ध द्रव है उससे बहुत चम-कीला प्रकाश निकलता है।

दीप्तिमय पदार्थोंका उपयोग

अन्तमें अब यह प्रश्न शेष रह जाता है कि इन सबसे कार्य रूपमें क्या लाभ है। अभी साफ़ तौर पर हम यह माननेको पूर्णतः उद्यत हैं कि हम इससे बिलकुल अनभिज्ञ हैं। परन्तु हमें उससे आशायें हैं। इसके सैद्धान्तिक लाभ तो बहुतसे जान पड़ते हैं। विद्युत् शक्ति, तेल द्वारा अथवा सूर्य चन्द्रसे आये हुये प्रकाशमें ९५ से ९८ प्रति सैकड़ा सामर्थ्य उष्णतामें बदलकर व्यर्थ चली जाती है परन्तु इस ठंडे प्रकाश-में ९० से ९५ प्रति सैकड़ा सिर्फ प्रकाशके कार्यमें सामर्थ्य आती है। इस कारण ठंडे प्रकाशमें सामर्थ्य-हानि बहुत कम होती है। उन अवसरों पर और उन स्थानों पर जहाँ पर कि हमारा ध्येय प्रकाश करनेके अतिरिक्त और कुछ नहीं है० हमको २४ या २५ गुना प्रकाश ठंडे प्रकाशके पदार्थोंको प्रयोग करके मिल सकता है। परन्तु यह देखा गया है कि इनसे निकला हुआ प्रकाश तेज़ नहीं होता। एक कमरेको पूर्णतः प्रकाशित करनेमें बहुत अधिक प्रकाशवान् सतह चाहिये। उसके अतिरिक्त इस समय पदार्थोंका मूल्य भी इस विधिको कार्य रूपमें परिणत करनेमें बाधक है। इसलिये आवश्यक यह है कि तेज ठंडे प्रकाश उद्‌गारित करने वाले तथा कम मूल्य वाले रासायनिक पदार्थोंको खोज की जावे। अभी तक जुगनूके रहस्यका पूर्णतः पता नहीं चला। ल्यूमिनोल जो एक तेज़ और ठंडा प्रकाशवान् पदार्थ है उसीको बहुतसे-वैज्ञानिक जुगनूमें भी लगा हुआ समझते हैं परन्तु ऐसा नहीं है। जुगनू संसारके दीप्तिमान जीव-जन्तुओंमें सर्वोत्तम है। इसकी उत्तमता यह है कि उसमें तेज़ प्रकाश होनेके अतिरिक्त शक्तिका बहुत कम व्यय होता है। जब जुगनू वायुमें उड़ता है तब उसके प्रकाशवान् पदार्थ अपने ओषिदीकृत रूपमें परिणत होकर प्रकाश उत्पन्न करते हैं। जुगनूमें प्रकाश समाप्त हो जानेके बाद फिर अँधेरा हो जाता है। इस अंधकारके समय ओषिदीकृत पदार्थ फिर अपने असली रूपमें आ जाते हैं। जब जुगनू वायुमें उड़ता है तब उन पदार्थों-पर वायुके ओषजनके प्रभावसे फिर प्रकाश उत्पन्न होता है। यह उसी प्रकार है जैसे कि कोई एक लकड़ीको जलाये और उसके धुयें, वाष्पों और शेष राखको एकत्रित करके उन्हें फिर लकड़ीका रूप दे दे जिससे वह दूसरी बार जल सकें।

सदुपयोगोंकी प्रयोगशालाओंमें बहुत सम्भावना है। इलि-लिली कम्पनीकी प्रयोगशालामें दक्षिणी अमरीकाके अस्वस्थ सुअर और दूसरे स्वस्थ सुअरका रक्त बराबर मात्रामें लिया। उनसे लोफीनका ओषिदीकृत पदार्थ बनाया। स्वस्थ सुअरके रक्तसे बने पदार्थमें अधिक चमकीला तेज़ प्रकाश था। इसको उन्नति देकर बहुत-सी शरीर विज्ञान संबंधी बातें मालूम की जा सकती हैं और ऐसा भी किया जा सकता है कि इन प्रकाशोंको बढ़ाकर किरण-चित्रमें अध्ययन किया जावे। तब इस विषयके कार्यक्षेत्रमें उन्नति होनेकी बहुत आशा है। क्लीवलैण्डके डा० क्रिबने इन प्रकाशोंके क्षेत्रमें कुछ खोज की है। उन्होंने जन्तुओंके मस्तिष्कांगों पर रासायनिक पदार्थों तथा उन्हींके ग्रन्थि-स्रावोंके प्रभावसे प्रकाश उत्पन्न किया। इससे यह जान पड़ता है कि मनुष्य और जीव-जन्तुओंके मस्तिष्क विशेष प्रकारका प्रकाश उत्पन्न करते हैं और इसलिये इन्हीं जीव-जन्तुओंके प्रोटोप्लाज़्ममें सूर्य चमकता है। डाक्टर महोदयका यह विचार है कि चेतना और मस्तिष्कके कार्य जैसे विचार करना आदि भी इन्हींके बहुत ही सूक्ष्म अवयवोंसे निकले हुये उद्‌गारोंसे सम्बन्ध रखते हैं। यह पूर्णतः निश्चित है कि मनुष्यके शरीरमें प्रकाश उत्पन्न करने वाले सब पदार्थ स्थित हैं। अधिकतर यह सब अलग-अलग बिखरे हुये हैं। अगर किसीके शरीरमें यह सब एकत्रित होकर एक स्थान पर मिल जावें तब उसी स्थानसे प्रकाश बाहरको निकलने लगे। ऐसा इटलीमें एक स्त्रीके शरीरमें है। उसके शरीरसे प्रकाश बाहर निकलता दिखाई देता है।

युद्धके वर्तमान साधन

(ले०—श्री कपूरचन्द्र लाड)

गत महायुद्ध और वर्तमान युद्धके बीचमें दुनियामें कितने ही परिवर्तन हो गये हैं—उसकी गति-विधि ही बदल गयी है। आज संसार विनाशकी ओर तीव्र गतिसे प्रधावित हो रहा है। जिस विज्ञानके द्वारा विश्वकी रक्षा होनी चाहिये वही आज विश्वका घातक बन रहा है। आजके साम्राज्यवादी राष्ट्र शंकरका रूप धारण कर एक भृकुटि-विन्यास पर ही मदन-दहन करना चाहते हैं। वर्तमान युद्ध आरम्भ होनेके पूर्व श्री ए० ए० सिने नामक सज्जनने एक पुस्तक 'सम्मान युक्त शान्ति' लिखी थी। आपने कहा था कि यदि हमने फिरसे हथियार सम्हाले तो यह विश्व नष्ट होने लगेगा। 'भीषण खतरे' नामक पुस्तकमें श्री बीवर्ली नामक लेखकने भी इसी प्रकारके विचार व्यक्त किये हैं। वैसे तो गत महायुद्धमें ही अनेक अनिष्टकारी साधनोंका उपयोग किया गया था, परन्तु अब तो ऐसे साधनोंकी संख्या और भी बढ़ गयी है।

गत युद्धमें मस्टर्ड गैस सबसे अधिक भयंकर सिद्ध हुई थी। वास्तवमें ऐसा कोई साधन नहीं था जिससे लन्दन पर शत्रुओंका उड़ना रोका जा सके और लाखों लन्दन-निवासियोंकी प्राण-घातक गैसोंसे रक्षाकी जा सके। वैसे केवल २० से ५० वायुयान ही समस्त लंदनका संहार कर सकते हैं और तीन घंटेमें ही लंदन ऐसे महान् नगरका सत्यानाश हो सकता है! प्रत्येक एक टन गैस रखने वाले सौ वायुयान पैरिस नगरको २० मीटर मोटी गैससे ढक सकते हैं और शुद्ध हवा न मिलनेके कारण तमाम पेरिस-निवासियोंका काम समाप्त हो सकता है।

गत महायुद्धके पश्चात् प्रायः सभी देशोंने अपनी सामरिक शक्ति बढ़ानेकी चेष्टाकी है और नये-नये संहारक उपाय भी सोचे गये हैं। यद्यपि वर्तमान शैलीके युद्धोंमें मनुष्योंकी सेनाका विशेष महत्त्व नहीं फिर भी इस ओर अपेक्षा नहीं की गयी है। प्रत्येक राष्ट्रने अपनी सेना बढ़ाने के साधनोंका उपयोग किया है और जो वर्सिलीकी सन्धि विश्वमें स्थायी शान्ति स्थापित करनेके लिये हुई थी उसके आड़में राष्ट्रोंने अपना रौद्र रूप संवारनेकी चेष्टा की। अमेरिकाके प्रेसिडेण्ट श्री उडरो विलसनके प्रयत्नसे जिस राष्ट्र-संघकी नींव पड़ी थी वह बड़े-बड़े राष्ट्रोंके हाथका खिलौना बन गया और उसमें पहुँच कर भाषण देना और

विश्व-शान्तिकी निरर्थक योजनाएँ बनाना ही सभ्य राष्ट्रोंका कर्तव्य है।

युद्ध शान्त होनेके पश्चात् प्रत्येक राष्ट्रने अपनी सेना बढ़ानेके लिए हर प्रकार प्रयत्न किया। नये साधनोंके आगे सेनाका कोई महत्त्व नहीं था और मार्शल सेवस ऐसे विद्वान् कहते थे कि सेनाकी संख्या बढ़नेसे केवल परेशानियाँ बढ़ती हैं फिर भी सेना-वृद्धिको ओर सभी राष्ट्रोंने अतुल प्रयत्न किये। जिनेवामें राष्ट्र-संघसे अलग होते समय जर्मनीने अपनी एक लाखकी सेना बढ़ाकर तीन लाख करनेका अधिकार पेश किया था। जर्मनी इक्कीस डिवीजनोंको सेना तैयार करना चाहता था। उसने टैंकों, तोपों और वायुयानोंके निर्माणमें तेजीसे उन्नति की। ६ मासकी श्रमिक सेनाका नियम बनाया गया और इस प्रकार सैनिक-शिक्षाका विस्तार किया गया। शीघ्र ही मजदूर-सेना भी उपयोगी शक्ति हो गयी। वास्तवमें यह सेना भूरी कमीजवाली सेनासे भी अधिक उपयोगी थी। मार्च सन् १९३५ में सेनामें भर्ती होनेकी घोषणा की गयी और साथ ही साथ बारह सैनिक दलोंमें ३६ डिवीजनोंकी सेना बढ़ानेका कार्य हुआ। उस समय तो यह सोचा गया था कि ४,५०,००० सेना रक्खी जाय, परन्तु धीरे-धीरे यह संख्या ४,०००,००० तक पहुँच गयी।

ग्रेट ब्रिटेन ने भी सेनाकी ओर कम ध्यान नहीं दिया। ब्रिटेनको स्थल-सेनामें किसी समय १,५२,००० अफसर और सैनिक थे। मई सन् १९३५ में ब्रिटिश-सरकारने अपनी आकाशी सेनामें दो वर्षके अन्दर ५० स्क्वेड्रन बढ़ानेका निश्चय किया और घरेलू रक्षाके लिए १५०० प्रथम श्रेणीकी मशीने रखनेका विचार किया। इस प्रकार पहलेसे आयोजित अठारह हवाई अड्डोंके अलावा तीन और अड्डे बनाने पड़े तथा २५०० नये वायुयान-चालकों और २०,००० अन्य कर्मचारियोंको शिक्षा दिलानी पड़ी। धीरे धीरे ब्रिटेन तथा अन्य देशोंकी सेना और हवाई-बेड़ोंमें जो वृद्धि हुई है, उसकी संख्या नीचे दी जाती है। यह संख्या पूर्ण रूपसे ठीक न होने पर भी यूरोपीय राष्ट्रोंकी सामरिक-शक्तिका अनुमान लगानेमें सहायक हो सकती है:—

सोवियट रूस—

सेना—१२,३००,०००
जहाजी बेड़ा (नेवी) २९०,५८९ टन
हवाई-शक्ति—५००० से ८,५०० तक

जर्मनी—

सेना—४,०००,०००
जहाजी बेड़ा—५,४१,०२३ टन
हवाई-शक्ति—५००० से ८०,००० तक

ग्रेट-ब्रिटेन—

सेना ६,४५,००० (भारत आदि छोड़ कर)
जहाजी बेड़ा—२,०७१,८६३ टन
हवाई-शक्ति—४,००० से ५,७०० तक

फ्रांस—

सेना—५,७००,०००
जहाजी बेड़ा—८१५,५३१ टन
हवाई-शक्ति—३००० से ३,८०० तक

वास्तवमें गत महायुद्धके पश्चात् यूरोपके सभी राष्ट्रों ने अपनी युद्ध-शक्तिमें वृद्धि की है। आज संसारके सामने मानवता दानवताका रूप धारण कर उपस्थित हुई है। आज युद्धकी खबरें पढ़ते समय हमें लड़ाईके कितने ही नये साधनोंके नाम सुनायी पड़ते हैं। इस लेखमें उनका संक्षेपमें उल्लेख कर देना आवश्यक प्रतीत होता है।

एयर क्रेफ्ट—(वायुयान) दो प्रकारके होते हैं। एक लड़ाईके लिए तथा दूसरे अन्य कार्योंके लिए। इनमें कुछ तो एक इंजिनवाले होते हैं और कुछ दो इंजिनवाले।

एयर क्रेफ्ट केरियर—वायुयानोंका आविष्कार होने से नौ-सेनाओंको देख-रेखका यह नया साधन प्राप्त हुआ है। इनके द्वारा जल-सेना अपनी गति-विधिका ज्ञान प्राप्त करती है और अपना निशाना ठीक करती है। ये क्रूजरके साथ रहते हैं।

एण्टी एयर क्रेफ्ट—युद्धमें वायुयानोंके नष्ट करने के लिए काममें लाये जाने वाले नये-नये साधन जैसी एण्टी एयर क्रेफ्ट गन (वायुयान नाशक तोप) और एण्टी एयर क्रेफ्ट ब्रिगेड।

आर्मडकार—एक प्रकारकी मोटरकार या लारी जिसमें रक्षाके साधन होते हैं तथा लड़नेके काममें लायी

जाती है। यह सड़कों पर खूब तेजीसे चलती है और काम करनेके लिये बहुत व्यापक होती है। इसे आर्मर्डह्विकिल भी कहते हैं।

टैंक—यह नाम गत महासमरके समयसे प्रचलित हुआ है। यह रक्षाके साधनोंसे परिपूर्ण वह यान है जिस पर गोलियोंका प्रभाव नहीं होता। यह मशीनके द्वारा चलता है। इसमें एक ट्रैक्टर लगा रहता है जो मार्गमें रोड़े झाड़-झंखाड़ आदिका नाश करता रहता है। अतएव यह देहातोंकी ऊँची-नीची जमीन पर भी सुविधासे चल सकता है।

मोर्टर—एक प्रकारकी छोटी तेज तोप। इसमें छोटा परन्तु ज़्यादा काम करनेवाला गोला उपयोगमें लाया जाता है।

क्रूज़र—यह एक लड़ाईका जहाज है जो तेजीसे चलता है और शस्त्रोंसे सुसज्जित रहता है। इसका उपयोग अधिकतर दो कामों में होता है (१) जलमार्गोंकी रक्षा करनेके लिए और (२) जंगी बेड़ेके सफर मैनाका काम करनेके लिए।

गोताखोर जहाज—यह जहाज पानीके नीचे चलता है और शस्त्रास्त्रोंमें सुसज्जित रहता है। जहाजों को नष्ट करनेके लिए इसमें एक प्रकारका बारूद रहती है। उसमें एक शीशा इस प्रकारका रहता है कि पानीकी सतहकी चीज़ें दिखायी दें और उन पर निशाना लगाया जा सके।

इनका निर्माण कुछ वर्ष पहले एक हालैण्ड-निवासी ने किया था। पनडुब्बे एक प्रकारकी हवा बन्द नावें हैं जिनमें बहुतसे तालाब बने रहते हैं। इन तालाबोंमें पानी भरने पर पनडुब्बा पानीके अन्दर चला जाता है। इनमें एक विशेष यन्त्र लगा रहता है जिसे पैरिसकोप कहते हैं। लोहेकी छड़से एक शीशा लगा कर उसे पानीके ऊपर उठाते हैं जिससे पनडुब्बेवालोंको दुनियाके हाल-चाल मालूम होते रहते हैं। नये पनडुब्बे गत युद्ध कालीन पन-डुब्बोंसे अधिक भयंकर हैं और पानी या तेल लिए बिना १५,००० से लेकर २०,००० मील तककी यात्रा कर सकते हैं। पानीमें ये पनडुब्बे बिजलीके द्वारा चलते हैं और बिना बैटरी बदले तथा बिना रुके १०० मीलकी यात्रा कर सकते हैं। नये पनडुब्बे समुद्रमें ३० से लेकर २०० फीट नीचे तक गोते लगाते हैं और उनमें ५० व्यक्तियोंके लिये स्थान रहता है। ये पनडुब्बे प्रायः दो तीन दिन तक पानीमें गोता लगाये रह सकते हैं, परन्तु जब २० फीटसे अधिक गहराई पर उतर जाते हैं तब उन्हें बाहरी दुनियाका कुछ पता नहीं रहता।

ये पनडुब्बे ऐसा स्थान खोज लेते हैं, जहाँसे शत्रुके जहाज आते-जाते रहते हैं। कभी-कभी ये पानीकी सतह पर भी रहते हैं। कारण इन्हें सरलतासे नहीं देखा जा सकता। लहरोंमें इनका अस्तित्व गुप्त रहे इसके लिए इन्हें रँगनेके लिए उसी प्रकारका रंग काममें लाते हैं जिस रङ्गकी लहरें होती हैं। जितने अधिक समय तक पनडुब्बे को पानीके अन्दर रहना पड़ता है, उतने समय तक बिजली का खर्च अधिक होता है।

पनडुब्बेके नाविक शत्रु-पक्षके जहाजोंका विनाश करनेके लिए दो चीजोंको काममें लाते हैं—१—टारपीडो २—मशीनगन। टारपीडो पानीके अन्दर ही आक्रमण करता है और बहुत प्रभावशाली होता है। मशीनगनका उपयोग तो तभी होता है जब पनडुब्बा पानीकी सतह पर होता है।

टारपीडो—सन् १८०५ में अमेरिका निवासी श्री राबर्ट फ़ुल्टनने एक प्रकारकी बारूद तैयार की जिसके द्वारा जहाज नष्ट किये जा सके, इसे टारपीडो कहते थे। पहले तो इसका उपयोग ही कठिन था, परन्तु गोताखोर जहाजोंका आविष्कार होने पर इसका उपयोग होने लगा।

पहले जहाजको नष्ट करनेके लिए यह जरूरी था कि टारपीडोका संसर्ग जहाजके पेंदेसे किसी प्रकार कराया जाय और तब पलीता लगाया जाय। अपने आप चलने वाले टारपीडोंका निर्माण एक आस्ट्रियन जर्मनने किसी स्काटलैण्ड-निवासीकी सहायतासे किया। इसका गोला ६ मील फी घंटेकी रफ्तारसे चल पाता था और दूर-से जहाजपर निशाना लगाया जा सकता था। आज कल जो टारपिडों उपयोगमें आते हैं उनकी शक्ल सिगारकीसी है। उनका व्यास लगभग १६ इंच से २२ इंच तक और लम्बाई १६ फुटसे २० फुट तक होती है। आगेके हिस्सेमें

लगभग ३०० से ५०० सेर तक बारूद भरा जाता है और बीचके हिस्सेमें हवाके लिये स्थान रहता है। पीछेकी तरफ इंजिन रहता है जिससे टारपीडो इच्छानुसार चलाया जा सकता है।

प्रत्येक पनडुब्बेमें ६ से लेकर १२ तक नालियाँ होती हैं जिनमें टारपीडोपर का निशाना लगाया जाता है। टारपिडोका ठीक निशाना लगानेके लिये यह आवश्यक होता है कि उसे जहाजसे आगे फेंका जाय नहीं तो प्रयोग व्यर्थ जाता है।

यू-बोट - गत महासमरके समय जर्मनीने जहाजोंको डुबानेके लिये जिन पनडुब्बोंका उपयोग किया उन्हें यू-बोट कहते हैं।

माइन—गोताखोर उसे कहते हैं जिसका उपयोग बन्दरगाहकी रक्षा तथा आक्रमणके लिये होता है। इसके द्वारा किसी निश्चित सोमामें शत्रुका जहाज आनेसे रोका जा सकता है। इसमें एक सन्दूकमें विसफोटक रहता है जिसका उपयोग करनेपर शत्रुका कोई भी जहाज़ बेकाम किया जा सकता है।

पैराशूट—एक यंत्र जो छतरीकी शक्लसे मिलता-जुलता है। इसके द्वारा कोई भी वस्तु वायुयान या गुब्बारे से ज़मीन पर उतर सकती है।

मस्टर्ड गैस—एक तरल पदार्थ है जिसका उपयोग प्राणघातक या फेफड़ोंके लिये हानिकारक होता है।

कार्बन मोनो आक्साइड—यह गैस जो कार्बन जलानेसे पैदा होती है। यह तेलके जलनेसे खानोंके विस्फोट, भट्टियोंमें लोहा या इस्पात जलाने तथा बिजली-की चीजें जलानेसे भो पैदा होतो है। यह स्वादुरहित, रंगहीन और गन्ध रहित होती है, इसलिये इसका पता लगाना कठिन होता है। यह मनुष्यकी अपेक्षा चुहियों और पशुओं पर अधिक असर करती है।

क्लोराइन—एक प्रकारके गैसके ढंगका रासायनिक तत्व। इसके हरे तथा पीले रंगोंके कारण ही यह नाम रक्खा गया।

इस युद्धमें हवाई जहाजोंका ख़ूब उपयोग हो रहा है। बम भी बर्षाये गये और पर्चे भी बरसे और उन्हींके द्वारा जर्मनी और रूसने पोलैंडकी स्वतन्त्रताका अपहरणकर अपने विकराल उदरका परिचय दिया। जिस समय पोलैंड पर गोला-बारी की गई उस समय वहाँके लोग जिस प्रकार अपनी जान ले-लेकर भागे उनका हृदय-द्रवित करने वाला चित्र एक अँग्रेज पत्रकार श्री जे० गेझने विलायती पत्र 'न्यूक्रानिकल' में दिया था। यह वर्णन पाठकोंके जानकारी के लिये उपस्थित किया जाता है। वर्णनसे विदित होगा कि आजकल संसारमें मनुष्यताके साथ कैसा खेलवाड़ किया जाता है।

"वारसासे चल कर जलेजजिस्की नगर, जो पोलैण्ड और रूमानिया सीमा पर है, पहुँचते-पहुँचते हम पर १४ बार बम बर्षा हुई। गत ६ ठीं सितम्बरको अन्तिम स्पेशल ट्रेन वारसासे रवाना हुई, उसमें पोलैण्डकी सरकारके कितने ही ऊँचे अफसर तथा महत्वपूर्ण कागज़ात थे। विदेशी पत्रकारोंमें मैं अन्तिम पत्रकार भी उसी गाड़ीसे रवाना हुआ। पोलैण्ड सरकारके शासनकी मशीनके सारे कल-पुर्जे उस एक ही ट्रेनमें ठूँस दिये गये थे। इसे बादमें भूतोंकी गाड़ीके नामसे पुकारा गया; क्योंकि इसके कितने ही आदमियोंके प्राण चले गये थे। हमारी गाड़ी जर्मनीके बम बरसानेवाले वायुयानोंके नोचेसे घूमती-फिरती हुई जा रही थी। बहुत घूमती-फिरती रहने पर भी वह अपने निश्चित स्थान पर न पहुँच सकी।

"गत ५ वीं सितम्बरको जब जर्मन सेनाने वारसाके उत्तरका मोर्चा तोड़ दिया तो पोलैण्डकी सरकारने एक घंटेमें वारसा खाली करनेका निश्चय किया। पोलैण्डके सैनिक अधिकारियोंने लड़ाईके मोर्चेकी वास्तविक स्थिति अपनी सरकारको नहीं बतायी थी; इसीलिये सरकारको बड़ी उतावलीसे वारसा खाली करना पड़ा। विदेशके कितनेही राजदूतोंको तो संयोगवश वारसा खाली करनेका पता तब लगा जब उन्होंने देखा कि वैदेशिक विभागसे जल्दी-जल्दी बहुत से सन्दूक निकाले जा रहे हैं। विदेशके कितने ही राजदूत और पत्रकार वारसाके फैशनेबिल होटलोंमें बैठे हुये यह बात-चीत करते थे कि अभी तो युद्ध एक मुद्दत तक चलेगा। इतनेमें उन्हें मालूम हुआ कि कुछ ही घण्टोंमें वारसासे रवाना होनेके लिये तैयार हो जाना चाहिये। इनमें कितने ही आदमी तो अपने साथ कुछ भी सामान न ले सके।

मैं सब छोड़-छाड़ कर अपने परिवारको लेकर रवाना हो गया।

"उस समय वारसामें इतनी हलचल थी, विस्चुला नदीका पुल पार करनेमें हमें पूरा एक घण्टा लग गया; हमें मालूम हुआ था कि ईस्टर्न स्टेशन पर एक रेलगाड़ी हम लोगोंको ले जानेके लिये खड़ी है। गाड़ी तलाश करनेमें तीन घण्टे लग गये। स्टेशन पर कल्पनातीत दुर्दशा और हलचल दिखायी देती थी। अँधेरेमें माताएँ अपने बच्चोंको पुकार रही थीं, पुरुष अपनी स्त्रियोंको पुकार रहे थे और बच्चे अपने माता-पिताके लिये रो रहे थे। सबको यह भय हो रहा था कि कहीं जर्मनीके वायुयान आकर बम-वर्षा न करें। इससे पहले दिन इसी स्टेशन पर जर्मनीके वायुयानों ने बम-वर्षा की थी।

"गाड़ीमें १४ डिब्बे थे, जिनमें पोलैण्डकी सरकारके युद्ध-विभागके मंत्रीगण, न्याय-विभागके मंत्री, गृहमंत्री वैदेशिक मन्त्री, सामाजिक और पब्लिक वर्क्स, शिक्षा-विभागके मन्त्री तथा सिनेटके सदस्य थे। पहले यह गाड़ी लुब्लिन नगर जाने वाली थी। पोलैण्डकी सरकारके ठहरनेका पहले यही स्थान निश्चित किया गया था। परन्तु मार्गमें जर्मन वायुयानोंने कितने ही पुल तोड़ डाले थे। लुब्लिनमें भी पुल तोड़ दिया गया था; इसलिये सीधे मार्गसे पहुँचना असम्भव था। सुतराँ हमारी गाड़ीको बहुत चक्कर काटना पड़ा। गाड़ीमें १२६० मुसाफिर थे।

"जब हमारी गाड़ी वारसासे कोई ६० मील उत्तर पहुँची तो हमें जर्मनीके एक बमबाज वायुयानका मुकाबला करना पड़ा। वायुयान हमारी गाड़ीके ऊपर थोड़ी ही ऊँचाई पर उड़ रहा था, जिससे गाड़ीमें बैठे हुये आदमी अवर्णनीय आतङ्कसे भयभीत हो रहे थे। कितने ही यात्री गाड़ीसे कूद पड़े और खेतों तथा जंगलोंमें प्राण लेकर इस आशासे भागे कि कहीं शरण मिल जायगी, परन्तु वायुयान शीघ्रतासे जङ्क्शन स्टेशन जेरेमचा पहुँच गया। वहाँ २० मिनिटके बाद हमें वास्तविक नरककी यन्त्रणाओंका कष्ट भोगना पड़ा।

"अभी हम कहीं ठहरनेका स्थान भी देख न सके थे, इतनेमें जर्मनीके बमबाज तीन वायुयान वहाँ पहले ही पहुँच गये और हमारी गाड़ी पर सबने ५० बम फेंके। इन बमोंमें कितने ही बम आग लगाने वाले थे। बचनेका कोई स्थान न था। स्त्री, बच्चे और पुरुष वृक्षोंसे चिपटे हुए थे; कहीं-कहीं खेतोंमें घुटने टेक कर ईश-प्रार्थना कर रहे थे। कुछ लोग सड़कके पास खाइयोंमें जाकर छिप गये। इस बीचमें जर्मनीके वायुयान और भी अधिक संख्यामें और स्टेशन पर भीषण रूपसे गोलाबारी करने लगे। एक ओर स्त्रियों और बालकोंका चीत्कार हो रहा था और दूसरी ओर बमोंके फटनेके भीषण धड़ाके हो रहे थे। जान न पड़ता था कि इनमें किसकी ध्वनिसे हमारे हृदय अधिक विचलित हो रहे थे। उसी स्टेशन पर पहले भी जर्मनीके वायुयानोंने बम वर्षाकी थी। उससे एक गड्ढा हो गया था। उस गड्ढेमें एक स्त्री अपने बच्चेको छिपाये हुई बैठी थी। मेरा एक चार वर्षका बच्चा जो वारसामें ३० वायुयानोंके आक्रमणोंके बीचसे बच आया था, मेरे घुटनेसे चिपक गया और रोते-रोते बोला—"पिताजी, इस वायुयानवालेसे कहिए बम न गिराये।"

"अपनी खाइयोंसे रवाना होनेसे पूर्व हम पर कई बार बमोंकी वर्षा हो चुकी थी। प्रति बार बमोंकी वर्षा अधिक भीषण रूपसे तथा दृढ़ता-पूर्वक की जा रही थी। यह स्टेशन पोलैण्डके उत्तर-पूर्व और राजधानी वारसाके बीचका था। यह अरक्षित और असहाय अवस्थामें था; इसलिये जर्मन-वायुयानों ने इस पर खूब बम बरसा कर इसे नष्ट-भ्रष्ट कर डाला था। स्टेशन मास्टर ३० बार वायुयानों आक्रमणोंसे परेशान हो गये थे। फिर भी वे शान्त भावसे अपने काममें लगे हुए थे। वे बार-बार मेरे बच्चेकी ओर देख रहे थे। मेरा बच्चा बार-बार आकाशकी ओर देखता था कि वायुयान तो नहीं आ रहे हैं। हम जब रूमानियाकी राजधानी बुखारेष्ट पहुँच गये, तो रूमानियाकी सरकार ने हमारा बड़ा आतिथ्य किया, परन्तु मेरा बच्चा इतना अधिक भयभीत हो गया था कि रातमें सोते-सोते चौंक उठता था और पूछता था कि वायुयान तो नहीं आ रहे हैं?

"अन्तमें हम फिर किसी प्रकार अपनी रेलगाड़ी बना कर उस स्टेशनसे आगे चले। हममें बहुतेरे यात्री हमारे साथ नहीं आये।

"वायुयान यात्रियों पर बम नहीं बरसाते थे। उनका उद्देश्य स्टेशन नष्ट कर देनेका था, जिससे यात्रामें बाधा पड़े। यदि वायुयान यात्रियों पर बम गिरते होते तो हममें शायद एक भी न बचता। हमारी विपत्ति यहीं समाप्त नहीं हुई। फिर आगे चल कर इस 'भूत गाड़ी' पर वायुयान मँडराने लगे। समय-समय पर यात्रीगण गाड़ीसे उतर कर खेतों,जंगलों और खाइयोंमें छिपते-फिरते थे। एक बार वायुयान सरके ऊपर आ गये। उनके आक्रमणसे बचनेके लिये स्त्री और बच्चे दलदलमें पानीके नीचे लेट गये और जब वायुयान चले गये तब वहाँसे उठे। पोलैण्डकी सबसे बड़ी अदालतके सबसे बड़े जज साहब मेरे साथ इसी गाड़ीसे जा रहे थे। वे एक स्टेशन पर उतर पड़े और बोले, 'इस गाड़ीमें चलनेकी अपेक्षा किसी खेतमें पड़े रहना अच्छा है।'"

"जब जब बम-वर्षा होती तब-तब कुछ यात्री गाड़ीसे निकल कर चले जाते थे। बाकी जो बच जाते थे वे भी भयसे मृतप्राय हो जाते थे। विशेष कर स्त्रियाँ बड़ी भयभीत थीं। बड़ा हृदयविदारक दृश्य था। भोजन और पानी बिलकुल समाप्त हो चुका था। यात्री भूख और प्याससे बेहोश हो रहे थे। इनमें सबसे करुणाजनक दृश्य भयभीत बालकोंका था, जो बमसे बचनेके लिए छिपनेका यत्न करते थे। उनके चेहरे भयसे पीले पड़ रहे थे। उनके रोने और चीखनेकी आवाज मेरे कानोंमें अभी तक गूँज रही है।

"चार दिन तक हमारी गाड़ी इधरसे उधर घूमती फिरी, परन्तु लुब्लिन न पहुँच सकी। कहते हैं कि वहाँ भीषण बम-वर्षा हुई थी। बादमें हमारी गाड़ी चेलम, कोबेल, लक और अन्तमें जेमेनिकमें पहुँची। यहाँ पोलैण्डके वैदेशिक मंत्री और अन्य अफसरों ने जरा सुखकी साँस ली, परन्तु थोड़ी ही देरमें जर्मनीके वायुयान यहाँ भी आ गये। उन्होंने १० बम गिराये जिनसे ३१ आदमी मरे। जिस बमसे बहुत अधिक आदमी मरे थे वह उस मकानके पास ही गिरा था जहाँ मैं अपने परिवार सहित ठहरा हुआ था।

"यात्राका दूसरा कोई उपाय न देख कर कुछ आदमियों ने ग्रामीणोंकी गाड़ियाँ किराये पर ले लीं और कहा कि हमें जेमेनिकसे आगे रूमानियाकी सरहद पर ले चलो। ३ दिन और ३ रात हम सड़कों पर घूमते फिरे और शत्रुके भयसे प्रधान सड़कों पर नहीं चल सकते थे। फिर भी इन छोटी सड़कों पर भी शत्रुके वायुयानों ने हमारा पीछा किया। हाँ, हम पर बम गिरानेका यत्न नहीं किया। मार्गमें हमें हज़ारों शरणार्थी मिले, जो भयभीत होकर भागे चले जा रहे थे, परन्तु उन्हें यह मालूम न था कि किधर जा रहे हैं। सीमाके कितने ही इलाके शरणार्थियोंके लिए बन्द कर दिये गये थे, इससे वे बेचारे इधरसे उधर उसी भाँति भागते थे जिस भाँति कोई जालमें पड़ा हुआ चूहा दौड़ता फिरता हो। हमें साइलेसिया और गेलेसियाके शरणार्थी मिले जो ५०० मील पैदल चल कर आये थे।

"बमबाज वायुयानोंसे जान-मालकी तो हानि होती थी साथ ही मानसिक भावना पर भी बड़ा गहरा प्रभाव पड़ता था। लोगोंमें आतंक फैल जाता था जिससे वह भय और अनिश्चित अवस्थामें पड़ जाते थे। जेमेनिकसे हम जेलेजिस्की पहुँचे जो रूस-सीमाके पास था यहाँके नागरिकोंको यह पूर्ण विश्वास था कि यहाँ जर्मनीके वायुयान बम न गिरायेंगे क्योंकि यह जर्मनी और रूसकी सीमा है और जर्मनीकी रूससे मित्रता हो गयी है।"

जर्मन-चुम्बकीय सुरंगें और जल-युद्ध—हाल ही जर्मनी सुरंगोंकी चर्चा समाचार-पत्रोंमें खूब दिखायी दी। ये सुरंगें भी एक तरहसे बारूदका गोला ही हैं जो टारपिडोके समान ही कार्य करती हैं। टारपिडो दूरसे फेंका जाता है और सुरंगें अपनी जगह पर स्थिर रहती हैं। जब कोई जहाज इनसे टकराता है तो नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है शत्रुके वायुयान या नौकाएँ रात्रिको शत्रुके इर्द-गिर्द समुद्र पर आते हैं और रातके समय पानीके अन्दर तैरनेवाले बड़े-बड़े बमके गोले गिरा जाते हैं। ये गोले दस-बीस हाथ नीचे समुद्रतलमें तैरते रहते हैं और ऊपरसे दिखायी नहीं देते लेकिन जब जहाज इन्हें छूते हैं तब ये गोले फट जाते हैं और जहाज़को डुबो देते हैं। कुछ समय पूर्व जर्मनी ने इंगलैंडके आसपास जो इस प्रकारकी सुरंगें बिछायी थीं उन्हें 'मेगनेटिक या चुम्बकी माइन्स' कहते थे। कहा जाता है कि ये सुरंगें लोहेको देखते ही दौड़ कर उससे भिड़ जाती हैं और फूट कर जहाजेको डुबा देती हैं। सुरंगोंका प्रयोग सबसे पहले १७६१-६५ में अमेरिकन गृह-युद्धके समय हुआ था। उसके बाद फ्रान्स

जर्मन-युद्धमें और १८७८ के रूस टर्की-युद्धमें भी इनका उपयोग किया गया। पिछले युद्धके समय भी सुरंगोंका खूब प्रयोग हुआ था।

सुरंगें बिछानेके लिए वैसे तो कोई भी जहाज़ काममें लाया जा सकता है, परन्तु अधिकतर उसके लिए नौकाएँ अलग रहती हैं। सुरंगें पानीकी सतह पर खिसका दी जाती हैं। पहले तो बारूदके गोलेका बक्स पानी पर तैरता रहता है, परन्तु लोहेका लंगर नीचे डूबने लगता है। लंगर तारकी एक चर्खीसे बारूदके गोलेमें बँधा रहता है। जैसे-जैसे लंगर डूबता जाता है चर्खी खुलती जाती है फिर भी बारूदके गोलेका बक्स पानी पर तैरता रहता है लंगरके साथ, एक बहुत ठोस भारी, लगभग एक मनका, काँटा होता है, जो लंगरकी बनिस्बत तेजीसे पानीमें डूबता है। यह काँटा ही चर्खीको खोल देता है। काँटेकी डोर उतनी लम्बी रखते हैं जितनी गहराई पर सुरंग बिछाना होता है। काँटा और लंगर दोनों समुद्रकी सतह पर बैठ जाते हैं, तब चर्खीका खुलना बन्द हो जाता है और बारूदके गोलेका बक्स भी वांछित गहराई तक डूब जाता है। फिर यह बक्स अपने स्थान पर जमा रहता है और जब जहाज सुरंगके ऊपरसे निकलता है, तब उससे टकराता है और उसकी पेंदीमें छेद हो जाता है।

सुरंगें कई प्रकारकी होती हैं, एक तो नियंत्रित और दूसरी अनियंत्रित। नियंत्रित सुरंगें इच्छानुसार फूटती हैं अर्थात् इनका विस्फोट बिजलीका करेंट पास होने पर ही होता है। उनका नियंत्रण समुद्रके किनारे स्थित बिजली-घरसे होता है। अनियंत्रित सुरंगोंके साथ बिजलीकी बैटरी लगी रहती है और जहाजोंमें टकराते ही फट जाती है। हाल हीमें जर्मनी ने जिन सुरंगोंका प्रयोग किया था वे इसी प्रकारकी अनियंत्रित सुरंगें हैं। उनसे शत्रु और मित्र पक्ष दोनोंको भय रहता है। अंग्रेजोंका कहना है कि इस प्रकार-की सुरंगोंका प्रयोग अन्तर्राष्ट्रीय कानूनके ख़िलाफ़ है।

(वीणासे)

वैज्ञानिक जगतके ताज़े समाचार

[ले० – श्री हरिश्चन्द्र गुप्त एम० एस-सी०]

रँगाई करते समय कर्णरक्षकोंका प्रयोग

रँगनेका काम करते समय आगसे जो चिनगरियाँ निकलती हैं उनसे आँख और कान दोनोंको क्षति पहुँचनेका डर रहता है। कानकी रक्षाके लिये अभी हालमें रबरके कर्णरक्षक बनाये गये हैं जो केवल १ छटाँक भारी होते हैं। कर्णछिद्रके सामने धातुकी एक झिल्ली लगी रहती है।

हवामें ऊँचाईसे फोटो लेनेका कैमेरा

ऊँचाई परसे अन्वेषण करनेके काममें आने वाले वायु-यानोंके) जिनकी दीवारें शीशेकी बनी होती हैं (फ़र्श पर एक वायवीय-सर्वेके मतलबका कैमेरा लगा रहता है जिसमें अन्दर इस्पातके डिब्बेमें बन्द ५०० फुटका फिल्म (रोल) लिपटा रहता है। इसमें ९″×९″ के नापकी ६५० तसबीरें खिंच सकती हैं। ऊपरसे पृथ्वी परके दृश्योंके ४-५ घंटे तक फोटो आ सकते हैं। फोकल क्षेत्र; (लेंज़) ताल इनवार इस्पातके बने रहनेके कारण स्ट्रेटोस्फीयरके तापक्रमका इस पर कुछ भी असर नहीं होने पाता। थोड़े पर बबूलेसे काम करने वाला सम धरातल और ऊपर सिरे पर स्टॉपवाच, संख्या सूचक और फिल्म गेज लगे रहनेसे इस कैमरेका प्रयोगमें सहूलियत और शुद्धताके साथ हो सकता है।

लोहे पर इस्पातकी कोटिंग करनेकी सस्ती विधि

अब एक नई विधि द्वारा थोड़े ही दामोंमें मामूली लोहे पर भी मोरचा न लगने वाले इस्पातकी कोटिंग की जा सकेगी, जो इस प्रकार ठोस इस्पातसे कम दामोंमें पड़ेगा। अब तक सामान्य अल्प-कर्बन वाले इस्पात पर कोटिंग

लगानेमें कर्बन-आर्क वेल्डिंगका प्रयोग करना पड़ता है, जिससे इस प्रक्रियाके बाद लोहा इस्पातके दानोंमें ही पड़ता था ।

एक तरफ सफेद और दूसरी तरफ काले टायरोंका प्रयोग

अच्छे दीख पड़नेके कारण जो व्यक्ति मोटरोंके पहियोंमें सफेद टायर प्रयोग करते हैं उनके लिये अब ऐसे टायर बने हैं जो एक तरफ काले और दूसरी तरफ सफेद हों। काली सतह अन्दरकी ओर रहती है और सफेद बाहर। जब प्रयोग करते-करते टायरोंके बाहरकी सफेद तह मैली हो जाय तो बक्स पलट कर उनकी अन्दर वाली काली तह बाहर की ओर जा सकती है और वे मामूली तौर पर काले टायरोंकी तरह दीखने लगेंगे। वैसे भी यदि दोनों ओर टायर सफेद हों तो जो तह अन्दरकी ओर रहती है वह बाहरकी तहसे अधिक मैली हो जाती है क्योंकि धूल, कीचड़ और ग्रीज आदि प्रायः टायरोंमें अन्दरकी ओर ही जमा होते हैं। इससे दोनों तहें ख़राब हो जाने पर टायर किसी तरफ से भी अच्छा नहीं लगता।

सिगरेटमें कण्डेंसर

जलती सिगरेट रखनेके लिये एक ऐसा होल्डर बना है जो कण्डेंसरका भी काम करता है। सिगरेटका धुआँ घूमता हुआ होल्डरमें होकर निकलता है जिससे धुएँकी अशुद्धता और नमी दूर हो जाती है और धुआँ ठंडा हो जाता है। कंडेंसरको सफ़ाईके लिये आसानीसे निकाला जा सकता है।

आलूकी पत्तियोंका क़ाग़ज़

जर्मनीके अखबारकी एक प्रति आलूकी पत्तियों और तनोंसे बने काग़ज़ पर छपी। लकड़ीके पल्पकी जगह और वस्तुओंका प्रयोग करनेके लिये ऐसा किया गया।

नेत्रोंके अगल-बगल देख सकनेकी शक्तिका नाप

यदि नेत्रोंमें कोई दोष न हो तो सामनेको दृष्टि किए हुये अगल-बग़ल ९०° के कोण तक कोई भी चलता हुआ पदार्थ दीख पड़ना चाहिये क्योंकि रेटीनाके बाहरी भाग द्वारा गतिका अनुभव बहुत शीघ्र होता है। यदि किसीको इस कोण तक दिखाई न पड़े तो उनके नेत्रोंमें कुछ दोष है जिसके कारण सड़क परकी दुर्घटनाओंकी सम्भावना बढ़ जाती है। ऐसी अवस्थामें डाक्टरोंको आँख दिखानी चाहिये। अस्तु, पार्श्व दृष्टिके (अगल-बगल कितनी दूर तक देख सकते हैं) शुद्ध नापके लिए अमरीकाकी ऑप्टीकल कंपनी ने एक पेरीमीटर बनाया है। एक अर्ध गोलाकार चौखटेके बीचोबीच एक आँख बन्द कर दूसरी स्थिर कर ली जाती है। तब इस चौखटेमें होकर रङ्गीन वस्तुएँ चलती हैं। जिस कोण तक आँख दो विभिन्न रङ्गकी वस्तुओंको पहचान सकती हैं वह चौखटे पर खुदी १८० डिगरियोंके पैमानेसे पढ़ लिया जाता है। इस प्रकार विभिन्न रङ्गोंके लिये नेत्रोंके दृष्टि-क्षेत्रका अनुमान हो जाता है। सामान्य अवस्थामें यह क्षेत्र श्वेत रंगके लिये सबसे अधिक, फिर नीले, लाल और हरेके लिये क्रमशः कम विस्तृत होता गया है।

सूर्यतापको संचय करने वाला मकान

मैसेट्यूसैटसके इंस्टीट्यूट ऑफ टेकनॉलॉजीमें सूर्यताप के विभिन्न उपयोगोंकी जाँच करनेके लिए एक ऐसा मकान बना है जिसकी छतें सूर्यकी गरमी और शक्तिको खींचकर फर्शके नीचे एक तालाबमें भविष्य प्रयोगके लिये संचित करेंगी। मकानको जाड़ेमें गरम रखना, गरमीमें वायु सुधारने (एअर-कंडिशनिंग) और शक्ति पैदा करनेकी समस्यायोंके हल करनेमें इस गरमीका प्रयोग होगा।

लोहेके तारको इस्पातका बनाना

वेस्टिंगहाउसके एंजीनियरों ने इस बातका पता लगाया है कि अगर लोहेका तार अलकोहलके वाष्पके संसर्गमें गरम किया जाय तो वह इस्पातमें परिणत हो जाता है। एक नलीके जिसमें लोहेका तार बन्द रहता है, दोनों सिरों पर एलेकट्रोड लगे रहते हैं। इस नलीमें हाइड्रोजन गैस अलकोहलमेंसे होकर भेजी जाती है। तार गरम होने पर अलकोहलके कार्बनसे मिल जाता है और इस्पात बन जाता है।

गैस कवचमें लाउड स्पीकर

गैस (मास्क) कवचमें अब ध्वनि संवर्द्धक (लाउड-

स्पीकर) और माइक्रोनफोन लगे रहनेसे अब सिपाहियोंको हुक्म देना और बात-चीत करना दोनों सम्भव हो गये हैं। पहिले केवल संकेतों द्वारा ही बात-चीत हो सकती थी नहीं तो मुखावरण ही उतारना पड़ता था।

स्केटिंगमें तीन पहिये

अब स्ट्रीम लाइनदार स्केटिंगमें एक लाइनमें तीन पहिये लगा देनेसे स्केटिंगके खेलमें विशेष आनन्द और स्फूर्तिका अनुभव होता है। स्केटके अगले हिस्सेको उठा देनेसे ब्रेक लग जाते हैं।

जंगलोंकी आग बुझानेमें पैरेशूटका प्रयोग

रेल और सड़कोंसे दूर जंगलोंमें छोटी-सी आग सुलगकर इतनी बढ़ जाती है कि हजारों एकड़ ज़मीन जल कर भस्म हो जाती है। पहिले इसके कि फॉरेस्ट सर्विस (जंगल-विभाग) के आदमी उसे बुझानेके लिए वहाँ पहुँचें अग्निके इन भीषण काण्डोंसे रक्षा करनेके लिए पच्छिमी लकड़ीके जंगलोंमें उड़ाऊ अग्नि-संरक्षक (फ़ायरमैन) पैरेश्यूट द्वारा सीधे पेड़ोंकी चोटी पर उतर पड़ते हैं और अग्निको भीषण रूप धारण करनेसे पहिले ही बुझा देते हैं। अग्नि संरक्षक स्पंज रबड़ और कैनवसकी अग्नि-प्रूफ पोशाक पहिने रहता है जिसमें एक विशेष प्रकारका टोप, टखेनों और गर्दनकी रक्षाके लिए स्प्रिंगका साधन होता है जिससे लकड़ीके या चट्टानके ऊपर पैरेश्यूट द्वारा कूदनेमें कोई धमक न आये। मौकेकी जगह ढूँढ़ कर पहिले वह एक थैला डालता है जिसमें कुल्हाड़ी, फ्लैशलाइट, कम्पास, (फर्स्टएड) प्राथमिक चिकित्साकी दवाएँ, और कभी-कभी एक रेडियो-सेट भी होता है। पैरेश्यूट जिस दशामें चाहें चलाया जा सकता हैं और १४ फुट प्रति सेकंडसे कमकी गति पर उतर सकता है। कोटकी जेबमें एक रस्सी रक्खी रहती हैं जिसके द्वारा अगर चाहे तो पेड़की चोटीसे उतर कर नीचे आ सकता है।

कपड़े टाँगनेका वैक्युम हुक

कपड़े टाँगनेके लिये एक ऐसा हुक बना है जो वैक्युमके सहारे दीवारसे चिपका रहता है। इसे दीवारमें गाड़ने या कसनेकी जरूरत नहीं पड़ती। केवल रबरके प्यालेकी दीवारसे सटाकर दबा दीजिये और हुकको नीचे खींच लीजिये और यह बराबर दीवारसे चिपका रहेगा। यह मोटरोंकी खिड़कियोंमें भी लगाया जा सकता है और हुकको जगह क्लिप-का प्रयोग हो तो कलेण्डर आदि टाँगे जा सकते हैं। इस पर साबुनकी डिब्बी या पानी पीनेका गिलास भी रखनेका आयोजन किया जा सकता है।

प्लैटीनमसे सोना बनाना

कोलम्बिया यूनीवर्सिटीकी प्रयोगशालामें प्लैटीनमकी एक पतली चादरको शीशेकी छड़, जिसमें रेडियमके द्वारा हों, के संसर्गमें रख सोनेकी उत्पत्तिकी गई है। एक भारी सीसेके डिब्बेमें कई घंटों तक बंद रखने पर रेडियम हज़ारों परमाणु प्लैटीनममें बड़े आवेगसे छोड़ता है जिससे सोना बन जाता है। हाँ, सोना इतनी थोड़ी मात्रामें बनता है कि इसकी जाँच एक बहुत ही कोमल यंत्र जो सोनेके परमाणुओंके विकीरणको नापता हो उसके द्वारा की जा सकती है।

तीन नुसखे

१—धातुओंकी चादरों पर अगर ठीक-ठीक छेद करने हो तो पहिले एक गोंद लगा कागज़का फीता उस पर चिपका दीजिये। उस पर ठीक-ठीक निशान लगाकर काम शुरू कर दीजिये।

२—अल्युमिनियमकी वस्तुमें छेद करते समय बरमेमें पैरेफीन लगानेसे वह हल्का चलने लगता है। फिनिश करते समय भी रेगमाल पर पैरेफीन लगानेसे काम बढ़िया होता है।

३—रस्सी सिरे पर खुल रही हो तो उसे रोकनेके लिए वार्निशमें जो हवामें रक्खे-रक्खे दुगुनी गाढ़ी हो गई हो डुबो दीजिये।

मलमलसे शीशेका काम लेना

पैरेफीनसे भिदने पर मलमल शीशेका काम करती है। पैरेफीनको आग पर पिघलाइये। फिर उनमें बैनज़ीन या गैसोलीन (सात गुनी मात्रामें) डालकर मिश्रणको खूब चलाइये। कपड़ेको इसमें अच्छी तरह डुबाकर फैलाकर

सुखा दीजिये जिससे कपड़ेमें मोड़ें न पड़ें। गैसोलीन रहने से पैरेफीन ठण्डे होने पर भी द्रव अवस्थामें रहा करता है। इस प्रकार तैयार कपड़ेमें काफ़ी प्रकाश पार हो सकता है, वायुकी नमी पार नहीं हो पाती, लेकिन हवा पर्याप्त मात्रामें छनकर अंदर चली जाती है। आँधी भी इसमेंसे नहीं गुज़र सकती। यह पकड़ा मुर्गीखानेमें, पौधोंकी छाया करनेमें और खिड़कियोंके टूटे शीशोंकी जगह भी काम आ सकता है।

एनामेलके अक्षरोंको उचेड़ना

एनामेलके अक्षरको शीशे पर मामूली तौर पर सीमेंट द्वारा चिपकाये हुए को, सितारकी गट (डोरी) से हटाये जा सकते हैं जिससे शीशेके चटकनेका डर नहीं रहता। पहिले अक्षरके सिरे पर थोड़ा-सा कोना खुरच लीजिये। अगर थोड़ी-थोड़ी देर बाद रोज़िन पाउडर लगा दिया जाय तो काटनेमें सुविधा होता है।

एक विशेष प्रकारकी छैनी

मुलायम धातुओंमें दरार (ग्रूव) काटनेके लिए या उस पर रिकेटों (झग्डा) कीलोंको तोड़नेके लिए छैनी चलाते समय धातुके कण उड़ते हैं जिनसे नुकसान पहुँचनेका डर रहता है। इसे रोकनेके लिये या छैनीकी धारके ऊपर एक ओंठ-सा हिस्सा आगे निकला हो और धारको ढके हों तो कण उसीसे रुक जाते हैं।

फिल्म छूनेके लिये रबरके दस्ताने

अँधेरी कोठरीमें फोटोके फिल्म या कागज़ किनारेसे बड़ी होशियारीसे पकड़े रहना पड़ता है जिससे उनके बीच में अँगुलियोंके धब्बे न पड़ जायँ। इसमें बड़ी असुविधा होती है। यदि रबर या चमड़ेके दस्ताने पहन लिये जायँ तो फिल्मको कहीं भी पकड़े, बिगड़नेका डर न रहेगा।

भीगी लकड़ीको जलाना

लकड़ीके लट्ठे जो भीगे होनेके कारण न जलते हों उनके सिरे यदि २ इंच गहरे क्रेंकसेस तेलमें आध-आध घंटे तक डुबो दिए जायँ तो फिर लकड़ी खूब जलेगी। लकड़ीने जो तेल सोखा है वह जलेगा और उसकी लपट नमीको लकड़ीके उन हिस्सों जहाँ तेल नहीं पहुँचा है निकाल देगी।

पुराने नेगेटिवोंसे स्टेंसिल बनाना

सैलुलॉइडके पुराने (फोटोके) नेगेटिवोंसे अच्छे स्टेंसिल बन सकते हैं। अगर आवश्यकता हो तो सीमेंट द्वारा कई एक नेगेटिव एक साथ चिपकाकर किसी भी मोटाईका स्टेंसिल बन सकता है। काटनेके लिए तेज़ चाकू या उस्तरे के पुराने पत्तेका प्रयोग करें। नेगेटिवके आर-पार न काटे। केवल ऊपर नीचे दोनों ओर गहरा निशान करके दोनों तरफसे कटान परसे मोड़नेमें सैलुलॉइड सफ़ाईसे अलग हो जायगा।

दो नुसखें

१—कम्बल आदि पर अगर कालिख गिर पड़े तो फ़ौरन झाड़ देनेके पहले उस पर नमक छिड़क दिया जाय और थोड़ी देर बाद झाड़ा जाय।

२—यह देखनेके लिए कि पसीनेसे रेशमका रंग तो नहीं छूटता है, रेशमको १० मिनट तक हल्के सिरकाम्लके घोलमें डुबाइये और बिना मले निकालकर सुखा दीजिये कुछ दिनों बाद असली रेशमसे उसकी तुलना कीजिये।

टॉर्चके लिए स्टोरेज बैटरी

टॉर्चमें जो सूखी बैटरी प्रयोग की जाती हैं वे कुछ दिनों बाद बेकार हो जाती हैं। सूखी बैटरियोंकी की जगह स्टोरेज बैटरी इस्तेमाल करें तो खर्चा कम पड़ता है क्योंकि इस स्टोरेज बैटरीके खतम हो जाने पर फिर चार्ज कर सकते हैं। टॉर्चके अन्दर ठीक नापकी एक छोटी स्टोरेज बैटरी बनी है इसमें विद्युत् विश्लेष्य (ऐलेक्ट्रोलाइट) न ठोस ही होता है न द्रव। इसे फैलनेसे रोकनेके लिए प्रबन्ध होता है। थोड़ा ही ध्यान देने पर इसके पारदर्शक लूसाइटमें देखनेसे मालूम पड़ जाता है कि इसमें कब भपकेका पानी मिल जाय। घरमें काम आने वाली उल्टी सीधी धारा (आल्टरनेटिंग करेंट) से या मोटरकी बैटरीसे यह चार्ज हो सकती है।

जेलसे छूटने पर फुप्फुस मछलीका भौंकना

१०००० मीलकी यात्राके प्रारम्भमें एक मछली, जिसे हम फुप्फुस-मछली कहेंगे, मुलायम कीचड़में रक्खी गई और यह कीचड़ धीरे-धीरे सूखती गई। जब तक कीचड़ मुलायम रही यह मछली समय-समय पर मिट्टीकी सतह पर फुप्फुसमें हवा भरनेके लिये आ जाती। अंतमें यह तह में बैठ गई। कौकून नामकी एक झिल्ली इसने अपने चारों ओर छोड़ दी और जितनी थोड़ी-सी हवाकी इसे आवश्यकता पड़ती वह इस झिल्लीमें किनारे पर एक पतली नली द्वारा जो ऊपरी सतह तक पहुँची होती है खींच लेती। यात्राके अंतमें जब मछली निकाली गई तब वह सेलूलोज़ के समान कौकून मिला। सुप्तावस्थासे उठ मछली भौंकनेका-सा शब्द किया। यह फुप्फुसमेंसे हवा निकालनेके कारण हुआ। यद्यपि बहुत दिनों तक सूखे रहनेसे यह पतली हो गई थी, लेकिन देखनेमें स्वस्थ मालूम पड़ती थी। वैज्ञानिकोंका कहना है कि ५ करोड़ वर्ष पूर्व जब उच्च श्रेणीकी प्रायः सभी मछलियाँ फुप्फुस द्वारा श्वास लेती थीं तभी की मछलियोंकी वंशज अभी तक विद्यमान यह मछली है।

मोटर साइकिलमें भोंपू

दक्षिणी अफ्रीकामें डरबनकी मोटर साइकिल वाली पुलिस सड़क पर चलती भीड़को ठीक रास्तेकी ओर अंकित करने और दुर्घटनाओंसे सुरक्षा करनेके लिये मोटर साइकिल की बगलमें एक ओड़ी लगा देते हैं जिन पर एक ज़ोरका भोंपू लगा रहता है। एक आदमी गाड़ीको चलता है दूसरा भोंपूका।

समालोचना

चमचम—संपादक-श्री गंगाप्रसादजी उपाध्याय एम० ए०, श्री विश्वप्रकाश जी बी० ए० एल-एल० बी० और श्री श्रीप्रकाश जी। प्रकाशक-कलाप्रेस बहादुरगंज, प्रयाग। वार्षिक मूल्य २) एक अंकका ≈)।

चमचम बालोपयोगी मासिक पत्र काफी समयसे हिंदी में बाल-साहित्यकी सेवा कर रहा है। इसका सितम्बर १९४० कवितांक विशेषाङ्क है। कवर पर विरंगा मनमोहक चित्र है और भीतर भी अधिकांश कवितायें सचित्र हैं। हिन्दीके वर्तमान बाल-साहित्यके लगभग सभी कवियोंकी कवितायें इसमें पढ़नेको मिलीं। इससे यह आसानीसे कहा जा सकता है कि पत्रको बाल-साहित्यके प्रमुख कवियोंमें पं० सोहनलाल जी द्विवेदी, श्री विद्याभूषण जी विभु, ठा० श्रीनाथ सिंहजी और स्वर्ण सहोदर आदि का सहयोग प्राप्त है। छोटे बालकोंके सचित्र इधर जितने पत्र निकल रहे हैं उनमें चमचमका एक प्रमुख स्थान है। आशा है जनता चमचमका उचित आदर करेगी।

—बाबूराम पालीवाल

रसायन शास्त्रान्तर्गत नवल कथा—मूल लेखक – श्री रा. ना. भागवत, अनुवादक श्री गजानन जागीरदार बी० ए० प्रकाशक, जयवंत मोरेश्वर माहीमकर, हिंद प्रिंटिंग वर्क्स, गिरगाम बम्बई नं० ४। पृ० १५५। मूल्य १।) सजिल्द। छपाई आदि सुन्दर।

प्रो० भागवत अँग्रेजी और मराठीके अच्छे लेखक और रसायन शास्त्र के विख्यात ज्ञाता हैं। आपने अँग्रेजीमें अकार्बनिक रसायन पर अच्छी पुस्तकें लिखी हैं। हर्षकी बात है, आपके मराठी ग्रन्थका यह हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हुआ है। इस प्रस्तुत ग्रन्थ में भागवत जीके विविध लेखों का संग्रह है जैसे हिन्दी भाषा और वैज्ञानिक शिक्षा, रसायन शास्त्र, रसायन शास्त्रका वैज्ञानिक महत्व, सागर सर्व समृद्धि भागर, खनिज द्रव्य और सांसारिक परिवर्तन, जीवन और उनके साधक, रसायन शास्त्रसे कुछ शिक्षा, मंगलपर मनुष्यवासकी संभावना, और चर्म रँगनेकी कला।

मातृ-भाषामें वैज्ञानिक शिक्षा दी जानी चाहिये, इसकी आपने युक्तियोंसे पुष्टिकी है। हिन्दी राष्ट्र भाषा है, और हर्ष का विषय है कि हमारे अन्य प्रान्तीय भाषियोंका ध्यान इस ओर आकर्षित हो रहा है। भागवतकी यह पुस्तक अत्यन्त सुन्दर, सारगर्भित और पठनीय है। हम आपको बधाई देते हैं।

— सत्यप्रकाश

विषय-सूची

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग।

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते.
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्याभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ५२ | प्रयाग, वृश्चिक संवत् १९९७ विक्रमी नवम्बर, सन् १९४० | संख्या २

मिथ्या-भाषणका विज्ञान द्वारा अनुसन्धान

(ले० श्री ब्रजवल्लभ)

तीन चार वर्ष पहले किसी अपराधीके भाषणमें सत्यता और असत्यताके मालूम करनेके लिये न्यायाधीश अनुभवको ही कार्यमें लाते थे परन्तु अब इसके जाननेके लिये यंत्रोंका भी आविष्कार हो गया है। प्रथम यंत्र 'कोलर पोलीग्राफ'-के नामसे प्रसिद्ध है। संसार भरमें इसका सबसे अधिक उपयोग केनससमें विचिटा नामक देशमें होता है। वहाँके पुलिस-विभागमें इस यंत्रसे वार्षिक क़रीब १३०० अपराधियोंको परीक्षा की जाती है।

इस यंत्रकी कल इस पर निर्भर होती है कि जब कि कोई मिथ्या-भाषण करता है तब उसके शरीरमें कुछ घबराहट आदिके पैदा होनेसे उसके रक्त-भार और श्वासकी गतिमें बढ़ोत्तरी और घटी होती है। यंत्रमें कल इस प्रकार लगी होती है कि उससे एक साथ ही यह रक्तभार और श्वासकी गति मालूम होती रहती है और अपने-आप कलोंमें लगे हुये दो कलमोंसे एक उनके नीचे चलते हुये कागज़ पर इनकी रेखायें खिंचती चली जाती हैं। उन रेखाओंमें उतार-चढ़ावके विन्दु देखे जाते हैं जो कि मिथ्या-भाषणसे मिलते हैं।

इस यंत्रकी सच्चाई मालूम करनेके लिये हम इसके प्रयोगके परिणामों पर गौर करेंगे। १९३६ से १९३८ ई० तक करीब ४,००० मनुष्योंकी परीक्षाओंके विषयमें ठीक-ठीक प्रकार इस यंत्रसे मालूम करके यह निश्चय किया गया कि इस यंत्रसे यह बिलकुल ठीक मालूम हो जाता है कि पुलिस द्वारा पकड़े हुये बहुतसे मनुष्योंमेंसे कौन-सा अपराधी है।

४,००० मनुष्योंकी परीक्षामें जो रेखायें बनीं उनमेंसे ३,०२६ की रेखायें बिलकुल साफ और एक-सी बिना किसी उतार-चढ़ावके पाई गईं जिससे यह सिद्ध हुआ कि वे सत्य-

वादी थे। उन मनुष्योंमें १६६० तो सड़कोंमें खाली घूमने वाले थे, ये और अपराधियोंके साथ पकड़ लिये गये थे। शेष ६७४ मनुष्योंकी रेखाओंसे उतार-चढ़ावसे उनका मिथ्या-भाषण सिद्ध हुआ। इन पर सख्ती करने पर ५३७ ने अपना अपराध स्वीकार कर लिया। शेष ४३७ मेंसे २८७ मनुष्यों को छोड़ देना पड़ा क्योंकि उनके विरुद्ध कोई सबूत पुलिस न दे सकी। शेष १५० को पुलिस ने अदालतके सामने पेश किया है। उनमेंसे ११२ को सज़ायें और ३४ को रिहाई की आज्ञा दी गई, शेष ४ का जुलाई १६३८ तक विचार हो रहा है और कोई आज्ञा न दी गई है।
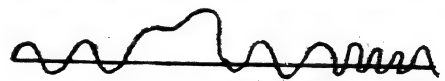
ऊपरके अंकोंसे हम देखते हैं कि ५५.१ प्रति सैकड़ा मनुष्यों ने जिनको यंत्र द्वारा खिंची हुई रेखाओंसे मिथ्या-भाषण ज़ाहिर होता था अपने अपराधको स्वीकार कर लिया। इसके अतिरिक्त ७४.७ प्रति सैकड़ा मनुष्यों ने जिनकी रेखाओंसे अपराध सिद्ध होता था अपने अपराधको स्वीकार न किया परन्तु उन सबको न्यायाधीश ने अपराधी माना।

इन ४,००० मनुष्योंमें ३६ मनुष्योंकी रेखाओंको ठीक प्रकारसे न पढ़ा गया। क्योंकि वह मनुष्य मस्तिष्क और शारीरिक कमज़ोरियों, और बीमारियोंके कारण एक बात पर नहीं जमते थे, कभी वे कुछ बोलते थे और कभी उसके विरुद्ध। इसके अतिरिक्त हम देखते हैं कि ६६.६ प्रति सैकड़ा मनुष्योंकी परीक्षा द्वारा खिंची हुई रेखाओंसे ठीक प्रकारसे मालूम हुआ कि वह सत्य अथवा मिथ्या-भाषण दे रहे हैं या नहीं।

अब हम इसके दो उदाहरणोंको प्रत्यक्ष रूपसे दिखलाते हैं। एक नवयुवक ने एक चोरी की। पुलिस ने उस पर संदेह करके उससे मालूमात की। उसने बिलकुल सफेद झूँठ बोला। इस यंत्रकी शरण उसे दी गई। परीक्षक ने उससे चुराई हुई वस्तुके विषयमें प्रश्न पूँछे। इसके उत्तर देते समय रक्त-भार और श्वास-गतिकी रेखायें खींची गईं। नीचे दिये गये चित्रमें नीचेकी रेखामें उसके रक्तभार और ऊपरकी रेखा में उसके श्वासकी गति दिखलायी है।

इन उतार-चढ़ावसे उसे अपराधी सिद्ध किया गया। उसने अपना अपराध स्वीकार किया। उसी प्रकार दूसरे एक मुकदमेमें एक उस मनुष्यकी रेखायें खींची गई हैं जिसके अपराधके विषयमें पुलिस कोई सबूत न दे सकी। इस प्रकारकी परीक्षाओंमें परीक्षक अपराधियोंसे उनके अपराधके विषयमें प्रश्न पूछता है। उदाहरणार्थ—

क्या आपने कभी गतवर्ष कोई चोरीकी थी?
क्या आपने अपने सब प्रश्नोत्तरमें सत्य भाषण दिया है?
क्या आपने कोई अपराध किया हैं?
क्या आप कभी पुलिस द्वारा पकड़े गये?
क्या आपको किसी न्यायाधीशके सामने हाज़िर होना पड़ा?

इस प्रकारके प्रश्न पूँछकर परीक्षक ठीक प्रकारसे मालूम कर सकता है कि यह मनुष्य अपराधी है। ऊपरके साधारण अपराधोंके उदाहरणोंसे यह नहीं सोचना चाहिये कि यंत्र इन्हीं अपराधोंके कामका है। ४००० अपराधियोंमें ५२ अपराधियों ने कत्लका अपराध किया था। परन्तु इसके साथ-साथ यह भी नहीं सोचना है कि यह यंत्र हरेक अपराध के लिये ठीक ही है। उसकी बहुत ज्यादा सफलता परीक्षक-के ऊपर भी निर्भर है। उसके प्रश्न पूँछनेकी विधि और फिर रेखाओंका ठीक-ठीक अर्थ सोचना।

अब हम दूसरे यंत्रका वर्णन करेंगे। इसे फादर व्य-मर्स ने बनाया। आप अमरीकन विश्वविद्यालयमें मनो-विज्ञान मस्तिष्क-शास्त्र-विभागके मुखिया हैं। यह यंत्र इस प्रयोग पर निर्भर है कि जब कोई मनुष्य मिथ्या-भाषण करता है तब उसकी मनोवृत्तियोंमें कुछ प्रभाव सांवेदनिक होता है। इस प्रभावके कारण शरीरसे निकली हुई विद्युत्‌की मात्रामें घटती बढ़ती होती है। मनुष्यके शरीर और विद्युत् मात्रा नापने वाले यंत्रको ताँबे अथवा चाँदीके तारोंसे जोड़ देते हैं। जब शरीरसे निकली हुई विद्युत्‌की मात्रा घटती-बढ़ती है तब इस यंत्रमें लगी हुई भी हिलती है। इस सुईके अकस्मात् हिलनेसे हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि उस समय मनुष्य मिथ्या बोलता है। इस यंत्रमें अब उन्नति कर दी गई है। यंत्रकी सुईको एक लिखते हुये क़लमकी भाँति बनाया जाता है और उसके नीचे एक मोटर द्वारा क़ागजकी एक पहिया चलती रहती है। इससे सुईके चलनेकी क़ागज पर रेखायें खिंचती चली जाती हैं। इन रेखाओंकी परीक्षा करके यह मालूम किया जा सकता है कि वे अकस्मात् किस स्थान पर ऊँची या नीची हो गई। इन स्थानों पर मनुष्य ने मिथ्या-भाषण किया है और स्थानों

पर जहाँ पर कि रेखायें एकसी समतल हैं वे सत्य-भाषण बतलाती हैं। इस उन्नतिसे यह लाभ है कि परोक्षकको अपराधीसे प्रश्न पूँछते समय यंत्रको सुईको नहीं देखना पड़ता। परीक्षाके उपरान्त क़ागजको रेखाओंको देखनेसे वह अपना उद्देश्य पूर्ण कर लेता है।

इसके प्रयोगके उदाहरणार्थ एक मनुष्यको ताशके छः पत्ते दिये गये और उससे उनमेंसे एक अपने मनमें ही छाँटनेको कहा गया। उसके बाद हरेक पत्तेको उसके सामने दिखाया गया और उसके साथ-साथ यह भी पूछा गया कि क्या यही आपका छाँटा हुआ पत्ता है। हरेक बार मनुष्य ने कहा 'नहीं'। एक बार उसने मिथ्या बोला। प्रयोगके उपरान्त यंत्रके परीक्षक ने क़ागज पर खिंची हुई रेखाओंका निरीक्षण करके उसे उसका छाँटा हुआ पत्ता बतलाया। जिस स्थान पर मनुष्य ने झूँठ बोला वहाँ पर सुईके क़लमके हिलनेसे रेखायें भी ऊपर नीचे हो गई थीं।

इस यंत्रके आविष्कारके अनुसार इससे सौ प्रति सैकड़ा ही किसी भाषणमेंसे सत्य और मिथ्या अलग-अलग किया जा सकता है। अमरीकाको न्यायकी अदालतोंमें इसकी सत्यता स्वीकार की जा चुकी है। अगर इसका वहाँ पर उपयोग हरेक न्यायाधीश द्वारा होने लगे तब न्यायाधीश अपने वक्तव्योंको क़ागजी बातों पर ही न निर्भर करके वास्तविक सत्य मालूम कर सकेंगे। उस शुभ दिवसका सूर्य्योदय दूर नहीं मालूम पड़ता है कि जब संसारके हरेक प्राणी अपने अन्तःकरणके डरसे नहीं बल्कि इस यंत्रके डरसे सत्य भाषण देंगे। इसका उपयोग फिर गृहस्थ अथवा सामाजिक क्षेत्रोंसे बढ़कर राजनैतिक मामलोंमें हो लगेगा। तब ही समस्त संसारमें शान्ति स्थापित होगी। लड़ाई-झगड़े भी बिलकुल बन्द हो जायेंगे। मनुष्य जाति फिर अपने मस्तिष्क द्वारा कलयुगको सतयुगमें परिणत कर लेगी।

हम स्वप्न क्यों देखते हैं ?

[ले० — श्री हरिश्चन्द्र गुप्त एम० एस-सी]

इस लेखमें कतिपय सामान्य भयावह दृश्योंका जिन्हें हम प्रायः स्वप्नोंमें देखते हैं, वर्णन है और साथ-साथ आधुनिक मनोवैज्ञनिकोंके मतानुसार उनका स्पष्टीकरण है।

मनुष्य मात्रको सहस्त्रों वर्षोंसे स्वप्न एक रहस्य रहा है और अब भी मनोवैज्ञानिकके लिये एक अत्यंत गूढ़ विषय है। स्वप्न क्यों दीखते हैं? कितने समय तक दीखते हैं? एक रात्रिमें कितने स्वप्न दिखाई देते हैं? पुरुषको अथवा स्त्रीको किसे स्वप्न अधिक विवरणके साथ दिखाई देते हैं? फिर स्वप्नमें ऊपरसे गिर पड़नेके, हवामें लम्बी उड़ान भर सकनेके, जंगली जानवरोंसे पीछा किये जानेके, जनतामें बिना कपड़े पहिने सामने आजानेके क्या कारण हैं, ये सब प्रश्न प्रत्येक व्यक्तिके लिये विशेष रूपसे मनोरञ्जनके साधन हैं।

घोर परिश्रम और अनुसंधानके पश्चात् वैज्ञानिकोंने सुप्त मस्तिष्ककी रहस्यमयी क्रियाओंका पता लगाया और कुछ सामान्य स्वप्नोंके कारण बतलाये। उदाहरणतः ऊपरसे गिर पड़नेके भयानक स्वप्नका कारण कोई विशेष बात न होकर केवल यही हो सकता है कि बिस्तरा बीचमें नीचेकी ओर लचक गया हो; जंगली जानवरसे पीछा किये जानेका कारण बहुधा यह होता है कि स्वप्न देखने वालेको किसी ऐसे व्यक्तिका डर लगा रहता है जिसके सामने जागृत अवस्थामें उसकी नहीं चलती। बहुतसे मनोवेत्ताओंकी भावना है कि स्वप्नावस्थामें उड़नेकी समर्थता हो जानेका कारण श्वास अंगकी सामञ्जस्यपूर्ण गति है। निद्रावस्थामें ओढ़नेका कपड़ा हटने और ठंड लग जाने ही से ऐसे स्वप्न दीखने लगते हैं कि व्यक्ति जन-समुदायमें अपर्याप्त कपड़े पहिने खड़ा है। जब आपको स्वप्नमें ऐसा भास हो कि दंत-विशेषज्ञ आपका दाँत बाहर खींच रहा है और आप बड़ी दयनीय दशामें हैं तो सम्भव है कि इसका कारण यह हो कि दाँतोंमें रुधिर असमान गतिसे प्रवाहित होनेसे किसी एक दाँतमें दर्द होना आरम्भ हो गया है या कोई मसूढ़ा फूल रहा है। अगर पाँव ओढ़नेमें फँस गये हों तो प्रायः ऐसे स्वप्न दीखते हैं कि सभी कामोंमें बाधाएँ पड़ रही हैं, अखिरकार गाड़ी छूट ही तो जाती है। दिनमें किसी समस्यापर घंटों मनन करने पर भी असफलता मिलनेके कारण स्वप्नमें यही दीखता है कि परीक्षा-भवनमें प्रश्नपत्र सामने रक्खे हुए तीन घंटे व्यतीत हो गये और एक दो प्रश्नका ही उत्तर दे पाये, वह भी असंतोषजनक। हार्दिक या पाचक-

विकारोंके कारण स्वप्नमें क़त्लके दृश्यों पर ही नौबत आ-जाती है।

मनोवेत्ताओंका अनुमान है कि स्वप्नावस्थाकी बहुत-सी अनोखी घटनाओं और स्थितियोंके कारण केवल भौतिक समवेदनाएँ हैं जिन्हें व्यक्ति किसी रोचक परिस्थितिका मन-गढ़न्त कर अपने मनको समझा लेता है। भौतिक उत्ते-जना, हृदयका हाथोंसे दब जाना, रक्तप्रवाहमें कमी आ जाना, खिड़कीका बन्द हो जाना, अकस्मात् मेह आँधीका आ जाना आदि घटनाओंसे दृश्योंकी एक ऐसी झड़ी-सी लग जाती है जिसे हम स्वप्न कहनेको बाध्य होते हैं।

प्रयोग-शालामें की गई जाँचमें व्यक्ति सुप्तावस्थामें बिजलीके पंखेकी भनभनाहट शुरू होते ही वायुयानोंके स्वप्न देखने लगे। जलती दियासलाईसे गंधकका धुआँ जब नाकोंमें पहुँचा तो विस्फोटनके दृश्य दिखाई पड़ने लगे। हाथों पर जब भीगी रुई फेरी तो उन्हें कुत्ते अथवा किसी और जानवरसे चाटे जानेका आभास होने लगा। जब बन्द नेत्र पटल पर लाल रोशनी चमकाई तो उन्हें ऐसा प्रतीत होने लगा मानों वे आँधी और बिजलीके तूफानमें हों।

अनुमान किया जाता है कि ६०% से अधिक स्वप्न दृश्योंसे संबन्ध रखते हैं। इससे कम कर्ण-सम्बन्धी स्वप्न हैं जिनमें शब्द और शोर होता है और व्यक्तियोंकी अपेक्षा गवैये ये स्वप्न अधिक देखते हैं। सूँघने और स्वाद के स्वप्न सबसे कम सुननेमें आते हैं। सामान्यतया स्वस्थ व्यक्ति आनन्ददायक स्वप्न देखते हैं और बीमार दुःख-दायक। ४ सालसे कम अवस्थाके बच्चोंको बहुत कम स्वप्न दीखते हैं। २० और ३५ सालकी आयुके बीचमें सुप्त मस्तिष्क सबसे अधिक क्रिया-शील रहता है। ६५ वर्षसे ऊपर व्यक्ति अपेक्षतया कम स्वप्न देखते हैं और उनमेंसे अधिकांश सुदूर भूतकालकी घटनाओं और दृश्योंसे संबन्ध रखते हैं।

कुछ व्यक्ति गत रात्रिके १० स्वप्न तक बता सकते हैं। कितनी स्पष्टतासे ये स्वप्न दीखते हैं, यह व्यक्तियों पर निर्भर है। मनुष्यकी अपेक्षा स्त्रियाँ अधिक विवरणमें स्वप्न देखती हैं। वैज्ञानिक अनुसंधानसे अनुमान किया गया है कि एक स्वप्न लगभग ३० सेकंड तक दीखता है।

सुप्रसिद्ध उपन्यास लेखक चार्ल्स डिकेंसने एक स्वप्न देखा जिसमें उसे आभास हुआ कि वह मर गया है और उसे एक ऐसी जगह ले जाया गया है जहाँ व्यक्ति घंटों अविरत परिश्रमसे चीर-चीरकर और ठोंक-पीट कर एक पीपा बना रहे हैं। उनमेंसे एक आदमी उस पर एक तख्ता डाल दिया है और वह फिर जीवित हो गया है। जागने पर मालूम पड़ा कि वह आराम कुर्सी पर लेटा हुआ था। खिड़कीके बाहर एक बढ़ईने बागके चारों ओर घेरा लगा रहा था तभी एक तख्तासे डाला था। कुल स्वप्न उसकी जाग्रत अवस्थामें आनेके कुछ ही क्षणोंमें उसे दीख गया।

यद्यपि सभी स्वप्नोंकी भौतिक भावनाओंके आधार पर विवेचना नहीं हो सकती क्योंकि बहुतों की तो मनुष्य की अंतरचेतनाके रहस्यपूर्ण साम्राज्यमें उत्पत्ति होती है तब भी अनेकों सामान्य स्वप्नोंकी व्याख्या बुद्धिगम्य साधारण भौतिक कारणों द्वारा की जा सकती है।

—'पाप्युलर साइन्स'

वर्तमान युद्धके शस्त्र

[ले०—श्री राधाकृष्ण, तथा श्री लाल बिहारी सिंह]

यूरोपमें वर्तमान कालमें जो घोर संग्राम हो रहा है वह केवल विज्ञान द्वारा अधिकसे अधिक नष्टप्रद शस्त्रोंके प्रयोगके ऊपर निर्भर है। विजय उसी राष्ट्र की होगी जो कि इन आधुनिक अस्त्रोंको सफलतापूर्वक प्रयोग कर सकता है। ऐसे नष्टप्रद अस्त्रोंका नित्य आविष्कार हो रहा है। इस लेखमें पिछले महायुद्धके पश्चात् आविष्कार किये गए कुछ शस्त्रोंका वर्णन किया गया है।

स्थलके शस्त्र

आरमर्डकार:— यह एक प्रकारकी मोटर फौलादकी बनी हुई होती है। यह चारों ओरसे बन्द रहती है और

इनमें बन्दूकें लगी रहती हैं। चलाने वाला मनुष्य अन्दर ही बैठकर इन बन्दूकोंका प्रयोग करता है। वर्तमान युद्धमें जर्मनी ने बेलजियमके विरुद्ध ऐसी कितनी ही मोटरोंका प्रयोग किया था। अधिकतर यह सिपाहियोंको एक स्थानसे दूसरे स्थानमें ले जानेके लिए प्रयोगमें लाई जाती हैं।

टैंक- यह आरमर्डकारसे अधिक मजबूत और मोटी फौलादकी बनी होती है। शत्रुओंपर हमला करनेके लिए और गोला बारूद फेंकनेके लिए बहुत अच्छा शस्त्र है। इसकी दीवारें इतनी मजबूत होती हैं कि शत्रुकी गोलियाँ उनपर कोई हानि नहीं पहुँचा पातीं। इसमें दो ही तीन आदमी बैठ सकते हैं और वे अन्दरसे ही गोला चलाते हैं। टैंकको एक छोटा चलता-फिरता क़िला समझना चाहिए जो ऊँचे नीचे दलदली किसी प्रकारको भी धरातल पर ले जाया जा सकता है। टैंकोंको आगे बढ़नेसे रोकनेके लिए उनके रास्तेमें चुम्बकीय जाल बिछा दिये जाते हैं।

टैंकोंसे युद्ध करनेके लिए ऐन्टी टैंक बनाए गए हैं। इनमें दो प्रकारकी बन्दूकें रहती हैं। एक तरहकी बन्दूकें १ या २ इञ्च ऊँची होती हैं और दूसरी १ से ३ इंच लम्बी होती हैं। इनके गोले टैंकोंकी दीवारोंमें घुस जा सकते हैं परन्तु यह शस्त्र छिपाए नहीं जा सकते। इसलिए शत्रु इनसे तैयार हो जाता है।

दूर-घातक बन्दूकें (लाँग-रेञ्ज गन्स)— दूर तक गोला फेंकने वाली तोपें पिछली लड़ाईमें भी प्रयोग की गई थीं। परन्तु वर्तमान कालमें यह तोपें इतनी अधिक सुधारी गई हैं कि १८० मील तककी दूरी पर गोला गिरा सकती हैं। कैलेसे लण्डन और लण्डनसे कैलेपर बम इनके द्वारा फेंका जाता है।

हवाई शस्त्र—हवाई युद्ध स्थलके युद्धसे अधिक महत्व-पूर्ण होता है और पिछले युद्धमें हवाई युद्धका केवल जन्म ही हुआ था। हवाई युद्धमें बहुत ही कुशल वायुयान चलाने वालोंकी आवश्यकता होती है। एक या दो वायुयान शत्रुके ऊपर हमला नहीं करते परन्तु सौ या अस्सी या कुछ कम या अधिक वायुयान एक साथमें उड़ते हैं और शत्रुके देशपर हमला करते हैं।

फाइटर या लड़ने वाले वायुयान—इसके द्वारा शत्रुके आक्रमणको रोका जा सकता है। ये हलके तेज गति वाले और वायुमण्डलमें बहुत ऊँचे उड़ने वाले होते हैं। इन जहाज़ोंमें मशीनगन लगे रहते हैं। लड़ाके वायुयानोंके द्वारा देशको शत्रुके बाम्बरके आक्रमणोंसे बचाते हैं। वे बाम्बर जहाजोंमें अपनी गोलियां द्वारा छिद्र कर देते हैं ताकि वे बम गिरानेमें अयोग्य हो जायँ और नष्ट हो जायँ। फाइटरका एक दूसरा कार्य बाम्बरमें साथ उड़नेका है। ऐसी दशामें फाइटर बाम्बरकी रक्षाके लिए होता है और शत्रुओंसे आक्रमणसे उन्हें बचाता है। फाइटरमें ८ मशीनगन होती हैं जो १ मिनटमें १००० गोलियाँ चला सकती है। अर्थात् ८ मशीन गनों द्वारा ८००० गोली एक मिनट में चलाई जा सकती है। यह मशीनगन इस तरह से लगी हुई रहती है कि किसी भी दिशा में घुमाई जा सकती है।

बाम्बर या बम गिराने वाले वायुयान— ये वायुयान शत्रु के यहाँ बम गिराने के लिये प्रयोग किये जाते हैं। इनमें बहुतसे बम रक्खे जा सकते हैं। पेट्रोल टैंक भी इतना बड़ा होता है कि वे शत्रुके देशमें जाकर बम गिरा कर अपने देशके हवाई अड्डे पर सुगमतासे लौट सकें। यदि रास्तेमें या शत्रु देशमें पहुँच कर इनका पेट्रोल कम हो गया तो बड़ी कठिनाईका सामना करना पड़ेगा। ये जहाज़ इतने ऊपर उड़ते हैं कि एण्टी एयर क्राफ़्ट बन्दूकोंका इन पर असर न हो सकें। बाम्बर बहुत तेज चाल वाले जहाज़ होते हैं। बाम्बर में भी दो मशीनगन लगी होती हैं। यदि शत्रु द्वारा इन पर आक्रमण होता है तो वे दोनों मशीनगनों द्वारा अपनी रक्षा करता हैं। हरीकेन और स्पिटफायर दो प्रकारके अंग-रेजोंके पास बाम्बर हैं। इनकी गति ३३० मील और ३६७ मील प्रति घण्टेकी होती है। जब कुछ बाम्बर आक्रमणके लिये जाते हैं तो उनके गोलमें रक्षाके हेतु कुछ फाइटर भी साथमें रहते हैं।

रेकनेसेन्स या जाँच करने वाले जहाज़—ये जहाज़ शत्रुके हाल-चाल चोरीसे मालूम करता रहता है। ये इतने ऊँचाई पर उड़ते हैं कि शत्रुको मालूम न हो कि उनके देश पर कोई विदेशी वायुयान आया है। इन जहाज़ों के संचालक अपने कार्यमें बड़े निपुण होते हैं। इन जहाज़ों

परसे शत्रुके देशोंकी फोटो ली जाती हैं। इन फोटों द्वारा यह पता चलता है कि शत्रु की सेना किस स्थान पर है और किस स्थान पर कूँच करना चाहती है कहाँ पर किले हैं किस स्थान पर बिजली-घर या टैंक हैं क्योंकि ऐसे ही अमुक स्थानों पर बम गिराये जाते हैं ताकि वे नष्ट हो जायँ। इन जहाज़ों पर छोटे दूर-दर्शक बिना तारके तारकी मशीन भी कहते हैं। इन मशीनों द्वारा जाँच करने वाले वायुयान अपने फौजी कमाण्डर को सब समाचार अपने तथा शत्रु के विषयमें देनेको समर्थ होते हैं।

सामुद्रिक वायुयान (कोस्टल ऐयरशिप)—ये समुद्रतटकी रक्षाके लिये शत्रुके आक्रमणोंका समाचार देनेके लिये तथा आकाश-मण्डलकी निगरानीके लिये समुद्रतटकी ओर रक्खे जाते हैं। ये शत्रुके सामुद्रिक जहाज़ों पर बम बरसाते हैं और शत्रुके वायुयानोंसे संग्राम करते हैं। ये समुद्र-तटकी तथा पहले समुद्रकी रक्षा करते हैं। इनका काम पनडुब्बियोंके विषयमें समाचार देनेका भी है। ये समुद्रमें चुम्बकीय जाल बिछाने वाले जहाज़ोंसे युद्ध भी करते हैं। ये दुश्मनके जहाज़ों पर बम भी गिराते हैं।

सामुद्रिक बेड़े के वायुयान (फ्लीट-एयरशिप)—वे सदैव सामुद्रिक जहाज़ों पर रहते हैं। उनके उड़नेके लिये किसी विशेष जगह (lnding ground) की आवश्यकता नहीं होती है। वे सामुद्रिक जहाज़ोंपर हीसे अपने कार्यके लिये उड़ते हैं और उसी पर आकर उतरते हैं। वे समुद्रकी रक्षा करते हैं और शत्रुको सामुद्रिक जहाज़ोंमें आग लगाना टारपीडोका काम करते हैं।

ऐसे ६० वायुयान एक ही जहाज़ पर समुद्रके बीचमें ले जाकर एक ही जहाज़ पर रक्खे जाते हैं। उनसे पेट्रोलके ख़र्चमें कमी होती है। और बीच सागरोंमें हवाई अड्डोंकी आवश्यकता नहीं होतो। जहाज़के किनारे एक मशीन कटपुल्ट लगी रहती है। कटपुल्टके दबाते ही वायुयान आकाश में उड़ने लगते हैं। इनकी गति ५० मीलकी होती है। लौट कर वे जहाज़के ही अन्दर रहते हैं।

पैराशूट—पिछली महायुद्धमें जनरल इवरंडने आठ सैनिकोंके साथ जर्मनीमें पैराशूटके द्वारा उतर कर शत्रु को हानि पहुँचाई थी। सन् १९१८ में जनरल माइकेल ने एक स्कीम मित्रराष्ट्रोंके सामने पैराशूटसे लड़नेकी पेश की। परन्तु १९३५ ई० तक इस पर किसी देशने ध्यान न दिया। तब रूसने इसको युद्धमें प्रयोग करनेके लिये सफलतापूर्वक यत्न किया। हालैण्ड और बेलजियमकी युद्धमें १९४० में जर्मनी ने पैराशूटोंकी मदद ली थी।

पैराशूटसे कूदने वाले सैनिक तेज़ चलने वाले वायुयानों में ले जाये जाते हैं। सिगनल पाने पर वे तैयार होकर संचालक (pilot) के पैरोंके नीचे वाले पर्देको हटा कर शीघ्र ही नीचेकी ओर पृथ्वी पर नीचे गिरने लगते हैं। थोड़े कालमें बहुतसे सैनिक गिराये जा सकते हैं। ये लोग मशीनगनसे सुसज्जित रहते हैं।

सामुद्रिक (warship) लड़ाई के जहाज़—इनमें बड़ी-बड़ी तोपें लगी रहती हैं जिनके द्वारा बड़े-बड़े सामुद्रिक जहाज़ नष्ट किये जाते हैं। बन्दूकोंके गोले इनके द्वारा १० मीलकी दूरी तक फेंके जाते हैं। बन्दूकोंको मशीन के द्वारा चलाते हैं और मशीन द्वारा गोले भी भरते हैं। सब काम मशीन द्वारा होते हैं। ये बहुत मज़बूत होते हैं।

टारपीडो—यह जहाज़ सिंगरके आकारका होता है। इसके अन्दर भयानक विस्फोटक वस्तुयें भरी रहती हैं। एक स्क्रूके द्वारा टारपीडो चलता है। स्क्रूको इञ्जनके द्वारा प्रयोग करते हैं। टारपीडोके वोटके बगलमें एक नली होती है जिससे टारपीडो फेंका जाता है। यह पड़ने वाले जहाज़ के पेंदेमें छिद्र कर देता है और वह क्षण ही भरमें डूब जाता है। यह बहुत ही छोटे परन्तु बहुत ही भयानक होते हैं।

चुम्बकीय जाल (Magnetic Mines)—ये जाल चुम्बकीय होते हैं। जहाज़के निकट पहुँचते ही चुम्बक के प्रभावसे जहाज़ इसके पास खिंच जाते हैं और वह जल से टकराकर जहाज़के पेंदेमें छिद्र कर देता है। इसका प्रयोग वर्तमान युद्धमें नारवेमें हुआ था।

विज्ञानकी परमेन्द्रियाँ

[ले०—श्री हरिश्चन्द्र गुप्त एम० एस-सी०]

संसारमें आप बहुत-कुछ आनंदसे तो अनभिज्ञ ही हैं। ऐसी ध्वनि हैं जिन्हें आप सुनते ही नहीं, ऐसे क्षीण रंग और इतनी तीव्र गतिसे चलते हुए दृश्य हैं जिन्हें कदाचित् आपके नेत्र ग्रहण करनेमें असमर्थ हों। ऐसे स्वाद गंध और स्पर्शका समवेदनाएँ हैं जो मनुष्यकी तुच्छ इन्द्रियोंके सर्वथा परे हैं।

मनुष्यकी आँख प्रकाशके यंत्रोंमें सबसे पारंगत समझी जाती है। लेकिन यह भी १ महाशंख अंगस्ट्रोम इकाइयोंके किरण-चित्रमें तनिकसा ४००० इकाइयोंका मध्यका भाग देख सकती है। आप एक बड़े शोरगुलमें एक पिनके गिरनेकी आहट सुन सकने पर गर्व करते होंगे या एक घड़ीकी टिक-टिक कमरेके उस पार सुन लेते होंगे, लेकिन आपको विदित होना चाहिये कि आप ३० से लेकर १६००० चक्र प्रति सेकंडकी ध्वनियाँ ही आपके कर्ण-पटको ग्राह्य हैं। हाँ, विज्ञान ने ५,०००,००० चक्र तककी न सुनाई पड़ने वाली ध्वनिका मापन कर उसे कार्य वशीभूत कर लिया है।

आप उन्हीं इन्द्रियोंसे स्पर्श करते हैं, देखते, सुनते और स्वाद लेते हैं जिनसे पत्थर-युगमें आपके पूर्वज काम लेते थे जब उन्हें केवल शत्रुके सिर पर चढ़ आने पर भी भाग निकलनेका अवसर मिलना काफ़ी था और खानेके लिये शिकार काफी था। तब उनके समक्ष ये समस्यायें नहीं थीं कि सूक्ष्माति-सूक्ष्म यंत्रोंमें पिस्टन कैसे लगायें, या पानी डूबे हुए अदृश्य पनडुब्बों की आहट कैसे सुनें, सैकड़ों मील दूरी पर आक्रमण करने वाले वायुयानकी भनभनाहट कैसे सुन पायँ या सूदूर तारोंका जिन्हें हम कभी भी देखनेकी आशा नहीं कर सकते प्रकाश कैसे नापें।

लेकिन जहाँ हमारे कान और आँखें २५,००० वर्षके बाद भी वैसी ही हैं, विज्ञानने हमें इतने परमोच्च सुग्राही यंत्र दिये हैं कि जिन्हें देख मनुष्य चकित हो जाता है। बिना तालके अनेकों छिद्रवाले कैमेरेसे १२०,००० चित्र प्रति सेकंडके हिसाबसे उतरते हैं। अदृश्य प्रकाश और न सुन पड़ने वाली ध्वनियाँ बैक्टीरिया मारनेके कार्यमें लगाई गई हैं। निर्गंध और अदृश्य वाष्प जो पारेके प्यालेसे इतनी कम मात्रामें निकलती है कि ५०,००,००० भाग वायुमें केवल १ भाग पारा हो तो भी चमकयुक्त (फ्लोरेसेंट) परदे पर एक पतली छाया द्वारा हम देख सकते हैं और यही पारा दसों वर्ष तक वाष्पीभूत होता रहे तो भी इसकी मात्रामें कुछ अंतर मालूम न पड़े। इन गैस और वाष्पोंको इतनी लघु मात्रामें पहचान लेने वाले यंत्रोंका प्रायोगिक लाभ भी है। खानमें काम करने वाला व्यक्ति अपने साथ एक मापक यंत्र लेकर चलता है जिससे घातक कर्बन मोनोक्साइडका अस्तित्व, जिसे हम न सूँघ सकते हैं, मालूम पड़ जाय। ये यंत्र बराबर न्यूयार्ककी टनलोंकी, जिनमें गाड़ियाँ चलती हैं, हवा की परीक्षा करते रहते हैं।

मनुष्यकी अपारंगत इन्द्रियोंकी कमी पूरी करने वाला सबसे नया वैज्ञानिक यंत्र स्पैक्ट्रोफाटोमीटर है जिसके प्रकाश-विद्युत् (फ़ोटो एलैक्ट्रिक) नेत्रोंसे रंग वक्रमें परिणत हो जाते हैं। आप दो समान रंगके मोज़े छाँट लीजिये। उन्हें इस यंत्रके सामने ५ मिनट रखिये। आपको २ किरण-चित्रपर दो रेखायें मिलेंगी जिससे आपको मालूम होगा कि उनके रंग भिन्न थे। यह सूचक यंत्र इतना कोमल और सुग्राही है कि एक मीलकी दूरी पर १ मोमबत्तीके प्रकाशसे इसका मोटर चल सकता है। दर्जनों व्यवसायोंमें यह रंग-मापक और लेखक-यंत्र प्रयोगमें आता है। इससे रंगोंके प्रमाण बनानेमें और तान्तविक, कागज और पेंटके उद्यमोंमें रंग मिलानेके काममें सहायता की जाती है। इस यंत्रसे यह भी पता लग सकता है कि अमुक डिब्बा बन्द खाद्य पदार्थमें रंग तो मिलाया गया और मिलाने वाला पदार्थ विषैला तो नहीं है। यदि रंगकी रेखा समानान्तर रेखासे थोड़ी-सी भी हट कर हो तो मालूम पड़ सकता है कि टिकट या सिक्का खोटा है। अगर किसी मालकी नकलकी गई हो और उसमें घटिया वस्तुएँ प्रयोग की हों तो असलीसे इस यंत्र द्वारा उसका मुकाबला कर सकते हैं। रासायनिक विश्लेषणमें यह विशेष रूपसे लाभदायक है क्योंकि दो घोलोंके ज़रासा भिन्न होनेमें उनसे परावर्तित प्रकाशके रंगमें भिन्नता आ जाती है। १ ग्राम ताँबेका दस लाखवाँ हिस्सा भी यदि घोलमें हो तो रंग लेख

पर इसकी वक्रता आजाती है। मनुष्यके रक्तकी विविध किस्मोंकी एक सारिणी बनानेकी आवश्यकता हुई जिससे कि डाक्टर रोगीके रक्तका वर्ण देख और छपी सूचीसे मुकाबला कर एनीमिया रोगके लक्षण मालूम कर सकें। नाना प्रकारकी लाल रोशनाइयोंको मिला कर और उनके और रक्तके चित्रोंका मुकाबिला कर, जब तक कि उनके चित्र लेख एकसे नहीं हो गये वे, रंग तैयार करनेमें सफल हुए।

अंधोंकी कोमल अँगुलियोंके पोटुए इतने सुग्राहक होते हैं कि वे उभरे हुए ब्रेल अक्षरोंको शीघ्रतापूर्वक पढ़ सकते हैं। लेकिन अब इंजीनियरोंने खुरदरापन नापनेका ऐसा यन्त्र बनाया है जिससे शीशे पर अँगुलीके छापकी मोटाई भी नापी जा सकती है। इस यंत्रसे १ इन्चके १० लाखवें हिस्सेकी मोटाई भी नापी जा सकती है। यदि कमरेका तापक्रम ६५ से कम या ९०° से ऊपर पहुँच जाय तो हम बेचैन होने लगते हैं; लेकिन अन्वेषक वैज्ञानिकके औज़ार एक वैद्युतीय अवस्था-भेद मापकको सहायतासे डिगरीके सहस्रांशको भी नाप सकते हैं। अगर आपको जुकाम हो जाय तो आप आँखें बन्द करके आलू और बानजन बिना उनमें कुछ अंतर पाये खा जायँगे लेकिन रासायनिज्ञके पास एक वैद्युतीय 'स्वाद द्योतक" है जिसे कभी सर्दी नहीं लगती। यह असीम सचाईसे घोलका अम्लत्व और क्षारत्व नाप सकते हैं। जहाँ नक्षत्रोंके प्रकाशकी मात्राको नापनेके लिये यन्त्र हैं, साथ-साथ सूर्य-ताप अमुक स्थान पर कितना पड़ता है उसे स्वतः अंकित करने वाले यंत्र-भी हैं। सड़ी गरमीके दिन आप बड़े पांडित्यके साथ यह भले ही कह सकते हैं। कि 'गरमी नहीं, नमीके कारण है' लेकिन आपको आपेक्षिक नमीका अंदाज़ १० बिन्दुसे अधिक निकट नहीं लगा सकते। आधुनिक उद्योगोंमें अंदाज़से काम नहीं चलता, उन्हें तो नमीका ठीक माप मिलना चाहिए। अतः एक नमी-सूचक भी है। दो वैद्युतीय सुइयोंको प्लास्टर कंकरीट, ईंट या लकड़ीकी दीवारमें घुसा दीजिये और आपके इनके पृष्ठतल पर और अन्दरकी नमीका ठीक-ठीक ज्ञान हो जायगा। फिर आप रंगके उचित घोलसे उन्हें रङ्ग सकते हैं। इससे पृथ्वीके अन्दर या दीवारमें गढ़े हुए नलोंके चूनेके स्थानोंका भी पता लग सकता है।

यदि आप इतने नाजुक हैं कि आपको घड़ीकी आहटसे नींद नहीं आती तो आप जनरल एलेट्रिक प्रयोग-शालाके तैराऊ कमरेमें सोइये। वह विश्वमें सबसे शान्त स्थान है। इसमें ध्वनिको फाँस लेने वाले परदे और ध्वनि-शोषक दीवारें हैं। कंपनकी लहरें इसके समीप पहुँच नहीं सकतीं। इस कमरेमें वैज्ञानिक निरंतर इसी चेष्टामें लवलीन रहते हैं कि बिजलीके पंखों, मोटरों आदिसे न्यूनतम शोर हो। मनुष्यके कानोंसे कहीं अधिक सुग्राही वैद्युतीय 'कर्ण' हैं जो ५० मील दूरी पर पानीमें डूबी हुई पनडुब्बी की आहट सुन सकते हैं। दूरीसे सूचना पानेके काममें अति झूलन संख्या वाली ध्वनिकी लहरें काममें आती हैं। जिन्हें कदाचित् हम सुन न सकें। यह ५०,००० से १००,००० चक्रको न सुनाई पड़ने वाली ध्वनि बन्दूकके समान जिस दशामें चाहें भेजी जा सकती है। एक अदृश्य रोड़ेसे यात्री जहाज़के हल, पनडुब्बी, या गुप्त छत टकरा कर प्रतिध्वनि पैदा कर सकती है जिससे उस रुकावटका पता लगाया जा सकता है। इसी प्रकार वायुयानका (ध्वनि द्वारा) ऊँचाई नापनेका यन्त्र (प्रेषित ध्वनिकी प्रतिध्वनिसे इसका पता लगा सकता है कि वायुयान पृथ्वीसे किस कोण पर है। वैज्ञानिकोंका ऐसा विश्वास है कि कुछ पक्षी और कुछ जानवर भी आपसमें इतनी अधिक झूलन-संख्या वाली ध्वनिसे बातें करते हैं जिन्हें हम सम्भवतः सुन नहीं सकते हैं। इसी कारण प्रकृतिके इन अद्भुत यंत्रोंसे सम्पन्न चमगादड़ दूर अपने मित्रके पुकारको सुनकर उसके पास उड़ सकनेमें समर्थ होता है।

इस प्रकार मनुष्य अदृश्य और अश्रुतसे ही काम करता और खेलता है। पानी पर इंचके करोड़वें हिस्सेकी मोटाईकी अदृश्य झिल्लीसे झूलते हुए सूक्ष्मतम विद्युत्के कणोंको ध्वनिमें परिवर्तित करके उनको ईअरफोन द्वारा समीक्षा करती है। मनुष्यको एक बड़े शक्तिशाली चुम्बककी, जो थोड़ी जगहमें आ जाय, आवश्यकता पड़ती है। इसलिये अल्युमिनियम, निकेल, कोबल्ट और लोहेके मिश्रणको गरम कर एक बहुत ही छोटा चुम्बक तैयार कर लेता है।

बढ़ईके लिए इञ्च अब भी काफी अच्छा नाप हो लेकिन वायुयान बनाने वालेके लिये यह बहुत मोटा नाप है। इंगलैण्डमें सन् १३२४ में इञ्चका नाप प्रथम बार ३ जौके

बराबर कानूनी तौर पर माना गया था। १२ इञ्चका एक फुट पहिले पैरके नापके बराबर समझा जाता था। हेनरी प्रथमकी बाँह भी १ फुटकी था। सन् १८६६ में मीटरको कानूनने प्रमाण नाप घोषित किया लेकिन इंचको कभी कानूनी नाप नहीं माना गया।

एक फुटा, बर्नियरकी जगह अब बिजलीका गॉज काममें आता है जिससे इंचके दस हज़ारवें हिस्से तक नाप सकते हैं। इस शुद्ध नापके युगमें मनुष्यकी क्षीण इन्द्रियाँ काफी नहीं हैं लेकिन विज्ञानने मनुष्यको बिजलीको यांत्रिक आँखें, कान और अँगुलियाँ दे दी हैं जो ईश्वरकी दी हुई इन्द्रियोंसे कहीं अधिक सूक्ष्म हैं।

सूर्यकी किरणें

[ले०—श्री बाबूरामजी पालीवाल]

वायुमण्डलमें जितनी घटनायें प्रकट होती हैं उनका किसी न किसी प्रकार वायुमंडलके सूर्य द्वारा प्राप्त तापसे कुछ न कुछ सम्बन्ध होता है। अब यह देखना है कि वायुमंडलमें सूर्यसे किस प्रकार और कितनी गरमी आती है। यद्यपि सूर्यके अलावा भी वायुमंडलको गरमी प्राप्त होती है जैसे पृथ्वीके भीतरसे गरमीका निकलना, तारों आदि से गरमी प्राप्त होना इत्यादि, परन्तु पृथ्वीकी गरमी तो दुनिया भरमें सब जगह और सब समय एक-सी ही होनी चाहिये, चाहे वह विषुवत् रेखा पर हो या ध्रुवों पर, चाहे दिन हो या रात हो, चाहे गरमीकी ऋतु हो या शीतकाल। तारे आदि भी दिन-रात सदैव चमकते रहते हैं। इसलिये इनके द्वारा प्राप्त गरमीमें भी कोई विशेष परिवर्तन न होना चाहिये। वायुमंडलमें गरमीके घटने-बढ़नेका कारण केवल सूर्यके द्वारा ही प्राप्त गरमी है।

निरीक्षणों द्वारा भी यह मालूम कर लिया गया है कि सूर्यके अलावा प्राप्त हुई गरमीसे वायुमंडल केवल ०·१४° सेण्टीग्रेड तक ही गरम हो सकता है। इसके अलावा वायुमंडलमें जो गरमी होती है वह सब सूर्य द्वारा ही प्राप्त होती है।

निरीक्षणों द्वारा यह भी मालूम किया जा चुका है कि पूर्णिमाके दिन जब चन्द्रमा अपनी पूरी शक्ति पर होने पर भी वायुमंडलके तापक्रममें कोई विशेष परिवर्तन नहीं कर सकता तब दूसरे तारों द्वारा प्राप्त गरमीको तो बड़ी आसानीसे छोड़ा जा सकता है। इसलिये वायुमंडलकी गरमी अकेले सूर्य पर ही निर्भर है।

सूर्य द्वारा प्राप्त गरमीका एक विशेष नाम है जिसे सौरताप कहते हैं। किसी विशेष स्थान पर किसी विशेष समयमें सौरतापकी मात्रा निम्नलिखित बातों पर निर्भर होती है।

(१) सूर्यसे दूरी; क्योंकि जैसे-जैसे सूर्यसे दूरी बढ़ती जायगी वैसे-ही-वैसे सौरतापकी मात्रा कम होती जायगी।

(२) सूर्यकी किरणोंका पृथ्वीकी सतह पर झुकाव; क्योंकि जब सूर्यकी किरणें पृथ्वी पर तिरछी पड़ती हैं तो वे ज़्यादा जगह घेरती हैं और जब सीधी पड़ती हैं तो कम। इस प्रकार जब किरणें तिरछी पड़ती हैं तो सौरताप ज़्यादा जगहमें बँट जाता है और गरमी कम होती है, जब सीधी पड़ती हैं तो गरमी अधिक होती है।

(३) कितनी देर तक सूर्यकी किरणें पड़ती हैं यानी दिन कितना बड़ा होता है। बड़े दिनोंमें सौरताप छोटे दिनों की अपेक्षा अधिक होगा।

(४) वायुमंडल द्वारा सौरतापका विकिरण और शोषण; यदि वायुमंडल अधिक शोषण कर लेगा तो पृथ्वी पर सौरताप कम होगा।

(५) सूर्य कितनी गरमी भेजता है।

इनमेंसे पहिली तीन बातोंमें, अर्थात् (१) सूर्यसे दूरी (२) सूर्यकी किरणोंका पृथ्वीकी सतह पर झुकाव (३) सूर्यकी किरणें कितनी देर तक पड़ती हैं जो न्यूनता तथा अधिकता होती है। उसका कारण पृथ्वीका सूर्यके चारों ओर घूमना है। इसलिये इन बातोंके विषयमें जानकारी प्राप्त करनेके लिये यह आवश्यक है कि पहले यह जान लिया जाय

कि पृथ्वी सूर्यके चारों ओर किस प्रकार घूमती है। सूर्य और पृथ्वीके बीचमें गुरुत्वाकर्षण है जो दूरीके साथ-साथ कम ज़्यादा होता है। क्योंकि सूर्य अचल है, इसलिये गति-विज्ञानके सिद्धान्तके अनुसार यह बात निकलती है कि पृथ्वीको सूर्यके चारों ओर एक दीर्घवृत्तीय कक्षमें घूमना चाहिये। यह कक्ष लगभग ३६५$\frac{1}{4}$ दिनमें पूरी कर ली जाती है। पृथ्वीके कक्षका तल दीर्घवृत्तका तल कहलाता है। क्योंकि कक्ष की केन्द्रिकता बहुत कम है इसलिये कक्ष लगभग एक वृत्तके समान होता है। सूर्यसे पृथ्वीकी औसत दूरी ९.३ × १०^{७} मील है परन्तु ठीक-ठीक दूरी औसत दूरीसे १.०५ × १०^{६} यानी ३ ३ प्रतिशत तक कम या अधिक हो सकती है। पृथ्वी सूर्यके सबसे निकट ३१ दिसम्बरको और सबसे दूर १ जुलाईको होती है (चित्र १)। इस प्रकार सूर्यसे दूर होने और निकट होनेके कारण सबसे अधिक सौरताप जनवरीमें मिलना चाहिये और सबसे कम जुलाई में (केवल इसी कारण जो सौरतापमें अन्तर होता है वह ६.६ प्रतिशत होता है) परन्तु पृथ्वीकी धुरी दीर्घवृत्तके तल की ओर ६६° का कोण बनाती हुई झुकी होती है और जब पृथ्वी सूर्यके चारों तरफ घूमती है तब यह धुरी सदैव अपने समानान्तर रहती है। इसलिये उत्तरी ध्रुव तथा पृथ्वी का उत्तरी गोलार्द्ध सूर्यकी तरह २१ जूनको सबसे अधिक झुक जाता है और २१ दिसम्बरको सबसे दूर हो जाता है।

इसी कारण सूर्य २१ दिसम्बरसे २१ जून तक उत्तर-की तरफ, और २१ जूनसे २१ दिसम्बर तक दक्षिणकी तरफ जाता हुआ मालूम पड़ता है। दक्षिणी ध्रुव तथा पृथ्वीके दक्षिणी गोलार्द्धमें इसके बिलकुल विपरीत होता है जैसा कि चित्र २ में दिखाया गया है।
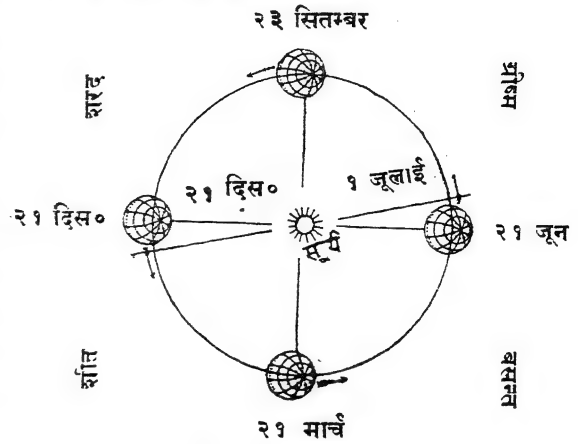
चित्र १—पृथ्वी का कक्ष

इस प्रकार २१ मार्चको दोपहरीको सूर्य विषुवत् रेखा पर और २१ जूनको दोपहरीको कर्क रेखा पर सीधा सर पर रहता है और फिर २३ सितम्बरकी दोपहरी को विषुवत् रेखा पर और २१ दिसम्बर की दुपहरीको मकर रेखा पर रहता है। इसी कारण जाड़ेमें दिन छोटे और गरमीमें बड़े होते हैं। एक सालमें सूर्यकी मध्याह्न ऊँचाई में ४७° (२ × २३.५) का अन्तर होता है जिससे एक विशेष स्थानके सौर-तापमें बड़ा अन्तर पड़ जाता है। नीचे एक सारिणी दी जाती है जिसमें भिन्न-भिन्न अक्षांसों पर सौर-ताप कितनी देर रहता है यह बतलाया गया है।

भिन्न-भिन्न अक्षांशों पर सौर-तापके रहनेका समय

अक्षांश	०	१७°	४१°	४९°	६३°	६६ ३०′	६७°२१′	६६° ५१′	७८° १४′	९०°
समय	१२ घं०	१३ घं०	१५ घं०	१६ घं०	२० घं०	२४ घं०	१ माह	२ माह	४ माह	६ माह

क्योंकि ऊपर लिखी हुई तीन बातें का (अर्थात् सूर्यसे दूरी पृथ्वीकी धुरी झुकी होनेके कारण सूर्यकी किरणोंका सीधा पड़ना, और सौरताप, समय), भिन्न-भिन्न अक्षांशों-पर भिन्न-भिन्न समयमें भिन्न-भिन्न प्रभाव पड़ता है। इसलिये यह सिद्ध होता है कि सौरताप अक्षांशों और ऋतुओंके अनुसार घटता-बढ़ता रहता है। इस प्रकार २१ जूनको दिनके समय में उत्तरी ध्रुव पर विषुवत् रेखाको अपेक्षा अधिक सौरताप प्राप्त होता है क्योंकि सूर्यकी मध्याह्न ऊँचाई ध्रुव पर विषुवत् रेखाकी अपेक्षा कम अर्थात् ध्रुव पर २३$\frac{1}{2}$ अंश और विषुवत् रेखा पर ६६$\frac{1}{2}$ अंश है; परन्तु सूर्यका समय ज़्यादा

है यानी ध्रुव पर २४ घंटे और विषुवत् रेखा पर १२ घंटे है ; इस प्रकार समयका असर किरणोंके सीधा पड़नेके असरसे अधिक हो जाता है और जो नतीजा इस प्रकार होता है वह बड़ा ही पेचीदा है। यह तीन अक्षों (सौरताप तापक्रम और समय) वाले चित्र द्वारा व्यक्त किया जा सकता है ;
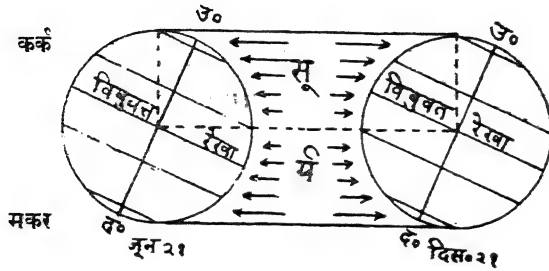
चित्र २

विषुवत् रेखा पर इक्विनॉक्स (सम-दिवस) के दो दिनों यानी २१ मार्च और २३ सितम्बरमें गरमी प्राप्त करनेकी मात्रा सबसे अधिक होती है और सोलिस्टिसके दो दिनों यानी २१ दिसम्बर और २१ जूनमें सबसे कम। इसलिये विषुवत् रेखा पर एक वर्षमें दो बार गरमोके घटने-बढ़नेका क्रम होता है। इक्विनॉक्स पर सबसे अधिक और सोलिस्टिस पर सब से कम सौरताप होता है।

पृथ्वीके कक्षमें दीर्घवृत्तिकता होनेके कारण ग्रीष्म सोलिस्टिसमें सूर्यकी दूरी शिशिर सोलिस्टिसकी अपेक्षा अधिक होती है। इसलिये शिशिर मैक्सिमा ग्रीष्म मैक्सिमा से ७ प्रतिशत अधिक होता है: परन्तु कक्षकी दीर्घवृत्तिकता के कारण जहाँ सूर्यकी दूरीमें अन्तर होता है वहाँ ऋतुओं की लम्बाईमें भी अन्तर पड़ता है, यानी बसन्त-इक्विनॉक्स से शिशिर इक्विनॉक्स तक १८६ दिन होते हैं और शिशिर-इक्विनॉक्ससे बसन्त इक्विनॉक्स तक केवल १७६ दिन होते हैं। अतः विषुवत् रेखा पर बसन्त इक्विनॉक्स शरद् इक्विनॉक्स तक और शरद् इक्विनॉक्ससे बसन्त इक्विनॉक्स तक गरमी प्राप्त होनेकी मात्रा समान ही होती है जैसा कि वक्र रेखा नं० १ चित्र ३ से प्रकट होता है, क्योंकि जब सूर्यकी दूरी अधिक होती है तब ऋतु बड़ी होती है और जब सूर्यकी दूरी कम होती है तब ऋतु छोटी होती है।

उत्तरी गोलार्द्धमें विषुवत् रेखा और कर्क रेखाके बीच वक्र रेखा नं० २ (चित्र ३) जो सूर्यसे एक दिनमें गर्मी प्राप्त होनेका वार्षिक अन्तर प्रगट करती है करीब-करीब वक्र रेखा नं १ के ही समान है। केवल दिसम्बरमें जाकर न्यूनतम नीचा है और जैसे ही हम विषुवत् रेखासे दूर होते जाते हैं वैसे ही अन्तर और बढ़ता जाता है, परन्तु जूनमें मैक्सिमम (अधिकतम) कम होता जाता है। दो मैक्सिममों के, जिनके बीच में यह पड़ता है, शनैः-शनैः निकट आनेसे अन्तर भर जाता है। इस प्रकार इसमें दो मैक्सिमम न होकर गरमोके दिनोंमें एक मैक्सिमम (अधिकतम) और जाड़ेके दिनोंमें एक मिनिमम (न्यूनतम) होता है जो शीतोष्ण कटिबन्धकी विशेषता है। उष्ण कटिबन्धपर और उससे उस पार दिनकी लम्बाई और दिनके एक निश्चित समयपर क्षितिजसे सूर्यकी ऊँचाई शिशिर-सोलिस्टिससे ग्रीष्म सोलिस्टिस तक शनैः-शनैः बढ़ती है और ग्रीष्म-सोलिस्टिससे शिशिर-सोलिस्टिस तक घटती है इसलिये जैसा कि वक्र रेखा नं० २ से प्रकट होता है। एक मैक्सिमम (अधिकतम) और एक मिनिमम (न्यूनतम) होता है। विषुवत् रेखाकी तरफ दो अधिकतम और दो न्यूनतम नहीं।
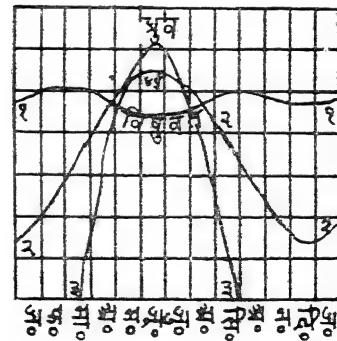
चित्र—३

भिन्न-भिन्न अक्षांशों पर सौरताप का वार्षिक घटना-बढ़ना

अब हम जैसे उत्तर ध्रुवीय अक्षांशको देखें तो हम देखते हैं कि सरदोके दिनोंमें गरमीकी मात्रा जो सूर्यसे

पृथ्वीतक पहुँचती है वह क़रीब क़रीब बिल्कुल कम हो जाती है जैसा कि वक्र रेखा ३ (चित्र ३) से प्रतीत होता है और उत्तर ध्रुवीय अक्षांशपर २१ दिसम्बरको सूर्य बिल्कुल दिखाई नहीं देता। इसलिये उस दिन सौरताप बिलकुल ही नहीं होता। ध्रुवीय-वृत्तमें शिशिर-सोलिस्टिसके दिनोंमें जैसे-जैसे हम ध्रुवके पास पहुँचते हैं वैसे ही रात्रिकी लम्बाई बढ़ती जाती है और उत्तरी ध्रुव पर २२ सितम्बरसे २० मार्चतक सूर्य नहीं निकलता। इसके विपरीत २० मार्चसे २२ सितम्बर तक कभी नहीं डूबता। क्षितिजसे सूर्यकी ऊँचाई २१ जूनतक बढ़ती है और फिर कम होने लगती है।

अतः सौरतापमें भी इसी प्रकार परिवर्तन होता है। जैसा कि वक्र रेखा नं० ३ में दिखाया गया है।

दक्षिणी गोलार्द्धमें भी यदि हम ऋतुओंका समय बिलकुल उलटा कर दें तो यही बात होगी, परन्तु एक बात ध्यान देने योग्य है। वह यह कि जब दक्षिणी गोलार्द्धमें ग्रीष्म काल होता है तो पृथ्वीकी धुरीके टेढ़ा होनेके कारण सूर्य पृथ्वीके सबसे अधिक निकट होता है और शीतकालमें सबसे अधिक दूर इसलिये दक्षिणी गोलार्द्धमें गरमी और सरदीके दिनोंमें सौरतापका अन्तर बढ़ जाता है, परन्तु यह कारण उत्तरी गोलार्द्ध में उसका उलटा असर डालता है।

अब तक हमने केवल इसी बातकी विवेचना की है कि सूर्य कितनी गरमी पृथ्वीको देता है परन्तु सूर्य जितनी गरमी पृथ्वीको देता है वह सब तो पृथ्वी पर नहीं पहुँचती। उसमेंसे बहुत-सी गरमीको तो वायुमंडल ही बीचमें शोषण कर लेता है या परावर्तित कर देता है और वह पृथ्वी पर नहीं पहुँच पाती। यह मालूम किया जा चुका है कि इस प्रकार पृथ्वीकी ३१ प्रतिशत गरमी व्यर्थ जाती है। गरमीको परावर्तित करने वाले पदार्थोंमें पानी बर्फ और बादल मुख्य हैं। अभी कुछ वर्ष पहले यह मालूम किया जा चुका है कि बादलोंको परावर्तित करनेकी शक्ति ७८ प्रतिशत तक है गरमीको नष्ट करनेमें रजकण तथा वायुअणुका भी थोड़ा बहुत हाथ है परन्तु वह बहुत कम है।

कुछ पदार्थ गरमीको अपने अन्दर सोख लेते हैं। सोखने वाले पदार्थोंमें कर्बनद्विओषिद, ओषोण और ओषजन मुख्य हैं। इस प्रकार सूर्य द्वारा गरमी जो पृथ्वीको सतह पर पहुँचती है वह वायुमंडलको गठन और सूर्यकी आगत-किरणों द्वारा प्रभावित होकर घटती-बढ़ती रहती है जो प्रयोगों द्वारा वायुमंडलकी पारदर्शकताका गुणक मालूम करके निकाली जा सकती है।

वायुमंडलके सौर-किरण नापनेके काममें जिस यंत्रका प्रयोग होता है उसे पायर-लिओमीटर या एक्टिनोमीटर कहते हैं। ये कई प्रकारके होते हैं। इनमेंसे अगस्ट्रन कम्पेंसेशन पायर होलिओमीटर मुख्य हैं। इस यंत्रमें धातुकी दो सब प्रकारसे समान पत्तियाँ होती हैं जिनमेंसे एकको सूर्यके सम्मुख रख देते हैं और और दूसरीमें होकर, जो छायामें रक्खी होती है, विद्युत्-धाराका प्रवाह करते हैं। विद्युत् इस प्रकार संयत रखते हैं कि दोनों पत्तियोंका तापक्रम समान रहे। इस प्रकार आगत-किरणों द्वारा प्राप्त शक्ति तथा विद्युत् द्वारा प्रवाहित शक्ति समान होती है।

यदि पत्तीको चौड़ाई 'व', उनका शोषण गुणक 'अ', और आगत-किरण 'ह' प्रति वर्ग सेण्टोमीटर प्रति मिनटके बराबर हो तो पत्तीको लम्बाईकी इकाईकी प्राप्त किरण-शक्ति हअव कलारी होगी। फिर अगर 'र' लम्बाईकी प्रति इकाईकी 'बाधा' हो और 'इ' विद्युत्-शक्तिकी अभीष्ट धारा हो तो विद्युत्-शक्ति $= \frac{इ^2 र \times ६०}{४\cdot१८}$ कलारी। क्योंकि किरण-शक्ति विद्युत्-शक्ति के बराबर होती है इसलिये

$$हअव = \frac{इ^2 र \times ६०}{४\cdot१८} \text{ कलारी}$$

$$\text{इसलिये } ह = \frac{इ^2 र \times ६०}{४\cdot१८ \times अव} \text{ कलारी प्रतिमिनट होगा।}$$

इसमें लैंगले का बोल्टोमीटर प्रयोगमें लाया गया है।

अब अंतिम बात जो रह गई वह यह है कि सूर्य कितनी गरमी फेंकता है। स्मिथ्सोनियन इंस्टीट्यूशनमें सन् १६०२ से सन् १६२० तक स्थिर वातावरणमें जो सूर्यकी गरमी नापी गई उसका औसत मान यहाँ दिया जाता है।

सन् १६०२ से सन् १६१२ तक १·६३३ कलारी/सम^2

सन् १६१२ तक से १६२० तक १·६४६।

यह देखा गया है कि सौरांक अपने औसत मानसे उसका $\frac{१}{२०}$ तक घटता बढ़ता-रहता है। यह अभी तक निश्चित नहीं किया जा सका कि इसका कारण केवल वायु-

मंडल द्वारा अधिक गरमी शोषित या परावर्तित करना है। या सूर्यकी कम या अधिक गरमी खींचना है।

वायुमंडल-विज्ञानके दृष्टिकोणसे तो इतना ही काफी है कि सूर्यसे साधारणतया पृथ्वी तक कितनी सामर्थ्य आती है। यदि हम १ वर्ग सेण्टीमीटर समतल जमीन लें तो प्रति समयकी इकाईमें निम्नलिखित मुख्य शक्तिकी संख्या होगी—

(१) $श_{सू}$ सूर्यसे सीधी आने वाली शक्ति

(२) $श_{व}$ वायुमंडल द्वारा प्रकीर्ण

(३) $श_{अ}$ स्वतः वायुमंडल द्वारा विकिरणसे

इससे विपरीत तत्व स्वत: विकिरण देता होगा और इसलिए कुछ शक्तिकी मात्रा खोयेगा अर्थात् $श_{ग}$ प्रति समयकी इकाईमें खोयेगा। इस शक्तिको पार्थिव विकिरण कहते हैं। यह पृथ्वीको घेरे हुये पदार्थ पर निर्भर होती है।

इस विषयमें कि सूर्यसे पृथ्वीको कितनी शक्ति मिलती है कोई सही-सही अंक प्राप्त नहीं हैं। यदि हम साधारणतया चलन और बहन के असरको छोड़ दें तो मोटे तौर पर सूर्य द्वारा प्राप्त शक्ति निम्न प्रकार लिखी जा सकती है।

$$ग = श_{सू} + श_{व} + श_{अ} — श_{ग}$$

इस प्रकार जो 'ग' की मात्रा होती है उसे 'पूर्ण विकिरण' कहते हैं। इसलिये यह आवश्यक हो जाता है कि पायरोहीलिओमीटरकी मापोंके अतिरिक्त चाहे तो पूर्ण-विकिरणका नाप किया जाय अथवा उन सब चीज़ोंको अलग-अलग मापा जाय जिनसे कि मिलकर पूर्ण-विकिरण बनता है। जिन यंत्रोंका इसके नापनेमें प्रयोग होता है उन्हें पायरोमीटर कहते हैं।

वायुमंडलके विकिरणका सैद्धान्तिक अध्ययन बहुत पेचीदा है परन्तु रात्रिके समय जब प्रकीर्ण विकिरण नहीं के बराबर होता है तब प्रयोगों द्वारा आसानीसे जाना जा सकता है।

रात्रिका पूर्ण विकिरण $ग = श_{अ} — श_{ग}$

इस प्रकार यदि ग नाप लिया जाय और $श_{ग}$ मालूम हो तो $श_{अ}$ जाना जा सकता है। $श_{ग}$ पृथ्वीके तापक्रम द्वारा निकाला जा सकता है। $श_{अ}$ २०० पर जब कि वायुमंडलमें जलवाष्प न हो तो ·२८ होता है।

पुष्य-नक्षत्र और पुष्यानुग चूर्ण

(स्वामी सुदर्शनाचार्य शास्त्री)

ज्योतिषमें २७ नक्षत्रोंकी गणनामें पुष्य आठवाँ नक्षत्र है। इसका फ़ारसीमें नाम नसरा है, अंग्रेजीमें इसका कोई प्रसिद्ध नाम उपलब्ध नहीं है।

ज्योतिषमें पुष्यकी क्षिप्र और लघु संज्ञा है। इसका स्वामी बृहस्पतिग्रह माना गया है। यह प्रतिमास २७ दिनमें एक बार आता है। कभी-कभी किसी नक्षत्रकी क्षय तथा वृद्धि होनेसे एक दिनको न्यूनाधिकता भी हो जाती है। ज्योतिषमें पुष्य नक्षत्रकी भूरि-भूरि प्रशंसा दृष्टिगोचर होती है। यहाँ तक बतलाया है कि जैसे चतुष्पदोंमें सिंह बलवान् है उसी प्रकार सब नक्षत्रोंमें पुष्य बलिष्ठ है। पुष्यका शाब्दिक अर्थ भी यह है कि "पुष्णाति कार्याणीति पुष्यः" अर्थात् जो कार्योंको पुष्ट करे उसे पुष्य कहते हैं।

यात्रा प्रतिष्ठा सीमन्त व्रतबन्ध प्रवेशनम्।
करग्रहं विना सर्वं कर्म देवेज्यभे शुभम्॥

केवल एक विवाहको छोड़कर यात्रा, देव-मंदिरकी प्रतिष्ठा, सीमन्त संस्कार, गृह-प्रवेश आदि सभी कार्य पुष्यनक्षत्रमें करना उत्तम है।

आकाश-मण्डलमें नक्षत्र-कक्षामें पुष्यके तीन तारे हैं, जिनकी व्यवस्थिति बाणकी सी शक्लमें हो गयी है। पुष्यके दिन यदि रविवार, सोमवार या बृहस्पतिवार होगा तो उस दिन सर्वार्थ सिद्धियोग माना जायगा। इसयोगका फल यह वर्णित है कि इस दिन कोई अच्छा कार्य किया जाता है तो वह सफलताके मार्गको जाता है। इसमें भी बृहस्पतिवारके पुष्यको ज्योतिषने विशेष महत्त्व दिया है। बृहस्पतिवारके दिन पुष्य नक्षत्र होनेसे यह अमृत सिद्धयोग होगा यह उपर्युक्त सर्वार्थ सिद्धियोगसे उत्तम माना जाता है। इस अमृत सिद्धियोगमें एक अनुभव लेखकको भी प्राप्त हुआ कि जिस बालकको चंद्र और ताराकी अनुकूलता देखकर शुभ-

लग्नमें विद्यारंभ कराया है उसने विद्या-प्राप्तिमें कुछ न कुछ विलक्षणता अवश्य दिखलायी है।

आयुर्वेदने भी पुष्य नक्षत्रके महत्त्वको स्वीकार किया है। आयुर्वेदमें एक पुष्यानुग नामक चूर्ण है। इसे महर्षि अत्रिने निर्दिष्ट किया है।

इस पुष्यानुग चूर्णका निम्नलिखित योग है।

पाठा, जामनकी गुठली, आमकी गुठली, शुद्ध शिलाजीत, रसौत, लक्ष्मणाकी जड़ या सफेद कटेलीकी जड़, मोचरस, मँजीठ, कमल केसर, केसर, अतीसमीठा, नागरमोथा, बेलपत्र, पठानी लोध, गेरू, कायफल, काली मिर्च, सोंठ, बीज निकाला हुआ मुनक्का, लालचन्दनका चूरा, सोनापाठा, इन्द्रजौ, अनन्तमूल, धायके फूल, मुलैठी, अर्जुनवृक्षकी छाल। ये छब्बीस औषधियाँ हैं। जिस दिन पुष्य नक्षत्र हो उस दिन इन स्वच्छ और नवीन औषधियोंको समभाग (सम वज़न) लेकर कूटकर और कपड़छानकर रख लेना चाहिये।

मात्रा— एक माशा।

समय—प्रतिदिन तीन या चार बार।

अनुपान—चावलके धोवनमें शहद मिलाकर चूर्ण फाँककर पीना।

रोग—स्त्रियोंकी योनिसे सफेद, नीला, काला, लाल, पीले रंगका पानी गिरना, रक्तार्श, रक्तातिसार, योनिदोष।

विशेष—स्त्रियोंके प्रदर रोगमें हमने इसका कई बार अनुभव किया है। पथ्यपूर्वक कुछ समयतक इसके लगातार सेवन करानेसे सब प्रकारके प्रदर बिलकुल मिट जाते हैं।

नोट – इस योगमें शुद्ध शिलाजीतका ज़िक्र आया है, उसकी शुद्धि भी यहाँ लिखते हैं। त्रिफलेके क्वाथमें शिलाजीत को घोलकर धूपमें रख दीजिये। उसपर सूख-सूखकर पपड़ी या मलाई सी जमने लगती है। उन पपड़ियोंको उतारकर सुखा लेना चाहिये और फिर काममें लाइये। यही इसकी शुद्धि है।

त्रिफला बनानेके लिये हड़, बहेड़ा और आमला, इन तीनोंकी गुठली निकालकर समान भाग लेना चाहिये।

क्वाथ (काढ़ा)—अधिक कठोर औषधिको उसके वज़नसे सोलह गुने जलमें, थोड़ी कठोर दवाको आठगुने या छः गुने जलमें, कोमल औषधि या वनस्पतिको चार गुने जलमें कुचलकर नियत जलमें पकाना चाहिये। पकते-पकते जब चौथाई जल बाक़ी रह जाय तब उतारकर मलकर छान लेना चाहिये। यही क्वाथ या काढ़ा होगा।

पुष्य नक्षत्रकी यही सारांशमें विशेषता है। मेरी यह दृढ़ धारणा यह है कि इसका समय कुछ न कुछ महत्व अवश्य रखता है।

शरत-पूर्णिमा-विज्ञान

[ले० उपाध्याय लक्ष्मीनारायण शर्मा, वैद्य शास्त्री, अमरोहा]

आश्विन की पूर्णिमा शरत्-पूर्णिमा कहलाती है। इस दिन संध्याके समय प्रायः सभी हिन्दू जनता खीर तथा दूधमें चौले भिगोकर चन्द्रमाकी चाँदनीमें रख कर भोजन करती है और स्त्रियाँ स्वयं तथा अपनी कन्याओंसे सुईमें अनेक बार चाँदनीमें तागा पिरोती हैं और पिरवाती हैं। यद्यपि इसका कारण और कर्त्तव्य-महत्त्व विशिष्ट तथा विस्तृत है किन्तु यहाँ पर केवल विज्ञान ही "हिन्दू त्यौहारोंका सविज्ञान इतिहास" से उद्धृतकर संक्षेपमें लिखा जाता है।

विज्ञान

आयुर्वेद शास्त्रमें दो प्रकारकी औषधियाँ हैं। १—आग्नेय गुण वाली। २—सौम्य गुण वाली आग्नेय गुण वाली औषधियोंका स्वामी सूर्य है और सौम्य गुण वालीका चन्द्रमा है। इन औषधियोंमें सूर्य और चन्द्रमाकी किरणों द्वारा प्रजनन-संवर्द्धन आदि क्रियायें होती रहती हैं। आग्नेय गुण प्रधान औषधि शरीरमें पित्त-वृद्धि, पाचक शक्ति-तेजोवृद्धि आदि कार्य करती है। सौम्यगुणप्रधान औषधि-हृच्छक्ति फुफ्फुस बलवृद्धि, मस्तिष्क-शक्ति, मेधावृद्धि, स्नेहनता,

नेत्र ज्योति कान्ति, आदिकी वृद्धि एवं सत्त्व गुण उत्पन्न करती है। सौम्य गुण औषधि दिव्यौषधि कहलाती हैं। जो दिव्य प्रभावोत्पादक हैं। यद्यपि चन्द्रमा ओषधीश कहलाता है किन्तु सौम्य गुण वाली औषधियोंमें चन्द्रमाका सौम्य रस होनेके कारण विशेष सम्बन्ध एवं सम्पर्क रहता है। क्योंकि प्रत्येक तत्त्व अपने तत्त्वका आकर्षण करता है। जैसे कमल सूर्यको देखकर खिलता है किन्तु चन्द्रमाको नहीं। कमलमें तत्त्वांश हैं वह तत्त्वांश कुमुदमें हैं। अतः उनसे कुमुद खिलता है किन्तु कमल नहीं। आयुर्वेदमें लिखा है—

आग्नेय विन्ध्य शैलाद्याः सौम्यो हिमगिरिर्मतः।
अत स्वदौषधानिस्युरनुरूपाणि हेतुभिः।
अन्येष्वपि प्ररोहन्ति वनेषूपवनेषु च॥

विन्ध्याचल आदि (मलयाचल-सह्याद्रि-पारियात्र) में उत्पन्न होने वाली औषधि आग्नेय गुण वाली (उष्ण वीर्य) होती हैं। और हिमालय पर्वत आदिकी औषधि सौम्य रस (शीतवीर्य) होती हैं। ये औषधियाँ केवल पर्वतोंमें ही उत्पन्न नहीं होती किन्तु वन उपवन आदिमें होती हैं।

वर्षा-ऋतुमें जलवृष्टिके कारण सब प्रकारकी औषधियाँका प्रथम बीजांकुर होकर पुनः वृद्धि होती है। चन्द्रमा अपनी किरणोंके द्वारा वर्षा-ऋतुके अनन्तर सौम्य गुण वाली औषधियोंसे सौम्यरस खींचता है। आश्विनमें वर्षा ऋतु व्यतीत होकर शरत् ऋतुका आरम्भ हो जाता है। कृष्णपक्षमें चन्द्रमा क्षीण होता हुआ समग्र अदृश्य तक हो जाता है। शुक्ल पक्षमें द्वितीयासे पुनः वृद्धिको प्राप्त होता है और उत्तरोतर-बढ़ते बढ़ते पूर्णिमाको पूर्ण हो जाता है। तभी उसमें प्रबलतासे रसके आकर्षण करनेकी शक्ति भी पूर्ण हो जाती है। चन्द्रमाकी उस सौम्य रस शक्तिको हमें प्राप्त करनेका साधन उत्सव एवं त्यौहार रूपमें उपलब्ध है जो कि शरत् पूर्णिमामें सध्याको खीर बनाकर चन्द्रमाकी चाँदनीमें रखकर सेवनकी जाती है जिससे मस्तिष्क सम्बन्धी तथा नेत्र सम्बन्धी एव फुफ्फुस सम्बन्धी श्वास आदि समस्त रोगोंका निवारण होजाय। क्योंकि चन्द्रमा सौम्य रस वाली औषधियोंसे सौम्य रस खींचकर खीरमें सौम्य रस पहुँचाता है। दूधकी खीर बनानेका अभिप्राय यह है कि दूध और चावल ये दोनों ही सौम्य गुण युक्त हैं और दूधमें आकर्षण-शक्ति भी है। अतः दूधकी खीर बनाई जाती है।

कुत्तेसे चटवाना तथा पुनर्जीवित करना

[ले०—श्री ब्रजवल्लभ, बी० एस-सी०]

कुत्ता अपने स्वामीके प्रति प्रेम-भाव दरशाने के लिये उसके हाथ या मुखको चाटता है। स्वच्छताकी दृष्टिमें क्या ऐसा करना उचित है। कुत्तेके अत्यन्त भक्त भी इसे पसन्द नहीं करते क्योंकि वे कुत्तेके मुँहको गन्दा समझते हैं। इसमें वैज्ञानिक खोजोंके उपरान्त यह मालूम पड़ता है कि इस चूमनेमें हानिके स्थानमें लाभ है। कुत्तेका मुँह अपने स्वामी या स्वामिनीके मुँहसे अधिक स्वच्छ है।

कुत्ता अगर अपने पूर्ण स्वास्थ्यमें है तब उसके थूकमें एक ऐसा पदार्थ पाया जाता है जो कि मनुष्यके थूकमें नहीं। इस पदार्थसे बैक्टीरियाके कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। उसे सोडियम कार्बोनेट कहते हैं। इस कारण कुत्तेके थूकमें मनुष्यके थूककी अपेक्षा बहुत कम हानिकारक कीटाणु होते हैं।

यह अनुसंधान पेनिसिलवेनिया विश्वविद्यालयमें वैज्ञानिक-जनोंने किया है। उन्होंने यह निश्चय किया है कि यह सोडियम कार्बोनेट कुत्तेके थूकके अतिरिक्त भी बहुतसे अन्य जानवरोंके थूकमें भी होता है, उदाहरणार्थ बिल्ली, घोड़े, सुअर, बन्दर, हाथी, शेर आदि। ट्रैंच माउथ एक रोक होता है जिससे कि स्वस्थ जानवर कभी पीड़ित नहीं होते। इस रोकके दूर करनेके हेतु इनके थूकका बहुत उपयोग है। आयुर्वेद इसे एक औषधि मानता है। किसी रोगीके अगर कोई दाद या जख्म हो जाता है तब पीड़ित स्थान पर दहीकी एक तह रखकर किसी स्वस्थ

कुत्तेसे चटवानेका दस्तूर है। उसका भी यही कारण है कि जख्म आदिके बैक्टीरियोंका नाश हो जाता है। दहीं सिर्फ इसलिये रक्खा जाता है कि कुत्ता इस स्थानको चाटनेके लिये आकर्षित हो जाय।

मास्को नगरके वैज्ञानिकोंने एक और ही कौतूहल-पूर्ण कार्य किया है। उन्होंने एक विषके सेवनसे मरे हुये कुत्तेको फिरसे जीवित कर दिया। इसमें अचम्भे की बात नहीं है। पाठकगण स्वयं इस प्रयोगको अपने आप कर सकते हैं।

एक कुत्तेको विष खिलाइये। उसको जैसे ही मृत्यु होवे उसके शरीरके अन्दरके कुल रक्तको एक पम्प द्वारा बाहर निकाल लीजिये। निकाले हुये रक्तमें खुर्दबीनसे देखने-पर असंख्य लाल और नीले रक्तके सेल दिखाई देंगे। समस्त लाल सेलोंको अलग कीजिये। उनको एक गरम घोलमें रखने पर विष द्वारा नष्ट हुआ रक्त फिरसे ठीक हो जायगा। उसमेंसे विषका प्रभाव हट जायगा। इसको शेष रक्तसे मिलाकर फिर कुत्तेके मृतक शरीरमें पम्प द्वारा ही अन्दर पहुँचा दीजिये। चार घंटेके उपरान्त कुत्तेमें फिर पुर्नजीवन आ जायगा।

कुत्तेके शरीरमें तो यह प्रयोग सफल हो गया। परंतु मनुष्यके शरीरमें इसकी सफलताका कोई प्रयोग नहीं हुआ है। मृतक शरीरोंको तो नहीं बल्कि ऐसे मानसिक शरीरों में जहाँ पर कि रक्तके बहुत मात्रामें क्षीण हो जानेसे बहुत कमज़ोरी हो जाती है ऐसा प्रयोग सफल हुआ है। स्वास्थ्य कमज़ोर होनेके कारण बुढ़ापेमें मनुष्य बहुत कमज़ोर हो जाता है और उसमें रक्तकी मात्रा बहुत कम हो जाती है। यह अस्वस्थता खाद्य पदार्थोंके सेवनसे होती है अथवा किसी छूतके रोगसे। कहीं भी घाव होनेसे उसमें असंख्य कीटाणु उत्पन्न होकर विष बनाते है और वे विष रक्तको नष्ट कर देते हैं। तृतीय कारण बाल्यावस्थामें क्षय रोग अथवा केन-सर हो जानेसे और चतुर्थ कारण जस्ताके विषोंका शरीरमें एकत्रित होने से। यह विष उन मनुष्योंके शरीरमें अधिकतर एकत्रित हो जाता है जो नल आदि मकानोंमें लगाता है जिन्हें प्लम्बर कहते हैं। अथवा सीसेकी कलोंमें काम करने वालों, लुक चढ़ाने वालों और रंगसाजोंके भी शरीरमें ऐसा ही होता है। इनके अतिरिक्त जस्तेके नलोंमें आया हुआ मुला-यम पानी पीनेसे भी बहुत समय पश्चात् विष एकत्रित हो जाता है। पंचम कारण है अतिसार, बवासीर, पेट या डूडो नममें अलसर होनेके कारण रक्तका धीमे-धीमे बाहरको व्यर्थ जाना। हेमोफिला रोगसे पीड़ित मनुष्यको अगर बहुत थोड़ी सी भी चोट लग जावे तब उससे रक्त बहुत निकल जाता है और उसका रोकना बहुत कठिन हो जाता है। इन सब कारणों से रक्तको अधिक मात्रामें क्षय होनेसे बहुत कमज़ोरी आ जाती है। इसके अतिरिक्त युद्धमें गोली आदिसे किसी पीड़ित स्थानमें रक्तका क्षय होता है। इन सब रोगोंमें रक्त फिरसे रोगीके अन्दर पहुँचाया जाता है। इन प्रयोगोंके लिये रक्त पहलेसे एकत्रित रक्खा जाता है।

यह रक्त उन व्यक्तियोंके शरीरसे, जिनकी अकस्मात् दिलके दौरेसे, पानीमें डूब जानेसे, किसी चलती गाड़ीसे लड़जानेसे अथवा उसके अन्दर आ जानेसे मृत्यु हो जाती है, मृत्युके आठ घण्टेके अन्दर ही निकाल लिया जाता है और उनको जलवायु-वर्षा भौतिक कलोंके स्थानमें रेफ्रिजरेटर में एक मास तक अच्छी हालतमें रक्खा जा सकता है। हरेक मृतक शरीरसे ३½ लिटरके लगभग रक्त निकलता है यह ६ रक्तहीन मनुष्योंके लिये पर्याप्त होता है। अब तो जीवित मनुष्य भी आर्थिक दशाके कारण अपने रक्तको प्रसन्नतासे दे देते हैं। वे अस्पतालमें जाते हैं उनकी बाँह परसे कपड़ा हटाया जाता है, नर्स उस पर आयोडीनका लेप करती है, शेष हाथको कपड़ेसे ढक दिया जाता है। एक रबर ट्यूब बाँहके चारों ओर कसके लपेटा जाता है। इससे नसें ऊपरको चमकने लगती हैं; एक तेज़ नुकीली धातुका ट्यूब नसमें लगा दिया जाता है करीब ५०० सी० सी० रक्त बाहर पम्पके इस ट्यूबके सिरे पर लगाकर ले लिया जाता है। इसमें कमज़ोरी हो जाती है। शरीरमें एक पाइंट रक्त बनानेके लिए चारसे पाँच हफ्ते तकका समय लग जाता है। अब तो मास्को नगरमें एक रक्तका बैंक भी खोला गया है। मुख्य एरजेन्सी औषधालय में यह सब होता है। डाक्टर जेम्स ए० मिलर अमरीकाके यूनाईटेड स्टेट्समें औषधि शास्त्रमें बहुत उन्नति हो रही है। मस्तिष्ककी चीर-फाड़ अब बहुत सरलतासे हो सकी है। महायुद्धमें जख्मी सैनिकके माथेमें सदैव दर्द रहता है उसका सिर

फटा जाता था। शिकागोके डाक्टरों ने उसके समस्त सिरका एक्स-रेसे चित्र लिया। एक चाकूके फलकेका टुकड़ा उसके मध्य भागमें पाया गया। यह टुकड़ा किसी बम या गोली द्वारा युद्धसे उसके मस्तिष्कमें चला गया था। मस्तिष्कको चीर-फाड़ करके वह टुकड़ा निकाल दिया गया। चीरफाड़की विद्यामें बहुत उन्नति हो रही है। परन्तु अब भी जो कुछ उन्नति है वह अन्तिम ध्येयके पहुँचनेमें नाम मात्रके समान ही है। अगर मृतक मनुष्य जीवित करनेमें यह विद्या सफलता पा सके तब यह कहनेमें बिलकुल संकोच न होगा कि यह अपने अन्तिम ध्येय तक पहुँच गई है। जिस वेगसे इस विद्यामें अभी तक उन्नति हुई है अगर उसी एक लिखते हुये क़लमकी भाँति बनाया जाता है और उसके नीचे एक मोटर द्वारा काग़ज़को एक पट्टी चलती रहती है इससे सुईके चलनेकी काग़ज़ पर रेखायें खिंचती चली जाती हैं। इन रेखाओंकी परीक्षा करके यह मालूम किया जा सकता है कि वे अकस्मात् किस स्थान पर ऊँची या नीची हो गईं। इन स्थानों पर मनुष्यने मिथ्या-भाषण किया है। और स्थानों पर जहाँ पर कि रेखायें एक-सी समतल हैं वे सत्य-भाषण बतलाते हैं। इस उन्नतिसे यह लाभ है कि परीक्षकको अपराधीसे प्रश्न पूछते समय यंत्रकी सुईको नहीं देखना पड़ता। परीक्षाके उपरान्त काग़ज़की रेखाओं को देखनेसे वह अपना उद्देश्य पूर्ण कर लेता है।

इसके प्रयोगके उदाहरणार्थ एक मनुष्यको ताशके छः पत्ते दिये गये और उससे उनमेंसे एक अपने मनमें ही छाँटनेको कहा गया। उसके बाद हरेक पत्तेको उसके सामने दिखाया गया और उसके साथ-साथ यह भी पूछा गया कि क्या यही आपका छाँटा हुआ पत्ता है। हरेक बार मनुष्यने कहा नहीं। एक बार उसने मिथ्या बोला। प्रयोगके उपरान्त यन्त्रके परीक्षकने काग़ज़ पर खिंची हुई रेखाओंका निरीक्षण करके उसे उसका छाँटा हुआ पत्ता बतलाया। जिस स्थान पर मनुष्यने झूठ बोला वहाँपर सुईकी क़लम के हिलनेसे रेखायें भी ऊपर-नीचे हो गई थीं।

इस यन्त्रके आविष्कारकके अनुसार इससे सौ प्रति सैकड़ा हो किसी भाषणमेंसे सत्य और मिथ्या अलग-अलग किया जा सकता है। अमरीकाकी न्यायकी अदालतोंमें इसकी सत्यता स्वीकार को जा चुकी है। अगर इसका वहाँ पर उपयोग हरेक न्यायाधीश द्वारा होने लगे तब न्यायाधीश अपने वक्तव्योंको काग़ज़ी बातों पर ही निर्भर करके वास्तविक सत्यता मालूम कर सकेंगे। उस शुभ दिवसका सूर्योदय दूर नहीं मालूम पड़ता है कि तब हरेक प्राणी अपने अन्तःकरणके डरसे नहीं बल्कि इस यन्त्रसे सत्य-भाषण देंगे। इसका उपयोग फिर गृहस्थ अथवा सामाजिक क्षेत्रोंसे बढ़कर राजनैतिक मामलोंमें ही होने लगेगा। तब ही समस्त संसारमें शान्ति स्थापित होगी। लड़ाई झगड़े भी बिलकुल बन्द हो जायँगे। मनुष्य जाति फिर अपने मस्तिष्क द्वारा ही कलयुगसे सतयुग स्थापित कर लेगी। संसार फिर अमर मनुष्योंसे परिपूर्ण हो जायगा। यह नहीं कहा जा सकता कि वे मनुष्य आनन्दमय होंगे या नहीं क्योंकि जैसे इस युद्ध-कालमें उनमें हिंसा, असत्य तथा कठोरताकी झलक दिखलाई पड़ती है उससे तो एक दार्शनिक उनके अमर हो जानेको अच्छा नहीं समझेगा। विज्ञानके प्रयोगोंमें उन्नति तब ही हो सकती है जब कि समस्त संसारमें अहिंसा और सत्यताकी नींवें बन जावें, युद्ध नाममात्रको भी न रहे। समस्त मनुष्य जाति शांतिपूर्वक अपने कार्य-क्षेत्रमें लगी रहे। राजनैतिक ईर्ष्या न रहे।

खनिज भोजनोंका रोग-चिकित्सक मूल्य

(ले० —श्रीराधानाथ टण्डन बी० एस-सी०, एल० टी०)

खनिज मूलतत्त्व एक आवश्यकीय भोजन है। पोषण विषय पर हमारे विज्ञानवेत्ता अधिक कालसे विचार करते चले आ रहे हैं। प्राचीन कालसे ही जनता इस बातको मानती चली आ रही है कि स्वास्थ्य पर भोजनके स्वभाव-का प्रभाव अवश्य पड़ता है। प्राचीन साहित्यमें ऐसी अनेक विश्वसनीय गाथाएं विद्यमान हैं जिनसे स्पष्ट सिद्ध होता है कि हमारे पूर्वज न ऐसे अदृष्टा थे और न ऐसे अनभिज्ञ, जैसा कि हममेंसे अनेक विश्वास करनेके आदी

हो गए हैं। सन् १७२० में क्रैमर महाशयने अपने वैद्यक ग्रन्थ (मेडिसिना क्रैस्टैन्सिस) में स्कर्वी रोग चिकित्सापर हरी शाक भाजियों तथा नींबू वर्ग फलोंके लाभदायक प्रभावोंके सम्बन्धमें बहुत कुछ लिखा है।

हमारे भोज्य पदार्थोंके ढंग तथा आवश्यकीय जैविक अवयवोंके विचारके सम्बन्धमें विज्ञानकी शिक्षाएं वर्षों तक केवल दार्शनिक रुचिसे ही प्रेरित थीं। हमारा भोजन सम्बन्धी समस्त विज्ञान शेरमन, आसबर्न, मैकॉलम, मेण्डल, हापकिन्स, हचिसन, इत्यादि जैसे धुरन्धर वैज्ञानिकोंके निरन्तर उद्योगका फल है तथा उनकी खोजें व्यवहारिक दृष्टिमें अधिक महत्वशील हैं।

भोजनका वर्गीकरण

हचिसन महाशयके अनुसार भोजनकी व्याख्यामें उस भोजनसे तात्पर्य है जो शरीरके अन्दर प्रवेश करने पर विनष्ट पदार्थको फिरसे निर्मित करनेके योग्य हो अथवा इसको उन पदार्थोंसे परिपूर्ण करे जिससे इसमें ताप वा वात व मांसल शक्तिका प्रादुर्भाव हो। भोजनको निम्न सारिणीके अनुसार उसने दो वर्गोंमें विभाजित किया:—
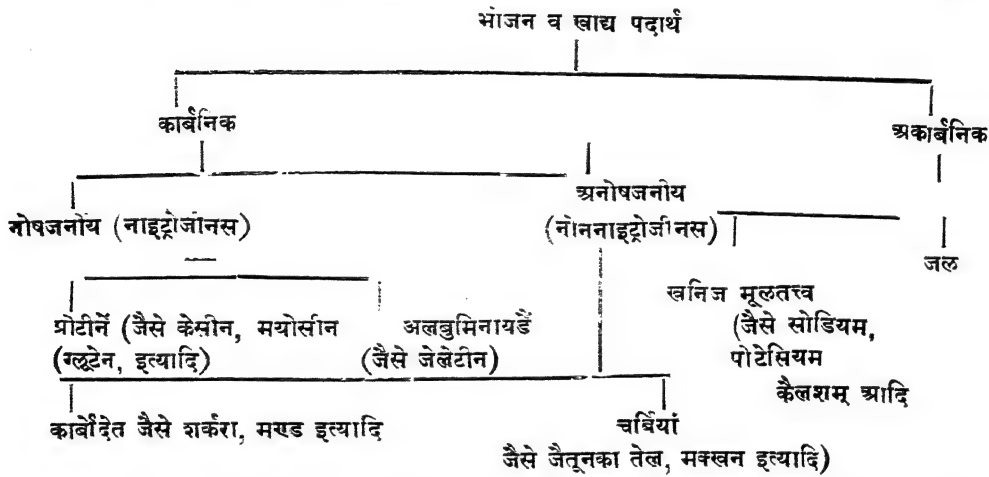
इन भिन्न-भिन्न समूहोंकी भोजनीय क्रियाएं भिन्न-भिन्न उद्देश्यसे होती हैं। तन्तुके निर्माण तथा पुनर्निर्माणकी क्रिया प्रोटीनों तथा अकार्बनिक खनिजोंसे ही केवल परिपूरित हो सकती है। इस अभिप्रायके लिये प्रोटीन, खनिज तथा जल आवश्यकीय है। तीनों इनमेंसे कोई एक स्वयं रूपसे पर्याप्त नहीं। हमारी दूसरी आवश्यकता शक्ति या सामर्थ्य है। इसे हम कार्बनिक अवयवोंसे ही प्राप्त कर सकते हैं। यद्यपि एक सीमित मात्रा तक जल तथा कदाचित खनिज अवयव भी शक्ति-उत्पादनके स्रोत माने जा सकते हैं। खनिज मूलतत्त्वोंका झिल्ली प्रवेश (आसमोटिक) गुण भी सामर्थ्य प्रदान करनेका साधन हो सकता है। शारीरिक द्रव्योंमें ६ वायुमण्डलोंका आसमोटिक दबाव पाया जाता है। खनिज मूलतत्त्वोंकी क्रिया द्वारा इस दबावमें परिवर्तन शारीरिक-द्रव्योंके शोषण तथा विस्तार में सहायक है जो एक निश्चित मात्राकी शक्तिके सदृश है।

मानव शरीरमें क्या है ?

खनिज मूलतत्त्वोंके महत्वका पूर्णरूपेण ज्ञान प्राप्त करनेके लिए हम शेरमन महाशयके निम्न दिए हुये मनुष्य-शरीरके संगठनपर पाठकोंका ध्यान आकर्षित करते हैं—

	प्रतिशत
ओषजन	६५
कार्बन	१८
उदजन	१०
नोषजन	३.०
कैलशम	१.५
फॉसफोरस	१.०
पोटेसियम	०.३५
गन्धक	०.२५
सोडियम	०.१५
क्लोरीन् वायु	०.१५

मैगनीसियम	०.०५
लोहा	०.००४
आयोडिन	०.००००४

ताम्र
मैङ्गनोज़
जस्ता
फ्लोरीन
सिलीकन
} विशेष अल्प मात्राओं में

ऊपर कहे हुएके अतिरिक्त ऐसा विश्वास किया जाता है कि एल्युमीनियम, कोबाल्ट, तथा निकेल धातुओंके अंश भी सम्भवतः शरीरके अवयव-भाग हो सकते हैं। कुछ लेखकोंका विश्वास है कि संखिया (Arsenic) भी एक आवश्यकीय भाग है।

खनिज तत्त्वोंका उद्देश्य

खनिज मूलतत्वोंके साधारण कामोंका वर्णन शेरमन महाशयने निम्न प्रकार किया है :—

१—अस्थियों तथा दन्तोंके अवयवोंकी भाँति जिनसे तन्तुओंको कठोरता तथा आपेक्षिक स्थायीपन प्राप्त हो।

२ - उन कार्बनिक यौगिकोंके आवश्यकीय मूलतत्वोंकी भाँति जो कोमल तन्तुओं, मांसपेशियों, रक्त कोषों इत्यादि के मुख्य ठोस अवयव हैं।

३—शरीरके द्रव्योंमें घुले हुए घुलनशील लवणों (एलेक्ट्रोलाइट) की भाँति जिनसे उन द्रव्योंको मांसपेशियों तथा वातनाड़ियोंके लचकपन तथा भड़कपन पर अपना स्वाभाविक प्रभाव प्राप्त होता है और जिनसे पचाने वाले रसों तथा और स्त्रावोंकी आम्लिकता तथा क्षारपनके लिये सामग्री प्राप्त होती है और तिस पर भी जो शारीरिक द्रव्योंको लगभग उदासीन बनाए रखती हैं तथा उनके आसमोटिक दबाव और घोलीय शक्तिको भी क़ायम रखती हैं।

खनिज तत्त्व शरीर में निरन्तर परिवर्तित होते रहते हैं, मल-मूत्र द्वारा शरीरसे बाहर भी निकल जाते हैं। इस प्रकार शरीरमें इनकी मात्रा कम होती रहती है। पर शरीरके स्वस्थ रखनेके लिये यह आवश्यक है कि इनकी एक निश्चित मात्रा शरीरमें अवश्य विद्यमान रहे। अतः मल-मूत्र द्वारा जो भी कुछ कमी होती हो उसे निरन्तर पूरा करते जाने की नितान्त आवश्यकता है।

शरीर में खनिज तत्त्व या तो घुले रूपमें या कोलायडल घोलके रूपमें पाये जाते हैं। इन घोलोंकी शक्ति शारीरिक द्रव्योंमें निश्चित रहती है। और महोदयके प्रयोगोंसे स्पष्ट है कि यदि यह शक्ति निश्चित परिमाणसे कम या अधिक हो जाय तो शारीरिक प्रक्रियायें रुक भी सकती हैं और कभी-कभी उलट भी जाती हैं।

ऐसा होनेसे न केवल रोग उत्पन्न हो सकते हैं, प्रत्युत बहुधा मृत्यु तक हो सकती है।

साधारण रीतिसे यह बात बहुत दिनोंसे मानी जा चुकी है कि भोजनके अकार्बनिक अवयव इसमें एक ऐसा भाग लेते हैं जिसकी उपेक्षा कदापि नहीं की जा सकती। (आसबोर्न तथा मेंडल)।

यथोचित प्रयोगोंने जिनमें जन्तुओंको खनिजोंसे रहित रक्खा गया न केवल इन मूलतत्त्वोंकी आवश्यकताको ही सिद्ध कर दिखाया वरन् उनके संयोगमें होने की आवश्यकताको भी। उदाहरणार्थ, भोजनमें जब सोडियम तथा पोटेसियम दोनों साथ ही मात्रामें घटा दिए गए शरीरका बढ़ना बन्द हो गया। पश्चात् वृद्धिके पूर्वकालमें केवल ने बहुत थोड़ा लाभ प्रदर्शित किया, परन्तु बादको सोडियम सोडियमके योगके स्थानमें पोटेसियम लेनेसे शीघ्र अवस्था सुधरने लगी। यह बात यों समझी जा सकती है कि जब सोडियम तथा पोटेसियम दोनोंका अभाव हो, पोटेसियम मल रूपमें निकाल दिया जाता है; परन्तु जब भोजनमें सोडियम पर्याप्त मात्रामें हो तो पोटेसियमको शरीर बड़ी दृढ़ताके साथ रोक लेता है।

स्वास्थ्यके क़ायम रखनेमें खनिज मूलतत्वोंकी महत्ता स्पष्ट रूपसे और महाशयने बतलाई है। इस बातको मान लेना कि साधारण भोजनमें महत्वशील खनिज मूलतत्वोंकी मात्रा पर्याप्त है न्याय-संगत हो सकता है यदि भोजनमें वे खाद्य पदार्थ सम्मिलित हों जो प्राकृतिक अवस्थामें पाए जाते हैं। अभाग्यवश आधुनिक सभ्यताके कृत्रिम खाद्य पदार्थ भिन्न-भिन्न आवश्यकीय अवयवोंके सम्बन्धमें ऐसे कुतुलित हैं कि मुख्यतः इन्हीं खाद्य पदार्थोंसे निर्मित भोजन कई प्रकारसे कमी रख सकता है, यद्यपि हमको इससे पर्याप्त शक्ति तथा आवश्यक प्रोटीन प्राप्त भी हो।

गत कुछ वर्षों से लोगोंमें ऐसा विचार उत्पन्न हो गया था कि अप्राकृतिक भोजनों की अनुपयुक्तता पूर्णतया विटेमिनोंकी कमीके कारण है। आधुनिक कार्यने तथापि यह स्पष्ट कर दिया है कि इनके कुप्रभावोंका अधिकांश कारण भोजनके खनिज पदार्थों तथा शरीरकी खनिज आवश्यकताओंके मध्य सम्पर्ककी कमी है। अब यह बात सर्वमान्य है कि स्वास्थ्यको बनाए रखनेके लिए भोजनमें अकार्बनिक मूलतत्वोंकी मात्राएं तथा अनुपातें विशेष महत्व-शील हैं।

शरीरमें खनिज मूल-तत्वों का अधिकांश अचलायमान अस्थिपिंजरिक रचनाओंमें पाया जाता है। इस कारण ऐसा विचार पैदा हो सकता है कि ये अकार्बनिक मूलतत्त्व क्रियाविज्ञानकी निर्माण तथा विनाश विधियोंमें कार्बनिक यौगिकोंको अपेक्षा कम महत्वशील भाग लेते हैं। वास्तवमें खनिज मूलतत्त्व शरीरके समस्त कोमल तन्तुओंमें आवश्यकीय अवयवोंके रूपमें विद्यमान हैं। कोषोय-जीवन उनके बिना असम्भव है। वे समस्त निर्माण तथा विनाश (मेटाबालिक) विधियों पर किसी-न-किसी प्रकार अपना प्रभुत्व जमाए हुए हैं।

खनिज समतुलित मात्रायें

जैकीज़ लोयब तथा और महाशयोंके प्रयोगोंने स्पष्टकर दिया है कि न केवल इन खनिज मूलतत्वोंको कोमल तन्तुओं तथा शरीरके द्रव्योंमें ही विद्यमान होना चाहिए वरन् यदि भिन्न अङ्गोंका साधारण कार्य कायम रखना है तो उन्हें एक अति विशेष अनुपातमें विद्यमान होना आवश्यकीय है। शरीरमें खनिजोंका समतुलित घोल होना चाहिये। शरीर की भिन्न-भिन्न आयोजनायें इस समतुलित अवस्थाकी रक्षा करनेसे ही सम्बन्ध रखती हैं समतुलित अवस्थाको स्थिर रखना शारीरिक प्रक्रियाओंका उद्देश्य है। यदि भोजनमें खनिजतत्त्व इतनी मात्रामें बढ़ जायँ कि समतुलित अवस्था स्थिर ही न रह सके तो बहुतसे रोग उत्पन्न हो जायँगे।

पकानेमें सावधानी

ऐसा भोजन जिसमें प्रोटीन, शर्करायें चर्बियाँ, लवण, तथा जल सम्मिलित हो एक आदर्श भोजन प्रतीत होता है, पर इतनेसे ही काम नहीं चल सकता। हमें यह भी जानना चाहिये कि ये पदार्थ कहाँसे प्राप्त हुये हैं, हमारे भोजनमें किस प्रकार विद्यमान हैं, और थालीमें परोसे जानेसे पूर्व वे किस प्रकार पकाये गये हैं। शाक भाजियोंमें महत्वशील पोषणीय मूलतत्व पाए जाते हैं जो बहुधा फेंक दिए जाते हैं। गृहणियोंका यह एक साधारण स्वभाव है कि वे उस जलको जिसमें भाजियाँ पकाई गई हों निचोड़ देती हैं। अनेक भोजनोंमें विद्यमान जैविक मूलतत्व अधिक पक जानेसे विनष्ट हो जाते हैं। उदाहरणार्थ पकाने पर आलू अपने खनिज पदार्थका ३८ प्रतिशत तथा गाजर ३७ प्रतिशत खो देती है।

जैसा कि रासायनिक विश्लेषणसे निश्चित किया गया है, भोजनमें खनिज मूल तत्वोंकी मात्रा पर्याप्त हो सकती है। परन्तु बहुत सी बातें ऐसी हैं जो रासायनिक विश्लेषण की दृष्टिसे तो महत्वकी नहीं हैं, पर शारीरिक प्रक्रियाओं पर उनका सूक्ष्म प्रभाव पड़ता है। एक रासायनज्ञ दो यौगिकोंको एक ही बता सकता है। परन्तु जीव-वेत्ता बहुधा सूक्ष्म भेदोंका पता लगा सकता है जिनसे यह एकको व्यवहारमें लानेके योग्य समझे तथा दूसरेको त्याग करनेके।

खनिज मूलतत्वोंकी संश्लेषणात्मक क्रिया

यह बात स्मरण रखने योग्य है कि अधिकांश खनिजों के उदाहरणमें आंतसे शोषण तथा गुर्दे द्वारा निकास दोनों अन्य खनिजोंको मात्राओंकी विद्यामानतासे प्रभावित होते हैं। यह बात दिखाई जा चुकी है कि भोजनमें पोटेसियम सोडियमका अनुपात कैलसियम और फॉसफोरसकी उपगितापर भी प्रभाव डालता है।

हार्ट तथा स्टीनबाक महाशयोंके प्रयोगानुसार मैगनीशियमकी अधिकता कैलसियमके उपयोगमें विघ्न डालती है। फॉसफोरस तथा कैलसियम दोनों उपयोगके हेतु एक दूसरेपर परस्पर अवलम्बित हैं। इसी प्रकार कुछ सीमा तक कैलसियम तथा लोह भी हैं। एकीकरण क्रियामें भिन्न खनिज मूलतत्त्वोंके पारस्परिक अवलम्बनके इन उदाहरणोंसे स्पष्ट है कि भोजनके खनिज अवयवोंकी पारस्परिक अनुपातें उतनी ही महत्वशील हैं जितनी कि पूर्ण मात्राएँ।

ब्लावर्ग महाशयके प्रयोगानुसार बच्चोंमें मनुष्य दुग्ध के खनिजोंका प्रतिशत एकीकरण ८१.८३ था, समस्त

गायके दूधका ६०.७०। मिश्रित गायके दूधका ५३.७२ तथा एक अप्राकृतिक भोजनका ३२.५५। बच्चों में मनुष्य दुग्धके खनिज अवयवोंके एकीकरणके प्रतिशतको यह ऊँचाई इस वास्तविक बातपर निर्भर है कि खनिजोंके पारस्परिक अनुपात तथा मनुष्य दुग्धके समस्त अवयवों की समतुलित अवस्था बच्चेकी आवश्यकताओंके पूर्णतया अनुकूल हैं। यदि प्रयोगोंमें एक बछड़ा काममें लाया जाता, तो प्रतिशत एकीकरण गायके दूधका मनुष्यके दूध की अपेक्षा अधिक होता।

मनुष्यके दुग्धसे बच्चेका खनिज पोषण अधिक होता है यद्यपि गायके दूधमें लोहको छोड़कर खनिजोंकी प्रतिशत मात्रा बहुत अधिक है जैसा कि निम्न दी हुई संख्याओंसे प्रत्यक्ष है।

प्रति सहस्र कलारियोंमें खनिजोंकी मात्रा

	कैलसियम	मांग०	पोटे	सोडि	फ़.स०	लोहम्
मनुष्य दूध...	०.५३	०.०८	०.७७	०.१६	०.२३	०.०११
गायका दूध...	१.७४	०-१७	२.०७	०.७४	१.३३	०.००३

इस बातमें कोई सन्देह नहीं है कि गायका दूध खनिजोंसे पूरित एक उत्तम भोजन है। ओंकैडो तथा एैनो महाशयों ने अपने प्रयोगसे यह स्पष्ट कर दिया है कि गरमाए हुए गायके दूधका पोषक मूल्य कच्चे दूधकी अपेक्षा विशेष न्यून है, तथा तापक्रमकी डिगरीके अनुपातानुसार इसके पाचनकी कठिनाई बढ़ जाती है। मैटणुओंके कथनानुसार दूधको गर्मानेसे ताप द्वारा अमीनो अम्ल, लिसिन, त्रिप्टोफैन, फ़ासफ़ोरस, तथा लोहमें तो परिवर्तन अल्पमात्र है परन्तु समस्त और पदार्थोंमें परिवर्तन अधिक हो जाता है। गर्म होनेपर दूध में घुले हुए स्फुर तथा खटिकम लवणोंमें अघोलीय त्रि-कैलसियम-फ़ॉसफ़ेटका प्रादुर्भाव हो जाता है।

गर्भावस्था तथा पूर्वकालिक वृद्धि में खनिजोंकी विशेष महत्ता

कोर्टनी महाशयके अनुसार यह सर्वमान्य बात है कि डेयरी पशुके दूधमें विरोधी अवस्थाओंके होते हुए भी अपनी मिलावटमें सदा एकही प्रकार बने रहनेका एक प्रमुख स्वभाव पाया जाता है। भोजनमें परिवर्तन विशेषकर अकार्बनिक अवयवोंके सम्बन्धमें भिन्न अवयवोंके केन्द्रीभवन पर शीघ्र प्रभाव नहीं डालते। मक्खन चर्बीकी रीतिसे देन तथा गुणपर प्रभाव पड़ सकता है, परन्तु उसमेंके विद्यमान खनिज मूलतत्व प्रभावित नहीं होते। भोजन जिनमें अकार्बनिक खनिजोंकी मात्रा न्यून होती है यद्यपि दूधकी खनिज मिलावटपर कोई प्रभाव नहीं डालता, तथापि बच्चेके स्वास्थ्य पर उनका प्रभाव निस्सन्देह पड़ता है। कारण कि बहुतसे उदाहरणोंमें बछड़े मृत पैदा हुए अथवा केवल अल्प दिनों तक ही जीवित रहे (मेण्डल)। इस बातका विश्वास कि गौयें अपनी अस्थियोंसे खटिकम प्राप्त करनेकी योग्यता रखती हैं कारणयुक्त है।

कोर्टनी महाशय इस बातपर लोगोंका ध्यान आकृष्ट करना चाहते हैं कि धात्री माताओंका प्रौढ़ावस्था वाला तथा देरवाला दूध कुछ भिन्न होता है तथा यह कि धात्री मांका कमी वाले भोजनका निरन्तर व्यवहार बच्चेपर भयानक प्रभाव डाल सकता है, विशेषकर दूध-स्रावके पश्चात्‌की अवस्थाओंमें जब कि मांका कोष रिक्त हो जाय।

दूध स्राव कालमें भोजनको एक ऐसे शक्ति प्रदानक पदार्थ से जो खनिजों से परिपूर्ण हो योगितकर देनेका महत्व इसी बातसे प्रमाणित है कि छातीके दूधसे पाले गए बच्चों में कुपोषणके अनेक उदाहरणका कारण मांके दूधमें खनिज मूलतत्वोंकी न्यूनता है तथा जो परिवर्तनशील हैं और मांके भोजनके स्वभावपर ही अवलम्बित हैं।

जब गर्भावस्थामें खनिजके अन्तः उपयोग तथा परिणामिक खनिज क्रिया वैज्ञानिक निर्माण व विनाशमें त्रुटि हो, तब अन्तः-योनिक परोपवासोंमें अस्थि तथा दन्त त्रुटियोंकी विद्यमानताका न केवल पूर्वसे ही विचार पैदा होता है वरन् इस बातका प्रमाण भी है कि कुछ उदाहरणोंमें माताओंमें सहभोगित पोषणीय बाधाएं भी ऐसी अवस्थाओंमें जैसे कालके पूर्वजन्म, दन्त केरिमा, टिटैनी, अस्थि-मज्जेसिया तथा एक्लैम्पसिस्समें और कारणोंके अतिरिक्त एक कारण हैं।

गर्भांकुर तथा बच्चेके वृद्धिकालमें मातृक नोपजन तथा खनिज आवश्यकताओंकी अङ्कगणनानुसार माताको प्रति दिन ७० से १०० ग्राम प्रोटीन, कैलसियमका न्यूनतम १.६

ग्राम, स्फुरका २ सहस्रांश ग्राम, मैगनीशियमका ०.३ ग्राम तथा लोहमका २० ग्राम देना लाभप्रद प्रतीत होता है।

बोहनी तपेदिक अस्पतालके क्राइनम महाशयका कथन है कि यदि बचपनके तपेदिकके रोगीको अपने भोजन से अपने भारकी वृद्धि के सहायतार्थ खनिजोंको एक पर्याप्त मात्रा तथा भिन्नता प्राप्त न हो, तो तपेदिक रोगके चंगा करनेवाली विधिमें न हो सके तो रक्षार्थी विधिमें सहायतार्थ खनिजोंका योग देना आवश्यकीय है।

ब्रौन तथा टिण्डल महाशयोंका विश्वास है कि भोजनमें खनिजों तथा विटेमिनों दोनोंको पर्याप्त देनके निश्चयके लिए इस ओर अधिक ध्यानकी आवश्यकता है। साधारण वृद्धि तथा कीटाणु रोगके प्रति बाधा क़ायम रखनेके लिए इन भोज्य आवश्यकताओंका महत्व अभी लोगोंने उतने विस्तारसे नहीं समझा है जितना कि चाहिये।

जब कि प्रतिदिनके साधारण भोजनके आवश्यकीय खनिजोंकी न्यूनतम मात्राके सम्बन्धमें भिन्न अनुमानित अङ्क बनाए जा चुके हैं इस प्रश्नके अन्तर्गत वायु, स्वास्थ्य सम्बन्धी अवस्थाएँ, रहन-सहनकी विधि इत्यादि इतनी अधिक बातें आती हैं कि इन अनुमानित अङ्कोंकी एक सूची देना केवल आत्मिक रुचि-सा प्रतीत होगा। तथापि यह एक निश्चित बात है कि भोजनका खनिज भराव प्रौढ़ावस्थाकी अपेक्षा वृद्धिकालके लिए अधिक महत्वशील है। इस वृद्धिकालमें आपेक्षिक रीतिसे आवश्यकताएँ न केवल अधिक ही हैं वरन् कमीसे पैदा हुए कुपरिणाम विकट रूप धारण करते हैं।

तीस दिनके उपवाससे मूत्रमें मूलतत्वोंका विकास इस बातको प्रकट कर देता है कि मनुष्य-शरीर इन जीवनीय आवश्यकताओंकी हानिसे कितना निर्धन हो जाता है तथा साथ-ही-साथ यह भी कि अल्प मूलतत्वोंका मल-रूप विकास साधारण रूपसे निरन्तर कायम रहता है यद्यपि हम भोजन करते भी जाएँ।

(बेनेडिट महाशयकी एक सारिणी)

ग्रामोंमें —

मल रूप निकास	नोष	हरिन	स्फुर	गन्धक	खटि	मैग	पान्शु	सोडि
प्रथम दिन	७'१०	३'७७	०'७३	०'४६	० २१७	०'०४६	१'६३०	२'०७०
१० वें "	१०'०५	०'२८	०'८६	०'६१	०'२२०	०'०७२	१'००	०'१००
२० वें "	७'६६	०'१५	०'६४	०'५१	०'२३७	०'०५९	०.६४४	०'०५१
३० वें "	७.८३	० १३	०'६१	०'४९	०'१३८	०'०५२	०'६०६	०'०५३

अनेक प्रकारकी बीमारियोंमें उपर्युक्त अवस्था प्रदर्शित होती है। शरीर भूख मर जाने अथवा अल्पमात्र भी खाने की अयोग्यतासे इन मूल्यवान् मूलतत्वोंको मल रूपमें निरन्तर खोता रहता है। उनको खनिज परिपूर्ण शक्तिवर्धक द्वारा फिरसे स्थानापन्न करना आवश्यकीय है। आन्तरिक लेनके विचारको त्यागकर कुछ जन्तु शरीरोंकी रासायनिक पदार्थ उत्पादन-शक्ति, मैकोलम आदि महाशयोंने चित्रित उदाहरणोंसे दी है। तीन अर्द्ध वृद्धि वाली मुर्गियोंको स्वच्छ किए हुए चावल तथा मलाईको बुकनी (जो कि ईथर द्वारा इसको आवश्यक रूपसे चर्बी रहित करनेके लिए निकाली गई थी) का मिश्रण ही केवल भर पेट खिलाया गया। इस भोजन पर मुर्गियोंका भार ३३ प्रतिशत बढ़ गया तथा ५७ अंडे दिए जिन सबोंमें लेसिथिन तथा सिफैलिनकी मात्रायें ग्रामोंमें ८२.९५ थीं। यह मात्रा मुर्गियोंके समस्त शरीरोंमें विद्यमान इन पदार्थों की कई गुणा है। जटिल लिपिनों तथा उदासीन चर्बियों दोनोंको ही पक्षियोंने अवश्यमेव संश्लेषण विधि द्वारा ही उत्पादित किया होगा।

भोजनमें खनिजोंकी बहुधा कमी

यद्यपि शेरमनका विश्वास है कि हमारे साधारण भोजनमें हमारी पोषणीय आवश्यकताओंको पूर्ण करनेके लिये आवश्यकीय खनिज मूलतत्वोंकी पर्याप्त रूपसे भरमार है तथापि अनेक अन्वेषक विशेष कर स्फुर, खटिकम, तथा लोहमके सम्बन्धमें उनसे सहमत नहीं हैं, कारण कि ये महत्वशील जीवनीय मूलतत्व प्रस्तुत भोजनके समक्ष आनेके

पूर्व ही नष्ट हो जाते हैं। शेरमनका कथन है कि वर्षों तक ऐसी बातें देखनेमें आईं जिनसे यह कहना अनिवार्य है कि स्फुर, खटिकम तथा लोहमकी देनको अवकाश पर न छोड़ा जाए, वरन् भोजनोंकी पर्याप्तताके विचारमें गिना जाए। इस बातमें अल्प मात्र ही सन्देह है कि औसत श्रेणीके भोजनमें कम-से-कम कुछ अंशमें, आवश्यकीय मूलतत्वों की कमी बनी हो रहती है। यदि यह बात साधारणावस्थामें सत्य है, तो यह रोगावस्थामें प्रकट रूपसे असम्मान्य है, जहाँ कि साधारण भोजनसे भी सहानुभूति नहीं की जा सकती।

हचिसन महाशयका कथन है कि शरीरकी रचनाको ठीक कायम रखनेके लिए कोई-कोई खनिज लवण इतने आवश्यकीय हैं कि यदि इनका देन पूर्णतया स्थगित कर दिया जाए, यद्यपि और सब अवयव एक साधारण भोजनके विद्यमान हों तो लगभग एक मासमें मृत्यु हो जायगी। इन खनिजोंको निस्सन्देह भोजनोंकी श्रेणीमें रखना चाहिए। यह स्पष्ट है कि साधारण क्रिया वैज्ञानिक निर्माणको विनाश-क्रिया (मेटाबालिज्म) की निश्चयताके लिए किसी खनिज लवणकी पर्याप्त देन आवश्यकीय है, तथा यह कि शरीरकी ओजस्विता तथा स्वास्थ्यको, इसके भिन्न कार्यों को उत्तम रूपसे संचालनकी उन्नति द्वारा, कायम रखनेमें खनिज लवण एक महत्वशील भाग लेते हैं। इसके अतिरिक्त यह भी स्पष्ट है कि ऐसे खनिज लवणका अपर्याप्त देन अल्प निश्चित अवस्थाओंमें, न केवल साधारण मेटाबोलिज्ममें ही विघ्नकारक है, वरन् रोगात्मक हेर-फेरका भी कारण है।

खनिजोंके अकार्बनिक रूपोंसे कमीकी पूर्तिकी पर्याप्तता

शरीर-रचनाकी ठीक अवस्था क़ायम रखनेके लिए हम खनिज मूलतत्वोंकी पूर्ण आवश्यकताका ज्ञान कर चुके हैं, अस्तु अब हम किस विधिसे इनको शरीरके समक्ष पेश करें, इस बात पर विचार करेंगे और यह बात किसी प्रकार अवहेलना योग्य नहीं है। मेण्डल महाशयके अनुसार खटिकम, स्फुर तथा लोहमके किसी कार्बनिक रूप व संयोगमें पेश किए जानेकी उत्तमताके प्रश्न पर एक बार वाद-विवाद हो चुकनेसे अब इसमें कोई रुचि नहीं रह जाती कारण कि यह देखा जा चुका है कि इन मूलतत्वोंके अकार्बनिक आधार जीवधारियोंकी आवश्यकताओंको प्रकट रूपसे पूर्ण करनेके लिए पर्याप्त हैं।

आसबोर्न तथा मेण्डल महाशयोंका कथन है कि अकार्बनिक आधारों पर एक वृद्धि करता हुआ जीव अपने मूलतत्वोंकी आवश्यकताओंको पूर्ण रूपसे पूरित कर सकता है। एक आवश्यकीय अकार्बनिक मूलतत्वकी कमीकी उचित चिकित्सा साधारण अवस्थाओंमें इसके लवणोंके उपयोगसे की जा सकती है।

फिर हचिसन महाशय कहते हैं कि जब कि, और इसका कारण स्पष्ट नहीं है, यह ऐसा प्रतीत होता है खनिज मूलतत्वोंके कार्बनिक रूप पोषणमें विशेष लाभप्रद हैं, यह बात कदापि नहीं मानी जा सकती कि खनिज पदार्थ केवल इन्हीं रूपोंमें रुधिर तक पहुँच सकते हैं। इस बातके प्रमाण कि खनिज मूलतत्व अकार्बनिक रूपमें शोषण तथा उपयोग किए जाते हैं, अगणित हैं।

खटिकम या कैलसियम

जब कि शरीरके समस्त खनिज अवयवोंको महत्ता किसी प्रकार कम नहीं है तथा प्रत्येकका भाग जीवनमें ऐसा है जैसा कि और किसीका नहीं, खटिकम प्रतिशत अधिक पाए जाने तथा इसके अनेक गुणोंके कारण जीवनमें एक बड़े महत्वका भाग लेता है।

कैनटैरो महाशयने खटिकमके मूल्यका एक विशेष रोचक अध्ययन प्रस्तुत किया है जिसमें उनका कथन है कि इसमें कोई सन्देह नहीं यदि घोलीय खटिकम लवणोंका उचित रूपसे उपयोग किया जाए तो वे सन्तोषजनक शोषणके साथ-ही-साथ खटिकमके सतहमें एक विशेष उत्थान पैदा कर सकते हैं।

यह सर्वप्रसिद्ध बात है कि विटेमिन डी की कमी जिसका परिणाम बच्चोंका अस्थि-रोग (रिकेट) है, सम्भवतः शरीरके खटिकमको रोक रखनेकी अयोग्यतासे सहयोगित है। विटेमिन डी के उपयोगका परिणाम मलस्राव की कमीके साथ-ही-साथ खटिकमके जमावमें वृद्धि है, विटेमिन डी वह पदार्थ है जो साधारण खटिकम निर्माण

व विनाश-क्रिया (मेटाबालिज्म) के लिए आवश्यकीय है। विटेमिनें खनिजोंका स्थान नहीं ले सकतीं तो भी उनके उपयुक्त व्यवहारमें सहायक हो सकती हैं।

खटिकमका एकीकरण और अवयवोंके अतिरिक्त प्रोटीन के अन्तःलेन पर भी अवलम्बित है। यह प्रश्न कि दूधका खटिकम शाक-भाजियोंके खटिकमकी अपेक्षा अधिक शीघ्र शोषित होता है, या नहीं महत्वशील नहीं है, कारण कि यह पहले ही बताया जा चुका है कि अकार्बनिक खटिकम शीघ्र शोषित हो जाता है। निस्सन्देह एक साधारण अवस्थाके भोजनके होते हुए खटिकमकी कमी कार्बनिक खटिकमके उपयोगकी अयोग्यता स्पष्ट कर देगी, सम्भवतः अल्प उपतुलित अवस्थाके कारण।

(शेष मैटर ७३ पृष्ठ पर देखो)

घरेलू डाक्टर

[संपादक-डाक्टर जी० घोष, डा० गोरखप्रसाद आदि]

अर्बुद (tumour)— शब्दसागरके अनुसार यह एक रोग है जिसमें एक प्रकारकी गाँठ शरीरमें पड़ जाती है। अर्बुदको रसौली या बतौरी भी कहते हैं। अर्बुद नवीन सेलों (cells) अर्थात् कोष्ठोंके बन जानेसे उत्पन्न होता है। ये सेल उस अंगके सेलोंकी जातिके होते हैं जहाँ अर्बुद बनता है; तो भी इन नवीन सेलोंमें कोई उपयोगिता नहीं होती। उनकी वृद्धि शरीरके माथे होती है। आतशक और तपेदिककी तरह रोगोंमें भी नवीन सेलोंकी अतिवृद्धि होती है, परन्तु ये सेल शरीरके साधारण सेलोंकी तरह नहीं होते और उनके बननेसे शरीरकी रक्षा होती है।

शरीरके किसी भी तंतुमें अर्बुद उत्पन्न हो सकता है और इसलिये अर्बुद अनेक प्रकारके होते हैं। उनके नाम भी इन्हीं तंतुओंके अनुसार पड़ जाते हैं, जैसे वसार्बुद (lipoma or fatty tumour) सूत्रार्बुद (fibromas or fibrous tumour), रक्तार्बुद (angiomas or blood-vessel tumour), नाड्यार्बुद (neuroma or nerve tumour), इत्यादि । मांसार्बुद (sarcoma) का नाम इसलिए पड़ा है कि वह देखनेमें अन्य अर्बुदोंकी तरह ही लगता है। कर्कटार्बुद (carcinoma) का नाम ऐसा इसलिये पड़ा है कि प्रधान अर्बुदमें गौण अर्बुद उत्पन्न हो जाते हैं जो देखनेमें केकड़ेके पंजोंकी तरह लगते हैं। यह वस्तुतः कैनसर रोग है।

अर्बुद क्यों उत्पन्न होते हैं इसका अभी तक ठीक पता नहीं लग सका है। संभव है कि कई कारणोंसे अर्बुद बनते हैं। कैनसर रोगमें अकसर रोगके स्थान पर पहलेसे किसी तरहकी उत्तेजना रहती है, जैसे किसी तीव्र रासायनिक पदार्थके कारण या भुकड़ी (फफूँद) आदिकी जातिकी किसी वस्तुके कारण। उदाहरणतः मिट्टीके तेलके कारखानोंके मजदूरोंको अकसर इस प्रकारका रोग हो जाता है। एक जगह जान-बूझकर बराबर अलकतरा लगाते रहनेसे कृत्रिम रीतिसे कैनसर उत्पन्न किया जा सकता है। कुछ अर्बुद पैदाइशी होते हैं। वे पहले इतने छोटे भी रह सकते हैं कि कोई उन्हें देखे न, परन्तु किसी समय पीछे वे अपने-आप उभड़ने लगते हैं।
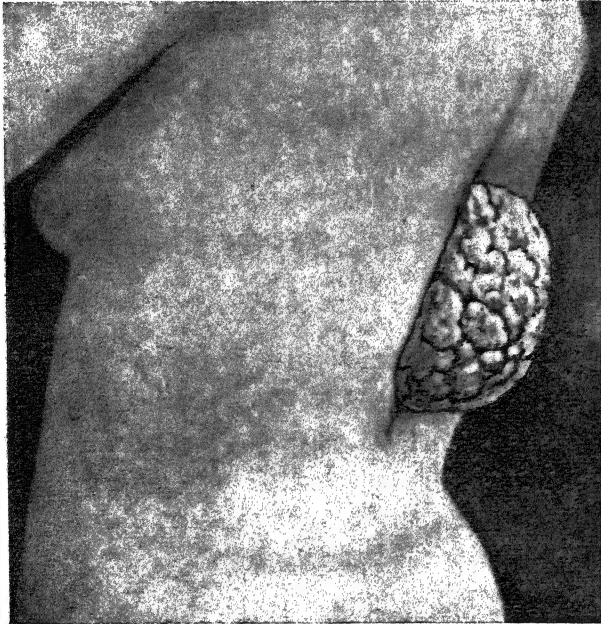
अर्बुद, पीठमें

अर्बुदोंको अकसर दो जातियोंमें विभक्त किया जाता है, हानिकारक (malignant) और हानिरहित (benign) अधिकांश अर्बुद हानिरहित होते हैं। वे बहुत धीरे-धीरे बढ़ते हैं और उनसे हानि तभी होती है जब वे इतने बड़े हो जाते हैं कि शरीरके अन्य अवयवोंके कार्यमें बाधा पड़ने लगे। परन्तु दूसरे अर्बुद बड़े वेगसे बढ़ते हैं और उनके सेल रक्तधारा या लसिकावाहिनियों द्वारा अन्य स्थानोंमें पहुँच जाते हैं जिससे शरीरके अन्य अंगोंमें भी अर्बुद निकलने लगते हैं। इनके कारण शरीरके तंतुओं और अवयवोंको बड़ी हानि पहुँचने लगती है। कैनसर और मांसार्बुद इसी जातिके अर्बुद हैं और ये घातक हो सकते हैं।

अर्बुदके निकलने पर घबरानेकी कोई बात नहीं है; परन्तु डाक्टरको दिखला लेना उचित है। अधिकांश लोगोंको डाक्टरसे यह आश्वासन मिलेगा कि अर्बुद हानिरहित है। परन्तु यदि अर्बुद सांघातिक होगा तो उसका इलाज तुरंत किया जा सकेगा। आरंभमें ही दवा होनेसे उसके अच्छे हो जानेकी संभावना अधिक रहती है।

यह कोई आवश्यक बात नहीं है कि अर्बुदमें पीड़ा हो। अकसर पीड़ा नहीं होती, परन्तु इससे यह न समझना चाहिये कि अर्बुद हानिरहित है। कैनसरमें आरंभमें पीड़ा साधारणतः नहीं होती, परन्तु कैनसर बड़ा भयंकर रोग है। सरल अर्बुदोंको तभी काटना पड़ता है जब वे अन्य अवयवोंके कार्यमें बाधा डालते हैं, या उनसे सूरत बिगड़ जाती है। परन्तु सांघातिक अर्बुदोंको शल्य-चिकित्सा द्वारा तुरन्त निकलवा देना ही उचित है। रेडियमके प्रयोगसे भी लाभ होता है।

कृम्यर्बुद (hydatid cysts)—इस रोगमें शरीरके विविध अंगोंमें पट्टिका नामक कृमि (tapeworm) के कारण अर्बुद उत्पन्न हो जाते हैं। इन कृमियोंके अंडे साधारणतः कुत्तोंसे मनुष्यके शरीरमें पहुँचते हैं। या तो कुत्ता मनुष्यके शरीरको कहीं चाट लेता है या कुत्ता भोजन जूठा कर देता है। (इसलिए कुत्तेको रसोईसे दूर ही रखना चाहिए और कुत्तोंको चूमना न चाहिए।) पट्टिकाएँ कुत्तोंकी अँतड़ियोंमें रहती हैं। वे भेड़की अँतड़ियोंमें भी पाई जाती हैं और उनसे भी मनुष्य तक पहुँच सकती हैं।

लक्षण—आरंभमें, जब अर्बुद छोटा रहता है, कोई ऐसे लक्षण नहीं रहते कि उनकी ओर रोगी विशेष ध्यान

दे ; परन्तु वे बहुत शीघ्र बढ़ते हैं और शरीरके अन्य अवयवों को दबाकर बड़ी हानि पहुँचा सकते हैं। कभी-कभी अर्बुद भीतर-ही-भीतर फूट जाता है ; इसका परिणाम अकसर भयंकर होता है। कभी-कभी प्रदाह उत्पन्न हो जाता है और अर्बुद ठीक फोड़ेकी तरह दिखलाई पड़ता है। कभी-कभी, परन्तु ऐसा कम ही होता है, अर्बुद अपने-आप सूख भी जाता है। कभी-कभी पहले अर्बुदके भीतर दूसरा अर्बुद बन जाता है। दूसरे अर्बुदके भीतर तीसरा अर्बुद भी बन सकता है।

अर्बुद, पीठमें, दूसरा आकार।

अर्बुदमें तरल पदार्थ भरा रहता है। इसी रसके कारण कृम्यर्बुदको रसार्बुद या रसौली भी कहते हैं। ऊपरसे अर्बुद चिकना रहता है और अँगुलीसे दबानेपर लचीला जान पड़ता है। ऐसे अर्बुद साधारणतः शरीरके भीतरी अंगोंमें उत्पन्न होते हैं, जैसे यकृत (जिगर), फुफ्फुस (फेफड़ा), मस्तिष्क, गुरदा, हृदय आदिमें; परंतु अर्बुद शरीरके किसी भी भागमें बन सकते हैं। कृम्यर्बुद आधेसे ज्यादा रोगियोंमें यकृत (जिगर) में उत्पन्न होते हैं। जब तक वे छोटे रहते हैं तब तक स्वास्थ्यमें कोई अंतर नहीं पड़ता। परन्तु जब ये बड़े होते हैं तो पेटमें पहले भारीपन और तब पीड़ा जान पड़ती है। अकसर आमाशय-के दबनेके कारण मिचली भी आती है और अजीर्ण रहता है। यदि अर्बुद ऊपरकी ओर बढ़े तो फेफड़ा दबेगा और तब साँस लेनेमें कुछ कठिनाई पड़ेगी।

ऊपर कहा गया है कि अर्बुदके भीतर-ही-भीतर फूटने का परिणाम भयंकर हो सकता है, परंतु फूटनेसे कितनी हानि होगी यह इसपर निर्भर है कि अर्बुद किधरकी ओर फूटता है। साधारणतः, अर्बुद आमाशय या अँतड़ीमें फूटता है। ऐसी दशामें अकसर दो-चार सप्ताहतक अर्बुद भीतर-ही-भीतर बहता रहता है और अंतमें सूख जाता है; परन्तु कभी-कभी इससे अँतड़ियोंमें प्रदाह हो जाता है जिससे प्राणतक चला जाता है। जब अर्बुद उदरमें फूटता है तो साधारणतः उदरक-कला-प्रदाह (peritonitis) हो जाता है जिससे रोगीकी मृत्यु हो जाती है। यदि अर्बुद फेफड़े या वायु-प्रणाली (bronchi) में फूटे तो दम घुटनेसे मृत्यु हो सकती है। अर्बुद फूटनेपर मानसिक आघातके लक्षण दिखलाई पड़ते हैं और जलपुत्ती भी उभड़ आ सकती है।

चिकित्सा—कोई ऐसी दवा नहीं है जिसके खानेसे कृम्यर्बुदमें लाभ हो, परंतु शल्य-चिकित्सा द्वारा अर्बुद काटकर निकाल दिया जा सकता है और इससे रोग मिट जाता है।

कृष्णार्बुद (melanoma)—यह ऐसा अर्बुद है जिसके भीतर काला रंग रहता है। ऊपरसे देखनेमें भी यह काला होता है। अकसर जन्मसे ही शरीरमें कहीं-कहीं काले चिह्न होते हैं। इन्हें लोग लच्छन (लक्षण) कहते हैं या बहुत छोटे होनेपर इन्हें 'तिल' कहते हैं। साधारणतः ये जन्म भर ज्यों-के-त्यों रह जाते हैं और इनसे कोई परेशानी नहीं होती। परन्तु कभी-कभी (और किसी अज्ञात कारणसे) ऐसा चिह्न उभड़ पड़ता है, शीघ्र बढ़ने लगता है, पक जाता है और लसीका वाहिनियों (lymph channels)को पकड़कर फैलने लगता है;पासकी लसीका ग्रंथियाँ बढ़ जाती हैं जिसे लोग कौड़ी उसक आना कहते हैं। अकसर कौड़ी उसक आनेपर ही रोगीको भास होता है कि कहीं कोई रोग है। अकसर यह कौड़ी असली अर्बुदसे भी बड़ी हो जाती है। तो भी कभी-कभी यह कौड़ी इतनी छोटी रह जा सकती है कि इसकी ओर ध्यान ही न जाय।

कभी-कभी काले चिह्न केवल बढ़ने लगते हैं और शरीर-में नवीन स्थानोंमें चिह्न बन जाते हैं। ये प्रथम चिह्नसे अधिक गहरे रंगके होते हैं। मूत्र भी कुछ काला हो जाता है क्योंकि त्वचाके नीचे उत्पन्न होने वाला रंग मूत्रमें उतर आता है।
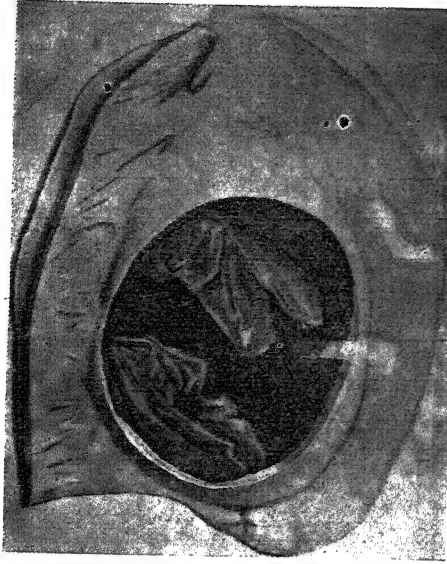
कृम्यर्बुद, यकृतमें।

चिकित्सा—रोगके फैल जानेपर उसे अच्छा करना प्रायः असंभव है। परन्तु यदि आरंभमें ही लच्छनको काट-कर निकाल दिया जाय तो रोग अच्छा हो जायगा। काटनेमें कोई कसर न रख छोड़नी चाहिये; लच्छन, उसके नीचेकी तन्तुएँ, निकटतम लसीका ग्रंथियाँ, और ग्रंथि और लच्छनके बीचके वे तन्तु जो त्वचाके नीचे रहते हैं यह सब निकल जाना चाहिये। रेडियम और गहरे एक्स-रे चिकित्सासे भी लाभ हो सकता है।

नाड्यर्बुद (neuroma)—नाड़ीसे संबन्ध रखने वाले अर्बुदको नाड्यर्बुद कहते हैं। ऐसे अर्बुदमें नाड़ी-तंतु (nerve tissues) रहते हैं। साधारणतः ऐसे अर्बुदोंमें बड़ी पीड़ा होती है।

रक्तार्बुद (hæmatoma or angioma)—रक्त (खून) से भरे अर्बुदको रक्तार्बुद कहते हैं। अकसर चोट लगनेसे रक्तार्बुद बन जाते हैं। कष्टमय प्रसवके बाद नवजात शिशुओंके सरोंपर अकसर रक्तार्बुद दिखलाई पड़ते हैं। पागल व्यक्तियोंके कानोंमें भी अकसर रक्तार्बुद बन जाते हैं। ये चोटके कारण उत्पन्न हो सकते हैं, परन्तु अकसर तंतुओंमें विशेष परिवर्तन होनेके कारण भी बन जाते हैं।

पहले रक्तार्बुद छूने पर नरम जान पड़ता है। परन्तु जैसे-जैसे रक्त जमता है तैसे-तैसे वह कड़ा होता जाता है। अकसर महीने-दो महीनेमें अर्बुद आपसे-आप बैठ जाता है; उसके भीतरकी वस्तुएँ धीरे-धीरे आस-पासकी तंतुओंमें सोख ली जाती हैं। इसलिए अकसर किसी चिकित्साकी आवश्यकता नहीं पड़ती। यदि अर्बुदमें पीड़ा हो तो बरफ़ की थैली रखनेसे आराम मिलेगा। बरफ न मिले तो ठंढे पानीकी पट्टी रक्खी जा सकती है।

कभी-कभी बैठनेके बदले रक्तार्बुद पकने लगता है और तब इसे चीरकर पीब निकाल देनी चाहिए और फोड़े की तरह इसका उपचार करना चाहिए।

रसार्बुद या रसौली (cysts)—तरल या अर्ध-तरल पदार्थसे भरे अर्बुदको रसार्बुद, या साधारण भाषा में रसौली, कहते हैं। ये शरीरके किसी भी भागमें निकल सकते हैं। ये मटरके समान छोटेसे लेकरके कद्दूके समान बड़े हो सकते हैं। बड़ी रसौलियोंसे सूरत बड़ी भद्दी हो जाती है। कुछ रसौलियाँ सांघातिक होती हैं, परन्तु अधि-कांश रसौलियाँ हानिरहित होती हैं, हाँ उनसे असुविधा और कुरूपता अवश्य होती है। वसार्बुद वस्तुतः रसौलीका ही एक भेद है। सहजातार्बुद और कृम्यर्बुद भी रसौ-लीकी जातिके होते हैं। स्त्रियोंकी डिंब-ग्रंथियों (ovaries) में अकसर रसौलियाँ होती हैं जिन्हें डिंबार्बुद (ovarian cyst) कहते हैं। ये छोटे-बड़े सभी आकारके होते हैं और कभी-कभी ये आश्चर्य-जनक नापके होते हैं।

उपाय यही है कि रसौलीको काटकर निकाल दिया जाय।

वसार्बुद (lipoma or wen)—वसार्बुद त्वचा में बनते हैं और अकसर शिरस्त्वचा, मुख या पीठ पर दिख-लाई पड़ते हैं। जब किसी वसा बनाने वाली ग्रंथिका रास्ता

बन्द हो जाता है तो वहाँ वसा इकट्ठी होने लगती है और वसार्बुद बन जाता है। यदि ठीक उपचार न किया जाय तो अर्बुद बहुत बड़ा हो जा सकता है। अर्बुद टटोलने पर नरम जान पड़ता है। कुछ समय बाद अर्बुदके ऊपरकी त्वचा पतली पड़ जाती है। कभी-कभी इसमें प्रदाह भी उत्पन्न हो जाता है। अर्बुदके फूटने पर बदबूदार पीब निकलती है। एक तो पक जानेका डर रहता है, दूसरे उनसे कुरूपता होती है। इसलिए वसार्बुदोंको बहुत बढ़नेके पहले ही निकलवा देना चाहिए। इसमें किसी बातका डर नहीं रहता। स्थानीय निर्जीवता उत्पन्न करने वाली दवा लगाकर, या सुईसे दवा देकर, अर्बुदको चीर दिया जाता है। अर्बुदकी दीवार भी निकाल दी जाती है जिसमें अर्बुद दोबारा न बने।

सहजातार्बुद (teratoma)—सहजातार्बुद उस अर्बुदको कहते हैं जिसमें जन्मके समयके कुछ अवयव जैसे दाँत, बाल, नख आदि रहते हैं। ये दाँत, बाल, नख आदि उत्पन्न करने वाले सेलों (cells) से बनते हैं। गर्भमें ये सेल गलत जगह पर जा पड़ते हैं और पीछे बे-मौके बढ़ने लगते हैं। तब उनको घेरकर अर्बुद बन जाता है। ऐसे अर्बुद अकसर जननेंद्रियोंमें—अंडकोष या डिंब में—पाये जाते हैं। चीरकर भीतरी वस्तुएँ निकाल देने पर ये शीघ्र अच्छे हो जाते हैं।

कर्कटार्बुद और मांसार्बुद के लिए देखो "कैनसर।"

बच्चोंकी रसौली (meningocele)—यह साधारण रसौली या अर्बुद नहीं है। इसमें सुषुम्ना या मस्तिष्कके आवरण वाली तन्तुएँ रहती हैं और इसलिए इन्हें सुषुम्नावरण वृद्धि कहना अधिक उचित होगा। यह ऊपर से देखनेमें रसौलीकी तरह होती है और नवजात शिशुकी पीठके बीचवाली रेखामें सरके नीचेवाले भागसे लेकर रीढ़के अन्त तक कहीं भी निकल सकती है। यह तभी बनती है जब रीढ़की हड्डियाँ ठीक प्रकार जुड़ नहीं पातीं। जब बच्चा खाँसता या रोता है तब यह बड़ी हो जाती है। टटोलनेमें यह नरम जान पड़ती है और स्पष्ट अनुभव होता है कि इसमें कोई तरल पदार्थ हैं। कभी-कभी इस रोगका उपाय शल्य-चिकित्सासे हो सकता है और सुषुम्नाको बिना हानि पहुँचाये रसौली निकाल दी जा सकती है। परन्तु अधिकतर अच्छा यही होता है कि इससे छेड़-छाड़ न किया जाय। इससे कोई विशेष असुविधा नहीं होती है, केवल इसी बातका ध्यान रखना चाहिये कि वहाँ किसी प्रकारकी चोट लगने न पाये। किसी होशियार सरजनसे राय ले लेनी चाहिए कि वृद्धिको यों ही पड़ा रहने दिया जाय या कटा दिया जाय।

अलकतरा (tar)—अलकतरा (अंग्रेज़ीमें टार या कोलटार) एक गाढ़ा और काला तरल पदार्थ है। जब पत्थरके कोयलेको गरम किया जाता है तब उसमेंसे गैस (कोल गैस) निकलती है जो बड़े शहरोंमें जलानेके लिए काममें लाई जाती है। गैसके साथ-साथ अलकतरा भी निकलता है। इसमें अनेक बहुमूल्य वस्तुएँ निकाली जाती हैं। कारबोलिक ऐसिड, पिकरिक ऐसिड, साड़ो आदि रँगने के बुकनी वाले रंग और अनेक प्रकारकी दवायें सब अलकतरेसे निकली वस्तुओंसे बनते हैं। विशेष रीतियोंसे स्वच्छ किया हुआ अलकतरा लिकर कारबोनिस (liquor carbonis) और लिकर कारबोनिस डिटर्जेंस (liquor carbonis detergens) के नामसे काममें आता है। अलकतरेका मरहम (टार ऑयंटमेंट, tar ointment) और अलकतरा-जल (टार वाटर tar water) भी बनते हैं।

अलकतरेमें और अलकतरेसे बनी दवाओंमें कीटाणु-नाशक गुण होते हैं। त्वचा पर लगानेसे वहाँ उत्तेजना होती है और खुजली बन्द होती है। इसलिये उकवत (एकज़ेमा) तथा कुछ अन्य चर्म-रोगोंमें इसका उपयोग होता है। अलकतरा-जलसे स्नान करनेसे भी लाभ होता है। परन्तु अलकतरासे बने मरहम आदिके प्रयोगमें ध्यान रखना चाहिए कि उनका इस्तेमाल हदसे ज्यादा न किया जाय, नहीं तो जलन पैदा होगी, और फफोले भी शायद पड़ जायँगे। कभी-कभी वहाँ घट्ठा बन जाता है। उकवत पर कभी-कभी लोग साधारण (बिना शुद्ध किया) अलकतरा भी लगाते हैं। यह लाभदायक अवश्य है, परन्तु इसके इस्तेमालमें और भी सावधानी चाहिए।

शुद्ध अलकतरेको गरम करने पर जो भाप उठती है उसका दम लगानेसे (उसे साँस द्वारा भीतर खींचने से) कुकुरखाँसी और स्थाई ब्रोनकाइटिस (chronic bronchitis) में लाभ होता है।

अलसी (linseed)—अलसी या तीसी एक प्रसिद्ध बीज है जिससे तेल निकलता है। तेल जलाने और रंगमें डालनेके काम आता है।

अलसीका काढ़ा गल-प्रदाह (sore throat) और खाँसी, जुकाम आदिमें लाभदायक है। इसके लिये डेढ़ तोला अलसीको पाव भर पानीमें दस-बारह मिनट तक उबालना चाहिए और फिर छान लेना चाहिए। इच्छानुसार चीनी भी मिलाई जाती है। दिनमें दो बार पीना चाहिए। उबालनेके पहले अलसीको बीन लेना चाहिए—अलसीको छोड़ अन्य सब चीज़ें निकालकर फेंक देनी चाहिए।

अलसीकी पुलटिस बाँधनेसे सूजन बैठ जाती है और कच्चा फोड़ा शीघ्र या तो बैठ जाता है या पक जाता है। पुलटिस बनानेके लिए चूर की हुई अलसी या अलसीकी खलीमें थोड़ा पानी मिलाकर गरम करना चाहिये। पानी इतना ही रहे कि पुलटिस हलुआ या लपसीकी तरह गाढ़ा बने। इसे कपड़े पर फैलाकर गरमा-गरम ही सूजन पर बाँधना चाहिए परन्तु बाँधनेके पहले इस पर तेल चुपड़ लेना अच्छा होगा जिसमें यह चिपकने न पाये। अलसीकी तह $\frac{1}{4}$ इंचसे लेकर $\frac{1}{2}$ इंच तक मोटी रहे। बारह-बारह घंटे पर पुलटिस बदलते रहना चाहिए।

जले पर अलसीके तेल और चूनेके पानीसे बना मरहम लाभदायक है। इसे कैरन ऑयल (carron oil) कहते हैं। काफी चूने (पानके साथ खाये जाने वाले चूने) को लेकर पानीमें अच्छी तरह मिलाओ। फिर इसे स्थिर पड़ा रहने दो। थोड़ा-सा ही चूना पानीमें घुलेगा। शेष नीचे बैठ जायगा। जब फालतू चूना सब बैठ जाय तब ऊपरसे स्वच्छ जलको ले लो। यही चूनेका पानी है। अलसीका तेल (कच्चा अर्थात् बिना पकाया हुआ) और चूनेका पानी इन दोनोंको बराबर-बराबर मात्रामें लेकर मिलाओ। मरहम तैयार हो जायगा। जले पर लगाओ।

अवरोध (embolism)—कभी-कभी रक्तमें ठोस कण बहते रहते हैं जिनसे कोई रक्तवाहिनी एकाएक बन्द हो जा सकती है। ऐसे ठोस कणको अवरोध कहते हैं।

साधारणतः अवरोध जमे हुए रक्तका चकत्ता रहता है जो किसी भी नसमें या हृदयमें बन जाता है। यह रोग-ग्रसित हृदय-कपाट (heart valve) से अलग होकर निकला सूत्रमय (fibrous) पिंड भी हो सकता है। नाड़ी ग्रंथि (varicose veins) नामक रोगमें और प्रसवके बाद स्त्रियोंके गर्भाशयकी शिराओं (नसों) में ऐसे चकत्ते अकसर बनते हैं और रक्त-धारामें बहते-बहते फुप्फुसों या-धमनीमें पहुँच जाते हैं। इसी प्रकार संयुक्त शिरा (portal vein) में बने चकत्ते यकृत (जिगर) में पहुंच जाते हैं।

किसी हड्डीके टूटने पर हड्डीके भीतरसे निकल कर वसा (चर्बी) भी रक्तमें मिल जाती है। वसाकी बूँदें किसी महत्वपूर्ण शिरा (नस) में जाकर अवरोधकी तरह फँस जा सकती हैं और रक्तका संचार बन्द हो जा सकता है। इसी प्रकार टूटी हुई किसी शिरामें हवा घुस सकती है जिसका परिणाम भी वैसा हो हो सकता है। कभी-कभी अवरोध कृमियोंके कारण, या अर्बुदोंसे निकले पदार्थके कारण, बन जाते हैं।

अवरोधोंके कारण कभी-कभी क्षण भरमें मृत्यु हो जाती है। कभी-न-कभी सुननेमें अवश्य आता है कि किसी स्त्रीको बच्चा हुआ था और स्वास्थ्य सब तरहसे अच्छा था, परन्तु उसके खड़ी होते ही उसका प्राण निकल गया और वह मर गई। ऐसी दशामें कारण यही होता है कि रक्तमें कहीं अवरोध था और स्त्रीके उठ-बैठनेपर या खड़ी होनेपर वह ऐसी जगह जा पहुँचा जहाँ कोई महत्वपूर्ण रक्तवाहिनी बन्द हो गई जिसके कारण हृदयकी गति रुक गई।

कभी-कभी अवरोधमें जीवाणु रहते हैं। तब अवरोध जहाँ जाकर कुछ समयतक पड़ा रह जाता है वहाँ फोड़ा निकल आता है। साधारणत: ऐसा फोड़ा भीतर ही बनता और फूटता है। तब फोड़ेसे निकला पदार्थ जहाँ-जहाँ पहुँचता है वहाँ-वहाँ नये फोड़े बन जाते हैं।

यह कोई आवश्यक बात नहीं है कि अवरोधसे मृत्यु हो। दुष्परिणामकी मात्रा इसपर निर्भर है कि शरीरके किस अंगमें अवरोध पहुँचा है, धमनी कितनी बड़ी है, इत्यादि।

बहुतसे अंगोंमें कई एक रक्तवाहिनियोंसे रक्त आता है और एकके बंद हो जानेसे कोई विशेष हानि नहीं हो पाती। आँखमें अवरोधके पहुँचनेसे रोगी अंधा हो जा सकता है है और मस्तिष्कमें अवरोधके पहुँचनेसे लकवा मारता है। एकाएक मृत्यु तब होती है जब मस्तिष्कका वह भाग बेकाम हो जाता है जिसमें हृदय और फेफड़ेके केन्द्र होते हैं। साधारण अवरोधोंमें उस अंगमें विशेष पीड़ा होती है जहाँका रक्त-संचार रुक जाता है। फेफड़ेके अवरोधमें सीनेमें दर्दके अतिरिक्त रोगी हाँफने लगता है और मुँहसे रक्त भी गिरता है।
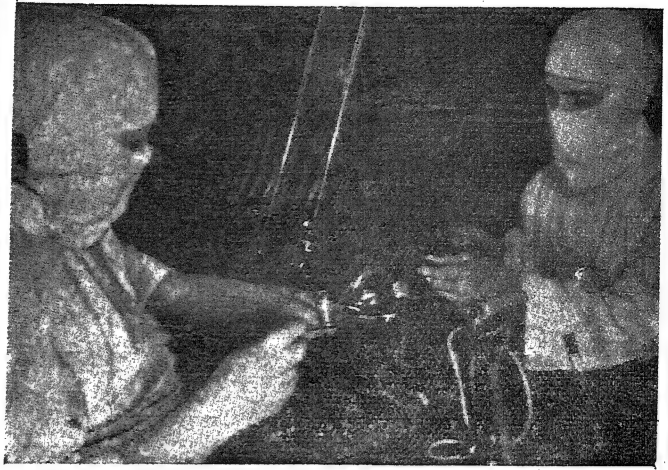
अवरोधको केवल चतुर डाक्टर ही पहचान सकता है। हृदय रोगवालोंको कोई काम झटकेसे न करना चाहिये या न किसी भारी कामको अपना पूरा शारीरिक बल लगाकर करना चाहिये। अवरोध हो जानेपर चारपाई-पर लेटा रहना ही उचित है। जब डाक्टर समझे कि अब कोई डर नहीं है तब उठा-बैठा जा सकता है।

शल्य-क्रिया

आधुनिक शल्य-चिकित्सामें सब अस्त्र कीटाणु-रहित रक्खे जाते हैं और चिकित्सक तथा परिचारिकायें मुँह पर पट्टी बाँध लेती हैं जिसमें श्वासके साथ निकले कीटाणु घाव तक न पहुँच सकें।

अस्त्रचिकित्सा (surgery)—शब्द-सागरके अनुसार अस्त्रचिकित्सा वैद्यक-शास्त्रका वह अंश है जिसमें चीरफाड़का विधान है। पुराने वैद्योंके अनुसार इसके आठ भेद हैं—(१) छेदन = नश्तर लगाना; (२) भेदन = फाड़ना; (३) लेखन = खरोंचना; (४) वेधन = सूईको नोकसे छेद करना; (५) मेषण = धोना, साफ़ करना; (६) आहरण = काटकर अलग करना; (७ विश्रावण = फस्त खोलना; (८) सीना = सीना या टाँका लगाना। अस्त्र-चिकित्साको शस्त्रचिकित्सा, शल्य और शल्य-क्रिया भी कहते हैं। अरबी शब्द जर्राही भी इसीके लिए अकसर इस्तेमाल किया जाता है। ऐसे व्यक्ति को जो अस्त्रचिकित्साका व्यवहार करता है अस्त्रचिकित्सक, शस्त्रचिकित्सक, जर्राह या सरजन (surgeon) कहते हैं। अँग्रेज़ी शब्द ऑपरेशन (operation) का अर्थ क्रिया है और इसके लिए शल्यक्रिया, चीर-फाड़, या अस्त्र-चिकित्सा आदि शब्द इस पुस्तकमें प्रयोग किये गये हैं। आधुनिक अस्त्रचिकित्साने बड़ी उन्नति की है और इसके अनेक कार्य आश्चर्यजनक होते हैं। इस उन्नतिका मुख्य कारण यह है कि अब ठीक-ठीक पता चल गया है कि घाव पकने क्यों लगते हैं और क्या किया जाय तो घाव न पकेंगे। आधुनिक अस्त्रचिकित्सा ने पूर्ण शुद्धता और कीटाणुनाशक रासायनिक पदार्थोंसे घावका पकना रोकनेमें प्राय: पूर्ण विजय प्राप्त कर लिया है।

प्रत्येक गृहस्थको कभी-न-कभी स्वयं अपने हाथसे छोटी-मोटी शल्य-क्रिया करनी पड़ती है, क्योंकि छोटेसे फोड़े से पीब निकालकर उसपर पट्टी बाँधनेके लिए डाक्टर बुलाने की सामर्थ्य इने-गिने लोगोंमें ही रहती है। इसलिए सबको आधुनिक अस्त्र-चिकित्साका सिद्धान्त जानना चाहिए (देखो 'कीटाणु-नाशक' और 'कीटाणु-हीनता')। सबको स्मरण रखना चाहिए कि नन्हेंसे घावसे भी बड़ा अनर्थ हो जा सकता है। इसलिए सदा सावधान रहना चाहिए। उदाहरणतः, यदि केवल अँगुलीसे खैंच (नुकीली लकड़ी) या काँटा निकालनेके लिए सूईसे खोदना हो तो भी कीटाणुनाशन पर पूरा ध्यान देना चाहिए। असावधानीसे समूची अँगुली सड़

जा सकती है या इससे भी भयंकर परिणाम हो सकता है (देखो "अँगुलियाँ—पकी अँगुलियाँ")।

अस्थि (bone)—शरीरमें अस्थियों या हड्डियोंकी संख्या दो सौ से कुछ ऊपर ही है। देखनेमें बाहरसे ताज़ा हड्डी सफेद या हल्का गुलाबी जान पड़ती है। यदि हड्डीको काटकर उसके बनावटकी सूक्ष्म जाँचकी जाय तो पता चलता है कि भीतर हड्डीकी बनावट स्पंजकी-सी होती है; यह बिलकुल ठोस नहीं होती, इसमें रेशे इस प्रकार रहते हैं कि हड्डीकी बनावट जाली-सी जान पड़ती है। हड्डीका बाहरी भाग भी असलमें इसी बनावटका होता है परन्तु वहाँ हड्डी अधिक ठोस होती है और छिद्र बहुत सूक्ष्म होते हैं। यह भाग भीतरी भागकी अपेक्षा बहुत कड़ा भी होता है। जीवित प्राणीके शरीरमें हड्डियोंके भीतर भी रक्त बहा करता है और हड्डीके ऊपर एक पतली तह होती है जिसे अस्थ्यावरण (periosteum) कहते हैं। शरीरकी लम्बी हड्डियाँ पोली होती हैं और उनके भीतर मज्जा (marrow) नामक पदार्थ रहता है। अस्थ्यावरणसे असंख्य नन्हीं-नन्हीं रक्तवाहिनियाँ हड्डियोंमें घुमती हैं और इन्हींसे हड्डियोंको आहार मिलता है। इसके अतिरिक्त एक बड़ी धमनी मज्जामेंसे होकर जाती है। इसके साथ एक या अधिक शिराएँ और एक नाड़ी-समूह भी रहता है।

हड्डियाँ चार जातियोंमें विभक्तकी जा सकती है—लंबी, छोटी, चिपटी और अनियमित। हाथ और पैरकी हड्डियाँ लम्बी होती हैं। इनके सिरों पर उपास्थि (cartilage) होती है। हड्डीका सिरा इस प्रकार दूसरी हड्डियोंमें बैठता है कि हड्डी घूम या मुड़ सके (देखो अस्थि-संधि)। अँगुलियोंकी हड्डियाँ भी लम्बी हड्डियोंकी जाति की हैं।

छोटी हड्डियाँ उन जगहों पर हैं जहाँ मज़बूतीकी खास ज़रूरत रहती है। ये हड्डियाँ अधिक मुड़ या घूम नहीं सकतीं। कलाई, घुट्टी और पैरके पंजेके पास वाली हड्डियाँ इसी जातिकी हैं।

चिपटी हड्डियाँ शरीरके सुकुमार अंगोंको बचानेके लिए रहती हैं, या उन पर मांशपेशियोंका छोर चिपका रहता है। खोंपड़ी, कंधे और छातीकी हड्डियाँ, वस्तिगह्वर (pelvis) की हड्डियाँ और पसलियाँ (ribs) सब चिपटी हड्डियाँ हैं।

जबड़े और रीढ़ आदिकी हड्डियाँ विशेष आकारकी होने के कारण उपरोक्त तीन जातियोंमें नहीं गिनी जा सकतीं। इसलिए इनकी अलग जाति मानी जाती है।

बचपनमें हड्डियाँ नरम रहती हैं। वे कुछ लप सकती हैं और इसलिए आसानीसे नहीं टूटतीं। यदि टूटतीं भी हैं तो उकठे लकड़ीकी तरह साफ नहीं टूटतीं; वे हरी टहनी की तरह टूटती हैं जिसमें कुछ अंश जुड़ा ही रह जाता है। इसलिए अकसर हड्डीके इस प्रकार टूटने पर कि एक ओर हड्डी बिना टूटे ही रह जाय टहनी-टूट (greenstick fracture) कहते हैं। रिकेट्स (rickets) नामक बीमारीमें हड्डी असाधारण नरम पड़ जाती है। जैसे-जैसे आयु बढ़ती है वैसे-वैसे हड्डीमें खनिज पदार्थ (जिसका अधिक अंश कैलसियम फ़ॉस्फ़ेट होता है) बढ़ता जाता है और हड्डी कड़ी पड़ जाती है।

हड्डियोंमें भी रोग होते हैं। पैदाइशी ख़राबियोंमेंसे एक यह भी है कि कोई विशेष हड्डी हो ही न। बिना हड्डीके हाथ या पैर वाले बच्चे देखे गए हैं परन्तु ऐसा बहुत कम होता है। बच्चोंकी हड्डीका सबसे साधारण रोग रिकेट्स (rickets) है जिसका वर्णन नीचे 'अस्थि-दौर्बल्य (बच्चोंका)' शीर्षक के सम्बन्धमें दिया गया है। हड्डीमें प्रदाह भी उत्पन्न हो सकता है। यह मज्जा-प्रदाह (osteomyelitis) के नामसे प्रसिद्ध है। क्षय-रोगमें भी हड्डियोंमें प्रदाह हो जाता है। हड्डियोंमें अर्बुद (ट्यूमर) भी हो सकता है। अस्थ्यावरण-प्रदाह (periostitis) में हड्डीको ढकनेवाली झिल्ली सूज आती है (देखो अस्थ्यावरण-प्रदाह) अस्थि-अतिवृद्धि, अस्थि-दौर्बल्य, अस्थि-भंग, अस्थिमरण और अस्थि-संधि नामक प्रकरणोंमें हड्डीके अन्य रोग मिलेंगे।

अस्थि-अतिवृद्धि (acromegaly)—यह एक विचित्र रोग है और ऐसेही कभी देखनेमें आता है। इसमें कुछ हड्डियाँ, विशेषकर सर, हाथ और पैरकी हड्डियाँ और नीचेवाले जबड़ेकी हड्डी ये आवश्यकतासे अधिक बड़ी हो जाती हैं। बात यह है कि सरके भीतर एक ग्रंथि है जिसका नाम पिटुइटरी ग्रंथि (pituitary gland) है। इस ग्रंथिमें एक पदार्थ बनता है जो शरीरकी

वृद्धिके लिये आवश्यक है। इस ग्रंथिमें गड़बड़ी हो जानेसे कभी-कभी सारा शरीर बेडौल बढ़ने लगता है, विशेषकर जब यह गड़बड़ी बचपनमें होती है। परंतु अधिक आयुमें गड़बड़ी होनेपर अकसर शरीरके एक दो अंग ही बढ़ते हैं, जैसे सर, या हाथ, या पैर। हड्डीके बड़े होनेके साथ-साथ सरमें दर्द भी रहता है। कभी-कभी आँखकी रोशनी बहुत कम हो जाती है (साफ़ दिखलाई नहीं पड़ता)। इस रोगकी कोई अच्छी दवा नहीं मालूम है; परन्तु थायरॉयडकी सत (thyroid extract) से अकसर लाभ होता है। कभी-कभी शल्य-क्रिया (चीर-फाड़) से भी लाभ होता है। इससे सरके दर्द और आँखकी कम रोशनीकी शिकायतें दूर होती हैं, परन्तु बढ़े हुए अंग छोटे नहीं हो सकते।
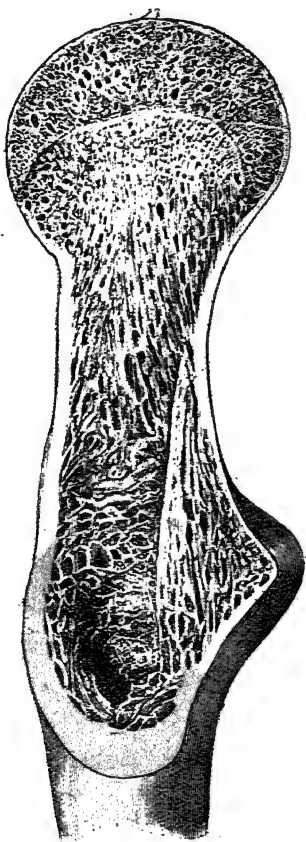
हड्डीकी भीतरी बनावट

यदि हड्डीको काट कर इसके बनावटकी सूक्ष्म जाँच की जाय तो पता चलता है कि भीतरकी हड्डीकी बनावट स्पंजकी-सी होती है।

लम्बी हड्डी।

यह जाँघकी हड्डी है। देखिये इसके एक सिरेपर घुंडी है जिसके बल हड्डी चारों ओर घूम सकती है। दूसरी ओर कब्ज़ानुमा जोड़ है।

अस्थि-दौर्बल्य—दो विभिन्न रोगोंमें हड्डियाँ कमज़ोर हो जाती हैं। एक तो पैजेट-रोग (Paget's disease or osteitis) है जो अधिक आयुवाले लोगोंको ही होता है। इसमें हड्डियाँ नरम पड़ जाती हैं और इसलिए टेढ़ी भी हो जाती हैं। परन्तु पीछे वे आप-से-आप कड़ी पड़ जाती हैं। परिणाम-स्वरूप कोई-कोई हड्डियाँ सदाके लिए टेढ़ी हो जाती हैं, विशेषकर पैरकी हड्डियाँ और रीढ़। सर भी बड़ा हो जा सकता है। यह रोग बहुत धीरे-धीरे बढ़ता है और इसमें स्वास्थ्यपर दूसरा कोई बुरा असर पड़ता नहीं दिखलाई पड़ता। अकसर रोगीको पता भी नहीं रहता कि उसको कोई रोग है।

फोटो खींचनेका कैमेरा

[ले०—डा० गोरखप्रसाद, डी० एस-सी०]

फोटोकी उत्तमता—इसे सदा स्मरण रखना चाहिए कि फोटोकी उत्तमता कैमेरे पर निर्भर नहीं है। सस्ते-से-सस्ते कैमेरेसे भी अति उत्तम फोटो उतर सकते हैं। बढ़िया कैमेरे-से अधिक बढ़िया चित्र नहीं उतरता, केवल अधिक कठिन विषयोंके भी फोटो लिये जा सकते हैं, या उनमें अधिक सुविधा होती है, या समय बचता है, या वे अधिक हलके और छोटे होते हैं या अधिक सुन्दर होते हैं।
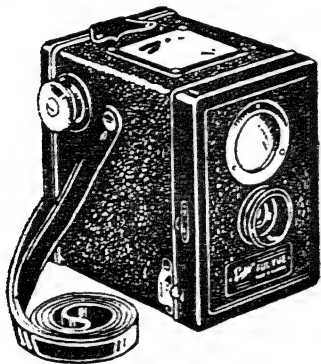
चित्र १—बक्सनुमा फ़िल्म कैमेरा।
ये सबसे सरल जातिके कैमेरे हैं।

कैमेरोंकी जातियाँ—(१) बक्सनुमा (box-form) फिल्म कैमेरा—जैसा नामसे स्पष्ट है, ये कैमेरे बक्सके आकारके होते हैं। इनमें साधारणतः फोकस करने-का (अर्थात् फिलमसे लेंज़को आगे-पीछे हटानेका) कोई प्रबन्ध नहीं रहता। मूल्य चार-पाँचसे लेकर बीस-पचीस रुपया होता है।

(२) पिचकने वाला (collapsible) फिल्म कैमेरा—ये कैमेरे दबाकर छोटे किये जा सकते हैं। लेंज़ और शटरकी उत्तमताके अनुसार दस-पंद्रह रुपयेसे लेकर अधिक दामके ये हो सकते हैं। मुड़ने वाले कैमेरोंको मैं इससे अधिक उत्तम समझता हूँ क्योंकि उनमें लेंज़की अधिक रक्षा होती है।

(३) मुड़ने वाला (folding) फिल्म कैमेरा—इनमें कैमेरेकी पेंदीको मोड़ने पर लेंज़ भीतर बन्द हो जाता है। ऐसे ही कैमेरे अधिक प्रचलित हैं। लेंज़, शटर और कैमेरे की बनावटके अनुसार ऐसे कैमेरेका मूल्य बीस-पचीस रुपये से लेकर दो सौ या अधिक तक हो सकता है।

(४) मुड़ने वाला प्लेट कैमेरा—ये मुड़ने वाले फिल्म कैमेरोंकी तरह होते हैं; अन्तर केवल यह होता है कि इसमें फ़िल्मके बदले प्लेट लगता है। यदि लेंज़को प्लेटसे इतना दूर किया जा सके कि वह साधारण दूरीके दुगुने तक पहुँच सके तो कहा जाता है कि कैमेरेमें दोहरा विस्तार (double extension) है, अन्यथा कहा जाता है कि कैमेरेमें एकहरा विस्तार है। अब एकहरे विस्तारके प्लेट कैमेरोंका रिवाज बहुत कम हो गया है। शायद कुछ दिनों
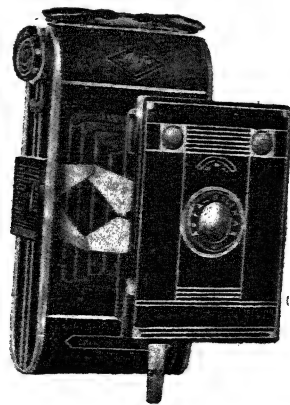
चित्र २—पिचकने वाला फिल्म कैमेरा।
ऐसे कैमेरे दबा कर छोटे किये जा सकते हैं।
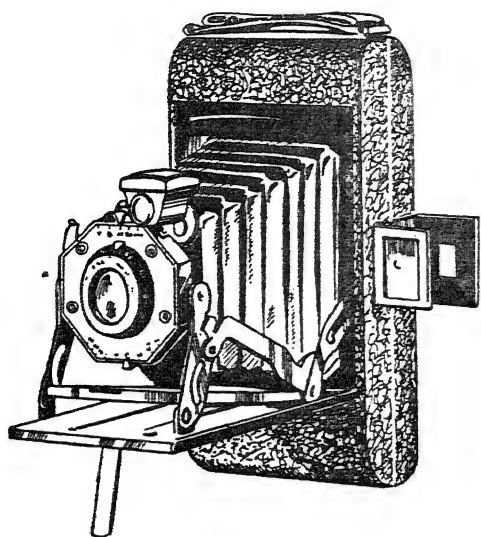
चित्र ३— मुड़नेवाला (फ़ोल्डिग) फ़िल्म कैमेरा। इन कैमेरोंकी पेंदीको मोड़ने पर लेंज़ भीतर बंद हो जाता है। ऐसे ही कैमेरोंका प्रयोग साधारणतः होता है।
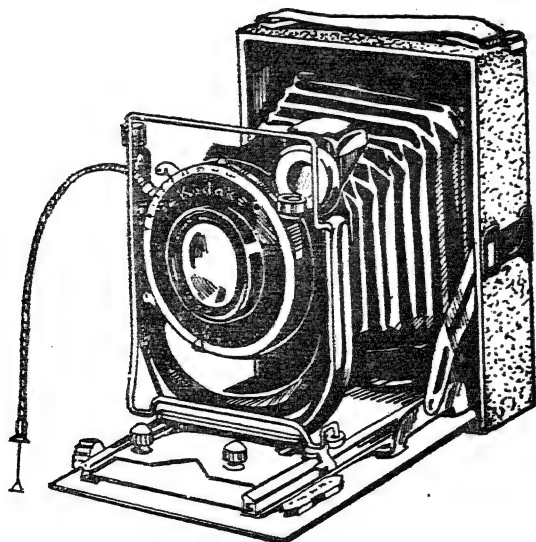
चित्र ४—मुड़नेवाला प्लेट कैमेरा। ये कैमेरे मुड़नेवाले फ़िल्म कैमेरेकी तरह होते हैं, परंतु इनमें फ़िल्मके बदले प्लेट लगता है।

में उनका बनना बन्द हो जायगा। दोहरे विस्तारके प्लेट कैमेरेका दाम सौ रुपयेसे लेकर चार-पाँच सौ रुपये तक हो सकता है। प्रत्येक प्लेट कैमेरेमें फोकस परदा (focussing screen) रहता है, अर्थात् ऐसा अंधा शीशा रहता है जिस पर लेंज़से बनी मूर्ति पड़ती है।

(५) रिफ़लेक्स (reflex) कैमेरा— इन कैमेरोंमें एक दर्पण लगा रहता है जिससे फोकस परदेपर बराबर दिखलाई पड़ा करता है कि विषयके किस अंशका फोटो उतरेगा और यह भी पता चलता है कि फोकस ठीक है या नहीं, अर्थात् प्लेटसे लेंज़की दूरी ठीक है या नहीं। रिफ्लेक्स कैमेरे अधिकतर प्लेटके लिये बनते हैं; परन्तु कुछ रिफ़लेक्स कैमेरे फिल्म (रोल-फिल्म) के लिए बनते हैं। रिफ्लेक्सका दाम तीन-चार सौ रुपयेसे लेकर एक हज़ार रुपये तक या अधिक होता है।
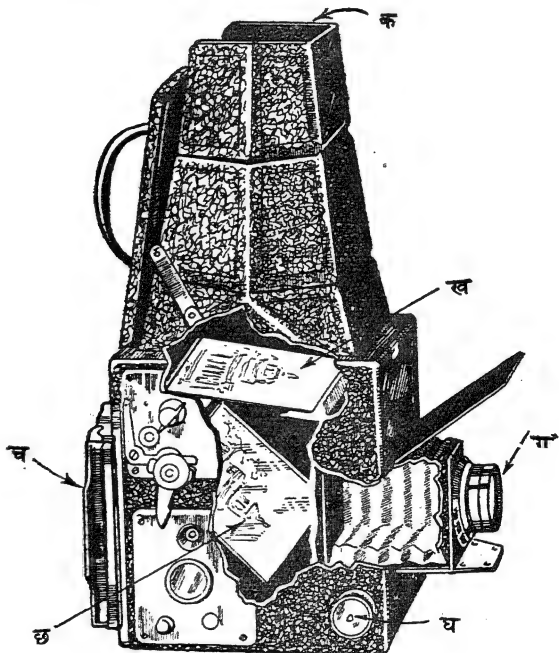
चित्र ५— रिफ़लेक्स कैमेरा। रिफ्लेक्स कैमेरोंमें एक दर्पण लगा रहता है, जिससे फ़ोकस-पर्दा कैमेरेके ऊपर लगाया जा सकता है। इसके कारण फोकस करनेमें बड़ी सुविधा होती है।

(६) फोल्डिंग फ़ोकल प्लेन कैमेरा—यह एकहरे विस्तार का प्लेट कैमेरा होता है जिसमें $\frac{1}{1000}$ सेकण्ड तक प्रकाश दर्शन देने वाला 'फोकल-प्लेन' शटर और तेज़
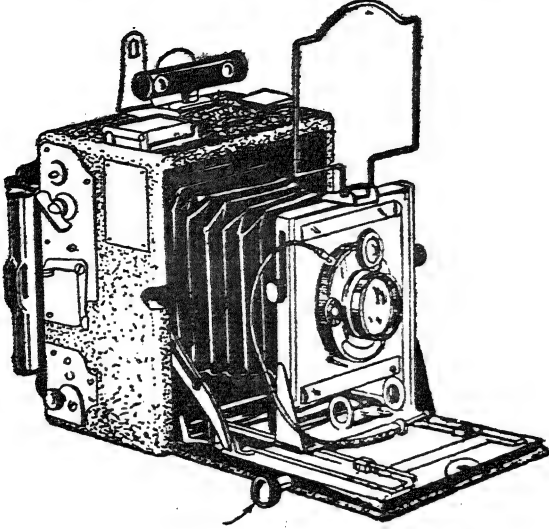
चित्र ६—फोल्डिंग फ़ोकल-प्लेन कैमेरा।
ऐसे कैमेरेमें फोकल-प्लेन शटर लगा रहता है जिससे १/१००० सेकंडका क्षणिक प्रकाश-दर्शन दिया जा सकता है।

लेंज़ लगा रहता है। समाचार-पत्रोंके लिए फोटो खींचने वाले साधारणतः ऐसे ही कैमेरेका प्रयोग करते हैं।
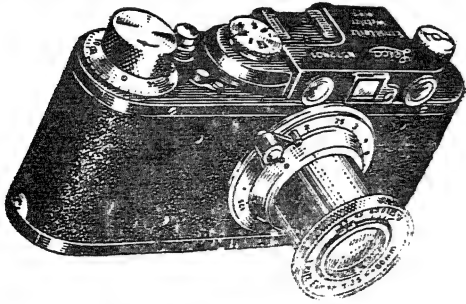
चित्र ७—मिनियेचर कैमेरा।
इन बहुमूल्य कैमेरोंसे बहुत छोटे (साधारणतः १" × १½" के) चित्र उतरते हैं परंतु वे इतने तीक्ष्ण होते हैं कि उनसे बड़े-बड़े एनलार्जमेंट बन सकते हैं।

(७) मिनियेचर (miniature) कैमरा—ये बहुत छोटे और सच्चे कैमेरे होते हैं। इनसे लिये गये चित्रोंका नाप अकसर १ × १½ इञ्च होता है, परन्तु इन छोटे नापके नेगेटिवोंसे ८½ × ६½ इञ्च के अच्छे चित्र आसानीसे बन सकते हैं। मिनियेचर कैमेरा ख़रीदना हो तो बढ़िया मोल लेना अच्छा होगा। इसका मूल्य दो सौ रुपये से हज़ार डेढ़ हज़ार रुपये तक होता है। मिनियेचर कैमेरोंके साथ कई एक सहायक यंत्र भी बिकते हैं जिनके जोड़ देने से तरह-तरहके काम हो सकते हैं जो साधारण फ़िल्म कैमरोंसे नहीं हो सकते।
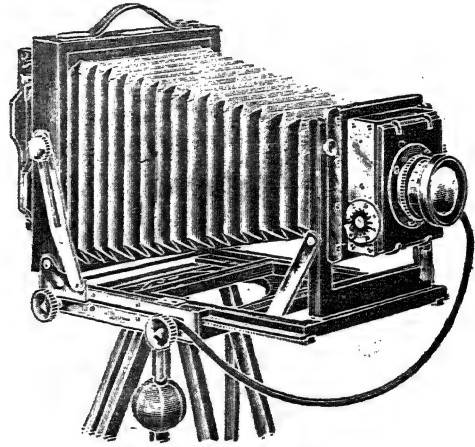
चित्र ८—स्टैंड कैमेरा।
इन कैमेरोंमें बड़े नापके प्लेट लगते हैं। साधारणतः इनको ग्रूप (मनुष्य-समूह) का फ़ोटो खींचनेके लिये प्रयुक्त किया जाता है।

(८) स्टैंड या फील्ड (field) कैमेरा—ये बड़े आकारके प्लेट कैमेरा हैं, जिन्हें व्यवसायी लोग ग्रूप (मनुष्य-समूह) का फोटो खींचनेके लिए रखते हैं।

(९) स्टूडियो कैमेरा—ये बड़े नापके, मज़बूत और भारी कैमेरे होते हैं जिन्हें अच्छे व्यवसायी अपनी कार्यशाला (स्टूडियो studio) में फोटो खींचनेके लिये रखते हैं।

कैटलग—कैमरोंके बारेमें ब्योरेवार बातें जाननेके लिये कारख़ाने वालोंके कैटलगों को देखना चाहिए, परन्तु स्मरण रखना चाहिए कि कैटलगोंमें कई अवगुणोंको इस दृष्टि-कोण

से प्रदर्शित किया जाता है कि वे गुण जान पड़ते हैं। उदाहरणतः, यदि किसी कैमेरेमें फोकस करनेका कोई प्रबंध नहीं रहता तो वे लिखते हैं कि इस कैमेरेमें फोकस स्थायी रूपसे ठीक कर दिया गया है जिससे चित्र बराबर तीक्ष्ण आते हैं और फोकसमें भूल होनेका कोई डर नहीं रहता। परंतु यदि यह बात इतनी अच्छी होती तो क्यों अच्छे कैमेरोंमें फोकस करनेका प्रबन्ध रहता और क्यों फोकस करनेमें सहायता देनेके लिए विषयकी दूरी नापने वाला यंत्र भी लगा रहता ?
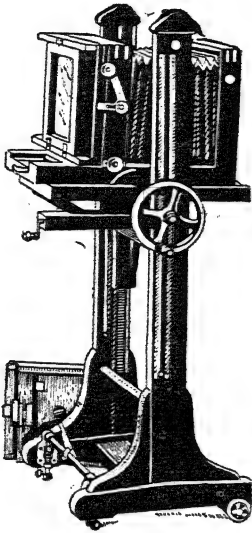
चित्र ६—स्टूडियो कैमेरा।
ये अत्यंत दृढ़ और भारी होते हैं। इनको अच्छे व्यवसायी फोटोग्राफ़र अपनी दूकान पर फोटो खींचनेके लिए रखते हैं।

लेंज़—सबसे सस्ता लेंज़ 'ऐक्रोमैटिक' नामका होता हैं। इससे जो फोटो उतरता है वह कोने-कोने तक तीक्ष्ण नहीं रहता। इसके अतिरिक्त यह लेंज़ बहुत तेज़ भी नहीं होता। ऐनैस्टिगमैट (anastigmat) लेंज़ इससे अच्छा होता है। अच्छे ऐनैस्टिगमैटसे फोटो कोने-कोने तक तीक्ष्ण आ सकता है।

लेंज़ोंका छेद छोटा-बड़ा किया जा सकता है। प्रत्येक छेदका नाप बतलानेके लिए एक नम्बर रहता है और अकसर नंबरके पहले F या F/ जोड़ दिया जाता है। F के बदले हम फ़ लिखा करेंगे। सबसे बड़े छेदका नंबर कैटलगोंमें दिया रहता है जिससे पता चलता है कि लेंज़ कितना तेज़ है। यह नंबर जितना ही छोटा होता है लेंज़ उतना ही तेज़ होता है। उदाहरणतः फ़/२ का लेंज़ फ़/६ से तेज़ है। स्मरण रखना चाहिए कि दशमलव पद्धतिके अनुसार १·६, ३·५, ४·५, ५·६ इत्यादि ६ या ८ इत्यादि से छोटे हैं। इसलिए फ़/३·५ का लेंज़ फ़/६ के लेंज़से तेज़ होगा।

कैमेरेमें जितना ही तेज़ लेञ्ज़ रहे उतना ही अच्छा है, क्योंकि तब बहुतसे कठिन विषयोंके भी फोटो लिये जा सकेंगे जो कम तेज़ लेंज़से नहीं लिये जा सकते। परन्तु तेज़ लेञ्ज़के साथ कैमेरा भी मज़बूत होना चाहिए जिसमें हचक नाम मात्र भी उत्पन्न न होने पाये। फिर शटर भी तेज़ हो, अन्यथा लेञ्ज़की तेज़ीका पूरा उपयोग नहीं किया जा सकेगा।

शटर—प्रत्येक शटरमें ऐसा प्रबन्ध रहता है कि घोड़ा दबाने पर शटर खुल जाय और छोड़ने (हाथ उठाने) पर शटर बन्द हो जाय। इसे (bulb) या लघु प्रकाश-दर्शन कहते हैं। इसके अतिरिक्त ऐसा प्रबन्ध भी रहता है कि घोड़ा दबाने पर शटर खुले और फिर अपने आप बंद हो जाय इसे क्षणिक (instantaneous) प्रकाश-दर्शन कहते हैं। सस्ते शटरोंमें शटर लगभग $\frac{१}{२५}$ सेकण्ड तक खुला रहता है। परन्तु अच्छे शटरोंमें यह समय घटाया-बढ़ाया जा सकता है। यदि शटर $\frac{१}{२}$ सेकण्ड, $\frac{१}{५}$ सेकण्ड, $\frac{१}{१०}$ सेकण्ड के क्षणिक प्रकाश दर्शन दे सके तो मनुष्य-चित्रणमें, विशेष कर बच्चोंकी फोटोग्राफ़ीमें बड़ी सुविधा होती है। यदि शटर $\frac{१}{२५०}$ सेकण्ड, $\frac{१}{५००}$ सेकण्ड और $\frac{१}{१०००}$ के भी प्रकाश दर्शन दे सके तो तीव्र गति फोटोग्राफी भी की जा सकेगी।

अधिकांश शटरोंमें ऐसा भी प्रबन्ध रहता है कि एक बार घोड़ा दबानेसे शटर खुल जाय, फिर दोबारा घोड़ा दबानेसे शटर बन्द हो। इसे समय प्रकाशदर्शन (time exposure) कहते हैं। ऐसे कैमरोंमें ध्यान रखना चाहिये कि फिल्म या प्लेट लगाते समय भूलसे शटर खुला न रहे।

कुछ शटरोंमें ऐसा भी प्रबन्ध (डिलेड ऐक्शन delayed action) रहता है कि घोड़ा दबानेके

दस-पन्द्रह सेकण्ड बाद लेंज़ खुलता है। ऐसे शटरोंमें फोटोग्राफ़र स्वयं भी चित्रमें आ सकता है।

कौन-सा कैमेरा मोल लें ?—जिस वस्तुका फोटो खींचा जाता है उसे हम विषय कहेंगे। विषयोंको निम्न समूहोंमें बाँटा जा सकता है।

(१) दस-बारह फुटसे अधिक दूर पर और खुले मैदान में स्थित, स्थिर, प्रायः स्थिर या मंद गतिसे चलने वाले विषय। इनको हम भूदृश्य कहेंगे। (२) तीन फुटसे दस फुटके भीतर स्थित, स्थिर या प्रायः स्थिर विषय। ऐसे विष-

चित्र १०—ऐनैस्टिगमैट लेंज़
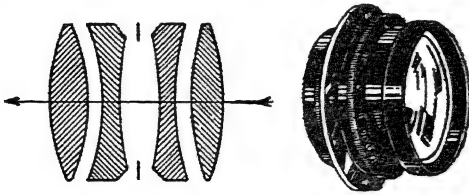
ऐनैस्टिगमैट लेंज़ सभी कामोंके लिए बहुत अच्छे होते हैं। वे वस्तुतः तीन या अधिक सरल तालोंसे बने रहते हैं।

योंका संकेत नीचे मनुष्य-चित्र शब्दसे किया जायगा, क्योंकि मनुष्य-चित्र साधारणतः इतनी ही दूरी परसे खींचे जाते हैं। (३) छोटे वस्तु, जिनका फोटो तीन फुटसे कम दूरी पर कैमेरा रख कर लेना पड़ता है। (४) तीव्र गतिसे चलने वाले विषय, जैसे दौड़ते मनुष्य या हॉकी, फुटबाल आदिका खेल।
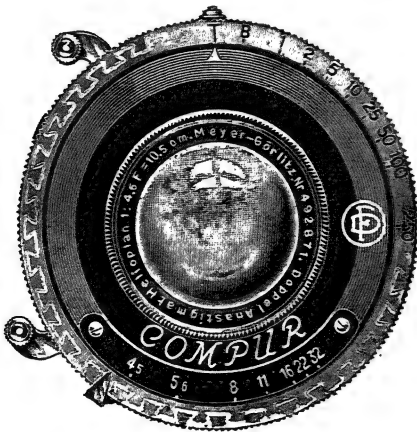
चित्र ११—शटर और डायाफ्राम।

इस चित्रमें प्रसिद्ध कॉम्पूर शटर दिखलाया गया है जो १ सेकंडसे लेकर १/२५० सेकंड तकका (विशेष बनावटका होने पर १/५०० सेकंड तकका) क्षणिक प्रकाशदर्शन दे सकता है। नीचेके काँटेको अगल-बगल घुमानेसे लेंज़-छिद्र छोटा-बड़ा होता है।

(५) मन्द प्रकाशमें स्थित अधिक समय तक स्थिर न रह सकने वाले विषय। (६) ऐसे विषय जिनके समीप पहुँचना संभव न हो, जैसे पहाड़, या व्याख्यान-दाता जब भीड़ इतनी हो कि पास जाना असम्भव हो, या जंगली जानवर

चित्र १२—भूदृश्य।

ऐसे विषयोंका फोटोग्राफ़ सस्ते कैमेरोंसे भी अच्छा उतरता है।

इत्यादि। (७) विशेष विषय जिनके लिए विशेष कैमेरे या यन्त्रकी आवश्यकता हो।

चित्र १३—तीव्र गति वाले विषय।

ऐसे विषयोंका फोटोग्राफ़ केवल बहुत महँगे (तेज़ लेंज़ और तेज़ शटर वाले) कैमेरोंसे ही उतर सकता है।

कौन-सा कैमेरा मोल लें इस प्रश्न पर विचार करते समय ध्यान रखना चाहिए कि भूदृश्योंका फोटो किसी भी कैमेरेसे अच्छा आ सकता है। यदि केवल भूदृश्योंका ही फोटो लेना हो तो कोई भी सस्ता कैमेरा काफ़ी होगा।
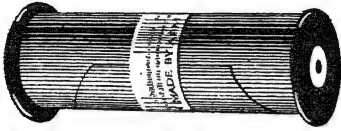
चित्र १४—रोल फिल्म

इसमें फिल्म (मसाला-चढ़ा सेलुलायड) काले काग़ज़के साथ इस प्रकार लपेटा रहता है कि बिना अँधेरी कोठरीके ही काम चल सकता है।

मनुष्य-चित्रोंके लिये सबसे सुविधा-जनक तो बड़े नापका प्लेट कैमेरा होता है जैसा व्यवसायी लोग रखते हैं, परंतु शौकीनों (अमेचरों) के कैमेरोंमेंसे वैसा कैमेरा इस कामके लिए उचित होगा जिसमें लेंज़ (या इसका एक भाग) आगे पीछे खिसक सके। या इसके अभावमें पोर्ट्रेट अटैचमेंट खरीदा जाय। पोर्टेट अटैचमेंट लेंज़के सामने कैमेरेमें या (लेंज़के ऊपर) खोंस दिया जाता है। तीन फुट वाले
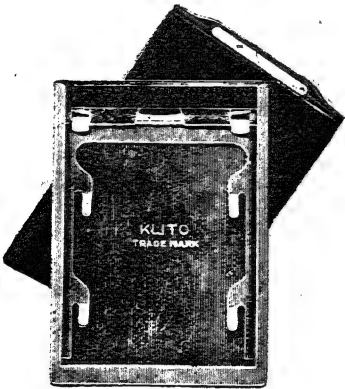
चित्र १५—प्लेटघर।

इसमें अँधेरी कोठरीमें प्लेट भरा जाता है।

पोर्ट्रेट अटैचमेंटसे विषयको ३ फुट पर रख कर चित्र लेना पड़ेगा, ४ फुट वालेसे ४ फुट पर रखकर, इत्यादि। विषयको जितना ही समीप रक्खा जाता है चित्र उतने ही बड़े पैमाने पर आता है। उदाहरणतः ३ फुटसे केवल सिर और कंधेका फोटो आयेगा, ४ फुटसे कमर तकका और ६ फुटसे पूरे शरीरका। इसलिए ३,४ और ६ फुट वाले ये तीन पोर्ट्रेट अटैचमेंट खरीदना चाहिए। फोकस करने वाले कैमेरोंमें पोर्ट्रेट अटैचमेंटकी आवश्यकता नहीं रहती।

छोटे वस्तुओंका, जैसे फूल, कीड़े-मकोड़े, सिक्के, फोटो, पुस्तकके पृष्ठ, इत्यादिका फोटो लेनेके लिये दोहरे विस्तारका प्लेट कैमेरा चाहिए। यदि फिल्म कैमेरा हो तो यह दोहरे विस्तारका रिफलेक्स हो, या मिनियेचर हो और उसके साथ वह सहायक यन्त्र भी हो जो इस कामके लिये बिकता है।

तीव्र गति फोटोग्राफ़ीके लिए तेज़ लेंज़ (कम-से-कम फ़/४.५ का) और $\frac{१}{१०००}$ सेकंड तक प्रकाश-दर्शन देने वाला तेज़ शटर चाहिए।

मन्द प्रकाशमें फोटो लेनेके लिए, विशेषकर रात्रिके समय थियेटरोंमें या सड़कों पर, फ/२ का या इससे भी
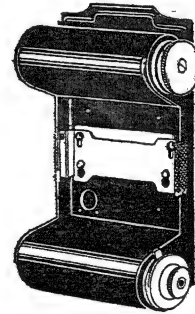
चित्र १६—रोल होल्डर।

इसकी सहायतासे प्लेट-कैमेरोंसे भी रोल फिल्म पर फोटो खींचे जा सकते हैं।

तेज़ लेंज़ चाहिए। इतना तेज़ लेंज़ बड़े नापके कैमेरोंमें मिलना कठिन है। इसलिए साधारणतः इस कामके लिए मिनियेचर कैमेरोंका प्रयोग किया जाता है।

दूरस्थ विषयोंके लिये टेलिफ़ोटो लेंज़ हो तो अच्छा है, अन्यथा चित्र बहुत छोटे पैमाने पर आयेगा।

ऊपरको बातोंके अतिरिक्त निम्न पैराकी बातों पर भी विचार करना पड़ेगा।

प्लेट या फिल्म और किस नाप का?— दिनो-दिन छोटे फोटोग्राफोंकी ओर लोगोंकी रुचि बढ़ती जा रही है। अब विदेशमें १″ × १½″ नापके चित्र लेनेवाले मिनियेचर बहुत चलते हैं। परन्तु आज भी इनसे कहीं अधिक संख्यामें वे कैमेरे चलते हैं जिनमें १२० नंबरका फिल्म लगता है। ऐसे फिल्मकी चौड़ाई २¼ इंच होती है और कैमेरेके अनुसार इसपर ३¼″ × २¼″ या २¼″ × २¼″ या २¼″ × १⅝″ के चित्र उतरते हैं। यदि फिल्म कैमेरा लेना हो और मिनियेचर पसंद न हो तो इन्हीं तीनों नापोंमें से किसी नापका कैमेरा लेना अच्छा होगा। अब बहुतसे कैमरे ऐसे भी बनते हैं जिनमें इन तीन नापोंमें से किसी दो नापके चित्र लिये जा सकते हैं। ये शायद कुछ अधिक उपयोगी होंगे।

प्लेट कैमेरा लेना हो तो ३½″ × २½″ नापका कैमेरा लेना अच्छा होगा। कुछ वर्ष पहले ४¼″ × ३¼″ नापके प्लेट लगनेवाले कैमेरे बहुत चलते थे (इस नापको क्वार्टर प्लेट कहते हैं)। अब भी क्वार्टर प्लेट काफ़ी चलते हैं। परन्तु २½″ × ३½″ के प्लेटोंका प्रचार बढ़ता जा रहा है। फिर, इंगलैंड और जरमनी दोनों देशोंमें ३½″ × २½″ वाले प्लेट चलते हैं परंतु क्वार्टर प्लेट केवल इंगलैंडमें चलता है। इसलिए जरमनीके बने कैमेरोंमें क्वार्टर प्लेटोंके बदले अकसर ६ × १२ सेंटीमीटरके प्लेट लगते हैं जो क्वार्टर-प्लेटसे ज़रा बड़े होते हैं। हाँ, इनमें एक विशेष चौखटा (कैरियर carrier) लगानेपर क्वार्टर प्लेट भी लग सकते हैं, परंतु इसमें सुविधा नहीं होती। फिर, २½″ × ३½″ नापके प्लेट क्वार्टर प्लेटसे सस्ते बिकते हैं और २½″ × ३½″ वाला कैमेरा अधिक सुविधा-जनक होता है और सस्ता मिलता है।

फिल्म कैमेरोंमें रोल फिल्म लगता है। प्रत्येक रोल फिल्म इतना लंबा होता है कि उसपर ३६, १८, ८ या ६ फोटो उतरते हैं। रोल फिल्मको कैमेरेमें लगानेके लिए या कैमेरेसे निकालनेके लिए अँधेरी कोठरीकी आवश्यकता नहीं पड़ती। इन कारणोंसे रोल फिल्म कैमेरोंमें सुविधा रहती है। प्लेट कैमेरोंमें भी, फिल्मपैक अडैप्टर खरीद लेनेपर, फिल्म पैक लगाये जा सकते हैं। इनमें फिल्मके १२ टुकड़े रहते हैं और वे इस प्रकार रक्खे रहते हैं कि बिना अँधेरी कोठरी में गये हो फिल्मपैक कैमेरेमें लगाया जा सकता है या कैमेरेसे निकाला जा सकता है। फिल्मपैक अडैप्टरके बदले रोल-होल्डर खरीदनेसे प्लेट कैमेरेमें रोल फिल्म भी लगाया जा सकता है। परन्तु प्लेट कैमेरोंमें साधारणतः प्लेट लगता है जिसके लिये अँधेरी कोठरीकी आवश्यकता पड़ती है। प्लेटोंके प्रयोगमें सुविधा यह रहती है कि इच्छानुसार एक-दो प्लेटपर फोटो खींचकर उनको डेवेलप किया जा सकता है, परन्तु रोल फिल्मसे एक-दो टुकड़ा काटकर अलग डेवेलप कर लेना संभव नहीं है (केवल कुछ मिनियेचर कैमेरोंमें ऐसा करनेका भी प्रबन्ध रहता है)। प्लेटोंके बदले कटे फिल्मों (cut films) का भी प्रयोग किया जा सकता है, परन्तु पहले इन्हें टीनके म्यानों (sheath, शीथ) में रखना पड़ता है और तब उन्हें प्लेट घरोंमें भरना पड़ता है। यह सब काम केवल अँधेरी कोठरीमें किया जा सकता है।

कैमेरे और शटरकी हिफ़ाज़त—कैमेरेको धूपमें या नम स्थानमें न रखना चाहिये। प्लेट-घर (प्लेट-होल्डर) पर अकसर असावधानीके कारण डेवेलपर आदिके छींटे पड़ जाते हैं। यह बुरा है। गर्द से कैमेरेको बचाना चाहिये। लेंज़पर गर्द हो तो उसे धीरेसे नर्म कपड़ेसे हटाना चाहिये। साफ़ करनेके ख्यालसे लेंज़को अकसर कपड़ेसे रगड़नेका परिणाम यह होगा कि लेंज कुछ समय बाद अंधा हो जायगा। इसलिए लेंज़को गंदा होने ही न देना चाहिए। लेंज़को छूने चाहिये और केवल कभी-कभी (सालमें एक-आध बार) साफ़ करना चाहिये। नाम मात्र स्पिरिटसे नरम और साफ़ पुराना कपड़ा नम करके उससे लेंज़को पोंछना अच्छा है। अधिक स्पिरिट होनेसे स्पिरिट लेंज़के भीतर चला जायगा जिससे बड़ी हानि हो सकती है।

प्लेटघरसे ढक्कन निकालकर अलग रखना चाहिये' नहीं तो मखमल सदाके लिए दब जायगा और भीतर प्रकाश जाने लगेगा।

विषय-सूची

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग ।

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते.
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्याभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ५२ | प्रयाग, वृश्चिक संवत् १९९७ विक्रमी | दिसम्बर, सन् १९४० | संख्या ३

प्रसरणशील जगत् (१)

[ले०—प्रो० ए० सी० बैनर्जी]

दूर-दर्शक यन्त्रोंका आविष्कार

चश्मोंके आविष्कारक रोजर बेकनने सबसे पहले बताया कि दूरबीन किस प्रकार बनायी जा सकती है जिससे दूरके तारे भी निकट दिखायी पड़ सकें, पर इस यंत्रके बनानेमें पहली बार सफलता फ्लेमिशके चश्मा बनाने वाले एक व्यक्ति लिप्परशेको सन् १६०८ में मिली। उस समय गेलिलियो पडुआके विश्वविद्यालयमें गणितका अध्यापक था। जब उसने इस दूरबीनके बनानेका वृत्तान्त सुना, उसे यह इच्छा हुई कि वह भी बहुत अच्छी दूरबीन बनावे। मानव-जगत्के इतिहासमें ७ जनवरी १६१० का दिवस सदा स्मरणीय रहेगा। इस दिन पहली बार गेलिलियो अपनी बनायी दूरबीन द्वारा जुपीटर तारेको देखनेके लिए बैठा। यह वह दिन है जब कि वर्तमान ज्योतिष-विद्याका जन्म होता है। गेलिलियोके दूरदर्शकमें मनुष्योंकी आँखोंकी अपेक्षा केवल १० गुना अधिक प्रकाश प्रविष्ट होता था। उसके कथनानुसार, इस यंत्रसे ५० मील दूरी वाला पदार्थ उतनी ही स्पष्टतासे दिखायी पड़ता था जितनी कि आँखोंसे ५ मील दूरी वाला पदार्थ दिखायी देता है। आज कलकी दूरबीनोंके सामने गेलिलियोका दूरदर्शक खिलौना मात्र था। इस समयका सबसे बड़ा दूरदर्शक केलिफोर्नियाके माउण्ट विलसन पर है। इसके परावर्तक दर्पणका व्यास १०० इञ्च है। इसमें साधारण आँखकी अपेक्षा २५०,००० गुना प्रकाश अधिक प्रविष्ट होता है। २०० इञ्च व्यासका परावर्तक दर्पण भी बनाया जा रहा है। यदि यह तैयार हो गया, जैसी कि शीघ्र आशा है, तो दस लाख गुना प्रकाश इसमें पहुँच सकेगा। दूरदर्शकमें न केवल प्रकाशका, प्रत्युत तापका भी संचय होता है। बहुत ही चेतन तापयुग्म (थर्मोकपुल) बनाये गये हैं जिनसे दूरदर्शकमें संचित तापका भी अनुमान लगाया जा सकता है। अमरीकाके ब्यूरो आव् स्टैण्डर्ड्सके डा० कोब्लाँने १/२०० इंच व्यासका एक अतिचेतन तापयुग्म तैयार किया है। यदि यह तापयुग्म माउण्ट विलसनके १०० इंच व्यास वाले हूकर दूरदर्शकसे संयुक्त कर दिया जाय, तो इसके द्वारा २,००० मील दूरी पर स्थित जलती हुई मोमबत्तीकी गर्मी

का भी पता लगाया जा सकता है। इतनी चेतनता वाले यंत्रोंकी सहायतासे हम दूरस्थ छोटे-छोटे तारोंसे प्राप्त सूक्ष्म गरमोका भी अनुमान लगा सकते हैं। इस गरमीके आधार पर हमें पता चल सकता है कि इन तारोंके पृष्ठ-तलका तापक्रम क्या है। गेलिलियो और उसके परावर्त्ती ज्योतिषियोंने आकाश-मंडलके रहस्योंका शनैः-शनैः उद्-घाटन कर डाला। ज्योतिषके इतिहासका दूसरा युग पिता और पुत्र—हर्शेल—सर विलियम हर्शेल (१७३८-१८२२) और सर जान हर्शेल (१७९२-१८७१) की खोजोंसे आरम्भ होता है। उन्होंने उन तारागणोंके परिवारोंका पता लगाया जो आकाश-गंगा द्वारा आविष्ट आकाशमें स्थित हैं। हमारा सूर्य इसी परिवारका एक व्यक्ति है। इस परिवारमें तारे लेन्सके आकारमें नियोजित हैं।

नीहारिकायें

दूरदर्शकमें ग्रह चपटी थालोकी भाँति प्रकट होते हैं। उस दूरदर्शकमें जिसमें ६० गुना परिवर्धन करनेकी शक्ति है, जूपीटर उतना बड़ा दिखायी देगा जितना कि हमें आँखों से चन्द्रमा दिखायी देता है। पर कोई ऐसा दूरदर्शक नहीं बना जिससे तारे प्रकाश-विन्दुसे अधिक आकारके दिखायी पड़ सकें। पर दूरदर्शकोंसे ग्रहों और तारोंके अतिरिक्त और अनेक पिंड विन्दुसे अधिक आकारके दिखायी पड़ते हैं। ये कुछ धुँधले और मन्दे होते हैं। इनका नाम 'नीहारिका' है।

नीहारिकायें तीन प्रकारकी होती हैं—(१ ग्रही नीहा-रिकायें (२) गांगेय नीहारिकायें (गैलेक्टिक नेबुला) और बहिर्गांगेय नीहारिकायें।

ग्रही नीहारिकायें इन नीहारिकाओं और ग्रहोंमें कोई वास्तविक साम्य नहीं है। ये दूरदर्शकसे देखी जाने पर परिमित चँदोवेके आकारकी दिखायी देती हैं। इनकी आकृति बहुत कुछ निश्चित है। संभवतः उनके केन्द्रीय भागोंमें अत्यन्त सघन तारे हैं जिन्हें "श्वेत-वामन" कहते हैं। ये सब हमारे गांगेय-परिवारके भीतर स्थित हैं।

गांगेय नीहारिकायें—इनकी कोई निश्चित आकृति नहीं है। देखनेमें ये एक तारेसे दूसरे तारे तक फैले हुये ज्योतिर्मान धूम्र-समूह-सी प्रतीत होती हैं। घनत्व, पार-दर्शकता और दीप्तिकी विभिन्नताओंके कारण इनके बहु-तसे विचित्र-विचित्र रूप हो गये हैं। इनके भीतर काले चकत्ते भी हैं जो अपारदर्शक द्रव्यके कारण हैं। ये नीहा-रिकायें भी हमारे गांगेय परिवारके भीतर स्थित हैं।

बहिर्गांगेय नीहारिकायें - ये नीहारिकायें दूसरे ही प्रकारकी है। बहुत-सी तो सर्पिलाकारकी हैं। इनमेंसे सबसे अधिक उल्लेखनीय एण्ड्रोमीडाकी "बृहद् नीहारिका म-३१" है। इस प्रकारकी सब नीहारिकायें गांगेय परिवारसे बाहर स्थित होती हैं। ये आकृतिमें भीमकाय हैं। यदि इनमेंसे कुछ की आकृति एशियाके बराबर कर दी जाय, तो उसकी अपेक्षामें पृथ्वी इतने सूक्ष्म-कणके बराबर प्रतीत होगी जो किसी भी सूक्ष्मदर्शक यन्त्रसे नहीं देखा जा सकता है। हर्शेलके शब्दोंमें ये "द्वीप-ब्रह्मांड" हैं।

तारोंकी दूरी

सन् १८३८ से ज्योतिषके एक नये युगका प्रादुर्भाव होता है। यह वह समय था कि तारेकी दूरी पहली बार यथार्थतासे नापी गयी। तारेकी ठीक-ठीक दूरी नापनेका प्रथम श्रेय बेसेलको है। पृथ्वीकी कक्षीय गतिके कारण तारोंका जो सापेक्ष-स्पन्दन होता है उसे "लम्बन-गति" (parallactic motion) कहते हैं। सन् १८३८ में बेसेलने ६१-सिगनी (Cygni) का लम्बन नापा और इस समयसे ब्रह्माण्डके परिमाणोंके ज्ञानका युग आरम्भ होता है। यदि हम किसी निकटस्थ तारेकी लम्बन-गति ठीक-ठीक निकाल लें तो हमें मालूम हो सकता है कि वह तारा हमसे कितनी दूर है। पृथ्वीकी कक्षकी चौड़ाई—लगभग १८.५ करोड़ मील हमारे लिये आधार-रेखाका काम दे सकती है। इसके दोनों पार्श्वोंकी ओर ६-६ मासके अन्तर पर तारेकी स्थिति देखी जा सकती है। दूर पर स्थित किसी एक तारेको हम गणनाके लिये स्थिर मान सकते हैं और इसकी अपेक्षासे निकटस्थ तारोंका कोणीय स्थानांतर नापा जा सकता है। इस कोणीय स्थानांतरके आधेको "वार्षिक सापेक्ष लम्बन" कहते हैं। इस प्रकार निकटतम तारोंकी दूरी निकाली जा सकती है। आज कलकी गणनासे पता चला है कि निकटतम तारे भी ग्रहोंकी अपेक्षा ठीक १० लाख गुना अधिक दूरी पर हैं। इतनी बड़ी दूरियाँ नापनेके लिये एक तरल और उपयुक्त इकाईकी आवश्यकता है। एक इकाई तो "पारसेक" है। इससे अभिप्राय उस दूरीसे है जिसके कारण एक सेकंड चाप-कोणका लम्बन

प्रतीत होता है। १ पारसेक लगभग १·९२ × १०¹³ मील है। दूसरी उपयुक्त इकाई "प्रकाश वर्ष" है। यह उतनी दूरी है जितनी कि प्रकाश प्रति सेकंड १,८६,२८५ मीलकी गतिसे जाता हुआ १ वर्षमें पार करे। इस गणनासे एक प्रकाश-वर्ष लगभग ५·८८ × १०¹² मील ठहरता है। अतः एक प्रकाश वर्ष = ०.३१ पारसेक। सबसे निकट प्रोक्सिमा सेण्टौरी तारा है जो हमसे २·५ × १०¹³ मील दूर है, अर्थात् इसकी दूरी ४·२७ प्रकाश-वर्ष है। इसका अभिप्राय यह है कि उस तारेसे हमारे पास तक प्रकाश आनेमें ४.२७ वर्ष लग जाते हैं। बेतारकी खबरें भी उतनी गतिसे चलती हैं जितनीसे प्रकाश। ध्वनिकी अपेक्षा यह गति लगभग दस लाख गुना अधिक है। जब कोई व्यक्ति बम्बईसे ब्राडकास्ट करता है तो उसके मुखसे ४ फुट दूरी पर रक्खे हुये माइक्रोफोन तक ध्वनि पहुँचनेमें जितना समय लगता है उससे कहीं कम समयमें रेडियोकी तरंगें दिल्ली या प्रयाग खबर पहुँचा देती हैं। यही नहीं, इन स्थानोंके श्रोतागणोंको बम्बईसे ब्राडकास्ट किया गया गाना सुननेमें उतनी भी देर नहीं लगेगी जितनी कि ब्राडकास्ट किये गये कमरेसे बाहरके दालानमें बैठे हुये व्यक्तियोंको सुननेमें साधारणत: लगती है। पर प्रोक्सिमा सेण्टौरी तारा जो सबसे कम दूरी पर है। वहाँ पर भी यहाँसे ब्रॉडकास्ट किया गया गाना रेडियो तरंगों द्वारा सवा चार वर्षसे कम समयमें नहीं पहुँचेगा। बहुतसे तारे तो इतनी दूर हैं कि इस संसार की वे ध्वनि तरंगें जो महाभारत, मोहेञ्जेदारों या प्राचीन मिश्रकी सभ्यताके दिनोंमें चली थीं, अब तक वहाँ न पहुँचेंगीं।

तारोंकी दूरियाँ निकालनेकी लम्बन-विधि अत्यन्त दूर तारोंकी दूरी निकालनेमें सर्वथा असफल रहती हैं। ज्योतिषी चापीय कोणके एक सेकंड के सौवें भाग तकका निरीक्षण तो यथार्थतासे कर सकते हैं, पर इसका अभिप्राय यह है कि इससे हमें उन्हीं तारोंकी दूरी ज्ञात हो सकती है जो १०० पारसैक अथवा ३२६ प्रकाश-वर्ष व्यासार्धके क्षेत्रमें विद्यमान हों। पर इतनेसे अधिक दूरी वाले तारोंकी दूरियाँ इस प्रकार नहीं निकाली जा सकतीं। पर हम एक दूसरी विश्वसनीय विधिसे कुछ सर्पिल नीहारिकाओं की बहुत अधिक दूरी भी निकालनेमें सफल हो सके हैं।

सेफायडोंकी सहायता से दूरी निकालना

यह सौभाग्यकी बात है कि अत्यन्त दीप्तिमान तारोंमें से कुछ ऐसे भी हैं जिन्हें 'सेफायड-वेरियेबिल' कहते हैं। उनकी दीप्ति आवर्त्त-नियमके अनुसार परिवर्तित होती रहती है, और यह आवर्त्त-काल कुछ घंटोंसे लेकर कुछ सप्ताह तक होता है। यह भी देखा गया है कि जिन सेफायड तारोंका आवर्त्त-काल बराबर है उनमें लगभग सभी गुण एक-से होते हैं, अर्थात् उनमें निजी दीप्ति, व्यासार्ध, रश्मि-चित्र आदि सभी एकसे होते हैं। आवर्त्तकाल और दीप्तिके बीचमें "आवर्त्त-दीप्ति-नियम" व्यवहृत होता है। सन् १९१२ में हार्वर्डकी मिस लीविट ने पहली बार यह बताया कि चमकीले सेफायडोंका प्रकाश धुँधले सेफायडोंकी अपेक्षा अधिक धीरे-धीरे परिवर्तित होता है। हम कह सकते हैं कि निजी दीप्ति बहुधा आवर्त्त-कालके साथ ही घटती-बढ़ती है। उदाहरणतः, जिस सेफायडका आवर्त्तकाल ४० घंटा है उसकी दीप्ति सूर्य्यकी अपेक्षा २५० गुना अधिक है, और जिस सेफायडका आवर्त्तकाल १० दिन है उसकी दीप्ति सूर्य्यकी अपेक्षा १६०० गुनी अधिक है। इस प्रकार इस सेफायडकी निजी दीप्त मालूम कर सकते हैं। इतना जान कर हम हिसाब लगा सकते हैं कि वह सेफायड हमसे कितनी दूर होगा जिससे कि वह हमें एक बिन्दुके बराबर दिखाई दे। यदि दो सेफायडों, क और ख, की निजी दीप्ति एक ही हो और यदि ख की अपेक्षा क चार गुना अधिक दीप्तिमय दीखता हो, तो ख हमसे क की अपेक्षा दुगुनी दूरी पर स्थिति है। इसी प्रकार अन्योंका हिसाब भी लगाया जा सकता है। हम जान सकते हैं कि सेफायड सापेक्षतः हमसे कितनी दूर है। लम्बन-विधि द्वारा हम निकटवर्त्ती कुछ सेफायडोंकी निरपेक्ष दूरी निकालनेमें सफल हो चुके हैं। अत: उनकी अपेक्षा दूसरे दूरस्थ सेफायडोंकी दीप्तिकी तुलना करके हम उनकी भी दूरी निकाल सकते हैं। सेफा-यडोंको हम तुलना करनेकी "आदर्श मोमबत्ती" मान सकते हैं। आदर्श मोमबत्तीकी दीप्तिको देख कर उसकी दूरी हम निकाल सकते हैं। सेफायडोंके आवर्त्त-दीप्ति नियमका सर्व प्रथम प्रयोग लाइडेन वेधशालाके प्रो० हर्ट्जस्प्रुंग ने मैगेलैनिक-क्लाउडकी दूरी नापनेमें और डा० शैप्ले ने "ग्लोबुलर-क्लस्टर" नामक तारा-समूहोंकी दूरी निकालनेमें

किया था। मैगेलैनिक क्लाउड और ग्लोबुलर क्लस्टर दोनोंमें सेफायड यथोचित भागमें विद्यमान है। निकटतम ग्लोबुलर क्लस्टर-ओमेगा सेण्टौरी-हमसे २२,००० प्रकाशवर्ष दूर है, और दूरतम क्लस्टरकी दूरी इससे १० गुनी और अधिक है।

अन्य विधियाँ

बहुत ही दूर पर स्थित तारोंकी दूरियाँ निकालनेकी कुछ और विधियाँ भी हैं। एक विधिका नाम है "स्पैक्ट्रो-स्कोपिक-पैरेलैक्स अथवा रश्मिचित्रिक-लम्बन"। माउण्ट विलसन वेधशालाके डा० एडेम्स और अन्य व्यक्तियोंने यह मालूम किया कि तारोंके रश्मिचित्रमें कुछ ऐसी बातें दिखाई देती हैं जिनके आधारपर उनकी निजी दीप्तिका अनुमान लगाया जा सकता है। इनकी प्रत्यक्ष दीप्ति तो मालूम हो सकती है। अतः इनकी दूरी भी निकाली जा सकती है।

गांगेय परिवार

डा० ओर्ट आदि व्यक्तियों का कहना है कि हमारा गांगेय परिवार (गैलेक्टिक-सिस्टम) गाड़ीके पहियेके समान घूम रहा है, केवल अन्तर यह है कि इस पहियेकी आन्तरिक धुरीको गति बाहरी परिधिकी गतिकी अपेक्षा अधिक है। हमारा सूर्य इस महाकाय पहिये की धुरीसे ३७,००० प्रकाश वर्षको दूरी पर है। सूर्यके निकट इस महाकाय पहियेका आवर्त्तकाल २३०० लाख वर्ष है। अतः सूर्य और इसके निकटवर्ती तारोंकी गति गैलेक्सीके घूमनेके कारण ही २०० मील प्रति सेकण्डके लगभग हो जाती है। ऐसा अनुमान है कि हमारे गांगेय परिवारमें तारोंकी पूर्ण संख्या ४×१०^{११} के लगभग है और इस गांगेय परिवारका भार सूर्यकी अपेक्षा २×१०^{११} गुना अधिक है। इस विश्वमें हमारे गांगेय परिवारके समान अन्य अनेक गांगेय परिवार हैं। आकाश-मंडलमें प्रत्येक गांगेय परिवारको मरुभूमिमें स्थित एक हरित् क्षेत्र समझना चाहिये अथवा महासागर में स्थित एक द्वीप-समूह। प्रत्येक द्वीपके आगे अन्य अनेक द्वीप हैं। प्रत्येक गैलेक्सीमें करोड़ों और विद्यमान है। प्रत्येक सर्पिल नीहारिका इसी प्रकार एक द्वीप समूह हैं। एडिंगटनने विश्व परिगणनकी एक सारिणी दी है जिसके अनुसार एक गैलेक्सी (गांगेय परिवार) में १ खरब तारे होते हैं। एक विश्वमें १ खरब गैलैक्सी होती हैं।

सेफायड तारोंके आवर्त्तकालकी गणना लगा कर माउण्ट विलसन वेधशालाके डा० हुबलने अनुमान लगाया कि एण्ड्रोमीडामेंका ग्रेट-नेबुला एम-३१ हमसे ९,००,००० प्रकाशवर्ष दूर है। माउण्ट विलसनके १०० इंच वाली दूरबीनसे ऐसी नीहारिकाका पता चला है जो हमसे १५०० लाख प्रकाशवर्ष दूर है। जब २०० इंच वाली दूरबीन बन जायगी तो और भी दूर नीहारिकाओंका पता चल सकेगा।

(क्रमशः)

हमारी खनिज सामग्री और भारत-रक्षा की समस्या

[ले० – श्री शिवकुमार शुक्ल, काशी विश्वविद्यालय]

युद्धकी प्रगति बर्बरताकी ओर बढ़ती जा रही है। आज किसी राष्ट्रको अपने जीवनका भरोसा नहीं है। वे देश भी जो युद्ध-क्षेत्रसे बहुत अंतर पर स्थित हैं उनके सामने भी उनके मुल्ककी आज़ादी क़ायम रखनेका प्रश्न है। युद्ध किसी विशेष मुल्क में सीमित नहीं हैं, वरन् सारे संसारमें फैल गया है। दुनियाके एक नये इतिहासकी बुनियाद डाली जा रही है। ऐसे समयमें वे ही देश अपनी सत्ता क़ायम रख सकते हैं, जिनके पास युद्ध-सामग्री मौजूद है, जिन देशोंकी सेना वैज्ञानिक ढंग के हथियारोंसे सजी है, जो देश अपनी आवश्यकताओंको अपने-आप पूरा कर सकते हैं वरना उनके आर्थिक संकट प्रश्न है। इस युगमें जन-समुदाय महत्ताकी बिलकुल ही नहीं है। आज किसी देशकी शक्तिकी आजमायश करते समय यह नहीं सोचना है कि उस देशकी जनसंख्या क्या है, बल्कि सोचना यह है कि उसके पास कितना कच्चा माल है, उसके पास कितना तेल है, उसके पास कितनी हल्की धातु है और उस देशमें कितने कारख़ाने स्थित हैं। आज युद्धमें मनुष्य नहीं लड़ता है परंतु वैज्ञानिकका मस्तिष्क काम करता है। अब

वह स्वप्न कि एक ठंडे मुल्क वाले अच्छा स्वास्थ्य पानेके कारण ग़रम मुल्क वालों पर अपना अधिकार मानव ताक़त के द्वारा जमा लेंगे, अनुचित है। एक पिचके गालों वाला रक्तहीन पुरुष एक हवाई जहाज़से सारे शहरको कम्पायमान कर सकता है। इस तरहसे युद्धका दृश्य बदल गया है। बड़ी-बड़ी मूल्यवान धातुओंका स्थान आज लोहे और एल्यूमीनियमसे बदल गया है। यदि हम सोने और चाँदीसे युक्त हैं परंतु लोहा और एल्यूमीनियम नहीं है तो हमारी शक्ति किसी कामकी नहीं है। राष्ट्रकी शक्ति बड़े-बड़े फौजी डेरोंसे उठकर उस देशके कल और कारख़ानोंकी ओर चली आई है। ये कारख़ाने कच्चे माल पर निर्भर हैं। राष्ट्रके जीवनको क़ायम रखनेके लिये, दुनियाकी प्रगतिके साथ चलनेके लिए और विदेशी सत्तासे बचने के लिये यह आवश्यक है कि किसी देशमें कारख़ाने बड़े-चढ़े हों, उनमें उत्तम से-उत्तम आविष्कार हों और राष्ट्रकी आवश्यकताओंको पूरा करें। दुनिया जब कि युद्धके गालमें समाता चला जा रहा है भारत को भी पूर्वीय और पश्चिमोय बड़े-बड़े हमलेका भय है। उसके सामने भी आज उसकी मान मर्य्यादाका प्रश्न है। उसमें भी एक नये जीवनकी स्फूर्ति है। उसे भी आज यह सोचना है कि पश्चिमीय ढंगके कारख़ाने, उनके समान रणपोत और हवाई जहाज बन सकते हैं या नहीं। यद्यपि ऐसे समयमें भी उसके पास एक फकीर है जो उसे अध्यात्मवादको ओर खींचे लिये जा रहा है, परंतु फिर भी उसके सन्मुख रक्षाकी समस्या है।

बड़े-बड़े टैंकों, बमके गोलों और ज़हरीली गैसोंका सामना करनेका प्रश्न है। ऐसे समयमें बहुतोंको भय है कि भारत अन्य बर्बर और पाशविक शक्तियोंके कारण अपनी आज़ादी क़ायम नहीं रख सकता है। पर यह निराधार है। हमारे पास सब शक्तियाँ मौजूद हैं जैसा कि हम आगे चलकर देखेंगे।

राष्ट्रका धन

किसी राष्ट्रका धन चार भागोंमें बाँटा जा सकता है।

१—खेती-बारीसे सम्बन्धित

२—जंगलोंसे सम्बन्धित

३—पशुओंसे सम्बन्धित

४ - खनिज पदार्थ

भारतवर्ष एक खेतिहर देश है। हमारे यहाँकी भूमि उर्वरा है, हम वैज्ञानिक ढंगकी खाद नहीं देते हैं, हम वैज्ञानिक औज़ारोंसे काम नहीं लेते हैं। उससे दिन-प्रति दिन उपज कम होती जाती है। हमारे यहाँका किसान सूखता जाता है। वैज्ञानिक खादोंसे उपज बहुत बढ़ जाती है और ये खादें खनिज पदार्थोंकी सहायता द्वारा बनाई जाती हैं। हमारी आज खेती-बारीकी उपज देशको जीवित रखनेके लिये पर्याप्त है। आज कल खेती-बारी मनुष्यको खाने और पहनने ही को सामग्री नहीं देती है बल्कि उसके मोटरके दौड़ानेके लिये ईंधन भी देती है। विदेशोंमें बहुत सी-मोटर लारी अरहरकी लगोंसे व अन्य व्यर्थकी चीज़ोंसे चलाई जाती हैं। आलूके छिलकों तथा वे चीज़ें जो किसी भी कामकी नहीं है बनावटी रेशमके बनानेके काममें लाई जाती हैं। भारतवर्षमें कोई ऐसा कारख़ाना नहीं है जिसमें बनावटी रेशम बनाया जाता हो। प्रति वर्ष जापान रेशमके बदलेमें हमारा तमाम धन खींच लेता है। आज हमारे यहाँ मिश्र देशसे कपास भी आती है। परंतु यदि इस ओर ध्यान दिया जावे तो बड़े-बड़े रेशमके कारख़ाने खुल सकते हैं।

दूसरा वर्ग जंगलातका है। जंगल सुंदर से सुंदर लकड़ी और ईंधन देते हैं। परंतु इनके अतिरिक्त इन जंगलों पर बड़े-बड़े कारख़ाने निर्भर हैं; काग़ज़ या तो बाँसका बनाया जाता है या सवाई घाससे। भारतवर्षमें ये दोनों चीज़ें पाई जाती हैं। हमारे यहाँ कई क़ाग़ज़के कारखाने हैं। परंतु अभी इन कारखानोंमें समाचार-पत्रोंका काग़ज़ नहीं बनाया जाता है। समाचार-पत्रोंके लिये हमें बहुत क़ाग़ज़की आवश्यकता है। बिना इन काग़ज़ोंके हमारा काग़ज़का व्यवसाय पूर्ण नहीं कहा जा सकता।

तीसरा वर्ग पशुओंसे सम्बन्धित है। पशु मरने पर बहुत ही अच्छी खाद देते हैं और इसके अतिरिक्त उसकी खाल कमाये जाने पर बड़े कामकी होती है। भारतवर्ष सबसे अधिक खाल पैदा करने वाला है। परंतु खालें कच्ची हालतमें ही विदेशोंको भेज दी जाती हैं और कमाये जानेके बाद वे ही खालें भारतवर्षमें आ जाती हैं। फल यह होता है कि अठगुना धन फिर भारतवर्षके बाहर चला जाता है। इस भाँति इस वर्गके व्यवसाय भी सुचारु रूपसे नहीं कहे जा सकते हैं। परंतु हमारे पास कच्चा माल काफ़ी परिमाण पर मौजूद है। यदि शासक-वर्ग ध्यान दें तो

किसी समयमें भी यह व्यवसाय उन्नतिशील बनाया जा सकता है।

खनिज पदार्थोंका महत्व

सबसे अधिक आवश्यककवर्ग खनिज-पदार्थ है। यह किसी राष्ट्रकी बहुत ही आवश्यकीय सम्पत्ति है। जंगलात व कृषि-सम्बन्धी तथा पशु-सम्बन्धी माल सदैव किसी परिमाणमें भी पाया जा सकता है। हर वर्ष फसल काटी जाती है। कुछ समय के बाद जंगल काटे जाते हैं और सदैव पशु मरते-जीते रहते हैं। परंतु खनिज पदार्थके सम्बन्धमें यह बिलकुल भिन्न है। खनिज पदार्थ किसी देशको प्रकृति द्वारा दिये गये देन हैं। खनिज पदार्थोंको प्रकृति नटी ने दिन-रात अपने अथक परिश्रमसे किसी देशको भेंटमें दिया है। उसके चर दिन-रात काम करते हैं। उनमें आलस्यका प्रमाद नहीं है। हवा, नदियाँ, जल, ताप और ठंडक प्रकृतिके चर हैं, वे बड़ी-बड़ी भारी स्फटिककी चट्टानोंको चकनाचूर करके सुंदर रेतमें परिवर्तित कर देते हैं। जब वैज्ञानिक खोजमें निकलकर रेतको पा जाता है उससे वह सुंदर काँच बना डालता है। नदियों ने बड़े-बड़े जंगलोंको बहा कर कोयलेका जन्म दिया है जिन पर आज सारे संसारके कारखाने निर्भर हैं। इस भाँति किसी भी देशके खनिज पदार्थ खेती और जंगलकी तरह उसी परिमाणमें नहीं रक्खे जा सकते हैं। यदि एक बार कोयला खदानसे निकल आया है तो फिर कोयला नहीं मिलता है। इस तरहसे खनिज पदार्थ केवल ख़र्च किये जा सकते हैं। खनिज पदार्थ पर आज तमाम दुनियाके कारख़ाने निर्भर हैं। आज खनिज पदार्थ पर वैज्ञानिक सभ्यताका उत्तरदायित्व है। मानव सभ्यताके साथ-साथ खनिज पदार्थों के विज्ञानकी भी उन्नति हुई। पुराने अशुद्ध लोहे ताँबेकी जगह आज फौलाद और चमकीला शुद्ध ताँबा बनता है। किसी देशकी उन्नति-अवनति उसके कच्चे माल पर बहुत कुछ सीमित है। परन्तु कच्चा माल पाने पर किसी राष्ट्रकी रक्षाका प्रश्न और भी जटिल हो जाता है। रूमानियाके तेलके सोते और नार्वे-स्वीडनका कच्चा लोहा उसके ह्रासका कारण बन बैठा है। इस तरहसे यदि हमारे पास कच्चा माल है तो उसके क़ायम रखनेकी ज़िम्मेदारी भी बढ़ जाती है। यह खनिज पदार्थ हमें खुशहाल समयमें सुन्दर धातुयें प्रदान करते हैं जिससे नाना प्रकारके इञ्जन, हवाई जहाज़, तरह-तरहके यंत्र और अनेक प्रकारके मशीने बनती हैं।

वे हमें पेट्रोल कोयला देते हैं जिनसे कि मोटर आदि चलते हैं, जिन पर बड़े-बड़े कारख़ाने निर्भर हैं। वे हमारे हाथमें खाद बनानेके चारे हैं ? जिससे कि सुन्दर लहलहाते हुए बाग़ और हरी-भरी खेती रहती है। परन्तु वे ही खनिज पदार्थ युद्धके समयमें बड़ी-बड़ी तोपें गनमशीनें रणपोतों और ज़हरीली गैसोंके बनानेमें सहायक होते हैं। वे राष्ट्रके संरक्षणके उपाय हैं। इस महत्ताके कारण ही अन्य देशोंमें व्यवसायका जाल इस भाँति पूरा गया है कि कारख़ाने युद्धके समय युद्ध-सम्बन्धी वस्तुएँ उत्पन्न कर सकें। वहाँ संरक्षण-विभाग और व्यवसायिक विभागको बहुत निकट रक्खा जाता है। परन्तु भारतवर्षमें बिलकुल अवस्था भिन्न है। संरक्षण-विभाग केन्द्रीय सरकारके अंदर है, और व्यवसायिक विभाग प्रत्येक प्रांतका अलग-अलग है। प्रांतकी व्यवसायिक उन्नति उस प्रांत पर निर्भर है। इस भाँति एक तो प्रांतीय सरकारके अंदर है दूसरा केन्द्रीय सरकारके। फल यह होता है कि राष्ट्रका व्यवसायिक निर्माण उपयुक्त ढङ्गसे नहीं होता है। भारतवर्षके पास प्रत्येक तरह का कच्चा माल मौजूद है परन्तु फिर भी यहाँ कारख़ाने नहीं हैं। यदि आज एल्यूमीनियमके कारख़ाने देशमें होते तो आज हवाई जहाजोंका प्रश्न इतना जटिल नहीं होता। यदि आज मैंगनीज़की धातु बनाई जाती होती तो बड़ी-बड़ी तोपोंके बनानेमें कठिनता नहीं होती। परन्तु हमारी सरकारकी नीति भिन्न रही है। परन्तु आज उसे अपनी भूल मालूम पड़ी। आज सरकारके कान खड़े हैं। और पूर्वीय समुदायकी बैठककर राष्ट्र-निर्माणको खोज रहे हैं।

युद्ध सम्बन्धी खनिज

युद्ध-सम्बन्धी खनिज पदार्थ तीन वर्गोंमें बाँटे जा सकते हैं।

१—धातु-सम्बन्धी

२—अधातु-सम्बन्धी

३—ईंधन

धातु-सम्बन्धीमें भारी धातुयें, और हलकी धातुयें हैं। भारी धातुओंके अन्दर लोहा, मैंगनीज, ताँबा, सीसा आदि

आता है और हलकी धातुओंके अंदर एल्यूमीनियम और मेंगनीज़ आदि हैं। हम इनका विवरण यथेष्ट रूपसे करते हैं।

सबसे अधिक महत्वशाली लोहा और फौलाद है। लोहेका खनिज लगभग २५ लाख प्रति वर्ष निकलता है। सारे संसारमें उसका परिमाण २० करोड़ टन है। इस प्रकार भारतवर्षमें केवल १ प्रतिशत ही लोहेका खनिज काममें आता है। यह टाटाके कारख़ाने तथा अन्य दो कारख़ानोंके काममें आता है। यद्यपि लोहा और फौलाद बनाया जाता है फिर भी विदेशसे लोहा प्रतिवर्ष लगभग ५ करोड़ रुपये का आता है। इसके अतिरिक्त १५ करोड़ रुपयेकी प्रतिवर्ष बड़ी-बड़ी लोहेकी मशीनें आती हैं यद्यपि भारतवर्षमें लोहे-की खानें क़रीब-क़रीब सभी प्रांतोंमें पाई जाती हैं, परन्तु फिर भी २० करोड़ रुपया वार्षिक विदेश भेज दिया जाता है। हमारे पास कोकिंग कोयला जो कि लोहेके बनानेके काममें आता है बहुत कम है। परन्तु अब नई विधि-द्वारा विद्युत्-शक्ति और लकड़ीके कोयलेसे लोहा बनाया जाता है। इससे जहाँ पर सस्ती विद्युत्-शक्ति और लकड़ीका कोयला मिल सकता है वहाँ पर लोहेके कारखाने खोले जा सकते हैं। हिमालय पर्वतमें विद्युत्-शक्ति जिससे कि लाखों टन कोयला बनाया जा सकता है नष्ट हो रही है। वहाँ पर लोहेका खनिज बहुतायतसे पाया जाता है। जंगलातके होने के कारण कोयला भी बहुत सस्ता पाया जाता है। यहाँ पर लोहेका कारख़ाने बहुत ही अच्छी तरह खुल सकता है। लेकिन ये कारखाने तो सरकार पर निर्भर हैं। हमारे प्रांतपति महोदय और उनके सरकारी सलाहकार गंगा जी के मैदानों-में रहते हैं। उन्हें यह मालूम नहीं है कि संयुक्त प्रांतमें पहाड़ भी हैं और यदि हैं भी तो उनमें कुछ खनिज सम्पत्ति भी है। लोहेके कारख़ाने एक ही स्थान पर सब नहीं खुलने चाहिये क्योंकि अब हवाई युद्धके कारण बहुत भय हो गया है। यदि सरकार ध्यान दे तो लोहेके कारखाने खुल सकते हैं जिनके द्वारा भारतकी लोहेसे सहायता की जा सकती है।

दूसरी आवश्यकीय धातु क्रोमियम है। बिलोचिस्तान, मैसूर और बिहारमें इसका खनिज पाया जाता है। लगभग ६० हज़ार टन क्रोमाइट भारतकी खदानोंसे निकाला जाता है। परंतु सब कच्चे मालकी हालतमें विदेशोंको लद जाता है। संसारमें क्रोमियम खनिज लगभग ६ लाख टन खदानों से निकाला जाता है। यदि भारतसे यह कच्चा माल न भेजा जावे तो हमारी आवश्यकताके लिये पर्याप्त है। क्रोम मिश्रित फौलादसे बहुत ही मज़बूत होता है।

मेंगनीज़

तीसरी आवश्यकीय धातु है। भारतवर्ष इस खनिज में बहुत ही धनी है। लगभग १० लाख टन खनिज प्रति-वर्ष भारतमें निकाला जाता है और सारे संसारमें लगभग ४० टन माल की खपत है। इस तरह लगभग २५ प्रति-शत संसारका माल भारतके खनिजसे बनता है। परन्तु यह खनिज कच्ची दशामें ही विदेशको भेज दिया जाता है। मेंगनीज़का मिश्रित फौलाद बहुत ही बढ़ा होती है और बहुत कम घिसती है। इसलिये इसकी बहुत सी घिसने वाली कलें बनाई जाती हैं।

चौथी आवश्यकीय धातु निकेल है। यह भारतवर्षमें नहीं पाई जाती है परन्तु ब्रह्मा में १५०० टन प्रतिवर्ष यह खनिज निकाला जाता है। परन्तु कारखाने न होनेके कारण यह सबका सब विदेश भेज दिया जाता है। ब्रह्मामें कोई लोहे और फौलादके कारखाने नहीं हैं। इससे यदि यह माल भारतवर्ष भेज दिया जाय तो हमारी कमी पूरी हो सकती है। यह धातु लोहेमें २·५ प्रतिशत तक मिलाई जाती है और इसके बिना काई लगने वाली फौलाद बनाई जाती है।

दूसरी आवश्यकीय धातु टंगस्टन है। भारतमें इस धातुकी खदान है परन्तु वे अभी काममें नहीं लाई गई हैं। इसके पानेके ख़ास-ख़ास स्थान ब्रह्मामें हैं। यहाँ लगभग ४००० टन वार्षिक खनिज निकाला जाता है। परन्तु यह सबका सब लादकर विदेश भेज दिया जाता है। यदि ब्रह्माका यह खनिज अन्य देशोंके बजाय भारतमें आने लगे तो हमारी आवश्यकतायें पूरी हो सकती हैं। टंगस्टन मिश्रित फौलादमें ताप सहनशीलता बढ़ जाती है। इससे काटनेके औज़ार बनाये जाते हैं। इस फौलादमें लगभग १० से २० प्रतिशत टंगस्टन और ३ से ८ तक क्रोमियम मिलाये जाते हैं। इससे युद्ध सामग्री हथियार बहुत अच्छे बनाये जाते हैं।

अन्य आवश्यकीय धातुयें कोबाल्ट, टायटेनियम, बेनेडियम और मोलिब्डेनम हैं। इन धातुओंसे मिश्रित फौलाद अभी भारतमें बिलकुल नहीं बनाया जाता है। अभी तक भारतीय खनिज पदार्थोंकी छान-बीन अच्छी तरह नहीं हुई है। इससे यह कहना कठिन है कि कौनसी धातुयें इनमेंसे कहाँ पाई जाती है। परन्तु यह बिलकुल निश्चित रूपसे कहा जा सकता है कि टायटेनियम धातु भारतमें किसी परिमाणमें भी नहीं पाई जाती है। इल्मेनाइट धातु जिससे कि टायटेनियम बनाया जाता है भारतमें बहुतायतसे पाया जाता है। लगभग १३६,००० टन वार्षिक यह खनिज भारतमें निकाला जाता है परन्तु कच्चे मालकी हालतमें ही यह विदेशको भेज दिया जाता है।

दूसरा खनिज जिसमें टायटेनियम निकाला जाता है वह रुटायल है। यह भी भारतमें कई स्थानोंपर पाया जाता है। इल्मेनाइट राजपुताना और दक्षिण भारतमें कई स्थानोंपर पायी जाती है। यह मोनोजाइटके रेतके रूपमें ट्रावनकोरमें भी मिलता है। इस तरहसे टाइटेनियम धातु कई स्थानों पर पाया जाता है। इससे बनी हुई फौलाद किसी राष्ट्रके संरक्षणके लिये बहुत आवश्यकीय है। कोबाल्ट, बेनेडियम और मोलिब्डेनमकी धातुयें भी भारतमें पाई जाती हैं परन्तु इसका अनुसन्धान अच्छी तरह नहीं हुआ है। इससे इनके विषयमें कुछ निर्धारित रूपसे नहीं कहीं कहा जा सकता है।

इस तरहसे हम देखते हैं कि हमारे यहाँ सब धातुयें पाई जाती हैं जो कि बड़ी-बड़ी मशीनोंके बनानेमें, टैंक और तोपोंके बनानेके काममें लाई जाती हैं। यदि सरकार इस ओर ध्यान दे तो तरह-तरहकी मिश्रित धातु सरलतासे बन सकती है। यह हमारी आवश्यकता ही पूरी नहीं कर सकती है वरन् विदेशोंमें भी भेजी जा सकती हैं। हमारे यहाँका कच्चा माल विदेशमें भेजा जाता है जिससे राष्ट्रको बड़ी क्षति होती है। यदि वही माल शुद्ध होनेके बाद भेजा जाय तो हमारे यहाँ व्यवसायकी बड़ी उन्नति हो सकती है।

ताँबा और सीसा

दूसरा आवश्यकीय धातुओंका वर्ग ताँबा और सीसा है। भारतमें ताँबाका खनिज लगभग १२,००० टनके होता है। परन्तु ताँबा प्रतिवर्ष २४,००० टन विदेशोंसे भेजा मँगाया जाता है। संसारमें यह खनिज लगभग २० लाख टनके निकाला जाता है। इस तरह भारतवर्षमें ०.६ प्रतिवर्ष ही निकलता है और हमें अपनी आवश्यकतामें ३३% मिलता है। अब प्रश्न यह है कि भारत इस धातुमें अपनी आवश्यकता पूरी कर सकता है या नहीं। प्राचीन कालमें कई खदानोंसे ताँबा निकाला जाता था। भारतमें इसकी खदानें कई जगह हैं। परन्तु यह कहना कठिन है कि उनमें कितना माल निकाला जा सकता है क्योंकि उनकी भूगर्भ-शास्त्र द्वारा अच्छी तरहसे परीक्षा नहीं हुई है। ताँबा भारतमें सिंघभूमि, छोटा नागपुर, बिहारमें और उदयपुरमें अजमेर, अलवर आदि जगहोंमें मिलता है। इसके अतिरिक्त हिमालयमें कई स्थानों पर यह धातु पाई जाती है। परन्तु सिंध भूमि वाली खदानसे ही कच्चा माल प्रति वर्ष निकाला जाता है। सिंहभूमिमें अस्सी मील एक ताँबेकी कतार दौड़ती है। भूगर्भ-शास्त्रके विद्वानोंका ऐसा मत है कि यदि बहुत अच्छी तरहसे खोज की जाय तो ताँबा हिन्दुस्तानकी आवश्यकतानुसार ही नहीं बल्कि अन्य देशोंको भेजने लायक भी बनाया जा सकता है। जहाँ तक सीसेका सम्बन्ध है भारतवर्षमें यह खनिज उत्पन्न नहीं होता है। परन्तु ब्रह्मा में लगभग ९०,००० टन गैलेन (सीसेका खनिज) प्रति वर्ष निकाला जाता है। भारतवर्षमें केवल इसके आधे परिमाणकी आवश्यकता है। इस भाँति यदि हम ब्रह्मा पर निर्भर हो जावें तो हमारी माँग पूरी हो सकती है। सीसेकी खदान हिन्दुस्तानमें बंगाल, मद्रास और हिमालयके कई स्थानों पर है। परन्तु यह काममें नहीं आती है। प्राचीन कालमें सीसा बहुतायतसे उत्पन्न होता था। मध्य प्रान्तके कुछ स्थानोंमें हजारीबाग और मानभूमिमें चाँदी और सीसा एक साथ पाया जाता है। परन्तु विदेशी सीसा सस्ता होने के कारण यहाँके बाज़ारोंमें कब्ज़ा जमाये है। सीसा एक युद्धकी बहुत ही आवश्यकीय धातु है। इससे बन्दूककी गोली व अन्य कई चीज़ें बनाई जाती है। जस्ता हिन्दुस्तानमें नहीं पाया जाता है। परन्तु ब्रह्मामें ६०,००० टन प्रति वर्ष निकलता है। वहाँसे वह विदेशोंको भेज दिया जाता है। संसारमें जस्तेका खनिज १६ लाख टन प्रति वर्ष निकाला जाता है। भारतमें लगभग २४,००० टन जस्ता आता है। इसलिये ब्रह्मासे यदि जस्ता अन्य देशोंके स्थान

पर भारतवर्षमें आने लगे तो हमारी जस्तेकी माँग पूरी हो सकती है। इसी तरहसे हमें टीनके लिये भी ब्रह्मा पर निर्भर होना पड़ेगा। ब्रह्मा प्रति वर्ष ४,००० टन टिन धातुके बराबर खनिज निकलता है। भारतमें केवल ३,००० टन टिन ही प्रति वर्ष विदेशसे आता है। इस तरहसे हम देखते हैं कि जहाँ तक सीसा, जस्ता और टिनका सम्बन्ध है भारतको ब्रह्मा पर निर्भर होना पड़ेगा। यह सम्भव है कि काफी खोज-बीनके बाद हमारे देशमें भी ये धातुयें आवश्यकतानुसार मिल सकती हैं।

एल्यूमीनियमका प्रश्न

तीसरा वर्ग हल्की धातुओंका है। इनमें एल्यूमीनियम सबसे अधिक महत्वशाली है। इसके अतिरिक्त क्रमशः मैगनीसियम और बेरीलियम हैं। भारतमें एल्यूमीनियम धातुके बनानेमें कोई कठिनता नहीं हो सकती है। जिन चीज़ोंकी आवश्यकता इसके बनानेमें है वे हमारे यहाँ पाई जाती हैं।

इसके बनानेमें बोक्साइट और सस्ती विद्युत्-शक्तिकी आवश्यकता पड़ती है। बोक्साइट भारतवर्षमें बहुत पाया जाता है। यह मध्य प्रांतमें कटनी और बालाघाटमें मिलता है। इसके अतिरिक्त मंडला, सिनान, कालाहांडी सरगुजा, महाबलेश्वर, भूपाल आदिमें भी पाया जाता है। काश्मीर में जम्मूके पास भी पाया जाता है। अन्य देशोंमें इसके बनानेकी विधि अच्छी तरहसे जान ली गई है। इससे इसके कारखाने खोलनेमें किसी प्रकारकी अड़चन आनेकी सम्भवना नहीं है।

एल्यूमीनियम किसी देशके लिये बहुत ही आवश्यक धातु बन बैठी है। यदि हम धातुओंकी उन्नतिकी ओर ध्यान दें तो संसारमें एल्यूमीनियम धातुकी बहुत ही आश्चर्यजनक उन्नति हुई है। एल्यूमानियम धातुका प्रधान गुण हल्कापन है। इसके अतिरिक्त इसमें मामूली तापक्रम पर घनवर्द्धनीयता, मामूली विद्युत् चालन-शक्ति, ऑक्सीजनसे संयोगके प्रति उदासीनता आदि गुण हैं। इन्हीं गुणोंके कारण बिजली ज़्यादा अंतर पर ले जानेके लिये एल्यूमीनियमके तार प्रयोगमें लाये जाते हैं। हल्केपनकी वजहसे इसके कई मिश्रण धातु जैसे डूरैलुमिन आदि बनते हैं। हल्केपनके कारण हवाई जहाज बनानेमें एल्यूमीनियम काम आती है। जिसके कारण गत वर्षों में यह खूँखार देशोंमें अधिक परिमाणमें बनाई गई है। परन्तु इससे यह न समझना चाहिये कि यह भारत जैसे देशमें कम प्रयोगकी गई होगी। यह गरीबोंकी धातु है। सस्ती होनेके कारण यदि भारतने इसे अपनाया है तो कोई आश्चर्य नहीं है। सड़क पर भूखे नङ्गे, भिखमंगेके पास यदि कोई सहारा है तो वह एल्यूमीनियमका छोटा-सा बर्तन होगा जो उसका पीनेका बर्तन बनकर प्यासके समय उसके अधरोंको चूम लेता है। उसके सूनसान समयमें वह एक ताराका काम देता है और वह "मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई" गाकर मन बहलाव कर लेता है और वही बर्तन "दाता दिला दे" कह उसे दान दिला देता है। इस तरह हम देखते हैं कि आज शोषित वर्गसे लेकर शोषक वर्ग तक सभीकी नज़र एल्यूमानियम धातु पर लगी हुई है। भारतमें बहुत-सा बोक्साइट है। उसकी विद्युत्-शक्ति तमाम पहाड़ोंमें व्यर्थ नष्ट हो रही है। उसे एल्यूमीनियमकी भारी आवश्यकता है। परन्तु विदेशी शासनके कारण उसे एल्यूमीनियमके कारखाने खोलनेमें सहायता नहीं मिलती है। यदि आज एल्यूमीनियमके कारख़ाने भारतमें होते तो भला अमेरिकाका ब्रिटेन आज क्यों मुँह ताकता। ब्रिटेनकी नीति अभी तक बोक्साइट (एल्यूमीनियमका खनिज) को भारतसे ले जानेकी रही है। परन्तु आशा है कि यह युद्ध एल्यूमीनियम कारख़ाने खोलनेमें बाध्य करेगा।

दूसरी हल्की धातु जो हवाई जहाज़के बनानेके काम में आती है वह है मेगनीसियम। इसके खनिज भारतमें कई रूपमें बहुतायतसे पाये जाते हैं। अभी इस धातुका देशमें कोई प्रयोग नहीं था। इससे देशमें इसका न बनाना ही सम्भव है। परन्तु हवाई जहाज़के बनानेके साथ इसका बनाना भी आरम्भ करना पड़ेगा। इसके हमारे पास कई खनिज हैं और बनानेमें कोई असुविधा होनेकी सम्भावना भी नहीं है।

तीसरी हल्की धातु बेरीलियम है। बेरीलियम खनिज अभ्रकके साथ बिहारमें बहुतायतसे पाया जाता है। परन्तु धातुके बनानेका आरम्भ आवश्यकता न होनेके कारण नहीं किया गया है। यह काफी परिमाणमें पाई जा सकती है।

इस भाँति हम देखते हैं कि तीनों हल्की धातु हमारे यहाँ मौजूद हैं। सरकारका ध्यान इस ओर जाने पर हमारा कच्चा माल किसी समय भी हवाई जहाज़ोंमें परिवर्तित किया जा सकता है। यदि ऐसी आवश्यकता न हो तब भी देशके ४० लाख रुपये बचाकर हम अपनी ज़रूरत अपने आप रफा कर सकते हैं। इस भाँति एल्यूमीनियम धातुके लिए और हवाई सेनाके लिये काफी सामग्री है और हमें विदेशके मुल्ककी ओर नहीं ताकना होगा।

ईंधनकी समस्या

दूसरा वर्ग धातु-वर्गके पश्चात् ईंधन-वर्ग है। मानव-सभ्यताकी सबसे भारी खोज अग्निकी है। खोजके पश्चात् उसकी वह चिरसंगिनी बन गई और उससे और मानवसे सम्पर्क उसके भिन्न-भिन्न कायम रखनेके तरीकेके साथ बढ़ता गया है। ईंधन-शक्तिके रखनेका एक चारा है। ईंधन तीन प्रकारका होता है। ठोस, तरल और गैस। गैस अमेरिकामें ही मिलती है। भारतवर्षको ठोस और तरल ईंधन पर ही निर्भर होना पड़ेगा। ठोस ईंधनमें लकड़ी और पत्थर का कोयला है। भारतमें जंगल काफी हैं। इसलिये इस ईंधन पर वह बहुत कुछ निर्भर रह सकता है। लकड़ीसे कोयला भी बनता है। लकड़ीके भिन्न-भिन्न प्रयोगोंका वर्णन हम पहले ही कर चुके हैं। दूसरा ठोस ईंधन पत्थरका कोयला है अथवा जिसे केवल कोयला ही कहिये। पिछले ४० वर्षोंमें इसमें बहुत उन्नति हुई है। अब लगभग २,५०,००,००० टन कोयला प्रति वर्ष भारतकी खदानोंसे निकाला जाता है। सारे संसारमें कोयला १५० करोड़ टन निकाला जाता है और इस भाँति भारतवर्षमें केवल संसारका १.७ प्रति शत निकलता है। कोयला भारतवर्षमें कई स्थानों पर पाया जाता है। इसमें बंगाल, बिहार और उड़ीसा विशेष उल्लेखनीय हैं। प्रति वर्ष लगभग ८९.५ प्रति शत कोयला बंगाल, बिहार और उड़ीसाकी खदानोंसे निकाला जाता है। ३.५ प्रतिशत सिंगरेनी (हैदराबाद रियासत) ३.५ प्रतिशत मध्य प्रांतसे और लगभग १ प्रतिशत उमरियाकी खदानसे निकाला जाता है। इस प्रकार बंगाल, बिहार और उड़ीसाकी खदानें विशेष महत्वशील हैं। यहाँ पर लोहा बनानेका कोकिंग कोयला पाया जाता है। भारतमें कोयला बहुत ही सीमित परिमाणमें है। भूगर्भ-शास्त्रके विद्वानोंका मत कि यह केवल ३०० वर्ष भारतकी माँगको पूरा कर सकेगा।

हमारे यहाँ तेलके सोते, जैसा कि हम आगे चलकर देखेंगे, बहुत हैं। ऐसी दशा पर हमें कोयला पर ही निर्भर होना है इसका प्रयोग बहुत ही सावधानीसे होना चाहिये। परन्तु इसका व्यवसाय बहुत ही अव्यवस्थित रूपमें है। इसके कई कारण हैं। कोयलेकी खदानोंका मालिक कौन है? ज़मींदार या सरकार। बंगाल और बिहारमें इस्तमुरारी बन्दोबस्त है जिससे कि खदानें ज़मींदारकी ही समझी जाती हैं। परन्तु इस बन्दोबस्तके समय पृथ्वीकी सम्पत्तिका कोई पता नहीं था। केवल ऊपर ही ज़मीनका बंदोबस्त हुआ था। इस प्रकार कोयलेकी सम्पत्ति सरकार की है। फिर भी यहाँ इन प्रांतोंमें ज़मींदारोंकी ठहराई गई है। इन ज़मींदारोंसे बहुत-सी विदेशी कम्पनियोंने ठेका इने-गिने रुपयों पर कई वर्षोंके लिये ले लिया है जिससे कि विदेशियोंने अधिकतर कोयलोंकी खदानों पर अपना कब्ज़ा जमा रक्खा है। ये विदेशी ठेकेदार किसी खास समयके लिये हैं, इसलिये वे खदानसे कोयला बहुत ही हानिकारक विधिसे निकालते हैं। सबसे अच्छा कोयला खदानों पर ४ रुपया टन मिलता है और वही कोयला विदेशोंमें १३ रुपये टनका बिकता है। सरकारका इस व्यवसाय पर मज़दूरोंके मसलों व अन्य बातोंके सिवाय किसी बात पर हस्तक्षेप नहीं है। फल यह होता है कि कोयला जैसा राष्ट्रीय धन नष्ट होता है कि कोयला जैसा राष्ट्रीय धन नष्ट होता है। विदेशी कम्पनी खूब रुपया कमाती है। खेती पर कर बिहारमें लगभग २ प्रतिशत पैदायश पर है। परन्तु इस ७१० लाख रुपयेके व्यवसाय पर जिसमें अनुमानसे ६० लाख रुपयेका लाभ कम्पनियोंको होता है; सरकारको एक पाई भी समाजके लिये धनी वर्गसे नहीं मिलती है। कोयला राष्ट्रकी एक निधि है। उसे हमें नष्ट नहीं करना है। उसके एक बुरे-से-बुरे भागको भी प्रयोगमें लाया जाता है। अन्य देशोंकी सरकार जहाँ बुरा कोयला प्रयोग हो सकता है, अच्छा कोयला प्रयोग नहीं होने देती है। बुरे कोयलेसे बिहारमें बिजली बनाई जा सकती है, विद्युत्-शक्तिसे कई रसायन बनाये जा सकते हैं। परन्तु यहाँ कोई ऐसी व्यवस्था नहीं है।

पेट्रोलका उपयोग

तरल ईंधनमें पेट्रोल केरोसीन तेल और ईंधनका तेल है। भारतवर्षमें तेलके सोते आसाम और पंजाबमें हैं। भारतवर्षमें लगभग २१ लाख टनके कुल तेल निकलता है। सारे संसारमें लगभग तेलको २३ करोड़ टन प्रति वर्ष की खपत है। इस प्रकार भारतमें ०·१ प्रतिशत तेल निकलता है। यदि हम ब्रह्माको भी शामिल कर लें तो ०·५ के लगभग हो जाता है। भारतवर्षमें सब प्रकारके तेलोंकी खपत २० करोड़ गैलन है जिससे उसे विदेशों पर बहुत निर्भर होना पड़ेगा। वर्तमान-कालमें पेट्रोल बड़ा महत्वशील हो गया है। यह अब राष्ट्रका भाग्य-निर्माता बन बैठा है। कौन जानता है कि यह वर्तमान युद्धकी हार-जीतका कारण बन बैठे। हवाई युद्धके कारण रणपोत अपना महत्त्व कम कर बैठे। रणपोतोंमें कोयला भी प्रयोग किया जा सकता है परन्तु वायुयानोंके लिये पेट्रोल आवश्यकीय है। इसीलिये इसका महत्व बहुत बढ़ गया है। भारतमें उसकी आवश्यकताके लिये भी पेट्रोल कम है। प्रश्न यह है कि कमी कैसे पूरी हो? सबसे पहले यह प्रयत्न किया जावे कि पेट्रोलको जगह अन्य सस्ते ईंधन प्रयोग किये जावें। इन सस्ते ईंधनका प्रयोग हम पहले ही कह आये हैं। दूसरी बात यह है कि भारतको राष्ट्रीय ईंधन बनाना चाहिये। जर्मनी और ब्रिटेन आदिमें जहाँ पेट्रोलकी कमी है वहाँ उन्होंने अपना-अपना राष्ट्रीय ईंधन बना रक्खा है। इसमें लगभग २० प्रति शत एलकोहल पेट्रोलमें मिलाना सरकारी नीतिसे जरूरी है। यद्यपि अंगरेजोंने यह कानून अपने देशके हितके लिये बना रक्खा है परन्तु खेद है भारतवर्षमें इस नीतिका अवलम्बन नहीं करते हैं। भारतमें एलकोहल शीरेसे बनाया जा सकता है। शीरा शक्करके व्यवसायका एक व्यर्थ भाग है। हमारे यहाँ शीरा इतने परिमाणमें निकलता हैं कि २० फीसदी एलकोहल सारे भारतके पेट्रोलमें मिलाया जा सकता है। ऐसा करनेसे हमारे यहाँ २० प्रतिशत पेट्रोल विदेशसे कम आवेगा। संयुक्त प्रांतकी सरकारने बहुत कठिनाईसे २० प्रतिशत एलकोहल मिलानेकी आज्ञा दी है। परन्तु यह कानूनानुसार सारे भारत पर लागू होना चाहिये। गत महायुद्धमें जर्मनी के पास पेट्रोलकी कमी हो गई थी और वह उसकी हारका एक कारण बन बैठा। चतुर जर्मन वैज्ञानिक इस बातको न भूले और उन्होंने बनावटी विधिसे पेट्रोल बनाना ईजाद कर दिया है। इससे अब जिन देशोंके पास पेट्रोलकी कमी है वहाँ बनावटी विधिसे पेट्रोल बनानेके कारखाने खुल गये हैं इनमें जर्मनी और जापान अग्रसर हैं। अभी ब्रिटेनमें कारखाना खुला है। भारतमें भी बनावटी पेट्रोल बनानेका कारखाना खुल जाना चाहिये। ऐसा अनुमान है कि १०० टन कारखानेके लिये लगभग ५०० टन कोयलेकी आवश्यकता है। यह कोयला किसी दर्जेका हो सकता है। इससे बिना कामके कोयलाको विद्युत्-शक्तिके उत्पादन करनेके अतिरिक्त पेट्रोलके बनानेके भी काममें लाना चाहिये। यह पेट्रोल लगभग ५ आना गैलन पड़ेगा। आज कल पेट्रोल भी लगभग इसी दरका होता है। यदि ऊपर वाली तीनों बातें प्रयोगमें लाई जावें तो भारत अपने आप अपनी आवश्यकताओंको पूरा कर सकता है और हमारे ईंधनकी समस्या सुलझ सकती है।

नमककी आवश्यकता

ईंधनके पश्चात् तीसरा अधातु-वर्ग है। इसमें कई प्रकारके विस्फोटक रसायन नमक, चूना, गंधक, अभ्रक, तापरोधक मिट्टी आदि शामिल हैं। नमक भारतमें तीन प्रकारसे पाया जाता है।

१—समुद्रसे

२ - साँभर झीलसे

३—पंजाबमें खिवरामें पाया जाता है।

लगभग दो तिहाई नमक समुद्रसे बनाया जाता है। शेष अन्य दोनों स्थानोंसे मिलता है। यद्यपि भारतमें नमक विदेशसे बहुत कम आता है परन्तु नमक द्वारा बनी हुई कई प्रकारकी वस्तुएँ आती हैं। उनमें सोडा और कास्टिक सोडा विशेष उल्लेखनीय है। ये दोनों राष्ट्रके लिये बहुत आवश्यकीय है। ऐसा अनुमान है कि संसारमें सोडा २५ प्रति शत काँचमें, २५ प्रति शत साबुनमें, १६ प्रति शत कपड़ोंके कारखानोंमें और ५ प्रति शत काग़ज़में प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार कास्टिक सोडा ३३ प्रति शत बनावटी रेशममें १७ प्रति शत साबुनमें, १७ प्रति शत कपड़ोंमें और ८ प्रतिशत काग़ज़में संसारमें ख़र्च किया जाता है।

भारतमें साबुन, कपड़े, काँच और काग़ज़के कारख़ाने हैं। इन दोनों रसायनों पर ये कारख़ाने बहुत कुछ निर्भर हैं। यदि इन कारख़ानोंका सुचारु रूपसे संचालन करना है तो यह आवश्यक है कि ये दोनों रसायन भारतमें बनाये जावें। इन दोनों रसायनोंके बनानेमें नमक, चूना और विद्युत्-शक्तिकी आवश्यकता है। हमारे यहाँ यह तीनों वस्तुएँ पर्याप्त परिमाणमें मिलती हैं। इसलिये ये दोनों रसायन यहाँ पर सस्ते बन सकते हैं मिठापुर बड़ौदा राज्यमें टाटा इन दोनों रसायनोंके बनानेका कारख़ाना खोल रहे हैं और हमें निकट भविष्यमें माँग पूरी होनेकी आशा है।

गन्धक और शोरेके तेज़ाब

दूसरा आवश्यकीय रसायन गन्धकका तेज़ाब है। ऐसा कहा जाता है कि किसी देशकी सभ्यताका अनुमान गन्धक के तेज़ाबसे लगाया जा सकता है। गन्धकका तेज़ाब गन्धकसे बनाया जा सकता है। परन्तु यह भारतमें नहीं पाया जाता है। इसके स्थान पर अन्य वस्तुएँ जैसे पायराटीज़ और जिप्सम पाये जाते हैं। जिनसे गन्धकका तेज़ाब बनाया जा सकता है। अन्य आवश्यकीय तेज़ाब नाइट्रिक एसिड है। इससे कई आवश्यकीय युद्ध-सम्बन्धी विस्फोटक पदार्थ बनाये जाते हैं।

यदि सस्ती विद्युत्-शक्ति मिल जावे तो यह अमोनिया द्वारा बनाया जा सकता है। अमोनिया भी हवा और पानी-से सस्ती विद्युत्के पाने पर बनाई जा सकती है। इन रसायनोंके बननेसे अन्य कई विस्फोटक और आवश्यकीय रसायन बन सकते हैं। इस प्रकार भारतके पास उसके रसायन बनानेके उपचार मौजूद हैं। भारतवर्षमें रसायनके व्यवसायका आरम्भ ही नहीं हुआ है। परन्तु रसायन हमारे दिन-रातके साथी हैं। उनकी आवश्यकता बढ़ती ही जा रही है। इसलिये इसके कारख़ाने युद्धके समय खुलना ज़रूरी है।

अभ्रक और अन्य पदार्थ

भारतवर्ष अभ्रक उत्पन्न करनेके लिये प्रधान देश है। भारतका अभ्रक सारे संसारमें सबसे उत्तम समझा जाता है क्योंकि इसके मणिभ पूर्ण पाये जाते हैं। नेलोरकी खदानोंमें तीन गज़से अधिक व्यास वाले मणिभ पाये जाते हैं। यह नेलोर (मद्रास) हज़ारीबाग, गया और मुंगेर ज़िलोंमें तथा अजमेरके पास राजपुतानामें पाया जाता है। प्रति वर्ष लगभग ७,००० टन माल निकाला जाता है। परन्तु यह सबका सब विदेश भेज दिया जाता है। यहाँ ऐसा कोई व्यवसाय नहीं है जिनमें यह प्रयोगमें लाया जा सके। अधिकतर बिजलीका कुछ सामान इससे बनाया जाता है। परन्तु इसके कारख़ाने न होनेके कारण इसका कोई प्रयोग नहीं है। यदि अभ्रक इन बिजलीके सामानोंमें परिवर्तित होकर विदेश जावे तो भारतके लिये निहायत लाभदायक होगा। अन्य युद्धसे सम्बन्ध रखने वाली ताप-रोधक वस्तुएँ हैं। यह धातु काँच मिट्टीके कारख़ाने और बिजली-घरों आदि में प्रयोग की जाती है। भारतमें प्रत्येक तरहकी तापरोधक मौजूद हैं। सिलिमेनाइट जो संसारमें केवल एक-दो स्थानों पर ही है वह भी भारतमें बहुत पाया जाता है। लगभग ७०,००० टन तापरोधक माल प्रतिवर्ष भारत में बनाया जाता है। परन्तु कच्ची दशामें भी बहुतसा माल विदेशोंको भेज दिया जाता है। जिससे बड़ी हानि होती है। भारतवर्षके पास सभी तापरोधक वस्तुएँ मौजूद हैं और उसे किसी अन्य देश पर निर्भर नहीं होना पड़ेगा।

हम क्या करें?

इस तरह हम देखते हैं कि भारतमें सभी तरहका कच्चा माल सुप्त अवस्थामें पहाड़ोंमें पड़ा हुआ है। बहुत-सा मूल्यवान कच्चा माल हमें ज्ञात तक नहीं है। इससे सबसे प्रथम यह बात की जावे कि इनकी भूगर्भ-शास्त्रके विद्वानों द्वारा खोज कराई जावे और यह खोज केवल जाननेके लिये अथवा कच्चा माल बाहर भेजनेके लिये न कराई जावे वरन् व्यवसायिक वस्तुओंमें परिवर्तित कराई जानेके लिये। यह व्यवसाय भारतवासियोंके हाथमें होना चाहिये। केन्द्रीय सरकारके आधीन भूगर्भ-सम्बन्धी विभाग है जिसमें १५ या २० भूगर्भ-शास्त्र के विद्वान् हैं। हमें उनकी खोजकी सूचना तक नहीं मिलती है। परन्तु विदेशी कम्पनियाँ आकर ३० या ३५ वर्षके लिये ठेका ले लेती हैं। यह नीति भविष्यमें अख़्तियार न की जावे। केन्द्रीय सरकारका छोटासा भूगर्भ-विभाग भारत जैसे बड़े देशके लिये पर्याप्त नहीं है। अच्छा तो यह है

कि प्रत्येक प्रान्तीय सरकार जंगलातकी तरह एक छोटा सा विभाग खोल ले। यह विभाग चाहे व्यवसाय-विभागका अङ्ग बना दिया जावे। इससे प्रत्येक प्रान्त अपनी खनिज सम्पत्तिका व्यय ठीक रूपसे करेगा। देशी रियासतोंमें बहुत स्थानोंमें ऐसा विभाग है। दूसरी बात यह होनी चाहिये कि भारतका संरक्षण-विभाग और प्रान्तका व्यावसायिक विभाग मिल कर देशका निर्माण करे।

ऐसा करनेसे प्रान्त अपनी आवश्यकताको दृष्टिकोणमें रख कर व्यवसायका जाल पूरेगा और संरक्षण-विभाग अपनी दृष्टिसे इसे सहायता देगा। इसका फल यह होगा कि शांति-समयके व्यवसाय युद्धके समय युद्ध-संबन्धित वस्तुओंके बनानेमें परिवर्तित किये जा सकते हैं। कुछ कारखाने जैसे एल्यूमीनियम आदि इसी समय खुल जाने चाहिये। परन्तु आज कल उन्हे खोलनेमें व्यय अधिक होगा। यह अधिक व्यय केन्द्रीय सरकारको अपने संरक्षण फंडसे देना चाहिये जिससे कि शांति-कालमें जीवित रह सकें। यदि ऐसा नहीं किया जावेगा तो उनके पासकी कीमत बढ़ जायगी और विदेशी मालके साथ ठहरना कठिन हो जावेगा।

यदि इन तीन बातोंको ध्यानमें रख कर कार्य किया किया जावे तो भारतवर्षमें इस युद्ध-कालमें भी कई युद्ध सम्बन्धित कारखाने खोले जा सकते हैं जो कि केवल भारतकी रक्षा ही नहीं करेंगे वरन् पूर्वमें अंग्रेज़ी सरकारके लिये बड़ी सहायता देंगे। इन तीन बातोंके अतिरिक्त चौथी आवश्यकीय बात यह है कि भारत और ब्रह्मामें एक सुलह हो जानी चाहिये जिससे कि जिन धातुओंमें भारत पीछे है वह ब्रह्मासे मिल सके और ब्रह्माको उसके बदले भारत उसकी ज़रूरतकी चीज़ोंमें मदद करे। भारतवर्षको ब्रह्मा पर और ब्रह्माको भारत पर कई धातुओंके लिये निर्भर होना पड़ेगा। भारतसे ब्रह्माको अलग कर सरकार ने बहुत ही कुठाराघात किया है। उसने कई मसलोंमें दोनोंको शक्तिहीन बनानेका प्रयत्न किया है। परन्तु भारत, ब्रह्मा, और चीनमें युद्ध और शांतिकालीन मैत्री होना आवश्यक है जिससे कि दुख-सुखमें एक दूसरेको सहायता कर सकें। ब्रह्मासे चीन तक सड़क है और बेहतर यह होता है कि भारत और ब्रह्मामें भी रेल और सड़क कायम हो जावे। यदि ऐसा कर दिया जावे तो हमारे पास किसी खनिजकी किसी समय कमी नहीं हो सकती है और हम अपने शत्रुका मुकाबिला व्यवसायिक उन्नतिके बाद किसी समय कर सकते हैं।

जब हम सोते हैं*

[लेखक—श्री रमेशचन्द्र शर्मा]

प्रायः लोगोंके मस्तिष्कमें इस तरहके विचार उठते हैं कि उन्हें कितनी देर सोना चाहिए और अगर नींद न आती हो तो क्या करें। इस तरहके प्रश्नोंका उत्तर देनेके लिए हमें स्वभावतः ही यह सोचना पड़ता है कि आखिर निद्रा है क्या, इसमें और साधारण विश्राममें क्या अन्तर है तथा एक अत्यन्त रहस्यमय वस्तु होते हुए भी यह इतनी आनंद-दायक क्यों है।

कविगण प्रायः निद्राकी मृत्युसे तथा मृत्युकी निद्रासे तुलना किया करते हैं, परन्तु क्या वे वास्तवमें तुलनाके योग्य हैं भी। यदि ध्यानसे देखा जाय तो उनमें पृथ्वी और आकाशका अन्तर है। यदि कवियोंकी कलात्मक दृष्टि से भी देखा जाय तो निद्रावस्थामें एक कुरूपा भी सुन्दरी मालूम पड़ने लगती है। चेहरे पर एक मधुर शांति क्रीड़ा करने लगती है। परन्तु दूसरी तरफ मृत्युमें क्या अवस्था होती है, शायद लिखना ही व्यर्थ है। वैज्ञानिक दृष्टिसे भी देखा जाय तो दोनोंमें बड़ा अन्तर दिखलाई पड़ेगा। यद्यपि निद्रा और मृत्यु दोनों ही अवस्थाओंमें वाह्य रूपसे शरीर बिलकुल शान्त मालूम पड़ता है, परन्तु क्या निद्रामें शरीरके आन्तरिक अंग भी शांत हो जाते हैं? फेफड़े उसी तरहसे साँस लेते रहते हैं, हृदय वैसे ही धड़कता रहता है, खून वैसे ही दौड़ता रहता है। हाँ उनकी गतिमें अवश्य अन्तर आ जाता है, परन्तु इसके यह अर्थ नहीं कि वे बिलकुल शान्त हो चुके हैं, जैसा कि मृतावस्थामें होता है। मरनेके बाद शरीर काठके समान कड़ा हो जाता है,

---

* सर ई० रे० लैंकास्टरके एक अंगरेजी लेखके आधार पर।

परन्तु सोते समय वह उसी प्रकार कोमल बना रहता है जैसा कि जागते समय।

दिन भर परिश्रम करनेके बाद प्रत्येक प्राणीको आराम करनेकी जरूरत पड़ती है। यही कारण है कि शाम होते ही हर जानवर बसेरा लेनेकी तैयारी करने लगता है। दिन भर सूर्यकी रोशनीमें हवासे कारबन डाई ऑक्साइड और पृथ्वीसे जल लेकर प्रायः समस्त वनस्पति-जगत् अनेक भोज्य पदार्थ बनाते रहते हैं (प्रकाश-संश्लेषण), परन्तु शाम होते ही वे अपनी क्रियाएँ बन्द कर शांत पड़ जाते हैं। यह भी एक प्रकारकी निद्रा ही है। परन्तु प्रकृतिका यह नियम भी अपवाद-रहित नहीं है। जब रातमें समस्त प्राणी नींदकी सुखद साँसें लेते हैं, दो प्रकारके प्राणी—

(१) शिकारी जो रातमें अपना शिकार ढूँढ़ते हैं।

(२) भीरु जो दिनमें निकलनेका साहस नहीं कर पाते। अपने भोजनकी तलाशमें घूमते-फिरते हैं।

साधारणतः "निद्रा" शब्दसे एक गम्भीर शान्ति तथा विश्रामकी अवस्थाका बोध होता है, जो कि प्रायः सभी प्राणियोंमें पाई जाती है। परन्तु फिर भी मनुष्य तथा अन्य उन्नत प्राणियों तथा निम्न श्रेणीके प्राणियों तथा पेड़ोंकी नींदमें बड़ा अन्तर है। प्रायः सभी उन्नत प्राणी सोते समय अपने पलक बन्द कर, लेटकर आराम करते हैं। परंतु अब प्रश्न यह उठता है कि क्या पलक-विहीन तथा सदा जलमें तैरने वाली मछलियाँ भी सो सकती हैं। अनेक प्रयोगोंके बाद वैज्ञानिक इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि मछलियाँ भी रातमें सोती हैं। अधिकतर मछलियाँ रात होते ही धरातल पर पहुँच जाती हैं और इस समय उनमें उतनी चेतना नहीं रहती जितनी कि दिनमें। दीर्घकाय प्राणी, भी जैसे कि हाथी, प्रायः लेटते नहीं, बल्कि खड़े-खड़े ही अपनी नींद पूरी कर लेते हैं। निम्न श्रेणीके जीवोंमें नींद लेनेका कोई विशेष ढङ्ग नहीं होता, बल्कि निद्रामें केवल उनके कार्यों की गति बहुत धीमी पड़ जाती है। फूलकी पंखड़ियोंका बन्द हो जाना, फूलकी शाखाका नीचे झुक जाना, पत्तियोंका झुक जाना या मुरझा जाना इत्यादि पेड़ोंकी निद्राके द्योतक हैं, परन्तु यदि वास्तवमें देखा जाय तो यह मनुष्योंकी निद्रासे बहुत भिन्न है। हाँ, किसी हद तक रात में पेड़ोंकी भोज्य पदार्थ बनानेकी क्रिया (प्रकाश-संश्लेषण) का बन्द हो जाना, जीवोंकी नींदके समान है।

निद्रावस्थामें मस्तिष्ककी भी अवस्था बदल जाती है। नींदकी गहराईके अनुसार धीरे-धीरे ज्ञानेन्द्रियाँ भी बेकार होने लगती हैं (परन्तु यह नहीं कि वे अपना काम करना बिलकुल ही बन्द कर दें)। यही कारण है कि गहरी निद्रामें किसी मनुष्यको जगाना बड़ा कठिन हो जाता है, क्योंकि उस अवस्थामें ज्ञानेन्द्रियोंके लिए जगानेके प्रयत्नोंका अनुभव कर उनके मस्तिष्कके पास पहुँचाकर और फिर उसके अनुसार कार्य कराना (जगाना) बहुत कठिन होता है।

गहरी नींद एक दम नहीं आती। यह कभी नहीं होता कि अभी तो आप बिलकुल चैतन्य है और अभी एक दम प्रगाढ़ निद्रामें लीन हो जायँ। नींद धीरे-धीरे आती है और फिर वह धीरे-धीरे गहरी होती जाती है। इसके बाद नींद पूरी होने पर चैतन्यता भी धीरे-धीरे ही आती है। इसी बीच अर्धनिद्रावस्थामें ही साधारणतः मनुष्यको स्वप्न दिखलाई पड़ते हैं, क्योंकि इस समय मस्तिष्कमें कार्य करनेकी थोड़ी बहुत शक्ति बाकी रहती है। गहरी नींद में तो वह एक तरहसे बिलकुल बेकार हो ही जाता है।

शायद यहाँ पर स्वप्नोंके बारेमें कुछ कह देना अनुपयुक्त न होगा। इस बातका तो उल्लेख हो ही चुका है कि साधारणतः स्वप्न कब दिखाई पड़ते हैं। अब हमें यह और देखना है कि आखिर स्वप्न दिखाई क्यों पड़ते हैं, तथा उनका क्या महत्व है।

स्वप्नोंकी उत्पत्तिके अनुसार वे दो प्रकारके हो सकते हैं- स्वप्रेरित और परप्रेरित। **स्वप्रेरित स्वप्न** वे हैं जो अपनी ही प्रेरणासे दिखाई दें। दूसरे शब्दोंमें मनुष्य दिन भर जिस प्रकारकी चिन्ताओं और कल्पनाओंमें लीन रहता है वे विचार सोते समय भी उसके मस्तिष्कमें घूमा करते हैं और तब फिर वे स्वप्नोंके रूपमें आते हैं। इस प्रकारके स्वप्नोंका कोई विशेष महत्व नहीं हो सकता क्योंकि जैसा मनुष्य दिन भर सोचेगा वैसा ही सपनोंमें देखेगा। दूसरी तरफ **परप्रेरित स्वप्न** किसी दूसरे दैविक अथवा भौतिक कारणकी प्रेरणासे दिखाई पड़ते हैं। इन स्वप्नोंका अपना एक विशेष महत्व है, क्योंकि अच्छी तरहसे अगर समझे जायँ तो ये हमें भूत, भविष्य और वर्तमानकी अनेक बातें

बतला सकते हैं। ये ही वे स्वप्न हैं जिनके कारण बहुतों-को स्वप्नोंके प्रति चाहे वह जिस प्रकारके हों—बड़ा विश्वास जमा हुआ है। अब प्रश्न यह उठना है कि ये स्वप्न दूसरे-को प्रेरणासे कैसे दिखलाई पड़ते हैं। कहा यह जाता है कि मस्तिष्कसे सदा एक प्रकारकी विद्युत्-तरंगे उठा करती हैं जो बेतार या वायर्लेसकी शब्द-तरंगोंके समान सारे विश्वमें फैल जाती हैं। जिस तरहसे हम अपने "रेडिओ-सेट" की सूई घुमा फिरा कर मनचाही शब्द-तरंग पकड़ सकते है, उसी प्रकार मस्तिष्ककी तरंगें भी केवल एक विशेष व्यक्ति के मस्तिष्क पर, जिससे कि वे सम्बन्ध रखती हैं, प्रभाव डाल सकती हैं और फिर इस प्रभावके ही कारण पर-प्रेरित स्वप्न दिखलाई पड़ते हैं। उदाहरणतः; मान लीजिये आपको कोई बहुत प्रेम करता है, परन्तु आपको नहीं मालूम नहीं है। वह सदा आपके ही बारेमें चिन्तन करता रहता है। ऐसी अवस्थामें उसके मस्तिष्कसे एक विशेष प्रकारकी तरंगें उठेंगी जो केवल आप ही प्रभाव डाल सकेंगी और आपको उसके बारेमें (चाहे आप उसके बारेमें कभी भी न सोचते हो) स्वप्न दिखलाई पड़ेंगे। इन दो प्रकारके स्वप्नोंके अलावा कितने ही स्वप्न शरीर तथा मस्तिष्कके अनेक विकारोंके कारण दिखलाई पड़ते हैं, और इसलिए उनका भी कोई विशेष महत्व नहीं हो सकता है।

अब हम फिर निद्रा पर आते हैं क्योंकि इस समय यही हमारा मुख्य विषय है।

निद्रावस्थामें अनेक वैज्ञानिकोंके अनुसार मस्तिष्क कुछ पीला-सा पड़ जाता है, क्योंकि सोते समय रक्त-नाड़ियाँ कुछ सिकुड़ जाती हैं जिससे खूनकी रसदमें कमी पड़ जाती है। शायद यही कारण है कि निद्रावस्थामें मस्तिष्क क्रिया-हीन हो जाता है। अब दूसरा प्रश्न यह उठता है कि आखिर ये रक्त-नाड़ियाँ क्यों सिकुड़ जाती हैं। शायद इसका कारण यह है कि दिन भरके कार्योंके कारण मस्तिष्क में (जैसा कि हमें मांसपेशियोंके बारेमें निश्चयात्मक रूपसे मालूम है) कुछ विकार उत्पन्न हो जाते हैं और फिर उनके कारण रक्त-प्रवाहमें बाधा पड़ती है। यह भी सम्भव है कि दिन भरकी मेहनतके कारण शरीरके अनेक अंगोंमें जमा पकी हुई ऑक्सीजन समाप्त हो जाती है और इसलिये शरीरमें एक प्रकारकी उदासीनता आ जाती है। जो शायद निद्राका भी कारण होती है। इस उदासीनता को अँधेरेसे, आँखे बन्द कर लेनेसे, कपड़े उतार देनेसे तथा मस्तिष्कको सब विचारोंसे हटा लेनेसे और भी उत्ते-जना मिलती है और यही कारण है कि इन अवस्थाओंमें हमें साधारणतः अच्छी तरहसे नींद आती है। अधिक कल्पना शील तथा मस्तिष्कसे अत्यधिक कार्य लेने वाले प्रायः अपने मस्तिष्कको विचारोंसे अलग नहीं कर पाते हैं। इसलिये उन्हें नींद भी आसानीसे नहीं आती और वे घंटों चारपाई पर इधरसे उधर करवटें बदलते रहते हैं। शरीरके अनेक विचारोंके कारण भी अनिद्राका रोग हो सकता है। निद्रा-वस्थामें शरीरमें फिरसे ऑक्सीजन जमा हो जाती है और मनुष्य फिर कार्य करने योग्य हो जाता है।

यह तो साधारण प्रकारकी निद्रा हुई। अब हमें कुछ असाधारण और विचित्र निद्राओं पर विचार करना है। सरलताके कारण, क्योंकि शायद हिन्दीमें उनके लिये प्रच-लित नाम नहीं है, हम उनके अंग्रेजी नाम ही देंगे।

मादक निद्रा (tonic sleep)—यह प्रायः शराब, क्लोरोफार्म, अफीम इत्यादि चीज़ोंके लेनेसे आती है।

कोमा—यह भी एक प्रकारकी गहरी नींद है। जिसमें साँस ज़ोरोंसे चलती है तथा मनुष्य अचेतसा हो जाता है।

समाधि (trance) इसमें समाधिकी-सी अवस्था हो जाती है। उदाहरणके लिये प्रेमियोंके मिलनेके आनन्दमें विह्वल हो समाधिस्थ हो जाना।

इन तीनों अवस्थाओंमें मस्तिष्ककी क्या अवस्था होती है, इसे बतलाना ज़रा कठिन है।

सोते-सोते घूमना (somnambulism)—यह भी एक विचित्र प्रकारकी निद्रा है, जिसमें मनुष्य सोते ही सोते घूमता-फिरता है, तथा अन्य अनेक काम करता फिरता है, यद्यपि सोने वाले मनुष्यको नहीं मालूम पड़ता। यद्यपि इसके ऐसे अनेक उदाहरण है, जो कि साधारण जनतामें काफी प्रचलित हैं, फिर भी विषयके उदाहरण स्वरूप तथा पाठकोंके मनोरञ्जनार्थ दो एक उदा-हरण देना शायद अनाधिकार चेष्टा न होगी। एक सज्जन रोज रातको सो जानेके बाद बाद करीब ११ बजे उठते और एक बगलकी दुकान पर जाकर मलाई, रबड़ी तथा अन्य मिठाइयाँ खा आते और फिर आकर सो जाते यद्यपि

इन्हें इसकी बिलकुल याद न रहती। दुकानदार जान पहचानका था, इसलिये महीने भर तो कुछ न बोला। आखिर एक दिन वह अपना हिसाब माँग ही तो बैठा। इस पर उन महोदयने बिलकुल इनकार कर दिया कि उन्होंने कभी उसके यहाँ कुछ लिया ही नहीं। वास्तवमें वे दोषी नहीं थे क्योंकि उनको कुछ याद तो रहता नहीं था। अन्तमें दुकानदारने उनके बड़े भाईको सब हाल बतलाया और साथ-साथ यह भी कह दिया कि यदि विश्वास न हो तो किसी भी रात आकर देख लें। आखिर उनके भाई आये और और हुआ वही जिसकी आशा थी। छोटे भाई रातमें आये, और खाया पिया और फिर जाकर सो गये। एक किस्सा और सुनिये जो इससे बिलकुल उल्टा है। एक सज्जन सिगरेटके बड़े शौकीन, या आदी कहिये, थे। बिना सिगरेटके वे थोड़ी देर भी न रह सकते थे। किस्मतसे उन्हें रातको काम करना पड़ता था। अस्तु, वे प्रायः रातमें एक बगल की सिगरेटवालेकी दूकान पर जाते, उसे आवाज देते और सिगरेट ले लेते। थोड़े दिनोंमें वह दुकानदार कुछ ऐसा आदी पड़ गया कि वह उनके पैरोंकी अवाज सुनते ही सोते ही सोते अपना हाथ दुकानकी खिड़कीमेंसे बाहर निकालकर सिगरेट दे देता और फिर वैसे ही सो जाता। अब रोज-रोज ही यह होने लगा। आखिर यह एक दिन बाबू साहबने उसके दाम देने चाहे तो उसने लेनेसे इनकार किया और कहा कि उसे ज़रा भी इस बातका ख्याल नहीं है कि उसने उनको सिगरेट दी है।

कहनेका तात्पर्य यह है कि यद्यपि मनुष्य सो जाता है, परन्तु फिर भी वह अनजानेमें अनेक कार्य करता रहता है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि इसमें मस्तिष्कका केवल एक भाग निद्रावस्थामें होता है तथा अन्य भाग अपने कार्य करते रहते हैं।

(५) मोहक निद्रा (hypnotic or mesmeric sleep) शायद इस विषयमें ज़्यादा कहना व्यर्थ है। केवल इतना ही कह देना काफी होगा कि सोमनामबुलिज़्मका दौरा अपने आप एक दमसे आता है, परन्तु मोहक निद्रा मेस्मेरिज़्म करनेवालेकी प्रेरणासे धीरे-धीरे। इस अवस्थामें मनुष्यकी ज्ञानेन्द्रियाँ बहुत तीक्ष्ण हो जाती हैं, परन्तु इस बातका अभी विश्वसनीय प्रमाण नहीं मिला है कि मस्तिष्क ज्ञानेन्द्रियोंके अलावा किसी और भी चीज़से सम्बन्धित किया जा सकता है।

(६) दिवः-स्वप्न (day-dreaming और reverie)—यह भी मोहक निद्रा से मिलती-जुलती अवस्था है। ऐसा समझा जाता है कि इस अवस्थामें मस्तिष्क अनायास ही कार्य करता है।

(७) ऋतुनिद्रा (hibernation)— जाड़ेके दिनोंमें बहुतसे जानवर जैसे कि मेंढक, बर्फीली लोमड़ी इत्यादि जाड़ेसे बचनेके लिये किसी सुरक्षित स्थानमें जाड़े भर सोते रहते हैं और कुछ गर्मी पड़ने पर ही बाहर निकलते हैं। इस जाड़ेकी लम्बी नींदको अंग्रेज़ीमें ऋतुनिद्रा कहते हैं। सिवाय अवधिकी लम्बाईके यह निद्रा भी साधारण निद्राके समान है। इस लम्बी अवधिका कारण जाड़ा है, क्योंकि प्रयोग करके यह देखा गया है कि गरमीके दिनोंमें भी अप्राकृतिक ठंडकके द्वारा ये जानवर ऋतुनिद्रा की अवस्थामें लाये जा सकते हैं, तथा अप्राकृतिक गरमीके द्वारा वे ऋतु-निद्रासे चाहे जब जगाये जा सकते हैं। इस अवस्थामें प्राणिओंकी जीवन-क्रिया पूर्व-संचित चर्बीसे चलती-रहती है। यही कारण है कि ऋतु-निद्रासे जगनेके बाद वे बहुत दुबले-पतले दिखलाई पड़ते हैं।

उत्तरके अत्यन्त ठंढे प्रदेशोंमें इससे मिलती-जुलती अवस्था मनुष्योंमें भी मिलती है। वहाँ पर लगभग छः महीनेका दिन तथा छः महीनेकी रात होती है, जिसके कारण वहाँके मनुष्य इस बातके आदी हो गये हैं कि वे लगातार कई दिन तक जागते अथवा सोते रह सकते हैं। इससे हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि किसीके लिए सोनेकी अवधि नियत करना – अर्थात् यह कहना कि किसी मनुष्यको किसी अवस्थामें कितना सोना चाहिये—अप्राकृतिक है। सोनेकी अवधि तो इस बात पर निर्भर करती है कि आप किन अवस्थाओंमें अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं, आप दिन भरमें कितना परिश्रम करते हैं, तथा सोते समय आप कितनी शान्तिसे सोते हैं।

अन्तमें हम उस अवस्था पर आते हैं, जिसमें कुछ प्राणी निद्रासे भी एक कदम आगे बढ़ जाते हैं। इसको हम चाहें तो स्थगित जीवन (suspended

animation) कह सकते हैं। उदाहरणतः अनेक छोटे-मोटे जीव (अमीबा, पैरामोशियम इत्यादि) पानीमें तो बड़े आनन्दसे रहते हैं, परन्तु यदि पानी सूख जाय तो वे केवल धूलके कणसे ही मालूम पड़ते हैं। यदि अब उन्हें दोबारा पानी मिल जाय तो कुछ घंटोंके अन्दर वे फिर अपनी साधारण अवस्थामें आ जाते हैं। इस स्थिति तथा और सब प्रकारकी निद्राओंमें एक बहुत बड़ा अन्तर यह है कि इसमें जीवनके सब कार्य रुक जाते हैं यद्यपि उनकी मृत्यु नहीं होती और समय आने पर वे फिर साधारण अवस्थामें आ जाते हैं। दूसरी तरफ सब प्रकारकी निद्राओंमें जीवनकी गति चाहे जितनी धीमी पड़ जाय परन्तु बिलकुल बन्द कदापि नहीं होती। साँस चलती रहती है, हृदय धड़कता ही रहता है, खून दौड़ता ही रहता है। शायद हमारे योगियोंकी समाधि भी इसी श्रेणी में आ जाती है।

इस प्रकार अन्तमें हम निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि निद्रा एक विश्रामकी अवस्था है जो सब प्राणियोंमें पाई जाती है, तथा जिसका कारण कार्य-शील दिनके बाद शांत संध्याका आगमन है। इसमें शरीर तथा मस्तिष्क पूर्णतः या अपूर्णतः एक शान्त अवस्थामें रहते हैं। साधारणतः दिन और रात या ऋतुओंके कारण नींदकी भी आवर्त्त गति हो गई है।

वनस्पतियोंका जीवन-संग्राम तथा उनकी रचनाकी प्राकृतिक अनुकूलता

[ले०—डा० सन्तप्रसाद टंडन]

इस विस्तीर्ण जगत्में अगणित प्रकारकी वनस्पतियाँ फैली हुई हैं। स्थान तथा जलवायुकी भिन्नताके साथ-साथ प्रत्येक स्थानमें पेड़ भी भिन्न-भिन्न प्रकारके होते हैं। यदि आपने कभी भिन्न-भिन्न परिस्थितियोंमें रहने वाले पेड़ोंके रूप और उनकी रचना पर कुछ ध्यान दिया होगा तो आपको यह जानकर अवश्य आश्चर्य हुआ होगा कि उनके रूप तथा संगठनमें परस्पर कितना अन्तर है। किन्तु अधिकतर लोगोंके लिये तो यह बहुत ही साधारण बात होगी क्योंकि इन भिन्न प्रकारके पेड़ोंको प्रतिदिन देखते रहनेके कारण उनके पारस्परिक अन्तर उन्हें इतने अधिक परिचित से मालूम देने लगते हैं कि उनको कभी यह मान नहीं होता कि इन अन्तरोंके भीतर कोई गूढ़ रहस्य छिपा हुआ है। वास्तवमें क्या यह एक विशेष आश्चर्यकी बात नहीं है कि हम पेड़ोंके इतना अधिक समीप रहने पर भी उनकी एक बड़ी शक्तिसे, जिसके द्वारा वे अपने रूपोंका संगठन परिस्थितियोंके अनुकूल बनाते हैं, अपरिचित रहें? आइये, हम यहाँ आपको पेड़ोंकी इस रहस्यमयी शक्तिसे कुछ थोड़ा परिचय करायें।

हमारी भाँति पेड़ोंमें भी जीवन-शक्ति है इस बातको पाठकोंको समझानेकी मुझे विशेष आवश्यकता नहीं जान पड़ती क्योंकि एक बच्चा भी जिसने पेड़ोंको बीजोंसे उत्पन्न होते, बढ़ते तथा फूलते-फलते देखा होगा इस बातमें संदेह नहीं कर सकता। जिस प्रकार जन्तुओंमें बच्चे उत्पन्न होते हैं, वृद्धि करते हैं और पुनः अपनी जातिके बच्चोंको जन्म देते हैं उसी प्रकार पेड़ भी बीजसे उत्पन्न होते हैं, वृद्धि करते हैं और फिर स्वयं फूलों और बीजोंको पैदा करते हैं। अतः पेड़ोंमें जीवनकी इन आधारभूत क्रियाओंका होना इस बातको पूर्ण रूपसे सिद्ध करता है कि उनमें भी जीवन है।

प्रत्येक जीवको चाहे वह जन्तु हो या वनस्पति अपने जीवनसे मोह रहता है और वह सदा ही यह चाहता है कि इस संसारमें वह अधिक-से-अधिक दिन तक जीवित रह सके। जीवोंमें इस प्राकृतिक इच्छाका होना जीव-जगत्की सृष्टिके लिए एक बहुत ही आवश्यक बात है। जीव-वैज्ञानिकोंका यह विश्वास है कि सृष्टिकी आदिकी प्राथमिक अवस्थासे वर्तमान अवस्था तक जीवोंके विकासमें इस इच्छाका एक विशेष हाथ रहा है। जीव-वैज्ञानिक इस विश्वास पर किस प्रकार पहुँचे, इस बातको समझनेके लिए थोड़ा इस विषयके भीतर घुसकर यह मालूम करनेकी आवश्यकता है कि इस इच्छाका प्रभाव जीवोंके कार्यों पर किस प्रकार पड़ता है, अथवा दूसरे शब्दोंमें यह इच्छा उनके कार्योंको किस प्रकारसे नियन्त्रित करती है।

यदि हम किसी प्रकारकी इच्छा मनमें करते हैं और साथ ही उसकी पूर्ति चाहते हैं तो साधारण रीतिसे हमें उसके लिए कुछ थोड़ा-बहुत प्रयत्न भी करना पड़ता है। उसी प्रकार जब हम यह मानते हैं कि प्रत्येक जीव इस संसारमें अपने जीवनको लम्बा-से-लम्बा बनाना चाहता है तो यह स्वाभाविक है कि वह इसके लिए कुछ प्रयत्न भी करेगा। जीवनको लम्बा और अधिक स्थायी बनानेके लिए जीवनकी आवश्यकताओंकी पूर्ति करना सबसे पहला कर्तव्य है। जीवनकी इन आवश्यकताओंमें भोजन, स्वच्छ वायु तथा रहनेका स्थान ये तीन विशेष महत्वके हैं। अतः अपनी आवश्यकतानुसार इन तीन चीज़ोंको प्राप्तिके लिए जीव सबसे पहले प्रयत्न करता है। मान लीजिए कि किसी एक सीमित स्थानमें रहने वाले कुछ जन्तु हैं। उस स्थान-में मौजूद भोजनकी सामग्री इतनी नहीं है कि वहाँके सारे जन्तुओंकी आवश्यकता उनसे पूरी हो सके। इस स्थितिमें वहाँके जीव दो ही बातें कर सकते हैं। पहली यह कि वहाँके सीमित भोजनको सब आपसमें बराबर-बराबर बाँट कर खायें और दूसरी यह कि कुछ तो पेट भर कर भोजन करें और बाकी एकदम भूखों रहें। पहली दशामें सारे जन्तुओंको आधा या चौथाई पेट भोजन मिलेगा जिसके फलस्वरूप वे कुछ दिनों तक कमज़ोरीकी हालतमें जीवन बिताकर थोड़ी उम्रमें ही मर जायँगे। दूसरी दशामें वे जन्तु, जिन्हें पूरा भोजन मिल रहा है, मज़बूत बने रहेंगे और लम्बी उम्र तक जीवित रह सकेंगे किन्तु वे, जिन्हें बिल्कुल भोजन नहीं मिला है, बहुत शीघ्र ही मर जायँगे। अब आप सोचिये कि ऊपरकी बतलाई हुई दोनों दशाओंमें-से कौन-सी दशा अधिक संभावनीय है। क्या सब जन्तु एक साथ अतृप्तिका जीवन बिताकर जल्दी ही अपने जीव-नको समाप्त कर देंगे या उनमेंसे कुछ ज़बरदस्ती स्वयं भोजन छीनकर खा जायँगे और बाकी जन्तुओंको भूखों मरनेके लिए छोड़ देंगे? यदि हम इस बातकी सत्यता स्वीकार करते हैं कि अपने जीवनको अधिक-से-अधिक स्थायित्व देनेकी इच्छा जीव मात्रमें एक बड़ी बलवती इच्छा है तो यह बात एकदम असम्भव मालूम देती है कि प्रत्येक जीव संतोषपूर्वक त्यागकी भावनासे अपनेको भूखा रखने के लिए छोड़ दे। संभावना इसी बातकी अधिक है कि प्रत्येक जीव भरसक यह प्रयत्न करे कि उसे अधिक-से अधिक भोजन मिल जाय। अतः ऐसी दशामें उस स्थानके सारे जीव आपसमें भोजनके लिए लड़ेंगे और अन्तमें उनमें-से जो अपने पराक्रम तथा अन्य गुणोंके कारण विजय प्राप्त करेंगे वे अपनी पूरी आवश्यकताके भोजन पर अधिकार जमा लेंगे और बाकी कमज़ोर जन्तु जो हार गये हैं बिना भोजनके मर जायँगे। इस प्रकार उस स्थानकी परिस्थितिके अनुसार जिन जन्तुओंने अपनेको बलशाली सिद्ध किया वे तो बच रहे बाकी सब नष्ट हो गये। जीव-वैज्ञानिकोंकी भाषामें इस परस्परके होड़को जीवन-संग्राम (struggle for existence) नाम दिया है। जीव-जगत्का सबसे ऊँचा प्राणी मनुष्य भी इस प्राकृतिक नियमके बाहर नहीं है। पुराने ऐतिहासिक कालसे बराबर अब तक एक जाति दूसरी जाति पर आधिपत्य जमानेके लिए भयानक-से-भया-नक लड़ाई लड़ती आ रही है। आज भी यूरोपमें जर्मनी और अंगरेज़ोंके बीच युद्ध छिड़ा हुआ है जिसके बहुत भया-नक रूप ले लेनेकी संभावना मालूम पड़ती है। ये सब लड़ाइयाँ भोजन तथा अपनी अन्य आवश्यकताओंकी प्राप्ति के लिए ही होती हैं और मनुष्योंमें इस जीवन-संग्रामकी विद्यमानता सिद्ध करती है। ऊपरके उदाहरणमें हमने जन्तुओंको लेकर यह बात समझाई है किन्तु वनस्पतियोंमें भी पूर्णरूपसे ये ही बातें लागू होती हैं।

आरम्भमें हमने इस बातका ज़िक्र किया है कि अपने जीवनको अधिक-से-अधिक स्थायित्व देनेकी जीवोंकी इच्छा उनके विकासमें सहायक रही है। इस इच्छाके फलस्वरूप जीव-जगत्में व्याप्त जीवन-संग्रामका अस्तित्व ऊपर हमने सिद्ध किया है। अब हम इस बातको समझानेका प्रयत्न करेंगे कि इस जीवन-संग्रामसे जीवोंके विकासमें कैसे सहा-यता मिलती है। ऊपरके उदाहरणमें हमने यह देखा कि भोजनकी कमी होने पर जन्तु परस्पर लड़े और इस लड़ाईमें उनमेंसे जो अधिक मज़बूत तथा चतुर थे वे तो बच रहे किन्तु बाकी सब मर गये। जो जन्तु बच गये हैं उन्हें भी जीवनकी कठिन परिस्थितियोंका अनुभव अवश्य हो गया है क्योंकि वे यह बात भली-भाँति जानते हैं कि उनका जीवन संग्रामसे जीवित निकल आना केवल पराक्रम तथा अन्य अच्छे गुणोंका परिणाम है। अतः इस अनुभवके

बाद स्वभावतः वे अपने भविष्य जीवनमें सदा ही इस बातका प्रयत्न करते रहेंगे कि वे और भी अधिक पराक्रम और ऐसे नये गुणोंको प्राप्त कर लें जिससे उन्हें आगे आने वाली अन्य कठिन परिस्थितियोंमें भी पुनः बहुत आसानीसे विजय प्राप्त हो सके। इन प्रयत्नोंके फलस्वरूप उनमें बहुतसे नये गुणोंका समावेश हो जायगा। वैज्ञानिक रूपसे यह बात सिद्ध की जा चुकी है कि बच्चोंमें माँ-बापके गुण पहुँचते हैं। अतः इन जन्तुओंके बच्चोंमें उनके नये गुण मौजूद रहेंगे। इस प्रकार ये बच्चे अपने माँ-बापकी अपेक्षा अधिक गुण वाले रहेंगे और अपनी प्राकृतिक परिस्थितियों-का सामना अधिक अच्छी तरह कर सकेंगे। बड़े होने पर उन्हें भी जीवन-संग्राममें मुठभेड़ लेनी पड़ेगी। उस समय इनमें भी जो अपनेको अधिक योग्य और पराक्रमी सिद्ध कर सकेंगे वे ही ज़िन्दा बच पायेंगे। बचे हुये पुनः अपनेको सुरक्षित रखनेके लिए अपने गुणोंको बढ़ानेका प्रयत्न करेंगे। इन सब गुणोंका फिर इनके बच्चोंमें आयगा। पुश्त-दर-पुश्त इस प्रकारकी क्रिया बराबर होती रहनेके कारण प्रत्येक जातिके जीव धीरे-धीरे आकार-प्रकारमें अपने पूर्वजोंसे बदलते जाते हैं और फिर बहुत समयके बीत जाने पर उनमें इतने अधिक अन्तर आ जाते हैं कि वे अपने पूर्वजोंकी अपेक्षा एक भिन्न जातिके जीव मालूम देने लगते हैं। यही जीव-जगत्का विकास है और इसीके द्वारा संसारमें जीवोंकी विभिन्न जातियाँ उत्पन्न हुई समझी जाती हैं।

जीवन-संग्राम वनस्पति-जगत्में भी उसी प्रकार फैला हुआ है जैसा कि जन्तु-जगतमें। इसीलिए वनस्पतियाँ भी अपनेको परिस्थितियोंके उपयुक्त बनानेके लिए तरह-तरहके आकार-प्रकार धारण करतीं हैं। साधारण फूलों वाले पेड़ ज़मीन पर उगते हैं और जड़ों द्वारा मिट्टीसे पानी तथा खनिज द्रव्य प्राप्त करते हैं और पत्तियों द्वारा वायु-मण्डल से कर्बन द्वि-ओषिद् गैस। इस प्रकारके पेड़ उन सब स्थानोंमें जहाँ हवा, पानी, प्रकाश तथा तापक्रम आदिकी अनुकूलता रहती है बहुतायतसे उगते हैं। इनके बीज भी संख्यामें बहुतसे पैदा होते हैं जो आस-पास जमकर नये पेड़ोंको जन्म देते हैं। बीजोंके बराबर बहुतायतसे पैदा होते रहनेके तथा नये पेड़ोंको जन्म देते रहनेके कारण कुछ समय बाद किसी एक स्थानमें पेड़ बहुत घने हो जाते हैं और तब उन्हें जगह, वायु, प्रकाश आदिकी कमी मालूम पड़ने लगती है। इस दशामें उनमें जीवन-संग्रामका प्रारंभ होता है, और इस संग्राममें जो अधिक शक्तिशाली सिद्ध होते हैं वे तो बच रहते हैं और बाकी सब मर जाते हैं। किसी बागमें संभव है आपने यह देखा हो कि जब किसी एक पौधेके चारों ओर घास उगने लगती है तब उस पौधे की बाढ़ मारी जाती है। बागवानीसे शौक रखने वाले यह भली भाँति जानते हैं कि जब पेड़ बहुत पास-पास उगते हैं तब उन सबकी बाढ़ कम होती है। यह सब जीवन-संग्रामका ही परिणाम है। इस जीवन-संग्राममें सफलता प्राप्त करनेके लिए पेड़ भिन्न-भिन्न रीतियोंसे अपनेको परिस्थितियोंके अनुकूल करते हैं। कुछ तापक्रमके लिए विशेष अनुकूलता प्राप्त करते हैं, कुछ उस स्थानकी पानी-की स्थितिके अनुसार अपने अनुकूल कर लेते हैं तथा अपने बीजोंको दूर-दूर तक छितराकर ऐसे स्थानोंमें भेज देते हैं जहाँ उन्हें सुविधापूर्वक जीवनकी आवश्यकतायें मिल सकें और वे एक ही स्थानमें जमवट न लगा सकें। कुछ पेड़ ऐसे भी होते हैं जो खुले स्थानोंमें अन्य पेड़ोंका मुकाबला न कर सकनेके कारण ऐसे विशेष एकान्त स्थानोंमें उगने लगते हैं जहाँ उन्हें दूसरोंके मुकाबलेका अधिक डर नहीं रहता। वे उस स्थानके अनुसार अपने रूप तथा आकारमें परिवर्तन कर अपनेको वहाँके जीवनके लिए उपयुक्त कर लेते हैं। उदाहरणार्थ कुछ पेड़ समुद्रके किनारेके रेतीले स्थानोंमें उगने लगते हैं। साधारण पेड़ोंके लिए समुद्रके किनारेका स्थान उपयुक्त नहीं है क्योंकि वहाँकी मिट्टीमें नमक बहुत रहता है जो अधिकतर पेड़ोंके लिए हानिप्रद रहता है। जो पेड़ वहाँ उगते हैं वे अपनेको नमकके हानिकारक प्रभा-वोंसे बचानेके योग्य कर लेते हैं। कुछ पेड़ दलदल या पानी के जीवनके उपयुक्त अपनेको बना लेते हैं और उसी के अनुसार अपने रूप आदिमें परिवर्तन कर लेते हैं। कुछ, जिन्हें अन्य बड़े पेड़ोंके मुकाबलेमें मिट्टीसे भोजन-सामग्री नहीं मिल पाती, अपने परोपजीवोंके जीवनके उपयुक्त कर लेते हैं और दूसरे पेड़ोंके ऊपर-ऊपर उगते हैं और उनके भोजनमें हिस्सा बँटाते हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि बीज पैदा करने वाले सारे पेड़ पहले साधारण ज़मीन पर ही जीवन बिताते थे किन्तु बादमें जीवन-संग्रामके

प्रभावके कारण उनमेंसे कुछको जल तथा कुछको समुद्रके रेतीले स्थान आदिमें जीवन बितानेके लिए भागना पड़ा वहाँ इस ठंडकसे बचनेका उपाय पेड़ोंको करना पड़ता है। कम वर्षाके स्थानोंमें भी पेड़ोंको पानीकी कमीके अनुसार ही अपने रूपोंको बनाना पड़ता है। इस प्रकारके सब पेड़ ज़ीरोफाइटके अन्दर ही आते हैं। इनकी मुख्य विशेषताऐं यहाँ दी जाती हैं।

सूखे स्थानोंमें पानी बहुत गहराईमें रहता है। अतः इन पेड़ोंकी जड़ें मोटी तथा लम्बी रहती हैं जो ज़मीनके बहुत अन्दर तक चली जाती हैं और गहराईमें मौजूद पानीको शोषण करती हैं। रेगिस्तानोंमें वर्षा बहुत थोड़ी होती है और वर्षाका पानी केवल ज़मीनको सतहके पास ही इकट्ठा रहता है और फिर वहींसे धूप-द्वारा उड़ा ले जाया जाता है। ऐसी परिस्थितिके लिए प्रायः कुछ पेड़ मिट्टीकी सतह पर ही जड़ें फैलाते हैं जो वर्षाके पानीको तुरन्त शोषित कर लेती हैं।

पानीकी कमीके कारण जड़-द्वारा जो भी थोड़ा बहुत पानी इन पेड़ोंको मिलता है उसको तने तथा पत्तियोंसे उड़ने देनेसे रोकना भी बहुत ज़रूरी है। इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए तना तथा पत्तियाँ प्रायः रसीली तथा मोटी हो जाती हैं और उनकी बाहरी सतह पर ऐसे पदार्थकी पर्त जमी रहती है जो उनके अन्दरके पानीको भाप बनकर उड़ने देनेसे रोक देती हैं। पानी अधिकतर पत्तियोंकी सतहसे ही पेड़ोंमें उड़ा करता है। अतः पत्तियोंमें ऐसे परिवर्तन कर दिये जायँ जो इस पानीको उड़ने देनेसे रोक रक्खें तो पेड़ आसानीसे सूखी गरमीका मुकाबला कर सकेंगे इस प्रकारके परिवर्तन हम ज़ीरोफाइटमें बहुत देखते हैं। प्रायः आप देखेंगे कि गरम तथा सूखे स्थानके पेड़ोंकी पत्तियाँ काँटोंका रूप धारण कर लेती हैं और तना चौड़ा तथा मोटा और रसीला होकर पत्तियोंका रूप धारण कर लेता है। काँटोंकी कड़ी बनावट तथा उनमें सतहकी कमी रहनेके कारण उनके द्वारा पानीका उड़ना प्रायः एकदम रुक जाता है। सम्भवतः आपने नागफनीका पेड़ देखा होगा। उसमें जो चौड़ा, मोटा तथा रसीला भाग है और जिसे शायद आप पत्ती समझते हों तनेका परिवर्तित रूप है। इस चौड़े तनेके आकार पर जो काँटे हैं वे पत्तियोंके बदले हुये रूप हैं। नागफनीका पौधा कड़ी-से-कड़ी धूपमें खड़ा रहता है और सूखने नहीं पाता। अन्य साधारण पौधा प्रत्येक वनस्पतिको अपना भोजन बनानेके लिए प्रकाशकी आवश्यकता एक सीमा तक रहती है। यह आवश्यकता पेड़ोंकी पत्तियोंको ही सबसे अधिक होती है क्योंकि भोजन बनानेका कार्य प्रधानतः वे ही करती हैं। उन्हें स्वभावतः प्रकाश कम मिलता है। ऐसे पेड़ोंकी पत्तियाँ बड़ी और फैली हुई होती हैं जिससे वे अधिक-से-अधिक प्रकाश प्राप्त कर सकें। पत्तियोंके चौड़ी होनेके साथ-साथ उनके पर्व स्थान (internods) भी लम्बे रहते हैं जिसका अर्थ यह रहता है कि पेड़ अपनेको अधिक-से-अधिक ऊपर उठाकर प्रकाशकी ओर बढ़ानेका प्रयत्न करता है। इसके विरुद्ध बहुत तेज़ धूपमें रहने वाले पेड़ोंकी पत्तियाँ बहुत छोटी होती हैं क्योंकि प्रकाश बहुत रहनेके कारण पत्तियोंकी कम सतह ही से पेड़ोंकी प्रकाश-सम्बन्धी आवश्यकता पूरी हो जाती है। प्रकाश किरणोंकी दिशाके अनुसार भी पत्तियोंके रूपोंमें परिवर्तन हो जाता है।

हवा — हवाका भी पेड़ोंकी रचना पर असर पड़ता है। आप एक ऐसे स्थानका अनुमान कीजिए जहाँ वर्षके अधिक दिनों तक हवा खूब ज़ोरोंमें चला करती हो। इस स्थानमें यदि ऊँचे और न झुक सकने वाले कड़े तनेके पेड़ रहेंगे तो ज़ोरकी हवाके झोंकेसे उनके गिर जानेका भय रहेगा। यदि ऐसे पेड़ रहेंगे जो बहुत ऊँचे न हों और जिनके तने कुछ लचीले हो जिससे हवामें वे तुरन्त झुक सकें तो वे टूटकर न गिर सकेंगे। इसी कारण खुली घाटियों टीलों तथा पहाड़ी किनारों पर जहाँ हवा बहुत तेज़ चलती है आपको अधिकतर झाड़ियों वाले नाटे पेड़ मिलेंगे जिनके तने पतले और लचीले रहते हैं और आसानीसे झुकाये जा सकते हैं।

मिट्टी—मिट्टीके भौतिक संगठनका भी प्रभाव पेड़ों पर पड़ता है। इसी कारण हम यह देखते हैं किसी एक खेतकी मिट्टी किसी एक प्रकारकी खेतीके लिए अधिक उपयुक्त रहती है और किसी दूसरे खेतकी मिट्टी किसी दूसरी खेतीके लिए। कुछ पेड़ चिकनी मिट्टीमें उगते हैं, कुछ रेतीलीमें तथा कुछ दलदलमें।

अब हम परिस्थितियोंके अनुसार भिन्न-भिन्न श्रेणि-

योंके पेड़ोंकी बनावट तथा उनकी प्राकृतिक अनुकूलता पर विचार करेंगे।

१-हाइड्रोफाइट— वे पेड़ जो पानीके अन्दर या ऐसे स्थानोंमें जहाँकी मिट्टीमें कम-से-कम ८० फ़ीसदी पानी हो उगते हैं हाइड्रोफाइट कहलाते हैं। पानीके जीवनके लिये हाइड्रोफाइट अपनेको निम्न प्रकारके अपने अंगोंकी बनावट द्वारा अपनेको उपयुक्त करते हैं।

हाइड्रोफाइटमें जड़ें बहुत कम या बिल्कुल ही नहीं रहतीं। जड़ों पर रोमके बाल आदि भी नहीं रहते। इसका कारण यह है कि पानी चारों ओर रहनेके कारण पेड़की पूरी सतहसे पानीका शोषण होता है और जड़ोंकी विशेष आवश्यकता नहीं रह जाती।

इनका तना मुलायम रहता है और उसके अन्दर बहुत-से वायुकोष रहते हैं जिनमें हवा भरी रहती है। इन वायु-कोषोंमें हवा भरी रहनेके कारण पेड़ोंको पानीके ऊपर तैरते रहनेमें सहायता मिलती है। वायु-कोषोंकी हवा पेड़ोंके अन्दरकी सेलोंके श्वासोच्छ्वासके कार्यमें भी आती है।

तनोंको मज़बूती प्रदान करने वाले कड़े तन्तु बिल्कुल नहीं रहते क्योंकि जलके पेड़ोंको इसकी आवश्यकता नहीं रह जाती, उन्हें जल द्वारा ही आधार मिलता है।

प्रायः इन पेड़ोंके तने या पत्तियोंके डंठल पर काँटे आदि भी रहते हैं जो जल-जन्तुके आक्रमणोंसे उन्हें बचाने-का कार्य करते हैं। सिंघाड़ा इसका अच्छा उदाहरण है।

२—हाइग्रोफाइट—वे पेड़ कहलाते हैं जो पानीके अन्दर तो नहीं रहते किन्तु जिन्हें काफ़ी पानीकी आवश्यकता पड़ती है और जो अधिक नमीके स्थानमें उगते हैं। फर्न आदिके पेड़ इसी प्रकारके हैं। कुछ गुणोंमें ये हाइड्रोफाइटसे मिलते हैं। इसमें भी जड़ें बहुत कम रहती हैं।

३—ज़ीरोफाइट— ये वे पेड़ हैं जो बहुत सूखे स्थानोंमें उगते हैं। इनकी बनावट इस प्रकारकी रहती है कि वे बिना अपने जीवनको संकटमें डाले काफ़ी लम्बे सूखे मौसिमको पार कर लेते हैं। रेगिस्तानोंमें जो पेड़ रहते हैं उन्हें दो बातोंका सामना प्रधान रूपसे करना पड़ता है। एक तो पानीकी कमीका और दूसरे कड़ी गर्मीका। ऐसी स्थितिमें वहाँके पेड़ोंके अन्दरके पानीके बहुत अधिक उड़ जानेका डर रहता है। अतः इन पेड़ोंको इस पानीको उड़ने देनेसे बचानेके लिए कई प्रकारके परिवर्तन अपनी बनावट-में करना पड़ता है। जहाँ बहुत अधिक ठंडक पड़ती है और वहाँ की परिस्थितियोंके अनुसार अपने रूप आदिमें भी परिवर्तन करना पड़ा। इस स्थान पर हमारा विचार आपको पेड़ोंके उन भिन्न-भिन्न रूपसे परिचय करानेका है जिसके कारण वे अपनी परिस्थितियोंका सामना करनेमें समर्थ होते हैं।

इसके पहले कि हम पेड़ोंके भिन्न-भिन्न रूपोंका वर्णन करें हमें यह समझ लेना आवश्यक जान पड़ता है कि भिन्न-भिन्न परिस्थितियोंका पेड़ोंके जीवन पर किस प्रकारका असर पड़ता है। तापक्रम, प्रकाश, पानी, हवा और मिट्टी पेड़ोंकी आवश्यकताओंमें प्रधान हैं। अतः सबसे पहले इनके द्वारा डाले हुये प्रभावोंका ही वर्णन किया जायगा।

तापक्रम—तापक्रमकी एक नियमित सीमा वनस्पतियोंके जीवनके लिये बहुत आवश्यक है। कड़ी गर्मी तथा कड़ी ठंडक सहन करनेकी शक्ति प्रत्येक पेड़में भिन्न-भिन्न होती है। इसका सम्बन्ध वनस्पतियोंके प्रोटोप्लाज्म नामक जीवन-तत्वसे रहता है। तापक्रमके कारण पेड़ोंके वाह्य रूपों या बनावटमें विशेष अन्तर नहीं आता। अधिकतर पेड़ोंके लिए २०° श से ४०° श तकका तापक्रम बहुत अनुकूल रहता है। किंतु कुछ पेड़ ऐसे भी रहते हैं जो कम ठंडक पसन्द करते हैं और कुछ गरमी। इसी कारण तापक्रमके आधार पर संसारके भिन्न-भिन्न स्थानोंकी वनस्पति भिन्न-भिन्न होती हैं। अतः पेड़ोंकी भौगोलिक स्थिति (geographical distribution) में तापक्रमका अवश्य एक विशेष हाथ रहता है।

पानी—वनस्पतियोंकी गठन तथा आकार पर पानीका सबसे अधिक और महत्वका असर पड़ता है। कुछ पेड़ बहुत कम पानीमें अपना जीवन बिताते हैं, कुछ बहुत अधिक पानीमें। किन्तु अधिक पेड़ इन दोनोंके बीचकी स्थिति ही पसन्द करते हैं। इसीके अनुसार उन्हें क्रमशः तीन श्रेणियोंमें रक्खा गया है—ज़ीरोफाइट, हाइड्रोफाइट और मीज़ोफाइट। इन तीनों श्रेणियोंके गुणोंका वर्णन आगे चलकर किया जायगा जिससे आपको मालूम होगा कि पानीकी परिस्थितिके कारण पेड़ोंकी रचना तथा वाह्य रूपोंमें परस्पर कितना अन्तर हो जाता है।

प्रकाश—प्रायः प्रकाशकी कमी या अधिकताके कारण भी वनस्पतियोंके अंगोंमें बहुत परिवर्तन हो जाता है। इस दशामें बहुत शीघ्र सूखकर नष्ट हो जाता है। प्राकृतिक परिस्थितियोंसे मुकाबला करनेके लिए अपने ढाँचेको पेड़ किस प्रकार अनुकूल करते हैं। इस बातका यह नागफनी का पौधा कितना अच्छा उदाहरण है। ज़ीरोफाइट पेड़ोंके तनों तथा पत्तियों पर प्रायः बहुतसे रोयेंके समान बाल भी उत्पन्न हो जाते हैं जिनके द्वारा भी पानीका उड़ना बहुत कम हो जाता है।

नागफनीका पौधा बहुत गरम स्थानके उपयुक्त है। अब एक दूसरा उदाहरण हम ऐसे पेड़का लेंगे जो बहुत शीतमें रहता हो। चीड़का पेड़ यदि आपने देखा होगा तो आपको मालूम होगा कि उसकी पत्तियाँ कितनी गोल, पतली तथा लंबी सूईके आकारकी होती हैं। इन पत्तियोंकी बाहरी त्वचा भी बहुत कड़ी रहती है। सूईका आकार धारण कर लेनेके कारण पत्तियोंकी सतह बहुत कम रह जाती है और उसका पानी अधिक नहीं उड़ सकता। त्वचाकी कड़ी पर्त-द्वारा ठंडकसे उसकी रक्षा होती है।

४-मीज़ोफाइट—ये वे पेड़ हैं जो औसत तापक्रम तथा पानीकी स्थितिमें जीवन बिताते हैं। हाइड्रोफाइट और ज़ीरोफाइटको दशाके बीचकी दशा इनकी रहती है। हमारे अधिकतर साधारण पेड़ इसी श्रेणीके हैं। इनमें जड़ें काफी मोटी तथा फैली हुई रहती हैं। तना ठोस और मज़बूत रहता है। तनों पर काँटों आदिका अधिकतर अभाव रहता है। इनकी परिस्थिति पर विचार करने पर आप यही पायेंगे कि इनके रूप इनकी प्राकृतिक अनुकूलताके कारण हैं।

ऊपर हमने केवल उदाहरणों-द्वारा ही आपको यह बतलानेका प्रयत्न किया है कि वनस्पतियाँ अपनेको परिस्थितियोंके अनुकूल करनेकी शक्ति रखती हैं और इस शक्ति का उचित उपयोग करती हैं। वनस्पति-जगत्‌का निरीक्षण करने पर अब आप स्वयं ही बहुत उदाहरण मालूम कर सकेंगे जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है। अपनी इसी शक्ति-द्वारा वनस्पतियाँ जीवन-संग्राममें विजय पाती हैं। जिन वनस्पतियोंमें इस शक्तिकी कमी रहती है वे जीवन-संग्राममें असफलताका जीवन बिताकर शीघ्र ही नष्ट हो जाती हैं।

वृक्षोंकी कथा

[ले० श्री प्रभा अष्ठाना, बी० ए०]

एक समय था जब कि इस पृथ्वीकी धरातल पर केवल जल ही जल था, जीवित पदार्थोंमें केवल अत्यन्त सूक्ष्म कण जो कि अनुवीक्षण यंत्रसे ही देखा जा सकता था, पाया जाता था। क्रम-क्रमसे इसका विकास हुआ और तब इसी ने सृष्टिको प्रथम जीवन-दान दिया। इसे प्रोटोजोआके संसारसे आगे चल कर जन्तु-जगत्‌की उत्पत्ति हुई। उस समयसे लेकर आज तक वनस्पति-जगत्‌के कई हज़ार विभिन्न प्रकारके पेड़-पौधे उत्पन्न किये हैं जिनमें दो लाख किस्मसे अधिकके तो फूलोंके ही पौधे हैं।

समुद्री घास और इसी प्रकारके अन्य कुछ पौधे संसारकी प्रारम्भिक ज्ञातव्य वनस्पतियोंमेंसे हैं। इन घासोंके जो कुछ अवशेष बचे हैं उससे ज्ञात होता है कि उस समयकी और आजकी घासमें कोई अन्तर नहीं है। इन्हीं जल-वनस्पतियोंसे क्रमशः स्थल-वनस्पतियोंने जन्म धारण किया। लगभग सैंतीस करोड़ वर्ष पहिले ऐसे पौधोंके अवशेष पाये गये हैं जिनके तनेका व्यास दो फुटका होता था। इसकी बनावट समुद्री घासकी तरह ही थी परन्तु यह दलदली ज़मीनमें उगा था। छोटे और साधारण स्थली पौधे भी उस समय थे।

लगभग बीस करोड़ वर्षके पश्चात् पृथ्वी पर अधिक परिमाणमें वनस्पतियाँ होने लगीं। उनमें बहुतसे सुन्दर बहुपत्रक (fern-like) पौधे थे यद्यपि उनमें और आज कलके बहुपत्रक वृक्षोंमें बहुत अन्तर है। उस समय पये जाने वाले ऐसे वृक्षोंमें अधिकतर घोड़ेकी पूँछके आकृति के होते थे जिनकी डालियाँ एक-एक फुट लम्बी होती थीं। आज कल जो तीसके लगभग विभिन्न जातिके बहुपत्रक होते हैं वे बहुत छोटे होते हैं। पूरा पौधा केवल एक फ़ुट का होता है। परन्तु दक्षिणी अमेरिकामें अब भी विशाल

कोय तीस फ़ुट लम्बे बहुपत्रक पाये जाते हैं।

इसी समय स्केल वृक्ष और कुछ समय बाद सोल वृक्ष अधिकाधिक पाये जाने लगे। पहिले प्रकारके वृक्षोंको जड़ें अब पाई गई हैं। उनकी लम्बाई ११४ फ़ुट तक निकली है। इसको डालियोंपर छोटी और पतली पत्तियाँ होती थी जिनके गिर जानेके बाद डालपर बड़े-बड़े चिह्न रह जाते थे। ऐसे भो वृक्ष थे जिन्हें आज कलके कोनिफरों या बहुपत्रक वृक्षोंका पूर्वज कहा जा सकता है। ब्रिटिश म्यूज़ियममें एक ऐसे वृक्षको जड़ है जिसका व्यास पाँच फ़ुट है।

पृथ्वोके मध्यकालमें—लगभग अट्ठारह करोड़ वर्ष पहिले—जलवायु शुष्क होने लगी। उस समय एक विशेष प्रकारके ताड़ (cycad) के वृक्ष और बहुपत्रक पौधे (conifers) होते थे। धीरे-धीरे इस जातिके पेड़-पौधे समाप्त होने लगे और १४ करोड़ वर्ष पहिले बिलकुल ही लुप्त हो गये। उस समय आधुनिक कालके बहुपत्रक पौधोंके समान पौधे जैसे रेड-वुड और साइप्रेस थे। यह सम्भव है कि आधुनिक कालके फूलोंके पौधे उस समयसे ही आरम्भ हुये हों। कुछ लोगोंका कहना है कि ओस और बर्च आदिकी जातिके वृक्ष सबसे पहिले हुये, परन्तु कुछ कहते हैं कि जल-कमल अथवा मैगनोलियाके फूलके समान एक सुन्दर पुष्प ही सृष्टिका आदि पुष्प है।

चाहे यह जो कुछ हो पृथ्वोके मध्य-युगके अन्तमें—लगभग ग्यारह करोड़ वर्ष पहिले सृष्टिमें अनेक प्रकारके वृक्ष जैसे नरकुल कमल, असली ताड़ और अन्य पतझड़ वाले वृक्ष पाये जाने लगे थे। उस समयके वृक्षोंमें कुछके नाम ये हैं—बबूल, अखरोट, बेनसे मिलता-जुलता एक वृक्ष तथा कपूर आदि। उसी समय जन्तु-जगत्में शहदको मक्खोका आविर्भाव हुआ जो एक फूलका मधु दूसरे तक पहुँचा कर बीजकी स्थापना करती थी।

वृक्षका आवागमन

पौधे जलवायुके अच्छे परिचायक हैं। अन्तिम हिम-युगके पहिले मध्य यूरोप अन्तिम बार एक उष्ण देश था। उस कालमें वहाँ देवदारके साथ ताड़ पंखो और बलूतके साथ दालचोनीके वृक्ष भी होते थे। क्रमशः वह एक शीत प्रधान देश हो गया और चारों ओर बर्फ ही दीखने लगी। नार्वेमें छः हज़ार फीट गहरी बर्फ़ जमी थी। तब वनस्पति-जगत् दक्षिणकी ओर चला गया। यहाँ तक कि सिसलीमें भी छोटे कदके ताड़ वृक्ष होने लगे। हिमयुगके अन्तमें जब पृथ्वी फिर साफ़ हो गई तब वहाँ बर्च और स्काटलैंड के देवदारके वृक्ष होने लगे।

ईसासे ५५,००-३५०० वर्ष पूर्व जब जलवायु अधिक नम और गर्म हो गई इस देवदारके स्थानपर एक प्रकारका बलूत होने लगा। फिर कुछ समयके लिये घोर वर्षा-काल का आरम्भ हुआ और उसके बाद एक सूखाकाल आया। इस समय गेहूँ, और मटर लगाये गये।

ईसासे २०००-१००० वर्ष पूर्वका काल अच्छा गर्म था और उस समय स्कैण्डिनेवियामें जई और बाजरा होते थे। प्रथम लौह युगसे ईसाके सम्वत् तक जलवायु फिर कम हो गई, धरातलका जल बढ़ा और पृथ्वी पर झाऊ तथा बीचके वृक्ष उगने लगे।

ईसासे एक हज़ार वर्ष पूर्व तक भूमध्यसागरके देशोंमें बलूत, देवदार और एक प्रकारका पेड़ बीच (beech) जिसकी डालियोंसे नावका मस्तूल बनाया जाता है तथा एक अन्य पेड़ (birch) जिसकी टहनियोंसे स्कूल के लड़कोंको मारनेके लिये कमची बनाई जाती है तथा लार्चके पेड़ पाये जाते थे धीरे-धीरे इनका स्थान कम उष्ण देशोंमें पाये जाने वाले वृक्षों जैसे बलूत, चेस्टनेट, देवदार और अंजीर आदि ने ले लिया। लोगोंका कहना है कि पहिले-पहल यह वृक्ष जब कम उष्ण देशोंमें लगाये गये तो इनमें फल नहीं लगे। इनमेंसे कुछ रोमन सेनाओंके साथ-साथ उत्तरी इटली दक्षिणी फ्रान्स, इंगलैण्ड और उत्तरी जर्मनी तक चले गये। अंगूरकी बेल जिसका असली घर कैसपियन सागरके दक्षिणी तट पर है पहिले एशिया माइनरसे होकर बालकनमें पूर्वके स्थित थ्रेसमें पहुँची। होमरके समयमें मदिरा सभी मनुष्योंका पेय पदार्थ था और आगे चल कर इटली अपनी मदिराको अनाजसे बदलने लगा।

उस समय भी भू-मध्यसागर पर एप्रीकॉट और चेरीके वृक्ष होते थे। जर्मनीके जलवायु केनाडाकी जलवायुसे मिलती थी परन्तु थोड़े ही काल पश्चात् वह अधिक गर्म हो गई और तब वन कम घने हो गये, दलदलें सूख गईं, अंगूर जिनसे मदिरा बनाई जाती थी केवल राइन नदीके

आस-पास हो रह गये और गेहूँकी खेती की जाने लगी।

ईसाके १०० वर्ष पश्चात्से लेकर ११०० वर्ष पश्चात् तब जलवायुमें बहुतसे परिवर्तन हुये। कैस्पियन सागरसे लेकर ग्रीस तकके खजूर और ताड़के वृक्ष समाप्त हो गये, उत्तरी चीनमें होने वाले बाँस फिर वहाँ नहीं होने लगे और अंगूरने उत्तरी जर्मनीको छोड़ दिया। हैनोरवसे लौयर तकके प्रदेशमें तापक्रम २° श कम हो गया, परन्तु उत्तरी पूर्वी यूरोपमें तापक्रम १° श बढ़ गया और स्टॉकहोमु आर्केंजल तथा आइसलैंडमें जलवायु अधिक गर्म हो गई।

वृक्षोंको एक स्थानसे दूसरे स्थान पर ले जाकर लगाने की प्रथा लगभग सन् १४५० से चली आ रही है। यहाँ तक कि ११०० ई० में ही अरब लोग नारंगीको सिसली ले आये थे। कनारी द्वीपसमूहका 'फ़िनिक्स' नामक ताड़का पेड़ इटलीके मेरानो प्रदेश तकमें पहुँच गया था और दक्षिणी सागरोंका 'बौना ताड़' रिविरा तकमें पाया जाता था। यहाँ रिविरामें चीनके कुछ पेड़ आस्ट्रेलियाका एक काँटेदार वृक्ष और भारतका ताड़ सभी पाये जाते हैं। मेक्सिकोका ऐगेव भी भूमध्यसागरके देशोंमें अधिकतासे पाया जाता है।

यूरोपमें प्रथम 'जीवनतरु' सन् १५२६में लगाया गया था। लगभग सन् १७७० में हंसके फ्रेडरिक द्वितीयने चार सौसे अधिक प्रकारके विदेशी वृक्ष अपनी वाटिकामें लगवाये। १८८२में सिडारका वृक्ष फ्रांस, इंगलैंड और रायनलैंडमें प्रथमबार लगाया गया। इसके भी पहले एक प्रकारका चेस्ट-नेट, जो दक्षिणमें पाया जाता था, इन देशोंमें बोया गया था।

श्वेत मार्गरेटका असली जन्म-स्थान स्पेन है और हॉर्स चेस्टनेटका ग्रीस। मिश्र देशके संसारको करमकल्ला है, सूरनको मध्य अफ्रीकाने ग्लेडियोलिस और दक्षिणी-पश्चिमी अफ्रीकाने विरेनियम प्रदान किया है। उत्तरी साइबेरियामें मैलो, मध्य चीनमें लार्कस्पर, विस्टीरिया और 'प्योर्नी' तथा बर्मामें आड़ू और चमेली होना आरम्भ हुये थे। चायलसे हमको स्ट्रॉबेरी और फ्यूशिया तथा मध्य अमेरिकासे डेहलिया मिले। मेक्सिकोकी खाड़ीसे लौकी और अनाजकी हडसनकी खाड़ीसे हमको फूल मिले हैं।

अमरूदकी जेली बनानेका ढंग

आधा गदरा और आधा पका अमरूद लो। तौलो। धोओ। चाकूसे काटकर स्वच्छ सिल पर लोढ़ेसे कुचल डालो। भगौने या डेगचीमें रख कर इतना पानी छोड़ो कि अमरूद प्रायः डूब जाय। इसमें ३ सेर अमरूद पीछे दो नींबूका रस डालो। नींबू छोटे हों तो ३ सेर में ३ नींबूका रस डालो। घंटे, सवा घंटे मंद आँच पर पकाओ। सब रस निचोड़ लो और फिर फलालैनसे छानो। रसको प्यालेसे नापो और उसकी आधी चीनी (प्यालेसे नाप कर छोड़ो। तेज़ आँच पर पकाओ। जब इतना गाढ़ा हो जाय कि ठंडा होने पर जेली की तरह जम सके तो आँच पर उतारो और कृमि रहित किये गये बरतनों में भरो। यदि दो चार दिन-में खर्च करना हो तो बात दूसरी है, नहीं तो जेली पर पिघला मोम डाल कर रक्खो।

घरेलू डाक्टर

(सम्पादक डा० जी० घोष, डा० गोरखप्रसाद आदि)

अस्थि-दौर्बल्य—दो विभिन्न रोगोंमें हड्डियाँ कमज़ोर हो जाती हैं। एक तो पैजेट-रोग (Paget's disease or osteitis) है जो अधिक आयुवाले लोगोंको ही होता है। इसमें हड्डियाँ नरम पड़ जाती हैं और इसलिए टेढ़ी भी हो जाती हैं। परन्तु पीछे वे आप-से-आप कड़ी पड़ जाती हैं। परिणाम-स्वरूप कोई-कोई हड्डियाँ सदाके लिए टेढ़ी हो जाती हैं, विशेषकर पैरकी हड्डियाँ और रीढ़। सर भी बड़ा हो जा सकता है। यह रोग बहुत धीरे-धीरे बढ़ता है और स्वास्थ्यपर दूसरा कोई बुरा असर पड़ता नहीं दिखलाई पड़ता। अकसर रोगीको पता भी नहीं रहता कि जिसको कोई रोग है।

जब पैर या हाथकी हड्डियाँ टेढ़ी हो चलती हैं तभी उसे पता चलता है कि कोई विशेष बात है।

पता नहीं कि यह रोग क्यों होता है या क्या करनेसे रुक सकता है, परन्तु यदि पीड़ासे कष्ट हो तो ऐस्पिरिन (aspirin) से आराम मिलेगा।
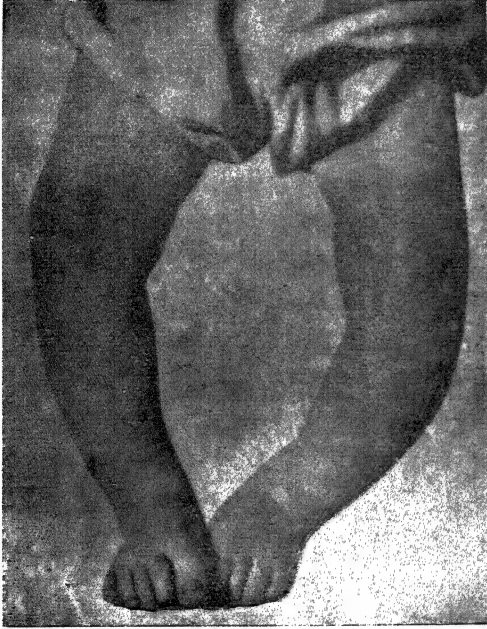
चित्र १—रिकेट्स में पैरकी हड्डियाँ अकसर टेढ़ी हो जाती हैं।

इसी रोगकी तरह एक दूसरा रोग अस्थि-सौकुमार्य (osteomalacia) है। इस रोगमें हड्डी इस प्रकार से कमज़ोर हो जाती है कि आसानीसे टूट जा सकती है। यह रोग कैलसियम या विटामिन-डी की कमी, या अस्वास्थ्य-प्रद वातावरणमें रहनेसे होता है, और अधिकतर स्त्रियोंको ही होता है। रीढ़ और वस्ति-गह्वर (pelvis) की हड्डियोंपर विशेषरूपसे प्रभाव पड़ता है। इसलिए बच्चा जननेमें कठिनाई पड़ती है। इस रोगकी चिकित्सा यही है कि दूध, तरकारी, फल, और यदि अंडा आदिसे परहेज़ न हो तो अंडा और मछली भी यथेष्ठ मात्रामें खानेको दिया जाय। रोगी यथासंभव खुली हवामें रहे। धूपमें रहनेसे लाभ होता है, परन्तु ऐसा जाड़ेके दिनोंमें ही किया जा सकता है। गरमीके दिनोंमें पहाड़पर चला जाना उत्तम होगा। मकान साफ-सुथरा और स्वास्थ्यप्रद हो। कॉड-लिवर ऑयल या विटामिन ए और डी की गोलियाँ बहुत लाभ पहुँचाती हैं।

चित्र २—छोटे बच्चोंमें रिकेट्स। रिकेट्समें आकृति विशेष ढंगकी हो जाती है।

अस्थि-दौर्बल्य (बच्चोंका), रिकेट्स (rickets), सूखा या मिठुआ—यह बीमारी बच्चोंकी है और प्रायः ६ महीनेके बाद और डेढ़ सालके बीच आरम्भ होती है। यह शीत प्रदेशमें ही बहुतायतसे पाई जाती है। सच्चा रिकेट्स अपने सभी लक्षणोंके साथ और वह रोग जिसमें सच्चे रिकेट्सके सभी वैज्ञानिक लक्षण पाये जाते हैं हमारे इस उष्ण प्रदेशमें नहीं पाया जाता है। पर साधारण तरहका रिकेट्स इस देशमें अकसर पाया जाता है। शीत प्रदेशका रिकेट्स बड़े शहरोंमें रहनेवाले ग़रीब बच्चोंमें, जिन्हें ताज़े मक्खन दूध, घी और सूर्यका प्रकाश नहीं मिलता है, देखनेमें आता है। इन बातों से यह प्रश्न उठता है कि मक्खन, दूध और घी तथा सूर्यकी किरणोंमें क्या सम्बन्ध है। इस विषयने बहुत दिनों तक वैज्ञानिकोंको भी चक्करमें डाल रक्खा था। किन्तु पीछे यह सिद्ध हुआ कि सूर्यकी किरणोंमें जो पराकासनी (अल्ट्रावायलेट) किरणें हैं उनके कारण वसामय पदार्थोंमें विटामिन-डी सदा होता है। फिर यह भी पता चला है कि यदि ये किरणें मनुष्यके चमड़े पर पड़ें तो वहाँ विटामिन-डी उत्पन्न

होता है। यही कारण है कि विटामिन-डी-रहित पदार्थोंके सेवनसे तथा बड़े शहरोंकी संकीर्ण गलियोंमें, जहाँ सूर्यकी किरणोंका प्रवेश नहीं होता है, यह बीमारी होती है। ग़रीब लोगोंको ताज़ा मक्खन और दूध कहाँ तक प्राप्त है यह सभी जानते हैं। इस देशमें सूर्यके प्रकाशका अभाव तो है नहीं, और यही कारण है कि ऐसी बीमारी जिसमें रिकेट्सके सब लक्षण पाये जायँ यहाँ नहीं दिखाई पड़ती है।

चित्र ३ — दूध पिलाने वाली माताओंमें रिकेट्स।

लक्षण इस रोगमें बच्चोंके शरीर पर चमड़ेमें झुर्रियाँ पड़ने लगती हैं, शरीर सूखकर दुबला-पतला हो जाता है। सिर शरीरकी अपेक्षा बड़ा रहता है। पेट फुटबॉलके समान निकला रहता है। अभिप्राय यह है कि शरीरका साधारण लक्षण यों कहा जा सकता है—'हाथ पाँव सिरकी और पेट नदकोला।' साथ-साथ दस्त आने लगते हैं और खाँसी भी रहती है। बच्चा बड़ा ही चिड़चिड़ा हो जाता है और छोटी-छोटी-सी बातों पर रोता है। गर्दन और मस्तक पर पसीना अकसर ही रहता है। चित्र-१ से ये सब लक्षण खूब अच्छी तरह पता चलते हैं। पैरसे चलने वाले बच्चोंमें पैरकी हड्डियाँ बहुत टेढ़ी होती हैं। हाथकी हड्डियाँ भी टेढ़ी हो जाती हैं। विटामिन-डी खाद्य पदार्थोंमें न रहनेसे कैलसियम या चूनेका उपयोग शरीरमें ठीकसे नहीं होता और जब चूनेके उपयोगमें कमी होती है तब शरीरमें दुर्बलता, चिड़चिड़ापन और हड्डीकी बीमारी पैदा हो जाती है। यही कारण है कि यह बीमारी कम उमर वाले बच्चों (चित्र २), प्रसव करने और दूध पिलाने वाली माताओं (चित्र ३) में भी हो जाती है। यदि जानवर, जैसे कि कुत्ते, के नित्य प्रतिके भोजनसे विटामिन-डी का अंश निकाल दिया जावे तो उसे भी रिकेट्सकी बीमारी हो जाती है (चित्र ४)।

चित्र ४—रिकेट्स ग्रसित कुत्ता।

समतुलित खाद्य पदार्थोंकी कमीसे भी कैलसियमका उपयोग शरीर नहीं कर सकता। यदि छोटे बच्चेको बहुत कम उमरमें अन्न अधिक खिलाया जाय और दूधकी मात्रा कम कर दी जाय तब भी हलका रिकेट्स हो जाता है। यह प्रायः देखा जाता है कि इस देशमें दो श्रेणियोंके बच्चोंमें यह बीमारी होती है। प्रथम तो ऐसे श्रेणीके अमीर लोग जिनमें परदेका रिवाज बहुत कट्टर दर्जेका है, स्त्रियाँ बराबर कमरोंमें रहती हैं, वहाँ न तो स्वच्छ वायु और न सूर्यका प्रकाश ही जा सकता है। उनका बच्चा भी इसी अवस्थामें ज़्यादातर उन्हींके संग रहता है। ऐसे बच्चोंमें रिकेट्सकी बीमारी पाई जाती है। इसका कारण सूर्यके प्रकाशका अभाव है। यह बहुत ही मनोरंजक बात है कि श्रमजीवी औरतोंके बच्चोंको जो ज़्यादातर खुली हवा और सूर्यके प्रकाशमें रहते हैं रिकेट्सकी बीमारी नहीं होती है। दूसरी श्रेणीके लोग हैं

जिन्हें समतुलित भोजन दोनों समय ठीकसे प्राप्त नहीं होता। दूध, घी, मांस, मछली तथा घीकी बनी चीज़ें उनके लिए दुर्लभ हो जाती हैं, और ये पदार्थ छठे-छमाहे किसी विशेष अवसर पर ही प्राप्त होते हैं। इस श्रेणीकी स्त्रियाँ पर्देमें इसलिए रक्खी जाती हैं क्योंकि वे समझती हैं कि पर्देमें बड़प्पन है। इस श्रेणीके लोगोंके बच्चोंमें माताका दूध न होनेसे कम ही उमरमें अन्नका सेवन पूर्णरूपसे आरम्भ करा दिया जाता है।

चिकित्सा—सूर्यका प्रकाश, विटामिन-डी और चूने (calcium) और फॉसफेट (phosphates) समतुलित खाद्य, ये तीन चीज़ें रिकेट्सकी दवायें हैं।

चित्र ५—अल्ट्रा-वायलेट किरणोंसे रिकेट्सकी चिकित्सा। आँखोंपर ठंडा चश्मा चढ़ा लिया जाता है, अन्यथा आँखें लाल हो जाती हैं।

सूर्यके प्रकाशकी पराकासनी किरणें (ultra-violet rays) जब मनुष्यके चमड़े पर पड़ती हैं तब विटामिन-डी तैयार होता है। यदि बच्चा रिकेट्ससे पीड़ित हो तो उसे सूर्यकी हल्की किरणें बहुत ही लाभ पहुँचाती हैं। ये पराकासनी किरणें कपड़े और खिड़कियोंके शीशेसे छनकर भीतर नहीं जाती हैं। कृत्रिम पराकासनी किरणोंसे भी इस बीमारीकी चिकित्सा की जाती है (चित्र ५)।

विटामिन-डी या तो खाद्य पदार्थोंसे मिल सकता है या कृत्रिम रसायन कैलसिफेरोल (calciferol) का प्रयोग किया जा सकता है। विटामिन-डी मज्जामय पदार्थों में पाया जाता है जैसे, मक्खन, दूध, अंडा, यकृत-तेल (liver-oil), खासकर मछलीके यकृतका तेल। हैलिबट (halibut), कौड (cod), आदि मछलियोंमें यह विशेष मात्रामें पाया जाता है। (चित्र ६)। धूपमें चरने वाली गाय और बन्द गोशालेमें बँधी नादमें खाने वाली गायोंके दूधमें विटामिन-डी की मात्रामें बहुत अन्तर होता है। प्रथम श्रेणीकी गायोंमें इसकी मात्रा बहुत होती है।
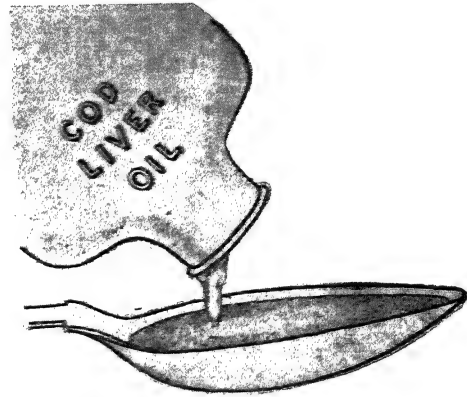
चित्र ६—रिकेट्स की विशेष औषधि विटामिन-डी-युक्त भोजन है। कॉड लिवर ऑयल विशेष उपयोगी है।

बच्चोंके खानेमें चूने (calcium) और फॉसफेट (phosphates) का निश्चित अनुपात होना आवश्यक है। दोनों दूधमें ठीक अनुपातमें पाये जाते हैं। अन्नमें इनका अनुपात बच्चोंके योग्य ठीक नहीं होता है। अतएव रिकेट्ससे पीड़ित बच्चोंमें अन्नका अंश कम करना और दूध विशेष मात्रामें देना ज़रूरी है, साथ ही पराकासनी किरणोंका प्रयोग याकोई विटामिन-डी भी देना ज़रूरी है। बद्रीनारायणप्रसाद।)

अस्थिभंग (fracture)—हड्डीके टूटनेको अस्थिभंग कहते हैं। साधारणतः हड्डीके टूटनेके साथ-साथ आस-पासके मांस या त्वचाको भी आघात पहुँचा रहता है और यह अत्यंत आवश्यक होता है कि उचित उपचार तुरंत किया जाय। अकसर डाक्टरके आनेमें देर लगती है और तब तक चुपचाप बैठे रहने पर अधिक रक्त बहनेसे रोगी मर जा सकता है या बहुत कमज़ोर हो जा सकता है।

साथ ही यह भी है कि उचित ज्ञान न रहने पर रोगीको उठाने या लेटानेमें साधारण अस्थिभंग बिगड़ कर भयंकर रूप धारण कर सकता है; हड्डी त्वचा फाड़कर बाहर निकल आ सकती है या अन्य कोई उत्पात हो सकता है। इस लिए प्रत्येक व्यक्तिके लिए यह जानना आवश्यक है कि ऐसे अवसरों पर क्या करना चाहिये। ये सब बातें और अन्य अत्यंत आवश्यक बातें सब एक साथ ही 'आकस्मिक घटना' वाले लेखमें दे दी गयी हैं। उसे देखो।

अस्थि-मरण (necrosis)—हड्डीके मर जानेको अस्थि-मरण कहते हैं। जब हड्डीमें खून पहुँचना बंद हो जाता है तो हड्डी मर जाती है। मरी हड्डीके आस-पास अकसर पीब बनना आरंभ हो जाता है और त्वचाको फोड़ कर यह पीब कहीं-न-कहींसे निकल पड़ता हैं। यदि मरी हुई हड्डी छोटी होती है तो वह पीबके साथ बाहर निकल जाती है और तब घाव शीघ्र अच्छा हो जाता है। जब मरी हुई हड्डी बहुत ही छोटी होती है तब ऐसा भी संभव है कि पीब न बने और मरी हुई हड्डीको शरीरके अन्य अंग सोख लें।

परंतु यदि मरी हुई हड्डी काफ़ी बड़ी होती है तो पीब बनने पर भी वह पीबके साथ बाहर नहीं निकल सकती। ऐसी दशामें पीब बहुत दिनों तक आता रहता है। हड्डीसे लेकर त्वचा तक एक रास्ता बन जाता है जिसे नासूर (sinus) कहते हैं। ऐसी दशामें अच्छी हड्डी काट कर भीतरसे मरी हुई हड्डी निकालनी पड़ती है। बिना ऐसा किए मवादका आना बंद नहीं होता; यदि किसी तरहसे बंद भी हो जाय तो फिर कुछ दिनों या कुछ महीनोंमें पीबका बनना आरंभ हो जायगा। इसलिए नासूरका इलाज किसी होशियार डाक्टरसे कराना चाहिये।

अस्थि-संधि (joints)—दो हड्डियोंके जोड़को अस्थि-संधि कहते हैं। अस्थि-संधियाँ दो जातियोंमें विभक्त की जा सकती हैं, चल और अचल।

चल संधियाँ—कलाई, केहुनी, पँखुड़ा (= कंधे और बाँहका जोड़), घुटना, घुट्टी, आदि सब चल संधियाँ हैं। प्रत्येक संधिमें चार प्रकारके अवयव रहते हैं—वे दो हड्डियाँ जो वहाँ जुड़ी रहती हैं, उपास्थि (cartilage) की तह जो हड्डियों पर चढ़ी रहती हैं, मांसपेशियाँ जो दोनों हड्डियोंको बाँधे रहती हैं और स्नैहिक (synorial fluid) जिसके कारण हड्डियोंका चलना उसी प्रकार सुगम होजाता है जिस प्रकार मशीनमें तेल डालनेसे मशीन हलकी चलती है।

चल संधियाँ कई तरहकी होती हैं। कुछ तो गेंद और कटोरीनुमा (ball and socket) होती हैं। ऐसी संधिमें एक हड्डीका सिरा गेंदकी तरह गोलाकार होता है और दूसरी हड्डीका सिरा कटोरीकी तरह गहरा होता है। जैसे गेंद कटोरीमें बैठा हो ठीक इसी तरह गेंद-नुमा सिरा कटोरीनुमे सिरेमें बैठा रहता है। ऐसी संधि रहने पर चल अंग चारों दिशामें मुड़ सकते हैं। कमर और जाँघ वाली संधि इसी प्रकारकी है। कुछ संधियाँ कब्जानुमा होती हैं, जैसे कब्ज़े (hinge, पल्ले) से केवल एक धुरीके बल घूम सकते हैं उसी तरह कब्ज़ानुमा संधि वाली हड्डियाँ एक दिशामें ही मुड़ सकती हैं। उदाहरणत:, घुटनेकी संधि इसी प्रकारकी है। जाँघके हिसाबसे पैर केवल आगे-पीछे मुड़ सकता है। अगल-बगल नहीं। कुछ संधियाँ फिसलने वाली संधियाँ कहलाती है, वहाँ हड्डियाँ एक दिशामें अच्छी तरह मुड़ सकती हैं, परंतु अगल-बगल वाली दिशामें बहुत परिमित मात्रा तक ही मुड़ सकती हैं। कलाई और घुट्टी (टखने) की संधियाँ इस जातिकी हैं।

अचल संधियाँ—अचल संधियाँ वे जोड़ हैं जहाँ हड्डियाँ या तो बिलकुल नहीं चलती या नाममात्र ही चलती हैं। खोपड़ीकी संधियाँ इसी प्रकारकी हैं। वहाँ हड्डी जोड़के बल ज़रा भी घूम या मुड़ नहीं सकती। रीढ़में बहुत सी छोटी-छोटी हड्डियाँ जुड़ी हैं और उनके बीच उपास्थि भी है, परंतु रीढ़ केवल लचीला है। उसमें कहीं भी दो हड्डियोंका ऐसा जोड़ नहीं है कि एक हड्डी दूसरेके हिसाबसे वस्तुत: चले। इसलिए रीढ़की संधियाँ भी अचल संधियाँ मानी जाती हैं।

अस्थि-संधियों के रोग—आकस्मिक दुर्घटनावश हड्डियोंके जोड़ कभी-कभी उखड़ जाते हैं। इस विषय पर विचार 'आकस्मिक घटना' वाले प्रकरणमें किया गया है। संधियों पर हड्डीके ऊपर चढ़ी हुई तहका प्रदाह गठियामें

वर्तमान रहता है। इसका वर्णन गठिया (rheumatism) के संबंधमें किया जायगा। क्षय-रोगके कीटाणु संधियों पर भी आक्रमण करते हैं और तब वह संधि सूज आती है और वहाँसे अंगका मोड़ना कठिन हो जाता है; देखो 'क्षय'। हिस्टीरियामें भी संधियों पर असर पड़ता है (देखो हिस्टीरिया)।

अस्थ्यावरण-प्रदाह (periostitis)—शरीरमें हड्डियों पर एक झिल्ली-सी खोल चढ़ी रहती है जिसको अस्थ्यावरण (periosteum) कहते हैं। इस आवरणमें बहुत-सी रक्त-वाहिनियाँ और नाड़ियाँ रहती हैं जिनसे उस अस्थिका पालन-पोषण होता है। इस आवरणके प्रदाह (सूजन) को अस्थ्यावरण-प्रदाह कहते हैं। कभी-कभी तो अस्थ्यावरण केवल नाममात्र ही सूजता है, परन्तु कभी-कभी अस्थ्यावरण-प्रदाह अत्यंत प्रचंड रूप धारण करता है। चोट लगनेके कारण अकसर अस्थ्यावरण थोड़ा-बहुत सूज आता है। अधिक भयंकर प्रदाह कीटाणुओंके कारण होता है। तब हड्डीमें पीब पड़ जाती है।

चिकित्सा— साधारण प्रदाहमें, विशेषकर ऐसेमें जो चोट लगनेके कारण उत्पन्न हुआ हो, उस अंगको विश्राम देना और सेंकना काफ़ी होता है। यदि त्वचा कट गई हो तो बोरिक ऐसिडके गरम घोलमें कपड़ा डालकर और फिर उसे निकालते ही निचोड़ कर सूजे हुए स्थान पर सेंक करनी चाहिए। बोरिक ऐसिडके कारण घावके पकनेका डर कम हो जाता है। यदि सूजन एक-दो दिनमें कम न पड़े तो डाक्टरको दिखाना चाहिए। यदि भीतर पीब बन जाय तो शल्य-चिकित्साकी आवश्यकता पड़ेगी। उचित उपचार न करनेसे प्रदाह फैल जायगा और कदाचित् इसका बड़ा भयंकर परिणाम होगा।

अस्पताल (hospital)—ऐसे स्थानको जहाँ घायल या रोगी व्यक्तियोंकी चिकित्सा होती है अस्पताल कहते है। यह अँग्रेज़ी शब्द "हॉस्पिटल" का अपभ्रंश है। इस देशमें अस्पताल शब्दसे अकसर खैराती अस्पताल ही समझा जाता है जहाँ गरीबोंका इलाज मुफ्त होता है। ऐसे खैराती अस्पतालोंका ख़र्च या तो सरकार देती है, या म्यूनिसिपैलिटी, या डिस्ट्रिक्टबोर्ड, या कोई सभा या धनी व्यक्ति। प्रायः सभी बड़े शहरोंमें एक-दो अस्पताल होते हैं।

सबसे प्रसिद्ध वे अस्पताल होते हैं जो मेडिकल कॉलेजोंमें रहते हैं। उत्तरी भारतवर्षमें लखनऊ, पटना और कलकत्ताके मेडिकल कॉलेज वाले अस्पताल बहुत प्रसिद्ध हैं। इन अस्पतालोंमें अच्छे-से-अच्छा सामान, यंत्रादि, मकान, पुस्तकालय और परिचारिकाएँ रहती हैं। अनेक विषयोंके विशेषज्ञ भी एक साथ मिल जाते हैं। इससे कठिन रोगोंकी चिकित्सा वहाँ अधिक सुविधासे हो सकती है।

अस्पतालोंमें गरीबोंका इलाज मुफ्त होता है। वहाँ अकसर भीड़ इतनी रहती है कि अच्छी हैसियतके लोग शर्मके मारे नहीं जाते। परन्तु बहुतसे रोग ऐसे है कि उनकी चिकित्साके लिए विशेष और बहुमूल्य यंत्रोंकी आवश्यकता पड़ती है, विशेषकर शल्य-चिकित्सा (operations) के लिए जो प्राइवेट डाक्टरोंके पास नहीं रहते। इसलिए कुछ बीमारियोंके लिए अस्पतालमें जाना आवश्यक हो जाता है। इस अभिप्रायसे कि वे व्यक्ति भी अस्पतालोंसे लाभ उठा सकें जो खैराती इलाज नहीं चाहते हैं, प्रायः सभी अस्पतालोंमें ऐसा प्रबंध रहता है कि लोग पैसा देकर अपना इलाज करा सकें, या कम-से-कम अपने रहने और खानेका खर्च देकर इलाज करा सकें।

उदाहरणतः, लखनऊ मेडिकल कॉलेजके अस्पतालमें रोगी २) प्रतिदिन पर 'प्राइवेट वार्ड' में भरती हो सकता है। इसमें प्रत्येक रोगीको दो कोठरियाँ, बाहर और भीतरके दालान, छोटा-सा आँगन, रसोईघर और पैखाना आदि मिलता है। वहाँ वह अपने सम्बन्धियोंको भी टिका सकता है। रसोईका प्रवन्ध स्वयं करना पड़ता है। विशेष दवाओं का दाम उसे ऊपरसे देना पड़ता है। एक्स-रे-फ़ोटो आदिकी आवश्यकता पड़ने पर उसका भी खर्च अलग देना पड़ता है। ऑपरेशन आदि और साधारण दवाओंका ख़र्च नहीं देना पड़ता। विशेष ब्योरा लखनऊ मेडिकल कॉलेजके सुपरेनटेंडेंटको लिखकर जाना जा सकता है। यदि ऐसे अस्पतालोंमें जाना हो और रोगकी चिकित्सा पहले किसी प्राइवेट डाक्टरसे कराई जा रही हो तो उत्तम यही होगा कि अपने प्राइवेट डाक्टरसे अस्पतालके डाक्टरके नाम सिफारिशी चिट्ठी ले ली जाय और अस्पतालके डाक्टरकी जानकारीके लिये रोगका पूरा पूर्व इतिहास और चिकित्सा लिखा लिया

जाय। कई एक अस्पताल विशेष रोगों या विशेष प्रकारके रोगियोंके लिए ही रहते हैं। उदाहरणतः, बहुतसे अस्पतालोंमें केवल स्त्रियोंकी ही चिकित्सा होती है और वहाँ प्रसव-संबंधी आवश्यकताओंके लिए विशेष प्रबन्ध रहता है। भवाली (ज़िला अल्मोड़ा) में क्षयरोग-ग्रसित व्यक्तियोंके लिए विशेष अस्पताल है। कसौली (पंजाब) में पागल कुत्तोंसे काटे व्यक्तियोंके लिए अस्पताल है। पागल व्यक्तियोंके लिए आगरामें 'मेण्टल हॉस्पिटल' है।

बहुतसे लोगोंकी धारणा रहती है कि अस्पतालमें जाकर रहना बुरा है। वे समझते हैं कि जब तक रोग असाध्य न हो अस्पतालमें जाकर नहीं रहना चाहिये। इसीसे अकसर वे ऐसे रोगोंकी चिकित्सा भी अच्छी तरह नहीं करा पाते जिनकी अच्छी चिकित्सा केवल अस्पतालोंमें ही हो सकती है। यह धारणा निर्मूल है। यदि घरकी अपेक्षा अस्पतालमें अधिक अच्छी तरह चिकित्सा हो सकनेकी संभावना हो तो रोगीको अवश्य अस्पतालमें भरती करा देना चाहिए। वहाँ नियमित समयों पर रोगीके टेम्परेचर (तापक्रम), नाड़ी इत्यादिकी जाँच होती है, नियमित समयों पर दवा पिलाई जाती है, स्वच्छता तथा अन्य स्वास्थ्य-संबंधी नियमों पर अधिक ध्यान दिया जाता है, होशियार डाक्टर रोगीको कम-से-कम एक बार प्रतिदिन देखता है और कोई आकस्मिक आवश्यकता होने पर डाक्टर शीघ्र आ सकता है।

अव्यायामी जीवन (sedentary habits)—मनुष्य स्वस्थ तभी रह सकता है जब वह थोड़ा-बहुत शारीरिक परिश्रम करता रहे। असभ्य दशामें मनुष्यको अपने आहार-प्राप्तिके लिए ख़ूब मेहनत करनी पड़ती थी, परन्तु वर्तमान युगमें कुछ व्यक्तियोंका दिन प्रायः बैठे-बैठे ही बीतता है। इससे उनका स्वास्थ्य धीरे-धीरे बिगड़ जाता है। धनी घरानोंकी स्त्रियोंका स्वास्थ्य अकसर इसी कारण सदा ही ख़राब रहता है। परिश्रमके अभावके साथ-साथ उनको अकसर स्वच्छ वायु और काफ़ी रोशनी या जाड़ेमें धूप नहीं मिल पाती (धूप बहुत स्वास्थ्य-प्रद है)।

परिश्रमके अभावमें भोजनकी आवश्यकता भी बहुत-कुछ कम हो जाती है। परन्तु अधिकांश अव्यायामी जीवन वाले व्यक्ति खाते ख़ूब हैं। इससे उनका स्वास्थ्य और भी ख़राब हो जाता है। उनका शरीर थलथल (ढीला) रहता है, कब्ज़ या बदहज़मीकी बराबर शिकायत रहती है और शारीरिक परिश्रम करनेकी क्षमता रह ही नहीं जाती। अकसर तोंद भी निकल आती है या सारा बदन फूल जाता है।

प्रत्येक व्यक्तिको काफ़ी शारीरिक परिश्रम करना उचित है। यदि अपनी जीविका-निर्वाहके लिए उसे अव्यायामी जीवन व्यतीत करना पड़े तो सुबह-शाम, या कम-से-कम एक बार अवश्य, उसे व्यायाम करना चाहिए (देखो 'व्यायाम')। जो पहले व्यायाम न करते रहें उन्हें बहुत सँभालकर व्यायाम आरम्भ करना चाहिए और इसकी मात्रा धीरे-धीरे बढ़ानी चाहिए। दो-तीन मील तेज़ चलना उन लोगोंके लिए बहुत अच्छा व्यायाम है जो अधिक शारीरिक परिश्रम नहीं कर सकते। जो इतने धनी हैं कि उन्हें अपनी जीविका-निर्वाहके लिए कोई शारीरिक परिश्रम नहीं करना पड़ता उन्हें शिकार या टेनिस आदि खेलका शौक रखना चाहिए और प्रतिदिन कुछ-न-कुछ शारीरिक परिश्रम इसी बहानेकर लेना चाहिए। परदेमें रहने वाली स्त्रियोंको सबसे अधिक कठिनाई पड़ती है। यदि वे चक्की चलाना, अन्न कूटना, मसाला पीसना आदि काम स्वयं नहीं करतीं, या गंगा-स्नान करनेके बहाने दो-चार मील पैदल नहीं चल लेतीं, तो उन्हें अवश्य अपनी कोठरीके भीतर ही उचित व्यायाम करना चाहिए, अन्यथा वे सदा रोगिणी बनी रहेंगी। व्यायाम करते समय एक-आध जँगले अवश्य खुले रहें जिसमें व्यायाम करते समय उनको स्वच्छ वायु मिले।

जो अव्यायामी जीवन व्यतीत करते हैं उनको हलका ही भोजन करना चाहिए, अनाज कम खाना चाहिए, मांस आदिसे परहेज़ करना चाहिए, पानी भी ख़ूब पीना चाहिए, परन्तु भोजनके समय नहीं। भोजनके बाद दो-तीन घंटेसे लेकर दूसरी बारके भोजनके एक घंटे पहले तकमें पानी पीना ठीक होगा। जाड़ेके दिनोंमें भी चौबीस घंटेमें कम-से-कम डेढ़ सेर पानी पीना चाहिए।

आँख (eye)—हमारे दो चक्षु, नेत्र या आँख होते हैं। भ्रुवोंके नीचे नासिकाकी दाहिनी ओर बाईं ओर कर्परमें

दो गढ़े होते हैं, इनको अक्षिखात या नेत्रगुहा कहते हैं। आँखका गोला (अक्षिगोलक) इसी गढ़ेमें रहता है। चक्षु बड़ा उपयोगी और परमावश्यक अंग है। बिना चक्षुके जीवनमें आनन्द प्राप्त नहीं होता। इस अंगके द्वारा हमको
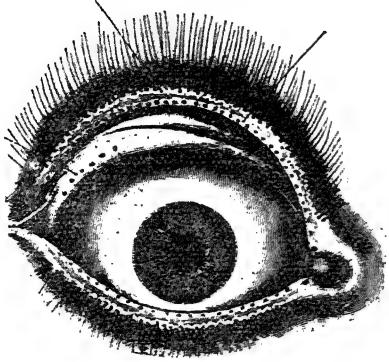
प्रकाशका ज्ञान होता है; इसीके द्वारा हम सब संसारको देखते हैं; रंग, रूप, आकारका बोध भी इसीकी सहायतासे होता है।

जितना आवश्यक यह अंग है उतना ही उनकी रक्षाका प्रबन्ध भी किया गया है। अस्थिसे बनी हुई कोठरी, जिसमें वह रहता है, उसके अगले भागको छोड़कर शेष भागकी अच्छी तरहसे रक्षा करती है। अगले भागकी रक्षाके लिए दो पलक या नेत्रच्छेद हैं। जब कोई मनुष्य आँखके सामने अँगुली लाता है तो ये पलक तुरन्त बंद हो जाते हैं, सोते समय भी इन पलकोंके बंद हो जानेसे आँखका अगला भाग सुरक्षित रहता है। पलकोंके किनारों पर बाल लगे रहते हैं। ये बरौनी, अक्षिपक्ष्म या अक्षिलोम कहलाते हैं। इन बालोंसे भी आँखकी रक्षा होती है, धूल-मिट्टीके छोटे-छोटे ज़र्रे इनमें फँस जाते हैं और वायुमें उड़नेवाले छोटे-छोटे कोड़े भी बहुधा इनमें फँसकर आँखके बाहर ही रह जाते हैं। अक्षिखातके ऊपर बालोंकी एक महराब होती है जिसको भ्रु या भौं कहते हैं। माथेका पसीना भौंके कारण आँखमें जानेसे रुक जाता है।

चक्षु की बनावट—चक्षुकी बनावट छायाचित्र फ़ोटो खींचनेवाले यन्त्रकी बनावटसे बहुत कुछ मिलती है। हम पहले इस यन्त्रकी साधारण बनावट बतायेंगे और फिर उसकी चक्षुकी बनावटसे तुलना करेंगे। यह यन्त्र वास्तवमें एक अँधेरी कोठरी है; इस कोठरीमें एक ओर एक छिद्र होता है जिसमें एक-एक शीशा या ताल लगा रहता है। दूसरी ओर अर्थात् तालके सम्मुख काँचकी एक चादर या प्लेट लगा रहता है जिस पर मसाला चढ़ा रहता है। वस्तुओंका प्रतिबिम्ब इस मसाला चढ़ी हुई प्लेट पर ही पड़ा करता है। प्रकाशकी किरणें तालमेंसे होकर कोठरीमें घुसती हैं और फिर प्लेटसे टकराती हैं। तालके सामने एक यन्त्र ऐसा लगा रहता है जिसके द्वारा हम इच्छानुसार यह कर सकते हैं कि प्रकाश उस तालमेंसे होकर कम जावे या अधिक जावे या बिलकुल न जावे। जब आसमान साफ़ होता है और धूप तेज़ होती है तब तसवीर खींचनेके लिए कम प्रकाशकी आवश्यकता होती है; जब बादल होते हैं या धूप हल्की होती है तब तालके सामनेवाले यन्त्रका छिद्र बड़ा कर देनेकी आवश्यकता होती है ताकि जितने प्रकाशकी

आवश्यकता है उतना प्रकाश प्लेट पर पड़े। कोठरीकी बनावट ऐसी होती है कि हम उसको आवश्यकतानुसार लम्बी या छोटी कर सकते हैं ताकि प्रतिबिम्ब ठीक प्लेट पर पड़े। छाया-चित्रण-यन्त्रकी स्थूल बनावट यही है, उसमें तरह-तरहके पेंच लगे रहते हैं जिनसे इस समय हमको कोई मतलब नहीं।

हमारे चक्षुकी बनावट उपरोक्त यन्त्रकी बनावटसे बहुत कुछ मिलती है। यन्त्रकी तरह उसमें भी एक अँधेरी कोठरी है जिसके अगले भागमें एक ताल लगा रहता है,

यह कोठरी गोल होती है चौकोर नहीं, छाया-चित्रण-यन्त्रकी कोठरीकी लम्बाई कम और अधिक की जा सकती है परन्तु चक्षुकी कोठरीका परिमाण कम अधिक नहीं किया जा सकता है। जो काम यंत्रमें कोठरीकी लम्बाईको कम या अधिक करनेसे होता है वह चक्षुमें तालकी मोटाईको कम या अधिक करनेसे निकलता है, अर्थात् चक्षुका ताल मोटा और पतला हो सकता है। चक्षुमें प्रकाशके कम या अधिक प्रवेश करानेके लिए तालके सामने एक परदा लगा रहता है जिसमें एक छिद्र होता है, यह छिद्र आवश्यकतानुसार छोटा या बड़ा हो सकता है। प्रकाशको बिलकुल रोकनेके लिए दो पलक होते हैं। चक्षुके पिछले भागमें छाया-चित्रण-यन्त्रके मसाला चढ़े प्लेटके स्थानमें एक सांवेदनिक झिल्ली लगी रहती है, वस्तुओंका प्रतिबिम्ब इसी पर पड़ता है।

चक्षु का आकार—यदि हम दो गोले लें एक बड़ा और एक छोटा और फिर प्रत्येक गोलेको काटकर दो टुकड़ेकर लें एक छोटा और दूसरा बड़ा और अब बड़े गोलेके बड़े टुकड़ेमें छोटे गोलेका छोटा टुकड़ा जोड़ दें तो चक्षुका आकार इस संयुक्त गोलेके सदृश होगा। आँखका अगला $\frac{1}{6}$ भाग छोटे गोलेके छोटे भागके और पिछला $\frac{5}{6}$ भाग बड़े गोलेके बड़े भागके बराबर होता है। अगला भाग स्वच्छ होता है। पिछला भाग छाया-चित्रण-यंत्रकी अँधेरी कोठरीके सदृश है और अगला भाग उसी भागकी तरह है जिसमेंसे प्रकाशकी किरणें कोठरीके भीतर प्रवेश करती हैं।

अक्षिगोलककी दीवार तीन तहों या पटलोंसे बनती है; इनका रंग जुदा-जुदा होता है।

आँखका अगला भाग काला (कुछ जातियोंमें नीला) दिखाई देता है। यदि ग़ौरसे देखा जावे तो मालूम होगा कि जो काली चीज़ दिखाई देती है वह पृष्ठ पर नहीं (ऊपर नहीं) है; वास्तवमें वह आँखके भीतर है और एक काँच जैसी स्वच्छ चीज़मेंसे चमकती हुई दिखाई देती है। यह स्वच्छ चीज़ आँखके अगले भागकी दीवार है। इस स्वच्छ भागको कनीनिका (cornea) कहते हैं।

कनीनिकामेंसे चमकता हुआ एक काला (कुछ जातियोंमें भूरा या नीला) परदा दिखाई देता है; यह परदा मध्य पटलका अगला भाग है। इस परदेके बीचमें एक गोल छिद्र होता है जो फैलता और सिकुड़ता हुआ (बड़ा या छोटा होता हुआ) दिखाई दिया करता है। जब किसी अँधेरी कोठरीकी दीवारमें कोई छिद्र होता है तो वह दूरसे काला-काला ही दिखाई देता है और ऐसा मालूम होता है कि वह एक काला धब्बा है, इसी प्रकार आँखमें भी यह छिद्र काला-काला ही दिखाई देता है। इस छिद्रको पुतली या तारा (pupil) कहते हैं और जिस परदेमें यह छिद्र होता है उसको उपतारा (iris) कहते हैं।

उपताराके पीछे आँखका ताल (lens) रहता है। इसका वही काम है जो छाया-चित्रण-यन्त्रके तालका। ताल स्वच्छ होता है, बुढ़ापेमें अस्वच्छ या धुँधला हो जाता है। तालके धुँधले हो जानेको मोतीयाबिन्द रोग कहते हैं। जिस प्रकार धुँधले शीशेमेंसे होकर प्रकाशकी किरणें नहीं गुजर सकतीं उसी प्रकार आँखके तालके धुँधले हो जानेके पश्चात् प्रकाशकी किरणें उससे होकर आँखके भीतर नहीं पहुँच पातीं और मनुष्यको कम दिखाई देने लगता है या वह अंधा हो जाता है।

मसूरके दानेकी तरह ताल गोल होता है। उसके दोनों पृष्ठ (सामनेके और पीछेके) उभरे होते हैं अर्थात् वह युगलोन्नतोदर (bi-convex) होता है। अगला पृष्ठ पिछलेसे कम उभरा हुआ होता है। अगले पृष्ठके केन्द्रसे पिछले पृष्ठके केन्द्र तककी माप (तालकी मोटाई) $\frac{1}{6}$ इंच होती है; उसका व्यास $\frac{1}{3}$ इंचसे कुछ कम होता है। तालका भार सामान्यतः २ रत्तीके लगभग होता है।

तालके ऊपर एक पतला गिलाफ़ चढ़ा रहता है; इसको तालकोष (capsule) कहते हैं। तालका एक बंधन-द्वारा उपतारानुमंडल (ciliary body) से बँधा रहता है। उपताराके पीछे जो उभरा हुआ भाग होता है उसको उपतारानुमंडल कहते हैं। तालका बन्धन एक ओर तालकी परिधि पर तालकोषसे लगा रहता है दूसरी ओर उपतारानुमंडलसे। मांसके संकोच और प्रसारसे तालका बन्धन ढीला या तंग हो जाता है जिसकी वजहसे तालका उन्नतोदरत्व बढ़ या घट जाता है। जो काम छाया-चित्रण-यन्त्रमें कोठरीकी लम्बाईको कम या अधिक करनेसे निकलता है वह आँखमें तालकी मोटाईको कम या अधिक करनेसे निकलता है। इस उन्नतोदरत्वके कम या अधिक से वस्तुओंका प्रतिबिम्ब ठीक सांवेदनिक पटल (retina) पर पड़ता है।

तापक्रमका वितरण

[लेखक श्री बाबूराम पालीवाल]

ऊर्ध्व वितरण :—ऊपरी वायुमण्डलके अध्ययन द्वारा यह मालूम किया जा चुका है कि हम जैसे-जैसे ऊपर उड़ते जायँ वायुका तापक्रम कम होता जाता है। एक ही ऊँचाई पर बहुतसे निरीक्षणोंको जोड़कर और निरीक्षणोंकी संख्यासे भाग देकर उस ऊँचाईका औसत तापक्रम

चित्र १—आगरे पर भिन्न ऊँचाइयों पर औसत तापक्रम

मालूम किया जाता है और इसी प्रकार भिन्न-भिन्न ऊँचाइयोंका औसत निकाल कर एक ग्राफ तैयार कर लिया जाता है। यहाँ पर एक ग्राफ (चित्र १) दिया जाता है जो आगरे (२७°१०′ अक्षांश ७८°५′ देशान्तर) का भिन्न-भिन्न ऊँचाइयों पर औसत तापक्रम प्रकट करता है।

प्रति सौ मीटरकी ऊँचाईके कारण तापक्रमकी न्यूनता को तापक्रमक ऊर्ध्व अवपात (vertical gradient of temperature) और प्रति एक किलोमीटरकी ऊँचाईके कारण तापक्रमकी न्यूनताको तापक्रमकी परिवर्तन-गति (लेप्सरेट) कहते हैं।

भारतवर्षमें ऋतुओंके अनुसार एक वर्षको पाँच भागोंमें विभाजित किया जा सकता है।

(१) नवम्बरसे फरवरी तक, जाड़के दिन (शिशिर और हेमन्त)

(२) मार्च और अप्रैल, पूर्वार्द्ध गर्मीके दिन, (वसन्त)

(३) मई और जून, उत्तरार्ध गर्मीके दिन अथवा मानसूनके पहिलेका समय (ग्रीष्म)

(४) जुलाई और अगस्त, मानसून (मौसमी हवा) के दिन (वर्षा)

(५) सितम्बर और अक्टूबर, मानसूनके बादका समय (शरद)

किसी विशेष प्रान्तमें परिवर्तन-गति ऊँचाईके साथ-साथ कम-अधिक होती रहती है और ऋतुओंके कारण भी इसमें न्यूनता और अधिकता आती है।

यहाँ पर एक चित्र (चित्र २) दिया जाता है जिसमें भिन्न-भिन्न ऋतुओंमें आगरेके ऊपर परिवर्तन-गतिका वक्र दिया गया है।

इस चित्र द्वारा देखा जा सकता है कि शिशिर और हेमन्त ऋतुमें यानी नवम्बरसे फरवरी तक १ और १·५ जियोडाइनेमिक किलोमीटरके भीतर अन्य ऋतुओंकी अपेक्षा सबसे अधिक परिवर्तन-गति होती है। ४ जियोडाइनेमिक किलोमीटरके ऊपर परिवर्तन-गति ऊँचाईके साथ-साथ बढ़ी

है और यह बढ़ना ७ और ८ जियोडाइनेमिक किलोमीटर तक धीरे-धीरे कम होते-होते खतम हो गया है। इसके बाद १३ जियोडाइनेमिक किलोमीटर तक परिवर्तन-गति धीरे-धीरे कम होती जाती है और फिर इसके बाद बहुत जल्दी-जल्दी कम होती है जैसा कि रेखा नम्बर १ से प्रकट होता है।

चित्र २—परिवर्तन-गतिका ग्राफ़

वसन्त ऋतुमें अर्थात् मार्च और अप्रैलके महीनेमें ४ जियोडाइनेमिक किलोमीटर तक परिवर्तन-गति ऊपरकी सतहकी अपेक्षा अधिक है। ४ से १३ जियोडाइनेमिक किलोमीटर तक रेखा न० २ लगभग वैसी ही है जैसी रेखा न० १। हाँ, ४ से ५ जियोडाइनेमिक किलोमीटरके भीतर परिवर्तन-गति कुछ कम हो जाती है। जियोडाइनेमिक किलोमीटरसे ऊपर परिवर्तन-गतिकी न्यूनता साफ तौर पर प्रकट होती है।

ग्रीष्म काल अर्थात् मई और जूनकी रेखा नं० ३ की विशेषता यह है कि इसमें परिवर्तन-गति दो बार अधिकताको पहुँचा है, यानी पहिले तो १·५ से ३ जियोडाइनेमिक किलोमीटरके बीच और फिर ११ और १२ के बीच। ६ और ७ जियोडाइनेमिक किलोमीटरके बीच अन्य ऋतुओं की अपेक्षा इसमें सबसे कम परिवर्तन है। इसमें १६ जियोडाइनेमिक किलोमीटरके बाद ही रेखा कमीकी तरफ झुकी है इसमें पहिले नहीं।

वर्षा-ऋतु अर्थात् जुलाई और अगस्तकी रेखा नं० ४ से ५ जियोडाइनेमिक किलोमीटरके नीचे परिवर्तन-गति गर्म ऋतुकी अपेक्षा बहुत कम है। ५ जियोडाइनेमिक किलोमीटरके ऊपर बढ़नी शुरू होती है और १२ और १३ जियोडाइनेमिक किलोमीटरके भीतर सबसे अधिक हो गयी है और फिर ११ के बाद तीव्रतासे कम होने लगी है।

शरद ऋतु अर्थात् सितम्बर और अक्टूबरकी परिवर्तन-गति की रेखा नं० ५ से १ और २ जियोडाइनेमिक किलोमीटर के भीतर और ११ और १४ के भीतर दो बार परिवर्तन-गति बढ़ी है और ३ और ५ के भीतर कम हुई है और १४ के बाद एक दम कम हुई है।

ऊँचाईके साथ साथ तापक्रम कम होने के कई कारण हैं। लेकिन हम यहाँ मोटे तौर पर बता सकते हैं कि शीतोष्ण कटिबन्धसे लगभग ८ किलोमीटर तक और उष्ण कटिबन्धसे लगभग १५ किलोमीटर ऊपर जाते हैं। तापक्रम भी कम होता जाता है और फिर उसके बाद कुछ ऊँचाई तक समान रहता है।

सूर्यकी बहुत सी किरणें (लगभग ५० प्रतिशत) वायुमण्डल से होकर सीधी पृथ्वी तक पहुँचती हैं और कुछ थोड़ी वायुमण्डल द्वारा शोषण की जाती हैं। इन किरणोंकी जो कुछ भी शक्ति वायुमण्डलमें रह जाती है वह वायुकी इतनी अधिक मात्रामें बँट जाती है कि वायुमण्डल इस प्रकारकी किरणोंसे बिलकुल भी गर्म नहीं होता। इसके विपरीत पृथ्वी द्वारा प्राप्त शक्ति केन्द्रित हो जाती है और इससे पृथ्वी गर्म हो जाती है। फिर पृथ्वी अपने ऊपर पासकी वायुको कुछ तो सम्पर्कसे और कुछ

लम्बी लहर लम्बाई वाली किरणोंसे, जो पृथ्वीसे विसर्जित होती और वायु द्वारा शोषित होती है, गर्म करती हैं। किसी ऊँचाई पर वायुका तापक्रम वायु द्वारा शोषण की हुई और विसर्जित शक्ति पर निर्भर होता है, क्योंकि वायु-मण्डल जहाँ तापका शोषण करता है वहाँ वह ताप विसर्जित भी कर देता है। नीचेका वायुमण्डल साधारण तापक्रम पर शोषण करनेकी अपेक्षा अधिक शक्ति विसर्जित करता है। इसलिये किरणों द्वारा ठंडा होने लगता है। अब इन घटनाओं द्वारा, अर्थात् पृथ्वीके सूर्य द्वारा गर्म होने और उसके ऊपरकी वायुके विकिरण द्वारा ठण्डा होनेके कारण, वायुमण्डलके घनत्व पर इस प्रकार प्रभाव पड़ता है कि वायुमण्डलसे ऊर्ध्वीय वहन-धारायें उत्पन्न हो जाती हैं। इसके कारण ऊपर उठने वाली गर्म वायु समायतनिक प्रसार द्वारा ठण्डी हो जाती है और नीचे उतरने वाली वायु समायतनिक संकोचन द्वारा गर्म हो जाती है, क्योंकि ऊँचाईके साथ-साथ वायु-भार कम होता जाता है। इस प्रकार जिस ऊँचाई तक वायुसे ऊर्ध्वीय वहन-धारायें होती हैं उस ऊँचाई तक वायुमें ऊँचाईके साथ-साथ तापक्रम कम होनेका यह क्रम जारी रहता है। एक ऊँचाई पर पहुँच कर ये धारायें बिलकुल कमज़ोर हो जाती हैं और वायुमण्डलका तापक्रम इतना कम हो जाता है कि वायु-मण्डल द्वारा गर्मीके विसर्जित होनेकी मात्रा उतनी ही होती है जितनी शोषण करनेकी। इससे ऊँचे वायुका तापक्रम समान रहता है। इस हिस्सेमें वहन-धारायें नहीं होतीं। इस मण्डलका नाम स्ट्रेटोसफीयर या ऊर्ध्व मण्डल है।

अधो मंडल तथा ऊर्ध्व मंडल: - चित्र द्वारा यह देखा जा सकता है कि आगरेके ऊपर १३ ज़ियोडाइनेमिक किलोमीटरसे लेकर १६ ज़ियोडाइनेमिक किलोमीटर तक परिवर्तन-गतिमें बहुत शीघ्रतासे कमी होती है यानी तापक्रम-में ऊँचाई पर उठने पर अन्तर कम होता जाता है और २० ज़ियोडाइनेमिक किलोमीटर पर पहुँच कर अन्तर बिलकुल नहीं रह जाता, अर्थात् परिवर्तन-गति ०°श प्रति ज़ियोडा-इनेमिक किलोमीटर होता है। यह बात समस्त पृथ्वीके वायुमण्डलमें देखी गई है यद्यपि इसकी ऊँचाई समस्त पृथ्वी पर समान नहीं होती। वायुमण्डलके इस भागको जिसमें तापक्रम समान रहता है और इसी कारण उसमें वहन-धारायें नहीं होतीं, स्ट्रेटोसफीयर या ऊर्ध्व मण्डल कहते हैं। इस भागका यह नाम सन् १८९९ ई० में डि-बोर्ट ने रक्खा था। इसके नीचेका भाग, जिसमें तापक्रम ऊँचाईके साथ-साथ कम होता जाता है, अर्थात् जिसमें परिवर्तन-गति काफ़ी मात्रामें होती है और इसी कारण इससे वहन-धारायें होती हैं, ट्रोपोस्फीयर अथवा अधो मण्डल कहलाता है।

ट्रोपोपोज़: इन दो भागोंके बीचकी सतह यानी जहाँ अधो मण्डलका अन्त होता है और जहाँसे ऊर्ध्व मण्डल शुरू होता है ट्रोपोपोज़ कहलाता है। यह देखा गया है कि ट्रोपोपोज़की ऊँचाई अक्षांशोंके अनुसार कम अधिक होती है। विषवत् रेखाके पास इसकी ऊँचाई सबसे अधिक यानी १४ किलोमीटर होती है और ध्रुवोंकी तरफ कम होती जाती है। ध्रुवों पर पहुँच कर ट्रोपोपोज़की ऊँचाई ८ से १० किलोमीटर तक रह जाती है। इसके अर्थ यह हुये कि जैसे हम विषुवत् रेखासे ध्रुवोंकी तरफ चलते जाते हैं अधो मण्डलकी ऊँचाई कम होती जाती है। यह भी देखा गया है कि ट्रोपोपोज़की ऊँचाई एक ही स्थान पर शीत कालकी अपेक्षा ग्रीष्म कालसे अधिक होती है और एक ही स्थान पर एक ही ऋतुमें जब वायु-भार अधिक होता है तब अधिक होती है और जब वायु-भार कम होता है तब कम।

साधारणतया जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है अधोमंडलमें ऊँचाईके साथ-साथ तापक्रम कम हो जाता है परन्तु कभी-कभी ऐसा भी देखा गया है कि तापक्रम किसी सतह पर कुछ कारणोंसे घटनेकी अपेक्षा बढ़ गया है। इसको विपर्यय कहते हैं।

भूगोलमें तापक्रमका वितरण

जैसा कि पहिले कई बार कहा जा चुका है कि वायु-मण्डलमें उत्पन्न होने वाली घटनाओंका मुख्य कारण सूर्य द्वारा प्राप्त गर्मी है। इस गर्मीका प्रत्यक्ष प्रभाव पृथ्वीके ऊपर तापक्रमका वितरण है और उसका समयके अनुसार कम या अधिक होना है। पृथ्वी पर तापक्रमका वितरण निम्नलिखित चार बातों पर निर्भर होता है:—

(१) सूर्यकी गर्मीका वितरण अर्थात् विषुवत् रेखासे ध्रुवोंकी तरफ सौर-तापका कम प्राप्त होना।

(२) ताप-क्रमकी असमानताके कारण ऊपर-नीचेकी हवाओंका आपसमें परिवर्तन।

(३ पृथ्वी और समुद्रका वितरण।

(४) समुद्री धारायें।

समस्त दुनियामें वायुमण्डल निरीक्षणालयों पर नियमानुसार तापक्रमके निरीक्षणोंसे यह बात मालूम हुई है कि सब जगह पृथ्वीके निकटकी वायुके तापक्रममें नियमित रूपसे दो प्रकारका घटना और बढ़ना होता है। (१) वार्षिक घटना-बढ़ना (२) दैनिक घटना बढ़ना, यद्यपि सब स्थानोंसे यह घटना-बढ़ना समान रूपसे नहीं होता।

(१) वार्षिक घटना-बढ़ना:—बहुत-सी उलझनें होते हुये भी यह सम्भव हो सका है कि समुद्र तथा पृथ्वीके असरका समुचित लिहाज़ करते हुये एक विशेष अक्षांश पर तापक्रमके ठीक-ठीक निरीक्षणों द्वारा वार्षिक औसत तापक्रम निकाल लिया जाय। पहिले किसी स्थानके तापक्रमको समुद्र-तलसे अपेक्षित कर लेते हैं, अर्थात् जिस स्थान पर तापक्रम लिया गया है वह स्थान समुद्रसे कितना ऊँचा है और इस ऊँचाईके कारण तापक्रम कितना और बढ़ना चाहिये, यदि वह स्थान समुद्रकी सतहके बराबर होता, उतना ही तापक्रम उसमें जोड़ देते हैं। एक ही स्थानके इस प्रकार समुद्र-तलसे अपेक्षित किये हुये कई वर्षके तापक्रमके निर्दिष्टांकोंमे जोड़कर और उतने ही वर्षोंसे भाग देकर उस स्थानका दैनिक नॉर्मल तापक्रम मालूम किया जाता है और फिर बहुत वर्षों के दैनिक नॉर्मल तापक्रमसे मासिक नॉर्मल और बहुत वर्षों के मासिक नॉर्मल से वार्षिक नॉर्मल तापक्रम मालूम किया जाता है। यहाँ पर एक चित्र (चित्र नं० ३) दिया जाता है जिसने भिन्न-भिन्न अक्षांशों पर तापक्रमका वार्षिक घटना-बढ़ना दिखाया गया है। इसमें पाँच वक्र रेखायें हैं। वक्र रेखा 'ब' बटावियाके जो कि विषुवत् रेखाके निकट यानी ऊष्ण कटिबन्धमें है, तापक्रमका वार्षिक घटना-बढ़ना दिखाती है। वक्र रेखायें 'अ', 'प' और 'ल' क्रमशः अलजीयर, पेरिस और लेनिनग्रेडके तापक्रमका वार्षिक घटना-बढ़ना दिखाती हैं। ये सभी स्थान शीतोष्ण कटिबन्धमें हैं। वक्र रेखा 'फ' फोर्ट कोङ्गरके तापक्रमका वार्षिक घटना-बढ़ना दिखाती है। यह स्थान ग्रीनलैण्डके उत्तर-पश्चिम शीत कटिबन्धमें है।
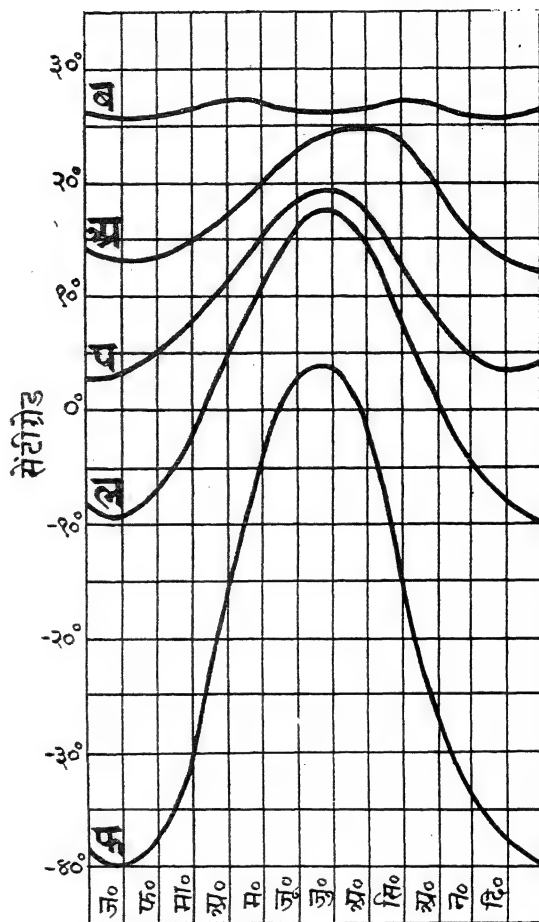
भिन्न भिन्न अक्षांशों पर तापक्रम का वार्षिक घटाव बढ़ाव

चित्र ३

यदि हम तापक्रमके वार्षिक घटने-बढ़नेकी तुलना सौरतापके वार्षिक घटने-बढ़नेसे, जो चित्र ४ में दिखाया गया है, करें तो हम देखते हैं कि उष्ण कटिबन्धमें दो बार अधिकतम तापक्रम और दो बार न्यूनतम तापक्रम होता है (चित्र ३, वक्र रेखा 'ब')। ठीक इस प्रकार उष्ण कटिबन्धमेंमें दो बार अधिकतम और दो बार न्यूनतम सौरताप होता है (चित्र ४, वक्र रेखा १)। परन्तु दोनोंके अधिकतम और न्यूनतम होनेका समय एक नहीं है। हम इन वक्र रेखाओंसे देखते हैं कि जब सौरताप कम होने लगता है तब

भी कुछ समय तक तापक्रम बढ़ता ही जाता है और इसी

चित्र ४ — भिन्न-भिन्न अक्षांशों पर सौरतापका वार्षिक घटना बढ़ना

प्रकार जब सौरताप बढ़ने लगता है तब भी तापक्रम घटता ही जाता है। इसका कारण यह है कि जब तक वायुमण्डल द्वारा प्राप्त गर्मीसे उसके द्वारा फेंकी जाने वाली गर्मीकी मात्रा अधिक होती है तब तक तापक्रम बढ़ता जाता है और इसके विपरीत न्यूनतम तापक्रमकी अवस्थामें होता है।
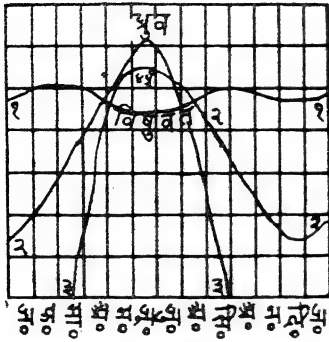
इस प्रकार शीतोष्ण कटिबन्धमें ठीक सौरतापकी तरह (वक्र रेखा २. चित्र ४) ग्रीष्म कालमें एक बार अधिकतम और शीतकालमें एक बार न्यूनतम तापक्रम होता है (वक्र रेखायें 'अ', 'प' और 'ल' चित्र ३) और सौरतापसे तापक्रमका अधिकतम और न्यूनतम लगभग २० दिन बाद होता है।

ध्रुव-वृत्तके उस पार अर्थात् शीत कटिबन्धमें एक ऋतु वह आती है जब सूर्य बिलकुल नहीं निकलता। इसलिये जब तक सूर्य नहीं निकलता तापक्रम बराबर गिरता जाता है। इसीलिये शीत-कालमें जैसे ही हम ध्रुवोंकी तरफ चलते जाते हैं तापक्रम कम होता जाता है; ध्रुव पर न्यूनतम तापक्रम २० मार्चके लगभग होता है।

समतापिक चार्ट:—पृथ्वीके ऊपर तापक्रमके वितरणको प्रकट करनेका सबसे अच्छा तरीका समतापिक रेखायें हैं। उपर्युक्त रीतिसे वार्षिक तथा मासिक नॉर्मल तापक्रम मालूम कर लिया जाता है। इन तापक्रमोंको एक नकशे पर अंकित कर देते हैं और फिर भिन्न-भिन्न स्थानोंके एक ही तापक्रमको वक्र रेखाओं द्वारा जोड़ देते हैं। इन रेखाओंको समतापिक रेखायें कहते हैं। यदि यह चार्ट मासिक नॉर्मल तापक्रमसे बनाया जाता है तो इसे अमुक महीनेका मासिक समतापिक चार्ट कहते हैं। यदि वार्षिक नॉर्मल तापक्रम
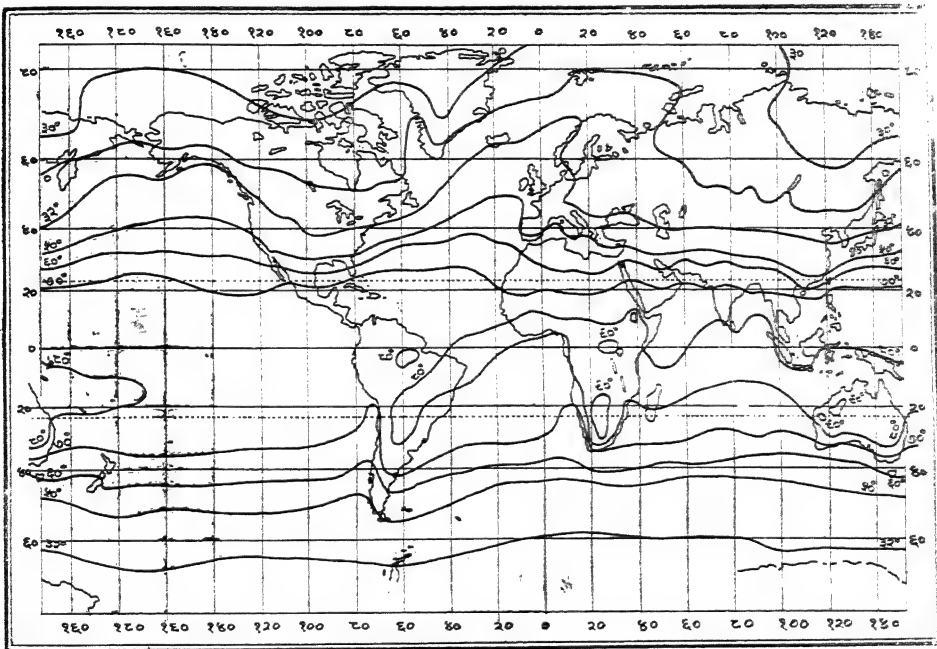
भूमण्डल की जनवरी मास की समतापिक रेखायें

चित्र ५

से बनाया जाता है तो इसे वार्षिक समतापिक चार्ट कहते हैं। यहाँ पर दुनियाके ३ नकशे २ मासिक समतापिक चार्टके १ जनवरीका, दूसरा जुलाईका और तीसरा वार्षिक समतापिक चार्ट दिया जाता है (चित्र ५, ६ और ७)। इन चित्रों द्वारा देखा जा सकता है कि समतापिक रेखायें एक दूसरेके समानान्तर नहीं हैं। इसके कई कारण हैं जिनमें समुद्री धारायें मुख्य हैं।

भौगोलिक विषुवत् रेखाके निकट ही पहुँच जाती है और प्रशान्त महासागरके बीचोबीच तो भौगोलिक विषुवत् रेखा से कुछ नीचे दक्षिणकी तरफ भी पहुँच गई है। पृथ्वीपर इसके विपरीत तापक्रमिक विषुवत् रेखा सदैव उत्तरी गोलार्द्ध ही में रहती है और जैसे-जैसे हम समुद्रसे दूर पृथ्वी पर पहुँचते जाते हैं वैसे-ही-वैसे तापक्रमिक विषुवत् रेखा भी उत्तर हीकी ओर खिसकती जाती है।
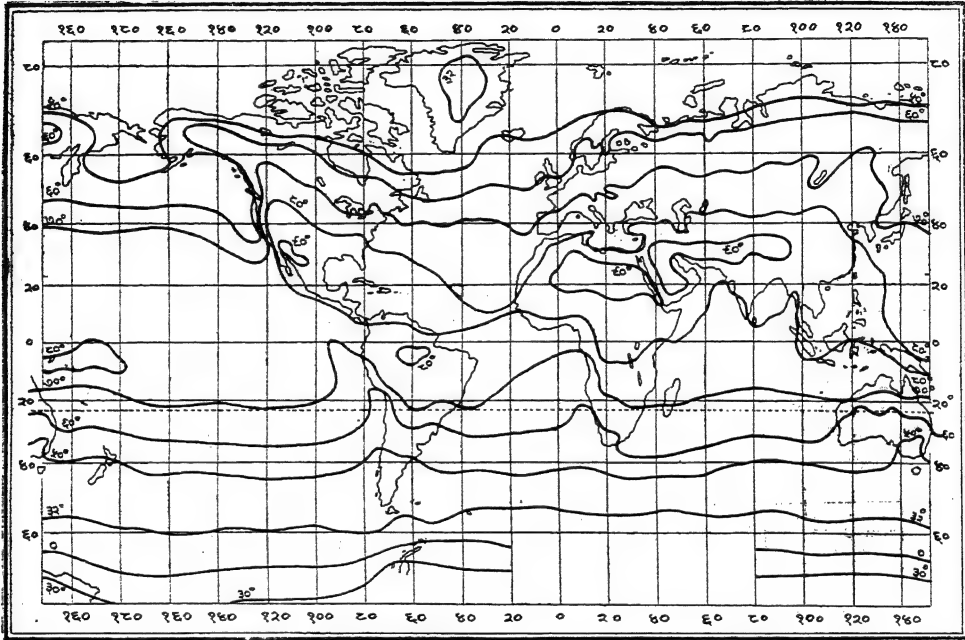
भूमण्डल की जुलाई मास की समतापिक रेखायें

चित्र ६

इन समतापिक चार्टों द्वारा यह आसानीसे देखा जा सकता है कि सबसे अधिक तापक्रम भौगोलिक विषुवत रेखासे थोड़ा उत्तरके प्रान्तोंमें होता है। यदि हम प्रत्येक मेरीडिनके उस विन्दुको देखें कि जहाँ तापक्रम सबसे अधिक होता है और फिर उन विन्दुओंको एक वक्र रेखासे जोड़ दें तो एक ऐसी रेखा बन जाती है जो अधिकतम तापक्रमकी रेखा कहलाती है। इसको तापक्रमिक विषुवत् रेखा कहते हैं। तापक्रमिक विषुवत् रेखा भी एक समतापिक रेखा है। यह प्रशान्त महासागरमें २६° उत्तर अक्षांश पर होकर अफ्रीकामें लगभग ३०° उत्तर अक्षांश पर होकर गुज़रती है। महासागरमें तो तापक्रमिक विषुवत् रेखा भी

तापक्रमिक विषुवत् रेखाको देखकर यह निष्कर्ष निकलता है कि उष्ण कटिबन्धमें उत्तरी गोलार्द्ध दक्षिणी गोलार्द्धकी अपेक्षा अधिक गर्म होता है और होना भी ऐसा ही चाहिये, क्योंकि दक्षिण गोलार्द्धमें अधिकतर पानी ही पानी है और उत्तरीमें पृथ्वी, क्योंकि भौगोलिक विषुवत् रेखा ४५° उत्तर और ४५° दक्षिण अक्षांशों तक पृथ्वी आम तौर पर पानीसे ज्यादा गर्म होती है। ४५° अक्षांशों से परे इसके विपरीत अवस्था होती है, यानी समुद्र पर तापक्रम पृथ्वीकी अपेक्षा अधिक होता है इसलिये ४५° अक्षांशोंके उस पार दक्षिणी गोलार्द्ध उत्तरी गोलार्द्धकी अपेक्षा अधिक गर्म होगा और ऐसा ही समतापिक चार्टों

द्वारा भी प्रकट होता है। हाँ, एक बात लिखनी आवश्यकीय है कि निरीक्षणों द्वारा मालूम किया गया है कि शीत कटिबन्ध में उत्तरी ध्रुव दक्षिणी ध्रुवकी अपेक्षा अधिक ठण्डा होना है। इसका कारण दक्षिणी ध्रुवके पास बड़े देशका होना है। यहाँ एक सारिणी दी जाती है जिसमें उत्तरी और दक्षिणी गोलार्द्धके भिन्न-भिन्न अक्षांशों पर तापक्रम तथा पृथ्वीका वितरण दिया गया है।
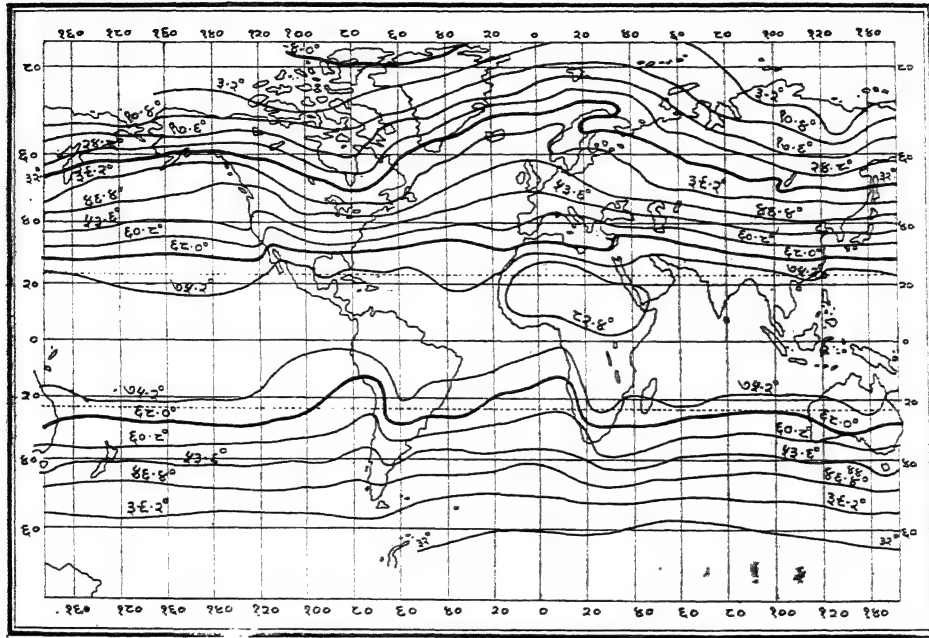
भूमण्डल की वार्षिक समतापिक रेखायें

चित्र ७

पृथ्वीकी सतह पर भिन्न-भिन्न अक्षांशों पर औसत तापक्रम

अक्षांश	उत्तरी गोलार्द्ध				दक्षिणी गोलार्द्ध			
	जनवरी	जुलाई	वार्षिक	पृथ्वी	जनवरी	जुलाई	वार्षिक	पृथ्वी
ध्रुव	−४१·०	−१·०	−२२·५	१	−११·०	−४२·०	−३०·०	१·००
८०	−३२·२	२·०	−१८·१	०·२२	−७·४	−३६·०	−२४·७	१
७०	−२६·३	७·३	−१०·७	०·४०	−१·३	−२३·९	−१३·३	१
६०	−१६·१	१४·१	−१·१	०·५२	१·२	−१०·३	−४·१	०
५०	−७·०	१८·१	५·८	० ५३	८·३	२·९	५·६	०·०२
४०	४·९	२४·०	१४·०	·४७	१५·५	९·०	१२ ०	०·०९
३०	१४·६	२७ ३	२०·३	०·४०	२१·८	१४·६	१८·४	०·१६
२०	२१·९	२८·३	२५·२	०·३२	२५ ४	२०·९	२३·०	०·२०
१०	२५·८	२६·९	२६ ७	०·२५	२६ ३	२३ ९	२५·३	०·२१
विषुवत् रेखा	२६·४	२५·६	२६·२	० २२	२६·४	२५ ६	२६ २	०·२२

इस सारिणी द्वारा यह मालूम हुआ कि दोनों गोलार्द्धोंका, समस्त पृथ्वीका—जनवरी जुलाईका- और वार्षिक औसत तापक्रम इस प्रकार है:—

	जनवरी	जुलाई	वार्षिक
उत्तरी गोलार्द्ध	८·१	२२ ४	१५·२
दक्षिणी गोलार्द्ध	१७·०	९·७	१३·३
समस्त पृथ्वी	१२·५	१६·१	१४·२

गर्मीके दिनोंमें यद्यपि उत्तरी गोलार्द्धमें ध्रुवोंपर अधिक सौरताप होता है तब भी वह प्रान्त सबसे अधिक ठण्डा होता है, क्योंकि ध्रुव सर्वदा बर्फ़से ढके रहते हैं। इससे बहुतसी सौर-शक्ति परावर्तित हो जाती है और बहुतसी

शक्ति बर्फको पिघलानेमें लग जाती है। सर्दीके दिनोंमें उत्तरी मध्य साइबेरिया सबसे अधिक ठण्डा होता है और गर्मीके दिनोंमें उत्तरी अफ्रीका सबसे अधिक गर्म पृथ्वीकी सतह पर अब तक सबसे कम तापक्रम–६९.८° सेण्टीग्रेड बर्चोजांस्क (उत्तरी मध्य साइबेरियामें) सन् १८८५ में निरीक्षण किया गया था और सबसे अधिक तापक्रम ५३° सेण्टीग्रेड ओनारग्ला (बुलगेरियामें) सन् १८७९ से निरीक्षण किया गया था
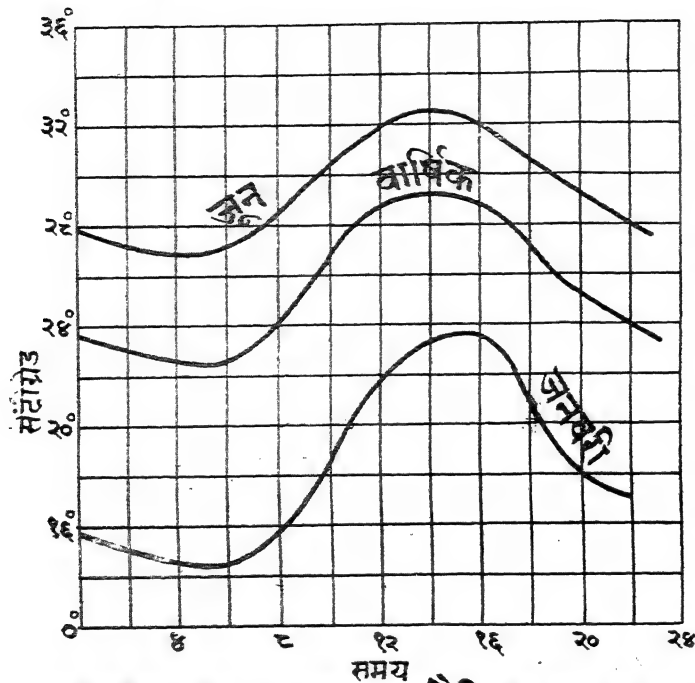
अलीपुर पर तापक्रम का दैनिक घटाव बढ़ाव

चित्र ८

दैनिक घटाव-बढ़ाव :—तापक्रमका दैनिक घटाव-बढ़ाव मालूम करनेके लिये विशेष स्थानपर दिनके भिन्न-भिन्न समय पर तापक्रमका निरीक्षण किया जाता है और फिर बहुतसे निरीक्षणों द्वारा औसत निकाल दिया जाता है। यहाँ पर एक चित्र (चित्र ८) दिया जाता है जिसमें अलीपुरके तापक्रमका दैनिक घटाव-बढ़ाव दिखाया गया है।

ऋतुओं और अक्षांशोंके तापक्रमके दैनिक घटाव-बढ़ाव पर प्रभाव :—क्योंकि तापक्रमका दैनिक घटाव-बढ़ाव भी किसी भी किसी समयमें सौरतापके प्राप्त होने पर निर्भर होता है और सौर-ताप ऋतुओं और अक्षांशोंके अनुसार घटता-बढ़ता रहता है। इसलिये ऋतुओं और अक्षांशोंका प्रभाव तापक्रमके घटने-बढ़ने पर पड़ता है।

विषुवत् रेखा पर ऋतुओंके कारण सौरतापमें अन्तर बहुत कम होता है और दिन और रातकी लम्बाई भी करीब-करीब समान हो रहती है। इसलिये दैनिक घटाव-बढ़ावका झोंटा तमाम साल लगभग एकसा ही रहता है।

शीतोष्ण कटिबन्धमें ऋतुओंके साथ-साथ झोंटेमें बहुत अन्तर होता है। यह गर्मीके दिनोंमें जब कि सौर-ताप कम होता है और नैश-विकिरण भी कम होता है तब अधिक होता है।

ध्रुव वृत्तमें शीतकालमें रात्रि ६८° अक्षांश पर ४१ दिनकी ७०° पर ६४ दिनकी ३५° पर १०५ की और ८०° पर १३४ दिनकी होती है। इस समयमें तापक्रमका कोई नियमित बढ़ना-घटना नहीं होता। ग्रीष्म कालमें सूर्य कभी नहीं डूबता परन्तु क्षितिजसे उसकी ऊँचाई कम-अधिक होती है। इसलिये तापक्रममें नियमित रूपसे दैनिक घटना-बढ़ना होता है। अधिकतम तापक्रम तो दूसरे प्रदेशों की तरह यहाँ भी १४ बजेसे लेकर १५ बजेके भीतर होता है। परन्तु न्यूनतम तापक्रम १ बजेसे लेकर २ बजेके भीतर होता है। ध्रुव पर तो, क्योंकि सूर्यकी ऊँचाईमें कोई परिवर्तन नहीं होता इसलिये तापक्रमका दैनिक घटना-बढ़ना भी नहीं होता।

तापक्रमके दैनिक घटने-बढ़ने या अन्य बातोंका प्रभाव—

यह तो हुआ अक्षांशोंके अनुसार तापक्रम का दैनिक घटना-बढ़ना परन्तु तापक्रमके घटने-बढ़नेमें और भी बातें अपना प्रभाव रखती हैं जैसे आकाशमें बादलोंका होना, किसी स्थानकी भौगोलिक परि-स्थिति, ऊँचाई इत्यादि।

जब आकाशमें बादल होंगे तो सौरताप बादल-रहित दिनोंकी अपेक्षा कम मिलेगा।

तापक्रम पर मिट्टीकी जातिका भी प्रभाव पड़ता है। रेतीला मैदान जल्दी गर्म और ठण्डा हो जाता है। जो स्थान समुद्रके निकट होते हैं उनका दैनिक घटाव-बढ़ाव उन स्थानोंकी अपेक्षा जो समुद्रके दूर होते हैं कम होता है।

जैसे-जैसे हम ऊपर उठते जाते हैं वैसे ही वैसे ताप-क्रमके दैनिक घटाव-बढ़ावमें कमी होने लगती है, परन्तु पठारों पर यह बात लागू नहीं होती और वहाँ ऊँचाईके साथ-साथ तापक्रमके दैनिक घटाव-बढ़ावमें अन्तर पड़ता जाता है।
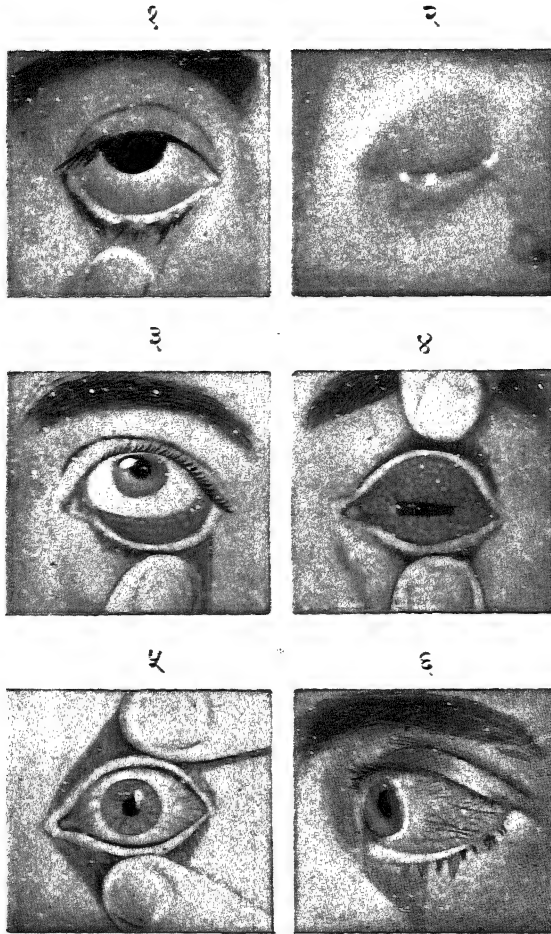
आँख उठना।

१-साधारण आँख उठना; २-सूज़ाक की छूत से उठी आँख; ३-रवेदार अभिष्यंद; ४-रोहा; ५-कनीनिका पर रवे; ६-एपिसक्लेराइटिज़।

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते.
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्याभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ५२ | प्रयाग, मकर संवत् १९९७ विक्रमी | जनवरी, सन् १९४१ | संख्या ४

मधु

[ले०—श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालङ्कार]

पुष्प-मधुका निर्माण

पौधे अपने पोषणके लिए शर्करा बनाते हैं। यह शर्करा इनके छोटे-छोटे अणुओंमें विद्यमान रस-द्वारा पौधेके विभिन्न भागों तक उपयोगके लिए पहुँचाई जाती है। फूलोंमें जब गर्भाधान हो जाता है तब गर्भकी वृद्धि और पोषणके लिए इस पोषक खाद्यकी अपेक्षाकृत अधिक आवश्यकता होती है। इसका प्रबन्ध पौधा पहलेसे ही कर लेता है और इस रूपमें कि खिलनेके समय फूलोंकी ओर शर्कराका प्रवाह अधिक हो जाता है। यह प्रवाह इतना अधिक बढ़ जाता है कि फूल इसका उपयोग करके इसे अपना अंग नहीं बना सकते, बल्कि यह बढ़ी हुई शर्करा फूल, गर्भ और बीजके लिए हानिकारक होती है। आवश्यकतासे अधिक बढ़ी हुई शर्कराको फूल अपने आधारमें स्थित रस-स्रावी ग्रंथियोंसे बाहर निकाल देता है जो फूलकी पंखुड़ियोंके प्याले में मीठे रसके रूपमें संचित हो जाता है। यह अब अपने उत्पादक फूल या बीज किसीके लिए भी उपयोगी नहीं है, परन्तु प्रकृति वानस्पतिक जगत्के गर्भाधानको इसके द्वारा पूरा करवाती है।

बीजोंके निर्माणके लिए यह आवश्यक है कि पुरुष पुष्पके पराग-कण मादापुष्प तक पहुँचाए जायँ। फूलका आकर्षण वर्ण, हवामें दूर तक फैली हुई मनो-मोहक सुगंध और उनमें विद्यमान मधुर रस कीड़ों-पतंगोंको हठात् अपनी ओर खींच लेते हैं जिनमेंसे मधु-मक्खी बहुत महत्व-पूर्ण है, क्योंकि पुष्प-रस और पराग दोनों ही इसके भोजन होते हैं। भोजनकी खोजमें उड़ती हुई मक्खियाँ फूलों पर बैठती हैं और इस मीठे रसको अपनी जीभ द्वारा खींच लेती हैं।

पुष्प-मधु और शहदमें भेद

यह रस वह शहद नहीं है जो हम खाते हैं। मक्खियों द्वारा रास्तेमें जमा किए हुए शहद और फूलों द्वारा उत्पा-दित पुष्प-रसमें अवश्य भेद है। फूलोंके रसमें, मक्खियों से इकट्ठा किये जानेसे पूर्व, पक्व शहदका कोई भी गुण मुश्किलसे होता है। पुष्प-रसमें तीन चौथाई भाग सामान्य जल होता है जिसमें बीस प्रतिशतक गन्नेकी शर्करा घुली रहती है, शेष भागमें आवश्यक उड़नशील तेल और निर्यास होते हैं जिसके कारण इसकी विशेष गन्ध होती है।

पक्क मधुमें जलीयांश बहुत थोड़ा होता है, अपने छठे हिस्से से निश्चय ही अधिक नहीं होता; इसकी शर्करा गन्नेकी शर्करा नहीं होती। यह निश्चित रूपसे अम्लीय प्रतिक्रिया वाला होता है जब कि पुष्प-रस सदा उदासीन प्रतिक्रिया देता है और इसमें पुष्प-रसोंके तेल तथा सुगन्धित पदार्थ परिपक्व होकर सुविदित मधुके स्वादमें बदल गये होते हैं।

मीठे पुष्प-रसको ही आम-तौर पर गलतीसे शहद कह दिया जाता है। बचपनमें खेलते हुए कौतुकवश सफ़ेद फूल वाले बांसे या बन-ज्वाला-पलाशके फूलोंमेंसे आपने पुष्प-रसकी एक बूँद भी चूसी हो तो आप सहज ही जान सकते हैं कि पतलेसे पुष्प-रसकी उस नन्हीं-सी बूँदमें मक्खीके छत्तेके शहदकी तुलनामें कितना अधिक स्पष्ट अन्तर है। शर्करा होनेके कारण दोनों द्रवोंमें मिठास है, यह सच है। परन्तु पुष्प-रस एक पतला द्रव है जिसमें पानीकी उच्च प्रतिशतकता है और उसमें प्रायः एक ऐसा स्वाद होता है जो स्वतः ही उसके उत्पादक फूलकी ओर धुँधला-सा संकेत करता रहता है। शहद अधिक गाढ़ा होता है और इसमें पानी कहीं कम रह जाता है और सामान्तया इस विशेष फूलकी गन्ध या स्वाद नहीं होते। यद्यपि कुछ प्रकारके फूलों पर लाये गये शहदको चतुर विज्ञ पहिचान सकता है। कोठरियोंमें रक्खे हुए शहद में अपने जनक फूलकी गन्धकी ज़रा-सी आभा होती है और कुछ अंशमें शहदका स्वाद उसके जनक फूल पर निर्भर करता है। यद्यपि मौसमके अनुसार जिसमें यह संचित किया गया है, शहदकी गन्ध और स्वादमें अन्तर होता है, पर इसका रासायनिक संघटन सदा वही रहता है।

शहदका निर्माण

शहदके निर्माणकी प्रक्रिया तभीसे आरम्भ हो जाती है जब मक्खी फूलोंके प्यालेसे पुष्प-रस खींचती है। अपक्व पुष्प-रस और तैयार शहदमें भेद कुछ तो मक्खीके शरीरके अन्दर कुछ बाहर किये जाते हैं। मक्खीको जीभसे पुष्परस चूसा जाता है और उसकी भोजन-प्रणालीसे गुज़रकर शहद-कोष (honey rac) के रूपमें ज्ञात इसके पाचक यन्त्र या प्रथम आमाशयमें पहुँचता है। द्रव जल शहद-कोषमें जाता है। तब जिह्वाके नीचे स्थित रस-स्रावी ग्रंथियोंके अम्लीय स्रावसे मिलता है। यह सम्भव है कि पानीका कुछ अंश शहद-कोषमें शहदसे अलग हो जाता हो। मक्खियोंका लाला स्राव और पाचकके यन्त्रके रसका स्राव भी इसके साथ मिलकर इसमें कुछ रासायनिक परिवर्तन करता है। छत्ते पर लौटने पर अपने सिरमें विद्यमान किन्हीं ग्रन्थियोंके स्रावोंसे मिश्रित अब घनीभूत द्रवको मक्खी अपने मुखसे निकालकर कोठरियोंमें रख देती है। फॉर्मिक एसिड अब रसमें उपस्थित होता है और यह सम्भवतः कृमिहरका कार्य करता है और शहदको सड़नेसे बचाता है। अब तक शहद पक्क नहीं है और अपनी अन्तिम घनता तक नहीं पहुँचा। यह अभी बहुत अधिक द्रव है। छत्तेमें रखनेके बाद भी इसमें कुछ और परिवर्तन होते हैं। धाय मक्खियाँ भी इस कार्यमें सहायता करती हैं। वे अपने परोंसे पंखा करके इसका पानी उड़ाती हैं, इसके साथ अपना लाला स्राव मिलाती हैं, इसे गाढ़ा करती हैं और तब पुष्प-रस जो अपक्क मधु है, परिपक्व मधुके रूपमें बदल जाता है।

जब मक्खी छत्ते पर पहुँचती है तब अपना बोझ सीधा कोठरियोंमें नहीं रख देती परन्तु घरमें रहने वाली मक्खियोंमेंसे एक को दे देती है। वह फिर उसमें कुछ परिवर्तन करके उसे शहदकी कोठरीमें रखती है। यह भी सम्भव है कि कोठरीमें पहुँचनेसे पूर्व फिर दुबारा शहद दूसरी मक्खीको दे दिया जाता हो लेकिन यह बात अब तब निर्णीत नहीं हुई। इस प्रकार एक दूसरेको देनेका प्रभाव यह होता है कि मौलिक रसमें अम्लीय गुण और अधिक मिल जाते हैं।

जैसे शराब या आसव अरिष्ट बनाये जाते हैं छत्तेमें शहद ठीक इसी तरह रक्खा होता है। यह लगभग ८० से ८५ तापमान पर रक्खा जाता है और तब इसका फालतू जल-वाष्प बनकर निकल जाता है। इस प्रकार कच्चा पुष्प-रस अन्तिम अवस्थामें शहदमें परिवर्तित होनेसे पूर्व अपने प्राकृतिक भारका कम-से-कम दो-तिहाई कम हो जाता है। पकावस्थामें पहुँचने पर शहदमें ताज़े द्रवकी अपेक्षा बारह प्रतिशतक कम जल होता है। पुष्प-रसको गन्ध और स्वाद देने वाले उड़नशील तेलोंकी भी इसमें बहुत

कमी होती है। अत्यधिक ऊष्मा, शीत और बाह्य वायु-मण्डलके प्रभावसे खराब न होने देनेके लिए मक्खियाँ इसे मोमकी हलकी स्तरसे कोठरियोंमें सोल कर देती हैं। कहते हैं, अन्तिम क्षण जब कि पक्व मधुसे परिपूर्ण प्रत्येक कोष्ठ मोमके पतले आवरणसे बन्द कर दिया जा रहा होता है तब मक्खी पेट घुमा कर अपने डंकसे विषकी एक बूँद शहदमें डाल देती है। यद्यपि इस बातकी पुष्टिके लिए हमारे पास ज़रा भी प्रमाण नहीं है। विष-ग्रन्थि (poisonsac) में विद्यमान पदार्थोंमें, यह सत्य है, मुख्यतया फार्मिक ऐसिड होता है जो प्रबल सुरक्षक है, और निस्सन्देह यह भी सत्य है कि शहदोंमें अत्यल्प परिमाणमें ऐसिड पाया जाता है। यह भी सिद्ध किया जा चुका है कि यह अम्लीय मक्खीके रस-स्रावी संस्थान (glandular system) से ही शहदमें गया होता है और उसके डंकसे नहीं।

शहद्के साधारण तथा रासायनिक गुण

आधुनिक वैज्ञानिक शहदको यही तो कहेगा कि बीस प्रतिशतक पानीमें अस्सी प्रतिशतक शर्करा या अधिक ठीक शब्द प्रयुक्त करें तो ग्लूकोज़ (glucose) या अंगूरी शर्कराका चिपचिपा सुगन्धित अर्द्धद्रव घोल है जो कुछ कालके लिए शुष्क वायुके सम्पर्कमें आनेसे धीरे या जल्दी हो, उसके बननेके स्रोतके अनुसार, स्फटिकाकार हो जाता है। शहदकी यह परिभाषा पर्याप्त नहीं कही जा सकती। जिस प्रकार प्रत्येक फूलका एक विशेष रंग और सुगन्ध होता है उसी प्रकार प्रत्येक शहदकी अपनी निजकी विशेषता होती है। अधिकतर शहद सफ़ेद रंगके होते हैं, पर ये दूधिया सफ़ेदसे हरे, पीले और भूरे रंगकी आभा लिए हुए सफ़ेद रंगके हो सकते हैं और यह रस पर निर्भर करता है कि निम्बू, संतरा, अमलतास, बिल्व या और किस परसे प्राप्त किए गये हैं। सरल तरु अपने गहरे हरे रंगके पत्तोंके रंगका मधु देता है। शीतकालीन उद्यान पुष्प नीला कौर्न फ्लावर हलके हरे रंगका मकरन्द देता है जो समय बीतने पर सफ़ेदमें बदल जाता है। कुछ वृक्ष और झाड़ीदार पौधे अपने मधु-कोषोंसे शोकके आँसू बहाते हैं—चेस्टनट काली आभा लिये भूरे रङ्गका पुष्प-रस स्रवित करता है।

मक्खियोंमें स्वादकी शक्ति सम्भवतः बहुत कम उन्नत होती है। शहद इकट्ठा करनेमें यह पसन्दका ख़्याल सर्वथा नहीं करती। जिन पौधोंको हम घृणायुक्त और दुर्गन्ध देने वाला समझते हैं उनको ये उपेक्षासे नहीं देखतीं। ज़हरीले फूल इसकी पहुँचसे बाहर नहीं होते। शहदके गुण की बारीकीका मक्खीको विचार नहीं होता। बहुत गन्दे स्थानों पर उत्पन्न फूलोंके रसोंसे ये नफ़रत नहीं करती। जहाँ इन्हें अधिक मात्रामें शहद मिलेगा ये वहींसे अनवरत इकट्ठा करने लग जायँगी। फूल ख़ूब खिले हुए हों तो ये सूर्योदयसे पूर्व छत्ता छोड़ देंगी और आमतौर पर जिस समय लौटती हैं उससे देरमें लौटेंगी। फूल मुरझा जानेके बाद यह क्रियाशीलता मन्द पड़ जाती है। इसलिए शहदके गुण-सम्बन्धमें भी बहुत अधिक असमानता है। एक ज़िलेकी पैदावार दूसरेसे भिन्न होती है। वसन्तका शहद पतझड़के असदृश होता है। यहाँ तक कि साथ ही दूसरे छत्तेमें सदा एक जैसी चीज़ नहीं मिलती।

मौसममें जिस प्रकारके फूल अधिक होते हैं उसीका रस प्रचुर परिमाणमें लाये जानेके कारण उस रससे बना शहद भी उन्हीं गुणों वाला होता है। यदि आपका मक्षिका-गृह काश्मीरमें कमलोंके तालाबके पास या किसी और ऐसे ही स्थान पर है तो कमल फूलोंके खिलनेकी ऋतुमें आप अपनी मक्खियोंसे कमलके रङ्ग, गन्ध और गुणका शहद ले सकते हैं। चीड़के जंगलोंके शहदमें पहाड़ोंके ढालों पर ऊँचे उगे हुए चीड़के सीधे वृक्षोंमेंसे गुज़र कर आती हुई उसके तैलीय रेज़िनकी स्वास्थ्य-प्रद वायुकी गन्ध होगी। खिली हुई सरसोंके पीले खेत चारों तरफ़ नज़र आते हों तो आपका मक्षिका-गृह भी आपको सुनहरी पीले रङ्गका शहद देगा। पुष्पित निम्ब निकुञ्ज या निम्ना पथसे मक्खियोंने रस लिया है तो शहदमें नीमके फूलोंकी-सी मीठी कड़वी गन्ध होगी और यह फूलों जैसा ही ईशद्-हरित-पीत वर्ण होगा। स्वादमें यह शहद अपनी गन्धका अनुसरण करेगा अर्थात् ज़रा-सा तिक्त मधुर होगा। इसे आप नीमकी तरह त्वचाके रोगोंमें, रक्त-विकारोंमें, नेत्र-रोगोंमें और इसी तरह उन सब रोगोंमें लाभदायक पायेंगे जिनमें नीमका व्यवहार करते हैं। इसी तरह अमलतास, सप्तपर्ण, अनन्तमूल, केला, चम्पा आदिके फूलनेके समय अनेक प्रकारके औषधो-

पयोगी गुणों और सुगन्धोंका शहद प्राप्त किया जा सकता है। कार्तिकका शहद शरद् ऋतुके विशुभ्र आकाश और निर्मल चन्द्र-ज्योत्स्नाका मानो प्रतीत होता है।

कड़वे और घिनौने मधु

क्या आप सोच सकते हैं, उदाहरणके तौर पर, बकह्वीट या पैगोफ़ाइरसका मधु-कोष एक तीव्र गन्ध उच्छ्वसित करता है, जब कि मेथीका जी मचलाने वाली और बौक्सका एक तिक्त गन्ध, विशालकाय युकलिप्टसका बकबको और मसालेकी-सी और होर्स चेस्टनटकी कड़वी। इसमें ज़रा भी सन्देह प्रतीत नहीं होता कि कुछ प्रकारके शहद या कुछ फूलोंसे इकट्ठे किये गये शहदोंमें कम या अधिक ज़हरीलापन होता है। भारतमें यह तथ्य मुद्दतसे ज्ञात है। एन्सले एक विभिन्न गहरे हरे रङ्गको क़िस्मके शहदका ज़िक्र करता है जो इतना अधिक ख़राब होता है कि वैद्य इसे भक्ष्य नहीं समझते। थोड़ेसे परिमाणमें कुर्गके जंगलसे प्राप्त एक शहदका डाक्टर विदी उल्लेख करते हैं जिससे शीत पित्त, शिरोवेदना, अत्यन्त जी मचलाना, शिथिलता और तीव्र पिपासा जैसे लक्षण उत्पन्न हो गये थे। हूकरने हिमालय जर्नलमें विषैले शहदोंका वर्णन किया है। वह लिखता है, पूर्वीय नैपालमें वसन्तमें शहद नहीं इकट्ठा किया जाता क्योंकि इस समय इसमें द्रहोडोडेण्ड्रोनके फूलोंका रस होनेसे यह विषैला हो जाता है। स्ट्रेहलने भो लिखा है कि बर्मामें किन्हीं ख़ास मौसमोंमें प्राप्त किया गया शहद विषैला होता है। लङ्कामें रबरके फूलनेके मौसममें शहदका स्वाद कड़ुवा होता हैं। ज़ेनोफ़ोन सिपाहियोंका एक किस्सा लिखता है जिनमें-से पोण्टसका शहद खानेसे कुछ सिपाही आपेसे बाहर हो गये थे। एरिस्टोटल एक शहदका उल्लेख करता है जिसने लोगोंको पागल बना दिया था, पर बादमें उपचारसे ठीक हो गये थे। जिओर्जिया निवासी एक नशीले शहदसे परिचित हैं जिसका उद्गम द्रहोडोडेण्ड्रोन पोण्टिकम है। प्लोनी डिओस्कोरोयड्सकी कृतियोंमें इसका वर्णन है। अमेरिकाके कुछ प्रान्तोंका शहद हानिकर कहा जाता है। शिमला और उसके आस-पासके पहाड़ोंके निवासी मधु-मक्खी-पालकोंका विश्वास है कि रातमें वर्षा हुई हो अगले दिन शेगुल (पाइरस पैशिया) के फूलोंसे मक्खियाँ रस लेकर लौट रही हों तो उनमेंसे अनेक उसे खाती हैं और उसके विषैले प्रभावके कारण मर जाती हैं। यह भी उन लोगोंका विश्वास है कि जब मक्खियाँ देवदारुके नर-पुष्पोंसे शहद इकट्ठा करती हैं तो छत्तेमें दो-तिहाई शहद सर्वथा कड़ुवा और निकम्मा होता है। अप्रैल और जुलाईमें संचित शहद जलीय और पीले रङ्गका होता है।

यद्यपि कोई इस प्रकारके घिनौने शहदोंकी कल्पना नहीं करेगा परन्तु वास्तवमें ये सब होते हैं। मधुलता नागरमोथा, निम्बु, आरग्वध आदिकी भोनी मीठी सुगन्धें पुष्परसके साथ मक्खियाँ अपने साथ लाती हैं। एक ही छत्तेमें जहाँ सेनफ़ोयन, लैवेण्डर, पोदीना, तुलसी, जामुन, अजवायन, नारङ्गी आदि अनेक प्रकारके हज़ारों पौधोंके स्वादु और प्रसादकर शहद होते हैं वहाँ घिनौने शहदोंके अप्रिय और अरुचिकर गन्ध और स्वाद उनमें ही एकाकार हो जाते हैं। वास्तवमें किसी दूसरे भोजनका ऐसा रोमांटिक सम्मिश्रण न होगा जैसा शहदका। शहदकी प्रत्येक बूँद एक नाजुक फूलकी गोदमें उदय होती है जहाँ यह ग्रोष्मके सूर्यकी किरणोंसे मिलती है और प्रातःकालीन ओस-कण इसे स्नान कराते हैं। आपको महज़ अपनी आँख बन्द करनी होगी और उत्फुल्ल क्लोवरके खेतोंका चित्र आपके सम्मुख होगा, फेफड़ोंको असंख्य भोले फूलोंसे सुवासित वायुसे भर लीजिये या अपनी स्मृतिमें एक बार फिर खिले हुए पद्म पुष्पों वाली झीलमें या नारङ्गीके सुवासित कुञ्जोंमें सैर कीजिये जिससे इस अतुलनीय भोजनके उद्भवको अनुभव कर सकें, आप मधुकी अनुभूतिसे सराबोर हो जायँगे। वस्तुतः, मधुकी एक बूँदमें कितनी सुन्दर मूक कविता है। छोटी-सी बूँदमें सशक्त राग भरी ताल है, उष्णता और प्रकाशका सङ्गोत है जिसमें इस बूँदकी सृष्टिमें सहायक सहस्रों वसन्तोंको सूक्ष्म सुरभिका सार और कोमलतम वर्णोंका झलकें एक सामान्य सामञ्जस्यमें चमकती हैं, गाती हैं।

आयुर्वेदकी दुरावस्था

[ले०—स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य, अमृतसर]

यदि आयुर्वेदके प्राचीन गौरवपूर्ण यौवन कालको देखा जाय और उसीके साथ विद्यमान समयको उसकी वृद्धावस्था पर विचार किया जाय तो हमें इसकी स्थिति अच्छी नहीं दिखाई देती। यह इस समय जिन भयंकर व्याधियोंसे ग्रसित होकर जीवनयापन कर रहा है इसका यदि समय पर उपचार न किया गया तो कहीं यह संसारसे अपना अस्तित्व न गवां बैठे। यह भय बढ़ता जा रहा है। सम्भव है कुछ वैद्योंको उक्त पंक्तियाँ पढ़ कर हैरानी हो और वे शायद यह भी कह दें कि लेखक पागल हो गया है। परन्तु कथनकी यथार्थताका निर्णय लेख पढ़नेपर हो जायगा।

क्या वास्तवमें वयोवृद्ध, क्रियावृद्ध, विचारवृद्ध आयुर्वेद रोग-ग्रसित हैं? और यदि है तो वह विद्यमान चिकित्सकों को दिखाई क्यों नहीं देता? इसमें भी कुछ कारण है जिसका वर्णन आगे किया जायगा। यह तो समस्त वैद्य जानते हैं कि कोई भी रोग हो वह बिना कारणके नहीं होता। वह कारण क्या है? और रोग क्या है तथा उसके लक्षण क्या हैं? यह इस लेखका विवेच्य विषय होगा।

रोगका कारण बुढ़ापा

रोगका वास्तविक कारण है-स्वयम् वृद्धावस्था। यह तो स्वाभाविक सी बात है कि बुढ़ापा आनेके चिन्ह ही बतला देते हैं कि मनुष्य अब संसारसे चलनेकी तैयारी कर रहा है। यही सबसे बड़ा रोग है। फिर वे संसारसे चलनेके लिये जल्दी ही तैयार होते देखे जाते हैं जो युवावस्थामें सुखमय व विलासमय जीवन व्यतीत करते हैं। जो व्यक्ति जितने अधिक सुकुमार होते हैं बुढ़ापेमें वे उतने ही दुःख झेलनेमें निर्बल सिद्ध होते हैं। युवावस्थामें जिसने कष्टोंका मुँह नहीं देखा, जो सदा सुख-चैन की बंसी बजाते रहे उन्हें बुढ़ापेमें—जब कि शरीर जर्जर शिथिल हो रहा हो और शारीरिक शक्तियाँ व मानसिक शक्तियाँ जिस अवस्थामें आकर जवाब दे रही हैं ऐसे समय वह असमर्थ दीन हीन दुःखी दिखाई देने लगे तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं।

हज़ार वर्ष पूर्व आयुर्वेद की अवस्था

आजसे एक सहस्र वर्ष पूर्व तक आयुर्वेद अपनी जिस यौवनावस्थामें था उस समय यहाँ उसका कोई प्रतिस्पर्द्धी न था। आयुर्वेद रोगियोंका वह एक मात्र रखवाला था. उस समय इसकी प्रतिभाके सामने कोई ठहरने वाला दिखाई न देता था। जिधर देखो इसका एकाधिपत्य राज्य था।

जब कोई मनुष्य अपने बाहुबल या बुद्धिबलसे संसार पर विजय प्राप्त कर लेता है और जनसमूह उसके अधीन हो जाता है तो प्रायः देखा जाता है कि वह सबपर अपना अंकुश बनाये रखता है। किन्तु वह स्वयम् सबसे बली होनेके कारण "निरंकुशयः कवियः निरंकुशयः राज्ञः" वाली बात उसपर चरितार्थ होती है। ठीक यही बात उस समय आयुर्वेद पर घटी। इसे उस समय तक जो विद्या व क्रिया रूपी सम्पत्ति प्राप्त हुई उसे इसने ईश्वर प्रदत्त काँरूका खजाना समझ लिया और उसपर इसने अपने विश्वासकी यह मोहर लगा दी कि इससे बढ़कर कुबेरकी भी सम्पत्ति नहीं हो सकती। यह ईश्वर प्रदत्त है। ज्ञान विज्ञान रूपी ऐश्वर्य जो कुछ हमें प्राप्त हुआ है इससे अधिक हो ही नहीं सकता। वह तबसे ही निश्चय बनाये बैठा है कि उसके विश्वासकी मोहर कभी टूट नहीं सकती। बस तभीसे हाथ पर हाथ रखकर यह ज्यों सोने लगा है आज तक इसकी वह अभिमानकी नींद टूटती नहीं दिखाई देती।

रोग के असाध्य होने के लक्षण

जब किसीको वृद्धावस्थाका रोग लग जाता है तो उसमें सबसे बड़ी त्रुटि यह उत्पन्न हो जाती है कि उसकी मति सठिया जाती है और उसके मनमें जो भावनायें और विचार घर कर लेते हैं वे मानो पत्थरकी लकीर बन जाती हैं। जो बातें उसके भीतर बैठ गई होती हैं यदि उनके विरुद्ध आप कुछ भी कहें, सचाईको लाख प्रत्यक्ष साधनों द्वारा दिखानेकी चेष्टा करें वह एक नहीं सुनता; न कभी माननेके लिए तैयार ही होता है। ऐसे व्यक्तिको कितना ही प्रत्यक्ष प्रायोगिक विधियाँ दिखाकर आप समझाइये उसके दिमाग़में एक बात भी नहीं घुसती। यही असाध्यताका मुख्य लक्षण है।

आयुर्वेद की साम्प्रतिक अवस्था

इस समय पंच महाभूत या पञ्चतत्वोंकी जो वास्तविक स्थिति है प्रयोगोंसे दिखाई त्रिदोष सिद्धान्तकी वास्तविकता प्रमाण रक्खे जाते हैं। शरीरके अंग-प्रत्यंगकी विद्यमान संख्या को दिखाया व गिनाया जाता है तथा अनेक अंगोंके गुणधर्म-का जो विशेष ज्ञान प्राप्त हुआ है सामने रक्खा जाता है। नये और निश्चित लक्षण वाले रोगोंका विवेचन कर उनकी सत्यता दर्शायी जाती है। औषध-निर्माण तथा चिकित्साकी शैलीमें जो फेर-फार हो रहा है वह भी बताया जाता है। इन सब बातोंको यह देखता व सुनता हुआ भी कहता है-सब मिथ्या है, प्रपञ्च है, मायाजाल है। जो कुछ मेरे भीतर है वही एक मात्र सत्य है, जो कुछ मेरे मुखसे निकलता है वह ब्रह्म वाक्य है। इस बाबा वाक्यको जो प्रमाण नहीं मानता वह वंचक है, पतित है, आदि।

इस समय स्पष्ट दिखाई देता है कि जिस तरह किसी परिवारमें अत्यन्त इन्द्रिय शिथिल जर्जर शरीर वृद्ध एक कोनेमें पड़ा अपनी जीवनकी घड़ियाँ गिनता रहता है घरके छोटे-बड़े आदमी समीपसे गुजर जाते हैं, पर उस बेचारेको कोई बात नहीं पूछता। ठीक यही हाल इस वृद्धका यहाँ होता दिखाई देता है। रोगी इसकी शरण छोड़कर अन्य चिकित्सा पद्धतियोंकी शरणमें आगे चले जारहे हैं। सुबहसे शाम तक यह प्रतीक्षामें बैठा रहता है कि कोई आकर पूछे पर कठिनतासे कोई सहानुभूति दिखाता है। जो इसके पास आते भी हैं वे प्रायः अन्य चिकित्सा-पद्धतियोंसे निराश होकर इस विचारसे आते हैं कि यह वयोवृद्ध पुराना अनुभवी है। राजा और राजकर्मचारी इसकी बात नहीं पूछते। यद्यपि यह प्रतिवर्ष अपनी दयनीय दशाका रोना प्रस्तावों द्वारा रोता रहता है। दयामयी कांग्रेस ने इसे आश्वासन दिया था कि तुम घबराओ नहीं, मैं तुम्हारे लिए कुछ करूँगी। पर वह बेचारी स्वयम् अधिकारोंको छोड़ बैठी। यह इस वयोवृद्धके लिए अत्यन्त हतभाग्यकी बात हुई। अब तो सरकार इसके सेवकोंको २०–३० रुपयेमें रख रही है, फिर वेतन रूपमें नहीं, न ग्रेडही देनेके लिये तैयार है। जिस तरह घरवाले वृद्धको दूरसे रोटीका टुकड़ा दे आते हैं यही बात सरकार द्वारा इस आयुर्वेदके प्रति दिखाई जा रही है। कितना अपमान है, कितने निरादरकी बात है। यह बेचारा अपीलों पर अपीलें करता है पर सरकारके कान पर जूँ तक नहीं रेंगती।

आयुर्वेद में परिवर्तन की आवश्यकता

इसके उपासक प्रतिवर्ष देशके किसी-न-किसी भागमें हजारोंकी संख्यामें एकत्र होते हैं। वहाँ एकत्र हुए आयुर्वेदके पुजारी सिवा योग्यता प्रदर्शित करनेके और कुछ नहीं करते तथा अपनी ख्याति किस तरह फैले इस बातकी धुनमें लगे कई प्रकारके दाँव-पेंच खेलते दिखाई देते हैं। किन्तु उनके दिमागमें यह बात घुसती ही नहीं कि इस आयुर्वेदको किस तरह नवजीवन दिया जाय और कौनसे साधन काममें लाये जायँ जिससे इसके शिथिल निष्क्रिय अंग फिरसे सचेत हो कर स्फूर्ति प्राप्त करें। कुछ दिनसे काया-कल्पकी चर्चा खूब जोरसे छिड़ी है। महामना मालवीयजीने जब काया-कल्प कराया तो किसी हमारे साथी ने इन आयुर्वेद-प्रेमियोंको परामर्श दिया कि इस बुड्ढेका भी कायाकल्प होना चाहिये जब तक चोला नहीं बदलता तब तक जीवन नहीं आ सकता। उन आयुर्वेद-प्रेमियों ने यह शास्त्र-सम्मत बात भी सुननी गवारा न की। अरे काया कल्प! फिर आयुर्वेदका! कहने लगे हम जीते जी यह अनर्थ कभी नहीं होने देंगे। आयुर्वेदका जब चोला ही बदल गया तो वह क्या कभी आयुर्वेद रह सकता है। चोला बदलनेमें तो सब कुछ बदल जाता है। शरीर बदल जाता है मन बदल जाता है, विचार बदल जाता है, कार्य-व्यापार बदल जाता है। इस रद्दोबदलकी बात कभी बरदाश्त करनेके लिए तैयार नहीं। हमें तो इस ढाँचेसे प्रेम है, हम तो इसीसे चिपटे रहेंगे।

जो व्यक्ति इन्हें प्रयोगोंसे दिखाते हैं कि अरे देखो बाबा! पाँच तत्वका बना यह आयुर्वेदका चोला बदल गया है। इनके स्थान पर नये तत्व आ गये हैं। शरीर अब दोष धातु मल मूत्रका नहीं रहा। इसमें अन्य मौलिकोंका समावेश हो रहा है। ये इन बातोंको सुनते ही आग-बबूला हो जाते हैं और कहते हैं कि तुम हमारे इस वयोवृद्धका अपमान करते हो। आयुर्वेदके विरुद्ध बात करके तुम आयुर्वेदका निरादर करते हो। लोग आयुर्वेद-प्रेमियोंको दिखाते हैं कि देखो संसार-चक्र कितनी तेज़ीसे घूम रहा है, इसके चक्रमें कसकर सब बदल रहे हैं। स्वयम् वैद्योंकी पोशाक बदल रही है, धन्वन्तरि भगवानकी गद्दीके स्थानमें मेज

कुरसी आ डटी है। विल्व दानियोंका स्थान शीशियों ने ले-लिया है। साधारण धोती पगड़ीकी जगह पतलून, हैट आने लगी हैं और उन वैद्योंके हाथमें नाड़ीके स्थान पर थर्मामीटर और स्टैथस्कोप दिखाई पड़ते हैं। आयुर्वेदीय बड़े-बड़े क्वाथोंके स्थान पर रसोंकी भरमार हो गई है। कहाँ तक गिनावें, स्वयम् आयुर्वेद-प्रेमियोंको परिषद्का रूप-रंग और ढंग ही बदल गया है। जहाँ देखो जुवाबाजी, सट्टावाजीसे बढ़कर प्रस्तावबाजीका बोलबाला दिखाई देता है। फिर यह सब तो आँखका तिल ही रहा है तो इन्हें किस तरह सैकड़ों वर्षोंसे खनिजोंमें सन्दिग्धता पाई जाती है। अनेक वनस्पतियोंमें सन्दिग्धता बनी हुई है। शरीरके अनेक अंग अब सन्दिग्ध माने जाते हैं किन्तु इस विचार-वृद्ध आयुर्वेदकी दृष्टि इतनी निर्बल हो गई है कि वह बेचारा प्रतिवर्ष अपनी आँखें खोलकर इन्हें देखनेकी चेष्टा भी करती है, पर उसकी नेत्र-ज्योति इतनी हीन होगई है कि वह सन्दिग्ध असन्दिग्धमें भेद नहीं बता सकता। कहाँ तक इसकी इस वृद्धावस्थाके कारण आई हुई दुरावस्थाका वर्णन करें।

प्रोत्साहन :—अभी समय है, इस आयुर्वेदमें कुछ आभा-प्रभा दिखाई देती है; कई अंगोंमें अभी स्फूर्तिके कुछ चिन्ह दृष्टिगोचर होरहे हैं। यदि इस समय इसकी सुध न ली गई और इसके सच्चे प्रेमी अब न चेते तो पुनर्जीवन प्राप्त होना सम्भव नहीं। यदि ये आयुर्वेदके पुजारी आज भी अपने दुराग्रह और हठ-धर्मताको न छोड़ेंगे तो बस समय दूर नहीं है जब इसका कोई पूछने वाला भी न दिखाई देगा।

वन—उनके लाभ और हानि

[ले०—श्री प्रभा अष्ठाना, बी० ए०]

सभ्यताके प्रथम युगमें वन और जंगल साफ़ करके चारागाहों और कृषिके लिये स्थान बनानेकी रीति थी, परन्तु बादमें योंही बनके बन काट डाले जाने लगे। जो लकड़ी घर बनाने अथवा जलानेके काममें नहीं आती थी उसको जलयान बनानेके काममें लगा दिया जाता था अथवा विदेशों को भेज दी जाती थी। ओक और यू (yew) इत्यादि पेड़ोंकी लकड़ियाँ मेज़, कुर्सी आदि सामान बनाने के काममें आती थीं।

विशेषकर सोलहवीं शताब्दीमें बहुत अधिक जंगल काटे गये। हालैंड और इंगलैंडमें इसी समय दूसरे देशोंसे लगभग बारह हज़ार धनुष बनानेकी लकड़ी आई। बवेरिया में भी दस हजार ओकके पेड़ गिराये गये। देवदारके बहुतसे वृक्ष नमककी खानके उपयोगके लिए गिरा दिये गये। बलूत (oak) के वृक्षोंसे भी अधिक संख्यामें बोच और झाऊ (सरो) के वृक्ष गिराये गये। एक साथ बहुतसे नींबूके पेड़ अब केवल रूसमें ही रह गये हैं। लकड़ीके सामान और छोटे-छोटे हथियारोंके बनानेके कारखानोंमें अखरोटकी लकड़ी बहुत काम आती है।

विभिन्न उपयोग

इटलीकी एपेनाइन पर्वत-मालाके जंगलको रोमन लोगों ने जहाज़ बनानेके लिये काट-काट कर समाप्त कर डाले जैसा अरबों ने स्पेनमें किया था। ग्रीस और चीनमें भी ऐसा ही हुआ। इन देशोंमें वर्षाके पानीको रोकनेका कोई उपाय न रह गया। यह पानी स्वयं तो ऊँचे पर्वतों परसे नीचे गया ही पर अपने साथ-साथ अच्छी मिट्टीको भी बहाता ले गया। यह मिट्टी नीचे जाकर नहरोंमें जमा होती गई और उनको दलदल बना दिया। इन दलदलोंमें छूतकी बीमारीके कीड़े अधिकतासे उत्पन्न होने लगे और इस तरह जंगलोंके कटनेसे उन देशोंमें रोग ने घर कर लिया।

वनसे लाभ

वन ठंडी और गर्म वायुसे देशकी रक्षा करते हैं। भूमध्यसागरके देशोंमें जंगलके कट जानेके बाद जलवायु अधिक गर्म और जर्मनीके 'रोन' इलाकेमें कटनेके बाद अधिक ठंडी हो गई थी। चीनमें जंगलके साफ़ हो जानेके बादसे सदा नाशकारी बाढ़ें आया करती हैं। इसी प्रकार अन्य देशोंका भी हाल है।

बनोंसे उस देशके निवासियोंको वही लाभ पहुँचता है जो कि समुद्र-तट पर रहने वालोंको समुद्रसे। जिस प्रकार समतलके कृषक शहरके निवासियोंसे अधिक हृष्ट-पुष्ट, बलवान तथा योग्य होते हैं वैसे ही जंगली प्रदेशोंके रहने वाले इन कृषकोंसे अधिक मज़बूत होते हैं।

पिछले महायुद्धमें ग्रेट ब्रिटेनके जंगलोंका लगभग छठा भाग युद्धके सामान तैयार करनेमें नष्ट हो गया था। तब से वहाँ इस बातका बड़ा प्रयत्न किया जा रहा है कि फिरसे उतने ही जंगल हो जायँ। विभिन्न जातिके लाखों वृक्ष वहाँ लगाये गये हैं। जर्मनीमें पचीस प्रतिशत, फ्रांसमें अट्टारह और इंगलैंडमें पांच प्रतिशत भूमि वन-भूमि है। इंगलैंडका प्रतिनिधि वृक्ष बलूत है, पर अब क्योंकि जहाज़ बनानेमें धातुका प्रयोग अधिकतासे होने लगा है इसलिये इसकी मांग अधिक नहीं रह गई है।

वृक्ष लगानेमें भिन्न-भिन्न व्यक्तियों ने भी बड़ी सहायता पहुँचाई है। १७८७ से लेकर १८२९ तक लगभग अट्ठाइस लाख वृक्ष लगाये गये। स्काटलैंडका फ़रका वृक्ष भी हैम्पशायरमें लगाया गया।

दावानल से हानि

जंगलोंका एक बड़ा शत्रु दावानल है। इस दावाग्निसे केवल संयुक्त राज्य (U.S.A.) में ही प्रति वर्ष बीस लाख से लेकर चालीस लाखकी हानि हो जाती है। कनाडामें जहाँ प्रति वर्ष लगभग छः हज़ार अग्निकांड हो जाते हैं इनको बुझानेका प्रबन्ध वायुयानों द्वारा होता है। इस कामके लिये कुछ स्त्री-पुरुष और रक्षक भी रक्खे जाते हैं जो पर्वत-शिखरपर घर बना कर रहते हैं और जहाँ कहीं आग लगनेका पता पाते हैं वे उसको शान्त करनेका उपाय करते हैं। एक बार दक्षिणी फ्रांसमें एक लाख पौंडके मूल्यकी लकड़ी जल गई और ऐसे ही कनाडामें दो लाख पौंडकी। एक चौदह हज़ार एकड़की वर्ग भूमिका जंगल केवल चार घंटोंमें नष्ट हो गया क्योंकि दावाग्निकी गति अकसर तीस मील प्रति घंटा होती है। १९३८ के पहिले तीन महीनोंमें इंगलैंड और वेल्समें दावाग्निसे नष्ट हुये वृक्षोंकी संख्या दस लाख थी।

ध्वंसावशेष

जर्मनीके आरंभिक वनोंका अवशेष अब भी बवेरियाके वनों और ओडेनवाल्डमें पाया जा सकता है। इस भाँतिका प्रमुख वन न्यूएन वर्गका बन है जिसकी विभिन्नता इसीमें है कि वह अत्यन्त सुन्दर बहुत घना बसा हुआ और हज़ारों जातिके वृक्षोंसे भरा है। ओल्डेन वर्गका एक प्राचीन वन जिसमें ट्यूटन जातिके मनुष्य पूजा करते थे अब भी विद्यमान है और उसमें बन-स्थानों तथा वेदियोंके ध्वंसावशेष मिलते हैं। मध्य कालसे लेकर अब तक यह एक आखेट-स्थल माना जाता है। इन बनोंको एक विशेषता यह है कि इनकी भूमि दलदली होती है और गीली काई वहाँ छाई रहती है। सब जगह स्तब्ध और अँधेरी है न तो वहाँ धूप पहुँच पाती है न कोई फूल खिलते हैं।

१८९७ में संयुक्त-प्रदेशके पेन्सलवेनिया नगरमें पृथ्वीके नीचे धँसा हुआ एक ऐसा वृक्ष निकाला गया जो लोहेकी धन्नीमें परिणत हो गया था। इसी प्रदेशमें एक ऐसा जंगल भी है जो पूराका-पूरा पाषाण हो गया है। फ्रांसमें भी ऐसे वृक्ष पाये गये हैं जो पहिले अपने असली रूपमें थे पर अब पत्थर हो गये हैं। सैक्सोनीमें एक ऐसा बन पाया गया है जो आजसे लाखों वर्ष पहिले जब जर्मनीकी जलवायु मिश्रके समान थी खूब हरा भरा था। इसी बनका एक वृक्ष जिसकी लंबाई एक तिमंजिले घरके बराबर और जड़की चौड़ाई तीन मनुष्योंके हाथोंके घेरेसे भी अधिक है वहाँके अजायबघरमें है। उसी कालका और उसी जातिका बन मिश्रके काहिरा नगरमें पाया गया है। वृक्षोंका कोयला हो जाना तो अति साधारण है।

वृक्ष कैसे पत्थर हो जाते हैं, इसके लिये यह मत है कि पानी जिसमें पत्थर तथा अन्य धातुयें मिली थीं इन बनोंमें भर जाता था। हज़ारों वर्षोंके बाद पानी तो बहकर निकल गया पर धातुओंका असर वृक्षों पर हो गया और वे पत्थर हो गये। वृक्षोंकी आकृतिमें कोई अन्तर न आया केवल लकड़ीके स्थान पर पत्थर हो गया॥

विशालकाय वृक्ष

कैलीफ़ोर्नियामें एक ऐसा वृक्ष है जो यद्यपि पूरा नहीं है फिर भी तीन सौ तीस फुट ऊँचा है और इतनी ऊँचाई पर इसका व्यास पन्द्रह फ़ीटसे अधिक है। इसकी जड़ोंमें एक सुरंग बनाई गई थी जिसमेंसे एक आदमी घोड़े पर सवार होकर सरलतासे निकल जा सकता था।

आस्ट्रेलियामें एक युक्लेप्टसका वृक्ष पाँच सौ अट्ठावन फ़ीट ऊँचा है। कलकत्तेके बोटेनिकल गार्डनमें एक बरगद्का वृक्ष है जिसकी प्रधान जड़का व्यास तेरह फ़ीट है और उसमें तीन हज़ार छोटी जड़ें और हैं। इस वृक्षकी आयु सौ वर्षसे अधिक है। कैलीफ़ोर्नियाके रेडवुड पार्कमें कुछ ऐसे वृक्ष हैं जिनकी आयु दो हज़ार वर्षको मानी जाती है। उनमेंसे लम्बा वृक्ष तीन सौ बीस फुट ऊँचा है और उसको परिधि पैंतीस फुट है। आस्ट्रेलियामें एक गोंदका वृक्ष था जिसकी ऊँचाई चार सौ सत्तर फुट थी।

संसारमें सबसे बड़ी पत्ती लङ्काके ताड़ वृक्षकी होती है। उनको छातेकी तरह काममें लाया जाता है और उनसे छप्पर भी छाया जाता है। इस वृक्षमें केवल एक बार फूल निकलता है और वह भी अस्सी वर्षकी आयुमें। इसमें चालीस फ़ीटकी ऊँचाई पर फूल निकलता है। ब्रिटिश गाइनाका जल-कमल बहुत बड़ा होता है और इसके पत्ते छः फुट चौड़े होते हैं। सैनफ़्रांसिसकोके पास संसारका उनमेंसे सबसे बड़ा वृक्ष जो आज तक पाये गये हैं १९३५ में नष्ट हो गया। इसकी ऊँचाई ३३२ फुट थी। दक्षिणी-पश्चिमी मौक्सिकोमें एक सनोवरका पेड़ है जिसकी मोटाई एक सौ पचहत्तर फुट है। इंग्लैंडके सबसे लम्बे फरके पेड़की ऊँचाई एक सौ अट्ठत्तर फुट है। स्काटलैंडका सबसे ऊँचा फर-वृक्ष भी इतना ही लम्बा है पर उसकी मोटाई इङ्गलैण्ड वालेसे अधिक है। सबसे लम्बा पौधा एक तरह की समुद्री घास है जो न्यूज़ीलैण्डके पास पाई जाती है और जिसकी लम्बाई दो सौ फुटसे ज़्यादा होती है।

संसारकी सबसे बड़ी अंगूरकी बेल स्कॉटलैण्डके पर्थशायरमें है। यह १८३१ में लगाई गई थी और १८८९ तक इसने लगभग साढ़े चार हज़ार वर्ग गज़ भूमि घेर ली। इसमें बहत्तर औंस तकके अंगूरके गुच्छे लगे हैं। जर्मनीकी सबसे बड़ी बेल अट्ठासी फ़ीट लम्बी है और इसमें आठ सौ अंगूरके गुच्छे लगते हैं।

फ्रांसके बोटेनिक गार्डनमें एक काले पीपलरका एक सौ इकतीस फुट ऊँचा वृक्ष है और जिसके तनेकी चौड़ाई पचास फुट है। जर्मनीका सबसे लम्बा बलूत एक सौ चौबीस फुट ऊँचा है और लगभग इतना ही लम्बा एक 'बीच' भी है। यहीं एक-एक सौ पचास फुट लम्बा सनोवरका पेड़ और एक सौ चौंसठ फुट लम्बा एल्मका पेड़ है। जर्मनीमें ही सबसे लम्बा यू-वृक्ष है जिसकी लम्बाई छत्तीस फुट है और जिसकी आयु चौदह सौ वर्ष बताई जाती है। परन्तु सबसे प्राचीन यू-वृक्षकी आयु दो हज़ार वर्षकी है।

जर्मनीमें राइन नदीके किनारे वहाँका सबसे पुराना नीबूका पेड़ है। वह बारह सौ वर्षका है और अट्ठत्तर फुट नौ इञ्च मोटा है। एक और नीबूका पेड़ जो सन् ७४३ में बोया गया था उसमें सौ डालें हैं जिनमेंसे हर एक उतनी ही बड़ी है जितनी साधारण पेड़की जड़। राइनलैण्डमें एक अति विशाल 'होली'—सदाबहारका पेड़ है जिसकी आयु हज़ार वर्षकी है और जो तैंतीस फ़ीट ऊँचा है। फलोंके पेड़ अधिकतर पुराने नहीं होने पाते हैं क्योंकि पहिले ही से उनमें फल होना समाप्त हो जाता है परन्तु रोजेन द्वीपमें एक-एक हज़ार वर्षका पेड़ है जिसमें अब भी फल निकलते हैं। चेस्टनेट केवल ढाई सौ वर्ष पहिले जर्मनीमें लगाया गया है और इसमें सबसे बड़े वृक्ष राइन तट पर स्थित एक महलके उद्यानमें हैं।

सन् १८१० में इंगलैंडका एक अति प्रसिद्ध बलूतका पेड़ गिराया गया। जब कि यह काटा गया तो उसमें दो हज़ार चार सौ पचपन घन फुट लकड़ी निकली। नीचेकी जड़ साढ़े नौ फुट मोटी थी और पेड़की छालका वजन छः टन था। इसमें एक विचित्रता पाई गई और वह यह कि इसकी जड़में लगभग छः फुटकी ऊँचाई पर एक बड़ा-सा पत्थर पाया गया।

विचित्र वृक्ष

यद्यपि वृक्ष-जगत् जन्तु-जगत्की अपेक्षा अधिक एक समान है फिर भी कहीं-कहीं विचित्र पेड़-पौधे देखनेमें आ ही जाते हैं। अमेरिकाके फ्लोरिडा नगरमें जिराफ़-वृक्ष है। नीचे एक खजूरका पेड़ है और उसके ऊपर अंजीरका दोनों मिलकर बिल्कुल ज़िराफ़की तरह लगते हैं। बर्लिनके पास कई हज़ार वर्ष पुराना नीबूका पेड़ है जो पिछले पैरों पर खड़े हुये भालूकी तरह लगता है। अमेरिकाके मैसाचुसेट्समें दो बलूतके पेड़ हैं जो एक तीन फीट लंबी और आदमीके बराबर मोटी डालसे जुड़े हैं। इसी प्रकार न्यूयार्कमें दो ऐशके पेड़ हैं जो यद्यपि उनकी जड़ें एक दूसरेसे

बीस फीट दूर हैं—आपसमें जुड़े हैं। बवेरियाकी पहाड़ी पर एक झीलमें उगे हुये 'मेपल' और 'बीच' का एक पेड़ है जिसकी परिधि चालीस फुट है। जर्मनीमें एक रोता हुआ बलूत है जिसकी डालें बिल्कुल शोक-सूचक वस्त्रकी तरह लगती हैं। आस्ट्रेलियाके एक पेड़की जड़ फूली हुई सोडेकी बोतलकी तरह होती है। इन्हीं देशोंमें एक तरहकी घासके पेड़ होते हैं जो एक सेनाकी तरह लगते हैं क्योंकि उनकी डालियाँ ऐसे फूलोंसे ढँकी रहती हैं जो भालेकी तरह होते हैं। मैक्सिकोमें एक पेड़को कुम्हारका पेड़ कहते हैं क्योंकि इसकी कड़ी छालमें बहुत सी-बालू होती है। इसको जला कर और मिट्टीमें मिलाकर बर्तन बनाये जाते हैं।

संसारका सबसे पुराना पेड़ १८६८ में आँधीसे गिर गया था। इसकी जड़की चौड़ाई पैंतालीस फ़ीट थी और यह छः हज़ार वर्षका था। इसी प्रकार कैलीफ़ोर्नियामें भी एक, एक हज़ार एक सैंतालीस वर्षका पेड़ है जिसकी परिधि पचीस फीट है। यूरोपके वृक्षोंकी आयु साधारणतया यह है—

यूका पेड़ तीन हज़ार वर्ष, बलूत डेढ़ हज़ार, स्काटलैंडका सनोवर (pine) एक हज़ार, मेढल छः सौ, लार्च तीन सौ, बीच दो सौ पैंतालीस, ऐश एक सौ सत्तर, एल्म एक सौ साठ और मेंहदी डेढ़ सौ वर्ष तक रहता है।

वृक्ष और अन्ध विश्वास

जैसे बाइबिलमें ज्ञान वृक्षका वर्णन है उसी प्रकार प्रत्येक देशकी धार्मिक पुस्तकोंमें किसी-न-किसी वृक्षको पूज्य और देवोंका चिह्न माना है। मध्य एशियाके गोबी मरुस्थलमें जहाँ वृक्षोंकी बहुत कमी है उन्हें दैविक सम्मान दिया जाता है। दक्षिणी अमेरिकामें भी ऐसा ही होता है। मध्य अमेरिकामें एक प्रकारका पेड़ होता है जिसको पत्थरमें क्रास खोद कर और उस क्रासको उस वृक्षका प्रतीक बना कर मानते हैं। भारतवर्षमें भी अशोक वृक्षके नीचे शिव की पूजा करना अच्छा समझते हैं। गंगाके तट पर बौद्ध गयामें मनुष्य अब भी 'बोधि वृक्ष' की एक डालको पूजते हैं। इसी बोधि वृक्षकी एक डाली लङ्काके अनुराधापुरमें भी है।

ट्यूनिशिया (Tunisia) के निवासी अब तक उस पवित्र जैतूनके वृक्षकी पूजा करते हैं जिसकी छायामें डेढ़ हज़ार वर्ष पहिले सेंट आगस्टाइन बैठा करते थे। अरबमें भी कुछ ऐसे खजूरके वृक्ष हैं जो अब तक उसी धार्मिक भावनासे देखे जाते हैं जैसे मुहम्मद साहबके समयमें। धार्मिक उत्सवों पर उनका बहुत श्रृङ्गार किया जाता है। पैलेस्टाइनमें दो हज़ार वर्ष पहिले एक प्रसिद्ध पवित्र बलूतका पेड़ था। आज भी उस स्थान पर एक पवित्र वृक्ष है। कहा जाता है कि इस वृक्षके नीचे अब्राहमकी समाधि है।

काहिरा और हैलोंके बीचमें एक ऐसे पेड़की डाल अब तक पूजी जाती है जिसमें हैरोडके डरसे मिश्र भागते समय ईसा और उनकी माँ ने शरण ली थी। जापानी मनुष्य फल लगे हुये बेरके वृक्षकी पूजा करते हैं। यह वृक्ष उनके लिये हृदयकी महानताका प्रतीक है। यह लोग फरके वृक्षकी भी पूजा करते हैं। इनका विश्वास है कि इससे उनका जीवन दीर्घ और स्वास्थ्य अच्छा रहेगा। ग्रीक शहतूनके पेड़को ज्ञानकी देवी मिनर्वाको अर्पित किया हुआ समझते हैं क्योंकि वसंत ऋतुमें यह सबसे पीछे फूल कर अपनी बुद्धिमत्ता प्रकट करता है। फर, यू, अंजीर और आइवी तथा अंगूरकी लतायें सब मदिराके देवता-बेकसकी सम्पत्ति समझी जाती हैं। जैतून, ताड़पत्र और लॉरेल अपोलोकी और श्वेत पौपलर हरक्यूलीज़के चिन्ह हैं।

रहस्यमय वृक्षोंमें सबसे प्रसिद्ध बाइबिलका ज्ञान-वृक्ष है। फारसके धर्ममें यही वृक्ष 'होम' नामसे जाना जाता है। प्राचीन मिश्रवासियोंका यह विश्वास था कि मृत्युके उपरान्त आत्मायें एक विशेष प्रकारके वृक्ष पर रहती हैं। आर्योंके अनुसार बलूत वृक्षकी पत्तियोंमें वायुके चलनेसे जो एक मरमर ध्वनि होती है वह देव-संगीत है। प्राचीन जर्मन और स्लाव जातियाँ अपने बन्दियोंको नीबूके पेड़ पर लटकाकर फांसी देती थीं और उसी पर अपने लूटका माल टांगती थीं। इस्लाम धर्ममें एक रहस्यमय विशाल वृक्ष माना जाता है जिसका नाम त्यूबा है और जिसको ऊपर तक केवल अल्लाह और मुहम्मद साहब देख सकते हैं। फोरमोसा द्वीपमें प्रत्येक गाँवमें एक 'आत्माका वृक्ष' होता था जिसमें पूर्व पुरुषोंकी आत्मायें रहती थीं। इन वृक्षों पर गाँव वाले मदिरा चढ़ाते थे। स्काटलैण्डके पर्वतीय प्रदेशोंमें यह माना जाता है कि कुछ ऐशके पेड़ोंमेंसे रोशनी दिखाई देती है। आइसलैण्डमें भी ऐसा कहा जाता है कि एक स्थान पर दो निर्दोष व्यक्तियोंको फांसी दी गई थी वहाँ एक ऐशका पेड़ उग आया है।

वैज्ञानिक वस्तुवाद

(ले॰ श्री—करुणाशङ्कर पाण्डया, सूरत)

विज्ञानके ऊपर व्यर्थका दोषारोपण

सम्प्रति विश्वके अर्थ, अनर्थ और राजनीतिके प्रपंचोंका आधार लोग विज्ञानको मान रहे हैं। इनकी धारणा है कि विज्ञानकी प्रगतिने ही संसारकी विभिन्न संस्कृतियोंको मृतप्राय कर दिया है और इसीलिये मनुष्य-समाजमें कृत्रिमता, आडम्बर और युद्धकी भावनाने ज़ोर पकड़ा है। धर्म, दर्शन, और ललित कलाओंको पीछे ढकेलकर विज्ञान अपनी मतलबी, हिंसक और आरामजनक प्रवृत्तियोंसे बीसवीं शताब्दीके ज्ञान-पथ पर अपनी गति बढ़ा रहा है। उनका कहना है कि विज्ञानका लक्ष्य जीवनसे अधिक विनाशकी ओर है। जीवनकी सरलता और सफलताके साधन प्रदान कर और उसमें भुलाकर वह विनाश का डङ्का बजा रहा है। जो भी हो, परन्तु यह तो कहना ही पड़ेगा कि मानव-चरित्रकी कमज़ोरीके कारण ही विज्ञानको इन विचित्र दोषोंका भागी बनाया जा रहा है। वैज्ञानिक-अनुसन्धानकी ओर ऐतिहासिक दृष्टिसे देखते हुये हमें प्रत्यक्ष दिखलाई देगा कि विज्ञानका आदर्श 'सत्य' है। सत्यका अवलम्बन लेकर उसका लक्ष्य मनुष्यता और उससे सम्बन्ध रखने वाली 'जड़ और चेतन' विभूतियोंके सामंजस्यकी ओर है जिसमें विश्व-एकता और अहिंसाकी झलक पाई जाती है।

वस्तु-शास्त्रकी परिभाषा और उत्पत्ति

मनुष्यकी जिज्ञासा और आश्चर्यकी प्रेरणासे विज्ञानका जन्म हुआ था और उसीका आधारभूत रहकर वह अपने सत्य, अभ्यास, इन्द्रियसे परे निरीक्षण और परिणामकी चालसे आगे बढ़ता गया। कभी-कभी उसकी चालमें अवरोध आये और उन अवरोधोंको उसने अपने विभिन्न वर्गों पर दृष्टि डालकर लाँघा और आज वह उस अवस्था पर पहुँच गया है जहाँ उसे अपनी सीमा निर्धारित, नियमित और पूर्ण-सी मालूम देती है। विज्ञानको आदर्शवादियों और अध्यात्मवादियोंने वस्तुवादी बतलाया है परन्तु आज विज्ञानका वस्तु-शास्त्र अथवा रसायन ज्ञान (chemistry) भौतिक शास्त्र अथवा शक्ति-ज्ञान (physics) से ऐसा मिल गया है कि दोनोंको अलग करना असम्भव-सा हो गया है वस्तु-शास्त्रकी प्रणालियोंने जीवन जड़ और निःशेष सभी पदार्थोंको वैज्ञानिक परिधिमें रक्खा है जिसका केन्द्र शक्ति है। इस अवस्था पर पहुँचनेके कारण उसका लक्ष्य वस्तुवादसे परे आध्यात्म-वाद जो दर्शन (philosophy) की कसौटी है, हो गया है। धर्म विश्वास और श्रद्धा पर अवलम्बित हैं, दर्शन कल्पना पर निर्भर था--विज्ञान गणित और सत्यका सहारा लेकर दर्शनकी सीमा पर और इसलिये आध्यात्म-वादके पास पहुँच गया है।

ईसवी शताब्दीके पूर्व यूनानके दर्शन शास्त्री अरस्तूने कुछ वैज्ञानिक परिभाषाका खुलासा किया था जिसमें तत्व-ज्ञानकी विशेषता है। वेदोंमेंभी इसी पर ज़ोर दिया गया था और इस तरह सृष्टिका आविर्भाव पञ्च-तत्वों (five elements) से हुआ है ऐसे सूत्रका प्रतिपादन किया है। इन पाँच-तत्वोंको श्री रामनरेश त्रिपाठीने इस प्रकार लिखा है:-

> "अनिल, अनल, जल, गगन रसा है,
> इन पाँचों में विश्व बसा है।"

इन पाँचों तत्वोंकी महत्ता बहुत काल तक चली आई और लोग इसी विश्वास पर चलते रहे। इस विश्वाससे समय और गतिमें जो अवरोध खड़े हुये उनके कारण विज्ञानकी कितनी क्षति हुई यह बतलानेकी ज़रूरत नहीं। इसी अरसेमें पारस-पत्थर और अमृत की खोजमें वैज्ञानिकोंने कितना समय ख़र्च किया होगा इसका अनुमान भी नहीं किया जा सकता। अठारहवीं शताब्दीमें राबर्ट ब्याइल (Robert Boyle) ने इन तत्वोंको झूठ सिद्धकर दिखलाया और हवाके दबाव, आयतन, तापमान आदि पर सूत्र निर्धारित किये। धीरे-धीरे इन्हीं आधारोंके बल पर नये तत्वोंकी खोज शुरू हुई जो आज ९० से ऊपर पहुँच गई हैं। इन तत्वोंकी खोज, उनका वर्गीकरण उनसे बनने वाले संयुक्त पदार्थ आदिका विवेचन देना यहाँ आवश्यक नहीं। रासायनिक-प्रति-क्रिया (chemical combination) के स्वरूप अनेक सिद्धान्तों (theories)

अनेक सूत्रों और नियमोंकी रचना हुई। अठारहवीं शताब्दी में किस तरह विज्ञानके वर्ग सामयिक युगोंमें अपनी स्थिति स्थापित कर सके यह हमारा विषय नहीं है। अठारहवीं शताब्दी रसायन और भौतिक वर्गोंकी महत्व-शालिनी बाढ़का समय था और उसके पश्चात् विद्युत्-युग आता है जिसमें वैज्ञानिकोंकी दृष्टि जीवन-शास्त्र (Biology) की ओर चली जाती है और यही सामयिक विषय भी वैज्ञानिक क्षेत्रके अन्तर्गत हो गया है। विज्ञानके वर्ग असंख्य हैं जिनमें गणित, ज्योतिष, चिकित्सा, प्राणी--शास्त्र और वृक्ष-विज्ञान आदि विषय अपनी-अपनी बाढ़से विज्ञानके दोनों कूलोंमें ज्ञान-रसको भर रहे हैं।

रसायन-शास्त्रमें सामयिक परिवर्तन

वस्तुवादके अन्तर्गत आने-वाले रसायन-शास्त्रमें धीरे-धीरे युग-परिवर्तन होते गये। लोगोंने अपनी विचार-शक्तिके के द्वारा अभ्यासोंकी सहायतासे इसका स्वरूप ही बदल डाला। उन्नीसवीं शताब्दीमें सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक डाल्टन (Dalton) का नाम उल्लेखनीय है जिसने तत्वोंको भी विच्छिन्न करनेकी चेष्टा की। उसका व्यापक अणु-सिद्धान्त (Atomic theory) हमें तत्वोंके भी अन्तर्वभागमें ले जाता है जहाँ तत्व अनेक अणुओंमें विभाजित किये जा सकते हैं। ये अणु केवल रासायनिक प्रतिक्रिया (chemical reaction) में ही भाग लेते हैं, परंतु एवागेड्रो (Avagadro) और गेलसेक्स (Gay-lussaes) के अनुसार तत्वोंके प्राकृतिक अंशोंको प्रसारक अणु (molecules) कहा जा सकता है इनकी व्यापकता प्रसिद्ध ही है। डाल्टनने अपने सिद्धान्तमें बतलाया है कि अणु अविभाज्य हैं। आगे इस विवेचनाको कैसा धक्का लगा इस पर हम विचार करेंगे। यहाँ तो इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि डाल्टनके अणु सिद्धान्तसे रसायनकी खोजको जो बल मिला वही आगे चलकर रासायनिक पदार्थोंके असंख्य रूपोंमें व्यञ्जित हुआ है। इसी सिद्धान्तकी सहायतासे बीसवीं शताब्दीके प्रारम्भमें मेंडेलीफ (Mendeleef) ने तत्वोंका वर्गीकरण (classi fication) किया है और एक तत्वोंकी सामयिक तालिका (periodical table) नियोजित की है जिसमें एक लघु और दूसरी दीर्घ श्रेणी (short and-long series), आठ वर्ग (period) आदि वैशेषिक उपकरण हैं। सबका आधार तत्वोंके अणुओंका वजन (atomic weight) है।

रसायन-शास्त्रकी सांप्रतिक अवस्था

बीसवीं शताब्दीमें तत्वोंके वर्गीकरणमें तथा अणुओंको और आगे विभाजित करनेमें विद्युत्-शक्तिने हमें अपूर्व सहायता पहुँचाई है। अणुओंके अंक (atomic number) के अनुसन्धानके साथ-साथ तालिकाके आखिरी तत्व रेडियम (radium, Ra) में परिवर्तनशीलता तथा शक्तिपूर्ण किरणों (rays) का आभास अब हमें रसायनकी उस व्यापकताके अन्तर्गत ले आया है जहाँ शक्ति और जड़ इन दोनोंमें सामंजस्य हो जाता है। अणु अब आकर्षक और अनाकर्षक परिमाणुओंमें (electrons and protons), धन और ऋणके सौदेके साथ अभिव्यंजित, विभाजित और आरोपित हो जाते हैं। मण्डल और आकारकी स्पृहा ज्योतिषके आन्दोलनमें निष्प्राण हो चुकी है और शून्यताका मर्मभेदी नाद हमें सुनाई दे रहा है। हम चिह्नसे रेखा और अब विन्दुके पास पहुँच गये हैं जहाँ काव्य, विज्ञान और दर्शनका विश्लेषण-सङ्केत कहता है :—

"काव्य सरसता हिय-प्रकोष्ठकी,
शोभा उमड़ी है निर्मल;
मन, विचार, ज्ञान इन्द्रियकी,
छाया अन्तिम उर्मिल।
बढ़ें सभी मिल एक भावसे,
शून्य-कोषका हो आधार;
एक, एक अरु एक विन्दु में,
उद्भव बतलाती साकार।"

शक्तिका आधार जड़ है, जड़की व्युत्पत्ति शक्तिसे है तब फिर भाषाकी वाणी ही उसे प्रकट न कर सकेगी और हमें पूर्व संकेत-शीलताको ही ग्रहण करना पड़ेगा। दर्शन और विज्ञानका सम्बन्ध स्थापित हो चुका है; दोनोंका मिलन अवश्यम्भावी है और इसीसे सुहाग-रातकी रचना होगी तभी वाद, और प्रतिवादोंके लक्षणोंसे रहस्योद्घाटन होगा।

दर्शन और विज्ञानकी दृष्टियाँ एक दूसरेके नय-

नोंको ताक रहीं हैं। एक ओर ब्रह्म अनादि है तो दूसरी ओर शक्तिकी किरण-रूप स्वत्वरज्ञा, ब्रह्मसे मूल प्रकृति और पुरुषको छाया पड़ रही है तो जड़ और चेतन पदार्थों से शक्तिका विनिमय हो रहा है, दोनोंके ब्रह्माण्ड हैं और दोनों एकसे असंख्य होकर परमात्मासे व्यापक, जागृत और निरपेक्ष आत्माकी ओर दौड़ रहे हैं। इसी रूपकको आगे बढ़ाते जाइये और कल्पना आपको किस निर्णय पर पहुँचाती है। देखते जाइये, अनुभव करते जाइये और अपनी विचार-सारिणीमें विस्मयसे आरोपित करते जाइये। भूत और वर्तमानका यही प्रत्यक्ष चित्र है। आगे चलकर भविष्य में विज्ञानकी प्रतिस्पर्धा हमें कहाँ खींच ले जायेगी इसका पता नहीं है उसे शायद एच० जो० वेल्स (H. G. Wells) भी अपनी भाषा द्वारा निर्धारित नहीं कर सकेंगे। हमारी जिज्ञासाकी इतिश्री तो तभी होगी जब हमारो स्वार्थपरता का रहस्य खुलेगा और 'जन्म और मृत्यु' की विमूढ़ता, एकलक्षता तथा कुण्ड सदृश स्थानसे हटकर हम सृष्टि और उससे भी ऊपर जो शून्याकार है, उसके क्षेत्रमें पदार्पण करेंगे।

हम घर कहाँ बनावें ?

[ले० – श्री कार्तिकप्रसाद, बी० एस सी०, सी० ई०]

मकान बनवानेके समय उसके लिये उपयुक्त स्थान-निर्वाचनका प्रश्न सबसे पहले सामने आता है। बहुधा लोग जगह चुननेके समय केवल प्लाटके दामका ही ध्यान रखते हैं और बहुत-सी छोटी-छोटी बातों पर विचार नहीं करते जिनके कारण बादमें काफ़ी कठिनाइयाँ झेलनी पड़ती हैं तथा आर्थिक क्षति भी उठानी पड़ती है जिसका अनुभव बादमें ही होता है। अतः अगर स्थान-निर्वाचनके समय निम्नलिखित बातोंका ध्यान रक्खा जाय तो इन कठिनाइयोंसे बचाव हो सकता है।

अपनी आवश्यकता तथा पसंदके अनुसार पहले यह विचार कर लेना चाहिये कि मकान शहरमें घने बसे हुये हिस्सेमें बनवायें अथवा शहरके बाहरी हिस्सोंमें। कुछ लोगों को छोड़कर, जिनको शहरमें रहना प्राय: आवश्यक-सा होता है, जिनको अधिकतर लोगोंके लिये बाहरी हिस्से अच्छे होंगे, घनी आबादीमें ज़मीन बहुत महँगी मिलती है तथा वहाँकी वायु अशुद्ध और वातावरण शोर-गुलसे परिपूर्ण होता है। पर शहरके बाहरी हिस्सेमें ज़मीन लेनेके समय यह ध्यान रखना चाहिये कि अपना दफ़्तर, पोस्ट और टेलीग्राफ आफिस, बच्चोंके लिये स्कूल, और बाज़ार इत्यादि आवश्यकतासे अधिक दूर न हो, नहीं तो असुविधा होगी। अगर कोई बहुत बड़े शहरमें है तो ट्राम, बस अथवा अन्य सवारियोंका भाड़ा तथा मोटर पेट्रोलका प्रति दिनका खर्च भिन्न-भिन्न स्थानोंसे अनुमान करके देख लेना चाहिये कि किस मोहल्लेका प्लाट लेनेसे सुविधा होगी।

साथ ही यह भी आवश्यक है कि निर्वाचन-स्थान शहरके किसी ऐसे कोनेमें न हो जिसके शीघ्र आबाद होनेकी आशा न हो अथवा जो किसी कारण-वश उजड़ता जाता हो। ऐसे स्थानमें न अच्छे पड़ोसियोंका आनन्द प्राप्त हो सकेगा न वहाँ अच्छी सड़कें ही बनेंगी। साथ ही जिस स्थान पर बिजली, पानीके नल, अथवा नाले इत्यादि न हों उनको यथासंभव न लेना चाहिये क्योंकि ये अत्यन्त आवश्यक वस्तुयें हैं तथा इनका निजी इन्तज़ाम करनेमें विशेष व्यय होना निश्चित है। बल्कि यही नहीं, इनके कारण हमेशा कुछ-न-कुछ गड़बड़ी होती रहेगी जिससे तकलीफ उठानी पड़ेगी। पानी अथवा मल-विसर्जनके लिये निजी इन्तज़ाम-में व्यय बहुत होगा जिसका अधिकांश लोग पहले अंदाज़ नहीं लगा पाते हैं। इस बातकी भी छान-बीन आवश्यक है कि भविष्यमें आस-पासमें कहीं कोई मिल अथवा फैक्टरी बननेकी तो संभावना नहीं है जिसके द्वारा उस स्थानके निवासियोंके आराममें अथवा स्वास्थ्य पर किसी प्रकारकी बाधा पहुँचे।

अगर ऐसा स्थान मिल सके जहाँ प्राकृतिक दृश्य उपरोक्त बातोंके अलावा मनोहारी हो तो बहुत अच्छा है। जैसे किसी पहाड़, नदी, समुद्र अथवा अन्य कोई प्राकृतिक

दृश्य केवल मकानकी ही शोभा नहीं बढ़ाते वरन् रहने वालोंके लिये सुखदायक तथा स्वास्थ्यकर भी होता है।

अब जो स्थान चुना जाय उसकी मिट्टीकी परीक्षा कर लेनी चाहिये। यह ध्यानमें रखने योग्य बात है कि अगर कड़ी और कंकड़ मिश्रित अच्छी मिट्टी होगी तो नींवमें काफी बचत होगी तथा इसके विपरीत मुलायम या पाटी हुई मिट्टीमें नींवका खर्च अधिक होगा। इसी प्रकार अगर नीचे चट्टान हो तो नींवकी मज़बूतीके ख्यालसे यह अति उत्तम होगा पर यदि चट्टानमें खुदाई करनी पड़ी तो खोदने का ही खर्च मामूली खुदाईसे कई गुना अधिक होगा। फिर काली मिट्टी (जो कपासकी खेतीके लिये उपयुक्त होती है) मकानके लिये बहुत खराब होती है और इस प्रकारके स्थानको न चुनना ही बुद्धिमानीका काम है। अवश्य ही अगर इस प्रकारके दोषको दूर करनेका कोई उपाय न हो तो बात ही और है।

दूसरी बात, जिसका लोग स्थान-निर्वाचनके समय ध्यान नहीं देते तथा जिसके कारण बादमें कष्ट भोगते हैं—है बरसाती पानीका भली-भाँति निकास। बहुधा ऐसा पाया गया है कि मुहल्लोंमें जो शहरके नीचे भागमें बसे हैं, घोर वर्षामें घुटनों तक अथवा इससे भी अधिक पानी भर जाता है। पाठक स्वयं ही समझ सकते हैं कि इस प्रकारके मुहल्लेमें रहनेसे उन्हें किन असुविधाओंका सामना करना पड़ेगा। सड़क तथा हातोंके अन्दर पानी भर जानेसे जो दिक्कत उठानी पड़ती है वह तो है ही पर इससे भी खराब बात तो यह है कि ऐसे स्थान अस्वस्थ होते हैं। वहाँ बहुधा मलेरिया तथा मच्छरोंका प्रकोप रहता है और अगर विशेष प्रबन्ध नहीं किया गया है तो मकानमें बराबर सोड़ रहती है जिससे प्लास्तर तथा दीवारोंकी चुनौटी अथवा रँगाई नष्ट हो जाती है और दीवार पर चितकबरे धब्बे पड़ जाते हैं जो देखनेमें बहुत गन्दे लगते हैं। इसके कारण मकानकी वार्षिक मरम्मतका व्यय बढ़ जाता है जिससे आजन्म आर्थिक क्षति होती है और यह सब केवल स्थान-निर्वाचनके समय केवल थोड़ी-सी लापरवाहीके कारण होता है। उचित तो यह है कि चुने हुये स्थान तथा आस-पासके नालों इत्यादिका एक नकशा तथा 'लैविल' ले करके देख लेना चाहिये कि पानीके निकासका उचित प्रबन्ध हो सकता है या नहीं।

तीसरी बात यह है कि अगर मकानमें निजका कुआँ रखना है तो इस बातकी खोज कर लेना चाहिये कि पानी किस गहराई पर मिलेगा। साथ ही पानी मीठा या खारा। यह आस-पासके कुओंसे सरलता-पूर्वक जाना जा सकता है।

अंतिम तथा सबसे जरूरी बात यह देख लेना चाहिये कि जो डिज़ाइन तैयार किया गया है वह निर्वाचन-स्थानमें भली प्रकार आ जायगा या नहीं, मकानका सामना ठीक दिशामें किया जा सकता है या नहीं तथा थोड़ा-बहुत अपनी रुचि के अनुसार फूल-फल लगानेके लिये भी स्थान मिल सकता सकता है या नहीं।

इन सबके अलावा अगर ईंटके भट्टे अथवा रेलवे स्टेशन या पत्थरके खदान इत्यादि पास हैं तो और भी अच्छा है क्योंकि मकानके निर्माणमें जिन वस्तुओंकी आवश्यकता पड़ेगी वे सस्तेमें तथा आसानीसे लाई जा सकेंगी। अतः स्थानके चुनावके समय इन सब विषयोंकी भी खोज़ खबर बहुत उपयोगी सिद्ध होगी।

इन सब बातोंका समावेश एक साथ शायद ही किसी जगह मिल सके पर फिर भी स्थान चुननेके समय अगर इनका ध्यान रक्खा जाय तथा स्थान ऐसा चुना जाय जिसमें अधिक-से-अधिक उपरोक्त सुविधाओंका समावेश हो तो पीछे कभी पछताना नहीं पड़ेगा।

केला

[ले०—श्री जगेश्वरदयाल वैश्य, एम० ए०, बी० एस-सी०]

पिछले आठ-नौ वर्षोंमें केलेकी खपत और उपजमें काफ़ी वृद्धि हुई है। पहिले हरी छालका केला उत्तरी भारतमें बहुत कम दिखलाई देता था लेकिन आज कल तो छोटे-छोटे कस्बोंमें भी केला मिल जाता है।

गुण

यह एक बहुत ही पौष्टिक फल है। टमाटरकी भाँति यह भी सर्वत्र प्रिय होता जा रहा है। विदेशोंमें कलेवेके समय इसका प्रयोग काफ़ी होने लगा है। इसके अन्दर मिठास होनेके कारण बच्चे, बूढ़े, जवान, स्त्री, पुरुष सभी बहुत चावसे खाते हैं।

केलेके अन्दर बूरा द्राक्षाज (glucose) और इक्षोज़ (sucrose) के रूपमें होनेके कारण शरीर में बहुत शीघ्र ही जज़्ब होती जाती है। इसलिये यह शरीरमें बहुत जल्दी शक्ति और स्फूर्ति पैदा करता है।

इसके अन्दर पौष्टिक गुणके अलावा स्वास्थ्य-रक्षाका भी गुण बहुत अंशोंमें विद्यमान है, जिसका कारण यह है कि इसके अन्दर लवण (salts) और विटामिन काफ़ी मात्रामें पाये जाते हैं। लवणोंमें खटिकम् (calcium) तथा पांशुजम् (potassium) प्रधान हैं। ये दोनों ही बलकारक (tonic) होते हैं, इसके अलावा शरीरके कोषों पर इसमें पाये जानेवाले लवणोंका प्रभाव क्षारीय (alkaline) होता है। इसलिये सब लोग इससे लाभ उठा सकते हैं। विटामिन-एकी प्रचुरता होनेके कारण यह शरीरके अन्दर रोगोंके आक्रमणसे बचने की शक्तिको बढ़ाता है, इसमें विटामिन-बी भी होता है, यह पाचन-क्रियामें मदद करता है और विटामिन-सी तो काफ़ी मात्रामें पाया जाता है जिससे शरीरकी हड्डियों और रेशोंको मज़बूत बनानेकी भी शक्ति इसमें पाई जाती है।

केलेका चुनाव

केला पेड़ परसे कच्चा ही तोड़ा जाता है। इसको सन्दूकोंमें अथवा बन्द कमरोंमें रखकर पकाया जाता है। केला सदैव पूर्णतया पका ही खाना चाहिये क्योंकि कच्चे केलेमें शकरके बजाय मांड (starch) होता है जो बहुत देरमें हज़म होता है। कच्चे केलेको भूनने पर अथवा उसकी सब्ज़ी बनाने पर मांड काफ़ी मात्रामें शकरमें बदल जाता है, लेकिन द्राक्षाज (glucose) की इतनी अधिक मात्रा नहीं बनती जितनी कि कच्चे केलेके पकने पर।

क्या केला कब्ज़ करता है?

केलेके अन्दर शकरकी और पानी ही की मात्रा अधिक होती है, इनमेंसे कोई भी ऐसा नहीं कि कब्ज़ करे। फिर यह धारणा क्यों है? इसके दो कारण हैं (१) केला यदि ज़रा भी कच्चा होगा तो अवश्य कब्ज़ करेगा (२) पक्के केलेमें भी रेशे (cellulor fibre) जो होते हैं वे ज़रा पाचन-क्रियामें कुछ बाधा डालते हैं। इसके दूर करनेका उपाय बहुत सरल है - (१) केवल पूर्णतया पक्के केले ही खाने चाहिये २) केलेके साथ बड़ी इलायचीके कुछ बीज खानेसे रेशोंका कड़ापन जाता रहता है। (३) केले को छील कर ज़रा गोदकर और कुचलकर खाया जाय। (४) केलेके साथ कच्चे भीगे हुये चने खाये जायँ। ऐसा करने से जिनको कब्ज़ रहता है वह भी दूर हो जायगा।

आयुर्वेदकी महत्ता एवं प्राचीनता

[ले०—श्री अशोककुमार, सम्पादक "आयुर्वेद" गुरुकुल कांगड़ी]

आयुर्वेद चिकित्सा-पद्धति संसारकी उन तमाम पद्धतियोंमें सबसे प्राचीन है जिनका कि आज चिकित्साके तौर पर उपयोग किया जाता है। यह परमब्रह्म परमेश्वरका अतिमानवताके कल्याणके लिए एक सुखद उपहार है जो चरकके "ब्रह्मणा हि यथां प्रोक्तमायुर्वेदं प्रजापतिः" के अनुसार सबसे पूर्व भारतीय समाजको प्रदान किया गया था। दूसरी पद्धतियाँ एलोपैथी या होम्योपैथी आदि नवीन पद्धतियाँ हैं जो व्यक्तिकी स्वतः सम्पत्ति हैं। इनके प्रवर्तक तब उत्पन्न हुए जब कि हमारी यह पद्धति अपने बाल्यकालको बिताकर अपने पूर्ण यौवनमें विकसित थी। डा० हार्वेली ने स्पष्ट लिखा है कि "Hippocrates, the most celebrated physician of ancient Greece, flourished in 443. B.C. He acquired the knowledge of medical production from India." अर्थात् संसारकी

सम्पूर्ण चिकित्सा पद्धतियोंका आदि मूल हमारी आयुर्वेदिक चिकित्सा-पद्धति है।

प्राच्य और पाश्चात्य पद्धतियाँ

आयुर्वेद-चिकित्सा-प्रणाली एक बहुत हो विस्तृत एवं व्यापक विषय है। यह जीवनका विज्ञान है-वह विज्ञान जो हमको इस योग्य बनाता है कि हम आयुका परिमाण जान सकें तथा यह भी जान सकें कि जीवन किस प्रकार सुखमय और किस प्रकार दुःखमय बन जाता है। यह वह विज्ञान है जो केवल चिरंजीवी और स्वस्थ रहना ही नहीं सिखाता बल्कि सुखसे रहना भी सिखाता है। आयुर्वेदके सिद्धान्त बहुत हो उच्च हैं। इस ज्ञानके संस्थापक हमारे प्राचीन पुरुषों ने चिरनिरीक्षणसे सम्पन्न विचार-शक्तिसे दृश्यमान लक्षणों और गुणोंसे शरीरके सब मूलतत्वोंका निरीक्षण किया था, अर्थात् उनकी दृष्टि भौतिक थी इसीसे उन्होंने शरीर-सम्बन्धी सब घटनाओंकी व्याख्या शरीरमें वृद्धिका काम करने वाले कफ, पाचनका काम करने वाले पित्त एवं शरीरके अवयवोंकी गति स्थापित करने वाली वायुके नामोंसे की है—इन्हींको तीन धातु या तीन दोषके नामसे कहा है। शरीरकी उन्नतिके यही तीन कारण हैं इन्हींके नीचे शरीरके सब नियम व व्यवस्थायें चल रही हैं। जब कि पाश्चात्य चिकित्सकों ने उन्हीं घटनाओंको शारीरिक (anatomical) और रासायनिक दृष्टिसे देखा है—उदाहरणत: पाश्चात्य विद्वानों ने परीक्षणों द्वारा यह सिद्ध किया है कि शरीरमें कुछ ऐसे सूक्ष्म रासायनिक रस हारमोन उत्पन्न होते हैं जो शरीरकी क्रियाओंका नियमन करते हैं, जैसे कण्ठाग्रग्रंथि (thyroid) का सूक्ष्म रस रक्तमें जाता रहता है और शरीरकी वृद्धिका कारण बनता है। दूसरे वृक्कोर्ध्वीय ग्रंथियाँ (Sujorarenal glands) हैं जिनका सूक्ष्म रस रक्तभारको बढ़ाता है तथा पाचन प्रक्रिया (metabolic rate) में वृद्धि करता है। पाचन रसोंके नियमनका यह सिद्धान्त हम सबको भी मान्य है लेकिन प्रचीन भारतीय विद्वानों ने जो त्रिगुणात्मक प्रकृति पंचभूत. और त्रिदोष सिद्धान्त स्थापित किये थे वे पाश्चात्य विद्वानोंके सर्व सिद्धान्तोंसे अधिक भौतिक हैं। चरकके "विकारो धातु वैषम्यं" के अनुसार ऊपर कहे गए दोष ही जो शरीरमें एक व्यवस्था कायम किये हुए हैं जब अव्यवस्थित हो जाते हैं तो शरीरमें विकार हो जाते हैं। लेकिन पाश्चात्य चिकित्सकोंके मतानुसार रोगजीवाणु ही रोगोत्पादनके मुख्य कारण हैं, यद्यपि मधुमेह आदि कई रोग हैं जिनमें कोई भी जीवाणु रोगका कारण नहीं है। दोनों चिकित्सा पद्धतियोंमें नहीं विरोध उत्पन्न हो जाता है। यह बात नहीं है कि आयुर्वेद इन रोग जीवाणुओंका सर्वथा ही विरोध करता है अपितु इसके मतमें ये रोग जीवाणु पहिले अहिताहार विहारादि हेतुओंको आश्रय करते हैं और पुनः अपने अपने स्वभावानुसार रोग विशेषके उत्पादनमें समर्थ होते हैं चरकसंहिताके सूत्रस्थानके उन्नीसवें अध्यायमें स्पष्ट लिखा है कि—"दोषज रोगोंमें पोछेसे आगन्तुक रोगका भी अनुबंध हो जाता है।" यहाँ स्पष्ट रूपसे रोग जीवाणु शब्द न रहने पर भी आगन्तुक शब्द द्वारा रोगजीवाणुके संस्पर्शका बोध होता है। वैसे भी चरकमें स्थान-स्थान राक्षसोंसे बचनेका उपदेश किया गया है—ये राक्षस और कुछ नहीं आजके विद्वानोंके मतानुसार रोगजीवाणु ही हैं, लेकिन रोगजीवाणु मानते हुए भी आयुर्वेद त्रिदोष सिद्धान्तको महत्त्व देता है। इस सिद्धान्तके अनुसरण करनेसे शरीरकी प्राकृतिक और प्रक्रियाओंकी व्याख्या करने तथा भोज्य द्रव्यों और औषधियोंके द्वारा उन विषयोंको शांत करनेमें भारी सहायता मिलती है। रोग-चिकित्सामें पहिले तीनों दोषोंमेंसे प्रकोपक दोषका निश्चय कर उसको शामक चिकित्सा करनेसे रोग शांत होजाता है। इसके विपरीत एलोपैथी या अन्य प्रणालियाँ कारणकी चिकित्सा न करके कार्यकी चिकित्सा करती हैं, जिससे वह अधूरी रह जाती है। जिस व्यक्तिको एक बार कुनीनकी मात्रा दे दी गई है सम्भव है कि उसकी बीमारी कुछ समयके लिए दब जाए लेकिन सदाके लिए शांत नहीं हो सकती। हम देखते हैं कि बहुतसे एलोपैथीप्रेमी जो शुरूमें अपने शहरोंके डाक्टरों आदिकी चिकित्सा कराते हैं बादमें वैद्योंकी शरण लेते हैं। सर जेम्सवाट जो कि ब्रिटिश मेडिकल एसोसियेशनके उपसभापति थे लिखते हैं, "The treatment of disease is not Science, nor even a refined art but a thriving Industry" इस प्रकार अपूर्ण चिकित्सा करके जनताका पैसा लूटना मानवताके प्रति असह्य अन्याय है।

वैद्यक की विशेषता

चरकके 'भिषग्द्रव्याण्युपस्थाता रोगी पादचतुष्टयम्''के अनुसार वैद्य,रोगी, औषध और उपचारक भेदसे चिकित्साके चार अंग माने गए हैं, लेकिन फिर भी वैद्य और औषधिकी महानता है। हर एक व्यक्ति वैद्य कहलानेके योग्य नहीं हो सकता। आवश्यक है कि वह चिकित्सा-कुशल एवं विद्या-विशारद हो, लेकिन इसके अतिरिक्त उसमें स्वाभाविक कोमलता एवं उदारता आदि गुणोंका होना आवश्यक है। आयुर्वेद "नात्मार्थं नापि कामार्थं अथ सर्वभूतदयां प्रति" के सिद्धान्तका प्रचारक है, यह व्यापारिक आधारों पर खड़ा न होकर संसारकी सेवाके लिये बनाया गया है जब कि एलो-पैथी आदि पद्धतियोंमें यह विशेषता नहीं है। उनका मुख्य सिद्धान्त तो 'परस्वहरण'' मालूम होता है।

वैद्यकी इन खूबियोंके साथ औषधिका भी विशेष महत्त्व है। औषधियोंके उखाड़नेसे लेकर उनके प्रयोग करने तकके नानाविध संस्कार और उनके निश्चित समय पर निश्चित ऋतुओंमें उखाड़ने आदिके नियम इसकी धार्मिक महत्ता बढ़ा देते हैं। औषधियोंके उखाड़ते समयका 'ओं यानि निवसन्त्यस्मिन् भूतानि'' विषयक मंत्र एक विशेष महत्त्व रखता है। यद्यपि हमारे तर्ककी दृष्टिसे उसका इतना महत्व न हो तो भी भावनाकी दृष्टिसे यह बहुत ही महत्वपूर्ण है। इसकी धार्मिक पवित्रताका जो प्रभाव मनुष्यके मनपर हो सकता है वह एलोपैथीकी बाज़ारू गोलियोंमें असम्भव है।

आयुर्वेदका द्रव्यगुण-शास्त्र बहुत विशाल है, पर साथ ही वह लचीला भी है और इसीमें उसकी महानता है। चरक ने सूत्रस्थानके चतुर्थ अध्यायमें ६०० विरेचनोंका ज़िक्र किया है और एक ही द्रव्यके ५०० प्रयोग बताये हैं। बुद्धि-मान वैद्य इसीसे अपने अनुभवके आधार पर असंख्य प्रयोग बना सकता है। यह विशाल और लचीला द्रव्यगुण सभी लोगोंको रुचि और रीति-रिवाजोंके अनुकूल है।

इस चिकित्साकी बहुत बड़ी विशेषता इसके सस्तेपन एवं व्यावहारिक उपयोगितामें है। आजकलके ज़मानेमें जब औसतन प्रत्येक भारतीय आर्थिक दृष्टिसे असमर्थ है उस समय इतने दूरसे आई हुई दवाईके लिए इतना ख़र्च करना मुश्किल है। उस समय यह चिकित्सा ही भारतीय अर्थ-शास्त्रकी दृष्टिसे भी उपयोगी सिद्ध होती है। भारतीय चिकित्साके लिए अपने घरोंसे बहुत दूर नहीं जाना पड़ता। वैसे भी यह इतनी लोकप्रिय है कि भारतमें प्रायः प्रत्येक घरमें आयुर्वेदकी बहुत-सी अमूल्य बातें लोगोंको ज़बानी याद हैं। इससे समय पड़ने पर उन्हें किसी डाक्टर-के पास दौड़ना नहीं पड़ता। चिकित्साके दो अंग माने गए हैं—(१) काय चिकित्सा (२) शल्य-चिकित्सा। मैंने काय चिकित्साके सस्तेपनके बारेमें ऊपर बताया है। अब शल्य-चिकित्साके सस्तेपनके बारेमें काठियावाड़के शस्त्र-वैद्य श्री प्रभाशंकर नानाभाईके शब्दोंको देखिये जो पूना-सम्मेलनमें अपने साथ चीरफाड़के वे औज़ार (शस्त्र) भी लाये थे जो सुश्रुत और वाग्भट्टके लेखानुसार भारतवर्षमें ही बनाये गए थे। इनका वर्णन करते हुए उन्होंने बतलाया था कि मैंने इस शस्त्रको इतने आने अथवा इतने पैसोंमें बनवाया है, किन्तु इसी कामका विलायती औज़ार इतने रुपये या इतने सौ रुपयोंमें आता है। आपने कहा कि जलोदर वालेका पानी निकालने पर फिर पानी उत्पन्न न हो तथा फिर उसके पेटमें विष उत्पन्न न हो इसके लिए पश्चिमी चिकित्सा-पद्धतिमें कोई उपाय नहीं, किन्तु हमारे यहाँ "व्रीहि-मुख" से धीरे-धीरे कई दिनोंमें जल निकालनेसे विष उत्पन्न नहीं होता और ६ महीने तक नहीं बढ़ता। हम लोग लंघन और वमन विरेचन देकर यवमात्र जगह छोड़ कर पथरी निकालते हैं और उसका बडिशयंत्र'' पाँच पैसेमें बनता है परन्तु पश्चिम वाले इस काममें डेढ़ हज़ार रुपयेका यंत्र काममें लाते हैं। ख़ैर, इस छोटी-सी-वार्तासे आपको पता लग गया होगा कि आयुर्वेदिक-पद्धति ग़रीब भारतवासि-योंके लिए किस प्रकार काय चिकित्सा व शल्य चिकित्सा की दृष्टिसे उपयोगी एवं सस्ती पड़ती है।

विभिन्न चिकित्सायें

आयुर्वेद केवल दवाइयों द्वारा ही चिकित्सा नहीं करता। बहुत प्राचीन वैदिक कालसे सूर्य-चिकित्सा, विद्युत् चिकित्सा, जल-चिकित्सा आदि चिकित्साओंका, जिन्हें पाश्-चात्य विद्वानों ने अभी पिछले दिनों मालूम किया है—उप-योग करते आए हैं और इसमें उन्हें सफलता मिली है। इतना ही नहीं आयुर्वेदमें उन उपायोंका वर्णन भी मिलता है जिनसे हमारा शरीर स्वस्थ रह सकता है और औषधिकी

ज़रूरत ही नहीं पड़ती। आजकलकी तरह इन रोगोंसे बचनेका उपाय इंजेकशन या वैक्सीनेशन आदि गन्दी पद्धतियाँ न होकर उत्तम भोजन, नस्य, उत्पीड़न, व्यायाम, धूप-स्नान, व्रत आदि थीं। आयुर्वेदका पंचकर्म साधन एक ऐसी विशेषता है जिसे भुलाया नहीं कहा जा सकता।

आयुर्वेद-चिकित्सामें ऐसी शक्ति है जो जीवन-शून्य दिशाओंमें प्राण फूँक देती है, निराश प्राणियोंके दिलोंमें आशा भर देती है, वृद्धोंको तरुण व युवकोंको शक्तिशाली बनाती है। वृद्ध च्यवन ऋषिकी कहानी मशहूर है। वैसे भी आयुर्वेदको कायाकल्प-पद्धति एक ऐसी विशेषता है जो किसी दूसरी प्रणालीमें नहीं पाई जाती। बहुतसे लोग पहिले उसे केवल हस्यका विषय समझते थे लेकिन आज यह एक मज़ाकका विषय न रहकर एक सत्य सिद्ध हुआ है। पिछले दिनों जब पं० मदनमोहन मालवीय जी ने कायाकल्प करनेका निश्चय किया था तब उनके इस निश्चयका सबने मज़ाक उड़ाया था, लेकिन जब १२ दिनके बाद उन्होंने अपने चश्मे उतार दिये व उनके चेहरेकी झुर्रियाँ लुप्त हो गईं तो सबको आश्चर्य-चकित होना पड़ा था। पुराणों तथा अन्य हिन्दूगाथाओंमें जो ऋषियोंकी उम्र इतनी अधिक होनेकी घटनाएँ वर्णित हैं वे इस विधिके सत्य सिद्ध होनेसे झूठी नहीं कही जा सकतीं।

आजके स्वदेशी युगमें तो इसका महत्त्व और भी अधिक बढ़ जाता है। यह वह प्रणाली है जिसमें प्रयुक्त सभी पदार्थ स्वदेशी होते हैं। औषधि सामग्रीसे लेकर औषधि-निर्माणके सभी यंत्र, खरल, इमामदस्ता और सिल-बट्टा आदि सभी स्वदेशी हैं जब कि एलोपैथिक चिकित्सामें एक रूई तक भारतकी बनी काममें नहीं लायी जाती, पट्टियाँ और ज़ख्मों पर लगाने वाली रूई (gauze) तक विदेशसे आती हैं। आजसे २० वर्ष पहिले दवाइयोंके व्यापारके बारेमें लगाये गए आंकड़े इस प्रकार हैं—हमारे देशके ५९ लाख रुपयेकी कच्ची औषधियाँ विदेश गईं और १ करोड़ २ लाख रुपयेकी दवाइयाँ वहाँसे यहाँ आईं। इस प्रकार इस व्यवसायसे हमारी ४९ लाख रुपयेकी हानि प्रतिवर्ष होती है। यह ४९ लाख रुपये उन ग़रीब भारतवासियोंका खून है जो दाने-दानेको मोहताज हैं। पहिननेको कपड़ा नहीं मिलता, रहनेको स्थान नहीं है। क्या ग़रीब भारतीयोंके लिये ऐसी प्रणाली उपयोगी हो सकती है?

आयुर्वेद भी वैज्ञानिक है?

बहुतसे लोग कहते हैं कि यह प्रणाली वैज्ञानिक नहीं है, लेकिन जिस प्रणालीमें रोगविनिश्चयके लिए निदान के अनुसार—"निदानं पूर्वरूपाणि रूपाण्युपशमस्तथा संप्राप्तिश्चेति ज्ञेयः पञ्चधो रोगविनिश्चयः" रोगको जाननेके लिए निदान-कारण, पूर्वरूप = रोगके प्रारम्भ होनेसे पूर्वके अपूर्व लक्षण व रूप पूर्ण लक्षण, उपशयः व्याधि विपरीतकारी, हेतु विपरीतकारी, और हेतु व्याधि विपरीतकारी औषधि और आहारके भेदोंसे रोगोंके उपशम (निवृति) का ज्ञान तथा संप्राप्तिः रोगके प्रसारका पूरा चित्र आदि, पाँच उपायोंका उपयोग करना आवश्यक होता है। इतना ही नहीं-"गदाक्रान्तस्य देहस्य स्थानान्यष्टौ परीक्षयेत्, नाड़ी मूत्रं मलं जिह्वां शब्दं स्पर्शं दृगाकृतिम्" के अनुसार नाड़ी, मूत्र, मल, जिह्वा आदि-आदि परीक्षायें आवश्यक हैं। क्या वह विज्ञान नहीं है। पाश्चात्य विज्ञानमें जो स्थान क्लिनिकल मेथड (clinical method) का है वही स्थान इन परीक्षाओंका भी है। शेष शल्य-शास्त्रके बारेमें हमारा प्राचीन शल्य-शास्त्र कितना उन्नत था इस विषयमें महाशय वेबरके शब्दोंको सुनिये—"In surgery, too, the Indians seem to have attained a special proficiency and in this department European surgeons might, perhaps even at the present day, still learn something from them, as, indeed they have already borrowed from them the operation of Rhinoplasty.

महाशय कास्टेलानी और शैमस ने अपने "Manual of tropical medicine" में स्पष्ट लिखा है—"There is no doubt that the Indian doctors were well-versed not merely in medicine & surgery, but also in the frementia of disease & operation of midwifery.

Encyclopædia Britanica में स्पष्ट लिखा है—"We may give the first place

to the easteren branches of the Aryan race in a sketch of the rise of Surgery."

इन सब सम्मतियोंके बाद सुश्रुतमें वर्णित देवताओंके भग्न सिरोंको जोड़ना, आदि घटनाएँ कल्पित नहीं कही जा सकतीं।

अन्तिम बात यह है कि चरकके "यस्यदेशस्य यो जन्तुः" के उपदेशानुसार भारतीय पुरुषोंके लिए भारतमें ही उत्पन्न औषधियाँ जो असर कर सकती हैं वह दूसरी नहीं कर सकती। एलोपैथिक डाक्टर जब एलोपैथीकी प्रशंसा करने लगते हैं तो बहुधा यह कहा करते हैं कि रोगियोंकी अधिक संख्या प्रायः उन्हींके पास आती है लेकिन यदि दोनों पद्धतियोंसे स्वास्थ्य-लाभ करने वाले पुरुषोंको संख्या निकाली जाए और उसमें उन बूढ़ी माताओं और वृद्ध पुरुषोंकी जो गाँवोंमें या घरोंमें बिना किसीसे कुछ लिये निःस्वार्थ भावसे दवाइयाँ देकर रोगियोंको स्वास्थ्य प्रदान करते हैं, संख्या गिनी जाए तो कभी भी भारतवर्षमें एलोपैथीकी सफलताके चिह्न नहीं मिल सकते।

साररूपमें इन विशेषताओंको निम्न क्रमसे रक्खा जा सकता है :—

(क) पुराने और जटिल रोगोंका समूल उन्मूलन करनेको सामर्थ्य आयुर्वेदिक पद्धतिके समान अन्य किसी पद्धति में नहीं है।

(ख) रोगोंके निर्दोष शमन-दमन करनेकी अप्रतिभ क्षमता केवल इसी पद्धतिमें है।

(ग) इसमें अकिंचन दीनोंसे लेकर बड़े-बड़े करोड़पतियों और सम्राटों तककी प्रकृतिके अनुकूल पड़ सकने योग्य सब प्रकारके विविध और बहुसंख्यक औषध सुगमता से पाये जा सकते हैं।

(घ) भारतके ग्रामोंमें बिना मूल्य औषधिका वितरण केवल इसी पद्धतिके अनुसार किया जा सकता है।

(ङ) आयुर्वेदिक पद्धतिमें काम आने वाली जड़ी बूटियाँ समस्त भारतमें उत्पन्न होती हैं और सर्वत्र सुगमतासे मिल सकती हैं।

(च) इस पद्धतिमें किसी विदेशी वस्तुका प्रयोग नहीं होता।

(छ) भारतवासियोंको पद्धति, परम्परा और आर्थिक दशाके अनुकूल एक मात्र आयुर्वैदिक पद्धति ही हो सकती है।

(ज) क्षयरोग निर्मूल करनेमें अब तक केवल आयुर्वैदिक चिकित्सा-पद्धतिने ही सफलता प्राप्त की है।

इसके साथ-ही-साथ संसारके अन्य अनेकों गणमान्य विद्वानों एवं योग्य डाक्टरोंने आयुर्वेदके विषयमें जो सम्मतियाँ दी हैं वे भी देखने योग्य हैं।

कविराज माखनलाल जी ने लिखा है

"I regard the Hindu system of medicine from what little I know of it as vastly superior to so-called western Science of medicine. In my estimation the latter is no science at all because it does not even know the fundamentals e. g. the theory of Vayu, Pitta & Kafa."

अमेरिकाके प्रसिद्ध डाक्टर जी० एच० क्लार्क, एम० ए० एम० एस० ने लिखा है कि "यदि इस जमानेमें डाक्टर लोग अपने फार्माकोपियासे नवीन दवाइयाँ और रासायनिक पदार्थ निकाल डालें तथा चरक संहितामें कहीं हुई नीतिसे चिकित्सा आरम्भ कर दें तो प्रेतसंस्कार करने वालोंका काम बहुत कम होता है।

डा० चार्ल्स, जो गवर्नमेंट मेडिकल कालेज, कलकत्ता के प्रिंसिपल रह चुके हैं, लिखते हैं—

"What you, Hindus, had in perfect state two thousand years before, I am going to teach you in so imperfect a state."

"What the Aryan medical science practised two thousand years ago

I am reproducing to you and that only a small fragment of the lesson taught by Charak and Sushruta."

डा० एनी बेसेण्ट ने लिखा था कि "In medicine Indians are still more advanced. Indian medicine is superior to the medicine of the west."

इसी तरहके हज़ारों प्रमाण व सम्मतियाँ हैं जिनसे इस प्रणालीकी विशेषता एवं उपयोगिता सिद्ध होती है। सचमुच आयुर्वेद चिकित्सा-पद्धति एक पूर्ण वैज्ञानिक चिकित्सा है। संसारका सम्पूर्ण चिकित्सा-विषयक ज्ञान आयुर्वेद मार्तण्डका एक सूक्ष्म भाग ही है। दुर्भाग्यसे भारतवर्ष प्रारम्भसे ही विदेशी आक्रमण-कारियोंसे आक्रांत होता रहा है। इसीलिए हमारे बहुतसे प्राचीन ग्रंथ एवं साहित्य, जिसपर हम नाज़ कर सकते थे, अकालमें काल-कवलित हो गये हैं. फिर भी चरक और सुश्रुत आदि चिकित्साके जो दो-चार ग्रंथ मिलते हैं—उन्हींके अध्ययनसे इस पद्धतिकी महत्ता समझी जा सकती है।

कलम-पेवंद (१)

[ले०—श्री शंकरराव जोशी]

कलम-पेवंद चढ़ानेकी आवश्यकता

'कलम' शब्द फ़ारसी भाषाका है। हिंदीमें यह लेखनीके अर्थमें प्रयुक्त किया जाता है। उद्यान-विद्याका व्यावहारिक ज्ञान रखने वाले व्यक्ति इस शब्दके असली अर्थसे भलो प्रकार परिचित हैं। साधारणतः हमारे माली पौधेके किसी अवयवसे (बीजको छोड़कर) नवीन पौधा तैयार करनेकी क्रियाको 'कलम लगाना' कहते हैं। अँगरेज़ी शब्द 'ग्राफ्ट' (graft) में सभी प्रकारके कलम-पेवंदका समावेश होता है, जिनके द्वारा कुशल माली पौधोंकी संख्या-वृद्धि करता है। बीज बोकर पौधे तैयार करनेकी क्रियाका इसमें समावेश नहीं होता है।

वैसे तो पौधोंकी संख्या-वृद्धि उनके बीजोंसे हो सकती है। किन्तु फिर भी उद्यान-कलामें कलम-पेवंद इत्यादि साधनोंका अधिक उपयोग किया जाता है। इसके कई कारण हैं। साधारणतः जिस पौधेका बीज बोया जाता है, उसकी सन्तति भी ठीक वैसी ही होती है। तथापि कुछ पौधे ऐसे भी हैं, जिनके पौधेसे पैदा होने वाले पौधोंका गुण और स्वाभाव, जिस पौधेसे बीज बोया गया है, उसके गुण और स्वभावसे कुछ या बिलकुल ही भिन्न होता है। गुलाबाँस और पपीता इसके उत्तम उदाहरण हैं। यदि बीज जमाकर लगातार चार-पाँच वर्ष तक भिन्न-भिन्न रंगके फूल वाले गुलाबाँस पास-पास बोये जायँ तो फूलोंका रंग ही बदला हुआ नज़र आवेगा—फूलों पर भिन्न-भिन्न रंगके छींटे दिखाई देंगे। एक ही फलके बीजोंके बोकर तैयार किए हुए एरंड-ककड़ीके पौधोंमें नर, मादा और उभयलिङ्गी-पौधे पैदा होते हैं। कलमी आमके बीजको बोकर तैयार किए हुए पौधेके फलका स्वाद, आकार आदि अलग ही प्रकारका होता है। इससे यह साबित होता है कि बीजसे पैदा होने वाले पौधेमें मातृ-पौधेके सभी गुण पूर्णरूपसे नहीं उतरते हैं। अतएव किसी पौधेके गुण और स्वभावको पूर्ण रूपसे सन्ततिमें लाने केलिए कलम-पेवंद द्वारा नये पौधे तैयार करना ही एक मात्र उपाय है।

बीज बोकर तैयार किए हुए सोन-चम्पा, गुलाब, आम आदिके पौधे बहुत दिनोंमें फूलते-फलते हैं। आमका पौधा करीब सात-आठ सालमें फलता है। गुलाब करीब दो साल बाद फूलने लगता है और सोन-चम्पाके पौधेको करीब तीन सालमें फूल आते हैं। यदि कलम-पेवंद द्वारा रोपे तैयार किए जायँ तो पौधोंके फूलने-फलनेकी अवधि बहुत घट जाती है। आममें चौथे-पाँचवें वर्ष फल आ जाते हैं। सोन-चम्पा और गुलाब क्रमशः एक वर्ष और चार-पाँच मास बाद फूलने लगते हैं। यह एक अनुभाव-सिद्ध बात है कि कलम-पेवंद द्वारा तैयार किए हुए पौधे बहुत जल्द फूलने-फलने लगते हैं।

मूल या जड़

पौधेके अक्षका पत्रहीन भाग जो ज़मीनमें प्रवेश करता

है और प्रकाशसे परे फैलता है और वृद्धि पाता है, जड़ कहाता है।

कलिकायें

ईख, ज्वार, केवड़ा आदि थोड़ेसे पौधोंको छोड़कर अन्य किसी एक-बीज पत्रक पौधेके तने पर कलिकायें नहीं होतीं। द्विबीज-पत्रक जातिका एक भी पौधा ऐसा नहीं है जिसके तने पर कलिकायें न पाई जाती हों। इस जातिके प्रत्येक पौधेमें जहाँ भी पत्ता होता है वहीं कलिका अवश्य होती
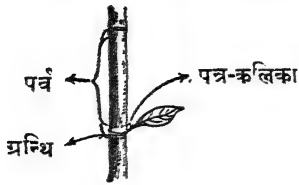
चित्र—१

है। यह कलिका पत्ते और पौधेके अक्षके कोणमें होती है। इसको 'पत्र कलिका' कहते हैं (चित्र १)। इसके अतिरिक्त पौधेके दूसरे भागोंमें भी कलिकायें होती हैं जिनके भिन्न-भिन्न नाम हैं। अंकुर या प्ररोहके सिरेपरकी कलिका "कंडाग्र कलिका" और दानेके सिरेपरकी कलिका "अग्र कलिका" कही जाती है। पत्तेको जन्म देने वाली "पत्र कलिका" और पुष्पको जन्म देने वाली कलिका 'पुष्पकलिका' कहलाती है। कई कलिकायें सुप्तावस्थामें रहती हैं। किसी कारणसे यदि पत्ते, टहनी आदि नष्ट हो जायँ तो यही सुप्त कलिकायें विकसित होकर नवीन पत्ते और टहनी आदिको जन्म देती हैं। पतझड़के मौसममें पौधोंके गलित-पत्र गिर जाते हैं। नये पत्तोंका जन्म इन्हीं सुप्त-कलिकाओंसे होता है।

तने की अन्तर-रचना

कलम-पेवंदमें सफलता प्राप्त करनेके लिये तनेकी अन्तर-रचनाका थोड़ा बहुत ज्ञान होना बहुत ही आवश्यक है। कारण कि भावी पौधेका जन्म दो तनों या पौधेके अन्य दो अवयवोंके संयोग पर ही निर्भर है। किसी भी द्विबीज-पत्रक पौधेके तने या टहनीका निरीक्षण करनेसे मालूम हो जायगा कि वह छालसे ढका है। तने या टहनीको खड़ा चीर कर देखिये। सबसे बाहरकी ओर खड़ी काली रेखा छाल है। छालके नीचे अन्तर-छाल (bast) रहती है। यह पतली होती है। अन्तर-छालके भीतर मज्जा-तन्तु (cambum) का पर्त रहता है जो महीन झिल्ली जैसी दीवारोंके कोषोंसे बना होता है। मज्जातन्तुके अन्दरकी ओर काष्ठ
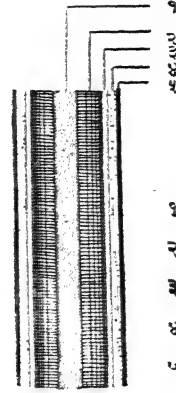
चित्र—२

(wood) का स्तर होता है और वैसे मज्जातन्तुके ठीक अन्दर की ओर नवीन काष्ठ (alburnum) होता है। सबसे अधिक मध्यमें हीर या पीथ (pith) रहता है। हीर या पीथ चारों ओर काष्ठसे घिरा होता है। द्विबीजपत्रक पौधेमें ही मज्जा-तन्तुका पर्त रहता है और तनेके नाड़ी गुच्छ (vascular bundles) एक वृत्तमें संगठित होते हैं। मज्जा-तन्तुके अभावके कारण एक-बीज पत्रक पौधोंमें नवीन काष्ठ या अन्तर छालका स्तर निर्माण नहीं होता और यही कारण है कि कुछ अपवादोंको छोड़कर किसी एक-पत्रक पौधेमें कलमें नहीं लगाई जा सकती हैं।

सूक्ष्म-दर्शक यंत्रसे देखनेसे पत्तेके भीतर बहुत ही सूक्ष्म छिद्र दिखाई देते हैं। वे पत्र-रंध्र असंख्य नलिकाओं और धमनियोंके मुख या द्वार हैं। पत्र-रंध्र और मानव-शरीरके रोम-रंध्र करीब-करीब एक ही उद्देशको पूर्ति करते हैं। जलज-वनस्पतियोंके पत्तोंकी ऊपरी सतह-पर पत्र-रंध्र होते हैं। ये छिद्र दिनमें खुले रहते हैं और रातको बंद हो जाते हैं।

पत्ते पानीको खींचते भी हैं। जितना पानी पत्ते वाष्परूपमें हवामें छोड़ते हैं उतना ही वे तनेमेंसे अपनी ओर खींचते हैं। यह क्रिया दिनके प्रकाशमें जारी रहती है।

पौधेके जीवनके लिए स्वेदन-क्रिया बड़े महत्वकी है। मूल-द्वारा सोखा हुआ भोज्य-पदार्थ-मिश्रित जल पत्तोंमें पहुँचता है। पत्तोंमें रासायनिक क्रिया-द्वारा ये भोज्य-पदार्थ एक ऐसे रसमें परिवर्तित हो जाते हैं, जो पौधेका पोषण और वृद्धि करते हैं। भोज्य-पदार्थोंके आहार-रसमें परिवर्तित हो जानेके बाद जितना भी जल बच जाता है, भाप बन कर पत्र-रंध्रोंमेंसे बाहर निकल जाता है। स्वेदन-क्रिया के बन्द हो जानेसे पत्तोंमें जल भरा रह जायगा, जिससे पौधा रोगी हो जायगा और तब वह बच न सकेगा।

एक सेर काष्ठ-निर्माण करनेके लिए पौधेको दो सौ सेर जल वाष्परूपमें हवामें छोड़ना पड़ता है और एक सेर क्षारांश तैयार करनेके लिए दो हज़ार सेर जल हवामें फेंका जाता है।

इससे अनुमान हो सकता है कि इस क्रियाको जारी रखनेके लिए जड़ोंको कितना अधिक जल ज़मीनमेंसे सोखना पड़ता है। जड़ोंका काम रुकते ही पौधे कुम्हला जाते हैं। पानी खींचते ही वे फिर डहडहे हो जाते हैं। यही बात पौधेको स्थानान्तरित करनेमें पाई जाती है। पौधेको उखाड़नेसे जड़ोंपरके कोमल रोम टूट जाते हैं, जिससे दूसरे स्थान पर लगा देनेके बाद भी पत्ते मुरझाए रहते है। स्थानान्तरित करनेके कुछ दिन बाद जड़ोंपर नवीन रोम निकल आते हैं। उनके अपना काम शुरू करनेपर पौधा शीघ्र ही हरा-भरा होता है। नवीन रोम निकल आने तक प्रकाशमें रहनेसे पत्तोंमें वाष्पोमवनको क्रिया जारी रहती है और बाहर फेंके हुए जलकी कमीको पूरा करनेकी शक्ति जड़में न होनेसे पौधा मर जाता है। इसी कारणसे स्थानान्तरित करने पर पौधे पर छाया कर देते हैं और कुछ पत्ते भी कम कर दिये जाते हैं।

पौधेके जीवनके लिए स्वेदन-क्रिया आवश्यक तो है, किन्तु इसका बहुत ज़्यादा तेज़ीसे जारी रहना हानिकारक हैं। रूखी हवा, कड़ाकेकी धूप और वर्षाकी खींचके कारण पाचन-क्रियाके लिए ऊँचे प्रकारके साथ ऊँचे तापक्रमकी भी ज़रूरत होती है। तापक्रमके एक निश्चित सीमा तक घट जाने पर पाचन-क्रिया रुक जाती है। हर पौधेके लिए भिन्न-भिन्न तापक्रमकी ज़रूरत होती है। किन्तु सूर्यकी सभी किरणें पाचन-क्रियाको जारी रखनेमें सहायक नहीं होती हैं। कासनी रङ्गकी किरणें जल और कर्बन-द्वि-ओषिदके अणुओंको पृथक् करनेके लिए पर्याप्त शक्ति प्रदान करती हैं जिससे कर्बोदित बनता है।

जीवन-मूल या प्रोटोप्लाज़्म करनेमें नोषजन-रहित कर्बोदेतके अलावा नोषजन युत कार्बनिक-यौगिककी भी ज़रूरत होती है। प्रोटीड ही ये नोषजन-युत यौगिक हैं जिनमें नोषजन, गंधक, कर्बन, ओषजन और उद्जन रहते हैं।

प्रत्येक सजीवकोष, अनुकूलतत्वोंके प्राप्त होने पर, प्रोटीड तैयार करता है।

आहार-रसका स्थानान्तरित होना

पत्तोंमें बना हुआ स्टार्च (माड़ी) पौधोंके अन्य अवयवोंमें भेज दिया जाता है। माड़ीके कण ठोस और अघुलनशील होते हैं। ये रासायनिक क्रिया-द्वारा एक प्रकारकी शर्करामें बदल जाते हैं। यह यव-शर्करा कोष-रसमें घुलकर पौधेके भिन्न-भिन्न अवयवोंमें पहुँच जाती है। प्रोटीन भी इसी तरह पौधेके शरीरमें फैल जाता है।

पौधोंका पालन-पोषण

पौधोंका वंश-विस्तार दो तरहसे होता है—(१) बीजसे और (२) कलम-पेवंदसे। मूली, मेथी आदि कई प्रकारकी तरकारी, बहुतसे मौसमी फूल और नीम, आम, अमरूद आदिका वंश-विस्तार बीजसे होता है। ऊपर लिख आये हैं कि बीजमें संग्रहीत भोज्य-पदार्थोंसे परिपोषित होकर ही नवजात पौधा बढ़ता है। यदि बीज उत्तम जातिका न होगा तो अंकुर ज़ोरदार न निकलेगा। परिणाम यह होगा कि पौधा जल्द ही रोगका शिकार हो जायगा और जीवनकी सरदी गरमीको सहन करनेकी क्षमता उसमें न रहेगी, जिससे वह जल्द ही मर जायगा। यदि कदाचित् यह कमज़ोर पौधा फूले-फले भी, तो फल छोटे-छोटे लगेंगे, उनका स्वाद भी ख़राब होगा और वे ज़्यादा दिन तक टिक भी न सकेंगे। इसीलिए इस बातपर हमेशा ख़्याल रक्खा जाना चाहिए कि निरोग और अच्छे बीज ही काममें लाए जायँ।

जो पौधा निरोग, ज़ोरदार और फूल या फलोंसे खूब लदा हुआ हो, उसीके बीज चुने जाने चाहिए। फूल या फलोंका रूप-रङ्ग, आकार, सुगंध, मीठापन, निरोगता, चमक आदि पर काफी ध्यान देकर ही उस पौधेको चुना

जाना चाहिए, जिसके बीज बोनेके लिए रखने हों। जो फल पकने पर फट जाते हों, उनपर महीन मलमलकी थैली बाँध देनी चाहिए, ताकि फलके फटने पर बीज ज़मीन पर न गिरने पाएँ। थैली बाँधनेसे पहले देख लेना चाहिए कि फलपर इल्ली या अंडे तो नहीं हैं।

खूब पके हुए फल ही बीजके लिए चुने जाने चाहिए। बीजोंको लगातार तीन-चार दिन तक धूपमें अच्छी तरहसे सुखा लेना चाहिए। बीजोंको अच्छी तरहसे सुखा लेनेके बाद उन्हें किसी ऐसे बरतनमें रख देना चाहिए, जिसमें हवा न घुस सके।

गूदेदार फलोंको खूब पक जाने पर ही तोड़कर सड़ने देना चाहिए। गूदेके सड़ जानेपर बीजोंको निकालकर साफ़ पानीसे धो डालना चाहिए और तब तीन दिन-तक छायामें और बादमें पाँच दिन तक धूपमें सुखा लेना चाहिए।

अगर बीज बाज़ारसे ही खरीदने हों, तो किसी प्रसिद्ध और बड़ी दूकानसे खरीदना चाहिए। विदेशोंसे मँगवाए हुए बीज मँहगे होते हैं और कभी-कभी ख़राब भी निकल जाते हैं। सस्ते बीज हलके दरजेके तो ज़रूर होते हैं, मगर वे उतने खराब नहीं होते। हमारी रायसे तो बहुत ज़्यादा क़ीमत देकर ऊँचे दरजेके बीज खरीदनेकी अपेक्षा कुछ हलके दरजेके और सस्ते बीज खरीदना कहीं ज़्यादा फायदेमंद है।

बीज खरीदते वक्त देख लेना चाहिये कि उनमें दूसरे पौधोंके बीज शामिल तो नहीं हैं और बीज चमकीले और उनका रंग साफ़ है। कच्चे और अधपके बीजोंकी मिलावट नहीं होनी चाहिए। दुर्गन्ध देने वाले बीज हरगिज़ नहीं खरीदने चाहिए।

मिट्टीके गमलों या फूटे बर्तनके टुकड़ेमें हर एक नमूनेके सौ-सौ बीज बो दिए जायँ। बोनेके बाद पानी सींचकर अँधेरी जगहमें रख देना चाहिये। चौबीस-चौबीस घंटे बाद उगे हुये बीजोंको गिन लो। लगातार तीन दिन तक चौबीस-चौबीस घंटेके बाद अंकुर निकले हुए बीज गिन लिये जाया करें। तीन दिनमें जिस नमूनेके सबसे ज़्यादा बीज उग आए हों, वही अच्छा समझ कर खरीद लिया जाय।

वज़नदार और मोटे बीज भी अच्छे होते हैं। हरएक नमूनेके सौ-सौ बीज लेकर तौल लिये जायँ। जिस नमूनेके सौ बीजोंका वजन सबसे ज़्यादा हो, वही खरीदना अच्छा है।

बीजोंकी रक्षा

काँचकी शीशियाँ, कनस्तर या टीनके डिब्बे बीज रखनेके लिए अच्छे हैं। बीज भर कर नेपथलीनकी गोलियाँ डालकर मज़बूत ढक्कन लगा दिया जाय। राख चूना आदि मिलाकर रखनेसे भी कीड़ोंसे बीजोंकी रक्षा होती है। बीज रक्खे हुए बरतनका मुँह इतनी मज़बूतीसे बन्द करना चाहिए कि हवा भीतर न घुस सके। शीशीके काग पर मोम लगाकर मुहर कर देनी चाहिए।

बीज बोना

कई पौधोंके बीज, पकनेके बाद शीघ्र ही बो देनेसे अच्छे उगते हैं। कुछ पौधोंके बीज एक साल तक अच्छी हालतमें रहते हैं। आम, कटहल, नींबू, नारङ्गी, जायफल, काजू, सीताफल, करौंदा आदि पौधोंके ताज़े बीज ही बोये जाते हैं। कुछ बीजोंका छिलका कड़ा होता है और कुछका नरम। नरम छिलके वाले बीज तो जल्द उग आते हैं, किन्तु कड़ी छाल वाले बीज कई दिनों तक अंकुरित नहीं होते। बबूलके बीजके समान कड़े छिलके वाले बीज, बोनेके पहले पाँच-छ: घंटे तक सलफ्यूरिक ऐसिडमें भिगो लेनेसे जल्दी उग आते हैं। गोबर और पेशाबके घोलमें छः-छः दिन तक भिगोए रखनेसे भी बीजोंका छिलका नरम हो जाता है। ये बीज बोनेके बाद जल्दी उग आते हैं। महीन बीज जल्द ही मर जाते हैं।

किस जातिके बीज कितने गहरे बोए जाने चाहिए और दो पौधोंके बीचमें कितना फासिला रखना चाहिए, यह बात अनुभवसे ही मालूम हो सकता है। सर्व-साधारण नियम तो यह है कि बीजकी गोलाईकी तिगुनी बोनेकी गहराई होनी चाहिए। अंकुरित होनेके लिए बीजको प्रकाश और गरमीकी ज़रूरत होती है। इसलिए प्रकाश और उत्तापको रोकना हानिकारक है। फिर भी, इस बात पर ज़रूर ही ख़्याल रखना चाहिए कि प्रकाश और उत्ताप एक ही दिशाकी ओरसे न मिलने पावे। जिस तरफ़से पौधेको गरमी और उजियाला मिलेगा, उधरको ही वह झुक

जायगा। काफी उजियाला न मिलने पर पौधा कमज़ोर हो जाता है, और कभी-कभी मर भी जाता है।

सिंचाई

बगीचेके पौधोंकी सींचनेकी ज़रूरत होती है। जाड़ेके दिनोंमें कम पानी देनेकी ज़रूरत होती है और गर्मीके मौसममें ज़्यादा पानीकी। छोटे-छोटे पौधोंको ज़्यादा पानी सींचनेकी ज़रूरत नहीं है। ज़्यादा पानी छोटे-छोटे पौधोंके लिए हानिकारक है।

[शेष फिर]

घरेलू डाक्टर

(सम्पादक डा० जी० घोष, डा० गोरखप्रसाद आदि)

आँख (eye)—हमारे दो चक्षु, नेत्र या आँख होते हैं। भ्रुवोंके नीचे नासिकाकी दाहिनी और बाईं ओर कर्परमें दो गड्ढे होते हैं, इनको अक्षिखात या नेत्रगुहा कहते हैं। आँखका गोला (अक्षिगोलक) इसी गड्ढेमें रहता है। चक्षुकी बनावट छायाचित्र (फ़ोटो) खींचनेवाले यन्त्रकी बनावटसे बहुत कुछ मिलती है। यन्त्रकी तरह उसमें भी एक अँधेरी कोठरी है जिसके अगले भागमें एक ताल लगा रहता है।

अक्षिगोलककी दीवार तीन तहों या पटलोंसे बनती है; इनका रंग जुदा-जुदा होता है।

आँखका अगला भाग काँच जैसा स्वच्छ है। यह स्वच्छ चीज़ आँखके अगले भागकी दीवार है। इस स्वच्छ भागको कनीनिका (cornea) कहते हैं।

कनीनिकामेंसे चमकता हुआ एक काला (कुछ जातियोंमें भूरा या नीला) परदा दिखाई देता है; यह परदा मध्य पटलका अगला भाग है। इस परदेके बीचमें एक गोल छिद्र होता है जो फैलता और सिकुड़ता हुआ (बड़ा या छोटा होता हुआ) दिखाई दिया करता है। इस छिद्रको पुतली या तारा (pupil) कहते हैं और जिस परदेमें यह छिद्र होता है उसको उपतारा (iris) कहते हैं।

उपताराके पीछे आँखका ताल (lens) रहता है। तालके ऊपर एक पतला गिलाफ़ चढ़ा रहता है; इसको तालकोष (capsule) कहते हैं। ताल एक बंधन-द्वारा उपतारानुमंडल (ciliary body) से बँधा रहता है। उपताराके पीछे जो उभरा हुआ भाग होता है उसको उपतारानुमंडल कहते हैं। तालका बन्धन एक ओर
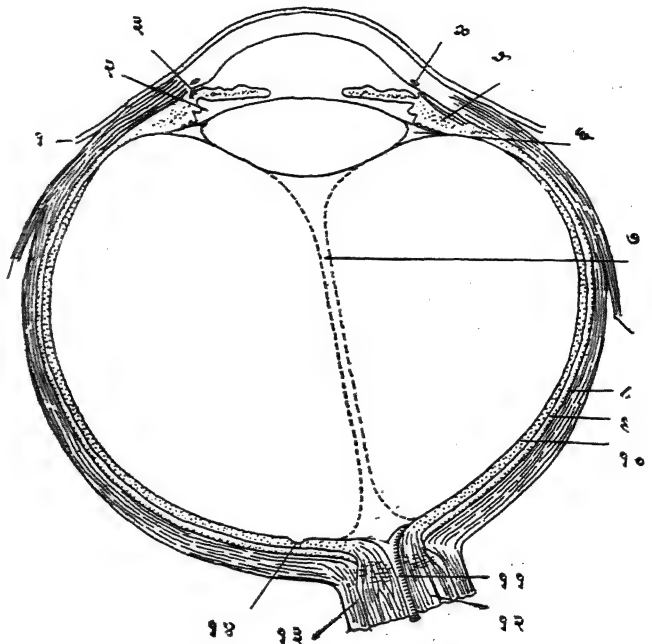
आँखकी बनावट

इस चित्रमें आँखको बीचसे काटकर दिखाया गया है। १—कनीनिका; २—जलीय द्रवपूर्ण अगला कोष्ठ; ३-४—उपतारा, इसीके बीचके छेदको तारा कहते हैं; ५—उपतारानुमंडल; ६—ताल; ७—लसीका वाहिनी, यह बीचमें नहीं रहती, किनारे रहती है। इसी लिए विंदुमय रेखासे दिखलाई गई है; ८—बाह्य पटल; ९—मध्य पटल; १०—अंतरीय पटल; ११-१२-१३ दृष्टि-नाड़ी; १४—पीत विंदु।

तालकी परिधि पर तालकोषसे लगा रहता है, दूसरी ओर उपतारानुमंडलसे । मांसके संकोच और प्रसारसे तालका बन्धन ढीला या तंग हो जाता है जिसकी वजहसे तालका उन्नतोदरत्व बढ़ या घट जाता है । जो काम छाया-चित्रण-यन्त्र में कोठरीकी लम्बाईको कम या अधिक करनेसे निकलता है वह आँखमें तालकी मोटाईको कम या अधिक करनेसे निकलता है। इस उन्नतोदरत्वके कम या अधिक होनेसे वस्तुओंका प्रतिबिम्ब ठीक सांवेदनिक पटल (retina) पर पड़ता है ।

तालके पीछे आँखका बड़ा कोष्ठ है । इसमें एक गाढ़ा, कुछ लसदार, स्वच्छ, अर्धतरल द्रव भरा रहता है। इस स्फटिकोपम वस्तुका काम चक्षुके आकारको स्थिर रखनेका है; यदि इस कोष्ठमें कुछ न होता तो आँख ज़रासे दबावसे पिचक जाया करती । इस द्रव्यके दबावसे आँखके तीनों पटल भी एक दूसरेसे मिले रहते हैं । इस चीज़में ९८·५०% जल होता है। इस द्रवको विट्रियस ह्यूमर (vitreous humour) कहते हैं ।

अंतरीय या सांवेदनिक पटल—इस पटलका वही काम है जो छाया-चित्रण यन्त्रमें मसाला चढ़ी हुई प्लेटका होता है । यह पटल नाड़ी-सूत्रोंसे और विशेष प्रकारकी सेलोंसे बनता है; सेलोंकी कई तहें होती हैं । पिछले भागमें इसकी मोटाई $\frac{१}{६०}$ इंचके लगभग होती है; उपतारानुमण्डलके पास यह बहुत पतला हो जाता है और उसकी मोटाई $\frac{१}{२४०}$ इंचसे अधिक नहीं होता। इस पटलके उस भागमें जो उपताराके समीप रहता है या उसके पिछले पृष्ठसे लगा रहता है नाड़ीसूत्र और सांवेदनिक सेलें नहीं पाई जातीं । जीवितावस्थामें यह पटल स्वच्छ होता है और उसका रंग, सेलोंके भीतर एक विशेष रंग रहनेके कारण, नीललोहित होता है; मृत्युके पश्चात् यह पटल अस्वच्छ और धूसर रंगका हो जाता है ।

चक्षुके पाश्चात्य ध्रुव पर इस पटलके भीतरी पृष्ठमें एक गोल या अंडाकार पीला धब्बा होता है; इसको पीतबिन्दु (yellow spot) कहते हैं । पीतविन्दुका व्यास $\frac{१}{२४}$ से $\frac{१}{१२}$ इंच तक होता है । उसके बीचमें एक गड्ढा होता है । जब हम कोई चीज़ देखते हैं तो अक्षिगोलक इसप्रकार गति करता है कि यह स्थान उस चीज़के सम्मुख आ जावे, ताकि प्रतिबिम्बका कुछ भाग उस पर भी पड़े ।

अन्य स्थानोंकी अपेक्षा पीतविन्दुमें देखनेकी शक्ति सबसे अधिक होती है ।

दृष्टिनाड़ी—यह चक्षुके पिछले भागसे आरम्भ होती है । अनुमान है कि दृष्टिनाड़ीमें ५,००,०००के लगभग तार होते हैं । अक्षिखातके पिछले भागसे दृष्टिछिद्रमेंसे होकर यह नाड़ी कपालके भीतर पहुँचती है ।

दृष्टि- प्रकाशकी किरणें कनीनिका पर पड़ती हैं; कनीनिकामेंसे होकर वे चक्षुके भीतर प्रवेश करती हैं; जलीय रस, तारा, ताल, और वृहत् कोष्ठमें रहनेवाले स्वच्छ द्रवमेंसे होकर वे दृष्टिपटल पर पड़ती हैं । इस पटल पर वस्तुका प्रतिबिंब बनता है । यह प्रतिबिंब उलटा होता है । हम दूसरे मनुष्यको देख रहे हों तो प्रतिबिंबमें पैर ऊपर होंगे और शिर नीचे, जैसे कि छाया-चित्रण-यंत्रमें होता है । प्रकाशकी किरणोंसे दृष्टिपटल (retina) की सेलोंमें एक विचित्र रासायनिक प्रक्रिया होती है । इस प्रक्रियाका प्रभाव दृष्टिनाड़ी-द्वारा मस्तिष्कको पहुँचता है और हमको रंग, आकार इत्यादिका ज्ञान होता है ।

जब साफ़ प्रतिबिम्ब ठीक दृष्टिपटल पर पड़ता है तब चीज़ें साफ़-साफ़ दिखाई देती हैं । जब किसी कारण प्रतिबिंब ठीक दृष्टिपटल पर नहीं पड़ता तो चीज़ें साफ़ दिखाई नहीं देतीं । प्रतिबिंबको ठीक दृष्टिपटल पर बनाने के लिए तालका उन्नतोदरत्व आवश्यकतानुसार कम या अधिक होता रहता है ।

हमारी आँखकी बनावट ऐसी है कि जितनी वस्तुएँ आँखसे २० फुट या २० फुटसे अधिक दूरी पर हैं उनका प्रतिबिंब ठीक दृष्टिपटल पर पड़ता है, तालका उन्नतोदरत्व न घटता है न बढ़ता है और उपतारानुमंडलके मांसको भी संकोच नहीं करना पड़ता । परन्तु जितनी वस्तुएँ आँखसे २० फुटसे कम दूरी पर हैं उनका प्रतिबिंब तालका आकार स्थिर रहते हुए दृष्टिपटल पर नहीं पड़ेगा । इस कारण २० फुटसे कम दूरीकी चीज़ोंको देखनेके लिए तालका उन्नतोदरत्व अधिक करना पड़ता है; यह काम उस मांसके संकोच से होता है जो उपतारानुमंडलमें रहता है; देखो 'अनुकूलन' ।

चक्षु उसी समय तक ठीक काम कर सकते हैं जब तक सब माध्यम स्वच्छ हैं। यदि कर्नीनिका, जलीय द्रव, ताल और तालके पीछे रहने वाले द्रवमेंसे कोई भी अस्वच्छ हो जावे तो दृष्टिमें फ़र्क़ आ जायगा। जब रोहोंकी रगड़से कर्नीनिका धुँधली हो जाती है या जख्मोंके परिणामसे उसमें श्वेत अस्वच्छ निल बन जाते हैं तब प्रकाश अच्छी
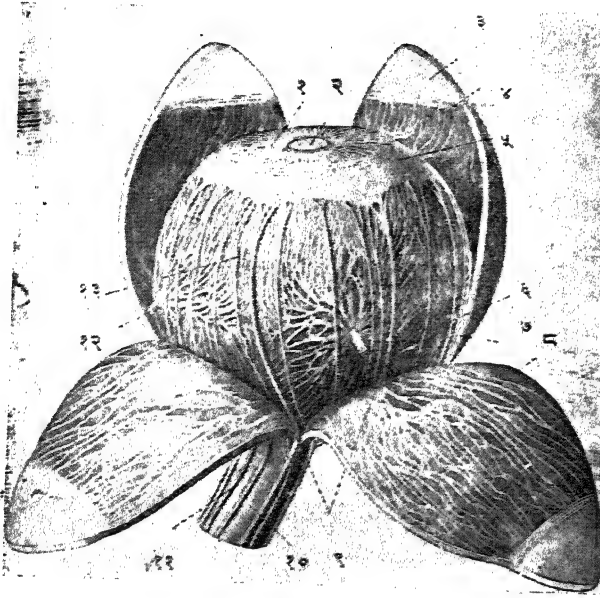
आँखकी बनावट

यदि आँखकी बाहरी तहें हटा दी जायँ तो क्या दिखलाई पड़ेगा? १--उपतारा: २—ताल; ३—कर्नीनिका; ४--धमनी; ५—उपतारानुमंडल; ६—नाड़ी; ७--वाह्य पटल; ८—वाह्य पटलकी एक परत; ९—नाड़ियाँ; १०—दृष्टिनाड़ी; ११—धमनियाँ; १२—शिरा; १३--धमनी।

तरह भीतर नहीं जा सकता। वृद्धावस्थामें (कभी-कभी बचपन और जवानीमें भी) तालके धुँधले हो जानेसे भी दृष्टि कम हो जाती है या जाती रहती है। धुँधला ताल निकलवा देनेसे दृष्टि फिर आ जाती है। दृष्टिपटल, मध्य पटल, दृष्टिनाड़ी, दृष्टिकेन्द्रके रोगोंसे भी दृष्टि खराब हो जाती है।

२० फुटसे अधिक दूरीकी चीज़ोंका देखनेसे आँखोंपर ज़ोर नहीं पड़ता; उपतारानुमंडलके मांसको संकोच करने की कोई आवश्यकता नहीं होती। इससे कम दूरकी चीज़ोंके देखनेके लिए मांसका संकोच करना पड़ता है। बारीक अक्षरोंका पढ़ना, सीना, काढ़ना, चित्रकारी, नकशे खींचना, स्वर्णकारी, घड़ीसाज़ी, सूक्ष्मदर्शक यन्त्रसे काम लेना इन सब कामोंसे आँख पर ज़ोर पड़ता है। जहाँ तक हो सके ये काम लगातार बहुत देर तक नहीं करने चाहिये। कम प्रकाशमें पढ़ना या कोई और काम करना आँखोंको हानि पहुँचाता है; अधिक प्रकाश—जैसे सूर्यकी ओर देखना या भट्ठीकी ओर बहुत देर तक देखना—भी हानिकारक है। पुस्तकके ऊपर झुक कर या शिर बहुत नीचा करके बैठना और लेटकर पढ़ना भी अच्छा नहीं। पढ़ते और लिखते समय प्रकाश हमेशा बाईं ओर या पीछेसे आना चाहिए, दाहिनी ओरसे आयेगा तो हाथकी छाया पड़नेके कारण अच्छी तरहसे न लिखा जायेगा। सामनेसे प्रकाश आयेगा तो वह आँखों पर पड़ेगा जो न केवल अनावश्यक है प्रत्युत आँखोंको हानि पहुँचाता है। पुस्तकको आँखसे १२ या १३ इञ्चसे ज़्यादा नज़दीक न रखना चाहिये।

नेत्रचालनी पेशियाँ—अक्षिगोलकको इधर-उधर घुमानेके लिए उसमें ६ पेशियाँ लगी हैं। ये पेशियाँ अक्षिगुहाके पिछले भागसे (उस छिद्रके किनारोंसे जिसमेंसे होकर दृष्टि-नाड़ी कपालमें जाती है) आरम्भ होती हैं और वाह्य पटलसे लगी रहती हैं। इन पेशियोंके संकोचसे आँखें चारों ओर अच्छी तरह घूम सकती हैं। जब हम किसी ओर (जैसे दाहिनी ओर या बाईं ओर) देखते हैं तो दोनों आँखें साथ-साथ घूमती हैं। कभी-कभी पेशियोंके ठीक-ठाक संकोच न करनेसे या उनके पक्षाघात ग्रस्त हो जानेसे दोनों आँखें साथ-साथ नहीं घूमतीं; आँखोंमें भैंगापन आ जाता है—इसीको ऐंचाताना, तिर्यक् दृष्टि या वक्र दृष्टि (squint) कहते हैं।

पलक--प्रत्येक आँखमें दो पलक होते हैं एक ऊपर (ऊर्ध्व नेत्रच्छद) दूसरा नीचे (अधोनेत्रच्छद)। पलकके बाहरी पृष्ठ पर त्वचा लगी रहती है, भीतरी पृष्ठ पर श्लैष्मिक कला होती है; इन दोनोंके बीचमें सौत्रिक तन्तु

से निर्मित एक मुड़ी हुई मोटी पट्टी (या फलक) रहती है जिसके कारण पलकमें कुछ दृढ़ता रहती है और उसका आकार स्थिर रहता है। दोनों पलकोंमें त्वचा और पलकके बीचमें नेत्रनिमीलनी पेशीका कुछ भाग रहता है; इस पेशी-के संकोचसे पलक झपकते तथा बंद होते हैं। श्लैष्मिक कला पतली होती है और रक्तकेशिकाओंके कारण उसके रंगमें कुछ लाली रहा करती है।

पलकोंके किनारों पर बाल होते हैं। ये अक्षिपक्ष्म कहलाते हैं। ऊपरके पलकके बाल ऊपर मोड़ खाये रहते हैं (उन्नतोदरत्व नीचेको रहता है); नीचेके पलकके बाल नीचेको मुड़े रहते हैं (उन्नतोदरत्व ऊपरको रहता है)। इससे यह होता है कि जब पलक बन्द होते हैं तब बाल एक दूसरेमें फँसने नहीं पाते। बालोंकी जड़ों (लोमकूपों) से कुछ चिकनी वस्तु बनाने वाली ग्रन्थियाँ लगी रहती हैं। इन ग्रन्थियोंके प्रदाहको ही गुहांजनी (बिलनी stye) कहते हैं।

ऊर्ध्वनेत्रच्छदमें पक्ष्मकी पंक्तिके पीछे (कनीनिकाकी ओर) और अधोनेत्रच्छदमें पक्ष्मकी पंक्तिके आगे (कनी-निकाकी ओर) ध्यानसे देखनेपर छोटे-छोटे छिद्रोंकी एक पंक्ति दिखाई देती है। ये श्लैष्मिक कला और नेत्रफलकके बीचमें
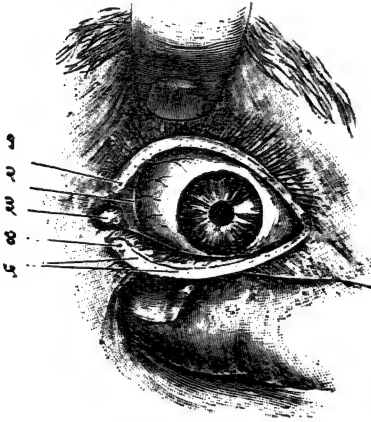
अश्रुछिद्र

१—अश्रुछिद्र; २—अर्धचन्द्राकार पिंड; ३ शंक्वाकार पिंड; ४—अश्रुछिद्र; ५—ग्रंथियोंके मुख।

रहने वाली ग्रंथियोंके मुख हैं। कभी-कभी विकारोंके कारण इन ग्रंथियोंमें एक चेपदार वस्तु बनने लगती है जिसके कारण सोनेके बाद पलकोंके किनारे एक दूसरेसे चिपक जाया करते हैं। कभी-कभी इन ग्रंथियोंमें प्रदाह हो जाता है या उनके स्रावके इकट्ठा होनेसे अर्बुद (रसौली) बन जाते हैं।

जहाँ दोनों पलक आपसमें एक दूसरेसे जुड़ते हैं, उस स्थानको अपांग कहते हैं।

नासिकाकी ओर वाले अपांगमें दोनों पलकोंके सम्मुख किनारों पर दो छोटे-छोटे उभार होते हैं। प्रत्येकको अश्रुअंकुर कहते हैं; अश्रुअंकुरके शिखर पर एक छिद्र होता है जिसका नाम अश्रुछिद्र है। अश्रुछिद्रमेंसे हो होकर अश्रु आँखसे नासिकामें जाया करता है।

आँखकी श्लैष्मिक कला (conjunctiva)—यह झिल्ली दोनों पलकोंके भीतरी पृष्ठों पर और अक्षि-गोलकके अगले भाग पर लगी रहती है। श्लैष्मिक कला बाह्य पटलसे ख़ूब नहीं चिपटी रहती। यदि आप चाहें तो चिमटीसे उसके किसी भागको बाह्य पटलसे उठा सकते हैं। 'आँखका उठना' साधारणतः इसी कलाके प्रदाहको कहते हैं। पलकोंकी झिल्लीमें कभी-कभी नन्हें-नन्हें दाने बन जाया करते हैं; यह रोहोंका रोग है। रोहोंकी रगड़से कनीनिकाके धुँधले हो जानेका डर रहता है।

अश्रुग्रन्थि—यह ग्रन्थि बादामके बराबर होती है। नेत्रगुहाकी छतमें (नेत्रच्छदफलकमें) कनपुटीकी ओर एक गड्ढा होता है। अश्रुग्रन्थि इसी गड्ढेमें रहती है। ग्रन्थि और अक्षिगोलकके बीचमें आँखकी दो पेशियाँ रहती हैं। ग्रन्थिके नीचेके पृष्ठका कुछ भाग श्लैष्मिक कलासे ढका रहता है। इस ग्रन्थिसे दस बारह पतली-पतली नलियाँ निकलती हैं जो श्लैष्मिक कलाके ऊपरके कोणमें खुलती हैं।

इस ग्रन्थिमें जो रस बनता है उसको अश्रु या आँसू कहते हैं। यह एक स्वच्छ जलीय रस है। इसका स्वाद लवण होता है। इसका काम पलकों और अक्षिगोलकके सम्मुख पृष्ठोंको तर रखना है। साधारणतः यह रस इतना ही बनता है जिससे श्लैष्मिक कला कुछ तर रहे, क्योंकि उसको तरीका हरदम वाष्पीभवन होता रहता है। जब हम रोते हैं तब अश्रु अधिक बनता है और आँखोंसे टपकने लगता है। नासिकाका आँखसे सम्बन्ध है; इसलिए रोते समय

अश्रु कभी-कभी नासिकामें चला जाता है और नासारन्ध्रमेंसे टपकने लगता है (त्रिलोकीनाथ वर्मा कृत हमारे शरीरकी रचनासे संक्षिप्त)।

आँखके रोग— आँखोंमें कई रोग हो सकते हैं जिनमेंसे कुछ रोग अंधता, आँख उठना, ग्लॉकोमा, नील,
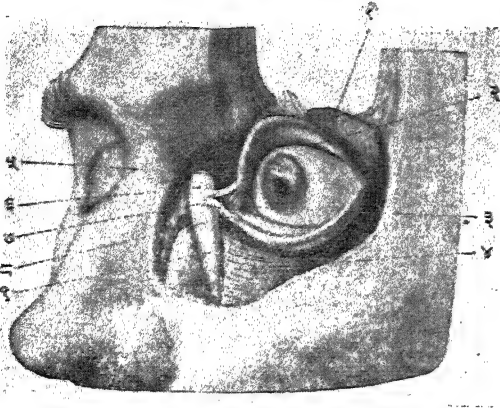
अश्रुग्रंथि

१—अश्रुग्रन्थि; २—अश्रुस्रोत; ३—अश्रुअंकुर; ४ नेत्रनिमीलनी पेशी; ५—अश्रुछिद्र (ऊर्ध्व); ६—अश्रु-कोष; ७—अश्रुवाहिनी; ८ अश्रुछिद्र (अधर); ९—अश्रु-प्रणाली।

मोतियाबिंद और पलकें शीर्षक लेखोंमें दिये गये हैं। कुछ रोगोंका वर्णन नीचे दिया जाता है।

अतिश्रम (strain)—बहुत समय तक लगातार काम करते रहनेसे आँखें स्वभावतः थक जाती हैं। परंतु यदि थोड़े ही काम करनेसे आँखें थकी-सी जान पड़ें तो समझना चाहिए कि कोई गड़बड़ी है। संभव है चश्मेकी आवश्यकता हो (देखो 'अनुकूलन'), या संभव है कोई ऐसा रोग हो जिससे आँखकी पेशियाँ कमज़ोर हो गई हों। इसके लक्षण ये हैं—बारीक काम, जैसे पढ़ना-लिखना या सीना-पिरोना के बाद आँखें जलने लगती हैं और जिस प्रकार अन्य अंगोंमें थकान जान पड़ती है उसी प्रकारकी थकान आँखोंमें भी जान पड़ती है। आँखोंके मलने या ज़ोरसे बंद करनेकी इच्छा होती है। आँखें या पलकें या दोनों लाल हो जाती हैं और अकसर सरमें दर्द होने लगता है।

इसकी चिकित्सा यह है कि योग्य डाक्टरसे जाँच कराई जाय कि चश्मेकी आवश्यकता है या नहीं। अकसर साधारण स्वास्थ्यके अच्छा न रहनेके कारण ही आँखोंमें थकान जान पड़ती है। इसलिए स्वास्थ्यकी उन्नतिके लिए भी उपाय करना चाहिए। जैसे उचित भोजन, जलवायु, व्यायाम आदि)। इस पर भी ध्यान देना चाहिए कि आँखों पर व्यर्थका ज़ोर न डाला जाय। बहुत मंद प्रकाशमें या बहुत तेज प्रकाशमें (जैसे धूपमें) काम करना बुरा है। बिजली बत्तीकी ओर नहीं देखना चाहिए। इसलिए ऐसी बत्तियों पर
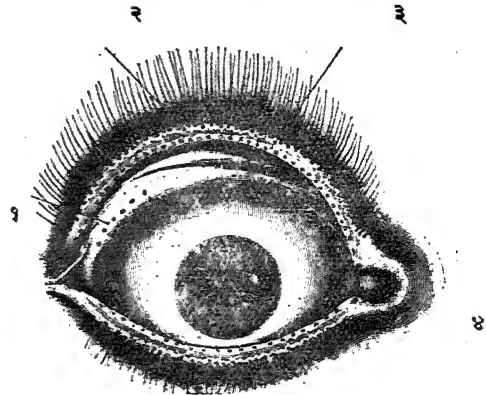
पलकोंकी बनावट

१—अश्रुस्रोतोंके मुख; २ - नेत्रच्छदकी अग्र धारा; ३—नेत्रच्छदकी पाश्चात्य धारा; ४—नासिकाकी ओरका कोया।

आच्छादक (शेड) लगा रहे जिसमें प्रकाश तो काम पर पड़े, परंतु बत्तीकी रोशनी सीधे आँखोंपर न पड़े। साधारण बल्बोंका अपेक्षा दूधिया (opal) या अंधा (frosted) बल्ब अच्छा होता है। प्रकाश ऐसी दिशासे न आये कि पुस्तक के पन्ने चमक उठें। प्रकाश यदि पीछेसे आये तो अच्छा है। मंद प्रकाश, जैसे ढिबरी या दियेको इतना समीप न रखना चाहिए कि आँखोंमें धुँआ जाय या गरमी लगे। प्रकाश तेज़ हो और वह उचित दूरी पर रक्खा जाय तो अच्छा है।

असमान पुतलियाँ—कभी-कभी दोनों आँखोंकी पुतलियाँ बराबर नहीं रहती हैं—एक छोटी, एक बड़ी रहती है। कारण या तो चोट हो सकता है, या यह कि एक आँख दूसरीकी अपेक्षा अधिक शक्तिमान है, या यह कि एक आँख

की रोशनी (देखनेकी शक्ति) मिटती जा रही है। इन कारणोंके अतिरिक्त, दाँतके रोग या क्षय या धमनी शोथ या लकवाके कारण भी पुतलियाँ छोटी-बड़ी हो जा सकती हैं। यदि स्वास्थ्य अच्छा हो और दोनों आँखोंमें देखनेकी शक्ति प्रायः बराबर हो तो इस रोगकी परवाह न करनी चाहिए, अन्यथा डाक्टरकी राय लेनी चाहिए।

चोट— आँखमें किसी प्रकारकी चोट लगे या घाव हो जाय या कोई बाहरी वस्तु पड़ जाय तो तुरंत उचित उपचार कराना चाहिए, अन्यथा इसका अंतिम परिणाम अंधता तक हो सकता है। केवल एक आँखमें चोट लगनेसे अंतमें दोनों आँखे चली जा सकती हैं। परंतु आँखका उपचार करते समय सफ़ाई पर पूरा ध्यान रखना चाहिए। हाथ, कपड़ा, इत्यादि सब कुछ पूर्ण रूपसे शुद्ध रहें।

चोटको हम तीन जातियोंमें बाँट सकते हैं। एक तो साधारण चोट, जब आँखका कोई भाग कटने न पाया हो; दूसरा जब घाव हो गया हो; तीसरा जब कोई बाह्य वस्तु आँखमें रह गई हो। साधारण चोट अकसर गेंद, हाथ आदिसे लग जाती है। आँखें लाल हो जाती हैं, पानी खूब बहता और रोशनीमें आँखें खोलनेमें दुःख होता है। इसका उपचार यही है कि कुछ दिनों तक आँखोंको आराम दिया जाय। हलके सेंकसे भी लाभ होता है। कुछ दिनों तक तेज़ रोशनीसे भी आँखोंकी रक्षा करनी चाहिए। बाहर जाना पड़े तो ठंढा चश्मा लगाना चाहिए। यदि चोट इतने ज़ोरकी लगी हो कि किसी भीतरी अंगके फट जानेकी शंका हो तो डाक्टरसे जाँच करानी चाहिए।

यदि चोट लगने पर आँखमें कहीं घाव हो गया हो तो अच्छी तरहसे देखना चाहिए कि कोई बाह्य वस्तु आँखमें रह तो नहीं गई है, विशेषकर जब चोट शीशेके टुकड़े, कंकड़, पत्थर आदिसे लगी हो। छुरी-कैंची आदिके चोटमें इस जाँचकी कोई आवश्यकता नहीं रहती। घाव हो जाने पर बड़ा डर इस बातका रहता है कि कहीं घाव पकने न लगे और छूतसे या समवेदनासे दूसरी आँख भी सूजने न लगे। घाव लगते ही आँखको बोरिक लोशनसे— एक बोतल पानीमें दो (चायके) चम्मच भर बोरिक ऐसिड रहे—धोना और इसमें स्वच्छ कपड़ा भिगो कर आँखपर पट्टी बाँधना अच्छा है। बोरिक लोशनको ज़रा कुनकुना (सिर गरम) रहना चाहिए। यदि घाव कुछ भी गहरा या बड़ा हो तो डाक्टरको अवश्य दिखाना चाहिए। यदि आँखमें कोई वस्तु रह गई हो तो उसे अवश्य निकलवाना पड़ेगा, नहीं तो घाव ज़रूर पक जायगा। यूरोप आदिके बड़े अस्पतालोंमें विशेष बड़े वैद्युत-चुंबक (electromagnet) रहते हैं जिनके पास आँखको रखकर बिजली चालू करनेसे आँखमें

वैद्युत-चुंबक

वैद्युत-चुंबकसे आंखमें पड़े लोहेके कण आसानीसे खींच लिये जा सकते हैं।

धँसा लोहा तुरंत खिंच आता है। कारखानोंमें अकसर लोहे-हीके चिप्पड़ छटक कर आँखमें पड़ते हैं। यदि आँख बिलकुल बेकाम होगई हो तो उसे निकलवा देना ही अच्छा है, क्योंकि इसके कारण दूसरी आँखमें भी ख़राबी पैदा हो

जा सकती है। आँख निकलवानेके बाद कृत्रिम आँख लगवाई जा सकती है, जिससे सूरत बहुत बिगड़ने नहीं पाती (देखो आँख, कृत्रिम)।

यदि आँखमें केवल कोई बाह्य वस्तु ही पड़ जाय और घाव न हो तो आँखोंको मलना (रगड़ना) नहीं चाहिए। बाह्य वस्तुके आँखमें पड़ जानेसे आँख बहुत गड़ती है और पानी भी बहुत बहता है। ऐसी दशामें यदि नाक ज़ोरसे छिनका जाय तो आँखमें पड़ी वस्तु अकसर निकल जाती है। यदि इतनेसे भी काम न चले तो बोरिक लोशनमें आँख डुबोना चाहिये। यदि वस्तु नीचे की पलकमें हो तो पलकको ज़रासा खींचकर स्वच्छ रूमालके कोनेसे निकाल लिया जा सकता है। परन्तु यदि वस्तु ऊपरी पलकके नीचे हो तो उसे निकाल लेना इतना सरल नहीं है। कभी-कभी आँखमें एक-दो बूँद स्वच्छ रेंडी या तिलका तेल डालनेसे वस्तु तेलमें लिपट कर बह आती है। यदि इससे काम न चले तो ऊपरी पलकको ज़रा खींचकर नीचे वाली पलक पर चढ़ा देना चाहिए। ऐसा करनेसे आँख खोलते समय नीचेकी पलककी बरौनीसे लगकर बाह्य वस्तु अकसर निकल जाती है। यदि इससे भी काम न चले तो पलक उलट कर स्वच्छ रूमालके कोनेसे उसे उठा लेनेकी चेष्टा करनी चाहिए।

आँख धोना (eye-bath)—बोरिक लोशन या अन्य किसी दवासे आँख धोनेकी सबसे अच्छी रीति यह है कि इसी कामके लिए विशेष आकारकी शीशेकी बनी कटोरी (eye-cup) में आँख डाल कर आँख भरपूर खोली जाय। दो-तीन बार लोशन बदल कर आँख धोना चाहिए। कुनकुना बोरिक लोशन (एक बोतल पानीमें दो चायके चम्मच भर बोरिक ऐसिड रहे) आँखोंको बहुत लाभ पहुँचाता है। जिनकी आँखें कमज़ोर हों और जल्द थकतीं हों या शीघ्र लाल हो जाया करती हों वे इस लोशन का प्रतिदिन व्यवहार करें तो अच्छा है।

स्मरण रहे कि जब आँखोंसे पीब आती हो तो इस विधिसे आँख नहीं धोना चाहिए। तब लोशनकी धार गिरा कर आँखोंको धोना चाहिए।

नेत्र-आच्छादक (eye shade)—दफ्ती या सेलुलायडका बना नेत्र-आच्छादक बाँध लेनेसे आँख या आँखोंपर अधिक प्रकाश नहीं पड़ने पाता। इसलिए नेत्र-रोगसे मुक्त होनेके कुछ समय बाद तक नेत्र-आच्छादकोंका बाँधना लाभदायक होता है। अधिकांश नेत्र-आच्छादक इस प्रकार बने होते हैं कि उनको सरपर फीतासे बाँधना होता है, परन्तु कुछ टोपीमें लगे लगाये भी मिलते हैं। टोपीको सरपर पहन लेनेसे आच्छादक आँखके ऊपर आ जाता है। तेज़ धूपमें ठंढा (हरा) चश्मा पहनना भी अच्छा है।

आँख उठना (conjunctivitis या ophthalmia)—आँख उठने या अभिष्यंदके कई कारण हो सकते हैं, परन्तु लक्षण प्रायः एक-से ही होते हैं। जब रोग हल्का ही रहता है तो आँखके सफेद हिस्से लाल हो जाते हैं। आँख गड़ती है; ऐसा जान पड़ता है मानों आँखमें बालूके कण पड़ गये हों। रोशनीमें आँख खोलते नहीं बनता। आँखसे खूब पानी गिरता है। जब यह रोग बच्चों को होता है तो वे आँखको खोलते ही नहीं। शिरमें अकसर पीड़ा भी रहती है। आँखसे पहले तो पानी ही निकलता है, पीछे पीले रंगका तरल पदार्थ और कीचड़ निकलता है। सोकर उठनेपर पलकें चिपकी रहती हैं। कभी एक और कभी दोनों आँखें एक साथ ही उठती हैं, परन्तु अकसर पहले एक ही आँख उठती है और छूत लग कर दूसरी आँख भी उठ आती है।

कारण- सरल अभिष्यंद (आँखकी लाली) गर्द, धुआँ, बारीक काम, अनुचित प्रकाश (बहुत तेज़ रोशनी या बहुत धीमी रोशनी), अधिक मद्य-सेवन आदिसे उत्पन्न होता है। आँखमें कुछ पड़ जानेसे या किसी कीड़ेके काट लेनेसे भी आँखें लाल हो आती हैं। सरल अभिष्यंदकी चिकित्सा यही है इसके उत्पादक कारणोंको दूर किया जाय और आँखोंको सोडियम बाइकारबोनेट (sod. bicarb.) के फीके लोशनसे बार-बार धोया जाय (१ बोतल पानीमें एक चायके चम्मच भर बाइकारबोनेट डाला जाय)। लोशन कुनकुना (सिर गरम) रहे।

साधारणतः आँखें जीवणुओंके कारण उठती हैं और यह छूतका रोग है। बच्चोंको यह अकसर होता है और छूत प्रायः दूसरे लड़कोंसे लगती है। एक बच्चेकी छूत अपने

ही घरके बच्चोंको न लगने पाये, इस बातमें सफलता पाने में बड़ी सावधानीकी आवश्यकता होती है। जिस कपड़ेमें आँख पोंछी जाय उसे तुरन्त जला डालना चाहिए। रोगी तौलियेसे अन्य बच्चोंको हाथ-मुँह नहीं पोंछने देना चाहिये। रोगीको भी एक ही तौलिया बहुत समय तक नहीं इस्तेमाल करना चाहिए। तौलिया बराबर बदलते रहना चाहिये। यदि एक ही आँख उठी हो तो दूसरी आँखको बचानेके लिए विशेष सावधानीकी आवश्यकता पड़ेगी। निरोग आँख तक कोई ऐसी वस्तु न पहुँचे जो रोगग्रस्त आँखसे छू गई हो। रोगग्रस्त आँखको छूनेके बाद हाथोंको साबुनसे धोकर किसी कीटाणुनाशक घोलमें डुबा लेना चाहिए (जैसे पोटैशियम परमैनगेट २० ग्रेन, पानी २० आउंस; इससे अधिक अच्छा है मरक्युरी परक्लोराइड ८ ग्रेन, नमक ८ ग्रेन, पानी ८ आउंस)।

चिकित्सा—रोगीको ठंढा (हरा) चश्मा पहनना चाहिए या अँधेरी कोठरीमें रहना चाहिए। परन्तु बराबर बैठे रहने से स्वास्थ्य पर बुरा परिणाम पड़ सकता है; इसलिए सुबह-शाम बाहर निकलना और टहलना अच्छा है। आँख पर पट्टी कभी नहीं बाँधनी चाहिए नहीं तो कीचड़-पानी के न निकल सकनेसे भीतर-ही-भीतर भारी हानि हो जाती है। यदि रोग बहुत तीव्र न हो तो कुनकुने बोरिक ऐसिड के घोलसे आँखोंको धोना चाहिए (चार चाय वाला चम्मच भर बोरिक ऐसिड, एक बोतल डिस्टिल्ड वाटर या वर्षाका जल। साधारण जलमें अनेक प्रकारके लवण रहते हैं जिनके कारण आँखोंको उत्तेजना हो सकती है)। दिन में चार बार धोना काफी होगा। यदि पलकें कुछ सूजी हों तो गरम बोरिक लोशनमें डुबाकर निकालो और निचोड़ी पट्टीसे सेंकना चाहिए।

यदि रोग तीव्र हो तो अधिक तेज़ दवाओं जैसे प्रोटारगल आदिकी आवश्यकता पड़ेगी, परन्तु तब स्वयं दवा करना उचित नहीं होगा।

यदि पलकें चिपक जाया करती हों तो सोनेके पहले कोई इसी कामके लिए बना मरहम, आँजनकी तरह पलकों की कोर पर लगाना चाहिए।

आँख उठने वाले व्यक्तिका साधारण स्वास्थ्य अकसर बिगड़ा रहता है। इसलिए उसके स्वास्थ्यकी उन्नति पर ध्यान देना चाहिए। इससे आँखें जल्द अच्छी होंगी। यदि दस्त साफ़ न होता हो तो उसका भी उपाय अवश्य करना चाहिए। सरल भोजन, स्वच्छ जलवायु, हल्का व्यायाम, काफी समय तक सोना, स्नान, खुले मैदानमें रहना (आँखों पर हरा चश्मा रहे), इत्यादि हितकर हैं।

पीवयुक्त अभिष्यंद (purulent ophthalmia)—इस रोगमें आँखोंसे पीव निकलती है। आँखें बहुत अधिक सूज जाती हैं और उचित चिकित्सा न होनेसे अकसर अंधता आ जाती है। यह रोग भयंकर कीटाणुओंके कारण होता है, विशेषकर सूज़ाक (gonorrhoea) के कीटाणुओंके कारण। अकसर सूज़ाकके रोगीके असावधानी के कारण ये कीटाणु उसके अन्यत्रके घावसे आँखमें पहुँच जाते हैं। ऐसा भी संभव है कि ये कीटाणु किसी दूसरे रोगीसे, उसके इस्तेमाल किये तौलिये आदिसे मुँह-हाथ पोंछनेसे या किसी अन्य विधिसे, आँखों तक पहुँच जायँ। यदि माँको सूज़ाक रहे तो जनमते समय बच्चेकी आँखोंमें अकसर छूत लग जाती है और उसको यह रोग हो जाता है। लगभग तीसरे दिन बच्चेकी आँखें लाल हो जाती हैं और पानी बहने लगता है। फिर एक-दो दिनमें आँखें बहुत सूज आती हैं और पीव आने लगती है।

बचनेके उपाय—जनमते ही बच्चेकी आँखोंको अच्छी तरह बोरिक लोशनसे धोना चाहिये। यदि ज़रा भी शक हो कि शायद माँको सूज़ाककी शिकायत है तो बच्चेकी आँख में सिलवर नाइट्रेट लोशन (१ प्रतिशत अर्थात् प्रति आउंस ४½ ग्रेन वाला) डाल देना चाहिए। बहुतसे अस्पतालोंमें तो यह बराबर किया जाता है चाहे कोई शक हो या न हो, क्योंकि इससे कोई हानि तो होती नहीं। यदि आस-पासमें कहीं भी कोई सूज़ाकका रोगी हो तो उससे अलग रहने पर विशेष ध्यान रखना चाहिए। उसके कपड़े दूसरेके कपड़ोंमें न मिलने पायें। यदि स्वयं सूज़ाक हुआ हो तो विशेष ध्यान रखना चाहिए कि आँखों तक छूत न पहुँच जाय। जब कभी हाथ गंदा हो तो उसे साबुनसे धोकर कीटाणु नाशक घोलमें डुबा लेना चाहिए। मुँह पोंछनेका कपड़ा बिलकुल अलग रखना चाहिए और उसे अकसर बदलते रहना चाहिए।

यदि एक आँखमें रोग हो जाय तो दूसरी आँखका

बचना कठिन हो जाता है। दूसरी आँख तभी बच सकती है जब विशेष सावधानी रक्खी जाय। अकसर सोते समय ज़रा सा कीचड़ या पानी बह कर एक आँखसे दूसरी आँखमें चला जाता है। इस लिए सबसे अच्छी रीति यह है कि अच्छी आँख पर शीशेका तश्तरीनुमा ढक्कन (watch-glass) चिपका दिया जाय। इसे स्टिकिंग प्लैस्टर (sticking plaster) अर्थात् चिपचिपा कपड़ेसे चिपका देते हैं। यदि नीचे एक रबड़की नली लगा दी जाय तो अच्छा है जिसमें आँख तक हवा आ-जा सके। ऐसी नली भारतवर्ष-जैसे गरम

निरोग आँखको बचानेकी रीति।
आँख पर शीशेकी छिछली कटोरी स्टिकिंग प्लैस्टर-से चिपका दी जाती है।

देशोंमें अत्यंत आवश्यक है। स्टिकिंग-प्लैस्टर पर बराबर ध्यान रखना चाहिए कि यह उखड़ने न पाये, चारों तरफसे अच्छी तरह चिपका रहे। जो लोग रोगीकी परिचर्या करते रहें वे अपनी आँखोंके बचाने पर भी विशेष ध्यान रक्खें। बच्चे अपनी आँख कसकर बंद किये रहते हैं या सूजनके कारण वे स्वयं कसकर बंद रहती हैं। उसके भीतर पीब इस प्रकार दबी रहती है कि पलक खोलते ही वह दूर तक छिटकती हैं जैसे कोई पिचकारी छोड़े। इस लिए रोगीकी पलकें खोलते समय विशेष ध्यान रखना चाहिये कि पीब अपनी आँखोंमें न पड़ जाय।

चिकित्सा– नवजात शिशुको यह रोग हो तो बच्चे और उसकी माँको अस्पतालमें भरती करा देना ही सबसे अच्छा होता है जिसमें बच्चे और माँ दोनोंको उचित चिकित्सा हो सके। यदि ऐसा न किया जा सके तो डाक्टरके आदेशोंका पालन सावधानीसे करना चाहिए। युवा पुरुषोंकी चिकित्सा भी डाक्टरके आदेशानुसार ही करना चाहिए। संभवतः आँखोंको कीटाणुनाशक घोलकी धारसे प्रति घंटे धोना होगा, और उनमें प्रोटारगल या चाँदीके किसी अन्य क्षारका घोल डालना होगा। इसके अतिरिक्त कोई मरहम, जैसे येलो ऑयंटमेंट पलकोंकी कोर पर आँजनकी तरह लगाना होगा।

रोहा—(granular conjunctivitis or trachoma)—इस रोगमें पलकोंकी भीतरी सतहमें दाने उभड़ आते हैं। ये दाने नन्हें-नन्हें राई या सरसोंके समान होते हैं और इनके कारण आँख बराबर गड़ा करती है। यूरोपमें यह रोग गरीबी या गंदगीका परिणाम समझा जाता है, परन्तु भारतवर्षमें यह रोग यहाँके गर्द और तेज़ प्रकाशके कारण लड़कोंको अकसर होता है। इसे भारी रोग समझना चाहिए, क्योंकि यह शीघ्र अच्छा नहीं होता और
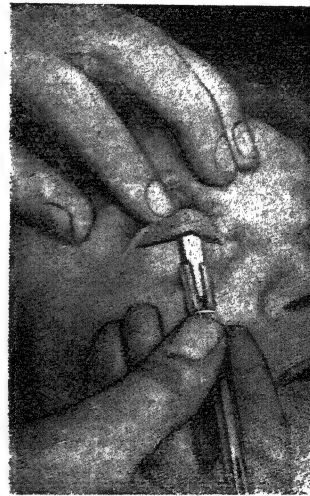
रोहेकी चिकित्सा
पलकोंको उलटकर रोहेके दानोंको तूतियासे रगड़ दिया जाता है।

लापरवाही करनेसे अंतिम परिणाम अंधता भी हो सकता है। इस रोगके लिये बनारस, इलाहाबाद आदि ज़िलोंमें 'रोहा' शब्द ही प्रचलित है, परन्तु सम्भव है अन्य ज़िलोंमें इसका कोई दूसरा नाम हो।
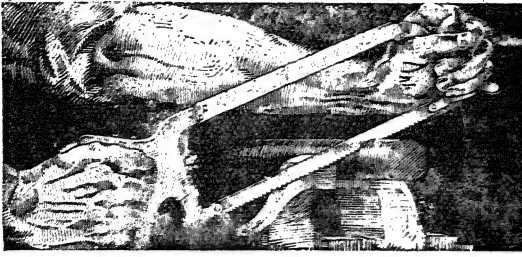
सर हिलाता कुत्ता

इस खिलौनेसे बच्चे बड़े ख़ुश होते हैं। इसका बनाना कठिन भी नहीं है और न इसके बनानेमें किसी विशेष औज़ारोंकी आवश्यकता पड़ती है। जैसा चित्रोंसे पता चलता है, इसमें तीन अलग-अलग अंग हैं, शरीर, सर और पूँछ, चाहिए। अच्छा तो यही होगा कि इन भागोंको फ्रेट-सा (fret saw) से काटा जाय, परंतु इसके अभावमें चाकू से भी काम चल सकता है। शरीर वस्तुतः तीन लकड़ियोंसे बनता है जिनमेंसे दो की शकल तो चित्र ३ में दिये गये अटूट रेखाओंके अनुसार रहता है; और एक उस प्रकारकी रहती है जिस पर चित्रमें 'क' लिखा है और जिसकी एक कोर बिंदुमय रेखासे दिखलाई गई है। इन तीन लकड़ियों
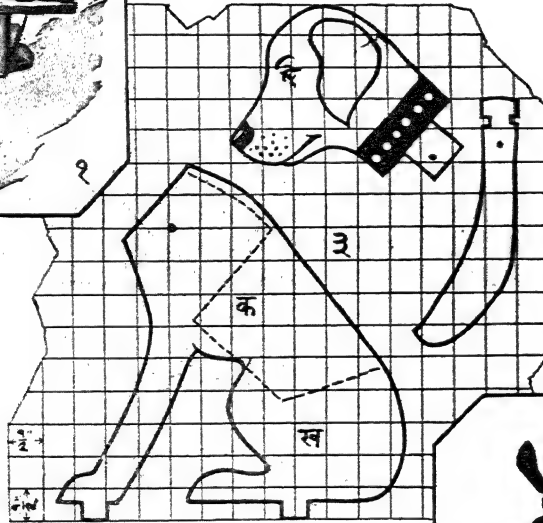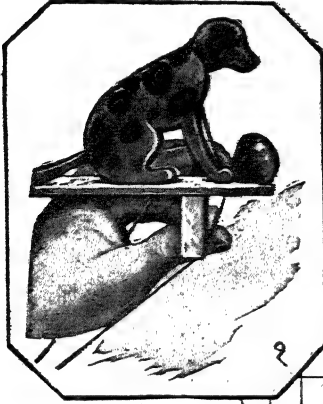
चित्र १ और २—कुत्तेके सर और पूँछ किस प्रकार चलते हैं।

चित्र ३—बीचमें चारखाने पर दिखलाया गया है कि विविध भागोंको कि आकार और नापका काटना चाहिए।

जिनमेंसे सर और पूँछ चल भाग हैं। इन चल भागोंमें तागे बँधे रहते हैं। इन तागोंके नीचे वाले छोरोंको गाँठ लगा कर जोड़ दिया जाता है और कोई लंगर बाँध दिया जाता है। जब कुत्तेके शरीरको हाथमें पकड़ कर लंगरको झूलने दिया जाता है तो कुत्ता सर हिलाता है और पूँछ हिलाता है। यह बात चित्र १ और २ से स्पष्ट है।

किसी भी नरम लकड़ीसे कुत्तेके तीनों भागोंको काटना को चित्र ४ में दिखलाई गई रीतिसे एकत्रित करके जड़ दिया जाता है। इस प्रकार सर और पूँछके लिये खोखली

२

जगह मिल जाती है। चित्र ३ में सब ब्योरे पैमानेके अनुसार बनाये गये हैं और यदि लकड़ी पर आध-आध इंचके चारखाने खींचकर इनको उतार लिया जाय तो इन आकृतियों को लकड़ी पर बनानेमें कोई कठिनाई नहीं होगी।

सर और पूँछको एक-एक कीलसे इस प्रकार जड़ा जाता है कि वे इन कीलोंके बल चल सकें। यदि कहीं लकड़ी फँसती हो तो वहाँ लकड़ीको चाकूसे छील देना चाहिए कुत्ता जब तैयार हो जाय जो उसे ५३/४ इंच लंबे १1/२ इंच चौड़े और लगभग ३/१६ इंच मोटे पटरे पर जड़ना चाहिए। इसमें छोटे-छोटे चौकोर छेद काट दिये जाते हैं जिनमें कुत्तेके पैरसे निकली चूलें बैठती हैं। इन चूलोंमें सरेश लगा कर छेदोंमें पहनाना चाहिए। पटरीके नीचे हैंडल भी लगाना चाहिए। इसके लिये दो टुकड़ा लकड़ीका लेना चाहिए जिनकी नापें ३/१६″ × १/२″ इंच × ४″ हों। इनको एक १/२″ × १″ × १1/२″ की लकड़ीके अगल-बगल जड़ना चाहिए और तब इस प्रकार बने हैंडलको पेंदेके नीचे जड़ना चाहिए। जड़नेकी रीति चित्र ४ को देखते ही स्पष्ट हो जायगी।

तागे प्रत्येक २1/२ फुट लंबे हों। इनके निकलनेके लिए पटरीमें छेद करना पड़ेगा। तागोंको सर और पूँछकी छोर पर बाँधना चाहिए जैसा चित्र ४ में दिखलाया गया है। तागोंके दूसरे सिरोंको एकमें जोड़कर वहाँ डेढ़-दो छटाँकका लोहा या पत्थर बाँध देना चाहिए। यदि कुत्तेके सामने कोई खानेकी चीज़ रख दी जाय (जैसा चित्र १, २ और ३ में दिखलाया गया है) तो जान पड़ेगा जैसे कुत्ता कुछ खा रहा है।

चित्र ४—भागोंको कैसे जड़ा जाता है।

इस खिलौनेको चटक एनामेलके रंगोंमें रँगना चाहिए। रंग बढ़िया होने पर ही कुत्ता बढ़िया लगेगा।

फ़ोटोग्राफ कैसे लिये जाते हैं ?

कुछ ऐसे रासायनिक पदार्थ हैं जिनपर प्रकाशका प्रभाव पड़ता है, उदाहरणतः सिलवर ब्रोमाइड। यदि सिलवर ब्रोमाइडको अँधेरेमें बनाया जाय और जिलेटिन (शुद्ध सरेस) के घोलमें मिला कर शीशे पर पोत दिया जाय तो फोटोग्राफ़ खींचनेका प्लेट बन जाता है। यदि शीशेके बदले इस मिश्रण-को सेलुलॉयड पर पोता जाय तो फिल्म बनता है और कागज़ पर पोता जाय तो ब्रोमाइड कागज़ बनता है। ये अँधेरेमें ही सुखाये जाते हैं और काले कागज़ दफ्ती, इत्यादिमें इस प्रकार लपेट कर बेचे जाते हैं कि उनमें प्रकाश नहीं लगने पाता (अवश्य ही बाज़ारू प्लेट, फिल्म, पेपर आदिमें कुछ अन्य रासायनिक पदार्थ भी रहते हैं)। पहले प्लेट या फिल्म पर उल्टा चित्र उतरता है जिसे नेगेटिव कहते हैं और इससे ब्रोमाइड पेपर (या अन्य फ़ोटोके कागज़) पर छापने-से अंतिम फ़ोटो तैयार होता है। नेगेटिवका चित्र उल्टा इस बातमें रहता है कि उसमें कालेके स्थान पर सफेद और सफेदके स्थानमें काला रहता है।

फोटो खींचनेके लिए एक यंत्रकी आवश्यकता पड़ती है जिसे कैमेरा (camera) कहते हैं। वस्तुतः यह एक बक्स होता है जिसकी एक ओर प्लेट या फिल्म लगता है और दूसरी ओर विशेष, आकारका शीशा रहता है जिसे लेंज़ कहते हैं। सुविधाके लिये. कैमेरेको मोड़कर पॉकेटमें रखनेके अभिप्रायसे, बक्सके बदले अकसर चमड़ेकी थाथी-का प्रयोग किया जाता है। प्रकाशको इच्छानुसार भीतर जाने देनेके लिए शटर लगा रहता है। इसके घोड़ेको दबाने-से शटर खुल जाता है और प्रकाश भीतर जा सकता है। फिर शटर या तो आप-से-आप निर्दिष्ट समयके बाद बन्द हो जाता है या घोड़ेपरसे हाथ हटाने पर शटर बन्द होता है। लेंज़को फिल्मसे दूर हटाने या पास लानेका कोई प्रबंध भी अच्छे कैमेरोंमें रहता है।

लेंज़से विषयकी एक मूर्ति बनती है जिसे आवश्यकता-नुसार समयके लिये फिल्म पर पड़ने दिया जाता है। कुछ कैमेरोंमें ऐसा प्रबन्ध रहता है कि इस मूर्तिको पहले अंधे शीशे (ग्राउंड ग्लास) पर पड़ने देकर देख लिया जाता है कि कैसा चित्र उतरेगा। यदि नौसिखिया एक बार अन्धे शीशे पर पड़ने वाली, लेंज़से बनी, मूर्तिको देख लेगा तो वह अपने कैमेरेकी कार्य-प्रणालीको अधिक अच्छी तरह समझ सकेगा। कोई भी व्यवसायी फोटोग्राफ़र उसे यह प्रयोग दिखला सकता है क्योंकि व्यवसायियोंके कैमेरोंमें मूर्तिको अन्धे शीशे पर देखनेका प्रबन्ध अवश्य लगा रहता है।

लेंज़से बनी मूर्तिको फिल्म पर आवश्यकतानुसार समय तक पड़ने देने बादके फिल्मको अँधेरी कोठरीमें एक घोलमें डुबा देते हैं। इस घोलको डेवेलपर कहते हैं। तीन चार मिनटमें फिल्म पर उल्टा चित्र दिखलाई पड़ने लगता है। इसके बाद फिल्मको हाइपो नामक रासायनिक पदा-र्थके घोलमें डालते हैं जिससे फिल्म स्थायी (पक्का) हो जाता है—फिर उस पर प्रकाशका कोई असर नहीं पड़ सकता। इसके बाद फ़िल्मको धोकर सुखा लेते हैं। इस प्रकार नेगेटिव तैयार होता है।

नेगेटिवके पीछे ब्रोमाइड या अन्य फ़ोटोका कागज़ दबा कर दस-पंद्रह सेकंड तक प्रकाश दिखलाया जाता है। इसके बाद कागज़को डेवलपरमें एक-आध मिनट तक डुबाते हैं। ऐसा करनेसे फोटो कागज़ पर उतर आता है। तब कागज़-को हाइपोके घोलमें डालकर स्थायी कर लेते हैं और अंतमें धोकर सुखा लेते हैं। इस प्रकार फोटो तैयार हो जाता है।

यदि कागज़को नेगेटिवके पीछे दबाकर प्रकाश दिख-लानेके बदले एक विशेष यन्त्रके लेंज़ द्वारा बनी नेगेटिवकी बड़ी मूर्ति ब्रोमाइड कागज़ पर डाली जाय और तब

ब्रोमाइड कागज़को डेवेलपर, हाइपो इत्यादिमें डाला जाय तो प्रवर्द्धि फोटो (एनलार्जमेंट) बन जाता है।

फोटोग्राफी आसान है और यदि नियमोंका पालन किया जाय तो आरम्भसे ही सफलता मिलती है।
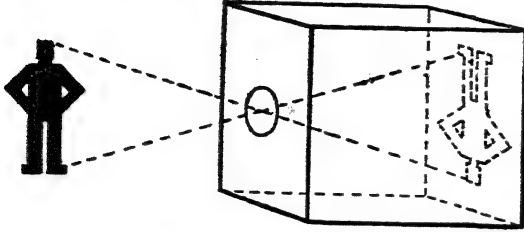
चित्र १—कैमेरा वस्तुतः एक बक्स है जिसकी एक ओर प्लेट या फिल्म लगता है और दूसरी ओर एक लेंज़ रहता है जो प्लेटपर विषयकी मूर्ति बनाता है।
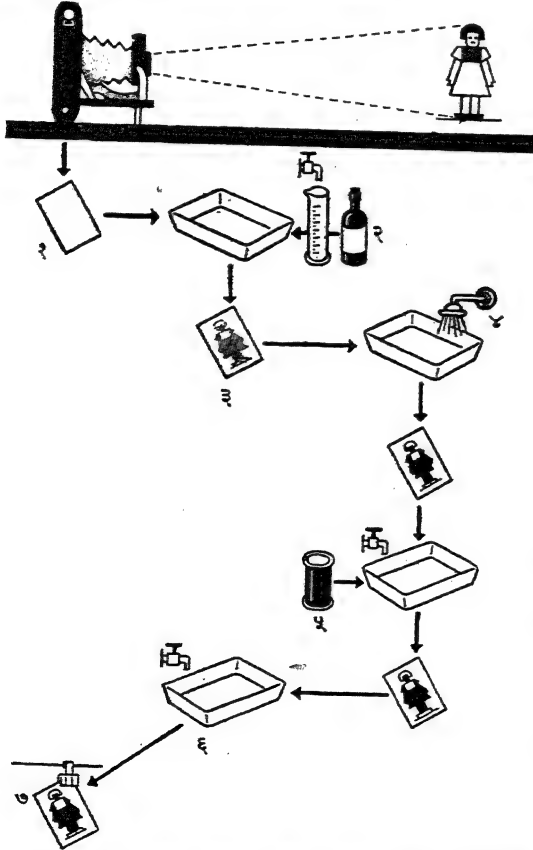
चित्र २—फोटो कैसे खींचते हैं। पहले विषयकी मूर्ति प्लेट पर आवश्यकतानुसार समय तक पड़ने देते हैं। तब प्लेटको अँधेरी कोठरीमें डेवेलप करते हैं। (१) प्रकाश दर्शन पाया प्लेट; (२-३) डेवेलपरमें डालकर इसे डेवेलप करते हैं; (४) तब आधे मिनट तक इसे पानीसे धोते हैं; (५) फिर इसे हाइपोके घोलमें डालते हैं; (६) अन्तमें इसे पानीसे आधे घंटे तक धोते हैं और (७) इसे सूखने- के लिए रख देते हैं।
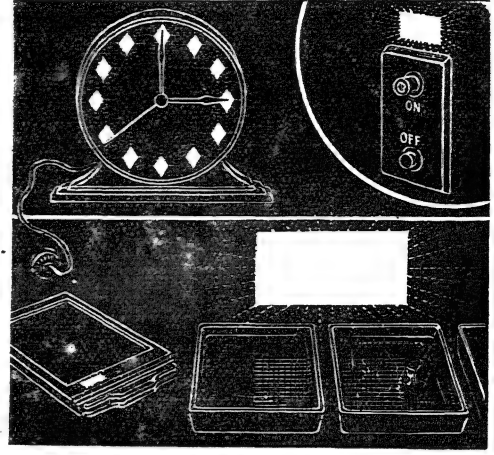
चित्र ३—अँधेरी कोठरी। डेवेलप करनेका काम अँधेरी कोठरीमें किया जाता है। समय देखनेके लिये घड़ीमें रेडि- यम डायल हो तो सुविधा हो। अन्य सब काम टटोलकर किया जा सकता है। दीवार पर कहीं-कहीं अँधेरेमें चम- कने वाला रंग पोता जा सकता है या इसके बदले लाल रोशनी जला सकते हैं।

[शेष १६० पर देखो]

आवश्यक सूचना

क़लम--पेवंद नामक पुस्तक छप गई है और सभ्यों के पास भेज दी गई है। जिन सभ्यों को यह पुस्तक अभी न मिली हो वे कृपया मुझे सूचना दे दें।

—मंत्री, विज्ञान परिषद्।

समालोचना

(ले० स्वामी हरिशरणानन्द, वैद्य)

चिकित्सा तत्व प्रदीप —(प्रथम खण्ड) प्रकाशक श्री कृष्ण गोपाल आयुर्वेदिक धर्मार्थ औषधालय पो० कालेड़ा बोगला, जि० अजमेर, मूल्य अजिल्द ५) सजिल्द ५।) पृष्ठ संख्या ८२१, छपाई-सफाई जिल्द आदि सब उत्तम।

इस वृहद् ग्रन्थमें १) उपोद्घात (२) रोग-परीक्षा (३) शरीर-शुद्धि (४) चिकित्सा-सहायक (५) ज्वर तथा (६) पचनेन्द्रिय संस्थान व्याधि नामसे ६ प्रकरण दिये हैं।

इन प्रकरणोंमें क्रमसे रोग निदान प्राचीन अर्वाचीन विधिसे रोग, परीक्षा तथा शास्त्रीय पंचकर्म विधान तथा उनसे शरीर संशोधन व रोग-निवारणकी विधि बतलाई गई है। चौथे प्रकरणमें रोगकी दशामें औषध, अनुपात या पथ्यापथ्यका खूब विस्तृत व सुन्दर विवेचन किया गया है तथा उसके साथ ही आधुनिक संक्रामक रोगोंके संचय शांति काल आदिका वर्णन बहुत ही सामयिक हुआ है। पंचम प्रकरणमें इस प्रकारके ज्वरोंका विवेचन करके उनकी चिकित्सा बतलाई है। षष्टम् प्रकरणमें पाचन-संस्थानके रोग अतिसार संग्रहणी, अर्श, अग्निमांद्य आदिका प्राच्य और पाश्चात्य दोनों क्रमोंसे वर्णन देकर पुस्तकको अत्यन्त उपादेय बना दिया गया है।

पुस्तकमें आयुर्वेदिक चिकित्साके साथ आपने अपने अनेक अनुभूत योग भी दिये हैं। इसीके साथ स्थान-स्थान पर एलोपैथी चिकित्सा भी दी है जिसे मैं देशकी स्थितिके लिये हितकर नहीं समझता। यदि हमारे द्वारा एलोपैथी औषधियोंको इस प्रकार प्रोत्साहन प्राप्त होता रहा तो एक समय ऐसा आनेका भय है कि वैद्य अधिकतर विदेशी औषधियों पर निर्भर हो जायेंगे। हमें एलोपैथीके निदान शरीर विषयक गवेषणाओंको तो अपना लेना चाहिये। सचाईको ग्रहण करना समस्त वैद्यमात्रका कर्त्तव्य है। किन्तु विदेशी औषध और विदेशी चिकित्साको हमारी ओरसे सहायता नहीं मिलनी चाहिये। जो एलोपैथी औषध भारतीय कारखानोंके द्वारा तैयार होने लगें उनको देशकी उपज समझकर चाहे उनका व्यवहार किया जाय तो मैं उसे इतना अहितकर नहीं समझता। तथापि जहाँ तक हो वैद्य स्वयं नये रोगोंकी औषध आयुर्वेदिक पद्धतिसे ढूँढकर उनका प्रचार करें तो यह सबसे अच्छी बात है वरना स्वदेशीका उपयोग कर लें। कोई हानि नहीं। यह ग्रन्थ जिस परिश्रम और अध्यवसायसे लिखा गया है इससे चिकित्सा प्रेमी तथा-चिकित्सक दोनोंके लिये बड़ा उपयोगी सिद्ध होगा। एक त्रुटि इस ग्रंथमें यह जानकर की गई प्रतीत होती है कि आपके द्वारा इससे पूर्व रस-तन्त्र सार व सिद्ध प्रयोग नामक एक अच्छा ग्रंथ निकल चुका है। उसके योग इस ग्रन्थमें काफी आये हैं, वह इस योग ग्रंथमें न देकर केवल सिद्ध प्रयोग नामक ग्रन्थकी पृष्ठ संख्या व संकेत मात्र दे दिये गये हैं जिसका स्पष्ट अभिप्राय यही है कि जो व्यक्ति चिकित्सा तत्व प्रदीप पढ़ेगा वह उन योगोंको बनानेके लिए सिद्ध प्रयोग भी अवश्य मँगावेगा। यह जो क्रम रक्खा गया है व्यावसायिक विचारका एक अँग है। इसलिये इसे हम ऐसी त्रुटि नहीं समझते जो ग्रन्थकी उपयोगिताको कम करने वाली हो। ग्रन्थ आयुर्वेदकी एक निधि है इसे एक बार वैद्योंको अवश्य देखना चाहिये।

सचित्र वनस्पति गुणादर्श—(प्रथम भाग) लेखक व प्रकाशक-वैद्य हीरामणि मोतीराम जांगले गृहीतायुर्वेद। सच्चिदानन्द आयुर्वेदिक फार्मसी, वावली, पूर्व खानदेश, जलगांव। पृष्ठ संख्या १३६ मूल्य २)।

इस ग्रंथमें अश्वगन्धा सारिवा, शिवलिंगी, दन्ती भृङ्गराज, पुनर्नवा वावची, राजधतूरा, विष,वत्सनाभ, लागुली, दारुहरिद्र, ऊँटकटार और गिलोय इन १३ वनस्पतियोंका सचित्र वर्णन किया गया है। चित्र सब रङ्गीन और बहुत उत्तम बने हैं।

हीरामणि जी बड़े ही आयुर्वेद-प्रेमी तथा वनस्पति संशोधक हैं। आपने तीन बार पंजाब तथा काश्मीर, नैपाल आदिका दौरा करके कौन-सी वनस्पति कहाँ होती है स्वयं जा-जाकर देखा है। कई मास आप इसी वनस्पतिके खोजमें हमारे यहाँ आकर ठहरे हैं। आपको चित्र-निर्माण-कलाका भी बड़ा शौक है। इसमें जितने भी चित्र दिये गये हैं सब

आपकी कृति हैं। आपने वनस्पति-अनुसन्धानके लिए जितना परिश्रम उठाया है वह स्तुत्य है। आपने जितना सचित्र वनस्पतियोंका वर्णन दिया है उनके प्रान्तिक अंगरेजी, हिन्दी, संस्कृत, समस्त नामोंको बड़ी ढूँढ़ खोजके साथ संग्रह किया है और इसके साथ ही उन वनस्पतियोंके गुण, धर्मपर भी जो कुछ मसाला आपको प्राप्त हुआ है सबका आपने बड़ी योग्यतासे संकलन किया है। एक-एक वनस्पति किन-किन रोगोंपर किस तरह प्रयोग की जाती है इसका आपने बहुत अच्छा वर्णन कर पुस्तकको अति उपयोगी बना दिया है। धनहीन होते हुए अकेले आपने यह भारी काम जो आरम्भ किया है इसके लिये हम आपके उत्साहको देखकर धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकते। पुस्तक वैद्योंके लिये विशेष उपयोगी है। आशा है आप इसके अन्य भाग भी शीघ्र निकालकर वनस्पति शास्त्रके सचित्र ग्रन्थोंकी कमीको पूर्ण करेंगे।

UNIVERSITY COLLEGE OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
92. UPPER CIRCULAR ROAD, CALCUTTA.
PHONE REGENT 159.
DEPARTMENT OF CHEMISTRY.

10/10/1940

I have turned over the pages of the Hindi book on Woodpolish, written by Dr. Gorakh Prasad and Mr. Bhatnagar. The book has been written in easy Hindi and I could easily follow it. It is, indeed, very opportune that technical subjects are being dealt with by scientists in the language of the province. This will not only enrich the provincial Vernacular but will simultaneously help the laymen to become familiar with the modern technicalities of a particular trade.

The book has been well-written and I hope it will command an appreciation from the general public.

P. C. Ray.

रोग विज्ञानम्—नव्य आयुर्वेद विज्ञान ग्रंथ मालाका प्रथम पुष्प (प्रथम भाग) ले० आयुर्वेदाचार्य कवि० श्री सुरेन्द्रकुमार शर्मा, शास्त्री कविरत्न आदि। आविष्कर्ता भारतीय सिनकोना। प्रकाशिका—पं० सरोजनी देवी वैद्या चाइल्ड वेलफेयर एण्ड मेटर्नटी सेण्टर, चिड़ावा, जयपुर स्टेट। साइज २० × ३०-१६, पृष्ठ संख्या १६६, मूल्य २॥)।

आपने संस्कृतमें पद्यबद्ध यह ग्रन्थ लिखा है। इस ग्रन्थको लिखनेमें आपने इस समयके जितने भी नव्य रोग हैं क्रमसे सबको ले लिया है। समस्त ग्रंथको आपने १६ अध्यायमें विभक्त किया है। एक ओर जहाँ आपने चौथे अध्यायमें रोगोंके मूल कारण त्रिदोष-वादको आयुर्वेद मतानुसार यथावत् माना है उसके साथ ही पंचम अध्यायमें रोगोत्पत्तिमें जीवाणु-कीटाणुको भी बाह्य कारण माना है। तथा इसके साथ ही विटामिनके अभावसे भी रोगोंकी उत्पत्ति मानी है। एक म्यानमें आपने एक साथ दो तीन तलवारें रखनेकी जो चेष्टाकी है इसका आपने कोई स्पष्टीकरण नहीं किया है।

ग्रंथ इतने अच्छे ढङ्गसे लिखा गया है कि इसे आचार्य-परीक्षाके ग्रंथोंमें स्थान मिलना चाहिए। अब तक जितने भी निदान व विषयक ग्रंथ विद्यापीठकी परीक्षामें सम्मिलित हैं उन सबसे अधिक इसमें रोग-विज्ञान को समझनेका मसाला संचित किया गया है। आशा है पुस्तक प्रत्येक आयुर्वेद-ज्ञाता संस्कृतज्ञके लिये बड़ी उपयोगी सिद्ध होगी। कुछ स्थान-स्थान पर चित्र भी दिये गये हैं जो इसकी उपयोगिताको बढ़ा देते हैं।

प्रकृति दर्शन—लेखक व प्रकाशक—जी० बी० मिश्र नोहर बीकानेर। १३२ पृष्ठ की पुस्तक, छोटा साइज, मूल्य

॥।) । पुस्तक चिकित्सा सम्बन्धी नहीं, प्रत्युक्त दर्शन सम्बन्धी है और इसमें पंच महाभूत एकादशेन्द्रिय पिण्ड, ब्रह्माण्ड, ब्रह्म, प्रकृति, आत्मा आदिका बड़े अद्भुत ढङ्गसे निरूपण है। इससे भिन्न धर्म, अभ्यास, भावना, विचाकथन तेज आदि विषयों पर बड़ी अच्छी एक अजीब शैलीसे वर्णन किया है। पुस्तक दर्शन विचारधारी व्यक्तियोंके लिये पठनीय व मननीय है।

ऋद्धि खण्डः-वादिखण्डः—श्रीयुत राज्यवैद्य पं० जीवराम कालीदास शास्त्री द्वारा संशोधित व प्रकाशित, प्राप्ति स्थान—रसशाला औषधालय गोंडल, काठियावाड़। पृष्ठ संख्या १८४ मूल्य १२) रुपया मूल मात्र संस्कृत।

श्री पार्वती पुत्र नित्यनाथ सिद्धने १२ वीं शताब्दीमें रस रत्नाकार नामक पंच खण्डात्मक एक रसवाद पर बृहत् ग्रन्थ लिखा था उसके रस खण्ड और रसेन्द्र खण्ड तो कलकत्तासे तथा रसायन खण्ड श्री यादव जी महाराजके द्वारा बम्बईसे प्रकाशित हो चुके हैं। बाकी वादिखण्ड मन्त्रखण्ड अप्रकाशित थे। यह दोनों ही खण्ड श्रीयुत जीवराम कालीदास जी ने हस्त लिखित प्राप्त कर उसमेंसे वादिखण्ड—जो ऋद्धिखण्डके नामसे प्रसिद्ध है प्रकाशित किया है।

यह प्राचीन धातुवाद रसवादका ग्रन्थ है इसमें रसोपरसका संशोधन आदि देकर फिर उनसे सुवर्ण चाँदी प्रस्तुतो करवाके अनेक योग बतलाये हैं। यही नहीं प्रत्युत इनसे भिन्न मोती, लाल, पन्ना, नीलम कस्तूरी केशर आदि अनेकों चीज़ें कृत्रिम बनानेका विधान भी बतलाया है। और स्थान-स्थान पर इन्हें ग्रंथकार अपना अनुभूत बतलाता है। वास्तवमें यह योग जितने सरल और सुगम हैं यदि बन जांय तो अनेक निर्धन इन चीज़ोंको बनाकर धनवान् बन सकते हैं क्या रसवादके प्रेमी इस ग्रंथमें दिये योगोंको बनाकर उसका फलाफल वैद्य समुदायको समर्पित कर सकेंगे? यदि ऐसा कोई करे तो उससे आयुर्वेदके महान् उपकारकी आशा है।

ग्रंथ मूल्य मात्र होते हुए भी सरल है अच्छी तरह समझमें आ सकता है। किन्तु, १८० पृष्ठके ग्रंथका जितना मूल्य रखा गया है यदि यह ग्रन्थ उपादेय सिद्ध हो तो इतना मूल्य भी थोड़ा कहना चाहिये। उस तरह साधारण तथा व्यवहारिक दृष्टिसे मूल्य अधिक ही जँचता है।

व्याधि निग्रहः और प्रशस्त्र औषध संग्रह—

यह दो छोटे-छोटे संस्कृत ग्रंथ हैं। जिसमेंसे व्याधि निग्रह तो विश्राम पति द्वारा रचित है। तथा प्रशस्त्र औषध संग्रह श्री अवधान सरस्वती द्वारा रचित है। इन दोनोंका सम्पादन राज्यवैद्य प० जीवराम कालीदास जी ने ही किया है। स्थान-स्थान पर आवश्यक टिप्पणी भी दे दी है। इसका प्रकाशन रसशाला औषध आश्रम गोंडल, काठियावाड़ने किया है। जिसका मूल्य ॥) है।

यह दोनों ग्रंथ चिकित्सा विषयक है। और जितने भी रोगोंकी चिकित्सा दी है सब शुद्ध आयुर्वेदीय है अर्थात् इन दोनों ग्रंथोंमें रसोंका कोई नाम नहीं मिलता। क्वाथों चूर्णों गुटिका अवलेहों द्वारा रोग निवृत्तिके उपाय बताये गये हैं। योग कुछ शास्त्रीय कुछ ग्रन्थकर्त्ताके अनुभूत दिखाई देते हैं। ग्रन्थ उपादेय प्रतीत होता है। छपाई सफाई सब प्रसंशनीय है। —हरिशरणानन्द

ज्वर-मीमांसा- ले० स्वामी हरिशरणानन्द जी, प्रकाशक—पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी, अकाली मार्केट, अमृतसर। पृ० सं ३३६, मूल्य १॥)।

प्रस्तुत पुस्तकमें योग्य लेखकने लगभग सभी प्रकारके ज्वरों पर योग्यतापूर्ण प्रकाश डाला है। स्वामी जी अनुभवी वैद्य और प्रगतिशाल लेखक हैं। अनेक प्रकारके ज्वरोंके सम्बन्धमें मत भेदका होना स्वाभाविक है, पर लेखकने इस पुस्तकमें अत्यन्त प्रामाणिक सम्मतियोंका सुरुचिपूर्ण संकलन किया है। पुस्तक वैद्यों और डाक्टरोंके लिए समान रूपसे उपयोगी है।

प्रस्तुत पुस्तक पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध दो भागोंमें विभाजित है। पूर्वार्द्धमें उत्तप, उसकी उत्पत्ति दाह, संताप और ज्वरमें भेद, प्राचीन ज्वरोंकी तुलनात्मक मीमाँसा, सान्निपातिक और मन्थर ज्वरों पर विशेष प्रकाश डाला गया है। उत्तरार्द्धमें जैवी रोग, कराल ज्वर, राजयक्ष्मा, कंठमाला, कुंकुम, फुफ्फुस-प्रदाह ज्वर, पात ज्वर, प्रसूतिका ज्वर-मसूरिका, रोमान्तिका आदि ज्वरों पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। विभिन्न प्रकारके लक्षणोंको तुलना भी की गयी है जिससे ज्वरोंके पहचाननेमें कठिनाई न हो। पुस्तक सब प्रकारसे उपयोगी है। आशा है कि जनता इसका समुचित आदर करेगी। लेखकको इस सुन्दर पुस्तकके लिये बधाई।

—सत्यप्रकाश

फ़ोटोग्राफ़ी

[पृष्ठ १५६ का शेष]
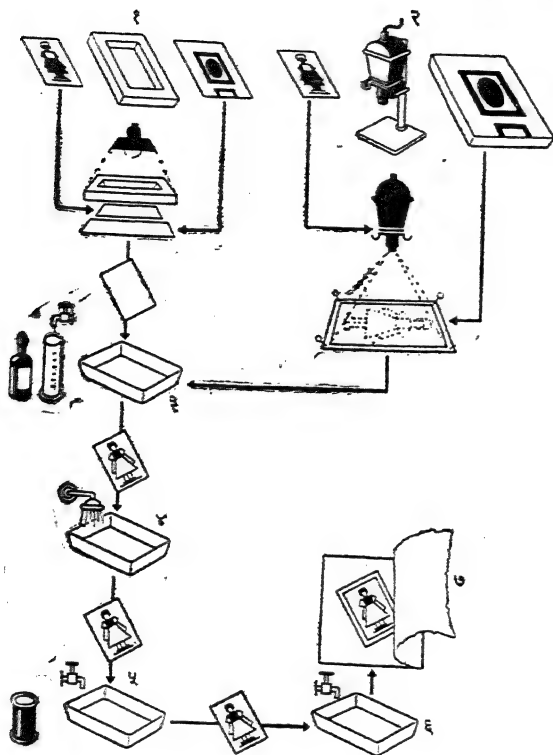
चित्र ४— छापना। (१) कागज़को नेगेटिवके पीछे रखकर प्रकाश दिखलाते हैं या (२) एनलार्जरसे नेगेटिवकी प्रवर्द्धित मूर्ति काग़ज़ पर डालते हैं; (३) तब काग़ज़को डेवेलपरमें डालते हैं; (४) फिर काग़ज़को दस-पन्द्रह सेकंड तक पानीमें धोते हैं; (५) तब कागज़को हाइपोमें डालते हैं; (६) अन्तमें कागज़को आधे घंटे तक धोते हैं; (७) इसे सुखा लेते हैं।

विषय-सूची

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग।

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते.
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्याभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ५२	प्रयाग, मीन संवत् १९९७ विक्रमी	फरवरी, सन् १९४१	संख्या ५

अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन पूनाकी

विज्ञान परिषद्के सभापति

डा. सत्यप्रकाश, डी. एस-सी. का भाषण

उपस्थित भद्र महिलाओ और सज्जनो,

वैज्ञानिकोंसे अधिक शिष्टाचारकी आशा करना व्यर्थ है। यदि मैं थोड़ेसे ही सीधे सादे शब्दोंमें उस सम्मानके लिये, जो मुझे इस समय प्रदान किया गया है, कृतज्ञता प्रकाशित करूँ तो आप क्षमा करें। मैं उस ललित पदावलिका प्रयोग नहीं करना चाहता जो साधारणतः ऐसे अवसरोंपर उपयुक्त समझी जाती है। इस वर्षका यह सम्मेलन विशेष परिस्थितियोंमें हो रहा है। मैं यह आवश्यक नहीं समझता कि आपके सन्मुख संसारका वह वर्तमान नग्न रूप चित्रित करूँ जिसमें मानव-शक्तियोंका उपयोग पैशाचिक इष्टियोंकी सिद्धिके लिये किया जा रहा है। जिस प्रकारका रक्त-पात, हाहाकार एवं संहार हमारे पूर्व और पश्चिमी देशोंमें हो रहा है उसको देखकर बहुतोंके हृदयमें ज्ञान और सभ्यता दोनोंके प्रति ग्लानि उत्पन्न होने लगी है। मैं इस बातका उल्लेख यहाँ न करता, पर संसारकी वर्तमान परिस्थितिका कलंक विज्ञान और वैज्ञानिक युगके मस्तक पर लगाया जा रहा है। विज्ञान ने संसारको शान्ति और युद्ध दोनोंके नवीन साधन प्राप्त कराये हैं। शान्ति और युद्ध दो परस्पर-विरोधी शब्द प्रतीत होते हैं। पर दोनोंका अन्ततोगत्वा अभिप्राय एक ही है। विज्ञानने पहलेकी अपेक्षा मनुष्यको आज अधिक सुरक्षित बना दिया, पर इस कथनका भी तो अर्थ यह है कि यदि कोई युद्ध संभवित हुआ तो वह पहलेके युद्धोंसे अधिक भयंकर होगा। मैं तो वर्तमान युद्धको भयंकरता देखकर अधिक विस्मित नहीं होना चाहता। संसारके इतिहासमें आजसे पूर्व अनेक बार एकसे एक भयंकर युद्ध हुए हैं और आगे भी होते रहेंगे। राजनीतिज्ञोंके कूट-स्वार्थके कारण संसारकी जो परिस्थिति हो गयी थी उसमें युद्धका होना अनिवार्य था। मैं तो इस युद्धमें भी मानव-कल्याणकी भावना देखता हूँ। विप्लवों और भूकंपोंका उद्देश्य विषमताओंका तिरोभाव करना है। इस युद्धसे अनेक राष्ट्रोंको नया पाठ सीखनेका अवसर प्राप्त होगा और आशा करता हूँ कि हमारा देश भी अपनी स्थितिको भली भाँति

समझ सकेगा।

वैज्ञानिक परिषदें

संसारकी वैज्ञानिक परिषदोंके समक्ष आज दो प्रश्न उपस्थित हो रहे हैं। पहला तो यह कि अपने अपने देशकी आर्थिक संपन्नता किस प्रकार बढ़ाई जाय, और दूसरा युद्धके लिये क्या-क्या तैयारियाँ की जावें। इन दोनों समस्याओंका समाधान राष्ट्रीय और वैज्ञानिक परिषदें पारस्परिक सहयोग से करती हैं। पर दुर्भाग्य तो हमारे देशका है। हमारे देश में कई वैज्ञानिक परिषदें हैं, इण्डियन सायन्स कॉंग्रेस, इण्डियन एकेडेमी ऑफ सायन्सेज़, नेशनल एकेडेमी ऑफ सायन्सेज, इण्डियन केमिकल सोसायटी, विज्ञान-परिषद और अनेक संस्थाएँ, पर युद्धके इस महत्त्वपूर्ण अवसरपर हमारे राष्ट्रीय कर्णधार और सूत्रधार इन संस्थाओंके प्रति जिस उदासीनताका परिचय दे रहे हैं, वह देशके लिये लज्जाकी बात है। एक तो यूरोपके वे देश हैं जहाँ आजकल युद्ध-सामग्री तैयार करनेके लिये वैज्ञानिक शिक्षा प्राप्त युवक कठिनतासे मिल रहे हैं, और एक हमारा देश है, जहाँ हमारे शिक्षित युवकोंको छोटी-छोटी नौकरियाँ भी नहीं मिल रही हैं। यदि हमारा देश अपनी समस्यापर स्वयं विचार करनेके लिये स्वतंत्र होता तो कदाचित् साहित्य-सम्मेलनकी आजकी यह विज्ञान परिषद् सम्मेलनके अन्तर्गत अन्य परिषदोंकी अपेक्षा अधिक मूल्य रखती और हम आज जिन बातोंपर विचार करते उसका प्रभाव देशकी समस्याओंपर पड़ता। पर हमें तो यह सौभाग्य ही नहीं प्राप्त है कि अपनी परिषदोंमें उन गूढ़ समस्याओंपर विचार करें जिनका संबंध हमारे राष्ट्रीय जीवनसे है। मैं तो उस दिनका स्वप्न देखना चाहता हूँ जब कि साहित्य-सम्मेलनकी इस परिषद्के संकेतोंपर राष्ट्रका जीवन निर्भर हो। इस वैज्ञानिक युगमें राष्ट्रोंका परिचालन वैज्ञानिक परिषदों द्वारा ही हो सकता है। पर यह तभी संभव है जब शासकों और शासितोंका दृष्टिकोण और लक्ष्य एक हों, अथवा दूसरे शब्दोंमें जब राज्य-भक्ति और राष्ट्र-प्रेम दोनों शब्द एक ही भावके द्योतक हों।

मराठी साहित्य

महाराष्ट्र प्रान्तके मुख्य केन्द्र पूनामें साहित्य सम्मेलन का होना हमारे लिये गौरवकी बात है। भारतीय संस्कृति और सभ्यताके लिये महाराष्ट्रने जो सेवायें की हैं वे इतिहासमें अमर रहेंगी। मराठी भाषाके साहित्य-पुजारियोंने अपने भाषा-भण्डारके परिपूर्ण करनेमें जिस अध्यवसायका परिचय दिया है वह हम सबके लिये एक उदाहरण है। उनका पुरातत्व-और इतिहास-प्रेम अद्वितीय है। महाराष्ट्र-राज्योंके इतिहासकी जो प्रागतिक सामग्री उन्होंने एकत्र की वह हमारे लिये अनमोल है। इसी नगरका 'भाण्डारकर अन्वेषणालय' हमारे लिये एक तीर्थ-स्थान हो गया है। यही नहीं; इस पूनाके 'महाराष्ट्र कोश मण्डल' ने सात भागोंमें जो विशाल 'महाराष्ट्र शब्दकोश' प्रकाशित किया है वह भी विशेष महत्त्व का है। कुछ दिन हुए इस मंडलके संचालकोंसे मुझे यह भी पता लगा था कि वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दोंका एक प्रामाणिक संग्रह भी वे निकालने जा रहे हैं और संभवतः यह प्रकाशित हो भी गया होगा।

मराठी में वैज्ञानिक साहित्यकी प्रगति भी प्रायः संतोषजनक है। मैं इनमेंसे कुछका उल्लेख करना चाहता हूँ। श्री मराठेकी 'रसायन शास्त्र प्राइमर', प्रो. मोडकका 'निरिन्द्रिय रसायन शास्त्र' और 'सेन्द्रिय रसायन शास्त्र' श्री कालेजीका 'भारतीय रसायन शास्त्र' और डॉ. आपटे को 'रसायन भूमिका' और 'इन्द्रिय-रसायन' आदि पुस्तकें उपयोगी हैं। प्रो. मोडक और श्री आपटे ने भौतिक विज्ञानसे संबंध रखनेवाले विभिन्न विषयोंपर भी अच्छी पुस्तकें लिखी हैं। प्रो. मटंगेका 'अपेक्षावाद' ग्रन्थ भी महत्त्वका है। भौतिक और रसायनकी अनेक शालोपयोगी पुस्तकोंका उल्लेख करना यहाँ संभव नहीं।

मराठी भाषामें गणितकी उच्च पुस्तकोंका अभाव है। शालोपयोगी ग्रन्थ तो अवश्य हैं। ज्योतिष सम्बन्धी कुछ अच्छी पुस्तकें निकली हैं, जैसे श्री दीक्षितजीका 'ज्योतिर्विलास' और 'भारतीय ज्योतिःशास्त्र', श्री. ढवलेजीका 'विश्व की रचना और उत्क्रान्ति' और श्री कोल्हटकर, देशपांडे आदिके ग्रन्थ। वनस्पति-शास्त्रमें, श्री भाटवडेकर, सांबारे और दामलेजीकी पुस्तकें एवं ताम्हने और कान्हेरेका 'सुलभ वनस्पति शास्त्र' इस विषयके संतोष-जनक ग्रन्थ हैं। अन्य विषयोंपर भी छोटी-छोटी पुस्तकें हैं। विज्ञान-संबंधी स्वतंत्र पत्रिकाओंका अभी अभाव है। पहले 'मेकेनिकल इन्जीनिअर' अथवा 'इन्जीनिअर' नामक एक पत्रिका अंग्रेज़ी

और मराठी दोनोंमें निकलती थी। इधर 'उद्यम' नामक एक उपयोगी पत्रिका प्रकाशित होने लगी है।

महाराष्ट्रियोंने हिन्दी साहित्यकी भी कम सेवा नहीं की। श्री छत्रपति शिवाजीका हिन्दी-प्रेम सबको विदित है जिनका आश्रय भूषण जैसे कविको प्राप्त हुआ। मराठी और हिन्दी दोनोंकी लिपि एक होनेके कारण इन दोनों भाषाओंका संबंध तो दृढ़ हो गया है। मैंने अपने सम्पादन-कालमें 'विज्ञान' में अनेक महाराष्ट्र युवकोंके लेख प्रकाशित किये जिनसे उनके हिन्दी प्रेमका परिचय मिलता है। डॉ. वा. वि. भागवतका एक ग्रन्थ 'प्रकाश रसायन' प्रयागकी विज्ञान परिषद्ने प्रकाशित किया है। श्री शंकरराव जोशी ने हिन्दी की जो सेवा की है वह अद्वितीय है। इन्होंने कृषि और वनस्पति-विज्ञानके संबंधमें अनेक पुस्तकें हिन्दीमें लिखी हैं। अभी बम्बईके प्रो रा. ना. भागवतकी एक पुस्तकका अनुवाद श्री गजानन जागीरदारजी ने 'रसायन शास्त्रान्तर्गत नवलकथा' नामसे किया है। श्री केशव अनन्त पटवर्धनजी का 'वनस्पति शास्त्र' विषयक ग्रन्थ उल्लेखनीय है। हमें यह आशा है कि हिन्दीके वैज्ञानिक साहित्यके उत्थानमें हमें अपने महाराष्ट्र बन्धुओंका पूर्ण सहयोग प्राप्त होगा। राष्ट्र-भाषा होनेके कारण हिन्दीसे जितनी ममता हमें है, उतनी ही सब प्रान्तवालोंको होनी चाहिए। हम तो उस दिनकी प्रतीक्षामें हैं जब हिन्दीमें ग्रन्थ लिखना सभी प्रान्तोंमें उतने ही गौरवका समझा जायगा जितना कि अंग्रेज़ीमें लिखना इस समय समझा जा रहा है।

पारस्परिक सहयोग

मुझे हिन्दीके प्रति जितनी निष्ठा है उतनी ही अन्य भारतीय भाषाओंके प्रति भी, और मैं यह चहता हूँ कि सभी भाषाएँ एक समान फलें-फूलें। पर मैं साथ साथ यह भी चाहता हूँ कि शक्तिका दुरुपयोग न हो। जैसा कि मैं ऊपर कह चुका हूँ, मेरी यह अभिलाषा है कि समस्त भारतीय विद्वान् हिन्दीके प्रति कमसे कम उतना तो राग प्रकट करें जितना कि वे अंग्रेज़ीके प्रति प्रकट करते हैं। मैं यह नहीं कहता कि बंगाली भाई बँगला भाषाका परित्याग करें और मराठी या गुजराती सज्जन अपनी भाषाकी सेवा न करें। पर मैं यह चाहता हूँ कि उच्च साहित्यिक पुस्तकें हिन्दीमें लिखना वे अपना गौरव मानें क्योंकि हिन्दी उनकी और उनके राष्ट्रकी भाषा है। यह तो हम सब जानते हैं कि समस्त भारतीय भाषाओंमें वैज्ञानिक साहित्यकी उन्नति बहुत ही धीमी है। अनेक कठिनाइयोंका सामना करते हुए हिन्दीमें ही जब आठ-दससे अधिक अच्छी पुस्तकें वर्षभरमें नहीं छप पाती हैं तो अन्य प्रान्तीय भाषाओंमें तो और भी कम छपती होंगी। इस दृष्टिसे हम संसारकी दौड़का कभी साथ नहीं दे सकते। सन् १९४० में हमारी प्रान्तिक भाषाओंमें जिस कोटिकी जितनी संख्यामें पुस्तकें निकल रही हैं उनसे अधिक तो यूरोपमें सन् १७४० में ही निकली थीं। आजकल तो हिन्दीमें अच्छे और बुरे सभी प्रकारके वैज्ञानिक साहित्यकी वृद्धि कठिनतासे एक-डेढ़ हज़ार पृष्ठोंकी होती होगी। इससे कहीं अधिक वृद्धि यूरोपीय देशोंमें छोटेसे छोटे प्रकाशक-द्वारा होती है। ऐसी परिस्थितिमें यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम सब मिलकर वैज्ञानिक साहित्यकी ओर ध्यान दें और अलग-अलग शक्तिओंका दुरुपयोग न करें।

मैं अन्य प्रान्तीय भाषाओं का सहयोग दो प्रकारसे चाहता हूँ। एक—जिन पारिभाषिक शब्दोंका प्रयोग हम करें उन्हींका प्रयोग सब प्रान्तों में हो। यह बात कुछ अधिक कठिन नहीं है। दूसरी बात जिस पर मैं बल देना चाहता हूँ वह यह है कि उच्च कोटि के वैज्ञानिक साहित्य के लिये सब प्रान्त हिन्दी को माध्यम बनावें। हिन्दीसे मेरा अभिप्राय सर्वसम्मत राष्ट्र भाषासे है। मैं इस बातको कुछ और स्पष्ट कर देना चाहता हूँ। हाई स्कूल या मैट्रिक्युलेशन तक की परीक्षाके सब ग्रन्थ प्रान्तीय भाषाओं में हों और इन सब भाषाओंमें एक ही पारिभाषिक शब्दोंका प्रयोग हो। पर आगे कालेजकी शिक्षाओंके ग्रन्थ हिन्दी भाषामें हों। बी. एस-सी, एम. एस-सी. आदि कक्षाकी शिक्षाका माध्यम समस्त प्रान्तोंमें हिन्दी होना चाहिये और सभी प्रान्तोंके आचार्योंको हिन्दीमें लेखन, अध्ययन एवं अध्यापन करनेमें अपना गौरव समझना चाहिये। सारांशमें मेरी यह उत्कट इच्छा है कि निकट भविष्यमें हिन्दीको वह स्थान मिले जो इस समय अंग्रेजीको प्राप्त है। अनुसंधानों एवं अन्वेषणको पत्रिकाओंका माध्यम भी हिन्दी हो।

साहित्यके दो भाग हैं—ललित और उपयोगी। ललित साहित्यके अन्तर्गत गद्य, काव्य, नाटक, गल्प, उपन्यास,

पुराण आदि सम्मिलित हैं। ये सब विषय प्रान्तीय भाषाओं-के भण्डारको बढ़ावें। पर सब प्रान्तोंके साहित्यकार उपयोगी विषयोंके लिये, जिसमें विज्ञान, धर्मशास्त्र, समाज-शास्त्र, दर्शन सम्मिलित हैं, अपनी राष्ट्रभाषाका आश्रय लें। भारतवर्षमें ऐसा तो सदा होता ही था और यह कोई नई बात नहीं है। अभी कुछ दिन पूर्व तक और कुछ अंशोंमें अब भी काश्मीरसे लेकर दक्षिण तक पण्डित, और यही नहीं, पूर्वमें नवद्वीप तकके विद्वान् समस्त ज्ञान विषयक ग्रंथोंके लिये संस्कृत भाषाका आश्रय लेते ही हैं। कहाँ उब्वट, मम्मट, और श्रीहर्ष और कहाँ सायण, रामानुज और शंकर। इन सब ने गूढ़ विषयोंके लिये प्रान्तीय भेद छोड़कर एक राष्ट्रीय भाषा संस्कृतको अपनाया और यही कारण है कि ज्ञानके क्षेत्रमें (दर्शन, धर्म, ज्योतिष और वैद्यक) समस्त भारतकी एकराष्ट्रीयता हमारे अधःपतनके कालमें भी बनी रही। शंकर ने अपने ग्रन्थ द्राविड़ भाषामें नहीं लिखे और नवद्वीपके आचार्योंने नवन्यायके लिये अपनी प्रान्तीय भाषा नहीं अपनायी। राजतरंगिणीके ऐतिहासिक लेखकने राष्ट्रकी एक मात्र साहित्यिक भाषा संस्कृतका आश्रय लिया। महाराष्ट्रके कितने ही आचार्यों ने भी यही किया। इन सबके ग्रन्थोंमें प्रान्तीयताका प्रमाण नहीं मिलता। संस्कृतकी इस व्यापकताको देखकर मेरा हृदय गर्वसे गद्‌गद् हो जाया करता है, और कभी-कभी मेरी तो यह इच्छा होती है कि क्यों न संस्कृतको ज्ञान-विज्ञानके क्षेत्रमें वही स्थान दे दिया जाय जो अब तक दिया जाता रहा है? पर ऐसा प्रतीत होता है कि मेरा यह स्वप्न संभव नहीं है। अब मैं यह चाहता हूँ कि हिन्दीको कमसे कम वह स्थान अवश्य प्राप्त हो जाय जो अब तक संस्कृतको मिलता रहा है। जिस प्रकार संस्कृतको ज्ञानका माध्यम बनानेमें हमारे आचार्य अपनी प्रान्तीय भाषाको भूल गये और जिस प्रकार अंग्रेजीका आश्रय लेते समय भी सब प्रान्त अपनी प्रान्तीयता विस्मृत कर देते हैं, उसी प्रकार उच्च कोटिके साहित्यके लिये हिन्दी अपनाते समय प्रान्तीय भावनाओंको आने नहीं देना चाहिये। हिन्दी तो समस्त राष्ट्रकी भाषा है और सौभाग्यतः यदि मेरे ही समान कुछ व्यक्तियों की यह प्रान्तीय भाषा भी है, तो मुझसे द्वेष करके यदि अन्य प्रान्त वाले अपनी राष्ट्रभाषा हिन्दीका तिरस्कार कर दें अथवा उसको अपनानेमें संकोच करें तो यह कौन-सी बुद्धिमत्ता है? हिन्दी तो सबको एक समान प्रतीत होनी चाहिये। मैं यह दृढ़ता-पूर्वक कहना चाहता हूँ कि मेरी दृष्टिमें राष्ट्रभाषाका अभिप्राय केवल उस भाषासे नहीं है जिसे बोल कर लाहौर, प्रयाग, पटना, कलकत्ता, नागपुर, मद्रास, पूना, बंबई और करांचीमें बाज़ारसे सौदा खरीदा जा सके। यदि उच्च कोटिके साहित्यके लिये (दर्शन, धर्म, विज्ञान, धर्मशास्त्र इतिहास और पुरातत्वके लिये) हिन्दी के साहित्यिक रूपको न अपनाया गया तो हिन्दीको राष्ट्र-भाषा कहना उसका उपहास करना है।

अध्यापकों की दृष्टिसे

यदि समस्त प्रान्तोंके व्यक्ति परस्पर सहयोगसे हिन्दी के उच्च साहित्यका भण्डार बढ़ावें तो धन, समय और शक्ति तीनोंका ह्रास नहीं होगा। इसके साथ-साथ लाभ भी अनेक होंगे। आज हमें यदि न्याय या वेदान्त-किसी विषयको पढ़ानेके लिये एक आचार्यकी नियुक्ति करनी होती है, तो हम किसी भी योग्य पंडितको रख लेते हैं चाहे वह काशीका हो, या गयाका, या नवद्वीपका, मद्रासी हो या महाराष्ट्री। इस प्रकार इस समय विश्वविद्यालयमें जीव-विज्ञान, गणित, भौतिक या रसायनका अध्यापक नियुक्त करनेमें हमें प्रोफेसर रामन्, कृष्णन्, धर, साहा, साहनी, देशपांडे आदि किसीकी नियुक्ति करनेमें कोई कठिनता नहीं प्रतीत होती। यदि बंगलौर और कलकत्ता दोनोंकी उच्च शिक्षाका माध्यम एक न होता तो प्रो. रामन् कलकत्ते और बंगलौर दोनोंमें कैसे काम करते? जिस रसायन विभागमें मैं काम करता हूँ उसमें दो पंजाबी, दो काश्मीरी, दो संयुक्त प्रान्तीय और पाँच बंगाली हैं। इसी प्रकारकी खिचड़ी विद्यार्थियोंमें भी है। हमारे एक अध्यापक पंजाब, पटना, उड़ीसा और ढाकामें अध्यापक रह चुके हैं। अतः इस प्रकारकी परिस्थितिको देखते हुए हमें यह नितान्त आवश्यक प्रतीत होता है कि यदि विश्वविद्यालयोंमें अंग्रेजी के स्थानपर प्रान्तीय भाषाको माध्यम बनाना है तो सब प्रान्तोंमें उच्च शिक्षाका माध्यम हिन्दी ही होना चाहिए।

प्रयागके विज्ञान विभागमें अब तक बंगालियोंका आधिपत्य बना हुआ है और छोटी श्रेणीके अध्यापकोंको छोड़कर अधिकांश अध्यापक भिन्न प्रान्तीय हैं। काशीके

विज्ञान विभागमें महाराष्ट्रीय अध्यापकोंका प्रभुत्व रहा है। इन अध्यापकोंको नीतिवश हिन्दीसे कुछ राग रहा हो तो हो, पर उनकी हार्दिक निष्ठा हिन्दीके प्रति कभी नहीं रही। कमसे कम बंगालियोंके संबन्धमें तो यह बात सर्वथा स्पष्ट है। अहिन्दी-भाषियोंका वैज्ञानिक विभागोंपर प्रभुत्व होना हिन्दीके माध्यम बनानेमें सदा बाधक रहा है। कहीं-कहीं तो यह प्रभुत्व इस सीमा तक बढ़ गया है कि हिन्दी-भाषियोंको न तो उच्च वैज्ञानिक कार्य करनेकी सुविधा और अवसर दिया जाता है और न ऊँचे पदपर पहुँचनेकी कोई संभावना प्रतीत होती है। राष्ट्रीय भावनाके अभावमें भिन्न प्रान्तियोंसे हिन्दीके प्रति राग रखनेकी आशा करना भी अस्वाभाविक है।

मैं यह समझता हूँ कि अहिन्दी प्रान्तोंमें उच्च शिक्षण का माध्यम हिन्दी हो जाना सर्वथा वांछनीय होने हुये भी अभी दूरकी बात है। अतः हिन्दी भाषी प्रान्तोंमें विश्वविद्यालयोंमें उच्चाध्यापकोंकी नियुक्ति करते समय इस बात पर ध्यान रखना चाहिये कि वे हिन्दी-भाषी हों। हिन्दी-भाषी अपने ही प्रान्तोंमें कुछ ऐसे व्यूहमें फँसे हुये हैं कि उन्हें प्रोत्साहन मिलना तो अलग, अपने ही विश्वविद्यालयोंमें निरुत्साहित होना पड़ता है। न तो उन्हें अपनी योग्यता प्रदर्शित करनेका अवसर मिलता है और न फिर उनकी योग्य पदों पर नियुक्ति ही हो सकती है। हिन्दी-भाषी प्रान्त में एक अहिन्दी-भाषी अध्यापककी नियुक्ति हिन्दी माध्यम-के प्रश्नको बीस वर्ष आगे ढकेल देती है। अतः इस संबंध में हिन्दी-भाषी प्रान्तोंमें जनताका ध्यान आकर्षित होना चाहिये। इन सब बातोंका उल्लेख करना कुछ दुःख-दायक अवश्य है, पर प्रयागमें रहते हुये जिस प्रकारकी कठिनाइयों-का मैं अनुभव प्रति दिवस कर रहा हूँ उस दृष्टिसे मैंने यह सब कहना उचित समझा है।

हिन्दी भाषियोंका उत्तरदायित्व

कुछ थोड़ीसी अनुवादित पुस्तकें अथवा सर्व साधारण की रुचिकी पुस्तकें प्रकाशित कर देनेसे ही हिन्दी साहित्य और हिन्दी-भाषियोंका गौरव नहीं बढ़ सकता। जब तक उच्च कोटिके वैज्ञानिक कार्योंमें हमारे हिन्दी-भाषी भाग न लेंगे और संसारके समक्ष अपनी योग्यताका परिचय न देंगे, तब तक हिन्दीको गौरव नहीं मिल सकता है। जैसा मैं ऊपर कह चुका हूँ, कुछ तो असुविधाओं और बाधाओं-के कारण हिन्दी-भाषी वैज्ञानिक अनुसंधानके क्षेत्रमें अभी नहीं बढ़ सके हैं, पर ऐसे भी अनेक सज्जन हैं जिन्होंने अपने स्थान और पदका पूरा लाभ नहीं उठाया। वैज्ञानिक अनुसंधानोंके प्रति उनकी उपेक्षाओंने उन्हें प्रगतिमें पीछे डाल रक्खा है। यही कारण है कि हिन्दी भाषियोंमें रामन्, रामानुजन्, कृष्णन्, प्रफुल्ल राय, जगदीश वसु, मेघनाद साहा आदिके टक्करके व्यक्तियोंका नितान्त अभाव है। केवल एक दो अपवाद हैं। अध्यापकके अनुभवसे मैं कह सकता हूँ कि संयुक्त प्रान्तके हिन्दी-भाषी विद्यार्थी योग्यता और अध्यवसायमें किसी भी प्रान्तके विद्यार्थियोंसे पिछड़े नहीं हैं, पर सारा प्रश्न तो प्रवृत्ति का है। हमारे योग्य विद्यार्थियोंमें मौलिक अनुसंधानोंके प्रति प्रवृत्ति जागृत नहीं होने दी गई। व्यक्तियोंके गौरवसे समाज एवं साहित्यका गौरव होता है। यदि हिन्दीको राष्ट्र भाषाका गौरव मिलना है तो यह तभी हो सकता है जब हिन्दी भाषियोंको गणना भारतके प्रमुख वैज्ञानिकोंमें तो कमसे कम हो। प्रमुख वैज्ञानिकोंका विश्वविद्यालयोंपर प्रभुत्व सरलतासे हो सकता है और जब तक हिन्दी भाषा-भाषियोंका प्रभुत्व हमारे विश्वविद्यालयोंपर न होगा, तब तक हिन्दी वैज्ञानिक साहित्यकी वास्तविक वृद्धि नहीं हो सकती है।

अध्यापकोंकी ओर से अड़चनें

हमारे प्रान्तमें हाईस्कूलकी परीक्षा तकके लिये वैज्ञा-निक शिक्षणका माध्यम हिन्दी स्वीकार किया जा चुका है। पहले तो यह कहा जाता था कि हिन्दीको माध्यम बनानेमें सरकारकी ओरसे ही सारी अड़चने हैं, पर इधर मेरे अनुभव-में यह आया है कि सरकारी अड़चनें तो दूर भी हो सकती हैं, पर अध्यापकोंकी ओरसे और अधिक बाधायें प्रस्तुत की जा रही हैं। जब मैं स्कूलमें पढ़ता था, मेरी कुछ ऐसी धारणा थी कि सायन्स अध्यापक तो केवल बंगाली ही हो सकता है, अथवा बंगालियोंको ही सायन्स आ सकती है। बात यह थी कि लगभग सभी स्कूलोंमें सायन्सके अध्या-पक बंगाली थे। पर अब यह बात नहीं है। इस समय हाईस्कूलोंमें गणित और विज्ञानके जितने अध्यापक हैं वे अधिकतर अंग्रेज़ी माध्यमद्वारा शिक्षित हैं। वैज्ञानिक विषयों को हिन्दीमें पढ़ानेमें कुछ कठिनता अवश्य होगी, पर थोड़ेसे

अभ्याससे उन्हें सिद्धि प्राप्त हो सकती है। खेदकी बात यह है कि हमारे अध्यापक थोड़ासा भी परिश्रम नहीं उठाना चाहते। वे अनेक निर्मूल शंकाएँ प्रस्तुत किया करते हैं। मैं चाहता हूँ कि वे समस्त प्रश्नोंपर सहानुभूतिसे विचार करें और अपनी थोड़ी असुविधाओंके कारण राष्ट्रके इस महान् यज्ञमें बाधक न हों।

इस समय संयुक्त प्रान्तके अध्यापकों और विद्यार्थियों के सामने एक कठिनता है। वह यह कि यद्यपि शिक्षणका माध्यम तो हिन्दी हो गया है, पर प्रश्नपत्र अंग्रेज़ीमें आते हैं। हाईस्कूल और इण्टरमीजिएट बोर्डसे मेरा अनुरोध है कि वे प्रश्नपत्र भी हिन्दी, उर्दू भाषाओंमें तैयार करायें। इसमें किसीको आपत्ति न होनी चाहिए। ऐसा करनेसे हिन्दी माध्यमके प्रचारमें बड़ी आसानी होगी।

हिन्दी-उर्दूका प्रश्न

हिन्दू-मुस्लिम समस्याके समान हिन्दी-उर्दूकी समस्या भी राष्ट्रकी प्रगतिमें बाधक है। इन समस्याओंका निपटारा भावी संघर्ष कर देगा। मैं न तो उर्दूसे समझौता करके हिन्दीकी साहित्यिक रूप-रेखाको विनष्ट कर देना चाहता हूँ और न उर्दूके मार्गमें बाधक होना चाहता हूँ। मैं तो यह चाहता हूँ कि उर्दू अपने ढंगपर उसी प्रकार फले-फूले जैसे भारतकी अन्य प्रान्तीय भाषाएँ। इसमें ललित साहित्यकी अभिवृद्धि हो। पर उर्दूको हिन्दीकी राष्ट्रीयतामें रोड़ा बनकर न अटकना चाहिए।

मैं इस बातके स्पष्ट चिह्न देख रहा हूँ कि निकट भविष्यमें उर्दू कुछ मुसलमानोंकी भाषा रह जायगी। हिन्दू घरोंसे एक या दो पुश्तोंके बाद उर्दू बिल्कुल अलग हो जायगी। हिन्दू स्त्रियाँ तो उर्दू जानती ही नहीं हैं। अतः हिन्दुओंके लिये तो उर्दू थोड़े वर्षोंका प्रश्न है। उर्दूकी हिमायतके लिये हिन्दुओंका अग्रसर होना अब उपहासको बात है। हिन्दी साहित्य संमेलनको इस प्रकारकी आयोजना करनी चाहिए कि जब कोई हिन्दू बच्चा आरंभिक कक्षाओंमें पहली बार नाम लिखाता है तो वह अपनी भाषा हिन्दी ले, न कि उर्दू। कुछ दिनों पहले हिन्दू बच्चे भावी वकील बननेकी आकांक्षासे उर्दू लेनेको तत्पर हो जाते थे, पर अब इस व्यवसायमें कोई आकर्षण नहीं रहा है। जुलाई मासमें प्रत्येक वर्ष कुछ परिश्रम कर लेनेसे अबोध हिन्दू बच्चे उर्दूके चक्रसे बच सकते हैं।

हिन्दी और उर्दू दोनोंके माध्यमको सफल बनानेके लिये 'एँग्लो-वर्नाक्यूलर' स्कूलोंके स्थानमें 'एँग्लो-हिन्दी' या 'एँग्लो-उर्दू' स्कूल होने चाहिए जिस प्रकारके 'एँग्लो-बंगाली' या 'एँग्लो-मराठी' स्कूल हैं। एक कक्षामें उर्दू और हिन्दी दोनों माध्यमोंका पढ़ाया जाना अध्यापकों और विद्यार्थियों दोनोंके लिये अहितकर है। एक स्कूलमें एक ही माध्यमसे शिक्षण होना चाहिए। हिन्दुओं द्वारा संचालित स्कूलोंमें शिक्षणका माध्यम स्वभावतः हिन्दी हो जावेगा। उर्दूका प्रश्न कुछ मुसलमानी स्कूलोंके लिये हो जावेगा। वे जिस प्रकारसे चाहें निपट लें।

कांग्रेसकी अनुचित नीति

देशी भाषाओंके प्रचारमें कांग्रेसने जितनी उत्सुकता प्रकट की उतनी बुद्धिमत्ताका परिचय नहीं दिया। जितना उन्होंने मुसलमानोंका न्याय-विरुद्ध पक्षपात किया उतना ही अत्याचार हिन्दीके साथ भी किया। काका कालेलकर-जीकी पवित्र भावनाओंका सत्कार करते हुये भी हम उनकी नीतिका पूरा समर्थन नहीं कर सकते हैं। हमारे और उनके विचारोंमें भेदक-भित्ति स्थापित करना तो संभव नहीं है। संभव है कि हम दोनोंका आदर्श एक ही हो, पर उस आदर्श तक पहुँचनेकी जो विधि उन्होंने निकाली है वह अस्वाभाविक है और काम बननेकी अपेक्षा उससे बिगड़ता अधिक है। साम्प्रदायिक दृष्टिसे नहीं, प्रत्युत राष्ट्की दृष्टिसे मैं यह चाहता हूँ कि भाषामें संस्कृत शब्दोंकी प्रधानता उत्तरोत्तर अधिक होती जावे। मैं जब हिन्दुओंसे कहता हूँ कि तुम अपने बच्चोंको स्कूलोंमें उर्दूके स्थानमें हिन्दी दिलवाओ, तो इसलिये नहीं कि मैं उन्हें मुसलमानोंसे पृथक् करना चाहता हूँ। मैं तो मुसलमानोंसे भी यही कहता कि तुम भी उर्दू छोड़कर हिन्दी पढ़ो। पर मैं जानता हूँ कि इसमें हित होते हुए भी वे मेरी बात सुननेको आज तैयार नहीं हैं। हिन्दू लोगोंपर मेरे कथनका प्रभाव अधिक पड़ सकता है। हिन्दीमें फारसी शब्दोंका अपनाना एक बात है, और हिन्दीको प्रतिद्वन्द्वितामें जिस ढङ्गकी उर्दू चल रही है उसको ग्रहण करना दूसरी बात है। यदि हम फारसी शब्द अपनावेंगे तो उसी प्रकार जैसे गुजरातीमें अपनाये गये हैं। मैं उर्दूको समानान्तर अलग

महत्त्व देनेके पक्षमें नहीं हूँ।

इधर कांग्रेसी सरकारोंने उन प्रान्तोंमें भी जहाँ मुसलमान अब तक उर्दू नहीं पढ़ते थे, उर्दू प्रविष्ट करनेका प्रयत्न किया। मैं इस नीतिका घोर विरोध करना चाहता हूँ। पंजाबकी हिन्दीमें फारसीके शब्द हो सकते हैं, और इसी प्रकार द्राविड देशको हिन्दीमें अनेक द्राविड शब्द भी गृहीत हो जावेंगे, बंगालकी हिन्दीमें कुछ वर्गीय-प्रयोग भी स्वभावतः मिश्रित हो जायेंगे। पर राष्ट्रभाषाकी दृष्टिसे प्रत्येक प्रान्तमें हिन्दीके साथ-साथ उर्दू को ले जाना प्रत्येक स्थानमें एक पाकिस्तान बनाना है। सुदूर बंगाल और आसाममें जहाँ मुसलमान भाई भी हिन्दुओंके साथ-साथ संस्कृत पदावलिका धारा-प्रवाह प्रयोग करते हैं, वहाँ फारसी-निर्मित उर्दू को नींव डालना भारतका भविष्य अधिक कष्टमय बनाना है।

मैं तो संयुक्तप्रान्तमें भी यह चाहता हूँ कि लोग उर्दूको भूल जावें। यह मैं हिन्दुओं और मुसलमानों दोनोंसे कहूँगा। फारसी और अरबीका पढ़ना तो मेरी समझमें एक अर्थ रखता है, पर उर्दू पढ़ना तो निरर्थक है। मैं नहीं समझता कि इस्लाम धर्मके व्यक्ति फारसमें आकर फारसी भाषा (जो आर्य भाषा है) अपनानेमें कोई संकोच नहीं करते, यदि टर्कीमें तुर्की भाषा अपना सकते हैं, मंगोल प्रदेशोंमें उन्होंने मंगोलियन भाषा अपनायी, यही नहीं, भारतके अनेक प्रान्तोंमें उन्होंने वहाँकी प्रान्तीय भाषायें अपनायीं, तो अकेली एक बेचारी हिन्दीके अपनानेमें उन्हें क्यों संकोच होना चाहिए?

मैं उर्दूके संबन्धमें यह पुरानी चर्चा यहाँ न छेड़ता, पर मैं देखता हूँ कि वैज्ञानिक साहित्यकी पारिभाषिक शब्दावली निर्धारित करते समय उर्दूकी समस्या भी हमारे सामने प्रस्तुत कर दी जाती है। काँग्रेसी सरकारके पूर्व मेरे प्रान्तमें अनेक कन्या पाठशालाओंमें उर्दू कभी नहीं पढ़ायी जाती रही, पर मैं अब देखता हूँ कि संयुक्त प्रांतकी बालिकाओंको भी हिन्दीके साथ-साथ आरंभसे ही उर्दू पढ़ानेका प्रयत्न किया जा रहा है। मैं तो विनम्र शब्दोंमें इसे अत्याचार ही कहूँगा। मैं यह मानता हूँ कि हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि—यही राष्ट्रीय भाषा और राष्ट्रीय लिपि है। इसके समानान्तर उर्दू भाषा या उर्दू लिपिको प्रोत्साहन देना हिन्दू और मुसलमान दोनोंके हितमें नहीं है। यदि कांग्रेसी प्रवृत्ति वाले देशभक्त भाषाके प्रश्नको सुलझा नहीं सकते तो कृपा करके इस प्रश्नको और उलझावें नहीं।

पारिभाषिक शब्दावलीका उपहासास्पद प्रयत्न

मैं उर्दू वालोंको छेड़ना नहीं चाहता हूँ, पर मैं इतना ही आग्रह करना चाहता हूँ कि यदि मिलकर हम लोग काम नहीं कर सकते, तो अलग-अलग काम की हमें बराबर स्वतंत्रता हो। वैज्ञानिक क्षेत्रमें गत बीस वर्षोंके अनुभवसे मैं यह निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि उर्दू और हिन्दी दोनों भाषाओंके पारिभाषिक शब्द एकसे नहीं हो सकते। 'अंजुमन ए-तरक्की उर्दू' (हैदराबाद) ने जो पारिभाषिक शब्दावली बनायी है वह स्तुत्य है, और मुझे उससे कोई विरोध नहीं। यदि मैं उर्दू भाषामें कुछ लिखूँगा, तो उसी शब्दावलीका प्रयोग करूँगा। हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाओंकी रूप-रेखा हमारे पूर्व साहित्यिक आचार्योंने निर्धारित कर दी है। श्रेय इसीमें है कि दोनों अलग-अलग अपनी मर्यादामें प्रवाहित हों।

हिन्दी या उर्दूका एकीकरण 'हिन्दुस्तानी' नहीं है। 'हिन्दुस्तानी' बाजारू, कामचलाऊ चीज़ है और उसकी रूप-रेखा निर्धारित करनेके लिये किसी आचार्यकी आवश्यकता नहीं है। कलकत्ता, मद्रास, बम्बई, नागपुर, प्रयाग, लखनऊ और दिल्लीके बाजारकी हिन्दुस्तानी जो वहाँके निवासियोंकी सुविधाकी दृष्टिसे स्वतः बन गयी हो, एक दूसरेसे बहुत कुछ भिन्न होगी। उर्दू-शिक्षित मुसलमानोंके संपर्कसे बोलचालकी भाषामें जो अंतर आया हो उसे ही क्यों हिन्दुस्तानी कहा जाय? महाराष्ट्र प्रदेशकी हिंदुस्तानीके लिये महाराष्ट्र-भाषियोंकी सुविधासे कुछ परिवर्तन स्वतः हो जायेंगे। बंगालमें सर्वसाधारणकी हिन्दीमें वंग-पदावली और मुहावरे प्रविष्ट हो जायेंगे। ऐसा होना तो सर्वथा वांछनीय है। उर्दू शिक्षित मुसलमानोंकी सुविधाकी हमें अवहेलना नहीं करनी है। जीवनमें एवं अपने प्रतिदिनके व्यवहारमें परस्पर हम काम निकाल लेते हैं और किसीको एक दूसरेकी भाषाके प्रति शिकायतका अवसर नहीं मिलता। फिर क्यों ऐसी साधारण-सी बातके लिये समितियाँ और आयोजनाएँ बनाकर पारस्परिक

अन्तरके बढ़ानेका प्रयत्न किया जा रहा है ? मुसलमानोंको हमारे साथ रहते-रहते अब पाँच सौ (५००) वर्ष हो गये। हम दोनोंने बोलचालकी दृष्टिसे अपनेको परिस्थितियोंके अनुकूल बना लिया है।

बोलचालकी भाषासे साहित्यका काम नहीं निकल सकता, यह एक परम सत्य है। सृष्टिके आदिसे अब तक दार्शनिक और वैज्ञानिक विषयोंकी बात तो अलग, विशुद्ध ललित-साहित्य भी केवल बोलचालकी भाषापर निर्भर नहीं रह सकता। जो लोग इस प्रकारका भगीरथ-प्रयत्न करना चाहते हैं उनका उद्यम सराहनीय है, पर सर्वथा अवांछनीय भी।

एक बार हिन्दुस्तानी एकेडेमीके एक प्रतिष्ठित सज्जन मुझसे आग्रह करने लगे कि कमसे-कम प्रयत्न तो करो कि ठेठ हिन्दुस्तानी शब्दोंमें (बिना संस्कृत, अरबी, फारसीकी सहायताके) वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्द बनें। मैंने कहा कि मैं अपने पारिभाषिक शब्दोंमें तब तक हाथ न लगाने दूँगा जब तक आप साहित्यिक लोग परंपरासे आयी हुई व्याकरणके ही पारिभाषिक शब्द हिंदुस्तानीमें न बना लेंगे।

अक्षर, शब्द, व्याकरण, वचन, लिंग, कारक, काल, उपसर्ग, अव्यय, सर्वनाम, कर्त्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान आदि पारिभाषिक शब्दोंके 'हिन्दुस्तानी' नाम पहले बना लीजिये, जो हिन्दी और उर्दू दोनोंको एक समान स्वीकृत हों, और जिनमें संस्कृत या फारसी शब्दोंका प्रयोग न हुआ हो तो मैं आगे वैज्ञानिक शब्दोंकी बात सोचूँगा।

वस्तुतः 'हिन्दुस्तानी' का वितंडा व्यर्थ है। सबकी सुविधाओंको सहानुभूति से देखते हुये स्वत. सर्वसाधारणकी आवश्यकतानुसार एक बोली बन जाती है, उसके लिये देशभक्तों और साहित्यिकोंके उद्‌गार और वितण्डाकी कोई आवश्यकता नहीं। रही साहित्यिक भाषाकी बात, उसमें तो उर्दू और हिन्दी अपनी निश्चित रूप-रेखा पर अलग-अलग विकसित होंगी और उन्हें होने दिया जाय।

इस वर्ष 'हिन्दुस्तानी' में पारिभाषिक शब्दोंके बनानेका एक प्रयत्न बिहारकी हिन्दुस्तानी कमेटीने किया। मैं इस प्रयत्नको इस वर्षकी सबसे अधिक मनोरञ्जक घटना मानता हूँ। मैं तो चाहता था कि मैं उसका इस भाषणमें उल्लेख भी न करूँ, क्योंकि उसका उल्लेख, विरोध या उपहास करके मैं उसे अनुचित महत्व भी नहीं देना चाहता। मैं केवल इसलिये उसकी ओर यहाँ संकेत कर रहा हूँ कि उससे आपका कुछ समयके लिये मनोरंजन हो जायेगा। इस कमिटीने पारिभाषिक शब्दोंके बनानेमें निम्न नीतिका पालन किया—

(a) Scientific terms should be, as far as possible, drawn from current Indian Sources commonly understood, and not directly from Sanskrit, Arabic or Persian or any other language.

(b) Failing, terms usually employed in scientific terminology in the West should be adopted to our requirements.

(c) The two above methods failing, words from Sanskrit, Arabic or Persian may be used with equivalents (as now used in Urdu or Hindi) printed in brackets so that the learner my become familiar with both sets of terms.

अभिप्राय यह है कि पहले तो बोलचालके शब्दोंसे काम लिया जाय और फिर अंग्रेजी शब्दोंसे। (c) के अंतर्गत जो परिस्थिति दी गयी है उसका तो अवसर ही नहीं आना चाहिये, क्योंकि वैज्ञानिक साहित्यके लिये पाश्चात्य शब्द तो सदा ही मिलते रहेंगे। अतः संस्कृत-फारसीकी बारी आनेकी संभावना ही नहीं। अपने ही देशके संस्कृतकी यह अवहेलना और उपेक्षा मेरे लिये तो दुःखकी बात है। पाश्चात्य शब्दोंके लिये ग्रीक और लैटिनका भण्डार खुला है, और हमने पाश्चात्य शब्दोंके लिये अपना द्वार खोल दिया। इसका अभिप्राय स्पष्ट शब्दोंमें यह है कि हम ग्रीक और लैटिन भाषाओंको तो अपनानेके लिये उद्यत हैं, पर फारसी और संस्कृत भाषायें हमारे लिये अछूत हो गई हैं।

अस्तु, उक्त नीतिका पालन करते हुये उस हिन्दुस्तानी कमिटीने जो सुन्दर पदावली बनाई है, उसका स्थाली-पुलाक न्यायसे मैं थोड़ा दिग्दर्शन करानेकी चेष्टा करूँगा।

Planet चलतारा Irrational गूँगी (राशि)
Equator समबाँटा Rational बोलती (राशि)
Isthmus जमीन-जोड़ Variable बदल
Strait पनजोड़ Polygon बहुतबाँही
Horizon नजरफेर Intercept बिचटूक
Latitude अर्जलकीर Negative घट
Atmo-sphere हवागोल Positive जुट
Axiom आप-सच Harmonic-conjugate मेली-जोड़क
Postulate मान-सच Function हरफलडी
Tangent घेरा-चूम Hydrosphere पन-गोला
Circum-circle घेर-घेरा Vernal Equinox रब्बी-समरात
Asymptote चूमचाही लकीरी

नजरफेर, घेराचूम, और मानसच आदि शब्द लड़कोंको ड्रिल कराते समयकी याद दिला रहे हैं। इन शब्दोंको बोलचालका शब्द बताया जा रहा है। बोलचालके शब्दोंको बोलचालके रूढ़ि अर्थमें अपनाना तो सर्वथा श्रेयस्कर है। पर यदि उन शब्दोंके अर्थ ही परिवर्तित हो जायँ तो वह शब्द बोलचालका कहाँ रह जाता है? पन-जोड़से साधारण व्यक्ति क्या अभिप्राय समझेगा? पानी लगाकर कोई चीज़ जोड़ी गई हो, ऐसी कुछ भावना होगी। 'चूमचाही' शब्दसे रसिकोंका ध्यान किस ओर जावेगा यह तो स्पष्ट है। और यदि बोलचालके शब्दोंमें बोलचालका अर्थ ही न रहा तो बोलचालकी भाषा अपनानेका सारा सिद्धान्त निस्सार हो जाता है। जो विषय सर्वसाधारणके लिये नहीं है, उसके लिये सर्वसाधारणके शब्द लावेंगे कहाँसे? अतः मैं इस यत्नको निस्सार और उपहासास्पद समझता हूँ। राष्ट्रकी शक्तिका ऐसे प्रयत्नोंमें ह्रास करना शोभाकी बात नहीं है।

अभी सर अकबर हैदरीकी अध्यक्षतामें पारिभाषिक शब्दोंके संबंधमें एक और समिति बनी है। हमें देखना है कि यह समिति दूरदर्शितासे काम लेती है अथवा उसके निर्णय भी बिहारकी कमिटीके समान उपहासास्पद होते हैं। मैं समझता हूँ कि यह कमिटी अपने कार्यमें तब अधिक सफल हो सकती है जब (१) यह उर्दू और हिन्दीको स्वतंत्र विकसित होनेका परामर्श दे। दोनोंके पारिभाषिक शब्दोंमें अनहोने समझौतेका स्वप्न न देखे। (२) हिन्दी, मराठी, गुजराती, बंगाली और द्राविड़ भाषाओंके लिये एक संस्कृत गर्भित पदावली निर्धारित करनेका परामर्श दे।

हैदरी कमिटीके एक सदस्य श्री अमरनाथ झाने इस संबंधमें कुछ विचार प्रकाशित किये हैं जिनकी मीमांसा मैं अब आगे करूँगा।

पाश्चात्य पारिभाषिक शब्दोंका ग्रहण

हमारी भाषामें प्रतिदिन पाश्चात्य शब्दोंकी संख्या बढ़ रही है। इसके कई कारण हैं जिनमें प्रमुख कारण पाश्चात्य शासकों द्वारा शासित होना है। पाश्चात्य देशोंमें बनी हुई अथवा पाश्चात्य संस्कृतिपर भारतमें बनायी गयी वस्तुओंका प्रचार देशमें बढ़ रहा है। प्रत्येक वस्तु अपने साथ अनेक शब्दोंको ला रही है, और ये शब्द प्रति दिन हमारी भाषामें घुलमिल रहे हैं। आजसे कुछ शताब्दियों पूर्व मुसलमान शासकोंके समयमें इसी प्रकार अनेक फारसी और अरबी शब्दोंका प्रवेश इस देशमें हुआ था, जिसने आज उर्दूकी रूपरेखा बनायी। पाश्चात्य शब्दोंके संसर्गसे हमारी भाषाकी रूपरेखा परिवर्तित हो रही है, और इस प्रकार जिस भाषा या बोलीके बननेकी संभावना है, उसका नाम मैंने 'इंगलिस्तानी' दिया है। इस विषयका कुछ विशद विवेचन मैं अपने लेखोंमें कर चुका हूँ। आवागमनके साधन, जलयान एवं वायुयानके सुलभ होनेसे और रेडियोकी व्यापकताके कारण संसारके दूरस्थ देशोंमें भी सामीप्य स्थापित होता जा रहा है। ऐसी परिस्थितिमें शब्दोंका आदान-प्रदान होना स्वाभाविक है। खेदकी बात है कि हमें इस समय दूसरे देशोंसे लेना ही अधिक है, अपने शब्द देनेको बहुत कम।

वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दोंके संबंधमें भी यह स्पष्ट है कि हमें अनेक पाश्चात्य शब्द ज्योंके त्यों अपनाने पड़ रहे हैं। इन शब्दोंके अपनानेमें अनेक सुविधाएँ हैं। देश-विदेशोंमें पदार्थ पाश्चात्य नामोंपर बिकते हैं, जैसे मशीनें और उनके भाग, दवाएँ, रासायनिक वस्तुएँ। दूसरी सुविधा

यह है कि नये शब्द बनानेके परिश्रमसे बचत होती है, विशेषतया इस दृष्टिसे कि नये शब्दके सर्वमान्य होनेका भरोसा भी नहीं रहता है। तीसरी बात यह है कि भारतकी सब प्रान्तीय भाषाओंमें, और उर्दूमें भी, इनका एक समान व्यवहार हो सकता है। और चौथी बात यह है कि इनमें से अनेक शब्द सब पाश्चात्य देशोंमें एक समान प्रचलित होते हैं। इन्हीं सब बातोंको दृष्टिमें रखते हुए हमारे विश्व-विद्यालयके वाइस चैन्सलर श्री अमरनाथ झाने 'सेण्ट्रल एडविज़िरी बोर्ड ऑफ् एज्युकेशन' की सायंटिफिक टर्मिनॉ-लॉजी कमिटीके समक्ष जो विचार प्रस्तुत किये, उनमें आप निम्न परिणामपर पहुँचते हैं।

"While scientific terms derived from Sanskrit will be intelligible to a very large proportion of Indians, it cannot be overlooked that an important section of the population will be more at home with words of Arabic or Persian origin. The attempt to compel either section to adopt one set of terms based either on Sanskrit on the one hand or on Arabic-Persian on the other will arouse bitter controversies. It is not possible that in all sciences, all the terms can be derived from these sources The attempt to confine newly coined terms to Sanskrit or to Arabic will cause communal discord. English terms are now in use in India and will continue to be understood and used by all engaged on advanced scientific work. The adoption of these terms will prevent waste of energy and time in the attempt to invent their Indian equivalents. These English terms are practically the same in every European language and a knowledge of these, enables one to follow the scientific books and journals published abroad".

हमारे वैज्ञानिक साहित्यके गत चालीस वर्षका अनुभव प्रो. झाके विचारकी बहुत कुछ पुष्टि कर रहा है और जबसे मैंने हिन्दी की 'इंगलिस्तानी' रूपरेखा पर विचार किया है, तबसे मेरा भी यह विश्वास हो रहा है कि चाहे उचित हो या अनुचित, पर वैज्ञानिक साहित्यमें पाश्चात्य शब्दोंकी संख्या हो अधिकांशतः प्रविष्ट हो जायगी। प्रो० झाके विचार दौड़में थके हुए पराजित घोड़ेके विचार हैं। हिन्दी-उर्दूका झगड़ा, हिन्दुओं और मुसलमानोंका वैमनस्य, हमारे साहित्यकी धीमी चाल, जन और धनका अभाव, और अन्तमें शासितों-की सी मनो-वृत्ति सबका मिश्रित प्रभाव यही तो होना है। हमने आपसके झगड़ोंसे तंग आकर विदेशी आधिपत्य स्वीकार किया, और ये झगड़े ही हम पर विदेशी शब्द बलात् लादनेपर तत्पर हो रहे हैं।

जिस प्रकार पाश्चात्य शब्दोंका त्याग करना संभव नहीं हो रहा है, उसी प्रकार पाश्चात्य शब्दोंका सर्वथा ग्रहण करना भी संभव नहीं है। यूरोपमें ही तीन प्रकारकी शब्दावलियाँ प्रचलित हैं-(१) अंग्रेज़ीकी (२) जर्मनकी और (३) रूस की। यह कहना ठीक नहीं कि समस्त यूरोपमें वैज्ञानिक शब्दावली लगभग एक ही है। मैं यहाँ कुछ अंग्रेजी और जर्मन शब्दोंकी सूची देता हूँ। दोनों भाषाओंमें सहस्रों शब्दोंकी भिन्नता है। यदि ये दिन युद्धके न होते तो मैं यह कहनेकी धृष्टता करता कि यदि पाश्चात्य शब्द अपनाने ही हैं, तो वैज्ञानिक अध्ययनकी सुविधाकी दृष्टिसे हमें अंग्रेज़ी की अपेक्षा जर्मन शब्द अपनाने चाहिए।

अंग्रेजी	जर्मन
	(A)
Number	Zahl
Denominator	Nenner
Square	Quadrat
Series	Reihe

Interest	Zins
Equilateral	Gleichseitig
St. line	Gerade
Circle	Kreis
Angle	Winkel
Equation	Gleichung

(B)

Pressure	Druck
Gravity	Schwere
Inertia	Trägheit
Vernier	Nonnius
Liquid	Flüs-igkeit
Solution	Losung
Viscosity	Zähigkeit
Tuning fork	Stimmgabel
Steam	Dampf
To boil	Seiden
Conduction	Leitung
Image	Bild
Refraction	Brechung

(C)

Foil	Blech
Flask	Kolben
Tube	Rohr
Wire	Draht
Sphere	Kugel
Tripod	Dreifuss
Crucible	Tiegel
Beaker	Becher
Test tube	Probierglas
Funnel	Trichter

(D)

Vertebrata	Wirbeltiere
Amoebae	Wechseltierchen
Anthropod	Gliederfuss
Thorax	Brusthohle
Cartilage	Knorpel
Pericardium	Herzbentel
Antenna	Fühler

(E)

Yeast	Hefe
Leaf	Blatt
Tissue	Gewebe
Pollensack	Staubbentel
Calyx	Kelch
Stigma	Narbe
Root	Wuzzel
Perisperm	Keimhülle

(F)

Glacier	Gletischer
Rock debris	Gesteins trümmer
Boulder	Geschiebe
Stratum	Schicht
Deposit	Lager
Denudation	Fntblossung
Crustacea	Krustentiere

समयाभावसे मैंने विस्तृत सूची यहाँ नहीं दी। मेरा अभिप्राय यह है कि हममेंसे बहुतोंको यह भ्रान्ति है कि यूरोपकी भाषाओंकी वैज्ञानिक पारिभाषिक पदावली सर्वथा एक-सी है। जिस सीमा तक हम अंग्रेज़ीके शब्दोंको अपनानेके लिये उद्यत हो जाते हैं, उतनी सीमा तक जर्मन, इटली और रूसवाले नहीं होते। हममेंसे बहुतसे अंकगणित और साधारण ज्योतिषके शब्दोंको अपनानेमें भी हिचकिचाते हैं। अक्षांश, विषुवत्, व्याज, भिन्न, सम, विषम, धन, ऋण, चक्रवृद्धि, व्यास, वृत्त, कर्ण आदि अनेक शब्द हमें परम्परासे प्राप्त हैं। इनको छोड़कर बोलचालके शब्द गढ़ना अथवा पाश्चात्य शब्द लेना अपने परम्परागत साहित्यसे संबंध तोड़ना है। इसी प्रकार राजनीति और अर्थशास्त्रके अनेक शब्द हमारे प्राचीन साहित्यमें पाये जाते हैं, जिनका अब फिर प्रचार किया जा सकता है।

पारिभाषिक शब्दों के संबंध में मेरी नीति

इस विषयको अधिक विस्तार न देते हुए पारिभाषिक शब्दोंके संबंधमें मैं निम्न नीतिका प्रस्ताव करूँगा।

(१) हिन्दी और उर्दूके समझौतेकी आशा व्यर्थ है। हम चाहते हैं कि जिन्हें उर्दूसे निष्ठा हो वे उसके साहित्यकी अभिवृद्धि करें। जिस प्रकार संसारकी अन्य भाषाओंसे हमारा विरोध नहीं, उसी प्रकार इससे भी विरोध नहीं है। पर हाँ, हम अपनी शक्ति हिन्दीकी सेवामें लगावेंगे और इसकी हमें स्वतंत्रता होनी चाहिए।

(२) जितने शब्द संस्कृत साहित्यमें प्रयुक्त हुए हैं उनका तदर्थमें व्यवहार करना चाहिए।

(३) ऐसे पाश्चात्य शब्द जो यूरोपकी सब भाषाओंमें समान हों, उनको सुविधाके लिये ग्रहण किया जा सकता है, यदि उनके कोई पर्याय हमारे यहाँ नहीं हैं। पर ये सब विशेष परिभाषाओंके लिये हों, न कि साधारण शब्दोंके लिये।

(४) अपनी भाषाकी मर्यादा एवं रूपरेखापर दृष्टि रखते हुए फारसी-अरबी शब्द (यदि नितांत आवश्यक हो तो) भी अपनाये जायँ, पर अपनाते समय भावना किसीके साथ समझौतेकी न हो।

(५) कहाँपर संस्कृत शब्द लेने चाहिए और कहाँ प्राकृत, अंग्रेज़ी, जर्मन या फारसी—इसके लिये कोई नियम नहीं बनाया जा सकता है। यह बात विशेषज्ञों और जनता दोनोंके अधीन है। संभव है कि कुछ शब्दोंके हिन्दी, उर्दू और पाश्चात्य पर्याय तीनों ही प्रचलित होते रहें। जैसे (१) दूरदर्शक, दूरबीन, टेलस्कोप। (२ वायुयान, हवाई जहाज और एयरोप्लेन। (३) डाकखाना और पोस्ट ऑफिस। (४) कोर्ट, कचहरी और न्यायालय। ये पर्याय अमर हो गये हैं, और जनताने सबको स्वीकार कर लिया है। एकके लिए कई पर्यायोंके उपयोग होनेमें कोई हानि भी नहीं। जर्मन भाषामें कई पर्यायोंका भी उपयोग होता है—(१) Zähigkeit, Viskosität (२) Brechung, Refraktion। इन उदाहरणोंमें पहले शब्द तो अपने हैं और दूसरे शब्द अंग्रेज़ीके Viscosity और Refraction के आधारपर ले लिये गये हैं।

(६) जबतक रासायनिक व्यापार पर हमारा अधिकार नहीं है और जबतक हमारा राष्ट्र अपने शब्दोंको यथोचित महत्त्व न देगा, तबतक व्यापारिक पदार्थोंके लिये हमें विदेशी शब्द ही ग्रहण करने होंगे। जर्मनीमें बने हुए रासायनिक पदार्थोंकी बोतलोंपर जर्मन, अँग्रेजी, इटेलियन आदि पर्याय छपे होते हैं और यदि हमारा आग्रह हो तो वे हमारे देशमें भेजे गये पदार्थोंपर हिन्दी नाम भी छाप सकते हैं। व्यापारिक नामोंकी भिन्नताके कुछ उदाहरण मैं यहाँ देता हूँ।

अँग्रेजी	जर्मन
Alumina	Tonerde
Ironpyrites	Schwefelkies
White lead	Bleiweiss
Lunar caustic	Hollenstein
Acetic acid	Essigsäure
Succinic acid	Bernsteinsaüre
Caustic soda	Natronlauge
Tin	Zinn
Iron	Eisen

(७) मुझे सबसे अधिक खेद इस बातका रहता है कि हिन्दीमें विज्ञान संबंधी लेखकोंका अभाव तो है ही, इससे भी अधिक अभाव विज्ञान विषयोंके पाठकोंका है। यही नहीं विज्ञान विषयपर लिखने वाला नवागत युवक कभी पूर्ववर्ती लेखकोंके लेखोंको पढ़नेका न कष्ट उठाना चाहता है, और न ऐसा करना आवश्यक ही समझता है। ऐसी परिस्थितिमें प्रत्येक लेखक नयी शब्दावली बनाने लगता है। यदि इस प्रकारकी प्रथा बंद न की गई तो अच्छेसे अच्छा शब्द भी कभी प्रचलित न हो पावेगा। अन्य भाषाओंमें तो निरर्थक एवं विपरीत-अर्थके शब्द भी प्रचलित हो गये हैं। इसका फल यह है कि चालीस वर्षके प्रयत्नके उपरांत भी हमारे पारिभाषिक शब्द उतने ही कच्चे हैं जितने कि प्रारंभमें थे। पारिभाषिक शब्दोंका ऐतिहासिक महत्त्व होता है और जब तक कोई विशेष कारण न हो इनमें परिवर्तन न करना चाहिए।

(८) जैसा मैंने कहा है, उच्च वैज्ञानिक साहित्यकी अभिवृद्धि केवल राष्ट्रीय भाषाके साहित्यमें की जानी चाहिए। सब प्रान्तीयोंको राष्ट्रभाषाकी 'विज्ञान-परिषद' का सदस्य

होना चाहिये। मैं सब प्रान्तोंके विज्ञान-प्रेमियोंको निमंत्रण देता हूँ कि वे प्रयागकी विज्ञान परिषद्के सदस्य बनें, और फिर बंगाली, हिन्दी, मराठी, गुजराती और द्राविड सबके सहयोगसे एक पारिभाषिक शब्दावली बने।

(९) जिस प्रकार आवश्यकता पड़नेपर अँग्रेजी विद्वान् जर्मन या फ्रेंचके अध्ययनमें गौरवकी हानि नहीं समझते हैं उसी प्रकार जिस किसी व्यक्तिको आवश्यक हो वह अपनी निकटवर्ती उर्दू भाषाका भी अध्ययन करके उसके साहित्यसे लाभ उठावे। इसमें न कोई द्वेषकी बात है और न विवादकी।

उपसंहार

खेद है कि कई आवश्यक कारणोंसे मुझे यह भाषण विस्तृत कर देना पड़ा है। मैंने जो कुछ यहाँ कहा है वह स्नेहकी भावनाओंसे ही। मैं जब कभी मुसलमान व्यक्तियों को भी हिन्दी और संस्कृत सीखनेके लिये निमंत्रित करता हूँ तो उसमें भी मेरी भावना कल्याण और स्नेहकी होती है। मुझे तो खुसरो, रहीम, इंशा और जायसीकी याद आ जाती है। मैं तो समझता हूँ कि दूरदर्शिता इसीमें है कि हम हिन्दीकी साहित्यिक रूपरेखाको विकृत न करते हुए इसके भाण्डारको समस्त ज्ञानविज्ञानसे भरपूर कर दें। जिस भाषाके प्रवाहको चन्द, सूर, तुलसी, रहीम, जायसी, देव, केशव और बिहारीने पद्यमें; इंशा, लल्लूलाल आदिने गद्यमें हमतक पहुँचाया; नानक, कबीर, मीरा, दादू, पलटूने जिसके द्वारा आत्मज्ञान और भक्तिका प्रचार किया; दयानन्दने भिन्न प्रान्तीय होते हुए भी जिस रूपरेखाकी हिन्दीको राष्ट्रीय रूप दिया और जिसे इस युगमें हरिश्चन्द्र, द्विवेदी, श्यामसुन्दरदास, प्रेमचन्द्र, रामचन्द्र शुक्ल आदिने पुष्ट किया है; जिस भाषामें शंकर, गुप्त, हरिऔधसे लेकर वर्मा-त्रय, प्रसाद, निराला, पन्त आदि अनेक कवितक अपना काव्य करते रहे हैं; जिसके वैज्ञानिक साहित्यको सुधाकर द्विवेदी, लक्ष्मीशंकर मिश्र, रामदास गौड़, महावीर प्रसाद श्रीवास्तव, ओंकारनाथ शर्मा, निहालकरण सेठी, फूलदेवसहाय वर्मा, अत्रिदेव गुप्त, मुकुन्दस्वरूप वर्मा, गोरखप्रसाद आदि लेखकोंने इस सीमातक पहुँचाया है, उस भाषाको हम विकृत होनेसे बचावें और परमात्मा हमें शक्ति दे कि हम उत्तरोत्तर उसकी अधिक सेवा कर सकें।

औद्योगिक उन्नतिका विशाल आयोजन

['भारतीय समाचारसे' उद्धृत]

वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान बोर्डकी सिफारिश पर भारत सरकारने विविध अनुसंधान योजनाओंके लिए २ लाखसे अधिक रुपयेकी मंजूरी मुख्यतः प्रयोगशालाओंमें सामग्री बढ़ाने, मशीनें मँगाने तथा अनुसंधान करने वालोंको वेतन देनेके लिए की गयी है। अलीपुरकी प्रयोगशालामें दो नये अनुसन्धानकर्त्ता रक्खे जायँगे, उसका विस्तार किया जायगा तथा जैसे-जैसे आवश्यकता होगी उसमें सामग्री बढ़ायी जायगी।

युद्धका प्रभाव भारत पर यह पड़ा कि विदेशोंसे आने वाली कितनी ही आवश्यक वस्तुओंका आयात रुक गया तथा कुछके आयातमें कमी हो गयी। इसके परिणाम-स्वरूप कई प्रधान व्यवसायोंको अपना काम चालू रखना कठिन हो गया। यह ऐसे समय हुआ, जब कि साम्राज्यके देशों तथा मित्रराष्ट्रों की माँग युद्ध-सामग्रीके लिए बढ़ गयी थी और भारतमें भी इस क्षेत्रकी आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिये अधिक औद्योगिक कार्य करनेकी ज़रूरत महसूस होने लगी थी।

इस परिस्थितिको ध्यानमें रखते हुए सरकारने बड़े परिमाण पर अनुसंधान-कार्य करानेका निश्चय किया है ताकि भारत एक तरफ तो युद्धमें अपनी योग्यताके अनुसार योग दे सके और दूसरी तरफ युद्धसे मिले अवसरोंसे लाभ उठाते हुए मौजूदा उद्योग-धंधोंका विस्तार तथा नये व्यवसायोंका क्षेत्र तैयार करनेमें प्रयत्नशील हो सके।

१ अप्रैल, १९४० को वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधानके बोर्डकी स्थापना की गयी और इस बोर्डमें सम्मिलित होनेके लिए देशके कितने ही प्रसिद्ध वैज्ञानिकों तथा

व्यवसायियोंकी स्वीकृति प्राप्त कर ली गयी। बोर्डका कार्य-क्षेत्र मुख्यतः सलाह देना है। यह सलाह प्रधानतः उन दिशाओं और उन आधारोंके सम्बन्धमें होती है जिनपर कि औद्योगिक अनुसंधान होना चाहिए। ऐसा करनेमें मुख्य उद्देश्य है भारतकी औद्योगिक उन्नतिका एकीकरण--विशेषकर उन व्यवसायोंका जिनकी महत्ता और सम्भावनाओं पर युद्धके कारण प्रकाश पड़ा है।

बोर्डके कार्य

बोर्डका कर्तव्य अनुसंधानके क्षेत्रमें पहलेसे लगी हुई वर्तमान संस्थाओंके कार्यका एकीकरण और निरीक्षण करना, सभी सूत्रोंसे प्राप्त प्रस्तावों पर विचार करना तथा विविध विषयों पर विवाद उठाना है। बोर्ड सरकारसे सिफारिश करता है और सरकार समय-समय पर निश्चित करती है कि किन आधारों पर औद्योगिक अनुसंधानका कार्य चलना चाहिए। बोर्ड सरकारसे यह भी सिफारिश करता है कि उसकी अधीनतामें जो अनुसंधानकर्ता हैं उन्हें अनुसंधानके लिए क्या विशेष विषय मिलने चाहिए तथा देशकी अन्य वैज्ञानिक तथा अनुसंधान करने वाली संस्थाओं को, जिनमें यूनिवर्सिटियोंकी प्रयागशालाएं भी सम्मिलित हैं, क्या विषय अनुसंधानके लिए दिये जाने चाहिए।

बोर्डकी रचना इस प्रकार की गयी है कि सभी प्रस्तावों पर केवल वैज्ञानिक ढंगसे ही नहीं, बल्कि व्यापारिक दृष्टि-कोणसे भी विचार हो सके ताकि प्रत्येक अवस्थामें वैज्ञानिक सम्भावनाओं और व्यावहारिक आवश्यकताओंके बीच सामंजस्य स्थापित होता रहे।

प्रथम बोर्ड इस प्रकार है—दीवान बहादुर सर रामस्वामी मुदालियर, भारत सरकारके वाणिज्य सदस्य (अध्यक्ष), चीफ कन्ट्रोलर आफ स्टोर्स, भारतीय स्टोर्स विभाग, (उपाध्यक्ष) और डा० जे० सी० घोष, डा० नजीर अहमद, डा० मेघनाद साहा, डा० एस० एस० भटनागर, सर एच० पी० मोदी, सर सैयद सुल्तान अहमद, श्री कस्तूर भाई लालभाई, लाला श्रीराम, श्री पी० एफ० जी० वारेन और डा० एन० एन० ला (सदस्यगण)। ताता कम्पनीके सर अर्देशर दलाल बोर्डमें बादमें सम्मिलित किये गये। पंजाब यूनिवर्सिटीकी रासायनिक प्रयोगशालाओंके प्रधान डा० भटनागरकी सेवायें सरकारको प्राप्त हो गयी हैं और उन्हें वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधानका डाइरेक्टर नियुक्त कर दिया गया है।

बोर्डके शासन सम्बन्धी कर्मचारियोंका सम्बन्ध वाणिज्य विभागसे रक्खा गया है। अध्यक्षको अधिकार दिया गया है कि वे यदि विशेष समस्याओं पर विचारके लिए आवश्यक समझें तो समय-समय पर आवश्यक वैज्ञानिकों वा व्यवसायियोंको बोर्डका सदस्य बना सकते है।

बोर्डके लिए ५,००,००० रुपयेकी रकम रक्खी गयी थी, जिसमेंसे लगभग १ लाख रुपये उसके प्रबन्ध और संचालनके लिए अलग कर दिये गये हैं। शेष रकमको अन्य कामोंमें लगाया जायगा, जिसमें सहायता और वर्जीफेकी रकमें भी सम्मिलित रहेंगी।

अनुसंधान सम्बन्धी २०० योजनाएँ

इरादा यह नहीं है कि बोर्डका सम्बन्ध केवल युद्ध विषयक कार्यों तक सीमित रहे, फिर भी अभी इसकी दो सालके लिए ही मंजूरी हुई है। सरकार कई ऐसी अनुसंधान योजनाओंको स्वीकार कर चुकी है, जिनका सम्बन्ध गैर-सैनिक व्यवसायोंसे है। साथ ही, युद्धका उद्देश्य रखने वाली कई योजनाओं पर भी अलग-अलग विभागोंमें विचार हो रहा है।

वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधानके डाइरेक्टरके अनुरोध पर उनके पास देशको प्रमुख यूनिवर्सिटियों, वैज्ञानिक संस्थाओं तथा व्यक्तियोंके निजी अनुसन्धान कार्यसे सम्बन्धित लगभग २०० योजनाएँ प्राप्त हुई हैं। योजनाओं पर बोर्डकी जूनमें होने वाली एक बैठकमें विचार हुआ। इनमेंसे ऐसी योजनाओंको निकाल दिया गया जिनकी उपयोगिता विशुद्ध शास्त्रीय थी और जिन्हें औद्योगिक क्षेत्रमें लागू नहीं किया जा सकता था।

यह भी ज्ञात हुआ कि कितने ही अनुसन्धानकर्ता एकसे ही कामोंमें अपनी शक्ति और समय नष्ट कर रहे हैं। उदाहरणार्थ एकसे अधिक संस्थाएँ पेट्रोल या तेलको शुद्ध करने और उनमेंसे अनेक वस्तुएँ निकालनेकी समस्याओं पर अनुसन्धान कर रही हैं। इन संस्थाओंको यह भी पता नहीं है कि बर्मा आयल कम्पनी जैसी ख्याति प्राप्त फर्मकी सहायतासे पंजाब यूनिवर्सिटीकी प्रयोगशालामें इस विषयमें कार्य हो रहा है।

दोहरा काम न हो, इस विचारसे एक ही विषयसे सम्बन्ध रखने वाली योजनाओं पर विचार करना अनावश्यक समझा गया और आखिर औद्योगिक महत्वकी योजनाओंको चुन कर उन्हें महत्वके क्रमसे सरकारके आगे विचारार्थ उपस्थित किया गया। एक उप-समितिने १२ ऐसी योजनाएँ चुन कर सरकारसे सिफारिश की है कि उन्हें उचित सहायता दी जाय।

समितिने यह भी सिफारिश की कि अनुसन्धान कार्यका एकीकरण एक-एक अनुसन्धान कमेटीकी देख-रेखमें होना चाहिए। इस कमेटीमें ऐसे वैज्ञानिक रहें जिन्हें अपने निरीक्षणमें दी जाने वाली अनुसन्धान योजनाओंमें विशेष दिलचस्पी हो। कमेटीने यह भी सिफारिश की कि आर्थिक सहायता उस संस्था या यूनिवर्सिटीकी मार्फत दी जाय, जिनसे उन विशेष वैज्ञानिकों या अनुसन्धानकर्ताओंका सम्बन्ध हो।

तेलसे रासायनिक पदार्थोंकी निकासी

सरकारने निम्न योजनाओंको स्वीकार किया:—

पहली योजना वनस्पति तेल कमेटीकी थी, जिसकी रचना वनस्पति तेलकी औद्योगिक उपयोगिता खोज निकालनेके लिए की गयी थी। भारतसे तेलहनका निर्यात रुक गया है, क्योंकि एक तो माल भेजनेके लिए यातायातके साधन नहीं हैं और दूसरे यूरोपके बाजार भी नहीं रह गये हैं। यह तेलहन विदेशोंको जाकर फिर वहाँसे जलाने वाले तेल तथा कुछ अन्य पदार्थोंके रूपमें आया करते थे। बोर्डने अनुभव किया कि भारतीय व्यवसायका हित इसमें है कि इन पदार्थोंको बाहरसे मँगानेके स्थान पर उन्हें यहीं तैयार किया जाय।

इस योजनाके अन्तर्गत वनस्पति तेलसे जलाने वाले तेल तथा अन्य रासायनिक पदार्थ तैयार किये जायँगे। यह भी विचार किया गया कि तेलहनसे कुछ तेजाब भी बनाये जायँ।

इस कार्यमें इन वैज्ञानिकोंकी दिलचस्पी है—डा० वेंकटराम, केमिकल टेक्नॉलॉजी विभाग, बम्बई, डा० गाडबोले, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी, डा० कुरेशी, हैदराबाद यूनिवर्सिटी और डा० के० नायक। अनुसन्धान कई केन्द्रोंमें चलता रहेगा, किन्तु उसका एकीकरण डा० भटनागर, डा० गोस्वामी और डा० नारियलवालाकी एक अनुसन्धान कमेटी करेगी। इस कार्यके लिए २०,००० रुपयेकी सिफारिश की गयी और इसे भारत सरकारने स्वीकार भी कर लिया। इस रकमको अनुसन्धान-कार्यमें लगे हुए वैज्ञानिकोंके बीच वितरित कर दिया जायगा।

नकली रेशमका निर्माण

नकली रेशम और 'रेयन' की माँग इधर बहुत बढ़ गयी है और इनके निर्माणका प्रश्न भी बहुत महत्व ग्रहण करता जा रहा है। इस सम्बन्धमें अनुसंधान भी काफी किये जा चुके हैं। यह अनुभव किया जा रहा है कि अब वह स्थिति आ गयी है, जिसमें इन वस्तुओंकी आर्थिक और औद्योगिक सम्भावनाओंके परीक्षणके लिये मशीनों द्वारा बड़े परिमाण पर पहली बार उद्योग किया जाय। इससे यह प्रकट हो जायगा कि लागतमें कमी कहाँ तक हो सकती है और कहाँ तक व्यवसायी भविष्यमें इस उद्योगसे लाभ उठा सकते हैं।

भारतीय केन्द्रीय कपास कमेटीने कपास सम्बन्धी इसी प्रकारके अनुसन्धानके लिए ५० हजार रुपये मंजूर किये थी। बोर्डने सिफारिश की है ५० हजार रुपये इसी कमेटीको और दिये जायँ ताकि वह 'रेयन' के लिए भी मशीनोंसे उत्पादनका प्रारम्भिक प्रयोग कर सके। इस सिफारिशको भी सरकारने स्वीकार कर लिया है। मशीन इत्यादिकी व्यवस्था बम्बईमें भारतीय केन्द्रीय कपास कमेटीकी प्रयोगशालामें की जायगी और मि० नजीर अहमदकी देख-रेखमें यह काम होगा। 'रेयन' बनानेका कार्य सेल्यूलोज अनुसन्धान कमेटीकी देख-रेखमें होगा।

दवाओंके सम्बन्धमें अनुसंधान

दवाओंके अनुसन्धानके विषयमें भी एक कमेटी नियुक्त की गयी। इस बातकी आवश्यकताका अनुभव किया गया कि स्ट्रिक्निया (बचनाग), थिमोल (अजवाइनका अर्क) जैसी दवाओं पर ज़ोरोंसे अनुसन्धान कार्य होना चाहिए। इस विषयमें अपने अनुसन्धान कार्यके लिए डा० जे० एन० राय काफी ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। इसलिये दवाओंके अनुसंधानका कार्य आपकी अध्यक्षतामें तथा अन्य कई ख्याति प्राप्त वैज्ञानिकोंके सहयोगसे अलीपुरमें होगा।

डा० एस० सिद्दीकी, तिब्बिया कालेज, दिल्लीमें इस

विषयमें अनुसंधान कर रहे हैं। इसलिए डा० जे० एन० रायकी सहायताके लिए आपकी भी नियुक्ति की गयी। इस विषयमें इंडियन इंस्टीट्यूट आफ साइंसके डा० गुहा, डा० पी० सी० मित्र, श्री एम० एल० श्राफ और अलीपुर यूनिवर्सिटीके मि० आर० एच० सिद्दीकी इत्यादि वैज्ञानिकोंका भी सहयोग प्राप्त किया जायगा। कार्य कई संस्थाओंके बीच बाँट दिया जायगा और प्रत्येक संस्थासे किसी एक दवा पर कार्य करनेको कहा जायगा।

वैज्ञानिक औजारोंका निर्माण

बोर्डकी सब-कमेटीने वैज्ञानिक औजार कमेटीके लिए ४० हज़ार रुपयेकी सिफारिश की थी। जब यह प्रश्न बोर्डके सामने आया तो बहुमत इस रकमकी मंजूरीके विरुद्ध था। यह ज़रूरत महसूस की गयी कि रकम मंजूर करनेसे पहले योजनाके विषयमें कुछ और जानकारी प्राप्त कर लेना आवश्यक है। सर सी० वी० रमनने काँच बनानेके लिए कुछ तजवीजें पेश की थीं। इस सम्बन्धमें बोर्डने मत किया कि इस विषय पर और भी अनुसन्धान होनेकी आवश्यकता है और सर सी० वी० रमनसे अनुरोध किया कि वे अनुसन्धानके सम्बन्धमें और भी बातोंको उपस्थित करें।

बोर्डकी कमेटीके अध्यक्ष डा० मेघनाद साहाको ७००० रुपया हवा खींचने और भरनेके पम्प बनानेके विषयमें प्रयोग करनेके दिये तथा बँगलौर इन्स्टीट्यूटके प्रो० एस्टनको भी ३,००० रुपये इसी कार्यके लिए दिये। केवल यही एक योजना ऐसी थी, जिसके लिए पूरी रकमके विषय में न तो बोर्डने सिफारिश ही की और न सरकार होने उसे स्वीकार किया। परन्तु योजनाको अभी बिलकुल अस्वीकृत नहीं कर दिया गया है और इस बातकी प्रतीक्षा की जा रही है कि इस सम्बन्धमें और भी बातें ज्ञात हों।

गंधकका उत्पादन

गंधकका उत्पादन सभी व्यवसायोंके लिए महत्त्व-पूर्ण है। गंधकके उत्पादनको क्रियाएँ इतनी सर्वविदित हैं कि उनके सम्बन्धमें अनुसन्धानकी आवश्यकता नहीं है। भूगर्भ विभागके डायरेक्टर जनरलकी तजवीज है कि उन्हें देशके जिन भागोंसे गंधक निकलनेकी आशा है, वहाँ जमीनसे गंधक निकालनेके प्रयत्न किये जायँ। इस कार्यके लिए उन्होंने १० हजार रुपये दिये जानेकी तजवीज पेश की है।

यह रकम भूगर्भ सम्बन्धी जाँचके लिए निकलने वाले दलोंके बीच बाँट दी जायगी। ये दल कुएँ खोदकर गंधक निकालनेका प्रयत्न करेंगे और जिन स्थानोंमें गंधक मिलनेका विश्वास हो चुका है वहाँ आगेकी कार्यवाही प्रारम्भ कर देंगे। इस सम्बन्धमें बिलोचिस्तानकी भूमिसे विशेष आशाएँ हैं। भूगर्भ विभागकी तैयारियाँ होते ही यह कार्य प्रारम्भ कर दिया जायगा।

शीरेसे रासायनिक पदार्थ

शीरे सम्बन्धी कमेटीके लिए बोर्डने २० हजार रुपये की सिफारिश की थी और इस सिफारिशको सरकारने स्वीकार भी कर लिया है। परन्तु शीरेके अनुसन्धानका मुख्य उद्देश्य मशीन चलानेका तेल निकालना नहीं है, क्योंकि यह कार्य तो औद्योगिक ढङ्ग पर देशमें आरंभ भी हो गया है। अधिक महत्त्व-पूर्ण समस्या शीरेसे कतिपय खनिज पदार्थों की प्राप्ति है, विशेषकर पोटेशियम। अन्य रासायनिक पदार्थों की प्राप्तिके लिए भी उद्योग किया जा सकता है।

कमेटी इस प्रश्नके रासायनिक क्षेत्रमें कार्य आरम्भ करेगी। डा० गुहा इस विषयमें प्रारंभिक कार्य पहिले ही से कर चुके हैं, उनकी और मैसूर राज्यके श्री श्रीनिवासकी खोजों को अनुसंधान करते समय सम्मिलित कर लिया जायगा, ताकि कार्य खूब जोरोंसे आगे बढ़ सके।

रासायनिक खादोंकी कमी

रासायनिक खाद कमेटी भारतमें फासफोरसके तत्त्वोंसे बने खादोंकी कमी पर विचार करनेके लिए नियुक्ति की गयी। इस विषय पर बँङ्गलोर टेक्निकल इन्स्टीट्यूटके डाइरेक्टर डा० जे० सी० घोष, डा० भटनागर और डा० फाक्स अनुसंधान कार्य कर रहे हैं। इन तीनों ही वैज्ञानिकोंकी दिलचस्पी खादके लिए फासफोरसके उपयोगके विषयमें काफी अरसेसे है।

यह आशा की जाती है कि भूगर्भ विभागके डाइरेक्टर जनरल डा० फाक्स द्वारा बताये गये देशके विविध भागों और त्रिचनापलीमें फासफोरसके तत्त्वोंसे मिश्रित खाद तैयार की जायगी।

टेलीफोनके हिस्से बनानेके लिए-खलीसे निकले पदार्थों-का उपयोग किये जानेकी समस्यापर विचार करनेके लिए एक विशेष कमेटी बनायी गयी। इसके लिए राल और बैकेलाइटकी उपयोगिता पहले ही प्रकट हो चुकी है।

अखबारी कागज़

अखबारी कागज़को छोड़ कर अन्य सभी प्रकारके कागज भारतमें बनाये जाते हैं। अखबारी कागज़ बनानेके लिए काश्मीरमें देवदारके जंगलों तथा युक्त-प्रान्त और हिमालयमें १० हजार फुटकी ऊँचाईपर होने वाले वृक्षोंसे काम लिया जा सकता है। कहा जाता है कि इस प्रकारकी मशीनें मिल सकती हैं जिनसे किसी भी तरहकी लकड़ीको लुगदीका रूप दिया जा सकता है और लुगदीसे ही अखबारी कागज़ बनता है।

प्रारम्भिक जाँचका कार्य समाप्त करनेके लिए वन्य अनुसन्धानशालाके डा० भार्गव आवश्यक सामग्री एकत्रित कर रहे हैं और मेजर हावर्डकी सहायतासे जाँचका कार्य चल रहा है।

विभिन्न प्रान्तोंके जंगलात विभागके प्रधान अफसरोंका सहयोग इस विषयमें प्राप्त किया जा रहा है और उनसे जानकारी प्राप्त की जा रही है कि और भी अन्य किन स्थानों पर अखबारी कागज़के लिए लकड़ी मिल सकती है।

इन बड़ी योजनाओंके अलावा बोर्डने कई छोटी योजनाओंकी सिफारिश भी की है, जिनके विषयमें अभी और सामग्री एकत्र करनेकी आवश्यकता है। इनमें एक काँचके व्यवसायके सम्बन्धमें है। इस कमेटीके अध्यक्ष सर सी० वी० रमन होंगे, यदि इन्होंने यह पद-ग्रहण करना स्वीकार किया। कमेटीकी स्थापना काँचके उद्योग तथा उससे सम्बन्ध रखने वाले अन्य व्यवसायोंके विषयमें जानकारी प्राप्त करनेके लिये की गयी है। इसके लिए २,००० रुपयेकी रकम मंजूर की गयी है।

वनस्पति रङ्ग तैयार करनेके विषयमें भी एक कमेटी नियुक्त की गयी है, जिसका उद्देश्य अनुसंधानके लिए कार्यक्रम तैयार करना है। इस कमेटीके अध्यक्ष डा० कृष्ण तथा सदस्य बम्बई इन्स्टीट्यूटके डा० वेंकटरमन हैं और इसके लिए १,५०० रुपयेकी मंजूरी की गयी है। बोर्डने इस कमेटीकी सदस्यताके लिए डा० एच० के० सेन, डा० फारेस्टर और मुजफ्फरके नामोंकी सिफारिश की है। बादमें सरकारने कमेटीके सदस्योंमें भारतीय व्यापार-मंडलके अध्यक्ष श्री ए० एल० अहुजाको भी नियुक्त कर दिया।

डा० मैकेंजी टेलर पंजाबकी भूमिसे सोडियम कारबोनेट और कास्टिक सोडा तैयार करनेकी योजनापर अनुसन्धान कर रहे हैं और उन्हें २,००० रुपयेकी सहायता दी गयी है। डा० घोष सोडियम साइनाइड तैयार करनेके विषयमें अनुसन्धान कर रहे हैं और उन्हें ५०० रुपयेकी सहायता मिलेगी।

सरकारने निश्चय किया कि बोर्डकी बैठक भारत सरकारकी राजधानियों दिल्ली और शिमला ही में नहीं होगी, बल्कि अन्य औद्योगिक केन्द्रोंमें भी हुआ करेगी। इससे आशा की जाती है कि अनुसन्धान करने वालों तथा व्यवसायियोंके बीच परस्पर सम्पर्क बढ़ सकेगा।

कागज़के ठेके

कागज़ोंके ठेके साधारणतया जनवरी तक पूरे हो जाते हैं। पर उन्हें मार्च तक स्थगित करना पड़ा क्योंकि मिलोंने यह कठिनाई प्रकट की कि जनवरी तक वे ठीक-ठीक मूल्य न बता सकेंगी। कागज़के लिए केवल भारतमें ही टेंडर माँगे गए थे और भारतीय मिलोंने पर्याप्त तत्परताके साथ टेण्डर भर कर भेजे।

टेण्डरमें निर्धारित कागज़की दर ३० सितम्बर १९४० तकके लिए लागू समझी जाती थी। उसके बाद उचित कारण होने पर उसमें संशोधन किया जा सकता था।

सब प्रकारके कागज़की दरमें वृद्धि हो गयी। १९३९-४० में प्रति टन ४११ रुपयोंका भाव था जो कि बढ़ कर ५३३ रुपये प्रति टन हो गया। इस प्रकार प्रायः ३० प्रतिशतकी वृद्धि हो गयी।

लेकिन ब्रिटेनमें प्रचलित कागज़ की दरसे भारतीय दर कम रही। टेंडरोंको स्वीकार करके १९४०-४१ के लिए आवश्यक ९,६३६ टन कागज़ की माँगको विभिन्न मिलोंमें विभाजित कर दिया गया।

कार्बन कागज, टाइप राइटरोंके फीते, स्टेन्सिल कागज, स्याही, मुहर लगाने की लाख, चाकू, छुरी वग़ैरह तथा १९४०-४१ में आवश्यक अन्य छोटी-छोटी वस्तुओंके ठेके भी वर्ष भरके लिए भारतीय कम्पनियोंको दिये गये।

भारतके कल-कारखाने और युद्ध

जब युद्ध आरम्भ हुआ तो भारतके पास दो मुख्य साधन थे। एक तो आदमियों की प्रचुर संख्या और दूसरा कच्चे मालका विशाल भंडार। विदेशोंको ब्राडकास्ट करते हुए रसद सदस्य माननीय सर मुहम्मद जफरुल्ला खां ने कहा था कि "आदमियों और सामान की कोई कमी नहीं है। उन्हें ले जानेके लिए जितने जहाज मिल सकेंगे उतने ही अधिक परिणाममें उन्हें भेजा जा सकेगा।" अनेक प्रकारकी युद्ध-सामग्री अब भारतमें ही बनायी जाने लगी है।

आरम्भमें फौजी सामान बनाने वाले भारतके कारखाने थे तो छोटे परन्तु थे अत्यन्त व्यवस्थित। युद्धके पूर्व सावधानीके साथ योजनाएँ बना लेनेके कारण जो सामान यहाँ बनता था उसके परिमाणमें प्रतिशत वृद्धि हो गयी है। इतना ही नहीं, नये प्रकारका सामान भी शीघ्रता और सफलताके साथ बनना आरम्भ हो गया है।

असैनिक कारखानोंमें भी युद्ध-सामग्री बनानेका प्रबन्ध कर लेनेसे उत्पादन बराबर बढ़ता जा रहा है। पहिले जो चीजें विदेशोंसे मँगवाई जाती थीं वे अब देशमें ही बनने लगी हैं। भारतको इस समय जितने गोला-बारूद, वर्दी आदि सैन्य-सज्जा की आवश्यकता है उससे कहीं अधिक आजकल वह बना रहा है। सम्राट्की सरकारकी आवश्यकताओंके कारण भारतके कारखाने अपने पूरे वेगसे ही नहीं चल रहे हैं वरन् उन्होंने विशाल उत्पादनके लिए अपना विस्तार भी कर लिया है।

गोले-गोलियाँ बाहर भेजे गए

युद्ध आरम्भ होनेके समयसे बन्दूकों आदि की १० करोड़ गोलियाँ और तोपोंके विभिन्न प्रकारके प्रायः ४ लाख गोले देशसे बाहर भेजे जा चुके हैं। बहुतसे विस्फोटक पदार्थ भी भेजे गये हैं। इनमें १०० टन बिना धुएँको बारूद और २,५०,००० धड़ाकेसे फटने वाले गोले भी सम्मिलित हैं। टैंक और सशस्त्र मोटर गाड़ियाँ बनानेके लिए रेलवेके एक कारखानेको ठीक किया जा रहा है सशस्त्र गाड़ियाँ बनानेकी बहुत-सी कठिनाइयाँ दूर की जा चुकी हैं।

सशस्त्र मोटरों पर चढ़ायी जाने वाली फौलादी चादरें पहिले भारतमें नहीं बनती थीं परन्तु अनेक परीक्षणोंके पश्चात् अब उनके बनानेमें सफलता हो गयी है और वह दिन दूर नहीं जब वे प्रतिमास सैकड़ों टनके परिमाणमें बनने लगेंगी। विशेषज्ञोंने सशस्त्र मोटरोंके नीचेका एक अच्छा ढाँचा पसन्द कर लिया है। ऐसे ढाँचे आवश्यकतानुसार विदेशोंसे मँगवाये जा रहे हैं। भारतकी अपनी आवश्यकताओंके लिए आगामी वर्षमें प्रायः ३,००० सशस्त्र मोटरें बनानेकी योजना तैयार करती है। इन मोटरोंका बनना हालमें ही आरम्भ हो जाएगा।

टैंक नाशक राइफिलों की अभ्यासी गोलियाँ बनाने की मशीन लगानेका प्रबन्ध किया जा रहा है। छतरियाँ (पैराशूट) बनानेकी समस्या की भी छान-बीन हो रही है। कारखानोंमें राइफिलें, मशीनगनें, बन्दूकोंकी गोलियाँ और भारी-भारी ६ इन्चो तापें ढेर-की-ढेर बनायी जा रही हैं।

इस्पातके उत्पादनमें वृद्धि

१९१३ में इस्पात और लोहेका कुल उत्पादन केवल २,६७,००० टन हुआ था। १९३९-४० में १८,३८,००० टन कच्चा लोहा और १०,६६,००० टन इस्पातका उत्पादन हुआ। १९३८-३९ की अपेक्षा १९३९-४० में कच्चे लोहेके उत्पादनमें प्रायः ३,००,००० टन की और इस्पातमें १,००,००० टनसे अधिककी वृद्धि हो गयी है। कहना न होगा कि यह वृद्धि अधिकांशमें युद्धके कारण हो हुई है।

केवल एक ही कारखाना सेनाके लिए विभिन्न प्रकारके ५३,०० औज़ार प्रति मास बना रहा है। इसके अतिरिक्त ढाँचे, लोहेके लट्टे, पलस्तर की हुयी चादरें तथा गोलोंके खोल बनानेके लिए विशेष प्रकार की छड़ें भी इस कारखानेमें बन रही हैं। भारतीय सैनिकोंके शिरस्त्राण बनानेके लिए विशेष प्रकारके इस्पातकी चादरें तैयार करनेका भी प्रबन्ध हो रहा है। इसके अतिरिक्त कवच भेदी गोले गोलियाँ बनानेका इस्पात, मशीनगनोंके लिए लचीला इस्पात तथा गहरी चोट करने वाला मशीनगन की गोलियोंका इस्पात भी बनाया जा रहा है।

व्यापारी जहाजोंके लिए बिजलीके तार भी बनाये जा रहे हैं। भारत तथा निकट पूर्व स्थित स्थल सेना, शाही वायुसेना और फौजी कारखानोंके लिये तारके काम आने

वाली कीलें छड़ें आदि, मिलोंके इस्पाती बेलन जो अभी तक अमरीका तथा यूरोपसे मँगवाये जाते थे और विशेष प्रकारकी टीनकी चादरें भी यहीं बनने लगी हैं।

इस्पातके कारखानोंका उत्पादन

हालमें ही बताया गया था कि कई महीने आगेसे ही आ जाने वाले आर्डरोंके कारण इस्पातके कारखाने अपनी पूरी शक्तिसे चल रहे हैं, और अब विशेष प्रकारके इस्पातों को छोड़ कर इतने अधिक परिमाणमें इस्पात तैयार कर रहे हैं कि भारतीय सेनाओंकी आवश्यकता पूरी करके भी काफी बचत हो जाती है। सरकारी तथा गैर सरकारी दोनों प्रकारके कारखानोंमें इस्पातकी वस्तुयें, इंजीनियरिङ्ग-का सामान तथा बहुत प्रकारका शस्त्रास्त्र और गोली बारूद बनाया जा रहा है।

हालमें ही भारतको ३६,००,००० रुपयोंके छोटे-छोटे जंगी जहाज़ बनानेका भी एक आर्डर मिला है। भारतीय जहाज़ी कारखानोंमें शक्तिशाली और सशस्त्र जहाज बनाने-का काम आरम्भ हो चुका है। ऐसे जहाजोंके बनानेके लिये भारतमें जितनी खिसकने बनी हुई हैं आजकल उनमेंसे एक भी खाली नहीं है।

भारतमें वायुयान निर्माण करनेके लिये कारखाने स्थापित करनेकी योजना भी रद्द नहीं की गयी है। इसके विपरीत-सरकारका विचार है कि आवश्यक सामग्री तथा मशीनोंका प्रबन्ध होते ही उसके अनुसार कार्य आरम्भ कर दिया जाय। वायुयानोंमें काम आने वाले पेट्रोलको सुरक्षित करने तथा चिकनाई लाने वाले तैलोंके तैयार करनेका प्रबन्ध किया गया है।

कपड़ोंका निर्माण

सैनिकोंके लिये शस्त्रोंके अतिरिक्त वर्दियों, जूतों आदिका भी प्रबन्ध करना पड़ता है। अभी तक भारतसे बूट जूतोंके १३,००,००० जोड़े, १५,००,००० कम्बल १,००,००,००० गज से अधिक खाकी कपड़ा १२,००,००० सूती कमीजें और मोजोंके २५,००,००० जोड़े बाहर भेजे जा चुके हैं।

युद्धसे पूर्व जितनी सैनिक वर्दियाँ और अन्य कपड़े तैयार होते थे आजकल उनसे १० गुने अधिक तैयार हो रहे हैं। आगे इससे भी दुगने बनानेकी योजना है।

ज़हरीली गैसोंसे रक्षा करने वाले यन्त्रोंमें नारियलकी जली हुई नरेली लगाई जाती है। मैसूर और त्रावनकोरसे यह प्रचुर परिमाणमें मिल रही है। घावों पर बाँधनेके लिये पट्टियाँ, रुई तथा अन्य सामान, मसहरियाँ, बिजलीकी सेलें और बैटरियाँ, ब्रश, तेजाब, औषधियाँ, साबुन, कोयला और कोक, सीमेण्ट, एसबेसटस, सीमेण्टकी पट्टियाँ, सिगरेटें, खाने-पीनेकी चीजें, बिस्कुट, चाय शक्कर, सूती और ऊनी कपड़े, रुई और जूटको मिलाकर बने हुए रेशे, सूती जाली, सूत और अन्य इंजीनियरिंगके सामानकी विदेशोंसे माँग आई है। इनमेंसे बहुत सी वस्तुएँ भेजी जा चुकी हैं।

बिजलीके पंखे, टेलीफोनका सामान, कीलें, बाँधनेका तार, इस्पातकी कड़ियाँ, हल्की इस्पाती चादरें, इस्पातके अन्य सामान तथा सड़क बनानेकी मशीनें आदि भारतसे मिश्रको भेजी जा चुकी हैं।

साम्राज्यके देश भारतसे कमीजोंका खाकी कपड़ा, रेल की पटरियाँ और स्लीपर, इस्पातके शरणगृह, तम्बू, सैनिक अस्पतालके अन्य सामान, सूती कपड़े तथा इंजीनियरिङ्गके सामान मँगवा रहे हैं।

बंगाल और बिहारकी सरकारोंसे ४,००,००० रुपयेकी लागतसे पटसन उत्पन्न करनेकी एक योजनाके अमलमें लानेके लिये कहा गया है। भारत स्थित सेनाको बाहरसे आने वाली वस्तुओं पर निर्भर न रहना पड़े, इस उद्देश्यसे डिब्बोंमें खाद्य पदार्थ बन्द करनेके उद्योगकी जाँच हो रही है। यह योजना अभी दूध पनीर और मछली तक ही सीमित रहेगी।

अल्यूमीनियमकी एक कम्पनी दिसम्बर १९४० से चालू हो जायगी। विदेशोंसे आने वाले अल्यूमीनियमको गलानेका एक कारखाना भी १९४१ के जाड़ेमें बनकर तैयार हो जायगा। सरकारने उष्ण देशोंमें रङ्ग उड़ानेका विशेष मसाला बनानेके लिए सरकारी कारखाना खोलनेकी स्वीकृति दे दी है। जूतोंकी एड़ियों और पंजोंमें लगानेके लिए लोहेके नाल भी देशमें बनने लगे हैं।

नवीन प्रकारका कपड़ा

आवश्यकतानुसार एक वस्तुके अभावमें दूसरी वस्तुका प्रयोग करनेके प्रयत्न हो रहे हैं। उदाहरणके लिए कहीं-कहीं सूती किरमिच और सूत तथा जूटके मिले हुए कपड़ों-

का पटसनके स्थान पर प्रयोग हो रहा है। ३००,००,०० गज़से अधिक सूत और जूटको मिलाकर बनाया हुआ कपड़ा ब्रिटेनको भेजा जा चुका है। इस प्रकारका नया कपड़ा हालमें ही भारतने चलाया है। रक्षा-विभागके आदेशसे और रसद-विभाग की सहायतासे यह कपड़ा भारतमें बनाया गया है।

मैसूर सरकारने नारियलकी नरेलीसे बना हुआ नये प्रकारका बटन देनेका प्रस्ताव किया हैं। देशी मसालोंसे खाकी रंग बनानेके लिए कारखाने वालोंको प्रोत्साहित किया जा रहा है। शीशेके स्थान पर कोई अन्य वस्तु तथा साधारण रस्सियोंके स्थान पर सीसल और मनीला पटसनकी रस्सियाँ बनानेका अनुसन्धान हो रहा है। दवाके काममें मोमके स्थान पर हाइड्रोजन मिला हुआ तेल प्रयोगमें लाया जा रहा है। देशकी खानोंमें बहुत सा एण्टीमनी भी निकल आया है। कुछ लोगोंको इसे साफ करनेके कारखाने खोलनेके लिए प्रोत्साहित किया गया है और आशा है कि निकट भविष्यमें ही इतना एण्टीमनी तैयार होने लगेगा जो देशकी आवश्यकताके लिए काफी होगा। बम्बईकी एक फर्म इस दिशामें बहुत कुछ कार्य कर चुकी है।

देशमें बहुत-सी दवाइयोंका उत्पादन बढ़ जानेके कारण अब उनका विदेशोंसे मँगाना बन्द कर दिया गया है। यह उत्पादन और भी बढ़ानेके लिए नए कारखाने खोले जा रहे हैं। क्लोरोफार्म, कैलसियम लेक्टेट, कार्बोलिक ऐसिड आदि दवाइयाँ तथा रासायनिक द्रव्य भी बनाये जा रहे हैं।

कोयलेसे बनी बेनज़ीन

देशमें ग्लिसरीन और ब्लीचिंग पाउडर (रंग उड़ानेका मसाला) बनानेका एक कारखाना है। कृत्रिम अमोनियासे शोरेका तेजाब बनानेका भी एक कारखाना चल रहा है। तातानगरमें कोयलेसे बेनज़ीन और टूलीन बनानेके लिए एक बड़ी मशीन लगायी जा रही है।

मद्रास, बम्बई और कलकत्तेके कई कारखाने लपेटनेका प्रायः ३४,००,००० गज कागज तैयार कर रहे हैं। यह कागज पानीसे खराब नहीं होता है।

गत कुछ वर्षोंमें बिजलीका सामान बनानेमें भी अच्छी उन्नति हुई है। हिन्दुस्तानी कारखानोंमें आजकल बिजलीके मोटर, हवाई आक्रमणके सामान, बैटरियाँ और सूखी सेलें, लम्प, अंगीठियाँ, पंखे, रिफ्लेक्टर, इन्सुलेटर, बल्ब, अस्पताली औज़ार, रबरके बटन, डिब्बोंमें बन्द खाने पीनेकी वस्तुयें, ट्यूब और टायर, गरम पानीकी बोतलें, रबरकी बहुत सी वस्तुयें, आगके पम्प, टाइपराइटर, सीनेकी मशीनें, घोड़ोंकी ज़ीनें, छुरी, काँटे, चम्मच, दस्ताने आदि बनाये जा रहे हैं।

भारतीय मिलोंमें ४०० प्रकारका सूती और ऊनी माल बन रहा हैं।

युद्धके लिए नीचे लिखी महत्वपूर्ण वस्तुयें देशमें बन रही हैं :—

रुई, श्वांस-यन्त्रोंमें लगाने वाली लचीली टुइल, गैस रोकने वाली नलियाँ, श्वांस यन्त्रोंकी खाकी खोलें, सूती किरमिच की बरसाती, छपे हुए सूती कपड़े, मलमल, चादरें और कमीज़ोंके कपड़े, सिपाहियोंकी पानीकी बोतलें रखनेको चगूलें, सूत और जूटके मिले हुए कपड़े, आगमें न जलने वाले कपड़े, मसहरियाँ कमीज़ोंके खाकी कपड़े, श्वांस यन्त्रोंके हल्के खाकी कपड़े, भूरा हल्का कपड़ा, भारी किरमिच, पट्टियोंकी खाकी जीन, थैलोंके लिये खाकी कपड़ा, शाही वायुसेनाके लिए नीला कपड़ा, चालकोंकी कमीज़ोंका नीला भूरा कपड़ा, ऊँचे-दर्जेका खाकी कपड़ा।

ऊनी उद्योग पर सरकारी आधिपत्य

देशके समस्त ऊनी उद्योगको सरकारने वर्दियाँ, कंबल आदि बनानेके लिए अपने हाथमें ले लिया है। हिन्दुस्तान संसारमें तिलहन उत्पादनके लिए प्रसिद्ध है। इससे युद्धकी आवश्यक सामग्रियाँ बनायी जा रही हैं। सन् १९१४ में पोर्टलैंड सीमेण्ट छोटे परिणाम पर बनता था। परन्तु अब प्रतिवर्ष उसका उत्पादन १०,००,००० टनसे अधिकका हो रहा है।

युद्धसे पूर्व भारतसे १,८०,००,००० पौंड रबरका निर्यात होता था। अब यह बहुत बढ़ गया है। प्रतिवर्ष १०,००००० टनसे अधिक मेंगनीज़ बाहर भेजा जाता है और भारतीय चाय तो सारा संसार पीता है। चमड़ा और खालें, लाख, नारियल की जटा, अभ्रक और सन भी भारतमें पैदा होते हैं। लकड़ी तथा अन्य वन्य उत्पादन भी प्रचुरतासे होता है।

मध्य पूर्वसे युद्धके लिए लकड़ीके कई आर्डर प्राप्त हो

चुके हैं। फलतः लकड़ी चीरने वाले मिल काममें लगे हुए हैं। चायके अतिरिक्त जौ और मसूर भी ब्रिटेनको भेजी जा रही है हैं।

भारतमें वारनिशें और रंग भी बनाए जा रहे हैं। परन्तु इनका कच्चा माल बाहरसे मँगाना पड़ता है। ब्रिटेनके यातायात विभागकी आवश्यकताके अनुरूप सड़क बनानेका कोलतार, बर्तन आदि क्रेन और मशीनोंके साधारण पुर्ज़े, चिकनाई लाने वाली वस्तुयें और गन्धकका तेजाब भी भारतमें बनाया जा रहा है। युद्धके पूर्व जिन कारखानोंको खोलनेकी योजना की गयी थी वे अब रेलका सामान, कँटीला तार, लोहेकी चादरें, कागज़, ग्लिसीरन, हरीकेन लालटेनें और कृषिके यन्त्र बना रहे हैं।

भारतमें निकलने वाले खनिज पदार्थों, धातुओं, कच्ची धातुओं आदिकी संख्या ४० से ऊपर है। इनमें इस्पात, कोयला, कच्चा लोहा, कच्चा मैंगनीज़, सोना अभ्रक, मिट्टी-तेल, नमक और ताँबा अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। प्रत्येकके वार्षिक उत्पादनका मूल्य ४०,००,००० रुपयेसे अधिक होता है।

इसके बाद साल्टपीटर, क्रोमाइट, मिट्टियाँ, क्योना-इट, इल्मेनाइट, मेगनेसाइट, फेरोमेंगनीज, जिप्सम, मोने-जाइट और स्टीराइटका स्थान है। अन्तमें वह श्रेणी आती है जिसके अन्तर्गत हीरे, पीला पत्थर (बेराइट), पोखराज, फुलर-मिट्टी, एसबेसटस, चाँदी, ग्रेफाइट, कच्चा जस्ता, बाक्साइट, फेल्सपार स्पेटाइट, बेरटोनाइट, बेराइल, कोरु-ण्डम, वोलफ्रेम टेण्टेलाइट तथा अन्य वस्तुएँ हैं। इन श्रेणियोंमें सम्मिलित खनिज पदार्थोंके उत्पादनका वार्षिक मूल्य १,००० रुपयेसे लेकर १५,००,००० रुपये तक है।

नये उद्योगोंका संरक्षण

व्यापार सदस्य माननीय सर ए. रामस्वामी मुदालियर युद्ध सामग्री बनाने वाले तथा सहायताके पात्र अन्य उद्योगोंको संरक्षण देनेका विश्वास दिला चुके हैं। अभी यह निश्चय नहीं है कि इस संरक्षणका रूप क्या होगा, परन्तु हो सकता है कि यह आर्थिक सहायता, आयात-निर्यात-कर अथवा विदेशोंसे कच्चा माल और मशीने मँगानेकी सुविधायें प्रदान करनेके रूपमें हो। सरकार भारतीय उद्योगोंको अनेक प्रकारसे प्रोत्साहित कर रही है। इण्डियन स्टोर्स डिपार्टमेंण्ट आदि द्वारा आर्थिक सुविधायें प्रदान करना इस सम्बन्धमें उल्लेखनीय हैं।

अनेक कारणवश विदेशोंसे आने वाली कुछ वस्तुओं-के आनेमें विलम्ब हो गया था। भारतमें ये वस्तुयें बाहरसे ही मँगानी पड़ती हैं। परन्तु अब बाधायें दूर हो रही हैं और ये वस्तुयें बाहरसे नियमित रूपसे फिर आने लगी हैं परन्तु कुछ प्रकारकी मशीनें, वायुयान और कुछ विशेष प्रकारका सामान मँगानेमें अब भी कठिनाइयाँ हैं। इन अभावोंको दूर करनेके पूरे प्रयत्न किये जा रहे हैं। ब्रिटेन तथा युद्धके अन्य क्षेत्रोंकी आवश्यकतायें पूरी होते ही भारत की ये आवश्यकतायें भी शीघ्र ही पूरी कर दी जायँगी।

क़लम-पेबंद (२)

[ले०—श्री शंकरराव जोशी]

[गतांक से आगे]

कंद-मूलवाले पौधोंको सुप्तावस्थामें सींचनेकी ज़रूरत नहीं है। नवांकुरित पौधेंको जड़ जमने तक काफी पानी सींचा जाना चाहिए। किस पौधेको किस मौसममें कितना पानी दिया जाना चाहिए, यह बात बिना अनुभवके मालूम नहीं हो सकती है।

पौधे स्थानान्तरित करना

पौधेको एक स्थानसे हटाकर दूसरे स्थान पर लगानेकी क्रियाको 'स्थानान्तरित करना' कहते हैं। जड़ोंको मज़बूत बनानेके लिए भी आम आदि कुछ पौधे एक जगहसे हटा-कर दूसरी जगह पर लगाये जाते हैं।

शीतकाल या बरसातमें पौधे हटाये जाने चाहिए। किन्तु गलित-पत्र पौधोंके हटानेका सबसे अच्छा समय इन पौधोंके पत्ते झड़ जानेके बाद है। कारण कि, पत्ते गिर पड़ने पर पौधा आराम लेता है। गमले या नरसरीमें दो

साल तक रखनेके बाद ही पौधेको नरसरीसे हटाकर स्थायी स्थान पर या गमलेमें लगाना चाहिए। इन्हीं पौधों पर चश्मा-पेवंद चढ़ाया जाना चाहिए। कुछ पौधे ऐसे भी हैं, जिनको हटाया नहीं जा सकता है। कारण कि हटानेसे उनकी जड़ें टूट जाती हैं जिससे पौधा मर जाता है। ऐसे पौधोंके बीज हमेशा स्थायी स्थानपर ही लगाए जाने चाहिए। पौधा स्थानान्तरित करते वक्त इस बातपर ख़्याल रखना चाहिए कि जब तक पौधेकी जड़ें पानी सोखना शुरू न करें तब तक ऐसी तजवीज़ की जाय, कि जिससे पत्तों द्वारा बहुत कम पानी भाप बनकर उड़ सके। धूप और रूखी हवाके दिनोंमें पत्तोंमें-से ज़्यादा पानी भाप बनकर उड़ता रहता है। इसलिए जहाँ तक हो सके बदली-के दिनोंमें पौधे हटाए जाने चाहिये। यदि हवामें तरी न हो और सूर्य चमक रहा हो तो हटाये जानेके बाद पौधे पर छाया कर दी जानी चाहिए। बड़े पत्ते आधे काट देने चाहिए और पौधोंपर बहुत थोड़े पत्ते रहने दिये जाने चाहिए। बरसातके मौसममें और बदलीके दिन, दिनके वक्त भी पौधे हटाए जाएँ तो हर्ज़ नहीं है।

पौधेको उखाड़नेसे पहले खूब पानीसे सींचना चाहिए, जिससे मिट्टी अच्छी तरहसे तर हो जाय। इसके बाद पौधेकी जड़ोंपरकी मिट्टी धीरे-धीरे दूर करके जड़के नीचे तककी मिट्टी हटा देनी चाहिए। तब तक एक चौड़ी पटियाको पौधेके नीचे मिट्टीमें खोंसकर धीरे-धीरे, ऊपर उठाना चाहिए। ऐसा करनेसे पौधा जड़ों सहित उखड़ आता है। पौधोंकी जड़ोंको मिट्टी समेत ही उखाड़ना चाहिए। जड़ें बहुत सावधानीसे खोदी जानी चाहिए। तनेके बहुत नज़दीकसे खुदाई कभी न करनी चाहिए। ऐसा करनेसे असावधानीसे, बहुतसी जड़ें कट जाती हैं। इससे पौधा कमजोर हो जाता है और दूसरी जगह पर लगानेके बाद उसके मर जानेकी सम्भावना रहती है। लम्बी जड़ें जितनी ज़्यादा तादादमें निकाली जा सकें, उतना ही अच्छा है। स्थायी-स्थान पर लगाने पर पौधेकी कुछ पतली जड़ें और डालियाँ छाँट डालना ज़रूरी है।

नरसरी

उद्यानके लिए नरसरीका एक खास महत्व है। जिन पौधोंपर कलम लगाई जाती है या पेवंद बाँधा जाता है उनका लालन-पोषण शुरूमें नरसरीके लिए ऐसी जगह पसंदकी जानी चाहिए, जो आस-पासकी जमीनसे कुछ ऊँची हो, हवा और प्रकाश काफ़ी मिलता रहता हो, और वक्त-ज़रूरत पौधोंको छाया भी मिल सके। ऐसी जगह हरगिज नहीं पसंद की जानी चाहिए, जिसमें पानी भरा रहता हो चिकनी मिट्टी वाली या कंकँरीली ज़मीन एकदम निरुप-योगी होती है। सूखनेपर पत्थरके समान कड़ी हो जाने वाली मिट्टी भी बेकार होती है।

कम उम्र और नाज़ुक पौधोंकी रक्षाकी ओर ज़्यादा ध्यान दिया जाना चाहिए। पथरीली जमीनमें पौधे लगा-नेके लिए कम-से-कम चार फुट गहरा और काफी चौड़ा गड्ढा खोदा जाना चाहिए। दो वर्ष तक खूब सिंचाई करते रहना चाहिए।

फर्न, क्रोटन आदि हमेशा हरे रहने वाले (सदा-पत्री) पौधे गमलों या पीपोंमें ही लगाए जाने चाहिए। हर साल शीतकालमें गमलोंकी मिट्टी बदली जानी चाहिए।

गमलेमें पौधे लगाना

कई प्रकारके पौधे गमलोंमें लगाकर बरामदोंमें रक्खे जाते हैं। कई पौधे भाँति-भाँतिके तार और छेद वाले मिट्टी के गमलोंमें बोकर बरामदे या पेड़की डालियों पर शोभाके लिए लटकाये जाते हैं।

भारतमें भिन्न-भिन्न आकार और प्रकारके मिट्टीके गमले काममें लाए जाते हैं। उत्तम गमला वही है जो बजाने पर घंटीके समान आवाज़ दे। खाली गमले साफ़ पानीसे अच्छी तरहसे धोकर छायामें औंधे रख दिए जाने चाहिए।

अब यह प्रश्न किया जा सकता है कि यदि बेंचनेके लिये पौधे गमलेमें रोपे जायँ तो गमलोंके ख़र्चके अतिरिक्त समय इतना लग जायगा कि रोज़गारमें कुछ नफ़ा न होगा।

परन्तु असली बात यह है कि यदि काम क्रमानुसार किया जाय तो समय बहुत नहीं लगेगा। अमरीकाके एक व्यक्तिने एक दिन दस घंटेमें साढ़े ग्यारह हज़ार गमलोंमें बरबेनाके कटिंग रोपे। केवल दो लड़के उसकी मदद कर रहे थे जिनका काम सिर्फ़ भरे गमलोंका उठाना और नये गमले तथा कटिंग लाना था।

पौधोंको गमलोंमें लगानेकी रीति

कटिंगको गमलोंमें लगानेकी क्रिया है तो बहुत सरल,

परन्तु इस कामको अच्छी तरह करना चाहिए, जिसमें पौधेको वृद्धिमें कोई रुकावट न पड़ जाय। असावधानीसे
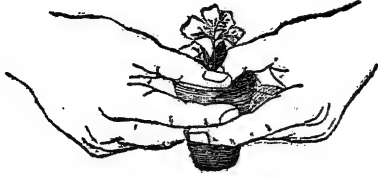
चित्र ५
कटिंग या बेहनको २ इंचके गमलेमें लगाने की रीति

रोपनेके कारण बहुतसे पौधे मर जाते हैं। बेहन और कटिंगको पहले दो इंचके गमलोंमें लगाया जाता है। यह आवश्यक है कि उस समय पौधोंकी जड़ एक नियत आकारको हो। बहुत बड़ी और बहुत छोटी जड़वाले पौधेके मर जानेका विशेष डर रहता है। जड़ जब ½ इंचकी हो तभी पौधोंको गमलोंमें लगानेके लिए अच्छा समय है। बड़ी दूकानोंमें पौधे अग्र लिखित रीतिसे गमलोंमें लगाये जाते हैं। पहलेमें खाद मिलाकर मिट्टी तैयार कर ली जाती है। कारीगर खाली गमलोंको बाईं ओर और भरे हुए गमलोंको रखनेके लिए एक पटरा दाहिनी ओर रख लेता है। एक साथ ही बायें हाथसे वह खाली गमला उठाता है और दाहिनेसे एक मुट्ठी
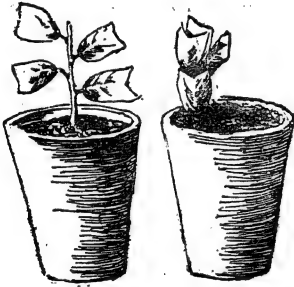
चित्र ६
पौधा ठीक बीचमें रहे। दाहने ओरके गमलेमें पौधा गलत लगा है।

मिट्टी। गमलेको सामने रखकर जबसे वह उसमें दाहिने हाथसे मिट्टी डालता है तबसे बायेंसे पौधा उठाता है। दाहिने हाथमें वह कुछ मिट्टी बचा लेता है। दाहिने हाथकी अँगुलीसे गमलेकी मिट्टीमें गड्ढा बना देता है। इसमें वह पौधा रखता है और साथ ही दाहिने हाथमें बची हुई मिट्टी भी गमलेमें छोड़ देता है। अब वह गमलेको चित्र ५ की रीतिसे पकड़कर मिट्टीको दबा देता है। फिर हाथोंकी स्थिति बदलकर वह मिट्टीको एक बार फिर दबाता है। इस प्रकार मिट्टी सब जगहसे दब जाती है। अब वह गमलेको पटरे पर रख देता है। वह अब फिर दाहिने हाथसे मिट्टी और बायेंसे खाली गमला उठाता है। इस प्रकार नियमानुसार काम करनेसे आश्चर्यजनक फुर्तीसे काम होता है।
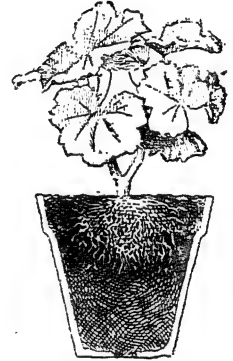
चित्र ७ — पौधा बहुत गहरा लगा है। चित्र ८ — पौधा बहुत ऊँचा लगा है।

यह आवश्यक है कि पौधा गमलेके बीचमें लगे। मिट्टीमें जड़के साथ-साथ तना भी न धँस जाय और न पौधा इतना ऊपर लगाया जाय कि मिट्टीमें पूरी जड़ न दबे। फिर गमला मिट्टीसे भर न जाय। पानीके लिये थोड़ी जगह अवश्य छूटी रहे। इन्हीं बातोंपर बड़े गमलोंमें पौधे लगाते समय भी ध्यान रखना चाहिए (चित्र ६, ७, ८, ६, १०)।

गमले जहाँ रक्खे जायँ वहाँ वे चौरस रक्खे जायँ जिससे उनमें पानी भरा जा सके। पौधोंको गमलोंमें लगानेके बाद ही उनको पानी जरूर देना चाहिए और दो या तीन दिन तक उनको धूपसे बचाना चाहिए। (यदि पौधा ऐसा हो जो बराबर छाया ही पसंद करे तो बात दूसरी है, नहीं, तो दो-तीन दिन बाद उनको कुछ समय तक धूप अवश्य मिलनी चाहिए।)

यदि गमले बहुतसे हों तो धूपसे बचानेके लिए उन पर मोटी चादर तान देनी चाहिए और सात-आठ दिन तक पौधोंको दोपहरकी धूपसे बचाना चाहिए। धूपकी मात्रा
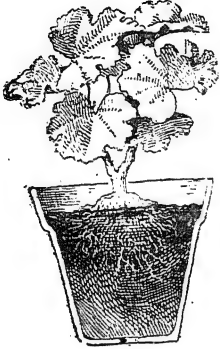
चित्र ९
गमलेमें मिट्टी बहुत भरी गई है।

चित्र १०
इस गमलेमें पौधा ठीक लगा है।

धीरे-धीरे बढ़ानी चाहिए। ध्यान रखना चाहिए कि गमले सूख न जायँ। इसके लिए उनको २ इंच बालूमें गाड़ कर रखना अच्छा होगा जिसमें वे जल्द सूख न जायँ। फिर, गमलोंमें पौधोंको लगानेके कुछ समय पहले गमलोंको पानी-से अच्छी तरह तर कर देना चाहिए और उनको इस प्रकार रख देना चाहिए कि उसका पानी निथर जाय, और उनकी ऊपरी सतहपर फ़ालतू पानी न लगा रहे।

गमलेमें जो मिट्टी भरी जाती है वह गीली न रहे, परन्तु वह एकदम सूखी भी न रहे। ठीक दशाकी पहचान यह है कि हाथमें लेकर ज़ोरसे दबानेपर बँधे।

पानीकी निकासी

४ इंचसे बड़े सब गमलोंमें पानीकी निकासीका पूरा प्रबन्ध करना चाहिए। कड़ी लकड़ी वाले पौधोंके-लिए तो ४ इञ्च वाले गमलोंमें भी पानीकी निकासीका प्रबंध चाहिए। गमलोंकी पेंदियोंमें छेद तो रहता ही है परन्तु प्रबन्ध करना पड़ता है कि मिट्टीसे वे बन्द न हो जायँ। इसके लिए गमलेमें पहले बड़े-बड़े ठीकरे रक्खे जाते हैं जिनमें दो-चार ऐसे टेढ़े-मेढ़े अवश्य हों कि पेंदीमें वे चिपककर न बैठें। ठीक छेदके ऊपर एक बड़ा टुकड़ा रखना चाहिए, शेष टुकड़े छोटे रहें। लकड़ीका कोयला भी इस कामके लिए बहुत अच्छा है। पाँच या छः इञ्च व्यासके गमलोंमें नीचे एक या सवा इञ्च तक कोयला या ठीकरा भरना चाहिए, बड़े गमलोंमें २ इञ्च तक। कुछ लोग ठीकरोंके ऊपर थोड़ी-सी नारियलकी जटा रख देते हैं। यह भी अच्छा है।

गमलोंको पत्थरके टुकड़े, कंकड़ आदि पर या दो ईंटों पर रखना ठीक है, जिसमें पानीके बह जानेमें रुकावट न हो। चिकनी मिट्टीके ऊपर गमलोंको नहीं रखना चाहिए, क्योंकि तब गमलोंका छेद बन्द हो जायगा और पेड़ोंके सड़नेका डर रहेगा।

[शेष फिर]

घरेलू डाक्टर

[सम्पादक डा० जी० घोष, डा० गोरखप्रसाद आदि]

आँख उठना

रोहा—(granular conjunctivitis or trachoma)– इस रोगमें पलकोंकी भीतरी सतहमें दाने उभड़ आते हैं। ये दाने नन्हें-नन्हें राई या सरसोंके समान होते हैं और इसके कारण आँख बराबर गड़ा करती है। यूरोपमें यह रोग गरीबी या गंदगीका परिणाम समझा जाता है, परन्तु भारतवर्षमें यह रोग यहांके गर्द और तेज़ प्रकाशके कारण लड़कोंको अकसर होता है। इसे भारी रोग समझना चाहिये, क्योंकि यह शीघ्र अच्छा नहीं होता और लापरवाही करनेसे अंतिम परिणाम अंधता भी हो सकता है। इस रोगके लिये बनारस इलाहाबाद आदि ज़िलेमें 'रोहा' शब्द ही प्रचलित है, परन्तु सम्भव है अन्य जिलोंमें इसका कोई दूसरा नाम हो।

अधिक दिनके बाद आँखकी पुतली पर चढ़े स्वच्छ आवरण (कर्नानिका cornea) पर भी दाने निकल आते हैं या पलकके दानोंसे बराबर रगड़ खाते रहनेसे कर्नानिका पर घाव हो जाते हैं और तब आँखके चले जानेका डर रहता है। बहुतसे अंधे इसी रोगके कारण अपनी आँखें खोये रहते हैं। फिर, जब पलकके भीतरके घाव अच्छे हो जाते हैं तो जो क्षत-चिन्ह (scars) बनते हैं वे पलकोंको, और इसलिए बरौनियों (eye lashes) को भी, भीतरकी ओर खींच लेते हैं। इससे बड़ी तकलीफ होती है और आँखोंको नुकसान पहुँचता है।

चिकित्सा—रोहेके दानोंको खुरच कर हटा दिया जाता है या तूतिया आदिसे दाग कर जला दिया जाता है। यह काम सिवाय डाक्टरके किसी दूसरेसे न कराना चाहिए। यदि रोग आरम्भ ही हुआ हो तो आँखोंमें प्रोटारगल (protargal) या ऐसी ही कोई अन्य दवा डालनेसे भी रोग अच्छा हो जा सकता है। जब रोग अच्छा हो जाय तो आँखकी 'फूली' (कनीनिकाके क्षत-चिह्न) मिटानेके लिए येलो ऑक्साइड ऑफ मरक्युरी (yellow oxide of mercury) वाला मरहम लगाना चाहिए। यदि फूली हलकी हुई तो इससे मिट जायगी।

फूली (corneal opacity)—ये कर्नानिका पर बने क्षत-चिह्न हैं। चिकित्सा आदिके लिए ऊपर वाला प्रक्रम देखो।

रवादार अभिष्यंद—(phlyctenular conjunctivitis)—इस रोगमें और साधारण आँख उठनेमें अन्तर यही है कि इस रोगमें आँखोंमें सफेद हिस्सेमें दाने उभड़ आते हैं (रोहेमें पलकोंमें दाने निकलते हैं)। यह रोग साधारणत: बच्चोंको ही होता है, विशेषकर दुर्बल बच्चोंको। अकसर यह रोग उन बच्चोंको होता है जिनको क्षय-रोग भी थोड़ी-बहुत मात्रामें रहता है और जिनके गरदनकी ग्रंथियाँ (glands) क्षयके कारण बढ़ गई रहती हैं। साधारण आँख उठनेकी चिकित्साके अतिरिक्त दो प्रतिशत येलो ऑक्साइड ऑफ़ मरक्यूरी (yellow oxide of mercury) का मरहम आँखके भीतर डालना चाहिए। इसके लिए अपने हाथोंको पूर्णतया स्वच्छ करके एक हाथसे बच्चेकी आँखकी नीचे वाली पलक कुछ खींच लेनी चाहिये और दूसरे हाथसे पलक और आँखके भीतर मरहम डालनी चाहिए। फिर बच्चेसे आँख बन्द करवा देनी चाहिए। इसके बाद अपनी अंगुलियोंको पलकों पर रख कर पलकोंको इस प्रकार धीरे-धीरे चारों ओर हिलाना चाहिए कि मरहम आँखकी सतह पर अच्छी तरह फैल जाय। दिनमें तीन बार यह मरहम लगाना चाहिए। बच्चे शायद ही दवा ठीकसे लगाने दें। इसलिए अच्छा यही होगा कि उनके सिरको अपने घुटनोंके बीच दबा लिया जाय और एक दूसरा व्यक्ति उनके हाथ और पाँवको पकड़े रहे।

जीर्ण अभिष्यंद (angular conjunctivitis)—इस रोगमें पलकोंको कोर लाल हो जाती है। आँख भी लाल रहती है, विशेषकर कोनोंके पास। यदि चिकित्सा न की जाय तो रोग महीनों इसी प्रकार चल सकता है। यह रोग एक विशेष जातिके जीवाणुओंके कारण होता है। बोरिक लोशनसे धोकर आँखोंमें जिङ्क लोशन डालनेसे यह अच्छा हो जाता है। दिनमें दो बार जिङ्क लोशन डालना चाहिए।

आँख, कृत्रिम (artificial eye)—रोगके कारण अक्षिगोलकके खराब हो जाने पर उसे डाक्टर निकाल देते हैं। तब सूरत बिगड़ जाती है, परन्तु यदि उस आँखमें कृत्रिम आँख पहन ली जाय तो सूरत नहीं बिगड़ने पाती। अब तो कृत्रिम आँखें इतनी सच्ची बनती हैं कि देखने वालेको पता नहीं लगता कि कौन आँख असली है कौन नकली। ये नकली आँखें शीशेकी बनती हैं और इनका रंग और आकार पहनने वालेकी दूसरी (अच्छी) आँखके ठीक-ठीक अनुरूप बनाया जाता है। पीछेकी ओर इसकी सतह कुछ गहरी कर दी जाती है और उस गड्ढेका आकार ठीक इस प्रकारका बनाया जाता है कि पहनने वालेकी अक्षिखात (socket) में अच्छी तरह फिट हो। अच्छी तरह बनी कृत्रिम आँखकी पहचान यह है कि देखनेमें यह ठीक दूसरी आँखकी तरह लगे और पहनने पर पलकें ठीकसे बन्द हो सकें। इसके पहननेमें जरूरतसे ज़्यादा तकलीफ न हो (शुरूमें कुछ दिनों तक इसके पहननेमें कुछ तकलीफ ज़रूर होगी)।

अक्षिगोलक निकालनेके डेढ़ महीनेके पहले नकली

आँख न लगनी चाहिए। आँख अच्छे कारीगरसे लगवाई जाय। यदि यह सच्चा न बैठेगी तो अक्षिखातमें बराबर रगड़ लगा करेगा, जिससे अक्षिखात कुछ समयमें इतना छोटा हो जायगा कि फिर उसमें दूसरी आँख लगाई
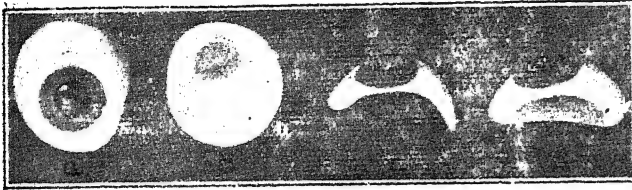
कृत्रिम आँख।

भी न जा सकेगी, या यदि लगाई जा भी सकेगी तो वह अस्वाभाविक दिखलाई पड़ेगी। ठीकसे लगी नकली आँख बहुत कुछ असली आँखकी तरह इधर-उधर घूम सकती है।

नकली आँखको बड़ी सावधानीसे प्रति रात्रि बाहर निकाल लेना चाहिए और उसे बोरिक लोशनसे अच्छी तरह धोकर और पोंछकर रखना चाहिए या बोरिक ऐसिडके घोलमें ही पड़ा रहने देना चाहिए। बरतनकी पेंदीमें स्वच्छ रुई रहे तो अच्छा है जिसमें आँख टूटने न पाये। कुछ समयमें शीशा खदर जाता है (खुरखुरा हो जाना है)। तब नवीन आँख बनवा लेनी चाहिए।

आँख रँग जाना (argyria)—सिलवर नाइट्रेट, आरजाइरल, प्रोटारगल आदि चाँदीसे बनी दवाओंको आँखोंमें बहुत दिन तक डालते रहनेसे, या चाँदीसे बनी दवाओंको खानेसे, आँखें सफ़ेदके बदले मटमैली हो जाती हैं। यह रंग पक्का होता है। इसलिए उपरोक्त दवाओंका प्रयोग आवश्यकता पड़ने पर ही करना चाहिए। रोगोंसे बचनेके ख्यालसे आँखोंमें कुछ डालनेकी आवश्यकता जान पड़े तो बोरिक लोशनका इस्तेमाल करना चाहिए।

आँवला (संस्कृतमें आमलक)—यह एक प्रसिद्ध पेड़का फल है। पेड़की पत्तियाँ इमलीको तरह महीन होती हैं। फल गोल या ज़रा सा चिपटा और काग़ज़ी नीबूसे कुछ छोटा होता है। इसके ऊपरका छिलका इतना पतला और अर्धपारदर्शक होता है कि भीतरकी नसें दिखलाई पड़ती हैं। स्वादमें यह कसैलापन लिए हुए खट्टा होता है। आयुर्वेदमें इसका बहुत उपयोग होता है। इसके संयोगसे त्रिफला, च्यवन प्राश आदि औषध बनते हैं। आँवलेका मुरब्बा भी बहुत लाभदायक माना जाता है।

इस फलमें विटेमिन "सी" (vitamin C) अधिक मात्रामें रहती है। विटेमिनें वे वस्तुएँ हैं जिनका पता हमें थोड़े ही वर्षोंसे लगा है। कई भिन्न-भिन्न विटेमिनोंको हम अब अच्छी तरह जानते हैं, जिनमेंसे एक विटेमिन 'सी' है। यदि भोजनमें यह न रहे तो स्कर्वी नामक रोग हो जाता है (देखो स्कर्वी), मसूड़ोंसे रक्त निकलता है, रक्ताल्पता (anaemia) की भी शिकायत हो सकती है। ताज़ा फल विशेषकर नारंगी) और साग-तरकारी खाते रहनेसे शरीरको विटेमिन 'सी' काफी मात्रामें मिला करती है। परन्तु यदि फल तरकारी आदि न मिल सकें तो ऐसी वस्तुओंके सेवनकी विशेष आवश्यकता हो जाती है जिनमें विटेमिन 'सी' अधिक मात्रामें हो। थोड़े ही दिन हुए समाचारपत्रोंमें छपा था कि लड़ाई पर भेजे गये फौजके लिए आँवलेकी टिकियाँ बनाकर भेजी जा रही हैं जिसे वे चबा और चूस सकें और इस प्रकार विटेमिन 'सी' के अभावसे उत्पन्न होने वाले रोगोंसे बच सकें। आँवलेके मुरब्बेमें शायद ही विटेमिन 'सी' रह पाती हो, क्योंकि आँचसे यह विटेमिन नष्ट हो जाती है।

ऑक्ज़ैलिक ऐसिड (oxalic acid) — ऑक्ज़ैलिक ऐसिड नमकके समान श्वेत चूर्ण या श्वेत रवोंके रूपमें बिकता है। यह घरोंमें कपड़ेके दाग छुड़ाने आदिके काममें आता है। यह क्षतकारी (corrosive) विष है। इसके खाने पर मुँह, गला और पेटमें तीव्र जलन जान पड़ती है, वमन भी होता है और शरीर शिथिल हो जाता है। यदि भूलसे कोई इसे खा जाय तो विषको निकालनेके लिए वमनकारी औषधियाँ नहीं देनी चाहिए, क्योंकि इससे हानि बढ़ती है। इसके बदले थोड़ा-सा चूना पानीमें घोल कर पिलाना चाहिए जिसमें विष मर जाय। उसके बाद एक खुराक रेंडीका तेल पिलाना चाहिए। तीन-चार दिन तक रोगीको केवल दूध पिलाकर रखना चाहिए।

आकस्मिक घटनायें (accidents and emergencies)—कभी-कभी अकस्मात् कहींसे गिर जाने, पैर फिसल जाने या किसीसे टकरा जानेके कारण चोट लग जाती है, या हड्डी टूट जाती है। ऐसी अवस्थामें यह आवश्यक होता है कि रोगीको तत्काल सहायता पहुँचायी जाय। असली इलाज तो डाक्टर की देख-रेखमें किया जाना चाहिये पर डाक्टरके आनेसे पूर्व रोगीको किस प्रकार सहायता पहुँचानी चाहिये और उसकी अवस्थाको किस प्रकार सँभाले रखना चाहिये, इसका विवरण हम यहाँ देंगे। इस प्रकार की सहायताको प्रारम्भिक सहायता या फर्स्ट-एड कहते हैं। कभी-कभी ऐसा होता है कि तीन-चार दिन तक डाक्टर की सहायता नहीं मिल पाती। अतः हम इस विषयको कुछ विस्तारसे यहाँ देंगे। साधारणतया सभी शिक्षित व्यक्तियोंको इन विधियोंका अभ्यास कर लेना चाहिये जिससे काम पड़ने पर वे अधिक-से-अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकें।

औज़ार और सामग्री—साधारण शल्य चिकित्सा या चीड़-फाड़के लिये निम्न सामग्रीकी आवश्यकता पड़ती है। प्रत्येक घरमें इतना सामान रहे तो अच्छा है।

(१) धुनी हुई शुद्ध रूई जो 'ऐबसॉर्बेंण्ट कॉटन' के नामसे डाक्टरी दूकानों पर मिलती है। यह पट्टियोंके नीचे रखने और घाव पोंछनेके काममें आती है।

(२) लिण्ट (मोटा नरम कपड़ा)।

(३) चौड़ी और पतली पट्टियाँ।

(४) नीचे लिखे कृमिनाशक पदार्थ—

(क) रेक्टिफाइड स्पिरिट।

(ख) टिंकचर आव् आयोडिन।

(ग) रवेदार पोटैसियम परमैंगनेट।

(घ) लायसोल।

(५) टैलकम पाउडर।

(६) इनेमेल की कटोरियाँ, तश्तरियाँ और चिलमची जिनमें औज़ार, रुई, पट्टी, आदि रक्खी जा सकें।

(७) स्वच्छ चिमटियाँ।

(८) प्रोब जिससे घाव की गहराई मालूम की जा सकती है और घावमें इधर-उधर अटकी हुई चीज़ मालूम हो सकती है।

(९) दो कैंचियाँ। एक मामूली और एक चीड़-फाड़के काममें आने वाली। मामूली कैंची पट्टियोंके काटनेके काम आयेगी, और चीड़-फाड़ वाली कैंची त्वचा आदि काटनेके लिये रखनी चाहिये।

(१०) दो स्कालपेल (बहुत तेज़ छोटा चाकू, नश्तर)—एक औसत नाप की और एक छोटी। घावके मुँह खोलनेके लिये इनका प्रयोग किया जाता है।

(११) लिनेन तागे की लच्छी। इससे टाँके दिये जा सकते हैं और रुधिर-धमनियाँ बाँधी जा सकती हैं। काममें लानेसे पहले तागेके टुकड़ोंको उबलते पानीमें छोड़ कर रोगाणुओंसे रहित कर लेना चाहिये।

(१२) सीधी और मुड़ी हुई सुइयाँ भिन्न-भिन्न आकार की। इससे त्वचाकी सिलाई की जा सकती है।

(१३) रबरके तीन कैथेटेर छोटे, बड़े और औसत नापके। इनकी सहायतासे रोगीको पेशाब कराया जा सकता है।

(१४) टूटी हड्डियोंके स्थान पर बाँधनेके लिये भिन्न-भिन्न आकारकी स्प्लिंट या खपाचियाँ। टूटी हड्डियोंके लिये स्प्लिण्ट बनानेके लिये प्लास्टर आव् पेरिस बहुत उपयोगी होता है।

(१५) पानी गरम करनेके लिए स्टोव या अंगीठी और एक पतीली।

(१६) रातको रोशनी देनेके लिये बिजली की एक टॉर्च, क्योंकि अधिकांश दुर्घटनायें रातको ही होती हैं।

औज़ारों और दवाके घोलोंका समय-समय पर देख-भाल करते रहना चाहिये, नहीं तो समय पड़ने पर कठिनायी होगी। धातुके बने औज़ारोंको या तो लायसोलके घोलमें या वैसलीन लगा कर लिण्टमें लपेट कर रखना चाहिये। रबरके कैथेटेरोंको सुखाकर और ऊपरसे टैलकम पाउडर भुरक कर रखना चाहिये। प्रति सप्ताह इन्हें एक बार खींचते रहना चाहिये जिससे रबर खराब न हो जाय।

जिन औज़ारोंका प्रयोग करना न आता हो, उनका उपयोग न करो। रोगीको डाक्टरकी देखरेखमें यथासंभव शीघ्र छोड़ दो।

घावका ख़राब हो जाना—यदि कोई विशेष बात न हो जाय तो घाव स्वयं पुरा करते हैं और थोड़े

समयमें अच्छे हो जाते हैं। पर यदि बाहरसे रोगके जीवाणु घावमें प्रविष्ट हो जायँ तो इनमें पीब पड़ जाती है, और फिर घावके अच्छा होनेमें कठिनायी पड़ती है। घावका इस प्रकार खराब हो जाना सेप्टिक हो जाना कहलाता है। ऐसी अवस्थामें घावको ऐसे घोलोंसे धोया करते हैं जिनमें कीटाणुओंके मारने की क्षमता हो। जहाँ तक संभव हो, घावको सेप्टिक होनेसे बचाना चाहिये। रुई, पट्टी, औज़ार, और समस्त सामग्री रोगके कीटाणुओंसे विहीन कर लेनी चाहिये। घावको छूनेसे पहले चिकित्सक को अपने हाथको साबुनसे और फिर हलके टिंकचर आयोडिनसे धो लेना चाहिये। बिना हाथ साफ किये कभी घावको न छूये। निम्न सावधानियोंका भी व्यवहार करना चाहिये।

(१) घावके निकटकी त्वचाको सावधानीसे साफ करो। घावके चारों ओरकी त्वचाको रेक्टिफाइड-स्पिरिटके फाहेसे अच्छी प्रकार पोंछो। फिर स्थानको स्वच्छ सूखे फाहेसे पोंछ कर स्पिरिट अलग कर दो। तबघावके चारों ओर थोड़ी दूर तक त्वचा पर टिञ्चर आव् आयोडिन लगा दो। टिञ्चर आव् आयोडिन जल रहित सूखे स्थान पर विशेष प्रभावकर होती है, अतः यदि आयोडिन लगाना हो तो रोगी की त्वचाको साबुन और पानीसे नहीं धोना चाहिये।

(२) औज़ारोंकी छूत दूर करनेके लिये उन्हें उबलते पानीमें १०-१५ मिनट छोड़ रखना चाहिये। औज़ार रखनेसे पूर्व कटोरी, प्याले वा तश्तरी की भी छूत मिटानी चाहिये। इनकी छूत इस प्रकार मिटायी जाती है—तश्तरी या प्यालेमें थोड़ी सी स्पिरिट डालो और चारों ओर घुमाकर स्पिरिटको बर्तनमें सब ओर फैला लो। अब दियासलाई जलाकर या स्पिरिट लैम्प की लौ के पास लाकर बर्तनकी स्पिरिटमें आग लगा दो। बस, बर्तनकी छूत मिट जावेगी, और इस बर्तनको अब काममें लाया जा सकता है।

स्कालपेलकी छूत लायसोलके घोलमें डुबाकर मिटाते हैं। काममें लानेसे पूर्व उसे उबाले और ठंढा किये हुये पानीमें धो लेना चाहिये।

ऐसा प्रयत्न सदा करना चाहिये कि घावमें हाथ लगाना ही न पड़े। सब काम छूतरहित औज़ारोंसे करनेका प्रयत्न करना चाहिये।

(३) यदि घाव स्वच्छ हो, और इस पर कोई धूलादि न पड़ी हो तो फर्स्ट-एड देने वाले का कर्तव्य इतना ही है कि इस पर शुद्ध (छूतरहित) रुई या लिंट रख कर पट्टी बाँध दें। पर यदि घाव पर धूल हो तो यह करे—२००० भाग पानीमें १ भाग पोटैसियम परमैंगनेट घोले और उस घोलमें छूतरहित रुई या गॉज भिगोवे। इससे घावको सावधानीसे पोंछे। धोते समय रुई या गॉजको, जहाँ तक संभव हो चिमटीसे पकड़े।

(४) पट्टियों और रुई-फाहोंकी छूत घरमें मिटाना कठिन है। दूकानोंसे स्टेरेलाइज़्ड रुई, पट्टी और गॉज मँगा लेना चाहिये। पट्टियोंको उबलते पानीमें, जिसमें थोड़ासा लायसोल या बोरिक ऐसिड मिला दिया गया हो, डाल कर और फिर निचोड़ कर सुखा लिया जा सकता है।

आकस्मिक घटनाओंकी तत्काल चिकित्सा—ऐम्बुलेन्स ऐसासियेशन द्वारा प्रकाशित 'फर्स्ट एड' की पुस्तकमें जो विवरण दिया होता है उसका चिकित्सकको विशेष अभ्यास होना चाहिये। उसके सम्बन्धमें और जो बातें हैं, उनमेंसे मुख्य-मुख्य कुछ हम यहाँ देते हैं—

(१) सबसे पहले देखो कि खून तो नहीं बह रहा है, और यदि बह रहा हो तो पता लगाओ कि खून कहाँसे निकल रहा है। खून निकलनेके समय क्या करना चाहिये, इसका उल्लेख 'रुधिर प्रवाह' शीर्षकमें किया गया है।

(२) रोगीसे थोड़ेसे स्पष्ट प्रश्न करके मालूम कर लो कि चोट कैसे लगी। पूरी घटनाका थोड़ासा इतिहास मालूम करो। यदि रोगी मूर्छित हो या न बोल सकता हो तो पास में खड़े हुये लोगोंसे पूँछो कि उसे कैसे चोट आई।

(३) यदि रोगी मूर्छित हो तो उसे दाहिने बगलमें, थोड़ा सा करवट दिलाकर, ज़मीन या फर्श पर लिटा दो और तकिया लगाकर सिरको थोड़ासा ऊँचा कर दो। तकिया न मिले तो कोट या और कोई मुलायम कपड़ा तह करके तकिये का काम चलाओ। इससे श्वाँस लेनेमें सहायता मिलेगी। गर्दन, छाती, या, कमर पर यदि कोई कपड़ा कसा हो तो उसे काट कर या बटन खोल कर ढीला कर दो।

(४) मुँह और छाती पर ठंढे पानीके छींटे मारो, और बाद को कपड़ेसे पोंछ दो। यदि रोगी पानी निगल सकता हो, तो उसे कुछ ठंढा पानी पिलाओ। जब तक नितान्त

आवश्यक प्रतीत न हो, शराब या ब्राण्डी न पिलाओ। इसकी अपेक्षा गरम दूध, चाय या कहवा पिलाना कहीं अधिक अच्छा है। खून बहतो दशामें तो ब्राण्डी दो ही न। रोगीको चेतन करनेके लिये निम्न विधियोंका भी उपयोग किया जा सकता है (क) उसके अङ्गोंको नीचेसे ऊपरकी ओर हाथ चला कर रगड़ो (ख) पेट या हृदयके ऊपर गरम पानीसे भरी बोतल रक्खो, या गरम सेंक करो।

(५) यथासंभव शरीरको हिलाओ मत, परन्तु शरीरके सभी मुख्य अंगोंका निरीक्षण कर जाओ। कपड़े अलग करके देखनेसे पता चल जायगा कि कहीं सूजन, खरोंच, घाव आदि तो नहीं है। कपड़ा खींच कर नहीं उतारना चाहिये। इसे काट कर अलग करना चाहिये। पहले उस ओरके कपड़े उतारो जिस ओर चोट नहीं लगी है।

(६) अगर किसी विशेष स्थान पर चोट लगी है तो उस स्थानके लिये जैसी चिकित्सा आवश्यक है, फौरन आरम्भ कर दो।

(७) रोगीसे बहुत बातचीत न करो और न रोगीको बातें करने दो। रोगीके निकट भीड़ न लगने दो और उन लोगोंको छोड़ जिनसे सहायता लेना आवश्यक है, और सब को हटा दो। रोगी को शुद्ध हवा मिलनी चाहिये।

(८) यदि चोट अधिक लगी हो, तो डाक्टरको तत्काल बुलवाओ। डाक्टरको स्पष्ट शब्दोंमें रोगीकी हालत लिख दो। नौकरसे जबानी संदेशा भेजना सदा ठीक नहीं होता।

(९) यदि चोट लगे हुये रोगीको घटनास्थलसे हटाकर अलग कहीं ले जाना हो तो घायल अंगकी रक्षाका पहले पूरा प्रबन्ध कर लेना चाहिये। पैर या कोखकी हड्डी कहीं टूटी हो तो और अधिक सावधानी रखनी चाहिये। 'हड्डी टूटना' शीर्षक में जो विधियाँ दी हैं, उनका उपयोग करो।

यदि चोट अधिक लगी हो, तो रोगीको लिटाये-लिटाये ही उठा कर ले जाना चाहिये। यदि चोट भुजा या हाथमें है, तो लिटाकर ले जाने की आवश्यकता नहीं है। उठानेके लिये चारपाई, दरवाजेका पल्ला, बांसकी टिकटी या स्ट्रेचर काममें लाये जा सकते हैं। पुआल, मोटा गद्दा, रजाई या कम्बल बिछा कर शय्या मुलायम कर देनी चाहिये। स्ट्रेचर या टिकटीमें आगे लकड़ी निकली रहती है, जिससे स्ट्रेचरके उठानेमें सहायता मिलती है। यदि अन्य कोई उपयुक्त साधन न जुटे तो चार मजबूत बाँसों को आपसमें बाँधना चाहिये और फिर उसमें दृढ़तासे कम्बल बाँध देना चाहिये।

शय्याकी पायँतको रोगीके शिरके पास रखना चाहिये। शय्या रोगीके शरीरकी सीधमें रहे। उठानेके लिये रोगीके दायें एक आदमी और बाँयें एक आदमी खड़ा हो। रोगीके कंधे और कूल्हे एक दूसरेके नीचे ये दोनों हाथोंको पकड़ लें। एक आदमी घायल अंगकी देख-रेखके लिये हो। अब रोगीको उठाकर शिरके पीछे रक्खी शय्या पर ले जाना चाहिये और धीरेसे इस पर लिटा देना चाहिये। शय्याका हाथसे उठाकर ले चलना चाहिये, न कि कन्धोंपर रखकर। हाथमें ले चलनेमें रोगी आँखके सामने रहेगा और चलनेमें सब सावधानी रक्खी जा सकेगी। आगे वाला व्यक्ति जब बायाँ पैर उठाये तो पीछे वाला व्यक्ति दाहिना पैर उठाये। इस क्रमसे ले चलनेमें शय्यामें धक्के लगनेकी सम्भावना बहुत कम हो जायगी। यदि पहाड़ी या और किसी ऊँचे स्थान पर रोगीको ले जा रहे हो तो रोगीका शिर आगे हो, और यदि ऊँचे स्थानसे नीचे उतर रहे हो तो शिर पीछे हो और पैर आगे हो। पर यदि पैर या जंघा टूटी हो तो ऐसा करनेमें सारा बोझा चोट लगे स्थान पर पड़ेगा। अतः तब रोगीको उलटी दिशामें रखना चाहिये।

पट्टियाँ—फर्स्ट एडमें अकसर पट्टी बाँधनेकी आवश्यकता पड़ती है। इसलिये इसका ज्ञान सबको होना चाहिये। पट्टियाँ दो प्रकारकी होती हैं। एक तो तिकोनी पट्टी (ट्रायंगुलर बैण्डेज) और दूसरी लम्बी पट्टी या रोलर बैण्डेज।

तिकोनी पट्टियाँ- ये बड़े रूमालको आमने-सामनेके कोनों परसे बीचमें मोड़कर बनायी जा सकती हैं। साधारण पट्टीके लिये ४० इंच लंबा और ४० इंच चौड़ा स्वच्छ कपड़ा लो। एक कोनेसे लेकर सामनेवाले दूसरे कोने तक बीचसे काट दो। इस पट्टीके सबसे बड़ी भुजाको कर्ण कहते हैं और कर्ण के सम्मुखके सिरेको शीर्ष कहते हैं (चित्र १)।

यदि पट्टी चौड़ी चाहिये तो कपड़ेको मोड़कर शीर्षको कर्ण तक लाओ (चित्र २) और फिर पट्टीको एक बार और मोड़कर आधी कर लो (चित्र ३)।

यदि पट्टी पतली चाहिये तो शीर्षको कर्ण तक लाओ और फिर मोड़कर एक-तिहाई कर लो (चित्र ४)।

पट्टियोंको आहत-अंगके चारों ओर लपेटकर या तो सुईसे सी देना चाहिये या सेफ़्टी-पिन लगानी चाहिये। या ऐसी गाँठ लगाओ जो खिसके न।

सब तिकोनी पट्टियाँ एक सी ही बनायी जाती हैं, पर
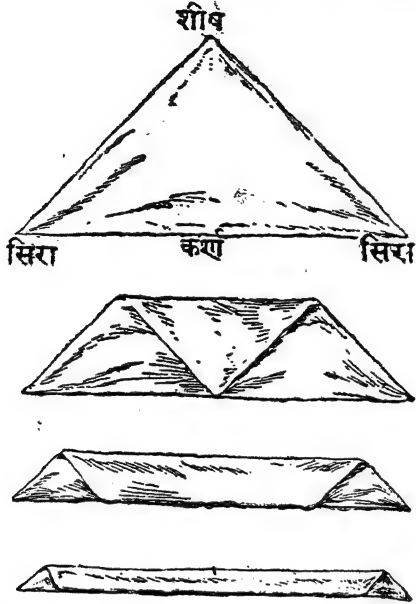
चित्र १-४ विविध आकारकी पट्टियाँ। सबसे ऊपर तिकोनी पट्टी है; उसके नीचे है एक बार मोड़ी पट्टी; उसके नीचे चौड़ी पट्टी; अन्तमें पतली पट्टी।

जहाँ जैसी आवश्यकता होती है, वैसी बाँधी जाती हैं। इस बातके कुछ मुख्य उदाहरण नीचे दिये जाते हैं –

(१) सिरके लिये—कर्णके पास पट्टीके किनारेको $1\frac{1}{2}$ इंच मोड़ो। इस मोड़को मस्तक पर भौहों तक लाओ और शेष पट्टी सिरपर रक्खो। पट्टीका शीर्ष पीछे गर्दन पर लटकता रहे। अब पट्टीके दो सिरोंको कानके ऊपरसे सिरके पीछे लाओ और फिर पीछे एक-हरी गाँठ देकर इन सिरोंको आगे ले आओ और मस्तक पर गाँठ लगा दो। फिर शीर्षको सावधानीसे सेफ़्टी पिन द्वारा पट्टीमें टाँक दो (चित्र ५)।
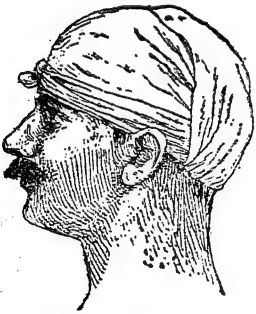
चित्र ५—सिरकी पट्टी।

(२) कन्धेके लिये—पट्टीके कर्णके पास पट्टीमेंसे $1\frac{1}{2}$ इंचका किनारा मोड़ो; पट्टीका मध्य भाग कन्धे पर इस प्रकार रक्खो कि शीर्ष ऊपर-की ओर गर्दनपर रहे। सिरों-को भुजाके बीचमें चारों ओर लपेट कर गांठ लगा दो। अब एक दूसरी पट्टी लो और मोड़कर 'चौड़ी' पट्टी बनाओ और भुजाको थामने-के लिये इसका 'झोला' (स्लिंग) बनाओ। झोला निम्न प्रकार बनाते हैं। 'चौड़ी' पट्टीका एक-एक सिरा एक-एक कन्धे पर लाओ, और फिर दोनों सिरोंको गर्दनके पीछे बाँध दो। पहली पट्टी का शीर्ष झोले के नीचे है, और इसे दृढ़तासे खींचकर बाहर लाओ और तानकर जहाँ ख़तम हो वहाँ सेफ़्टी पिनसे टाँक दो (चित्र ६)।

चित्र ६—कन्धेकी पट्टी।

(३) कूल्हे के लिये—कूल्हेकी हड्डीके ऊपर 'पतली' पट्टी लपेटकर बाँधो। अब एक दूसरी पट्टी लो और इसे कर्णके पास $1\frac{1}{2}$ इंच मोड़ो। पट्टीके मध्य भागको घाव पर रक्खो। मोड़को अब जंघा पर लपेटो और बाँधो। इस पट्टीके शीर्षको खींचकर "पतली" पट्टीके नीचेसे निकालो और फिर ऊपर लाकर सेफ़्टी पिनसे टाँक दो (चित्र ७)।
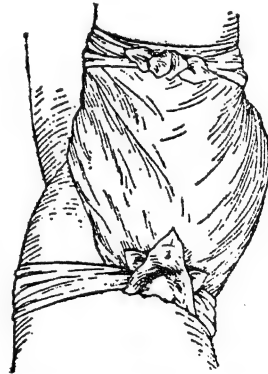
चित्र ७—कूल्हेकी पट्टी

(४) छाती या पीठके लिये—पट्टीका मध्य भाग घाव पर रक्खो, इसके शीर्षको कन्धे पर और सिरोंको धड़के
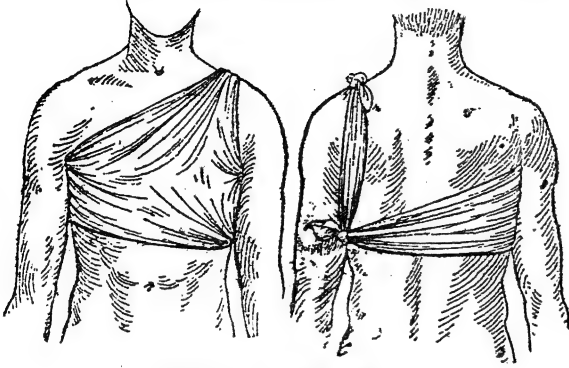
चित्र ८—छातीकी पट्टी।

चारों ओर। दोनों सिरोंमें गाँठ लगा दो। फिर एक सिरेसे शीर्षको बाँध दो (चित्र ८)।

चित्र ९ भुजाके लिये बड़ा झोला

चित्र १०—हाथके लिये छोटा झोला

(५) भुजाके लिये एक 'चौड़ी' पट्टी लो (चित्र ३)। दोनों कन्धों परसे ले जाकर सिरोंको पीछे ले जाओ और उनमें पीठ पर गाँठ लगा दो (चित्र १०)।

यदि भुजाके अधिक भागको सहारा देना हो तो पूरी पट्टी फैलाओ और भुजाको मध्य भागमें रक्खो। पट्टीका शीर्ष कुहनीके पाछेकी ओर हो। सिरोंको कन्धे पर बाँध दो। अब शीर्षको आगे लाओ और पट्टोमें पिनसे लगा दो (चित्र ९)।

(६) हथेलीके लिये—खुली पट्टोके कर्ण पर कलाई रक्खो। अँगुलियाँ शीर्षकी ओर रहें। शीर्षको उलटकर कलाई पर ले जाओ। अब दोनों सिरोंको कलाईके चारों ओर लपेट कर गाँठ लगा दो (चित्र ११ क)।

(७) पैरके लिये—फैली हुई तिकोनी पट्टीके बीचमें पैर रक्खो. अंगूठा शीर्षकी ओर हो। अब शीर्षको उठाकर चरणके ऊपर रक्खो। फिर सिरोंको ऊपर उठाओ और आगे

चित्र ११ क हथेलीकी पट्टी।

चित्र ११ पैरकी पट्टी।

कैंचीकी तरह एकको दूसरे पर चढ़ाकर टखनेके चारों ओर एक बार लपेटो और गाँठ दे दो (चित्र ११)। शीर्षको आगे निकालो और चरणके ऊपर इसे पिनसे पट्टीमें टाँक दो।
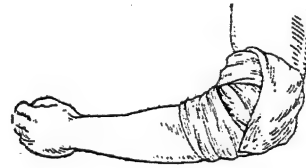
चित्र १२—कोहनीकी पट्टी।

(८) कोहनीके लिये—कर्णके पास पट्टीमें भीतरकी ओर एक पतला किनारा मोड़कर पट्टीके शीर्षको भुजाके पृष्ठपर और कर्णके मध्य भागको अग्र बाँहके पृष्ठपर रक्खो। सिरोंको पहले कोहनीपर एकहरी गाँठसे बाँधो और फिर भुजाके चारों ओर लपेट कर गाँठ दो। शीर्षको नीचे लाकर पिनसे टाँक दो (चित्र १२)।

(९) घुटनेके लिये—पट्टीके कर्णकी ओर थोड़ासा हिस्सा मोड़कर वहाँ पट्टी दोहरी कर लो। फिर शीर्षको जंघा पर रक्खो, और कर्णके मध्य भागको घुटनेके ठीक

नीचे। सिरोंमें पहले घुटनेके पीछे एकहरी गांठ लगाओ। फिर जंघाके चारों ओर लपेटो और बाँध दो (चित्र १३)। शीर्षको नीचे लाकर कर्ण पर पिनसे टाँक दो।

चित्र १३—घुटनेकी पट्टी

जब उपयोगमें न हो—तिकोनी पट्टीसे काम न लेना हो तो उसे इस प्रकार मोड़कर रक्खो। तिकोनी पट्टीकी "पतली" पट्टी बनाओ। दोनों सिरोंको उठाकर बीचमें लाओ। अब मोड़कर इसे चौथाई कर दो, अब ६½ इंच लंबा और ३½ इंच चौड़ा पैकेट बन जावेगा। इस तरह लपेटकर इस पट्टीको रक्खो।

हाथ लटकाने के लिये झोले—हाथ लटकाने या थामनेके लिये तीन प्रकारके झोले (स्लिंग) काम आते हैं—

(१) पूरी भुजाके लिये झोला।

(२) छोटा झोला।

(३) सेंटजॉन झोला।

(१) पूरी भुजा के लिये झोला- यह पूरी निम्न-भुजाको सहारा देनेके काम आता है। तिकोनी पट्टीको पूरा बिछा लो। इसके एक सिरेको उस कन्धे पर रक्खो जिस ओर चोट न लगी हो। गलेके पीछेके लाकर इसे उस कन्धे पर ले आओ जिस ओरकी बाँहमें चोट लगी है। पट्टीके दूसरे सिरेको छातीके सामने लटकने दो। शीर्षको आहत भुजाकी कोहनीके पीछे ले जाओ और अग्रबाहुको पट्टीके मध्य भाग पर रक्खो। अब दूसरे सिरेको पहले सिरे तक ले जाओ और गाँठ लगा दो। शीर्षको आगे निकालो और पट्टीके आगे दो पिनोंसे इसे टाँक दो (चित्र ६)।

(२) छोटा झोला- यह कलाईको तो थामता है, पर कोहनी मुक्त रहती है। जिधर चोट न लगी हो उस ओरके कन्धे पर "चौड़ी" पट्टीका एक सिरा रक्खो। गलेके पीछेसे निकाल कर इसे आहत भुजाकी ओरके कन्धे पर लाओ। कलाईको पट्टीके मध्य भाग पर इस प्रकार रक्खो कि सामने वाला किनारा "कनिष्ठा" अँगुलीके नीचे हो। अब दूसरे सिरेको पहले सिरे तक लाकर गाँठ दे दो (चित्र १०)।

चित्र १४ - सेंटजॉन झोलाका आरंभ।

(३) सेंटजॉन-झोला—इस झोलेमें हाथ अच्छी तरह ऊपर उठा रहता है। [नीचे जो बातें दी हैं, वे उस समयके लिये हैं जब चोट बायीं ओर लगी हो। जब चोट दाहिनी ओर हो तो "बायें" शब्दके स्थानमें "दाहिनी" शब्द पढ़ना चाहिए और "दाहिने" के स्थानमें "बायीं"।]

(क) रोगीका बायाँ हाथ छातीके दाहिने भाग पर ऐसे रक्खो कि अँगुलियाँ दाहिने कन्धेकी ओर हों, और हथेली छातीकी हड्डीपर हो।

(ख) तिकोनी पट्टी पूरी खोल लो। इसका शीर्ष अपने दाहिने हाथमें पकड़ो और एक सिरा बायें हाथमें लो। पट्टीको इस प्रकार पकड़ कर रोगीकी बायीं भुजा पर बिछाओ। शीर्ष कोहनीसे खूब नीचे बढ़ी रहे। अपने बायें हाथ वाला सिरा रोगीके दाहिने कन्धे पर रक्खो (चित्र १४)।

चित्र १५—सेंटजॉन झोला सामनेसे।

(ग) बायीं कोहनीको अच्छी तरह थामें रहो। पट्टीके कर्णको बायें हाथ और भुजाके नीचे खिसकाओ और नीचे वाले सिरेको पीठपरसे होते हुये दाहिने कन्धे पर ले आओ। शीर्षको बाहरकी ओर लटकने दो। दोनों सिरोंको हँसली (गलेके नीचेकी कॉलर-बोन) की दाहिनी ओरकेगड्ढेके ऊपर बाँध दो।

(घ) अपने बायें हाथसे बायीं भुजापर पड़ी हुई पट्टीके किनारेको कुछ उठा लो और अपने दाहिने हाथसे शीर्षको बायीं भुजा और उठाई पट्टीके बीचमें डाल दो।

हिन्दुस्तानमें सौगन्धिक द्रव्योंका निर्माण*

[ले० डा० सद्गोपाल डी० एस-सी०]

पूर्व कालका स्वतंत्र भारत विद्या, धन, वैभव, कला, कौशल और व्यापार आदि में सर्वतोमुखी उन्नतिके कारण 'विश्वगुरु' प्रसिद्ध रहा है। जिस प्रकारसे नेत्रेन्द्रिय के विकासके परिणामस्वरूप भारतमें चित्र-कला और मूर्ति-निर्माण और कर्णेन्द्रिय तथा कण्ठके विकासके साथ संगीत शास्त्र उन्नतिकी चरमसीमा पर पहुँचे हुए थे उसी प्रकार घ्राणेन्द्रियके विकासके साथ हिन्दुस्तानमें सौगन्धिक द्रव्यों के निर्माण रूपमें एक बड़े भारी व्यापारकी नींव पड़ चुकी थी। वास्तवमें हिन्दुओंका सौगन्ध-शास्त्रका प्रारम्भ देवपूजन से ही होता है। नित्यप्रतिकी ईश्वरी वासनामें पुष्पोद्यान और सुगन्धित फूलोंका व्यवहार सदैवसे चला आता रहा है। आज कल भी यह प्रथा देखनेमें आती है कि मथुरा वृन्दावन तथा रामेश्वरम् इत्यादि स्थानोंके सुप्रसिद्ध मन्दिरों के पुजारी स्वयमेव पुष्पोंके सौगन्धिक रस और इत्र आदि देवपूजनके लिये निकाला करते हैं। गृह-निर्माण-शास्त्रके पंडितों ने भी प्रत्येक आर्य गृहमें पुष्प-वाटिकाओंका होना आवश्यक कहा है। वात्स्यायन आदि आचार्यों ने सुगन्धित पुष्पोंके उपयोगका आदेश प्रत्येक गृहस्थके लिये किया है। सुश्रुत, चरक, भावप्रकाश, निघण्टु, लोलिम्बराज और भर्तृहरिशतकत्रम् इत्यादि प्राचीन ग्रन्थोंमें सौगन्धिक द्रव्यों के औषध प्रयोग और श्रृंगारात्मक वर्णन बहुत विस्तारमें मिलते हैं। इन सब बातोंसे आर्यों का पुष्प और गन्ध प्रेम स्पष्ट है।

जिस समय भारत इस शास्त्रमें सर्वाङ्ग पूर्ण उन्नति कर चुका था उस समय पश्चिमी देश अभी सभ्यताके प्रकाशकी प्रथम रेखाका दर्शन भी न कर पाये थे। परिणामस्वरूप हमारे देशके पूर्वजोंको इन सौगन्धिक पदार्थों का निर्माण विदेशोंकी माँगको पूरा करनेके लिये भी प्रचुर मात्रामें करना पड़ता था। संसारके प्रत्येक सभ्य राष्ट्रको सौगन्धिक पदार्थ हिन्दुस्तानसे ही भेजे जाते थे। मिश्रदेशके पिरेमिडोंमेंसे निकाले हुए तूतनखामेन और अन्य लोगोंके "मर्मी" के साथ हिन्दुस्तानके विशिष्ट सौगन्धिक पदार्थों की वर्तमानता, सम्राज्ञी क्लियोपाट्राके स्नानके लिये हिन्दुस्थानसे सुगन्धित जलों व इत्रोंका भेजा जाना, पारसी, यहूदी और कैथोलिक लोगोंके मन्दिरोंमें भारतीय धूप आदि का उपयोग, कवि होमरके 'ईलियड" और "ओडिसी" में भारतीय सौगन्धिक द्रव्योंका सांकेतिक उल्लेख और अरब देशके महान् नेता मुहम्मद द्वारा अपने अनुयायियोंको हिन्दुस्तानके विशिष्ट सौगन्धिक द्रव्योंके नाम पर आकर्षित करना, ये सब बातें इस क्षेत्रमें हमारे देशकी महत्ताके प्राप्त प्रमाण हैं। यूनान देशके सम्राट सोलोनने तो ईर्ष्यावश अपने देशमें भारतीय सुगन्धोंका बेचा जाना निषिद्ध कर दिया था। रोमके सम्राट् नरो ने अपनी प्रेयसी पॉपियाके मरने पर उसके मृतक संस्कारके लिये इतनी भारी मात्रामें भारतीय गन्धोंका प्रयोग किया था कि उस वर्ष फिर वे पदार्थ पश्चिमी देशों में दुर्लभ हो गये थे। हमारे वर्तमान शासकोंके देश इंगलैंडमें सम्राज्ञी इलिज़बेथके समय उसके सम्मुख जानेके लिये विविध अवसरों पर विशिष्ट सौगन्धिक द्रव्योंका उपयोग अनिवार्य था। उस समय इंगलैंडमें भारतीय गन्धोंका प्रेम और उपयोग इतना बढ़ गया था कि सन् १७७० ई० में पार्लियामेंटको यह कानून पास करना पड़ा कि यदि कोई स्त्री विशेष प्रकारके सौगन्धिक द्रव्यों और वेशभूषा द्वारा आकर्षित करके किसी पुरुषको अपने विवाह-पाशमें बाँध लेवे तो पुरुषके द्वारा शिकायत होने पर यह विवाह-सम्बन्ध तोड़ा जा सकता था। इन सब राष्ट्रोंको सौगन्धिक द्रव्योंके लिये एकमात्र भारतवर्ष पर अवलम्बित रहना पड़ता था।

इन्हीं सब कारणोंसे हमारे देशका यह उद्योग-धन्धा इतनी उन्नति पा गया कि इस क्षेत्रके व्यापारी करोड़पति बन गये। कन्नौज, ग़ाज़ीपुर, जौनपुर, जयपुर, अमृतसर और पूना इत्यादि कई स्थानों पर इस व्यापारके भारी केन्द्र खड़े हो गये।

हमारे देश पर ऐसी विशेष दैवी कृपा कही जा सकती है कि यहाँके फल व फूल तो सुगन्धित होते ही हैं अपितु विशेष प्रकारके घास, लकड़ियाँ और जड़ें आदि भी सौग-

* विज्ञान परिषद्के गत वर्षके वार्षिक अधिवेशनमें दिया गया भाषण।

न्धिक रसोंसे परिपूर्ण हैं। फ़ाहियान और तयूनासोग जैसे सुप्रसिद्ध विदेशी यात्रियों ने भारतकी इस विशिष्टताकी ओर विशेष रूपसे संकेत किया है। इसके विपरीत विदेशोंमें जापान जैसे भी राष्ट्र हैं जिनके फूल रंग बिरंगे और चित्ता-कर्षक होते हुए भी सर्वथा गन्धहीन रहते हैं।

ऐश्वर्य और भोगविलासमें पड़कर हमारे पूर्वजों ने न केवल सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक रूपमें ही अवनत होना शुरू किया किन्तु कला-कौशल, उद्योग-धन्धों और व्यापार आदिमें भी पिछड़ने लगे। धीरे-धीरे यह प्रभाव भारतके इस महान् व्यापार पर भी पड़ने लगा और पश्चिमी राष्ट्रों ने अपने सौगन्धिक द्रव्यों द्वारा भारतीय पदार्थोंका निर्यात रोकना शुरू किया। पिछले ७०-८० वर्षों में यूरोपीय व्यापार ने इतनी उन्नति की है कि हमारे देशसे सौगन्धिक पदार्थोंका निर्यात प्रायः बन्द हो कर आयात इस पराकाष्ठा तक पहुँच चुका है कि आज देशमें शुद्ध भारतीय सौगन्धिक द्रव्योंका मिलना भी दुर्लभ है। हमारी अवनति और अज्ञानकी यह पराकाष्ठा है कि आज कलके भारतीय गंधी लोग यह कहते सुनाई पड़ते हैं कि चमेली, बेला, जूही, और केवड़ा आदि फूलोंमें तो 'रूह' होती ही नहीं। खसके साबुनोंका उपयोग हिन्दुस्तानके सिवाय कहीं अन्यत्र नहीं होता। किन्तु साबुनोंके लिये खसकी रूह फ्रांस और हालैंडसे मँगाई जाती है। देशमें हज़ारों और लाखों मन गुलाबके फूल होते हुए भी गुलाबकी रूह बलगेरियासे ही आती है, तथा भारतीय साबुनों, अंगरागों और सुगन्धित पदार्थों पर १००% स्वदेशीकी मुद्रा होते हुए भी उनमें सभी गन्ध विदेशी डाले जाते हैं। परिणाम यह हो चुका है कि कन्नौज जैसे स्थानों पर भी ९०% पदार्थ विदेशी ही बेचे जाते हैं और केवल १०% बिक्री भारतीय इत्रादिकी होती है।

इस अवनतिका जीता जागता चित्र निम्नांकित निर्यात कोष्ठोंसे मिलता है। स्पष्टीकरणके लिये थोड़ेसे अंक सारिणी नं० १ में दिये जा रहे हैं।

पदार्थों के नाम	निर्यातका मूल्य (अधिकतम)	निर्यातका मूल्य (न्यूनतम)	दर	
			अधिकतम	न्यूनतम
चन्दनका तेल	४८,५०,००० रु० / १९२०-२१	२२,३१,००० रु० / १९३४-३५	५० शि०	२४ शि०
पामारोसा ”	११,२०,००० ” / १९२५-२६	५०२,००० ” / १९३४-३५	२३ ”	६ ”
लैमनग्रास ”	२६,००,००० ” / १९२०,२१	९,२२,००० / १९३४-३५	२० ”	$२\frac{१}{२}$ ”
सिट्रोनेला ”	१,४०,००० ” / १९२१-२२	० ” / १९३४-३५	$२\frac{१}{२}$ ”	० ”
जिंजरग्रास ”	९०,००० ” / १९२०-२१	० ” / १९३४-३५	१० ”	० ”
अजवायन ”	९०,००० ” / १९२३-२४	० ” / १९३४-३५	३० ”	० ”

इसके विपरीत आयातके अंक भी दर्शनीय हैं। ये सरकारी अंक विश्वसनीय नहीं कहे जा सकते क्योंकि सौगन्धिक पदार्थोंका विभाजन इतना ग़लत किया गया है कि इनको रङ्गों और दवाइयोंके कोष्ठोंमें भी ढूँढ़ना पड़ता है। फिर भी इन अंकोंसे इस व्यापारकी साधारण स्थितिका परिचय मिल जाता है :—

१९३२-३३ में १४,५३,९२८ रु०

१९३३-३४ में १८,४०,७१४ रु०

१९३४-३५ में २४,९४,३०८ रु०

इन आयातके अंकोंमें अगर केशर औषध रूपमें और

अंगरागोंके रूपमें आये हुए विदेशी पदार्थोंके मूल्यको जोड़ा जावे तो आयातके इन अंकोंका मूल्य एक करोड़के लगभग जा पहुँचता है। जिस देशकी मिट्टी तकका भी इत्र २०) तोला बिक सकता है उस देशको लाखों रुपयोंका सौगन्धिक द्रव्य केवल गन्धहीन फूलोंके देश जापानसे भी मँगाने पड़ें और देशमेंसे एक करोड़ रुपयेका वार्षिक निर्यात होता रहे यह कटु सत्य कितना हास्यास्पद और दयनीय है।

स्वाभाविकतया यह प्रश्न उठता है कि हमारे देशके इस भारी व्यापारकी यह दुरावस्था क्यों हुई है। मेरी सम्मतिमें इस अवनतिके प्रमुख कारण ये कहे जा सकते हैं:-

(१) भारतीय सौगन्धिक द्रव्योंके गुण धर्म इतने अस्थिर और अव्यवस्थित चले आ रहे हैं कि यह कहना कठिन है कि सर्वथा शुद्ध पदार्थोंका वास्तविक स्वरूप क्या है। सौगन्धिक तैल अथवा रुप सदैव एक गुण स्वाभाव वाले पदार्थ माने जाते हैं। यूरोपीय सौगन्धिक तैल इसी आधार पर बेचे जाते हैं। किन्तु हिन्दुस्तानके गन्धी लोग इस सत्यसे भी अपरिचित हैं। गुलाबकी शुद्ध रुह (१) आपको कन्नौजके व्यापारी लोगोंसे ४०), ५०), ६०), और ८०) तोलोंके दरोंसे मिल सकती है। इन लोगोंसे इस हास्यास्पद भेदभावका कारण पूछा जावे तो उत्तर मिलता है कि ८०) तोले वाला रुह बहुत असली है, ६०) वाला उससे कमसे, ५०) वाला उससे भी कम और ४०) वाला सबसे कम असली है। किन्तु आश्चर्य यही है कि सभी दरके रुह हैं असली। विज्ञानसे परिचित लोगोंको यह धोखाधड़ी देख कर हँसना पड़ता है। यह तो प्रायः सर्व साधारण प्रथा है कि हिन्दुस्तानी इत्रोंके गुणधर्म एक न रखकर मूल्य सदैव एक रक्खा जाता है। यदि चन्दन तैल और फूलके भाव चढ़ गये तो उसी पुराने मूल्य पर घटिया इत्र बनाये जाते हैं और यदि भाव घट गये तो बढ़िया इत्र। इत्रोंका बाज़ारी भाव न बदल कर उनके गुण धर्म और समाहरण ही परिवर्तित किये जाते हैं।

पश्चिमी वैज्ञानिकों ने इतने समान और एक रस गुणधर्म वाले पदार्थ बेचना प्रारम्भ किया कि स्वाभाविकतया भारतीय पदार्थोंपरसे लोगोंका विश्वास उठ गया और यूरोपीय पदार्थोंका आधिपत्य बढ़ता गया।

(२) हिन्दुस्तानमें प्रायः सभी सुगन्ध चन्दन तैलके आधार पर खींचे जाते रहे हैं। इस सनातन विधिमें ज़रासा भी परिवर्तन नहीं हुआ है। यही कारण है कि भारतीय इत्र अधिक चिरस्थायी होते हैं। इन इत्रोंमें वास्तविक फूलोंके सुगन्धका अंश बहुत कम रहता है किन्तु, अंशके उड़ जाने पर भी इत्रके चन्दनका अंश रहता ही है। चन्दन तैलकी गन्ध चिरकाल तक जमी रहती है। साधारण जनता सुगन्ध शास्त्रसे अपरिचित होनेके कारण यही समझती है कि फूलके इत्रका गन्ध चिरस्थायी है किन्तु वास्तवमें वह गन्ध विशेषतया चन्दन तैलका ही होता है।

जो बात साधारण दृष्टिसे भारतीय इत्रोंकी विशेषता समझी जाती रही वही अन्तमें जाकर इस व्यापारकी हत्या का मुख्य कारण बनी। पश्चिमी विज्ञानकी उन्नतिके कारण यह माँग होने लगी कि इत्रोंमें चन्दन नहीं होना चाहिये और फूलका अंश ही अधिक हो। भारतके गन्धी लोग इस माँगको सर्वथा पूरा न कर सके और इन पदार्थोंका निर्यात बन्द हो गया। धीरे-धीरे पश्चिमी सुगन्धोंके आयात का प्रवाह इस वेगसे हमारे देशमें चलने लगा कि आज भारतीय इत्रोंका बाज़ार ७५% कम हो चुका है।

वैज्ञानिक शिक्षाके सर्वथा अभावके कारण भारतीय गन्धी इस समस्याको आज भी हल नहीं कर पाये हैं। कहीं व्हाइट ऑयल पर इत्र बनाये जाते हैं और कहीं कृत्रिम सुगन्ध असलीके नाम पर बेचे जाते हैं। यह एक कटु सत्य है कि भारतीय इत्रोंका व्यापार आज मरणासन्न हो गया है।

(३) वैज्ञानिक उन्नतिसे रासायनिकोंने अलकतरासे प्राप्त विविध उद्गमोंसे तथा अन्य उपायों द्वारा कृत्रिम सौगन्धिक रसायनोंके निर्माणमें इतनी उन्नति की है कि उसके सामने हमारे गन्धी लोग ज़रा भी नहीं ठहर सके और भारतीय व्यापारकी अन्तिम लड़खड़ाती टाँग भी टूट गई है।

(४) भारतीय गंधी अपनी अज्ञानताके कारण इतने कट्टरपंथी हो गये हैं कि जिसे चमड़ेकी कुप्पी और कच्ची शीशी तथा रुईके फाहे पर भारतीय इत्र तूतनखामेनको भेजे जाते होंगे वही कुप्पी, कच्ची शीशी और फाहे आज भी वर्ते जा रहे हैं। इसके विपरीत पश्चिमी सुगन्ध इतने सुन्दर और चित्ताकर्षक रूपमें "पैक" किये जाते हैं कि

अधिकांश जनता शीशियोंके आकर्षण और लोभसे ही विदेशी इत्र इत्यादि खरीद लेते हैं।

(५) साबुन तथा अंगरागोंके भारतीय कारखानदारोंकी राष्ट्र-घातक नीति जिसके द्वारा इन पदार्थोंमें सभी सुगंध विदेशी डाले जाते हैं। न तो इन्हें भारतीय पदार्थ उपयोगमें लानेकी आवश्यकता ही प्रतीत होती है और न ऐसा कर सकने की योग्यता ही इन्हें प्राप्त है।

अंगराग जैसे पदार्थोंके बनानेमें तीन चौथाई व्यय और शीशी इत्यादि पर होता है। भारतीय कारखानदार जनतासे स्वदेशीके नाम पर इन पदार्थोंको खरीदनेका अनुरोध करते हैं। किन्तु स्वयं ये "देश भक्त (?)" भारतीय सुगन्ध उपयोगमें लानेको तैयार नहीं हैं। ऐसी अवस्थामें यह बात विचारणीय है कि उनके बनाये हुए साबुन व अन्य अंगराग कहाँ तक भारतीय कहे जा सकते हैं।

इन कठिनाइयोंमेंसे यदि भारतीय साबुनादि अंगरागोंके कारखानदारोंकी देश-घातक नीति और पैकिङ्गको समस्याको अलग रख लिया जावे तो तीन मुख्य प्रश्न शेष रह जाते हैं:—

(१) प्राकृतिक साधनों द्वारा सौगन्धिक तैलों और तद्भव रसायनोंका निर्माण (२) अलकतरा तथा अन्य रसायनों द्वारा प्राप्त साधनोंसे सौगन्धिक रसायनोंका निर्माण और (३) ऐसे पदार्थोंके गुण धर्मका नियमन।

हमारे देशके दुर्भाग्यसे अलकतरा और अन्य रसायनोंके निर्माणका कार्य अभी प्रारम्भ न होनेसे ऐसे सभी प्रयत्न असफल हो रहे हैं और रहेंगे जिनके निर्माणमें इन पदार्थों पर आश्रित रहना अनिवार्य है। ऐसी अवस्थामें यह बात निश्चित है कि इन सभी परम आवश्यक रसायन पदार्थोंके अभावसे संश्लेषित सुगन्धोंके व्यवसायका भारतमें अभी अपने पाँव पर खड़ा होना नितान्त असंभव है।

अब रहा प्राकृतिक साधनों द्वारा सौगन्धिक पदार्थों के निर्माणका प्रश्न। इस दृष्टिसे हमारी भारत भूमि सर्व श्रेष्ठ कही जा सकती है। प्राकृतिक साधनोंका जितना प्राचुर्य हमारे देशमें है उतना संसारके किसी भी अन्य देशमें नहीं है।

सौगन्धिक द्रव्योंके प्राकृतिक साधनोंको १७० वर्गोंमें विभक्त किया गया है। इन वर्गों में कुल ११०० के लगभग फल, फूल और पत्ती इत्यादि सम्मिलित हैं। हिन्दुस्थानमें अभी तक के अनुसन्धानके अनुसार लगभग ११० वर्गोंमें विभक्त ८५० के लगभग पदार्थ आज भी प्रचुर मात्रामें प्राप्त हैं। अन्य पदार्थोंको यहीं उत्पन्न करनेके लिये आवश्यक मिट्टी, जल, वायु और खाद इत्यादिके रूपमें सभी साधन विद्यमान हैं।

सौगिन्धक वनस्पतियों तथा अन्य प्राकृतिक साधनको इन वर्गोंमें बाँट कर रक्खा जा सकता है:—

(१) घास : सिट्रोनैला, लैमनग्रास, पामारोसा और जिंजरग्रास।

(२) फूल : देवभभूती, मिमोसा, वायोलेट, गुलाब, प्याज, लहसुन, पाइरेथरम, संतरेका फूल।

चमेली, बेला, जूही, पारिजातक, मालती, मोगरा, मोतिया, जैस्मिन, केवड़ा, केशर, गंधराज, नरगिस, गेंदा, चैरी, मैगेनोलिया और गारडोनिया इत्यादि।

(३) फूल व पत्ती : लैवेंडर, रोजमरी, कर्पूर और लवंग इत्यादि।

(४) पत्ती और डंडी : पानड़ी, नारंगीके पत्ते, दारचीनी यूकलिप्टस, और जिरेनियम इत्यादि।

(५) छाल : दारचीनी इत्यादि।

(६) लकड़ी : चन्दन, लिनेलो, अगर और गजक इत्यादि।

(७) जड़ें : चन्दन; खस, कुलिंजन, स्कमोनी, इरिसग और कुट इत्यादि।

(८) मूल : अदरक और हल्दी इत्यादि।

(९) बीज : सौंफ, जायफल, अजवायन, नागरमोथा, जीरा शुम्बुल, मुश्कदाना और धनिया इत्यादि।

(१०) फल : नींबू, संतरा, लाइम, मालटा तथा बर्गेमाट इत्यादि।

(११) गोंद और राल : मर्रे, ओलीबानम, डीकामाली, शिलारस और मस्तगी इत्यादि।

(१२) फलियाँ : वैनिला और टोंका इत्यादि।

(१३) जान्तव पदार्थ : कस्तूरी और नख इत्यादि।

इन पदार्थोंको उपयोगमें लानेके लिये सर्व प्रथम

आवश्यक बात यह है कि इनमेंसे विशुद्ध सौगन्धिक तेल निकालनेके लिये आवश्यक विधिका उपयोग किया जावे। आजकल स्रावण विधि (distillation) निष्पीड़न विधि (expression) पुष्पोपासना विधि (enfleurage) उड़नशील विलायकों द्वारा निष्कर्षण (solvent extraction method) और शोषण विधि (absorption) के अनुसार इन सौगन्धिक तैलोंको निकाला जाता है। हमें भी इनमेंसे प्रत्येक विधिका उचित अवलम्बन आवश्यक परिवर्तनोंके साथ करना होगा।

साधारणतया अधिकांश तैलोंको जलीय अथवा वाष्पीय स्रावण विधियोंसे ही निकाला जाता है। जलीय-- स्रावण विधिमें हमारे देशने जो विशेषता प्राप्त की है यदि उसे थोड़ेसे उचित परिवर्तनके साथ वैज्ञानिक रीतिसे ठीक कर लिया जावे तो हमारी बहुत-सी कठिनाइयाँ हल हो सकती है। आजकलके शिक्षित समुदायमें जलीय स्रावण विधिके लिये यह विचार खड़ा हो रहा है कि यह निकृष्ट, पुरानी और मूर्खतापूर्ण विधि होनेसे त्याज्य है। मैं मानता हूँ कि नवीन वाष्पीय स्रावण विधि और विशेषतया शून्यमें की गई स्रावण विधि कई अंशोंमें अन्य साधारण विधियोंसे उत्तम हैं। किन्तु मेरे अपने अनुभवमें यह बात सिद्ध हुई है और आज यह बात सर्वमान्य भी हो चुकी है कि गन्धोंकी जो विशिष्टता और सर्वांगपूर्णता हमारे देशकी जलीय स्रावण विधि द्वारा प्राप्त सौगन्धिक द्रव्योंमें होती हैं वह वाष्पीय विधि द्वारा प्राप्त तैलोंमें नहीं होती। यही कारण है कि आज इतनी वैज्ञानिक उन्नतिके होते हुए भी हमारी पुरानी विधि द्वारा प्राप्त चन्दनका तैल वर्तमान वाष्पीय विधि द्वारा प्राप्त मैसूरके चन्दनके तैलसे अधिक ऊँचे दाम पर बिकता है। यह पर्याप्त प्रमाण हमारे देशको विधिकी श्रेष्टताका है। दूसरे जो लोग यह समझते हैं कि यूरोपमें वाष्पीय विधिके महान् यत्नोंका अवलम्बन करके इन प्राकृतिक सौगन्धिक पदार्थोंका निर्माण होता है वे सभी भ्रामक चक्रमें फँसे हुए हैं। पश्चिमी देशोंने यह भारतसे ही सीखा था। इसलिये आज भी सारे संसारमें हमारे देश की तरह ही जलीय वाष्पीकरण को उपयोगमें लाया जाता है। केवल कृत्रिम सौगन्धिक रसायनोंके लिये बड़े-बड़े यन्त्रोंका उपयोग होता है।

आवश्यकता इस बात की है कि पुरानी विधिमें गरम करने, तप्त-क्रमके नियमन और द्रवी भवन इत्यादि बातोंमें जो कमी है उनको वैज्ञानिक अनुभवोंसे दूर किया जावे। समयाभावसे आज इस बातका विस्तारपूर्वक वर्णन नहीं किया जा सकता।

इसके साथ-ही-साथ दूसरी आवश्यक बात यह है कि इन विविध रीतियों द्वारा प्राप्त विशुद्ध सौगंधिक तैलोंको रासायनिक प्रयोगों द्वारा इनके विशिष्ट और प्रमुख भागोंमें अलग किया जावे। इसके लिये शून्य या अवलम्बन नितान्त आवश्यक होगा। इस प्रकारसे लैमनग्रास ऑयलसे सिट्राल, सिट्राल लैमन, आयोनोन और मिथिल आयोनोन, पामारोसासे जिरेनियोल, जिरेनियोल रोज़ और जिरेनिल एसिटेट आदि एस्टर, सिट्रोनेलासे सिट्रोनेलोल सिट्रोनेलोल रोज़ और सिट्रोनेलिल एसिटेट इत्यादि एस्टर, चन्दनसे सैंटेलोल, सैंटेलोल रोज़ और सैंटेलिल एसिटेट इत्यादि एस्टर, खससे वैटीवॅरोल और इसके एस्टर, अजवायनसे थाइमोल और आइसो थाइमोल, पानड़ीसे पचॉलियोल जिरेनियमसे रहोडिनिल और रहोडिनिल एसिटेट इत्यादि एस्टर, बॉय दि रोज़से लिनेलोल और लिनेलिल एसिटेट इत्यादि एस्टर, विंटरग्रीनसे मिथिल सॅलिसीलेट, तारपीनसे टरपिनियोल, टरपिनियोल रोज़, टेरोपियोल, टरपिनिल एसिटेट इत्यादि एस्टर और काफूर इत्यादि अनेकानेक सौगन्धिक रसायन बनाये जा सकते हैं। इस ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

सौगंधिक तैल और रसायन आदि बन चुकने पर अवशिष्ट पदार्थोंमें भी पर्याप्त मात्रामें गन्धांश बचा रहता है। किन्तु यह अविलेय होनेसे पूर्व-कालमें फेंके जाते रहे। यदि इनको विलेय बना कर उपयोगमें लाया जावे तो इसी के भरोसे हमारा व्यापार स्वतंत्र रूपसे चल सकता है। मैंने इस दृष्टिसे ५०-६० पदार्थोंके गंधशेष रेज़िनायड बनानेमें सफलता प्राप्त की है। किन्तु अभी अन्य सैकड़ों पदार्थोंका बनाया जाना आवश्यक है।

तीसरी आवश्यक बात है कि इन सभी पदार्थोंको वैज्ञानिक रीतिसे एक गुण धर्म वाले बनानेके लिये पूर्णतया नियमन किया जावे। तभी हमारे पदार्थों को उप-

योगिता पर हमारे देशवासी तथा विदेश वालोंका विश्वास जा सकता है और इस व्यापार की निरन्तर उन्नति हो सकती है।

मेरा अपना क्रियात्मक अनुभव यह है कि यदि हम इन तीन बातोंका ध्यान रखते हुए इस व्यापारको संगठित करें तो शीघ्र ही बिना किसी विशेष कठिनाईके देशमें आधे आयातको एक दम रोका जा सकता है। तत्पश्चात् अन्य रासायनिक साधनों और आवश्यक अनुभवके प्राप्त होने पर शेष व्यापारमें भी उन्नति हो सकती है।

देशमेंसे लाखों रुपयोंके विदेशी आयातको रोकनेके लिये, प्राकृतिक और सुलभ साधनोंके आवश्यक उपयोगसे व्यापार की उन्नतिके लिये, गाँव और जंगलोंमें रहने वाले देशवासियोंको निर्वाहके लिये काम देने की दृष्टिसे और आर्थिक स्वराज्य को स्थापनाके लिये यह परम आवश्यक है कि हम अपने देशके इस महान् उद्योग-धंधेको शीघ्राति-शीघ्र स्वावलम्बी बना सकें।

आँवला

[ले० श्री रामेशवेदी, आयुर्वेदालङ्कार]

मात्रा – एकसे दो तोला।

रोग - कास, श्वास, स्वरभंग, छाती व फेफड़ेके रोग, हृद्रोग, वात रक्त और वीर्य-दोषोंको दूर करता है। वृद्धोंके अंगोंको बल देता है और बालकोंके अवयवोंको बढ़ाता है। इसके सेवनसे मेधा, स्मृति, कान्ति, दीर्घ आयु, निरोगता, इन्द्रियोंकी सबलता, देहाग्निकी दीप्ति, वर्णकी निर्मलता आदि गुण पुरुषमें आते है। कुटी प्रावेशिक विधि से इसे प्रयोग करने वाला वृद्ध पुरुष भी बुढ़ापेके चिन्होंसे रहित होकर नव यौवनको प्राप्त करता है। अत्यन्त वृद्ध च्यवन ऋषि इसके सेवनसे जवान हो गया था। इस लिए इसका नाम च्यवन प्राश रसायन रक्खा गया है।

ब्राह्म रसायन †—एक हज़ार (साढ़े बारह सेर) आँवलोंको दूधको ऊष्मामें स्विन्न करें। स्विन्न करनेकी विधि निम्न है—दूध भरी पतीलीके ऊपर एक हाण्डी रखें। इस हाण्डीके तलमें अनेक छोटे-छोटे छिद्र होने चाहिए। कपड़ मिट्टीसे सन्धि बन्धन करके हाण्डीमें आँवलोंको डाल दें। पतीलीके नीचे आग जलाएँ। दूधके वाष्प बन कर उठेंगे और वे आँवलोंको स्विन्न करेंगे। दूध इतना डालना चाहिए कि उबालने पर ऊपरकी हाण्डीमें न चला जाय। जब भी उबाल आता मालूम दे तो पतीलीके बाह्य पृष्ठ पर ठण्डे पानीमें भीगा कपड़ा रख दें, उबाल शान्त हो जायगा। ऊपरकी हाण्डीके मुखको ढक्कनसे ढक देना चाहिए। स्विन्न हो जाने पर आँवलोंको गुठली निकाल फेंकें और शेष भाग को छायामें सुखा लें। चूर्ण करें। आँवलेके इस चूर्णको एक हज़ार ताज़े आँवलोंका स्वरस पिलाएँ। रस डाल कर

---

† यथोक्तगुणानामामलकानां सहस्रं पिष्टस्वेदनविधिना पयस ऊष्मणा सुस्विन्नमनातपशुष्कमनस्थि चूर्णयेत्, तदामलकसहस्रस्वरसपोतं स्थिरापुनर्नवाजीवन्तीनागबलाब्रह्मसुवर्चलामण्डूकपर्णीशतावरीशंखपुष्पोपिप्पलीवचाविडङ्गस्वयंगुप्तामृताचन्दनागुरुमधुकमधूकपुष्पोत्पलपद्ममालती युवतीयूथिकाचूर्णाष्टभागसंयुक्तं पुनर्नागबलासहस्रपलस्वरसपरिपीतमनातपशुष्कं द्विगुणितसर्पिषा क्षौद्रसर्पिषा वा क्षुद्रगुडाकृतिं कृत्वा शुचौ दृढे घृतभाविते कुम्भे भस्मराशेरधः स्थापयेदन्तर्भूमेः पक्षं कृतरक्षाविधानमथर्ववेदविदा, पक्षात्यये चोद्धृत्य कनकरजतताम्रप्रवालकालायसचूर्णाष्टभागसंयुक्तमर्धकर्षं वृद्धया यथोक्तेन विधिना प्रातः प्रातः प्रयुञ्जानोऽग्निबलमभिसमीक्ष्य जीर्णे च षष्टिकं पयसा ससर्पिष्कमुपसेवमानो यथोक्तान् गुणान् समुश्नुत इति॥

इदं रसायनं ब्राह्मं महर्षिगणसेवितम्।
भवत्यरोगो दीर्घायुः प्रयुञ्जानो महाबलः॥
कान्तः प्रजानां सिद्धार्थश्चन्द्रादित्यसमद्युतिः।
श्रुतं धारयते सत्त्वमार्षं चास्य प्रवर्तते॥
धरणीधरसारश्च वायुना समविक्रमः।
स भवत्यविषं चास्य गात्रे संपद्यते विषम्॥

—चरक; चिकित्सित स्थान; अध्याय १; अभयामलक रसायनपाद; ५६ से ५६ तक।

रख दें और रोज़ घोटते रहें। रस सूख जाने पर इसका अष्टमांश निम्न द्रव्योंका चूर्ण मिलाएँ—शालपर्णी, पुनर्नवा जीवन्ती, नागबला, ब्राह्मी, मण्डूकपर्णी, शतावरी, शङ्ख पुष्पी, पिप्पली, वच, वयविडङ्ग, कौञ्च बीज, गिलोय, लाल चन्दन अगर, मुलहठी, मदारके फूल, नीला कमल, श्वेत कमल, मालतीके फूल, गुलाबको पंखुरियाँ और जूहीके फूल, । फिर इस चूर्णमें दो मन बीस सेर ताज़ी नागबलाका रस डालकर छायामें सुखाएँ। सूख जाने पर फिर पीस लें। एक भाग मधु तथा दो भाग घी मिला कर राबके सदृश बना लें। घृत भावित स्वच्छ और दृढ़ घड़ेमें बन्द कर दें। भूमिमें गढ़ा खोद कर बारह या सोलह अंगुल उपलोंकी राख बिछा दें, उस पर घड़ा रख दें। घड़ेके चारों ओर गढ़ेको उपलोंकी राखसे भर दें, घड़ेके मुखके ऊपर तथा चारों ओर बारह-बारह सोलह-सोलह अंगुल राख आ जानी चाहिए। पन्द्रह दिन बाद घड़ेको निकाल कर उसमें सोना, चाँदी, प्रवाल, ताम्र और फौलादकी सम भागमें मिश्रित, भस्मोंको अष्टमांश डाल दें। औषधि सेवन करते समय भी इसी अनुपातमें भस्में मिलाई जा सकती हैं। इस रसायनको कुटी प्रावेशिक विधिसे सेवन करना चाहिए।

आमलकावलेह※—पूर्ण गुणयुक्त एक हज़ार (साढ़े बारह सेर) आँवलोंको ढाककी ताज़ी गीली लकड़ीकी बनाई गई द्रोणीमें भर दें। द्रोणीका ढक्कन भी ढाककी लकड़ीका बना हो और मुख पर ठीक बैठ जाता हो कि वाष्प बाहर न निकल सकें। आँवलोंसे भरी हुई बन्द द्रोणीको उपलोंकी आग पर रक्खें। द्रोणीकी गीली लकड़ी और आँवलेके जलीय भागके वाष्पमें आँवले स्विन्न हो जाँयगे। स्विन्न हो जाने पर आगसे उतार कर खोल लें और ठण्डा होने दें। ठण्डा हो जाने पर गुठली और रेशे निकाल फेंके। आँवलोंको कुचल कर कपड़ेमेंसे हथेलीसे मलकर छाननेसे रेशे पृथक् हो जाते हैं। छने हुए आँवलोंमें पिप्पली चूर्ण और छिलके रहित वायविडङ्ग प्रत्येक छः सेर बत्तीस तोले, खाण्ड नौ सेर अड़तालीस तोले; तिल, तेल, घी और शहद प्रत्येक बारह सेर चौंसठ तोले यथाविधि मिलाकर घीसे भावित पवित्र और मज़बूत पात्रमें रक्खें। इक्कीस दिन पड़ा रहनेके बाद प्रयोग करें।

मात्रा—आधेसे एक तोला।

रोग—इसके नियमित सेवनसे बुढ़ापा दूर होता है और आयु सौ साल होती है। यह उत्कृष्ट रसायन है।

आमलकायस ब्रह्म रसायन※—माघ व फाल्गुन मास

※ यथोक्तगुणानामामलकानां सहस्रमार्द्रपलाशद्रोण्यां सपिधानायां वाष्पमनुद्वमन्त्यामारण्यगोमयाग्निभिरूपस्वेदयेत्, तानि सुस्विन्नशीतान्युद्धृतकुलकान्यापोथ्याढकेन पिप्पलीचूर्णानामढकेन च विडङ्गतण्डुलचूर्णानामध्यर्धेन चाढकेन शर्कराचूर्णानां द्वाभ्यां द्वाभ्यामाढकाभ्यां तैलस्य मधुनः सर्पिषश्च संयोज्य शुचौ दृढे घृतभाविते कुम्भे स्थापयेदेकविंशतिरात्रमत ऊर्ध्वं प्रयोगः अस्य प्रयोगाद्वर्षशतमजरमायुस्तिष्ठति।

—चरक; चिकित्सित स्थान; अध्याय १; प्राणकामीय रसापन पाद; १०।

※ करप्रचितानां यथोक्तगुणानामामलकानामुद्धृतास्थ्नां शुष्कचूर्णितानां पुनर्माघे फाल्गुने वा मासे त्रिःसप्तकृत्वः स्वरसपरिपीतानां पुनः शुष्कचूर्णीकृतानामढकमेकं ग्राहयेत्, अथ जीवनीयानां बृंहणीयानां स्तन्यजननां शुक्रवर्धनानां वयः स्थापनानां षड्विरेचनशताश्रितीयोक्तानामौषधगणानां चन्दनागुरुधवतिनिसखदिरशिंशपासनसाराणां चाणुशः क्षिप्तानामभयाविभीतकपिप्पलीवचाचव्यचित्रक विडङ्गानां च समस्तानामाढकमेकं दशगुणेनाम्भसा साधयेत् तस्मिन्नाढकावशेषे रसे सूपूते तान्यामलकचूर्णानि दत्वा गोमयाग्निभिर्वंशविदलशरतेजनाग्निभिर्वा साधयेद्यावदपनयाद्रसस्य, तमनुपदग्धमुपहृत्यायसीषु पात्रीष्वास्तीर्य शोषयेत्, सुशुष्कंकृष्णाजिनस्योपरि दृषदि श्लक्ष्णपिष्टमय स्थाल्यां निधापयेत् सम्यक् तच्चूर्णमयश्चूर्णाष्टभागसंप्रयुक्तं मधुसर्पिर्भ्यामग्निबलमभिसमीक्ष्य प्रयोजयेत्।

एतद्रसायनं पूर्वं वसिष्ठः कश्यपोऽङ्गिराः।
जमदग्निर्भरद्वाजो भृगुरन्ये च तद्विधाः॥
प्रयुज्य प्रयता मुक्ताः श्रमव्याधिजराभयात्।
यावदैच्छंस्तपस्तेपुस्तत्प्रभावान्महाबलाः॥
तपसा ब्रह्मचर्येण ध्यानेन प्रशमेन च।
रसायन विधानेन कालयुक्तेन चायुषा॥
स्थिता महर्षयः पूर्वं न हि किंचिद्रसायनम्।

में सर्वगुण युक्त आँवलोंको वृक्षपरसे अपने हाथसे तोड़ कर इकट्ठा कर लें। गुठलियाँ निकाल कर छायामें सुखा लें। इस शुष्क चूर्णको आँवलेके स्वरसकी इक्कीस भावना दें। प्रत्येक भावनाके बाद चूर्णको छायामें सुखाएं और पूर्णतया सूखजानेके बाद स्वरस डालना चाहिए। इक्कीस बार भावित यह चूर्ण छः सेर बत्तीस तोला लें। जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीर काकोली, मुग्द-पर्णी, माषपर्णी, जीवन्ती, मुलहठी, सारिवा, राजक्षवक, बला, काकोली, क्षीर काकोली, श्वेतबला, पीतबला, वनकपास, विदारीकन्द, विधारा, खस, शालि, साँठीके चावल, गन्ना, इक्षुवालिका, दाभ, कुश, सरकण्डा, गुन्द्रा, इत्कट (तृणभेद), जीवक, ऋषभक, काकोली, क्षीर काकोली, मुग्दपर्णी, माष-पर्णी, मेदा, शतावरी, जटामासी, कुलिंग, गिलोय, हरड़, आँवला, रास्ना, श्वेत अपराजिता, जीवन्ती, शतावरी, मण्डूकपर्णी, शालपर्णी, पुनर्नवा और चन्दन, अगर, धव, आबनूस, खदिर, शीशम, असन, इनके मध्यकाष्ठों (Heart woods) के छोटे-छोटे टुकड़े और हरड़, बहेड़ा, पिप्पली, वचा, चव्य, चित्रक, वायविडङ्ग; ये सब

ग्राम्याणामन्यकार्याणां सिध्यत्यप्रयतात्मनाम् ॥
इदं रसायनं चक्रे ब्रह्मा वार्षसहस्रिकम् ।
जराव्याधि प्रशमनं बुद्धीन्द्रियबलप्रदम् ।

—चरक; चिकित्सित स्थान; अध्याय १: करप्रचितीय रसायन पाद, २ से ७ तक।

द्रव्य मिलाकर छः सेर बत्तीस तोला लें। इन्हें एक मन चौबीस सेर जलमें सिद्ध करें। बारह सेर तेरह छटाँक जल शेष रहने पर कपड़ेमें छान लें। इस क्वाथमें पहलेसे तैयार किया हुआ आँवलोंका उपर्युक्त चूर्ण डाल दें। इसको उपलोंकी आगसे या फाड़े हुए बाँसकी आगसे अथवा सरकण्डे व तेजबलकी अग्निसे धीरे-धीरे तब तक पकाएं जब तक क्वाथ सूख न जाय। बहुत तेज़ आग न दें अन्यथा औषधके जल जानेका भय रहता है। क्वाथ भाग उड़ जाने पर औषधको निकाल कर लोहेके पात्रमें फैलाकर सुखा लें। अच्छी प्रकार सूख जाने पर काले मृगके चर्म पर रक्खी सिल पर चूर्णको भली प्रकार बारीक पीस लें और लोहेके पात्रमें रख छोड़ें। प्रयोगके समय इस चूर्णका आठवाँ भाग लोह भस्म मिला लें।

मात्रा—चूर्ण सोलह रत्ती + लोह भस्म दो रत्ती।

रोग – यह रसायन बुढ़ापे और रोगके असरको दूर करता है। बुद्धिको कुशाग्र करता है। इन्द्रियोंको बल देता है। आयु दीर्घ करता है। इस रसायनको ब्रह्मा ऋषि ने बनाया था। वसिष्ठ, कश्यप, अंगिरा, जमदग्नि, भार-द्वाज, भृगु और अन्य अनेक महर्षियोंने इस रसायनका सेवन किया था जिससे रोग और बुढ़ापेके कष्टोंसे मुक्त होकर वे सुखसे तप करते रहते थे।

अनुपान—मधु और घृत।

विषय-सूची

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग।

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते.
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ५२	प्रयाग, मीन संवत् १९९७ विक्रमी	मार्च, सन् १९४१	संख्या ६

विकासवाद

(ले० — श्री जगमोहन)

विकासवादको पूर्णरूपेण ग्राह्य माननेमें चाहे भले ही मतभेद हो, परन्तु इससे तो किसीको इन्कार न होगा कि जीवोंको उत्पत्तिमें एक क्रम है। उत्पत्ति-क्रमके इन्हीं निरोक्षणोंके पश्चात् विचारशील जीवशास्त्रज्ञों ने विकास-वादको जन्म दिया। उन्होंने जिन प्रमाणोंके आधार पर इस सिद्धान्तकी नींव डाली उन्हींका यहाँ दिग्दर्शन मात्र कराया जायगा।

आधारी समता

सब जीवधारियोंकी रचना और जीवन-क्रियामें आधारी समता पाई जाती है। पौधे हों चाहे प्राणी, एक कोष्ठीय जीव हों चाहे बहुकोष्ठीय; सब जीवन-रससे बने हैं और इन सबमें एक ही प्रकारकी जीवन-क्रियायें होती हैं। यद्यपि बहुकोष्ठीय प्राणियोंके कोष्ठोंके समूह पृथक-पृथक कामके लिये विशिष्ट होते हैं और उनकी रचनायें भी भिन्न-भिन्न होती हैं तथापि मूल जीवों और स्पंजोंको छोड़कर शेष सब प्राणियोंमें एक ही प्रकारके कोष्ठ-पुंज पाये जाते है। सब ही जीवोंमें संकुचनशील कोष्ठ, स्नायु कोष्ठ, रसस्राव कोष्ठ, ग्रंथि कोष्ठ और तन्तु कोष्ठ होते हैं। इनमें ऐसे कोष्ठ भी होते हैं जिनमें क्षोभकी सामर्थ्य होती है।

कोष्ठ बहुतसे आकारके होते हैं और उनके रूप-रंगमें बहुत भेद होता है। ये कोष्ठ अंगमें बिखरे हुये नहीं होते वरन् क्रमसे मौजूद होते हैं। विस्मयकी बात तो यह है कि हाथी और चूहा, जो देखनेमें इतने भिन्न प्रतीत होते हैं उनके कोष्ठोंमें कोई भेद नहीं पाया जाता, वरन्. घोड़ा, चूहा, मनुष्य इत्यादिके कोष्ठोंमें सादृश्य ही पाया जाता है। एक ही प्राणीमें विभिन्न प्रकारके कोष्ठ पाये जाते हैं और इन कोष्ठ-पुंजोंकी समानता दूसरे प्राणियोंके कोष्ठ-पुंजोंसे हुआ करती है। चित्र (१) में स्पंज, मछली, मेंढक, बिल्ली और गायके स्नायु कोष्ठ दिये गये हैं जिनके देखनेसे उनकी समताका अनुमान किया जा सकता है। अतएव कहा जा सकता है कि आधारी समताके अतिरिक्त सब प्राणियोंमें कोष्ठ-पुंजोंकी समता भी पाई जाती है।

अस्थि पंजर की समता

प्राणियोंके रूप, डील-डौल और आदतोंमें बहुत

भिन्नता होते हुये भी उनकी रचनाका सूक्ष्म निरीक्षण करने पर उनमें कोष्ठ-पुञ्जोंकी समताके अतिरिक्त अन्य बहुतसी बातों में अज्ञातोत समता पाई जाती है। मसलन, मछली
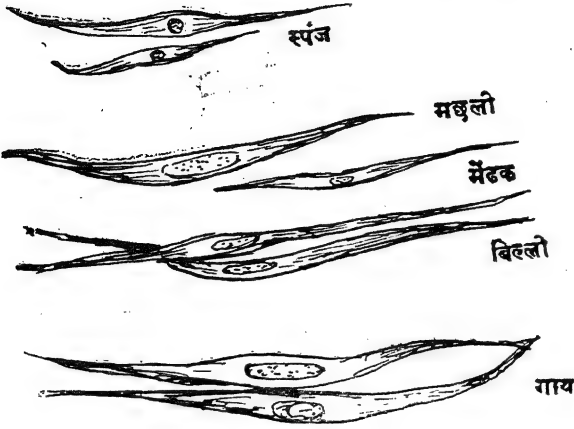
चित्र १

मेंढक, पक्षी, कछुआ, घोड़ा इत्यादि रीढ़की हड्डी वाले जानवरोंमें, जो वाह्य आकृतिमें एक दूसरेसे सर्वथा भिन्न प्रतीत होते हैं, अस्थि पंजरकी रचनामें बहुत समता दिखाई
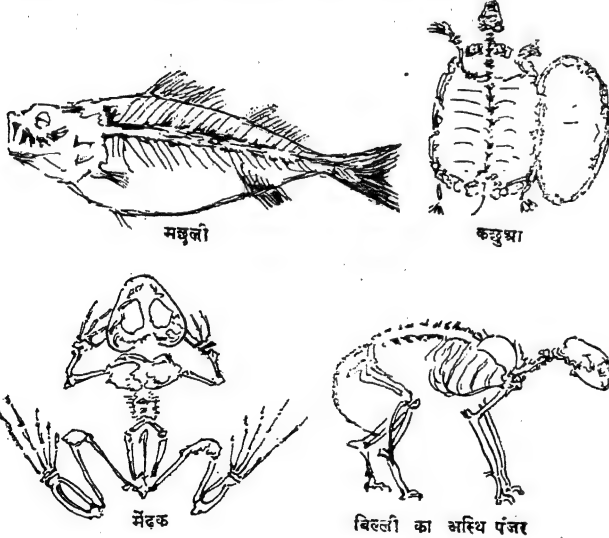
चित्र २

देती है (चित्र २)। सबमें रीढ़की हड्डी होती है जो बहुतसे गुरियों (कशेरुका) से मिलकर बनती है। रीढ़ हड्डीसे पसलियाँ लगी होती हैं। इनके अतिरिक्त अन्य भी हड्डियाँ होती हैं जो मनुष्य की हड्डियोंसे मिलती-जुलती हैं। अब ज़रा मेंढक की भुजा, कछुआके पतवार, पक्षीके पक्ष, ह्वेलके प्लावक अंग, चमगादड़के बाज़ू और मनुष्य की भुजा की तुलना करो (चित्र ३)। अचंभे की बात है कि वाह्य
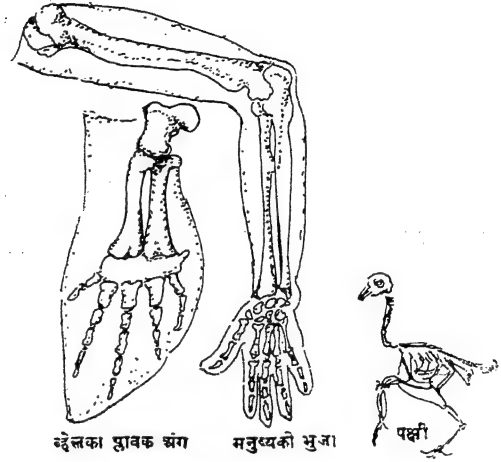
चित्र ३

आकृतिमें इतने विभिन्न प्राणियोंके अंगोंकी रचनामें इतनी निकट समता, जब कि इन्हीं अंगों द्वारा कार्य-संपादनमें महान् अन्तर पाया जाता है। ये बातें मनुष्यको उस समय तक उद्विग्न करती रहीं जब तक कि जीव-शास्त्रज्ञों ने यह निश्चय धारणा न कर ली कि प्रत्येक जातिका रीढ़ की हड्डीवाला प्राणी पूर्ववर्तीय प्राणीसे उत्पन्न हुआ है और इस क्रमानुसार हम इन प्राणियोंके मूल कारण तक पहुँच जाते हैं जहाँसे सबका उद्गम हुआ। जीव-शास्त्रज्ञोंने इस प्रकार यह समझ लिया कि रीढ़ वाले प्राणियोंमें समताका कारण यह है कि उन सबका उद्गम स्थान एक ही है।

आभ्यंतर अंगोंकी समता

यदि रीढ़ वाले प्राणी आपसमें एक दूसरेके सम्बन्धी हैं तो उनमें अन्य भी समता होनी चाहिये। रीढ़ वाले प्राणियोंके आभ्यंतर अंगोंका यदि तुलनात्मक अध्ययन किया जाय

तो उनमें भी समता दृष्टिगोचर होती है। भिन्न-भिन्न प्राणियोंके इन अंगोंको समताके विचारसे क्रमबद्ध किया जा सकता है। जल-थलिया का दिमाग मछलीके दिमागसे निकटतम समान है। सरीसृपका दिमाग मछलीसे इतना नहीं मिलता जितना कि मेंढकसे और स्तनधारीका दिमाग तो मछलीके दिमाग़से बहुत ही कम मिलता है (चित्र ४)।
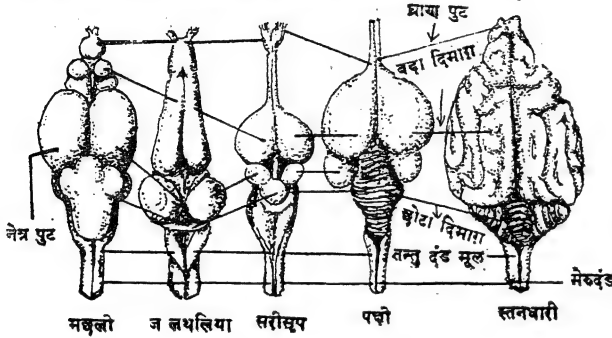
चित्र ४—दिमाग़ की रचना

परन्तु इनमें क्रमानुसार पूर्वोपरि समता पाई जाती है, फिर भी यदि इस क्रमके एक छोर पर की मछलीके दिमाग़का दूसरे छोरके स्तनधारीके दिमाग़से तुलना की जाय तो समता भली-भाँति प्रकट न होगी।

इसी प्रकार यदि रीढ़ वाले प्राणियोंके हृदयोंका तुलनात्मक निरीक्षण किया जाय तो ज्ञात होगा कि मछलीका हृदय स्तनधारीसे बिलकुल भिन्न है, परन्तु पक्षीका हृदय, स्तनधारीके हृदयके बहुत समान है (चित्र ५)। रीढ़ वाले
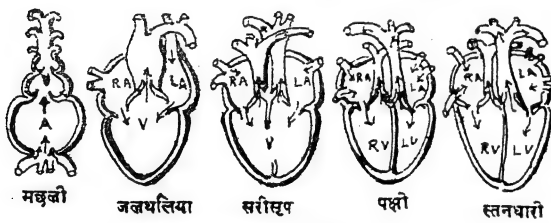
चित्र ५—हृदय

प्राणियोंको भी रचनाके आधार पर क्रमबद्ध किया जा सकता है। मछलीके हृदयमें दो ही विभाग होते हैं। एक भाग जिसमें अशुद्ध रक्त होता है और दूसरा भाग जो अशुद्ध रक्तको गलफड़ोंमें साफ़ होनेके लिए ढकेलता है। जलथलियोंके हृदयमें तीन विभाग होते हैं। ऊपरी विभाग दो अपेण्डिक्स है जो निष्प्रयोजन अथवा अज्ञात कार्यका अवयव है। मनुष्य की अपेण्डिक्स छोटी होती है, परन्तु खरगोश और अन्य स्तन-धारियोंमें यह बड़ी होती है और पाचन प्रणालीका एक अंग होती है। अब स्तन-धारियोंके कानका निरीक्षण कीजिये। स्तन-धारियोंके बाहरी कान (कर्ण पुट) को हम सुननेका एक यन्त्र मान सकते हैं जिसे स्तन-धारी स्नायु द्वारा आगे-पीछे शब्द की दिशा स्थापन करनेके लिये घुमा सकते हैं। हमारे चपटे बाहरी कान इस उद्देश्यके लिये निरर्थक हैं, परन्तु इनमें ऐसे स्नायु अब भी मौजूद हैं जो बाहरी कानोंको घुमानेमें सहायक होते हैं। इनमेंसे दो स्नायुयोंको बहुतसे मनुष्य काममें ला सकते हैं। यह यंत्र हमारे लिये निरर्थक है और केवल हमें इस बातका स्मरण दिलाता है कि हमारे पूर्वजोंके बाहरी कान खड़े थे। मनुष्य की आँखमें भी एक अवशिष्ट रचना है। आँखके भीतरी कोनेके समीप एक छोटा-सा लाल रंगका मांसका भाग है। यह तीसरे पलकका अवशेष भाग है जो पक्षियोंमें आज भी काम करता है। यदि किसी पक्षीको ध्यानसे देखो तो विदित होगा कि एक आवरण-सी वस्तु आँखके भीतरी कोनेसे निकल कर पूरी आँख पर फिर आती है।

हमारे दिमाग़में भी छोटा-सा पिंड है जिसे पीनीयल ग्रंथि (Pineal gland) कहते हैं। इसका प्रकटमें कोई काम नहीं होता, परन्तु यह तीसरे नेत्रका अवशेष चिन्ह है जो सरीसृपके पूर्वजोंके मस्तक पर स्थिर होता था। भौं के स्नायु भी जिनके द्वारा हम अपनी भौंहोंमें गाँठें डालते हैं अवशिष्ट चिह्न हैं। हमारे पूर्वज इन्हींको घुमाकर त्वचा थर्राते थे और मक्खियोंको उड़ाते थे। मनुष्यमें स्तनधारियों की पुच्छके अवशिष्ट चिन्ह भी पाये जाते हैं।

प्राणियोंको शरीर-रचनाके सूक्ष्म निरीक्षणसे ऐसी रचनायें दिखाई देती हैं जिनकी सत्तासे प्रत्यक्षमें कोई लाभ ज्ञात नहीं होता, परन्तु इससे प्राणियोंकी उत्पत्ति और क्रम विकासका अनुमान होता है।

भ्रूण की समता

सब ही प्राणी अपना जीवन एक कोष्ठसे प्रारम्भ करते

हैं। उर्वरीकृत कोष्ठका विभाजन होता है जिससे कोष्ठ समूह भागोंमें विभक्त हो जाता है। सरीसृपके हृदयमें चार विभाग होते हैं, मगर हृदयके नीचेके विभागके दोनों भागों के बीचका परदा पूरा तैयार न हो पाता। पक्षियोंके हृदय-में चार विभाग हो जाते हैं। सीधी तरफके भाग बाईं तरफ-के भागसे बिलकुल पृथक् हो जाते हैं।

इस क्रमबद्ध समताका क्या कारण है? इसका उत्तर इन प्राणियोंके शिला चिह्नोंके इतिहासके अध्ययनसे चल सकता है। पृथ्वीपर जल-थलिये मछलीके प्रकट होने-के थोड़े ही पश्चात् प्रकट हुये, फिर कालान्तरमें दिमाग और अन्य आभ्यंतर अंगोंमें बहुतसे आकस्मिक परिवर्तनके उपरान्त सरीसृपका प्रादुर्भाव हुआ। स्तनधारियोंके प्रकट होने तक उनके अंगोंमें और भी अधिक परिवर्तन हुये। अस्तु, रीढ़वाले दूरस्थ संबन्धी प्राणियों की रचनामें बहुत भिन्नता पाई जाती है।

अवशिष्ट रचनायें

बहुतसे प्राणियोंमें ऐसी रचनायें पाई जाती हैं जिनका शरीरमें कोई प्रयोजन नहीं प्रतीत होता। मसलन, व्हेलमें कुछ हड्डियाँ रीढ़ की हड्डीसे जुटो हुई पिछली टाँगोंके

चित्र ६
बन्दर, चमगादड़, बिल्ली, सील खरगोश, उड़ने वाली गिलहरी, छछूँदर और रेकूनकी अगली टाँगें।

स्थान पर होती हैं। ये हड्डियाँ व्हेलके लिये निरर्थक हैं, परन्तु इनसे व्हेलके पूर्वजोंका पता चलता है। व्हेल स्तन-धारी है और यह ऐसे स्तन-धारियों की संतान है जिनके चार टाँगें थीं। संभव है कि संचित आकस्मिक परिवर्तनके कारण पिछली टाँगें और कूल्हे की हड्डियाँ छोटी हो गईं और व्हेलका जन्म हुआ। यह प्राणी, जो आगे चलकर व्हेल बना, पानीमें अपना जीवन-निर्वाह करता था और अपनी दुमसे पानीमें तैरता था। इसपर स्थितिमें इसे अपनी पिछली टाँगोंको काममें लाने की आवश्यकता न थी, फिर आकस्मिक परिवर्तन हुये तो पिछली टाँगें छोटी हो गईं और तदनन्तर विलीन हो गईं (चित्र ६। इस अवस्थामें इस प्राणीको अपने जीवन-संग्राममें और भी सुविधा हो गई। ये छोटी-सी हड्डियाँ, जो पिछली टाँगोंके स्थानपर व्हेलमें आज भी पाई जाती हैं, अवशिष्ट रचनायें अथवा चिह्न हैं।

मनुष्यमें इस प्रकार की अवशिष्ट रचनायें बहुत-सी हैं। मेचनीकॉफ (Metchnikoff) के विचारानुसार इनकी गणना लगभग सौ है। इन रचनाओंमेंसे एक एक खोखली गेंदके आकृतिके हो जाते हैं, फिर इनका रूप प्यालेके समान हो जाता है। यह दशा सब रीढ़वाले प्राणियोंकी होती है। तदनन्तर पृथक्करण होने लगता है और भ्रूण एक विशेष रूप ग्रहण कर लेता है। भ्रूण चाहे भविष्यमें मछली, जल थलिया, सरीसृप, पक्षी अथवा स्तनधारी बने, प्रत्येक अवस्थामें भ्रूण की पूर्व अवस्थाओंका आकार लगभग एक-सा होता है। बहुतसे रीढ़वाले प्राणि-योंके गर्भ आपसमें इतनी समता रखते हैं कि इनको ठीक तरह पहचानना कठिन हो जाता है (चित्र ७)।

यदि किसी एक ही रीढ़वाले प्राणीके भ्रूणकी वृद्धिका क्रमिक निरीक्षण किया जाय तो ज्ञात होगा कि वृद्धि-कालमें यह अपने न्यून श्रेणीके प्राणियोंके आकारसे गुज़रता है, मसलन, सरीसृप, पक्षी। स्तनधारी यद्यपि फेफड़ोंसे श्वासोच्छ्वास क्रिया करते हैं तदपि इनके भ्रूणमें एक ऐसी अवस्था होती है जिसमें गलफड़ोंके अवशिष्ट चिन्ह पाये जाते हैं। चतुर एवं विचारशील पाठक तुरन्त ताड़ जायँगे कि गलफड़ोंसे श्वासोच्छ्वासका सम्बन्ध जलचरोंसे है और इससे यह निष्कर्ष निकालना अनुचित न होगा कि प्राणि-योंके पूर्वज उथले पानीके निवासी थे। परन्तु ऐसे प्राणी जिन्होंने उत्थानके पश्चात् पुनः जलचर बननेका सौभाग्य प्राप्त किया आज भी फेफड़ोंसे साँस लेते हैं जैसा कि व्हेल

और डालफिनमें होता है। मनुष्यके भ्रूणमें भी, रीढ़वाले प्राणियोंके समान ये विचित्र परिवर्तन होते रहते हैं। भ्रूणकी बहुत ही प्रारम्भिक अवस्थामें गलेके भागमें छिद्रों या आवरणों की एक श्रेणी प्रस्फुरित होती है जो मछलीके

चित्र ७—भ्रूणकी अवस्थायें

गलफड़ोंसे समता रखती है। ये छिद्र निरर्थक होते हैं, अतएव शीघ्र ही विलीन होते हैं। केवल एक छिद्र अवशेष रहता है जो कर्ण-प्रणाली (eustachian tube) में परिवर्तित हो जाती है। यह एक नाली है जो गलेसे कानके परदे तक पहुँचती है। इसी कर्ण-प्रणाली द्वारा कानके परदेके दोनों तरफ वायु-भार सम बना रहता है। मनुष्यका हृदय भी भ्रूणकी प्राथमिक अवस्थामें मछलीके हृदयके सदृश होता है जिसकी धमनी कमानियाँ गलफड़ोंके छिद्रों तक फैली रहती हैं। नाक पहले त्वचामें दो छोटेसे गड्ढोंके आकारमें प्रस्फुरित होती है। इन गड्ढोंका संबन्ध खुली नली द्वारा मुँहसे होता है जो अवस्था शार्क (shark) की थूँथनीमें पाई जाती है। ये खुली नलियाँ फिर बन्द हो जाती हैं और नथनोंका आकार ग्रहण कर लेती हैं। ये आगे चलकर सरीसृप की नाकका आकार ग्रहण करती हैं, फिर मनुष्यकी नाकका आकार धारण करती हैं। (चित्र ८)

रासायनिक समता

जिस प्रकार प्राणियोंमें रचना सम्बन्धी समता पाई जाती है उसी प्रकार उनमें रासायनिक समता भी पाई जाती है। सब जीवधारी जीवन-रसके बने हुए हैं और प्रत्येक जीवधारीके शरीरमें न्यूनाधिक वही तत्व पाये जाते हैं। इस आधारी समताके अतिरिक्त जीवोंमें अन्य रासायनिक समतायें पाई जाती हैं। यह तो तुम जानते ही हो कि मनुष्यके रक्तकोष्ठोंमें एक पदार्थ हीमोग्लोबिन (haemoglobin) होता है जो आक्सीजनसे मिलने की क्षमता रखता है। यह पदार्थ सब रीढ़वाले प्राणियोंके रक्त-कोष्ठोंमें पाया जाता है। परन्तु बिना रीढ़वाले कुछ प्राणियोंके रक्तमें हीमोग्लोबिनके समान दूसरा ही पदार्थ होता है जिसे हीमोसाइनिन कहते हैं। यह पदार्थ भी आक्सीजनसे मिलनेकी क्षमता रखता है। अतएव वर्णरहित रक्त हवासे मिलकर नीलवर्ण हो जाता है। बिना रीढ़वाले अन्य प्राणियोंके रक्तमें हीमोसाइनिनके समान अन्य पदार्थ भी होते हैं। कुछके रक्तमें हीमोग्लोबिन भी होता है परन्तु यह रक्त कोष्ठोंमें मौजूद न होकर रक्त-रसमें घुला हुआ होता है।

रीढ़वाले प्राणियोंके पारस्परिक संबन्धको सिद्ध करनेके लिये फ्रूडेन्थाल (Freudenthal) और न्यूटाल (Nuttall) ने कुछ विलक्षण प्रयोग किये हैं। इन्होंने यह प्रदर्शित किया है कि यदि खरगोशका रक्त इसके निकट संबन्धीके रक्तमें प्रवेश किया जाय तो दोनोंके रक्त आपसमें अच्छी तरह मिल जाते हैं। परन्तु यदि खरगोशका रक्त दूरके संबन्धी मसलन, कुत्तेके रक्तमें प्रवेश किया जाय तो विरोधके कारण रक्त-कोष्ठोंका नाश होने लगता है।

पृथ्वी पर प्राणियोंका प्रसार

प्राणियोंका प्रसार बहुत धीरे-धीरे होता है। जब किसी

प्राणीको किसी स्थान पर पर्याप्त मात्रामें भोजन नहीं प्राप्त होता अथवा जब वह अरक्षित हो जाता है तब वह अपने पुराने स्थानको छोड़कर अन्य प्रदेशोंमें अपने निर्वाह की सामग्री ढूँढ़ता फिरता है। जहाँ की परस्थितियाँ अनुकूल होती हैं वहीं ये निवास करने लगते हैं। जीवोंका यह मन्द प्रसार प्राचीन कालसे हो रहा है। अतएव प्रत्येक उप-जातिके प्राणी भली-भाँति ऐसे स्थानों पर फैले हुये पाये जाते हैं जहाँ की जलवायु अनुकूल होती है। जहाँ भोजन पर्याप्त मात्रामें मिलता है और जहाँ इन प्राणियोंके शत्रु पहलेसे मौजूद नहीं होते।

परन्तु वास्तविक अवस्था कुछ और ही है। जब प्राणी अनोल्लंघनीय पर्वत-श्रेणियों अवघट सागर अथवा सहारा और कलहारीके समान अगम मरुभूमिसे रुँध जाते हैं तो वह स्थानान्तर करनेमें अशक्य होते हैं, चाहे इन प्राणियोंके लिये निकट हीमें यथोचित निवास-स्थान और मन-वांछित भोजन-सामग्री उपलब्ध हो।

जब जीव-शास्त्रज्ञोंने प्राणियोंके प्रसारका अध्ययन करना प्रारम्भ किया तो उन्हें उपरोक्त सिद्धान्तका ज्ञान शीघ्र ही प्राप्त हो गया। उन्हें ज्ञान हुआ कि खोज करने वालोंने जो असाधारण प्रसार देखा उसका स्पष्टीकरण इस सिद्धान्तसे भली-भाँति हो सकता है। परन्तु ज्यों-ज्यों उनका ज्ञान और अध्ययन उत्तरोत्तर उन्नति करता गया उन्हें ज्ञात हुआ कि सकल असाधारण प्रसारका स्पष्टीकरण अगम, अवघट और अनोल्लंघनीय अवरोध द्वारा नहीं किया जा सकता। पदार्थमें अति ही असाधारण प्रसारका युक्ति-युक्त स्पष्टीकरण करना दुरूह ही है।

ऑस्ट्रेलियाके प्राणियोंके अध्ययनने एक कठिन समस्या उपस्थित कर दी। जब जीव-शास्त्रज्ञोंने आस्ट्रेलियाके प्राणियोंका अध्ययन किया तो उन्हें विभिन्न प्रकारके स्तन-धारी दिखाई दिये जिनमें बहुतसे अन्य प्रदेशोंके स्तन-धारियोंके समान थे। देखनेमें आस्ट्रेलियाके कुछ स्तनधारी रीछके सदृश और कुछ भेड़ियेके सदृश ज्ञात हुये। परन्तु सूक्ष्म निरीक्षणसे पता चला कि आस्ट्रेलियाके स्तनधारी निम्न-श्रेणीके स्तनधारी हैं। इनकी रचना अन्य प्रदेशोंके स्तनधारियोंसे सादी थी। इन स्तनधारियोंके कँगरू की तरह थैलियाँ थीं जिनमें उनके बच्चे जन्मके पश्चात् कुछ समय तक रहते थे। आस्ट्रेलियाके बाहर थैलीवाला केवल एक ही और स्तनधारी है जिसे अपूजम (opossum) कहते हैं और जो संयुक्त राज और दक्षिणी अमरीकामें पाया जाता है।

स्तनधारियोंके असाधरण प्रसारका स्पष्टीकरण इस सिद्धान्तसे हो सकता है कि कालान्तरमें प्राणी सादा आकारसे पेचीदा आकारके किस तरह हुये। ज्यों-ज्यों अधिक गुम्फित प्राणियोंका प्रादुर्भाव हुआ एक ऐसे सादा स्तन-धारीका भी विकास हुआ जो अपने दीन बच्चे की रक्षा थैली द्वारा करते थे। वसुंधराके इतिहासमें एक ऐसा भी काल था जब पृथ्वी पर स्तनधारियोंकी थैली वाली ही जाति मौजूद थी। शिलाओंके अध्ययनसे भूगर्भ-वेत्ताओंने यह ज्ञान प्राप्त किया कि पृथ्वीके उस कालमें आस्ट्रेलिया दूसरे प्रायद्वीपोंसे जुड़ा हुआ था। प्राचीन थैलीवाले स्वच्छन्द चारों ओर घूमते फिरते थे। जहाँ परस्थितियाँ जीवनके अनु-कूल होती थीं वहीं ये अपना आवास बनाते थे।

इसके पश्चात आस्ट्रेलिया संसारके अन्य स्थलोंसे सागर द्वारा पृथक् हो गया। ऐसी अवस्थामे इन प्राणियों-का स्थानान्तर करण बन्द हो गया। कालान्तरके बाद संसारके किसी अन्य स्थलमें एक अधिक विकसित प्राणी-का प्रादुर्भाव हुआ जो अपने बच्चोंको थैलीमें न रखते थे। ये अपनी परस्थितियोंके लिये प्राची थैली वाले स्तनधारि-योंकी अपेक्षा अधिक उपयुक्त थे। अतएव क्रमागत जीवन संग्राममें इन्होंने थैली वाले स्तन-धारियों की सत्ता मिटानी प्रारम्भ कर दी। परन्तु ये आस्ट्रेलियामें न पहुँच सके क्योंकि इनके मार्गमें अगम सागर था। आस्ट्रेलियामें इन थैलीवाले प्राणियोंको कोई प्रतियोगी न मिला और ये अनु-द्विग्न जीवित रहे। इसके पश्चात्के पार्थिव इतिहासकालमें, एक अपूज़मको छोड़कर जो अमरीकामें अब भी जीवित हैं, आस्ट्रेलियाके अतिरिक्त संसारके अन्य स्थलोंके थैलीवाले प्राणियोंका अस्तित्व मिट गया। यह सच है कि आस्ट्रेलि-याके थैली वाले प्राणी लाखों वर्ष व्यतीत होनेके पश्चात् अब उसी अवस्थामें नहीं है जिसमें पहले थे। आकस्मिक परिवर्तन द्वारा इनका वाह्य रूप ठीक उसी तरह बदल गया जिस तरह कि उच्च श्रेणीके स्तनधारियोंके रूपमें परि-वर्तन हुआ। आस्ट्रेलियाके स्तनधारी और भेड़ियेके सदृश

दिखाई पड़ते हैं परन्तु इन सबके थैलियाँ हैं जिनमें वे अपने बच्चोंको जन्मके उपरान्त कुछ काल तक परिवर्धित करते हैं।

गौर वर्ण प्रवासियोंने आस्ट्रेलियामें ख़रगोशको लाकर यह सिद्ध कर दिया कि जलवायु और भोजनने गुम्फित स्तन-धारियोंके विकासमें बाधायें नहीं डालीं, क्योंकि थोड़े ही कालमें इस प्रायद्वीपके अधिक भाग पर ख़रगोश फैल गये हैं।

प्राणियोंके प्रसार की और भी ऐसी विचित्र बातें हैं जिनका स्पष्टीकरण इसी सिद्धान्त पर हो सकता है कि जीवित प्राणी पूर्ववर्तीय सादे प्राणियोंसे प्रस्फुटित हुये हैं। गेलेपेगोस एक छोटा द्वीप-समूह है जो कदाचित् ज्वालामुखी पहाड़ द्वारा बने हैं। ये भूमध्य रेखा पर दक्षिणी अमरीकासे लगभग पाँच सौ मील पश्चिममें मौजूद हैं। जब डार्विन-ने बीगलकी यात्राके समय गत शताब्दीके पूर्वार्धमें इन टापुओंका निरीक्षण किया तो उसने इन टापुओंके प्राणियों-का बड़ी सावधानीसे अध्ययन किया और इनकी तुलना उन प्राणियोंसे की जो दक्षिणी अमरीकामें रहते थे। उसे यह जानकर विस्मय हुआ कि प्रायद्वीप और द्वीप-समूहकी परिस्थितियाँ असमान होते हुये भी दोनों स्थानोंमें निवास करने वाले प्राणियों की जातियोंमें समता पाई जाती है क्योंकि डार्विनने आशा की थी कि परिस्थितियोंका अधिक महत्वशाली प्रभाव होगा।

परन्तु जब उसे इस बातका ज्ञान हुआ कि जीव पूर्ववर्तीय प्राणियोंसे विकसित होते हैं तो वह आशाके विपरीत प्रसार का कारण समझ गया। दक्षिणी अमरीकाके प्राणी किसी तरह द्वीप-समूहमें पहुँच गये। उस समय द्वीप समूह और प्रायद्वीपके प्राणियोंमें समता थी। कालान्तरमें प्रायद्वीप और द्वीप-समूहके प्राणियोंमें अलग-अलग परिवर्तन हुये। इस प्रकार दोनों स्थानोंके जीवोंका विकास पृथक्-पृथक् हुआ। ये घटनायें आपेक्षिक आधुनिक भूगर्भिक-कालमें हुई और आकस्मिक परिवर्तनोंके संचयको पर्याप्त समय नहीं मिला। अतएव इन दोनों प्राणी-समूहोंमें बहुत समता पाई जाती है। प्राणियोंके भूगर्भिक प्रसार की बहुत-सी मिसा-लोंका हम इस सिद्धान्तके आधार पर स्पष्टीकरण कर सकते हैं कि नये प्राणी पूर्ववर्तीय प्राणियोंसे विकसित हुये हैं और ये अपने पूर्वजोंसे अधिक गुम्फित हैं।

प्रसरणशील जगत् (२)

(ले०—प्रो० ए० सी० बैनर्जी)

क्या तारे हमसे दूर भाग रहे हैं?

हम सब यह जानते हैं कि जब सूर्यकी किरणें किसी प्रिज़्म (त्रिपार्श्व) मेंसे होकर जाती हैं तो ये इन्द्र धनुष-के रंगोंमें विभाजित हो जाती हैं। ये रंग लाल, नारंगी, पीला, हरा, नीला, बैंजनी और कासनी हैं। सूर्य्य और अन्य तारोंसे आया हुआ प्रकाश भी इन्हीं रंगोंसे मिलकर बना है। भिन्न रंगोंके प्रकाशकी लहरोंकी लहर-लम्बाई पृथक्-पृथक् होती है। लाल किरणोंकी लहरें सबसे लम्बी और कासनी किरणोंकी लहरें सबसे छोटी होती हैं। किरण-चित्रमें ये रंग लहर-लम्बाईके क्रममें ही दिखाई देते हैं। तारेके किरण-चित्रमें छोटी लहर-लम्बाई वाले रंगोंका अभाव होता है। इसीलिये किरण-चित्रके इस भागमें कुछ काली रेखायें या काली पट्टियाँ दिखाई पड़ती हैं। इसलिये किरण-चित्रमें रंगोंका क्रम एकसा नहीं होता—रंगोंकी धारियाँ या पट्टियाँ प्रकट होती हैं। यदि तारेसे आया हुआ प्रकाश स्पे-क्ट्रेस्कोप द्वारा विश्लेषित किया जाय, तो ये धारियाँ या पट्टियाँ अपने सामान्य स्थानसे दायें-बायें कुछ हटी हुई मिलेंगी। यदि यह हटाव लाल रङ्गकी ओर हो तो इसका यह अभिप्राय है कि तारेसे आये हुये प्रकाशकी लहरकी लम्बाई सामान्य प्रकाशकी अपेक्षा कुछ अधिक है, अथवा लहरकी कम्पन-संख्या सामान्य प्रकाशकी कम्पन संख्या से कम है। यदि तारेका किरण-चित्र कुछ लाल हो गया हो तो इसके कई कारण हो सकते हैं। संभव है कि यह लाली इस कारण हो कि तारा हमसे दूर हट रहा है। किस वेगसे यह दूर हट रहा है यह डौपलर-के सिद्धान्तसे निकाला जा सकता है। यह तो सभीके अनुभवकी बात है कि मोटर हमसे

दूर जा रही हो तो उसके भोंपूकी आवाज़की गंभीरता (पिच) कम मालूम होती है, और यही मोटर हमारी ओर आ रही हो तो आवाज़की गंभीरता (पिच) अधिक मालूम होती है। इन दोनों उदाहरणोंके अन्तर्गत एक ही सिद्धान्त काम कर रहा है। यह कहनेके स्थानमें कि तारा हमसे दूर हट रहा है, हम यह भी कह सकते हैं कि हमसे तारा दूर हट रह हैं। इसी प्रकार यदि किरण-चित्रकी रेखायें कासनी रङ्गकी ओर हट रहीं हो, तो इसका अभिप्राय यह है कि तारा हमारी ओर आ रहा है। किरण-चित्रकी रेखाओंका स्थानान्तरित होना यदि ठीक-ठीक नाप लिया जाय, तो ज्योतिषी इस बातकी ठीक गणना कर सकते हैं कि तारा किस वेगसे हमसे दूर हटता जा रहा है। पर यह भी कह देना चाहिये कि रेखाओंके स्थानान्तरित होनेके और भी कारण हो सकते हैं। हम यहाँ यह अनुमान करके चलेंगे कि रेखाओंका स्थानान्तरित होना नीहारिकाओंके सापेक्ष स्थानान्तरित होने के कारण ही है। अब तक लगभग ९० गैलेक्सियोंको गति नापी गई है। यह पता चला है कि इतनी गैलेक्सियोंमेंसे केवल ५ ऐसी हैं (जो सब नीहारिकाओंमें निकटतम है), जो हमारी ओर आ रही हैं। डा० ओर्ट ने बताया है कि हमारी गैलेक्सी घूम रही है और इस खोजके आधार पर हम समझ सकते हैं कि इस प्रकारकी उल्टी (ऋण) गतिका क्या कारण है। डा० हुबल ने यह मालूम किया कि सूर्य-गैलेक्टिक प्रभाव २८० कि मी. प्रति सेकण्ड है, और यह सीधी दिशामें है। इस मापका ध्यान रखकर उलटी-गति-का प्रश्न सुलझ जाता है। यदि यह हिसाब अपने गैले-क्टिक संस्थानके केन्द्र की अपेक्षासे लगाया जाय तो सब उल्टी (ऋण) गतियाँ सीधी (धनात्मक) हो जाती हैं। सन् १९२९ में हुबलने प्रदर्शित किया कि गति और दूरी दोनों समानुपाती हैं। हुबल की अद्यावधि गणनासे पता चला है कि १ मेगापारसेक (१० लाख पारसेक) दूरी पर स्थित नीहारिका की गति ५५० कि. मी. प्रति सेकण्ड होगी।

ह्यूमेसनने यह ज्ञात किया है कि गेमिनीमें स्थित नीहा-रिका (जो हमसे लगभग १५०० लाख प्रकाश-वर्ष दूर है) २५००० कि. मी प्रति सेकण्ड (लगभग १५००० मील प्रति सेकण्ड) की गतिसे दूर हटती जा रही है। यह गति तो एक एलफा-कण की गति है।

आइन्सटाइन की सृष्टि

आइन्सटाइनके मूल सापेक्षवादके सिद्धान्तके अनुसार आकाशका विस्तार उसमें विद्यमान द्रव्यकी मात्रा पर निर्भर है। द्रव्यके चतुर्मुख आकाश झुक कर एक घेरा बना लेता है। जितना ही अधिक द्रव्य होगा, आकाश उतना ही कम हो जायगा। आकाशमें द्रव्यके सर्वथा अभाव होने पर ही आकाश वस्तुतः अनन्त हो सकता है। द्रव्यके कारण आकाश की परिमितियोंमें वक्रता आ जाती है। जिस आका-शके भीतर द्रव्य स्थित है, उसमें यदि हम किसी निश्चित दिशामें चलें, तो फिर हम वहीं लौटकर आ जावेंगे जहाँसे चले थे, अनन्त तक न जा सकेंगे। बन्द आकाश और खुले आकाशमें वही अन्तर है जो एक गोलेके पृष्ठ और अनन्त समतलके पृष्ठमें अन्तर है। गोलेके पृष्ठके सम्बन्धमें हम कहते हैं कि (१) इसका पृष्ठ वक्र है, और (२) इसके बन्द पृष्ठके भीतर तीन परिमितियों वाला आयतन समाविष्ट है। यही बात हम तीन परिमितियों वाले आकाशके लिये भी कह सकते हैं—(१) आकाश वक्र स्थान है, और (२) इसके बन्द स्थानके भीतर चार परिमितियों वाला 'सातत्य' (continuum) समाविष्ट है। आइन्सटाइन की सृष्टिमें 'काल'-परिमिति वक्र नहीं है। अतः इसकी अनन्त तक पहुँच है। आइन्सटाइन की सृष्टिको 'बेलनाकार सृष्टि' कहा गया है। इसका हम फिर स्मरण दिलाना चाहते हैं कि आकाश की परिमितियाँ गोलेके समान हैं, और 'काल' परिमिति वक्र नहीं है।

आकाशके संबंधमें एक और धारणा है। हम अपने आका-शको बंद और सम-रस वक्र मान सकते हैं; यदि इसमें कोई द्रव्य न हो। द्रव्यके स्थिर होने पर इसमें स्थानिक विषमता आजाती है। नीहारिकायें समरस आकाशमें एक प्रकारकी स्थानिक विषमता ला देती हैं। अतः हमारे बन्द आकाशमें स्व-स्थित ससीम सृष्टिका समावेश होता है। हमारा सौर परिवार तो समस्त सृष्टिका एक बहुत छोटा सा अंश है, अतः सौर परिवारके कारण प्रदत्त विषमता भी बहुत कम होगी, अतः इसकी सीमाके भीतर आकाशमें लगभग नहींके बरा-बर ही झुर्रियाँ पड़ेंगी।

आइन्सटाइनके गुरुत्वाकर्षणके सिद्धान्तमें एक विश्व-अंकका प्रयोग होता है, जिसका साधारण अभिप्राय यह है कि पार्थक्य (हटाव) दूरीका समानुपाती है। थोड़ी दूरियोंके लिये और सौर परिवारमें व्यवहारमें लानेके लिये हम इस अंकको छोड़ सकते हैं, पर जहाँ अत्यधिक दूरियोंका प्रश्न आता है, यह अंक 'पार्थक्य' की मात्रा सूचित करता है। मूल रूपसे तो इस अंक द्वारा सूचित पार्थक्यकी मात्रा गुरुत्वाकर्षणकी मात्रासे तुलित हो जाती है और हमें विश्वका स्थिर रूप उपलब्ध होता है। इसे आइन्सटाइनका 'स्थिर-विश्व (static universe) कहा गया है। यहाँ यह कह देना अनुपयुक्त न होगा कि अभी हालमें ही आइन्साटाइन अपने विश्वांक (लैमडा) के प्रति असन्तोष प्रकट किया है, पर एडिंगटनके समान अन्य सापेक्षवादी व्यक्ति उसके विचारसे सहमत नहीं हैं।

डि-सिटरका रिक्त-विश्व

एक और धारणा इस प्रकार है। इसे 'डि-सिटर' का विश्व कहा जाता है; यह विश्व बिलकुल रिक्त है। डि-सिटरका रिक्त-विश्व (De Sitter's Empty Universe) वस्तुतः स्थिर विश्व नहीं है, क्योंकि इसकी स्थिरता इस अभिप्रायसे है कि इसमें द्रव्यका सर्वथा अभाव है। यह कहा जाता है कि आइन्सटाइनके विश्वमें द्रव्य है पर गति नहीं है, डि-सिटरके विश्वमें गति तो है पर द्रव्य नहीं है। डि-सिटरके द्रव्य-विहीन आकाशमें समरूप वक्रता है। इसे डि-सिटरकी गोल सृष्टि कहते हैं। इसकी सब परिमितियाँ (dimensions) समरूप हैं। आकाश की परिमितियोंके साथ-साथ काल्पनिक काल भी एकरस है। अतः वे भाग जिनमें वास्तविक कालका समावेश है, वृत्तके स्थानमें अति परवल्य होजाते हैं।

प्रसरणशील विश्व

यह बिलकुल स्पष्ट है कि हमारा यह विश्व जिसमें वस्तुतः द्रव्य और गति दोनों हैं न तो आइन्सटाइनके विश्वके समान है और न डि-सिटरके विश्वका-सा। सन् १९२२ में फ्रीडमैनने और सन् १९२७ में एबेले माट्रेने यह धारणा प्रस्तुत की कि हमारा विश्व आइन्सटाइन और डि-सिटर दोनोंके विश्वोंके बीचका है। ले-माट्रेने गणना करके यह भी दिखाया है कि आइन्सटाइनका विश्व अस्थायी है। थोड़ेसे ही क्षोभसे या तो इन पर आकर्षणका आधिपत्य हो जायगा या पार्थक्य (repulsion) का। फलतः विश्वका या तो प्रसार होगा या संकोच। फ्रीडमैन और ले-माट्रे की धारणाओंके अनुसार यह विश्व 'प्रसरण शील' (expanding) है। इसका बन्द आकाश और द्रव्य-संस्थान दोनों ही प्रसरणशील हैं। शृङ्खलाके एक सिरे पर तो आइन्सटाइनका विश्व है जिसमें द्रव्य तो है पर गति नहीं। आगे आने पर ऐसे-ऐसे विश्व हैं जिनमें प्रसरणशीलता की मात्रा उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है, और जहाँ द्रव्यका घनत्व उत्तरोत्तर कम होता जाता है। अंतमें हम शृङ्खलाके दूसरे सिरे पर पहुँच जाते हैं जहाँ डि-सिटरका विश्व है और जिसमें द्रव्यका सर्वदा अभाव है। प्रसरण-शील विश्वों की शृङ्खला इस स्थान पर समाप्त हो जाती है क्योंकि प्रसरणके लिए यहाँ कोई द्रव्य ही नहीं रह जाता। डि-सिटरके विश्वके निकट जहाँ घनत्व बहुत ही कम है गुरुत्वाकर्षण भी बहुत कम हो जाता है। अतः 'पार्थक्य' के प्रभावका पूर्णाधिपत्य हो जाता है। फलतः प्रसरण गति बहुत बढ़ जाती है।

आइन्सटाइनके मूल अस्थायी विश्वमें दोनों बातें संभव थीं—या तो इसमें प्रसार होता या संकोच। स्पष्ट है कि विश्वने प्रसारको ही अपनाया। आप पूछ सकते हैं कि ऐसा क्यों हुआ। एडिंगटनका कहना है कि यदि एक ही तौलका द्रव्य और विकिरण ले लिये जावें तो गुरुत्वाकर्षणमें विकिरणका प्रभाव द्रव्यकी अपेक्षा अधिक होगा। अतः द्रव्य के विकिरणमें परिवर्तित होनेसे 'संकोच' आरम्भ होगा और विकिरणके द्रव्यमें परिणत होनेसे 'प्रसार' आरम्भ होगा। विकिरण की इकाई 'फोटोन' है, और अभी कुछ वर्ष हुये धनात्मक विद्युत् की इकाई 'पोजीट्रोन' या धनाणु का पता चला है जिसका भार ऋणाणु (एलेक्ट्रोन) के भारके बराबर है। साहा और कोठारी की धारणा है कि फोटोनके विच्छेदसे ऋणाणु और धनाणु बनेंगे और सामर्थ्य विसर्जित होगी। इसका अभिप्राय यह है कि विकिरण द्रव्यमें परिणत हो सकता है। यदि आइन्सटाइनके स्थिर-विश्वमें किसी प्रकार फोटोनका विच्छेद आरम्भ हो जाय तो इस विश्वका प्रसार आरम्भ हो जायगा।

ले-माट्रे एवं मेकविटीने यह दिखाया है कि यदि द्रव्य-

का स्थानिक सघनीकरण (condensation) हो तो सघनीकरणोंके कारण स्थिर-विश्वके व्यासार्धमें लगभग कोई परिवर्तन न होगा।

कलकत्ताके अध्यापक एन० आर० सेनने जगत् की प्रसरण-शीलताका एक उपयुक्त कारण बताया है। उन्होंने जगत्में स्थित गैलेक्सियों की शरीरमें उभरी हुई फुनसियों-से तुलना की है। उनका कहना है कि फुनसीदार आइन्स-टाइन-विश्वके लगभग वही गुण-धर्म होंगे जो आदर्श आइन्सटाइन-विश्वके हैं। सेनने फुनसीदार आइन्सटाइन-विश्व की स्थिरावस्थाके लिये समीकरण निकाले हैं। इनका कहना है कि फुनसीदार-विश्व की तौल एकरस आइन्सटाइन-विश्व की तौलसे अधिक होगी। एकरस-विश्वसे फुनसीदार-विश्व बनानेके लिये कुछ और द्रव्य की आवश्यकता होगी, अथवा यह विश्व-स्थायी न होगा। यदि और द्रव्यका अभाव हो तो गुरुत्वाकर्षणमें जिसके कारण साम्यावस्था रहती है कमी आ जायगी। फल यह होगा कि फुनसी-दार गोलेका प्रसार आरम्भ होगा और विश्व-पार्थक्यका प्रभुत्व हो जायगा।

निद्राके कुछ अनुभव

(ले० रामस्वरूप चतुर्वेदी अध्यापक, यूनिवर्सिटी चिल्ड्रन स्कूल, हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी)

हमारा शरीर एक ऐसा वृक्ष है जिसकी जड़ें ऊर्ध्व-मुखी पर शाखायें अधोमुखी हैं। निद्रा जड़ोंमें अमृत सींच-सींच कर वृक्ष-वृद्धि किया करती है। समस्त शरीरके स्नायु सायंकाल तक परिश्रमसे आक्रान्त होकर क्षीण शक्तिवाले हो जाया करते हैं, किन्तु रात्रिके शीतल विश्रामको पाकर हम प्रातःकाल तक पुनः विकसित पुष्पकी भाँति नवीन हर्षान्वित व प्रमुदित हो जाते हैं।

शरीरके बढ़ानेमें दो बातोंका हाथ रहता है—भोजन व निद्रा। जन्म क्षणसे लेकर मरणपर्यन्त इन दो वस्तुओंकी रासायनिक क्रियायें शरीर पर होती ही रहती हैं। मानव जीवनका प्रारम्भिक व अंतिम अंश भोजनकी अपेक्षा निद्रा पर अधिक निर्भर है—यदि जन्मके पूर्व या मृत्युके पश्चात् वाले जीवन पर विचार करें तो महा निद्रा-अभंग निद्राका समुद्र सा लहराता हुआ पाते हैं। आश्चर्यकी बात है कि दो निद्राओंके बीच जीवनकी चञ्चल आलोक-रेखा कैसी स्थाई व अमिट प्रतीत होती है।

निद्रा व शिशु

नव जात शिशुकी ओर देखिये, उसे सोते रहनेके अतिरिक्त कुछ काम ही नहीं है। यदि सच पूछा जाय तो यही निद्रा (मस्तिष्क से प्रारम्भ होकर शरीरके कोने-कोनेमें पहुँचने वाले) धमनिजालकी सहायतासे प्रत्येक पुरजेमें मधु टप-काया करती है। उन्हें पल्लवित किया करती है। सभी ने देखा होगा कि जो बच्चे प्रायः रोते रहते हैं (रोनेका कारण या तो सूतिका गृहमें शीताधिक्य, धूम्राधिक्य या शय्याका कुप्रबन्ध क्षुधा आदि कुछ भी रहा हो) उनका विकास यथोचित रूपमें नहीं हो पाता। चतुर दाइयों और नर्सोंकी दृष्टि इसी बातपर जमी रहती है कि कोई भी गड़बड़ी इस प्रकारकी न उठ खड़ी हो जो अभंग विश्राम या अटूट निद्रा में बाधा पहुँचावे। अज्ञानी व्यक्ति निद्रा-विज्ञानसे अनभिज्ञ होनेके कारण बच्चेका स्वास्थ्य उसके भाग्यके हाथ सौंप अपने उत्तरदायित्वसे छुट्टी पा जाते हैं।

पाठक ! सद्यःप्रसूत बच्चेको सोते हुये देख क्या आपके मनमें कभी यह प्रश्न उठा कि "सोते समय शिशु स्वप्न देखता है या नहीं।" इसी प्रकारका प्रश्न एक बार मैंने अपना सहचारिणीसे किया तो उसने बड़ा सरल उत्तर दिया कि "देखता है"। सम्भवतः 'निद्रा' व 'स्वप्न' उसके लिये इतने अभिन्न थे कि एकके बिना दूसरेका अस्तित्व मानना तक स्वीकृत न था। मैंने समझाया कि स्वप्न तो सजग मस्तिष्कके क्रियान्वित होने पर ही सम्भव होता है। जब शिशुको संसारकी किसी वस्तुसे परिचय नहीं, किसी व्यक्तिसे जान-पहचान नहीं। चारपाई छोड़ कहीं गया नहीं तब उन्हें सोतेमें देखनेका प्रश्न ही नहीं उठता। माँ तकको आकृति, ध्वनि, स्पर्श आदिका पहचानना तब आता है जब कि हफ्तों या महीनों उसीको देखा सुना या छुआ करता है। दो दिनके

बालकको माँ धाय, पडोसिनें सब समान हैं; किसीको ओर ध्यानसे देखनेकी भी प्रवृत्ति नहीं होती; तब भला उसको सोते समय स्मरण करना कैसे घटित हो सकता है? शिशु का मस्तिष्क कैमेराके उस कोरे प्लेट सदृश होता है जिसपर किसी वस्तुकी छाया न पड़ी हो। स्वप्न देखनेकी कौन कहें जाग्रत अवस्था तकमें जब कि आँखें खोले चित्त लेटा होता है कुछ नहीं सोचता। महा अन्धकारमें हमारा आँख खोलना या न खोलना बराबर होता है। उसी प्रकार शिशुके लिये जाग उठना या सोते रहना बराबर होता है। सोच एक भी अवस्थामें नहीं सकता।

यह सब इसलिये कहा कि प्रगाढ़ निद्रा प्रायः स्वप्नहीन या मधुर स्वप्न वाली होती है। यही निद्रा शरीर-वृद्धिमें योग देती है। निद्राकी परीक्षा स्वप्न द्वारा की जा सकती है। जिसे ठीक नींद न आती हो, दुःस्वप्न दीखते हों, चौंक-चौंक पड़ता हो, थोड़े समय सोने पर हो ज्ञात होता हो कि मानों कई घंटोंसे सोरहे हैं, रात काटे न कटती हो, उसे चाहिये कि अपने पिछले दिनके भोजन, आहार, विहार मानसिक विचारों आदिकी छान-बीन करे, निद्राका भोजनसे उतना ही सम्बन्ध है जितना सम्बन्ध कि

निद्रा और आमाशय

का है। मुझे वे दिन भली-भाँति याद हैं जब कि मैं गाँव छोड़कर शहर इण्ट्रेन्स तक पढ़नेके लिये गया था। न जानें क्यों उन दिनों रातें अशान्त व निद्राहीन बीता करतीं। भयावह स्वप्न देखा करता। उस आयुकी चर्या पर अब टैलिस्कोपिक दृष्टि डालता हूँ तो पाता हूँ कि अन्य कारणोंके अतिरिक्त प्रधान कारण था आमाशयका अस्वस्थ रहा करना। खाना अपने हाथसे बनाता, नवसिखिया होनेके कारण रोटियाँ कभी तो धुआँके कारण काली या पीली पड़ जातीं और कभी कच्ची रह जातीं। वैज्ञानिक भोजन (अर्थात् रोटी, दाल, घी, चावल, गोभी, आलूका साग, ताजी मूली, अदरक, मटर, दूध, शहद आदि एक बारमें खाने) का ज्ञान स्वप्नमें भी उदित न हुआ था। केवल दो वस्तुयें भर पेट सुबह शाम खाया करता। अरहरकी दाल व सूखी-सूखी पाली रोटी परिणाम यह होता कि सूखी रोटियाँ तो आँतोंमें दो-दो तीन-तीन दिन तक चिपकी रहा करतीं और दाल बहुमूत्र रोगकी जननी बनती। आमाशय पत्थरकी भाँति कड़ा रहा करता, कानोंमें सनसनाहट व दिमागमें उन्मादकी उष्णता रहा करती। दो-दो दिन तक शौच न जाता। आमाशयकी उष्णता मस्तिष्क तक दौड़ लगाया करती, निद्रा गहरी न आती, रोमांचकारी दृश्य हृदय कँपा देते, अंधड़ तूफानकी गर्जना, भयंकर सर्पोंकी फुङ्कार, बादलोंकी गड़गड़ाहट चैनसे सोने न देती। इस सबका कारण था आमाशयको पौष्टिक भोजन न मिल सकना।

मुझे यह भी स्मरण है कि अर्द्ध रात्रि तक तो दुस्वप्न आदि दिखाई दिया करते थे। तत्पश्चात् लघुशङ्का करके सोनेसे लेकर प्रातःकाल तक मधुर नींद आया करती थी। "ऐसा क्यों होता है?" यह प्रश्न मुझे पिछले वर्ष तक परेशान करता रहा। किन्तु उपयुक्त घटना कई बार घटित होनेके कारण १० जुलाई सन् ४० को इसका कारण मिल गया दो एक बार जान-बूझकर प्रयोग किया, सच्चा पाया, तबसे तो वह धारणा निभ्रान्ति हो गई है। बात यह है कि जिस दिन सिनेमाका फर्स्ट शो देखने या देरसे घूमकर लौटनेसे रात्रिके ९॥ या १० पर भोजन करता, १०-१०॥ पर सो जाता उस दिन बारह बजे तक निद्रा कड़ुवी अवश्य रहती। जिस दिन भोजन सायंकाल ६-७ के बीच करता व भ्रमणसे लौटकर १०-१०॥ पर सोता उस दिन आरम्भसे अन्त तक मधुर निद्रा आती। सम्भवतः पाठकगण अब कारण समझ गए होंगे। भोजनके पश्चात् पकने की गर्मी प्रारम्भिक ढाई-तीन घंटों तक अधिक रहती है, तत्पश्चात् भोजन आमाशयसे उतर कर आँतोंमें पहुँच जाता है। आमाशय निष्क्रिय व शीतल हो चलता है। जिस समय आमाशय की फैक्टरी पूरी शक्तिसे क्रियावान् रहती है उस समय उसकी उष्णता विद्युत् तरंगों की भाँति (स्नायु-शिरा आदिसे होकर) मस्तिष्क-पट तक धावा मारा करती जब कि शरीरके भीतर विशेषकर आमाशय व मस्तिष्कमें रासायनिक क्रिया (chemical action) हो रही हो उस समय निद्रा कड़ुवी न हो तो कब हो। ६ या ५॥ पर भोजन कर लेनेसे ९-१० तक यह व्यापार समाप्त हो लेता है, तत्पश्चात् निद्रा मधुर अभङ्ग व सुखद स्वप्न वाली होती है। छः व दसके बीच क्या करना चाहिये आगे लिखेंगे।

निद्रा व विचार

जिस प्रकार आमाशयका निद्रापर प्रभाव पड़ा करता है उसी प्रकार वा उससे भी कहीं अधिक विचारोंका प्रभाव निद्रापर पड़ा करता है। जिसके विचार सरल, शुद्ध निष्कपट, परहित चिन्तक होंगे उसे मीठी गहरी नींद आयेगी, जिसके विचारोंमें अंतर्द्वन्द्व, कपट, विश्वासघात स्वार्थ, ईर्ष्या, डाह, दूसरोंका नाश करने की सरगर्मी होगी उसके विचार उसे चैनसे न सोने देंगे।

दिन भर उठने वाले विचारोंका निद्रापर प्रभाव उतना नहीं जितना कि (सायंकालीन) भोजनके पश्चात् व शयनके पूर्व उठने वाले विचारोंका। शयनके पूर्व उठने वाले विचारों, भावों, उद्वेगोंका जितना अधिक प्रभाव बालकोंपर पड़ता है उतना और किसी पर नहीं। सर्प, भूत, चोर, हत्या आदि की कहानियाँ कही जायँ तो वे ज्यों की त्यों मस्तिष्कमें खुद जाती हैं, सोते समय इन्हीं के भयावह चल चित्र देखता है। निद्रा तो दुखद आती ही है, स्वास्थ्य व चरित्र-निर्माणमें भी ठेस लगती है। यदि वीरता, राष्ट्र-भक्ति, परोपकार, दया, सेवा, मित्रता, त्याग जैसे सद्गुणों की कहानियाँ सुनते-सुनते बालक सो जाय तो निश्चय समझिये कि वह सोते समय उनकी जुगाली करेगा (उन्हें पाचण करेगा) उन भावनाओंका प्रत्येक कण (uncon scious mind) मन की नस-नस में पुहम जायगा। बालक आगे चलकर दृढ़ संकल्प, सुस्रवान, वीर, निर्भय नागरिकके रूपमें दिखाई देगा।

बालक ही क्या वृद्ध, युवा, स्त्री, पुरुष सभी को निद्रापर शयनके पूर्व उठने वाले विचारों और उद्वेगोंका प्रभाव पड़ता है। अतः उस समय विशेष सजग रहने की आवश्यकता है। क्या करना चाहिये आगे लिखेंगे। विचारोंका निद्रा व स्वास्थ्य पर प्रभाव देखनेका सर्वोत्तम उदाहरण सच्चे साधु-सन्यासियोंका शरीर है। कितना सुडौल, सुगठित व निरोग होता है। कारण यह है कि वे शयनके पूर्व ही क्या सदैव ही सुन्दर कल्याणप्रद विचारों वाले होते हैं। किसीका बुरा नहीं चेतते, जो कुछ करते हैं उसके भी बन्धनमें नहीं रहते। अतः मुक्त होनेके कारण प्रशान्त गम्भीर निद्राका अस्वादन करते हैं। कभी-कभी जाग्र निद्रा (ध्यानावस्थित समाधि) का पुट दे देते हैं। मस्तिष्क रुधिर व स्नायु और भी सबल हो जाते हैं जब कि योगकी परिभाषा ही (योगश्चित्त वृत्ति निरोधः) चित्त वृत्तिका रोक रखना है तो इसे मानसिक निद्रा न कहा जाय तो क्या कहा जाय। शारीरिक निद्रा (जिसमें मन भाँति-भाँतिकी दौड़ लगाया करता है) में ही जब नित्य प्रातःकाल उत्फुल्ल पुष्पवत् हो जाते हैं तब उस निद्राका प्रभाव पूछना ही क्या है जिसमें शरीर व मन दोनोंके व्यापार विश्राम लिया करते हैं। जाग्रत अवस्थामें जिनका मन भटकता रहता है, तृष्णामें फँसे रहनेके कारण ज. सहस्त्रों आशाओंका जाल बुना करते हैं, जो इंद्रियोंके विषय एकत्रित करनेके निमित्त (मृगतृष्णाके पीछे-पीछे) दिन भर दौड़ा करते हैं वे (बहुशाखा तथा अव्यवस्थित बुद्धिवाले व्यक्ति) निश्चय ही रात्रिमें भयावह स्वप्न देखकर निद्राको दुखद बनाया करते हैं। सीमित-सरल संकल्पों वाले ग्रामीण, कृषक व श्रमजीवी निर्भय निद्रा का आनन्द लूटते हैं।

एक सोपान क्रम है – घटना एकके बाद एक होती है। पहले तो व्यक्ति रात्रिमें अधिक विद्याध्ययन अधिक चिन्ता या अधिक रटनके कारण कम सो पाता है--दिनों-दिन कम सोनेसे मस्तिष्कके स्नायु उत्तेजित हो उठते हैं--उनके उष्ण हो जानेसे निद्रा और भी दूर भागती जाती है। ज्यों-ज्यों निद्रा दूर भागती है, उन्माद, विक्षिप्तावस्था व पागलपन पास आता जाता है। यहाँ तक कि पूर्ण पागलपनमें पूर्ण निद्रा नाश हो उठता है। उसके लिये सोना व जागना समान है—भावनाओंका वेग इतना प्रबल व शक्तिशाली हो जाता है कि निद्रा-वाटिकामें प्रवेश कर सकने वाली शान्त परिस्थितिको रेंग कर आने ही नहीं देता। अतः चाहे सबमें कमी हो जाय पर निद्रामें कमी न होने देना चाहिये। अभी तक कहा जाता था कि सब रोगोंकी जड़ आमाशयसे प्रारम्भ होती है पर अब युग आ रहा है जिसमें अनुभव किया जायगा कि रोगोंकी जड़ें मस्तिष्कसे भी प्रारम्भ होती हैं। मैंने बहुतेरे साथियोंको अशांति व निद्रा-नाशकी शिकायत करते सुना है। उन्हें मेरे अनुभव किये हुये मार्ग पर चलनेसे पूर्ण लाभ हुआ है। अतः पाठकोंके लाभार्थ उनको यहाँ लिख देना अनुचित न होगा। यह निम्नलिखित प्रयोग कहानीकी भाँति केवल पढ़कर अलग रख देने योग्य नहीं है, अपितु अनुभव करके देखने योग्य है।

निद्रा-विज्ञान शयनकाल ९, ९½, या १० से ही प्रारम्भ नहीं होता बल्कि सूर्यास्तसे प्रारम्भ हो जाता है। जिसने सायं-क्रियाका महत्त्व समझ लिया वह कभी गलती नहीं कर सकता। सूर्यास्तसे लेकर शयनकाल तक होने वाली प्रत्येक क्रियाका हमारे शरीर, मस्तिष्क, निद्रा व स्वास्थ्य पर अविदित प्रभाव पड़ता है। बड़ी सावधानीकी आवश्यकता है। परिवारसे इस प्रकारकी परम्परा बना देनी चाहिये ताकि वर्तमान या भावी संतानको कष्ट न उठाना पड़े। यह परम्परा यहाँ दी जायगी।

सायं-चर्यामें दो बातें मुख्य हैं, एक तो भोजन दूसरी गोष्ठी या विनोद। नियम-सा बना लिया जाय कि ठीक सूर्य्यके दस-पन्द्रह मिनट आगे या पीछे भोजन कर लिया जायगा। इसका पालन भी कठोरतासे हो। जो देरसे खाना खाय उसे या तो न दिया जाय या आधा भोजन दिया जाय। भोजन सादा हो। अधिक तरकारियाँ या अधिक दालें न हों। मटर, गोभी, आलू, टमाटर, सेममेंसे किसी न किसी दोका गीला व पालक, मूली, मूलीका पत्ता, हरा चना, बथुआ, सलाद, मेथी, सोआमेंसे किसी एकका सूखा साग अवश्य हो। जहाँ तक हो सके रात्रिके भोजनमें पत्तीदार तरकारियोंका गीला साग हो। मूली, दही, अदरख, चावल, नींबू, पोदीना प्याज न खाये जाये तो अच्छा है, मध्याह्न-कालके भोजनमें इनका प्रयोग निर्भय होकर करना चाहिये। कारण यह है कि रात्रिमें सूर्य-रश्मियोंका सहयोग प्राप्त न हो सकनेके कारण इन पदार्थोंकी (शरीरके भीतर) रासा-निक क्रियायें विपरीत ढंगसे होती पाई गई हैं। रात्रिके भोजनमें दूध व शर्कराका प्रयोग अवश्य होनी चाहिये। सोनेके पूर्व दूध पीने की परम्परा मुझे हानिकर प्रमाणित हुई है। भोजन कर चुकनेके पश्चात दूध पीना स्वास्थ्यप्रद हुआ है। भोजन भर पेट न किया जाय, कुछ कम किया जाय। जितने समय भोजन किया जाय कि अपने व्यवसाय जन्म, मृत्यु, संसार आदि पर वार्तालाप न किया जाय। खाना परोसने वाली माँ, बहिन, पत्नीसे खुले दिल निश्छल होकर शुद्ध हास्य किया जाय। जितना भी खाया जाय ठहर-ठहर कर भली-भाँति दाँतोंसे कुचलते हुये खाया जाय, जल्दी-जल्दी घबराहटमें नहीं। खाते समय अकेले बैठकर न खाना चाहिये क्योंकि ऐसा करनेसे अपने ही भावों में बह जाया करता है। चौकामें या बगलमें कोई न कोई अवश्य होना चाहिये। यदि आप गृहस्थ हैं तो अलग-अलग खानेकी अपेक्षा अच्छा हो कि पुत्र, पुत्री, भाई, बहिन, पिता, माता, सहधर्मिणी आदि जो-जो कुटुम्बमें हों सबको साथ बिठाकर भोजन करे। यदि आप विद्यार्थी हैं तो सह-पाठियोंके साथ भोजन करें।

दूसरा महत्त्वपूर्ण प्रश्न सुहृद प्रश्न गोष्ठीका है। इसे कुछ लोग व्यर्थ या प्रयोजनहीन समझते हैं किन्तु वास्तव में बात ऐसी नहीं। भोजनके पश्चात् पूर्ण विश्राम देना चाहिये। जिस क्रिया अथवा व्यापारसे मस्तिष्कका श्रम करना पड़े वह न करना चाहिये, जैसे समाचारपत्र पढ़ना वादविवाद करना, भावी कार्य-क्रम बनाना, पत्रोत्तर लिखने के लिये बैठ जाना, पुस्तक या लेख लिखना, चित्र बनाना आदि। भोजनके बाद उपरिलिखित कार्य करनेसे एक तो मस्तिष्ककी स्फूर्ति हवा हो जाती है। दूसरे एक जगह निश्चल हो बैठ जानेके कारण आमाशय परतंत्र हो जाता है। पाचन ठीक-ठीक नहीं होता। अतः भोजनके पश्चात् कोमल व विनोदशील क्रिया-कलापोंको करना चाहिये, जैसे कुटुम्बियों, मित्रों या पड़ोसियोंके साथ गपलड़ाना, सुग-न्धित खुले हवादार मैदान या पार्कमें घूमना, सरिता प्रवाह में नौका भ्रमण करना, रोचक कविता और संगीत सुनना, लोक-हितकारी और धार्मिक कथायें सुनना। तात्पर्य यह है कि दिन भरके व्यावसायिक व्यापारोंको उस समय सर्वथा भुला देना चाहिये। चहारदिवारी से (जहाँ कि सारे दिन अकेले घुसे रहते हैं) बाहर निकल कर सामूहिक जीवन व्यतीत करनेसे मस्तिष्कमें उर्वरा शक्ति आती है। इन सब बातोंका निद्रा पर प्रभाव पड़ता है। बार-बार लिखनेकी आवश्यकता विद्वान पाठक समझते चले आ रहे हैं ध्यान देने की बातें दो ही हैं। भोजन शयन कालसे ३ घंटे पूर्व कर लिया जाय, तत्पश्चात् मस्तिष्कको शीतल, शान्त व निष्क्रिय बनाये रखनेका यत्न करना चाहिये। अधिक बोलते रहनेसे भी मस्तिष्क उत्तेजित हो उठता है।

भोजन व गोष्ठीके अतिरिक्ति कुछ बातें और भी हैं जिनका निद्रा पर प्रभाव पड़ता है, जैसे सोते समयकी पोशाक शय्या, कमरेका वायुमंडल आदि। कई बार देखा है कि दिनके प्रयोग किये हुये वस्त्र रात्रिमें पहनकर सोनेसे चमड़े

पर गंधयुक्त हरारतका चादर चढ़ा रहता है, निर्द्वन्द शीतल निद्रा नहीं आती। साबुनसे साफ़ किये हुये रंगहीन श्वेत शीतल वस्त्रोंको पहननेसे शान्त मधुर शीतल निद्रा आती है। ओढ़ने व बिछानेके वस्त्र भी दुर्गन्धिरहित व स्वच्छ होना चाहिये। कमरेकी खिड़की खुली रखनी चाहिये।

चट्टान, तख़त या भूमि पर सोनेसे अपच व अनिद्रा होती पाई गई है। जाड़ेके दिनोंमें जितना ध्यान ऊपरसे शीत रोकनेका रक्खा जाता है उतना ही नीचेका भी रखना चाहिये-नीचे गद्दा; पयाल या और कोई मोटी मुलायम वस्तु अवश्य होनी चाहिये।

नित्य सोनेके पूर्व मूत्राशयकी थैली खाली कर देनेका स्वभाव बना लेना चाहिये। मुखमें भरे हुये पान तम्बाकू मसाला आदि निकालकर स्वच्छ ठंढे पानीसे कुल्ली कर लेनी चाहिये। प्रातः ५ बजेसे आगे न सोना चाहिये।

उपर्युक्त सायंचर्या न केवल सुखद निद्रा लायेगी, अपितु धातु-दौर्बल्य, स्वप्न दोष, प्रमेह मानसिक अशांति भ्रम, उन्मादादिको जड़से उखाड़ देगी। आशा है मानव मात्र इसपर प्रयोग करके जीवन सुखी बनायेगा।

सीरम तथा वैक्सीनसे इलाज

[ले० श्री रामदास तिवारी, एम० एस-सी०]

आधुनिक विज्ञानके विस्तारके साथ-साथ मनुष्यको रोगोंसे बचानेके साधन भी काफी उन्नति करते गये हैं। रोगोंको दूर करनेके लिये औषधियोंका प्रयोग तो बहुत ही प्राचीन-कालसे होता चला आया है, पर सूईके द्वारा अधिकांश बीमारियोंका इलाज कुछ बहुत पुराना नहीं है। आजकल डाक्टर सीरम तथा वैक्सीनका प्रयोग अनेक बीमारियोंमें करते हैं और इस विधिसे काफी सफलता प्राप्त होती है। इन आविष्कारोंने मनुष्यको अनेक शारीरिक तथा मानसिक रोगों पर विजय दिलाई और उसको साधारणतः निरोग जीवन बितानेमें सहायता दी है। इन सब बातोंके लिये हम डाक्टरोंके नहीं, बल्कि कुछ जीव-रसायनज्ञोंके ऋणी हैं।

अट्ठारहवीं शताब्दीके अंत तक बीमारीके कीड़ों तथा कीटाणु-विज्ञानके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं मालूम था। अतः अधिकांश बीमारियाँ जो कीटाणुओं द्वारा होती हैं डाक्टरों की समझके बाहर थीं और उनका उचित इलाज भी नहीं मालूम था। लोग इस बातको सोच भी न सकते थे कि मक्खियाँ, मच्छर, खटमल इत्यादि भी रोग फैलानेके कारण हो सकते हैं। गत ६० वर्षों के अंदर इनके सम्बन्धमें काफ़ी खोज हुई है। इस क्षेत्रके मुख्य कार्यकर्त्ता दो वैज्ञानिक थे। एक फ्रांसीसी रसायनज्ञ लुई पस्तूर (Louis Pasteur) और दूसरा अंगरेजी डाक्टर लिस्टर। पस्तूर एक रसायनज्ञ था और उसने रासायनिक सिद्धान्तोंको डाक्टरीमें बहुत ही अच्छी प्रकारसे लगाया जैसा डाक्टर लोग कभी नहीं कर सकते थे। पहले तो डाक्टरोंने पस्तूर की बातों पर विश्वास ही न किया पर अन्तमें सत्य की विजय हुई और उनको-पस्तूरके आगे सर झुकाना ही पड़ा। आजकल संसारके हर एक भागमें पस्तूर इंस्टीट्यूट (Pasteur Institute) हैं जो उसके नामको अब भी अमर कर रहे हैं।

पस्तूरसे पहले भी लोग कीटाणुओं द्वारा होने वाली बीमारियोंके सम्बन्धमें जानते थे पर वैज्ञानिकोंको इनका ठीक ज्ञान न था। पस्तूरके प्रारम्भिक प्रयोग यीस्ट या खमीराणु तथा एल्कोहालिक किण्वीकरण (alcoholic fermentation) पर थे। उसने यह निकाला कि कुछ वनस्पति-कीटाणु शक्कर एल्कोहालमें परिणत कर देते हैं, कुछ एल्कोहालको सिरकेमें तथा कुछ दूधको खट्टा कर देते हैं। उसने सोचा कि यदि ऊपर बताये हुये परिवर्तन कीटाणुओं द्वारा हो सकते हैं तो संभव है कि मनुष्यके खून पर भी इनका कुछ-न-कुछ प्रभाव अवश्य होता हो। पस्तूरने इसका उत्तर रेशमके कीड़ों की बीमारियोंका अध्ययन करके निकाला और यह बात सिद्ध कर दी कि बीमारीका कारण कीटाणु हैं। फिर उसने एन्थ्रेक्स नाम की बीमारीका अध्ययन किया जिससे कि भेड़ें अधिक संख्यामें मर जाती थीं। उसने निकाला कि यह बीमारी एक खास कीटाणु द्वारा होती है। उसने एक दवा तैयार की जो सूईके

द्वारा रोगीके खूनमें पहुँचा दी जाती थी। इसको वैक्सीन कहते हैं। इस दवाके द्वारा रोगीका खून एन्थ्रेक्सके कीटाणुओंके आक्रमणसे बचा रह सकता है।

आजकल वैक्सीन तथा एण्टी-टॉक्सिनोंके द्वारा काफी रोगोंका इलाज होता है, जैसे डिप्थीरिया (diphtheria), हैज़ा (cholera), टीटेनस (tetanus), प्लेग (plague) इत्यादि। इसका सिद्धान्त समझनेके लिये हमें एडवर्ड जेनर (Edward Jenner) नामक डाक्टरके कामका अध्ययन करना पड़ेगा। उन्नीसवीं शताब्दीके प्रारम्भ में यह बात मालूम थी कि जिस मनुष्यको काऊ-पॉक्स (cowpox) नाम की बीमारी एक बार हो जाती है उसे जीवन भर चेचक नहीं होती, अर्थात् काऊ-पॉक्स की बीमारी उसके खूनमें कुछ ऐसी शक्ति पैदा कर देती है जिससे कि वह चेचकके हमलेसे अपनेको बचा सकता है। एडवर्ड जेनरको यह बात सूझी कि यदि काऊ-पॉक्स वीरसके द्वारा एक मनुष्यके सूई लगा दी जाय तो उसको चेचक नहीं हो सकती। जेनर ठीक था और चेचकका यह इलाज टीका लगाना अर्थात् वैक्सीनेशन (vaccination) कहलाता है। यदि यह बात चेचकके लिये सही है तो और भी बीमारियोंका भी इसी प्रकारका इलाज निकाला जा सकता है। पस्तूरने इस बातको लेकर प्रयोग करना प्रारम्भ किया और एन्थ्रेक्स, टायफायड, डिप्थीरिया इत्यादि बीमारियोंके इलाज निकालनेका प्रयत्न करने लगा। उसको एन्थ्रेक्स तथा हाइड्रोफोबियामें जो पागल कुत्तेके काटनेसे होती है काफी सफलता मिली। उसने ऐसी वैक्सीन निकाली जो कि रोगीके खूनमें सूईके द्वारा भेजी जा सकती है और जिनके द्वारा वह अपनेको उन बीमारियोंसे बचा सकता है। वैक्सीनमें रोगका मुर्दा या क्षीण-शक्तिवाला कीटाणु होता है जिससे मनुष्यमें वह बीमारी साधारण रूपमें हो जाती है और इससे उसका खून इसका आदी हो जाता है जिससे उस रोगका तेज़ हमला उसको नुकसान नहीं पहुँचा सकता। वैक्सीनके लिये कीटाणु एक खास माध्यममें पाले जाते हैं और उसीमें रक्खे भी जाते हैं।

मेटकनिकाफ (Metchnikoff) नामक रूसी वैज्ञानिकने भी इस क्षेत्रमें काफी काम किया है। वह पस्तूरके साथ काम करता था। उसने निकाला कि फैगोसाइटा या खूनके श्वेत-रक्ताणुको यदि कीटाणुओंके आस-पास लपेट दिया जाय तो वे कीटाणुओंको नाश कर देते हैं, अर्थात् यह फैगोसाइट खून की रक्षाके लिये पुलिसका काम करते हैं, यदि एक बार उनको किसी कीटाणुका सामना करना पड़ा तो वे समझ लेते हैं कि आगे चलकर किस प्रकार उसका सामना किया जाय। इस प्रकार मनुष्यको वह बीमारी फिर दुबारा नहीं हो सकती और यदि हुई भी तो बहुत ही साधारण रूपमें। अब यह बात भी सिद्ध हो चुकी है कि खूनमें कुछ और भी जीव हैं जो फैगोसाइटोंके कीटाणुओंके नाश करनेमें सहायता पहुँचाते हैं।

कीटाणुओंका वर्गीकरण

वे कीटाणु जिनके विरुद्ध फैगोसाइट तथा एण्टी-टॉक्सिनको लड़ना पड़ता है, बनावटके हिसाबसे तीन भागोंमें बाँटे जा सकते हैं।

(१) माइक्रोकोकस - यह गोल रूपके होते हैं। इनमेंसे न्यूमोकोकस निमोनिया नाम की बीमारी पैदा करता है स्टेफिलोकोकस-पायोजेनेस नामक सूक्ष्माणुका चित्र (चित्र १) दिखाया गया है।

(२) बेसिलस— ये डंडाकार होते हैं। डिप्थीरिया इनफ्ल्यूंजा, टाइफायड, प्लेग तथा एन्थ्रेक्स इत्यादि बीमारियों के कीटाणु इसी समूहके होते हैं। इनमेंसे डिप्थीरिया तथा एन्थ्रेक्स नामक बीमारियाँ उत्पन्न करने वाले कीटाणुओंका चित्र (चित्र १, २) दिखलाया गया है।
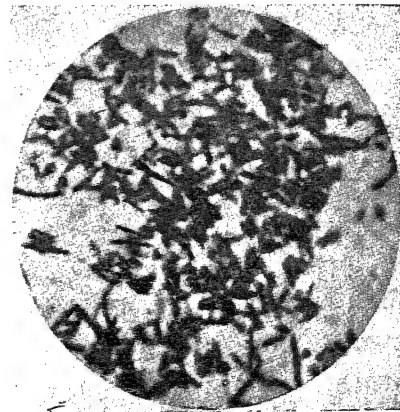
चित्र—१ डिप्थीरियाके कीटाणु

(३) स्पाइरल—ये सर्पिलकार मुड़ी हुई लहरोंके रूप

में होते हैं। कालरा तथा तपेदिकके कीटाणु इसी समूहके हैं।

ऊपर बतलाये हुये कीटाणु छोटे-छोटे एक-कोष्ठक वनस्पति होते हैं, पर अधिकांश बीमारियाँ तो जीवाणुओंके
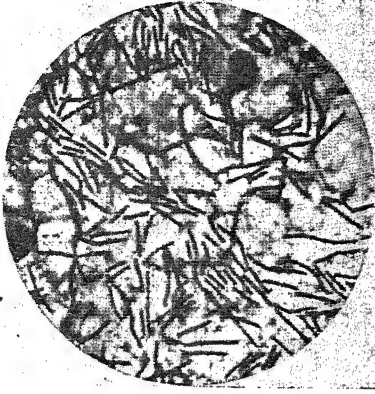
चित्र - २ एन्थ्रेक्सके कीटाणु

द्वारा होती हैं जिनको ट्राइपेनोसोमा (trypanosomes) कहते हैं। इसका चित्र (चित्र ३) दिखलाया गया है। निद्रा ज्वर नाम बीमारी ट्राइपेनोसोमा गेम्बियेनसीके
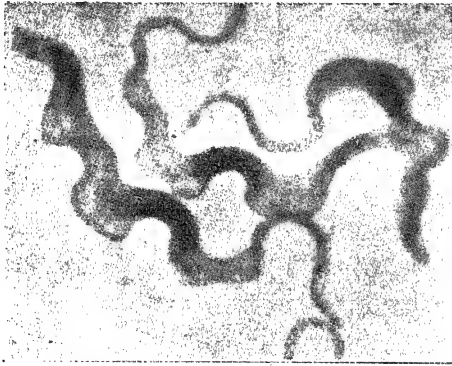
चित्र— ३ ट्राइपेनोसोम

द्वारा होती है और अफ्रीका की एक मक्खी जिसे सी-सी फ्लाई (tsetse fly) कहते हैं इस रोगको फैलानेमें सहायता देती है। इसका चित्र (चित्र ४) यहाँ पर दिखलाया गया है। सर रोनल्ड रॉस ने अपने प्रयोगों द्वारा यह निकाला है कि मच्छर मलेरियाको फैलाते हैं। यह मच्छर कीटाणुओंको दूसरे मनुष्य तक ले ही नहीं जाते परन्तु कीटाणु मच्छरोंके शरीरमें पलते तथा बढ़ते भी हैं।

इन सब बातोंसे हमे ज्ञात हो गया कि हम मनुष्यमें कीटाणुओं द्वारा रोगसे बचनेके दो उपाय कर सकते हैं।
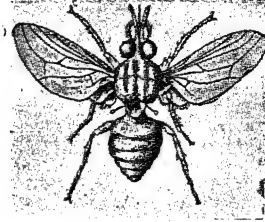
चित्र—४ सी-सी मक्खी

एक तो जिस रोगसे उसे बचाना हो उसको सूक्ष्म मात्रामें मनुष्यमें उत्पन्न कर देना जिससे कि फिर वह रोग उसे न हो सके और दूसरे, किसी पशुको पहिले रोग फैलाने वाले कीड़ोंसे टीका करके फिर उनका सीरम निकालते हैं। इस सीरममें रोगको रोकनेको शक्ति होती है और इसको मनुष्यके शरीरमें सूई द्वारा प्रविष्टकर दिया जाता है।

जब किसी मनुष्यके शरीरमें किसी दूसरे जानवरके शरीरका विषैला रस सूई द्वारा भेजा जाता है तो उसके द्वारा मनुष्यमें विषघ्न गुण पैदा होते हैं जिनको एण्टी-जेन (antigen) कहते हैं। यह रोगोत्पादक कीड़ोंका नाश करता है और टॉक्सीन (toxin) कहलाता है। यह दो प्रकार का होता है।

(१) एक्सो टॉक्सीन—यह द्रव-कलचर मीडियामें बैक्टीरिया डालनेसे पैदा होता है। यह बैक्टीरिया शरीरसे बिलकुल पृथक पदार्थ है जो मीडियाको छाननेसे प्राप्त होता है।

(२) इण्डो टॉक्सीन—यह बैक्टीरियाके शरीरसे प्राप्त किया जाता है। पहले ऐक्सो टॉक्सीनको अलग करके किसी पशुमें इण्जेक्ट करते हैं और उस पशुका सीरम मनुष्यमें इण्जेक्ट करनेके काममें लाते हैं।

ऐण्टी टॉकिसन सीरम डिफ्थीरिया तथा टिटेनसके रोगियों पर प्रयोग किये जाते हैं। इनको बनानेके लिये पहले यह देखा जाता है कि मूल विषकी कितनी शक्तिसे अच्छा भला जीव मर जाता है और फिर उसका सीरम दूसरे

कामका लेखा इस प्रकारसे रखता है कि जिससे सब प्रकारके खर्चों का विश्लेषण क्रियानुसार करके सारणी रूप-में प्रकाशित कर दिया जाता है ताकि भविष्यमें होने वाले कामोंका मूल्य बड़ी सरलतासे लगाया जा सकता है।

मूल्यका अनुमान लगानेका सिद्धान्त :—किसी भी यंत्र अथवा सामानके मूल्यका सही-सही अनुमान लगानेके लिये यह बहुत आवश्यक है कि उसपर अथवा उससे सम्बन्ध रखने वाली प्रत्येक क्रियापर खूब बारीकी-से विचार किया जावे, जैसे कि उसका फरमा बनाने, ढलाई करने, उसे गढ़ने, उसमें लगने वाले सरियों, प्लेटों और पेंच आदि की लागत, उसपर होने वाली खराद, रेताई और कटाई आदि की मजूरी, और कारखानेके प्रबंध आदि के भिन्न-भिन्न खर्चे इत्यादि।

उदाहरणके लिए यहाँ पर हम यंत्रोंका निर्माण करनेके लिए फरमा बनाने, ढलाई करने, खरादने, तैयारी करने (assembling) और प्रबंध खर्चकी कुछ बारीकियों पर विचार करेंगे।

फरमा—फरमोंका मूल्य उनमें खर्च हुई लकड़ी और उनको बनानेमें खर्च होने वाले समय पर निर्भर किया करता है और लकड़ी का खर्चा फरमे के आकार पर और समय का खर्चा उसकी बनावट पर निर्भर होता है। जब एक ही प्रकार की कई मशीनें बनाई जाती हैं तब तो फरमों का खर्चा सब पर बट जाने के कारण प्रत्येक मशीन के ऊपर अधिक नहीं आता, परन्तु जब केवल एक ही मशीन बनाई जाती है तब तो उसके मूल्य का एक बहुत बड़ा भाग फरमों का खर्चा ही होता है। फरमों की कीमत का अनुमान लगाने वाले को मालूम होना चाहिए कि फरमा बनाने में कैसी और किस भाव की लकड़ी लगती है, उन्हे बनाने वाले बढ़ई किस योग्यता तथा वेतन के हैं, फरमाघर में किस-किस प्रकार की मशीनें मौजूद हैं और उनसे क्या-क्या काम लिया जावेगा। उसे यह भी मालूम होना चाहिए कि फरमें किस विधि से से सब से अच्छे तथा सस्ते बनाए जा सकते हैं। फरमा बनाने की प्रत्येक क्रियापर बारीकीसे विचार करना चाहिए, जैसे, आरी से चीरना, खरादना, रंदा करना, खोदना, चिपकाना और किनारे गोल करना इत्यादि। इस प्रकार जितना ही अधिक बारीकी से विचार किया जावेगा, कीमत का अन्दाजा उतना ही अधिक सही लगा। अनुमान लगाने वाले को समय-समय पर कारखाने में जाकर यह देखना चाहिए कि जिस शैली पर काम करने का वह विचार बाँधता है क्या उसी प्रकार से वहाँ भी काम होता है? यदि नहीं, तो अपने विचारों में उसे आवश्यक हेर-फेर करना आवश्यक है और वहाँके फोरमैनसे विचार-विनिमय करते रहना चाहिए।

ढलाई—फरमेंके बाद ढलाई की बारी आती है। और जितनी मशीनें बनानी होती हैं उन्हींके अनुसार प्रत्येक अदद की ढलाई की संख्या निश्चित होती है। अक-सर ढली हुई चीज़ों की कीमत उनके वजनके हिसाबसे लगाई जाती है, और उनके वजन का हिसाब नकशोंसे लगा लिया जाता है और जो नकशोंके हिसाबसे वज़न आवे उसमें १० से लेकर १५ प्रतिशत तक ढलाई की मिट्टी, हवा के बुलबुले, गलतियों और खरादके लिए जोड़ देना चाहिए।

खराद—ढलाई के पीछे खराद की बारी आती है। खराद की मजूरी और खर्चा खरादे जाने वाले अददके पदार्थ, खरादे जाने वाले हिस्से के क्षेत्रफल, खराद कर उतारे जाने वाले माल की मात्रा, खरादी हुई सतह की तैयारी का प्रकार (accuracy of finish,) अदद की बनावट और संख्या पर निर्भर रहता है। खरादने की सब क्रियाओंका भी उसी प्रकार की बारीकी से विवेचन करना चाहिए जैसे कि फरमा बनाते समय किया था, जैसे छिदाई (drilling), विधाई (boring), खरदाई (turning) चूड़ी कटाई (screw cutting), चूड़ी सलाई (tapping) और रँदाई (planing) इत्यादि, और फिर साथ ही में उस अदद को प्रत्येक यंत्र पर जमा कर बाँधने के लिए कितना समय लगता है इसका विचार करना चाहिए, इसका अनुमान केवल अनुभव से ही लगाया जासकता है। इस समयके अलावा और और सब क्रियाओंका हिसाब तो गणितसे बड़ी अच्छी तरह लग सकता है। उदाहरणके लिए मान लीजिए हमें किसी अददके विशेष भाग को गोल खरादनेके समय का अन्दाजा लगाना है, तो हमें यदि मालूम हो जाए कि

रुखानी किस गतिसे उस अदद की ऊपरी सतह को छीलती है, कटने वाले माल की गहराई क्या है? एक चक्कर में रूखानी कितनी आगे बढती है? और उस खरादे जाने वाले भाग की लम्बाई क्या है? तो इन सब बातोंपर विचार करके हम मालूम कर सकते हैं कि खराद की उक्त क्रिया में कितना समय लगेगा। इसी प्रकार छेदने और रंदा करने के समय का हिसाब लगाया जा सकता है।

किसी भी अदद के खराद के खर्चे का अनुमान लगाने में एक विशेष बात जो सोचने की है वह यह है कि कौन कौन से औज़ार मौजूद हैं और कौन-कौन से नये बनाने पड़ेंगे। यदि किसी प्रकार के विशेष औज़ार बनाने पड़े तो उनका सब खर्चा उस काम पर लगा देना चाहिए क्योंकि अन्त में, सब खर्चा कर चुकने पर फायदा भी तो उठाना है। यदि संयोगवश वे औज़ार इस प्रकार के हों कि उस काम को समाप्त करने के बाद कारखाने के अन्य कामों में भी उपयोग देते रहें तो उनके खर्चे का कुछ भाग कारखाने के साज-सामान (shop equipment) पर डाला जा सकता है परन्तु फिर भी उस खर्चे का एक बड़ा भाग उस विशेष काम पर ही डालना चाहिए।

प्रत्येक औज़ारके उपयोग का विवेचन करते समय उससे अधिक से अधिक सीमा तक काम लेने की ही बात सोचना चाहिए और काम को सब से उपयुक्त यंत्र पर करने की ही बात सोचनी चाहिए। जैसे मान लीजिए कि कोई काम 'टरट खराद" पर अच्छा और जल्दी हो सकता है तो उसे साधारण खराद पर चढ़ाने का विचार नहीं करना चाहिए और इसी प्रकार जो काम आड़ी मिलिंग मशीन पर अच्छा हो सकता है तो उसे खड़ी मिलिंग मशीन पर करवाने का विचार नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार जबकि रूखनियाँ 'हाईस्पीड स्टील" की मिल सकती हैं जो अधिक गहरा माल काट सकती है तो साधारण स्पात की रूखानियों से पतला-पतला माल काटने का विचार नहीं करना चाहिए। साथ ही यह भी नहीं समझना चाहिए कि काम बाधारहित, बिना किसी रुकावट के होता हुआ चला जावेगा, क्योंकि अकसर अददों को खरादने के लिए उन्हें यंत्रों में बाँधने के लिए बोल्ट नट और वाशर इत्यादि ढूँढने में, औज़ार घर से औज़ार लाने में, मशीन को साफ करने और तेल देने में, माल चढ़ाने में अथवा उसकी जगह बदलने में, नकशों को पढ़ने आदि में समय नष्ट होता ही है और उसमें कुछ उपयोगी काम भी नहीं होता। साथ ही कभी कभी होने वाली टूट-फूट तथा चोटफेट का विचार करना भी आवश्यक है।

तैयार करना और जोड़ना—किसी यंत्र अथवा सामान के प्रत्येक भाग को अलग-अलग खराद चुकने के बाद फिट करके अर्थात छेनी या आरी से काट कर और रेती से घिस कर एक दूसरे से जोड़ने की बारी आती है। इसका खर्चा उसकी बनावट की पेचीदगी और कारीगरी के दर्जे पर निर्भर करता है। अतः इसका हिसाब केवल अनुभव से ही लगाया जा सकता है।

कारखाने की व्यवस्था-खर्च—जबकि फरमा बनाने से लेकर सामान को जोड़ने (assembling) तक की कुल कीमत आजावे तब उसका कुछ प्रतिशत व्यवस्था खर्च का मुजरा देने के लिए जोड़ देना चाहिए और फिर अन्त में मुनाफे के लिए कुछ प्रतिशत जोड़ देना चाहिए जोकि सब प्रकार के खर्चों से बरी हो। खर्चे का अनुमान लगाने की उपरोक्त रूपरेखा में यह मान लिया गया है कि जो काम विचाराधीन है उस प्रकार का काम पहले कभी भी उस कारखाने में नहीं बना है।

मूल्यका अनुमान लगानेके प्रचलित तरीके

आधुनिक बड़े-बड़े कारखानोंमें मूल्यका अनुमान लगानेके लिए प्रचलित तरीकोंमेंसे तीन तरीके मुख्य हैं १—बोझके सीधे हिसाबसे अथवा किसी सापेक्ष वक्र (curve of comparison) के अनुसार। २—प्रत्येक विभागके फोरमैनोंके दिए हुए मजूरी और सामान की लागत पर कुछ प्रबन्ध खर्च जोड़ देनेसे। ३—पिछले अध्यायमें वर्णित यन्त्र-दरके अनुसार। कई बड़े-बड़े कारखानोंमें जिस प्रकारसे उपरोक्त तीनों तरीकोंके अनुसार मूल्यका अनुमान लगाया जाता है, उसका यहाँ पर संक्षेपमें वर्णन किया जाता है। आशा है वह पाठकोंको उपयोगी जँचेगा।

१—मान लीजिए कोई कारखाना केवल खराद मशीनें ही बनाता है और वह भी कई डिज़ाइन की, और प्रत्येक

डिज़ाइन की भी छोटी-बड़ी कई नाप की। अब प्रत्येक डिज़ाइन की मशीनोंके वास्तविक मूल्यका पुराना लेखा अलग छाँट लिया जाता है और प्रत्येक नाप की मशीनों की प्रति पौंड लागत मालूम कर ली जाती है, इस लागतके अंकोंसे वक्र ग्राफ तैयार कर लिया जाता है जिसकी एक भुजा तो प्रति पौंड मशीन की लागत बताती है और दूसरी भुजा मशीनका कुल बोझ बताती है। यह वक्र पूर्व अनुभवके बल पर बनता है। इसलिए जब कभी भी कोई ऐसी मशीन बनानेका आर्डर अथवा आदेश मिलता है जिसका डिज़ाइन तो पहले बनाई हुई मशीनोंसे बहुत कुछ मिलता-जुलता है परन्तु उसके नाप और वज़नमें भिन्नता होती है तो इस प्रकार की मशीनके मूल्यका अनुमान इस वक्रसे किया जा सकता है। यदि डिज़ाइनमें थोड़ा-सा अन्तर भी होता है तो उसकी कमी-बेशीका अनुमान पूर्वानुभवके बल पर लगा लिया जाता है।

२ — मान लीजिए किसी कारखानेको एक ऐसी मशीन बनानेका आदेश मिला जैसी कि वहाँ पर पहिले कभी भी नहीं बनायी गई। ऐसी दशामें सबसे पहिले उस मशीनके नकशे बनाए जावेंगे, और उसका पूरा विवरण तैयार कर लिया जावेगा। यह सब तैयार हो जाने पर उसे कारखानेके फोरमैनों की समितिमें रक्खा जावेगा, जिसमें कारखानेका व्यवस्थापक तथा मुख्य यांत्रिक भी शामिल होंगे। उस मशीनके नकशों पर पूरी तरहसे विचार करनेके बाद ढलाईखानेका फोरमैन मशीनके पुर्ज़ेके ढालनेके विषयमें अपने विचार प्रकट करेगा, और यदि उसे कहीं दिक्कत मालूम होती है तो वह बता देगा है। और ही में वह भी बता देगा कि डिज़ाइनमें कहाँ पर हेर-फेर करनेसे काम अच्छा, सस्ता और सरलतासे हो सकेगा। फिर फरमाका फोरमैन भी अपने फर्मोंके खर्चेका तखमीना बता देता है। ढले हुए पुर्जों की कीमत उनके वज़नके अनुसार हुआ करती है। ढलाई भी कई श्रेणियोंमें, कारीगरों की मेहनत, लोहे की जाति और ढलाई करनेके तरीक़ोंके अनुसार बाँटी जाती है और उसी के अनुसार उसकी दर निश्चित कर दी जाती है। नकशा बनाने वाले ड्राफ्ट्समैन लोग ही ढलाईके पुर्जों के वज़नका अन्दाज़ा भी हिसाबके लगा देते हैं। इस समितिमें तो ढलाईखानेके फोरमैनको केवल यही बताना होता है कि कौन-सा पुर्ज़ा किस श्रेणी को ढलाईमें गिना जाना चाहिए। फिर यन्त्र घरका फोरमैन पुर्ज़ोंकी खरादके विषयमें अपने विचार प्रकट करता है। खरादका खर्चा समयके आधार पर लगता है जिसकी दर क्रियाओंके अनुसार समयके आधार पर पूर्वानुभवसे निश्चय की जाती है। फिर तैयारी-विभागका फोरमैन पुर्ज़ों को जोड़ कर मशीनको खड़ा करनेके विषयमें अपने विचार प्रकट करता है और उसके खर्चेका अन्दाज़ा बता देता है। खुले हुए फुटकर सामान जैसे बोल्ट, नट, पिन, बालबीयरिंग आदि की कीमत वस्तु भंडार का दारोगा बता देता है। इस प्रकारसे जब कुल मशीनका खर्चा लग जाता है तब उसमें व्यवस्था-खर्चे और लाभ आदि जोड़ कर मशीनकी अन्दाज़िया कीमत निश्चित कर दी जाती है। इस कीमत और मशीनके अनुमानित वज़नसे मशीन की प्रति पौंड कीमत निश्चित कर ली जाती है और उसका अपने प्रतिस्पर्धियों की बनाई हुई उसी प्रकार की मशीन की कीमतसे मिलान किया जाता है। यदि यह कीमत उससे कुछ अधिक पड़ती है तो मशीनके डिज़ाइन और बनानेके तरीक़ोंमें कुछ परिवर्तन करके खर्चेको कम करनेका प्रयत्न किया जाता है।

३ — अनुमान लगानेकी तीसरी विधि सर्वथा वैज्ञानिक है। इसके अनुसार वैज्ञानिक ढंगसे देखा जाता है कि उस यन्त्रके प्रत्येक पुर्ज़ेको तैयार करनेमें कौन-कौन-सी क्रियाएँ (operations) करनी होंगी, उनकी लागत क्या होगी, सामान कितना-कितना खर्च होगा, और उस पर व्यवस्था-खर्चे कितना पड़ेगा। कीमत लगाने की तरकीबें बताते समय पिछले अध्यायमें इन बातों पर काफी विचार किया जा चुका है, उन्हीं बातों पर पूर्वानुभव और लेखेके बलसे भविष्यमें होने वाले कामका सही-सही अनुमान लगाया जाता है, परन्तु वास्तवमें यह तरीका बहुत खर्चीला पड़ता है, और जिन कारखानों की व्यवस्था पक्के वैज्ञानिक ढङ्गसे होती है और जिनके अनुभवके काफी आँकड़े इकट्ठे हो चुके हैं वे ही विधिका प्रयोग कर सकते हैं। इस तरीक़ेसे काम करने वालोंको आवश्यक ग्राफ, सारणियाँ, स्लाइड रूल और हिसाब लगाने वाले यन्त्रोंका खूब उपयोग करना चाहिए जिससे काम जल्दी तथा कम परिश्रमसे हो सके।

बाग़वानी

[ले०—श्री शंकरराव जोशी]

गमले भरनेके सम्बन्धमें कुछ सूचनाएँ

१—जिस मौसममें पौधेकी बाढ़ ज़ोरसे शुरू हो उसी मौसममें गमला भरना चाहिए। बाढ़ शुरू होनेसे पहले गमला भरना या गमला बदलना हानिकारक है।

२—झँकरा जड़ वाले पौधोंके गमले बहुत सावधानी-से बदले जाने चाहिये।

३—ज़मीनसे खोदकर निकालनेमें पौधोंकी जड़ें टूट जाती हैं। इसलिए टूटी हुई जड़ोंको टूटे हुए स्थानसे कुछ ऊपरको तेज़ चाकूसे काटनेके बाद ही गमलेमें या किसी दूसरे स्थान पर लगाना चाहिए।

पौधोंकी छँटाई

पौधेको कमज़ोर, रोगी, सूखी और घनी टहनियोंको काटनेकी क्रियाको ही छँटाई करना कहते हैं। पौधेकी बाढ़ अच्छी होनेके लिए भी छँटाई की जाती है। छँटाई किया हुआ पौधा खूबसूरत भी दिखाई देता है। छँटाई या क़लम करनेसे पौधेको फूल बड़े आते हैं और फल भी अधिक लगते हैं।

छँटाई या कलम करनेके लिए तेज़ धार कैंची या चाकू ही इस्तेमाल किया जाना चाहिए। याद रखना चाहिए कि सफाईसे कटा हुआ ज़ख़्म जल्द भर जाता है। चीरे और फटे हुए घाव मुश्किलसे भरते हैं। कभी-कभी रोगके कीड़े इस ज़ख़्ममें घर कर लेते हैं जिससे पौधा रोगी हो जाता है। मोटी डालियोंको आरेसे काटना चाहिये। कटे हुए भाग पर डामर, काली मिट्टी, गोबर, आदि लगा देना चाहिए, जिससे कीड़े, फंगस रोग आदि हमला न कर सकें।

शत्रु

शिशु-तरुपर नाना प्रकारके कीड़े और रोग हमला करते रहते हैं। कई प्रकारके कीड़े वनस्पतिपर जीवन-निर्वाह करते हैं। कीड़े पौधेके जुदे-जुदे भागपर रहते हैं। कुछ कीड़े पत्ते खा डालते हैं। बहुतसे कीड़े टहनी और तनेमें छेद करके उन्हें भीतर ही भीतर खोखला कर डालते हैं। इसलिए नरसरी या गमलोंमें लगाये गए पौधोंको बड़ी सावधानीसे हमेशा देखते रहना चाहिए और अंडे-इल्ली पकड़ कर नष्ट कर दिए जाने चाहिए।

औषधियाँ

(१) क्रूड ऑयल इमलशन—यह दवा कलकत्ता, बम्बई आदि बड़े-बड़े नगरोंमें मिलती है। बीस सेर पानीमें करीब पाँच छटाँक दवाई मिलाकर काममें लाई जाती है।

(२) साबुनका मिश्रण—आध सेर कपड़े धोनेके साबुनको पाँच सेर पानीमें डालकर उबालकर मिश्रण मिलाकर काममें लाओ।

(३) तमाखूका सत—एक सेर तमाखूको चौबीस घंटे तक पानीमें भिगो रक्खो या आध घंटे तक पानीमें उबा लो। इसके बाद ठंढा करके तमाखूको दोनों हाथोंसे खूब मसल डालो और तब छान लो। इसमें एक पाव कपड़ा धोनेका साबुन मिला दो। एक भाग पानी मिलाकर काममें लाओ। यह दवा सब प्रकारके कीड़ेके लिए काममें लाई जा सकती है।

(४) नीले थोथेका मिश्रण—आध सेर नीला थोथा और छः छँटाक कलईके चूनेको अलग-अलग पानीमें घोलो। अच्छी तरहसे घुल जाने पर दोनोंको मिलाकर इतना पानी डालो कि सब मिश्रण बीस सेर हो जाय। इस मिश्रणमें चाकू डुबाने पर यदि चाकूकी पत्ती पर दाग पड़ जाय तो थोड़ा चूना और मिला दिया जाना चाहिए। यह मिश्रण मिट्टीके बरतनमें ही रक्खा जाना चाहिए।

(५) फिनाइल मिश्रण—सौ भाग पानीमें एक भाग फिनाइल मिलाकर काममें लाना चाहिए। कभी साठ भाग पानीमें एक भाग फिनाइल मिलाकर भी छिड़-कते हैं।

ऊपर लिखी हुई दवाइयाँ छिड़कनेके लिए कई तरहकी मशीनें काममें लाई जाती हैं। बड़े-बड़े वृक्षों पर तो ये दवाइयाँ इन मशीनोंसे ही छिड़की जा सकती हैं। किन्तु

नरसरी गमलोंमें लगाये हुए पौधों पर झारे या हज़ारेसे ही छिड़की जानी चाहिए। पत्ते और टहनियाँ मिश्रणसे खूब तरबतर कर दी जायँ। बरसातमें ये दवाइयाँ छिड़की जानी चाहिए जब कि बारिशसे उनके धुल जानेका डर न हो।

माहू, चिटका आदिको नष्ट करनेके लिए चूना, राख, गंधक, मन मिट्टी आदिका महीन चूर्ण भुरभुराना चाहिये। गंधक आदि विषैले पदार्थोंकी धूनी देनेसे भी कीड़े मर जाते हैं।

दीमकसे बहुत हानि पहुँचती है। अभी तक दीमकका उपद्रव कम करनेके किसी रामबाण उपायका पता नहीं चला है। दीमकका घर खोदकर 'रानी दीमक' मार डालना ही एक मात्र उपाय है। दीमकके घरमें गंधकका धुआँ पहुँचानेसे भी दीमक मर जाती हैं। कहा जाता है कि हींग और नमक समान भाग लेकर एक कपड़ेमें बाँध दो। और तब इस पोटलीको सिंचाईके पानीकी नलीमें डाल दो।

एरंडी और महुआकी खलीकी खाद देने और पोस्तेके छिलकोंका महीन चूरा डालनेसे भी दीमकका उपद्रव घट जाता है।

पौधेके आस-पास हलदी डाल देनेसे चींटियोंका उपद्रव कम हो जाता है।

कौए—ये गमले व नरसरीके पौधोंके कोमल अकुंर खा जाते हैं। एक कौआ मार कर टाँग देनेसे नुकसान घट जाता है।

चूहे, गिलहरी आदि मूँगफलीके दानोंको नीले थोथेके पानीमें चौबीस घंटे तक भिगोकर खेतमें डाल देना चाहिए। सोमलको आटे और गुड़में मिलाकर गोलियाँ बनाई जाती हैं। इन्हें खानेसे चूहे मर जाते हैं।

आवश्यक औज़ार आदि

बगीचोंके लिए कई प्रकारके औज़ारोंकी ज़रूरत होती हैं औज़ारोंके अलावा दूसरी भी कई चीज़ें ज़रूरी होती हैं। उन सबका नाम गिनाना संभव नहीं है। और न आवश्यक ही है। कलम लगाने, पेवंद चढ़ाने और चश्मा बाँधनेका काम बड़े-बड़े बगीचोंमें ही किया जा सकता है। इसलिए कलम-पेवंदसे पौधे तैयार करने और बेचनेका धंधा करने वालोंके पास बगीचेमें काम आने वाले सभी मामूली औज़ार और दूसरी ज़रूरी चीज़ें मौजूद रहती ही हैं। ऐसा मान कर ही इस लेखमें उन्हीं औज़ारोंका वर्णन किया जायगा, जो खासकर कलम-पेवंद चढ़ानेके लिए ही उपयोगमें आते हैं।

छँटाई करने, कलम लगाने, कलम तैयार करने, चश्मा चढ़ाने, भिन्न-भिन्न प्रकारके पेवंद बाँधने आदिके लिए कई तरहके औज़ारोंकी ज़रूरत होती है। ये औज़ार सादे हलके, तेज़ धारवाले और फ़ौलादके ही होने चाहिए। बाज़ारमें कई तरहके औज़ार मिलते हैं। हर एक व्यक्तिको जहाँ तक हो सके ऊँचे दरजेके औज़ार ही खरीदने चाहिए। घटिया दरजेके सस्ते औज़ारोंके फेरमें पड़कर समय और पैसेका

चित्र—१६

नुक़सान सहना पड़ता है। इसलिए जहाँ तक हो सके सस्ते औज़ारोंसे बचना ही फ़ायदेमंद है।

औज़ारोंको बहुत सँभाल कर रखना चाहिए। काम हो जाने पर, उनको झाड़-पोंछ कर, कपड़े या चमड़ेकी थैलीमें रखकर आलमारी या पेटीमें हिफ़ाजतसे रखना चाहिए। हमेशा इस बातका ख़्याल रखना चाहिए कि औज़ारोंकी

धार ख़राब न होने पाए और न उनपर जङ्ग हो चढ़ने पाए।

बरसातमें इनपर वैसिलिन या ग्रीज़ लगा देना चाहिए और इनको कभी-कभी देखते भी रहना चाहिए।

कैंची (secateur)

इसको कलम करने या छँटाई करनेकी कैंची भी कहते हैं। तेज धारवाला हिस्सा ऊपरकी ओर रखकर ही इस कैंचीसे टहनी आदि काटना चाहिए। काम करना शुरू करनेसे पहले कैंचीको कीलमें तेल लगा दिया जाना चाहिए। तेल लगानेसे कैंची हल्की चलेगी और पौधेको झटका भी नहीं लगेगा। जो टहनियाँ चाकूसे नहीं काटी जा सकें, उनको इस कैंचीसे सरलता पूर्वक काटा जा सकता है। इस कैंचीसे कटा हुआ सिरा सफ़ाईसे नहीं कटता है। इसलिए कैंचीसे काटे हुए भागको चाकूसे छीलकर ठीक कर देना चाहिए।

आरा

बाज़ारमें कई तरहके आरे मिलते हैं; मोटी शाखाएँ और तने काटनेके लिए बड़े आरेकी ज़रूरत पड़ती है।
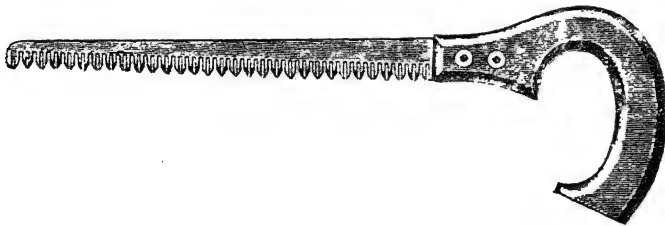
चित्र—२
आरा

किन्तु एक हाथसे चलाये जाने वाले छोटे आरे ही ज़्यादातर काममें लाये जाते हैं। पौधेकी सूखी, रोगी तथा कमज़ोर डालियाँ आरेसे ही काटी जा सकती हैं। जो टहनियाँ तने, मूल आदि कैंचीसे काटे नहीं जा सकते हैं, आरेसे सरलतापूर्वक कट जाते हैं। तना, मूल और टहनी आदिको आरेसे काटते समय बहुत ज़्यादा सावधानी रखनेकी ज़रूरत है। काटते समय टहनी या तना, जहाँ तक हो सके, हिलने न पावे और न पौधेको झटका ही लगे।

कलम काटनेका चाकू
(Pruning Knife)
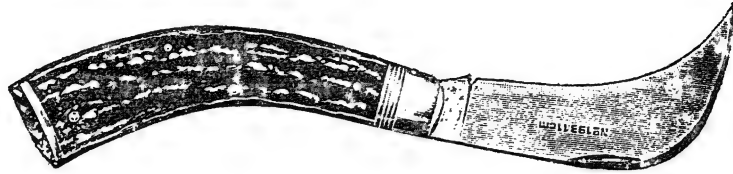
चित्र—३
कलम करनेका चाकू

आरेसे काटे हुए स्थानको छीलकर चिकना बनाने और नुची हुई छालको ठीक करनेके लिए इस चाकूकी ज़रूरत होती है। छोटी-छोटी टहनियाँ काटने और दाबकलम लगानेके-लिए भी इसका उपयोग किया जा सकता है और इससे पौधेकी छँटाई भी की जाती है।

चश्मा चढ़ानेका चाकू
(Budding Knife)

चश्मा चढ़ानेके लिए इस चाकूका होना अत्यन्त आवश्यक ही नहीं वरन् अनिवार्य भी है। इस चाकूकी बनावट एक विशेष प्रकारकी होती है। इसकी पत्ती (blade) का सिरा ज्यादा चौड़ा है और बेंटके सिरे पर पतली और चपटी हाथी-दाँतकी पत्ती-सी लगी रहती है। यह पत्ती चश्मा बिठाते समय, टहनी की छालको कोष्ठसे छुड़ानेके काममें आती है (चित्र ४)।

पेवंद बाँधनेका चाकू
(Grafting Knife)

इसी चाकूसे पेवंद बाँधनेके लिए टहनियाँ छोली जाती हैं। इसकी पत्ती बादामके आकार की होती है। यह चाकू काफ़ी मजबूत भी होता है। इसके सिरेसे पेवंद बाँधनेके लिए टहनीके अन्दर किए गये चीरेको साफ किया जाता है।

छीनी (Grafting Chisel)

पेवंद बाँधनेके लिए मोटे तने या टहनीमें खाँच करने-

चित्र ४ चश्मा करनेका चाकू
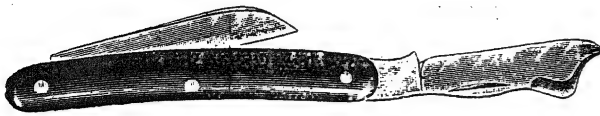
चित्र ५—पेवंद बाँधनेका चाकू

चित्र ६—छीनो

के लिए इसकी ज़रूरत होता है।

गाज (Grafting Gauge)

यह भी पेवंद बाँधनेके ही काममें आता है। इसका हत्था चार-पाँच इँच तक लम्बा होता है, और इसकी पत्ती-

चित्र ७—गाज

की लम्बाई नौ इंच तक होती है। इसका सिरा गोल होता है। तनेको खोखला बनानेके लिए इस काममें लाया जाता है। गाजकी पत्तीके सिरेकी नोक धारदार होती है। इसकी धार तेज़ रहनी चाहिए।

मेट्रोग्राफ या ग्राफ (Metro-graff)

इस चाकूकी बनावट विशेष प्रकारकी होती है। इसके बेंट पर नापनेका पैमाना भी बना होता है।

बाँधनेके बंद

आँख बाँधने और पेवंद चढ़ाने आदिमें दो भिन्न पौधों के दो विशेष भागोंको मिलाकर बाँधना पड़ता है। यदि कसकर न बाँधे जायेंगे तो वे जुड़ ही नहीं पायेंगे और सभी मेहनत और समय व्यर्थ जाएगा।

बाँधनेके लिए सन, अम्बाड़ीका सन, केलेके पौधेको छालके रेशे, नारियलके रेशोंकी डोरी, बालोंकी पतली रस्सी, और सुतरीकी डोरी काममें लाई जाती है। कई प्रकारकी जलज वनस्पतियोंके लम्बे पत्ते भी बाँधनेके काममें लाये जाते है।

बंद मज़बूत, चिकने, कुछ लचीले और जल्द न सड़ने वाले होने चाहिए। बंद जानेपर जुड़ा हुआ स्थान बढ़ने-फूलने लगता है। इसलिए बंद मजबूत तो होने ही चाहिए। किन्तु साथ ही ऐसे भी हों, जो खींचे जानेपर कुछ बढ़ जायँ। इस तरहके बंद काममें लानेसे जुड़े हुए भागकी वृद्धिमें रुकावट नहीं पड़ती है।

रोगन

बाँधनेके बाद बंदपर रोगन चुपड़ा जाता है। रोगन चुपड़नेसे हवा और बरसातका पानी जोड़े जाने वाले भागोंमें घुसने नहीं पाता है। बाजारमें कई तरहके रोगन और बिकते हैं। ये विदेशी रोगन कुछ महँगे पड़ते हैं और अधिकांश रोगन कुछ ख़राब भी होते हैं।

देहातोंमें रोगन काममें नहीं लाया जाता है, और न रोगन सरलतासे मिलता ही है। इसके अलावा रोगनका उपयोग कुशल माली ही कर सकते हैं। देहातोंमें ज़्यादातर चिकनी काली मिट्टी या चिकनी पीली मिट्टी गीली करके चुपड़ी जाती है। कहीं-कहीं काली मिट्टीमें गोबर मिलाकर भी चुपड़ते हैं। इस बातपर ख़ास ध्यान दिया जाना चाहिए कि मिट्टीमें रेतका अंश बिलकुल न रहने पावे। मोमको गरम करके चुपड़नेमें भी कोई हर्ज नहीं है। गुजरातमें राल, अलसीका तेल और मोमको समान भाग मिलकर गरमकरके मिश्रण बनाया जाता है। यह मिश्रण बहुत अच्छा साबित हुआ है।

ऊपर उन्हीं औज़ारों और चीज़ोंका ज़िक्र किया गया है जो ख़ास करके कमल-पेवंदके ही काममें आते हैं। किन्तु इनके अलावा मालीको दूसरी भी कई चीजोंकी ज़रूरत होती है। इनके बिना काम चल ही नहीं सकता है। इसलिए मालीको नीचे लिखी हुई चीजें भी रखनी चाहिए।

हल

साधारण तौरसे लोहेके हल ही काममें लाए जाने
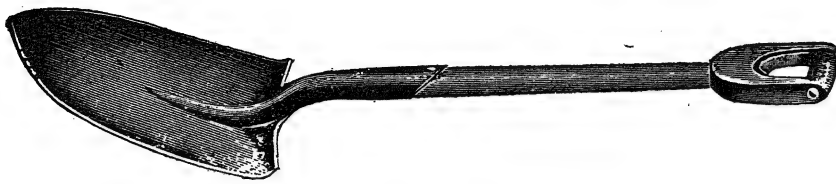
चित्र ८—कुदाल

चाहिए । एक जोड़ी बैलसे चलाए जाने वाले लोहेके हलका उपयोग करना फायदेमंद है ।

हाथसे चलाए जाने वाले विदेशी कुलपे या हो (hoe) —पौधोंकी दो कतारोंसे बीचकी मिट्टी ढीली करने और खर-कतवार को उखाड़नेमें कुलपे बहुत अच्छे साबित हुए हैं । इनसे थोड़ी मेहनत और कम खर्चमें अच्छा काम होता है ।

गेंदी-फावड़े, कुदाल, खुरपी, आदि

मिट्टी खोदने, मिट्टी भरने, नाली बनाने, घास छीलने आदिके लिए इनकी ज़रूरत है ।
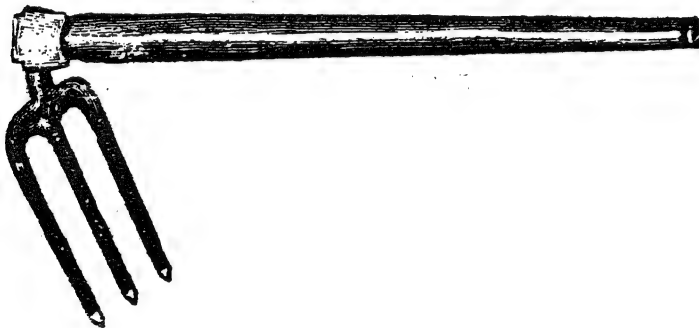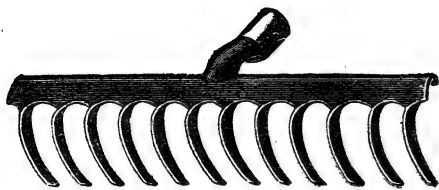
रेक या दँताली—तख्तों या क्यारियोंकी मिट्टी बराबर करनेके लिए ।

काँटेदार कुदाल या फोर्क—क्यारियोंकी मिट्टी ढीली करने और कंद, कंदल आदि खोदकर निकालनेके-लिए ये बहुत अच्छे हैं ।

ज़रीब या टेप—ज़मीन नापने आदिके-लिए ।

पम्प

हाथके चलाए जानेवाले छोटे पम्प रखना बहुत ही ज़रूरी है । ये रोगी पौधोंपर दवा छिड़कने और पौधोंके पत्ते धोनेके काममें आते हैं ।

चित्र ९—रेक

चित्र १०—काँटेदार कुदाल
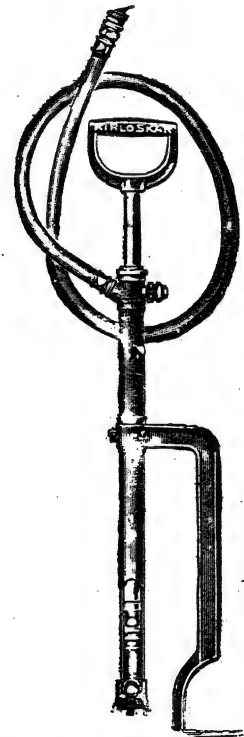
चित्र ११—किर्लोसकर पम्प
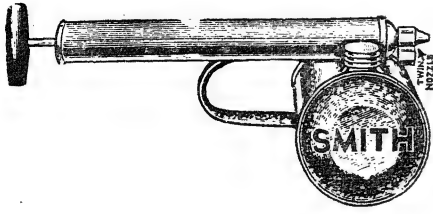
चित्र १२—दवा छिड़कनेका स्प्रेयर

चित्र १३—हज़ारा

हज़ारा

इसकी टोंटीपर एक झब्बा लगा रहता है जिसमें महीन छेद होते हैं। इससे गमले या नरसरीके पोधोंको पानी सीचते हैं।

कंदील, रस्सियाँ, हाथागाड़ी, तराज़ू-काँटा, शावेल, कनसतर, टोकनी, बालटी, तगारियाँ आदिकी भी ज़रूरत पड़ती है। यह सूची पूर्ण नहीं है। इनके अलावा समय-समय पर अन्य भी कई चीज़ोंकी ज़रूरत होती है।
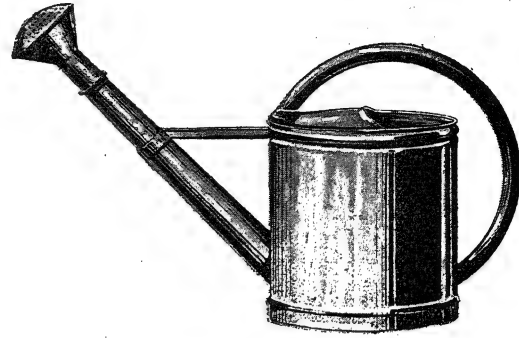
वायुभारका वितरण

[ले०—श्री बाबूराम पालीवाल]

समकक्ष वितरण (Horizontal Distribution)

यदि वायुमण्डलमें सब जगह एक ही तापक्रम होता तो समस्त भूमण्डलपर वायु अचल होती और वायु-भार भी सब जगह समान ही होता परन्तु पिछले लेखमें [विज्ञान, पृष्ठ ११३, दिसम्बर १९४०] यह बताया जा चुका है कि भूमण्डलपर तापक्रम समान नहीं होता, वरन् स्थान और ऋतु आदिके अनुसार सदैव घटता-बढ़ता रहता है। इससे वायुमें चलनेकी क्रिया उत्पन्न होती है और वायुभार घटता-बढ़ता रहता है। इस वायुके चलनेका नियम बहुत साधारण है जो संक्षेप रूपसे नीचे दिया जाता है।

मान लो कि वायुमण्डलके एक भागका तापक्रम अपने चारों तरफके वायुमण्डलसे अधिक है, तो इस प्रकार हवा गर्म होकर बढ़ेगी और ऊपरकी तरफ उठेगी और तब इस गर्म हवाके ऊपरकी सतहकी हवा ठंडे भागकी ओर जायगी। गर्म भागका वायुभार हवाके पतला हो जानेके कारण कम हो जायगा और ठंडे भागका जहाँ कि गर्म भागसे हवा गई है वायुभार बढ़ जायगा। इधर जब हवा गर्म होकर ऊपर उठ जाती है और वायुभार कम हो जाता है, नीचेकी सतहसे ठंडे भागसे जहाँ कि वायुभार अधिक है हवा गर्म भागकी तरफ वायुभार बढ़ानेके-लिये आती है और इस प्रकार वायुमण्डलमें वायुके ऊपर उठने, ठंडे भागकी ओर आने एवं पृथ्वीकी गुरुत्वाकर्षण शक्तिके कारण फिर नीचे आने और नीचे ठंडे भागसे गर्म भागकी ओर हवाके आनेका एक चक्कर-दार धारा बन जाती है जिसे वहन धारायें, (convection) कहते हैं।

इस प्रकार जिस प्रान्तमें वहन धारायें होती हैं उसमें तापक्रम के अनुसार वायुभारमें यह परिवर्तन होता है, परन्तु ध्रुवोंके निकट जहाँ तापक्रमके कम होनेके कारण वायुभार अधिक होना चाहिये वहाँ पृथ्वीके अपनी धुरीपर घूमनेके कारण और वायुकी तीव्र गतिके कारण वायुभार कम हो जाता है, अर्थात् विषुवत् रेखाके पास वायुभार सबसे कम होता है क्योंकि वहाँ तापक्रम सबसे अधिक रहता है और फिर जैसे ही हम उत्तर या दक्षिणकी तरफ चलते जाते हैं, वायुभार बढ़ता जाता है। परन्तु कर्क रेखा और मकर रेखाके बाद फिर वायुभार कम होना शुरू हो जाता है और ध्रुवों

पर जाकर बहुत कम हो जाता है।

ऊर्ध्व वितरण (Vertical Distribution)

वायुभारका अर्थ है वायुका बोझा। इस प्रकार समस्त वायुमण्डलका बोझ जितना नीचा स्थान होगा उतना ही अधिक होगा और ऊँचाईके साथ-साथ नीचेके वायुमंडलका बोझ कम हो जानेके कारण कम होता जायगा। भिन्न-भिन्न गैसोंके घनत्वका भी वायुभार पर प्रभाव पड़ता है, परन्तु अधोमंडलमें जहाँ कि वहन-धाराओंके कारण सब गैसें मिल जाती हैं इसका खास असर नहीं पड़ता और वायुभारमें ऊँचाईके साथ-साथ एक हिसाबसे कमी होती जाती है। परंतु ऊर्ध्वमंडलमे जहाँ वहन धारायें नहीं होतीं और हलकी गैसें ऊपर उठती जाती हैं वहाँ इनके कम होनेका दूसरा हिसाब होता है।

ऊँचाईके साथ-साथ वायुभारके कम होनेका हिसाब मालूम किया जा चुका है जो डेविस ने अपनी पुस्तक 'एलीमेंटरी मेट्रोलोजीमें' इस प्रकार दिया है।

$$\text{दो सतहोंके बीचकी ऊँचाई} = \frac{\text{दोनों सतहोंके वायुभार (इंचोंमें) का अंतर}}{\text{दोनों सतहोंके वायुभार (इंचोंमें) का जोड़}} \times ५५७६१$$

यदि दोनों स्थानोंके तापक्रम का औसत ६०° हो।

यदि दोनों स्थानोंके तापक्रम का औसत ६०° से अधिक हो तो प्रति अधिक १° के लिये गुणकमें ११७ जोड़ देना चाहिये और यदि कम हो तो प्रति १° के लिये ११७ घटा देना चाहिये।

जैसे मान लो कि नीचे स्थानका वायुभार ३०·०० इंच है और तापक्रम ६२° और ऊँचे स्थानका वायुभार २९·०० इञ्च है और तापक्रम ५८° तो दोनों स्थानोंके बीचकी ऊँचाई बराबर होगी :—

$$\frac{३० - २९}{३० + २९} \times ५५७६१ = ९४५ \text{ फुट}$$

और यदि नीचे स्थानका वायुभार ३०·१५″ और तापक्रम ६५° हो और ऊँचे स्थानका वायुभार २८·६७″ और तापक्रम ५९° हो तो उनके बीच की ऊँचाई बराबर होगी :—

$$\frac{३०·१५ - २८·६७}{३०·१५ + २८·६७} \times [\, ५५७६१ + (२ \times ११७)\,] = १४०९ \text{ फुट}$$

नीचे एक सारिणी दी जाती है जिसमें मोटे तौर पर वायुमंडलमें कितनी ऊँचाई पर कितना वायुभार होता है यह दिया गया है।

ऊँचाई फुटमें	वायुभार इंचमें	ऊँचाई फुटमें	वायुभार इञ्चमें
०	३०·०	७०१०	२३·०
९१०	२९·०	८१५०	२२·०
१८५०	२८·०	९३२०	२१·०
२८२०	२७·०	१०५५०	२०·०
३८२०	२६·०	१३१७०	१८·०
४८५०	२५·०	१६०००	१६·०
५९१०	२४·०		

इस सारिणीसे यह न समझना चाहिये कि पृथ्वीपर सब जगह प्रत्येक ऊँचाई पर समान वायुभार की एक सीधी सतह है जो नीचेकी सतहोंके समानान्तर है, परन्तु ऐसा नहीं है। यह तो मोटे तौरसे लिखा गया है, वास्तवमें वायुभारकी कहींपर भी एक सीधी सतह नहीं, वरन् टेढ़ी-मेढ़ी है जिसका कारण आगे समझाया जाता है।

इसको समझानेके लिये यहाँ पर एक चित्र (चित्र १) दिया जाता है। मान लो कि चित्र १ वायुमंडलके ऊर्ध्वीय
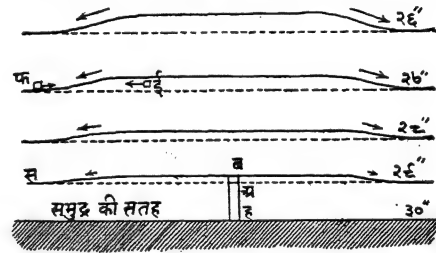
चित्र १

भागको सूचित करता है जिसमें ऊर्ध्वीय पैमाना समकक्ष पैमानेसे बहुत बढ़ाकर दिखाया गया है। यदि प्रत्येक सतह पर सब जगह तापक्रम समान ही हो (हालाँकि यह ऊँचाई के अनुसार नीचे की सतहोंसे कम होता गया हो) तो समभारिक सतह (Isobaric) भी एक ही धरातलमें होगी। यह प्रबन्ध विन्दुओं वाली रेखाओंसे जिनके सिरों पर वायुभार लिखा हुआ है दिखाया गया है।

यदि मध्यका तापक्रम अपने आस-पासके तापक्रमसे कुछ अधिक हो तो इस मध्य भागकी तमाम वायु गर्म हो-

कर बढ़ेगी और इस प्रकार कॉलम ह अ बढ़कर ह व की ऊँचाई तक फैल जायगा और इसलिये २९ इन्च वायुभार की सतह ल व का रूप ग्रहण कर लेगी, अर्थात् दोनों तरफ जहाँ तापक्रम कम है वहाँ नीची और बीचमें जहाँ तापक्रम अधिक है ऊँची हो जायगी। इसी प्रकार सब ऊपरी सतहें मध्य भागमें कुछ ऊँची उठ जायँगी और जितनी ऊँचाई पर हम उठते जायँगे उतनी ही गोलाई बढ़ती जायगी। गर्म भागके ऊपरकी हवा बढ़ कर ठण्डे भागके ऊपर जाने लगेगी और इस प्रकार समुद्रके धरातलके वायुभारमें भी अंतर आवेगा।

मान लिया कि गर्म भागमें ह पर वायुभार घटकर २९·५० इन्च रह गया और ठण्डे भागमें बढ़कर ३०·२५ इञ्च हो गया तो अब नई परिस्थितिमें ३० इञ्च वायुभारकी समभारिक सतह किस प्रकार होगी? यह सतह गर्म प्रान्त में तो समुद्रकी सतहसे ४५० फुट नीचे 'ज' पर होगी और ठण्डे प्रान्तमें समुद्र की सतहसे २२५ फुट ऊपर 'ल' पर वायुमें होगी जैसा कि चित्र २ में दिखाया गया है। 'ह' पर वायुभार २९·५ इञ्च है और 'क' पर ३०·२५ इन्च। इसलिये ३०·० इञ्च वायुभार समुद्रकी सतह पर 'म' पर
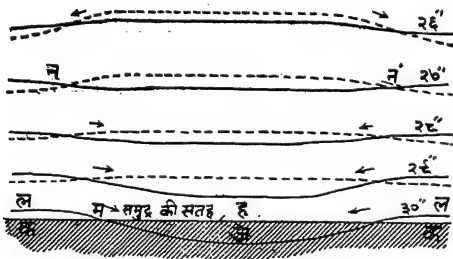
चित्र २

पाया जायगा जो 'क' से 'ह' तककी एक तिहाईकी दूरी-पर होगा। वक्र रेखाके ल म ज म ल ३० इन्च वायुभार-की समभारिक रेखा होगी। बस इसी रेखाके आधारपर ऊँचा-ईके साथ-साथ वायुभार घटनेके नियमके अनुसार भिन्न-भिन्न वायुभारकी सतहपर रेखायें खींच लें। यह बड़ी आसानीसे देखा जा सकता है कि दो समभारिक रेखाओंके बीचकी दूरीका अन्तर गर्म प्रान्तमें अधिक और ठण्डे प्रान्तमें कम होगा और जैसे-ही-जैसे हम ऊपर उठते जायँगे यह अन्तर कम होता जायगा जैसा कि चित्र २ में दिखाया गया है और अन्तमें एक वह सतह आ जाती है जहाँ पर समभारिक रेखा एक सीधी रेखा हो जाती है। इस सतहको शिथिल (neutral) तल कहते हैं। इससे ऊपर वायु इधर-उधर जाती और इससे नीचे वायु समभारिक रेखाके झुकाव की ओर नीचे-को जाती है।

अब समभारिक धरातलका प्रबन्ध जो अभी बहिर्मुखी वहन (out flow aloft) के कारण तै किया था फिर अन्तमुर्खी वहनके कारण बदल जाता है जैसा कि चित्र ३ में दिखाया गया है। अब वायुके आनेके कारण धीरे-धीरे मध्य भागका वायुभार बढ़ जाता है और मध्य भाग तथा आस-पासके वायुभारमें अन्तर नहीं रह जाता। जैसे-जैसे
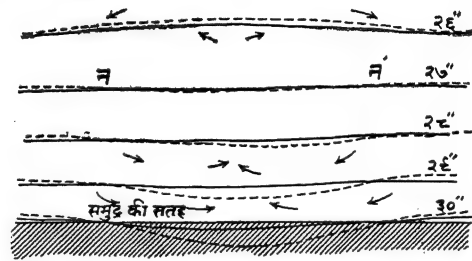
चित्र ३

वायुभारमें अन्तर कम होता जाता है वैसे-ही-वैसे वायुकी गति भी कम होती जाती है और तापक्रमका भी अन्तर कम होता जाता है। जब तक तापक्रम अधिक रहेगा तब तक वायुभारको सतहका झुकाव (उसी प्रकार जैसा अभी ऊपर बताया जा चुका है) नीचेकी सतहमें नीचेकी तरफ और ऊँची सतहोंमें ऊपरकी तरफ रहेगा, परन्तु जब मध्य भागका तापक्रम आस-पासके भागसे कम हो जायगा तो यह क्रमशः अधिक वायुभारका प्रान्त हो जायगा और इसकी वायुभारके सतह की रूप-रेखा बिलकुल उलटी हो जायगी। वायुभारकी समभारिक सतहका यह प्रबन्ध उसी प्रान्तमें है जहाँ वहन धारायें बहती हैं। इससे उस पार ध्रुवों-की तरफ यह नियम लागू नहीं होता।

वायुभारका दैनिक घटाव-बढ़ाव

यदि हम वायुभारमापक यंत्रको प्रति घंटे ध्यानपूर्वक देखें तो हम देखते हैं कि किसी भी स्थानपर साधारण

परिस्थितियोंमें वायुभार एक समयसे दूसरे समय तक घटता-बढ़ता रहता है। यदि कोई तूफान इत्यादिकी विशेष घटना न हो तो हम देखते हैं कि प्रत्येक स्थानके वायुभारमें समय के अनुसार नियमित रूपसे दैनिक घटना-बढ़ना होता है और यह घटना-बढ़ना दिन-रातमें दो बार होता है, अर्थात् दो बार अधिकतम वायुभार और दो बार न्यूनतम वायुभार होता है। साधारणतया वायुभार चार बजे प्रातःकालसे लेकर दस बजे तक बढ़ता और दस बजेसे लेकर शामके चार बजे तक घटता है और फिर शामके चार बजेसे लेकर रात्रिके दस बजे तक बढ़ता और रात्रिके दस बजेसे लेकर प्रातःकाल चार बजे तक घटता है। इसका ठीक-ठीक कारण तो अभी निश्चित रूपसे नहीं बताया जा सकता परन्तु विज्ञानवेत्ताओंका कहना है कि समुद्रके ज्वारभाटेकी तरह इसका सम्बन्ध अन्य ग्रहोंकी आकर्षण-शक्तिसे है, क्योंकि इसका भी घटाव-बढ़ाव बिलकुल ज्वारभाटे ही की तरह निश्चित है। यहाँ पर चित्र (चित्र ४) दिया जाता है जिसमें

अलीपुर पर वायु भार का दैनिक घटाव बढ़ाव
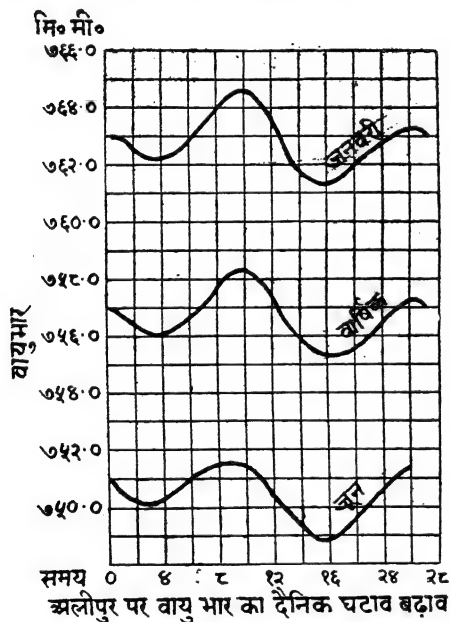
चित्र ४

अलीपुरके वायुभारका औसत दैनिक घटाव दिखाया गया है।

अक्षांशोंके अनुसार दैनिक घटाव-बढ़ाव—वायुभारके दैनिक घटाव-बढ़ावका परिमाण अक्षांशोंके अनुसार घटता-बढ़ता रहता है। यह विषुवत् रेखा पर अधिक होता है और जैसे ही हम ध्रुवोंकी तरफ चलते जाते हैं कम होता जाता है। यहाँ पर एक चित्र [चित्र ५] दिया जाता है जिसमें अप्रेल महीनेके भिन्न-भिन्न अक्षांशोंके पाँच स्थानोंके वायुभार का दैनिक घटना-बढ़ना दिखाया गया है। वक्र रेखा 'स' सिंगापुर (अक्षांश १°) के वायुभारका दैनिक घटाव-बढ़ाव प्रकट करती है। इसमें देखा जा सकता है कि घटाव-

भिन्न भिन्न अक्षांशों पर वायु भार का दैनिक घटाव बढ़ाव

चित्र ५

बढ़ावका औसत परिमाण २·२ मिलीमीटरसे कुछ अधिक है और बम्बईमें (अक्षांश १९°) जो वक्र रेखा 'ब' द्वारा प्रकट किया है २·० से २.१ मिलीमीटर तक है। लिसबन (अक्षांश ३९°) में जैसा कि वक्र रेखा 'ल' द्वारा प्रकट होता है ०.६ मिलीमीटर है और पेरिस (अक्षांश ४९°) में ०·७ मिलीमीटर है जैसा कि वक्र रेखा 'प' से प्रकट होता है। सबसे कम परिमाण अपेसाला (अक्षांश ६०°) में ०·३ मिलीमीटर है। वह वक्र रेखा 'अ' द्वारा प्रकट किया गया है।

ऊँचाईका दैनिक घटाव-बढ़ाव पर प्रभाव - वायुभारके दैनिक घटाव-बढ़ाव पर ऊँचाईका भी असर पड़ता है। पहाड़ों
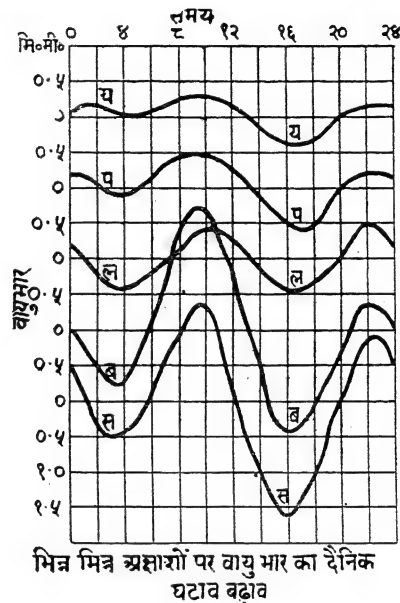
पर मैदानोंकी अपेक्षा यह घटाव-बढ़ाव कुछ भिन्न होता है, अर्थात् पहाड़ों पर रात्रिका न्यूनतम वायुभार मैदानोंकी अपेक्षा कुछ अधिक न्यूनतम हो जाता है और सुबहका अधिकतम कुछ देरसे होता है और अधिकांशमें दिनका न्यूनतम और रात्रिका अधिकतम बहुत ज़्यादा नहीं होता।

चित्र ६

वायुभारका वार्षिक घटाव-बढ़ाव

यद्यपि वायुभारमें नियमित रूपसे कोई वार्षिक घटाव बढ़ाव नहीं होता और एक प्रान्तमें दूसरे प्रान्तकी अपेक्षा काफ़ी असमानता हो सकती है। फिर भी मोटे तौरपर यह कहा जा सकता है कि विषुवत् रेखापर वायुभारके वार्षिक घटाव-बढ़ावसे अन्तर सबसे कम होता है और शीतोष्ण कटिबन्धमें बढ़ जाता है। ऊँचे अक्षांशोंमें अक्षांशोंका वायुभारके वार्षिक घटाव-बढ़ावसे कोई सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता। वायुभारके वार्षिक घटाव-बढ़ावका नियम जो कि केवल शीतोष्ण कटिबन्धसे ही लागू होता है यह है कि प्रदेशोंमें शीतकालमें वायुभार अधिक और ग्रीष्मकालमें कम होता है और इसके विपरीत महासागरों पर शीतकालमें कम और ग्रीष्म कालमें अधिक होता है। इसका कारण तापक्रम है। प्रदेशोंमें शीतकालमें महासागरोंकी अपेक्षा तापक्रम कम होता है। इसलिये वायुभार अधिक होना चाहिये और ग्रीष्म कालमें तापक्रम अधिक होता है इसलिये वायुभार कम होना चाहिये।

ऊँचाईका प्रभाव— प्रत्येक स्थानके वायुभारके वार्षिक घटाव-बढ़ाव पर उस स्थान की ऊँचाईका भी असर पड़ता है। एक ही अक्षांशपर दो भिन्न-भिन्न ऊँचाइयोंके दो स्थानोंके वायुभारका अन्तर उन दो ऊँचाईयोंकी सतहके बीचकी वायुके कॉलमके भारके बराबर होता है। यह अन्तर जितना ही तापक्रम अधिक होगा उतना ही कम होगा इसलिये ऊँचे स्थानोंपर शीतकालमें वायुभारसे अन्तर ग्रीष्मकालकी अपेक्षा अधिक होगा।

समतापिक चार्ट

भूमंडलकी सतहपर वायुभारके वितरणका अध्ययन
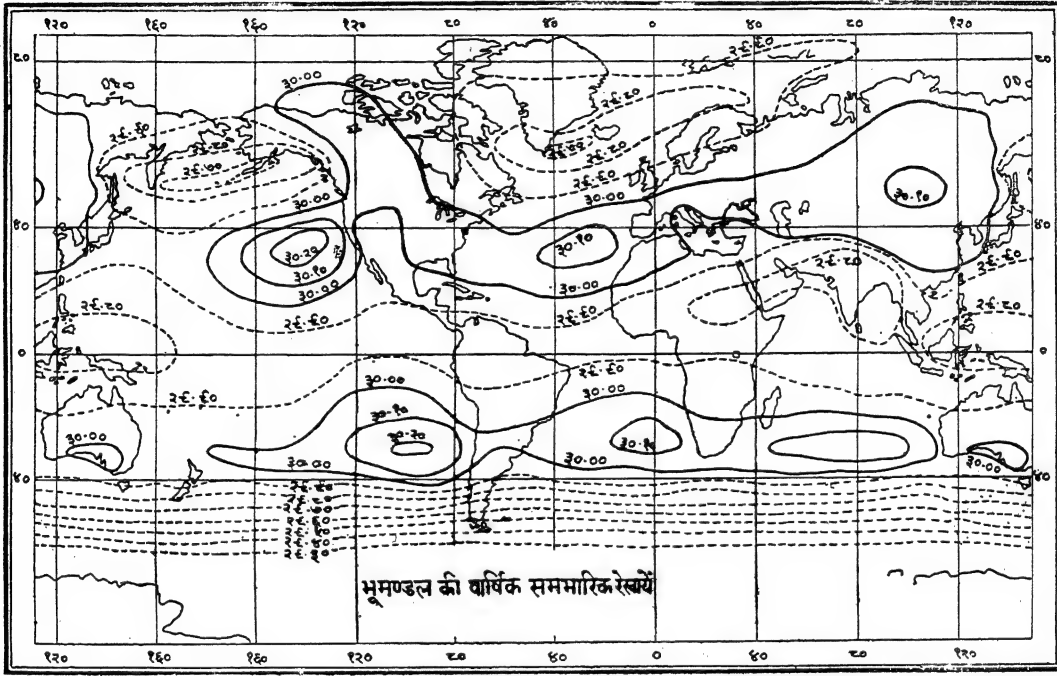
करनेके लिये यह आवश्यक होता है कि किसी विशेष स्थानके वायुभारमेंसे ऊँचाई तथा पृथ्वीको आकर्षण शक्तिके कारण वायुभार पर जो असर पड़ता है उसे कम कर दें। पृथ्वीकी गुरुत्वाकर्षण शक्ति किसी भी चीज़को भिन्न-भिन्न ऊँचाइयों और अक्षांशोंपर भिन्न-भिन्न मात्रासे अपनी तरफ खींचती है इसलिये भिन्न-भिन्न ऊँचाइयों और अक्षांशों पर पहिला, स्थानकी ऊँचाई; दूसरा-स्थानका वायुभार क्योंकि यदि वायुभार अधिक हो तो इस स्थान और समुद्रकी सतह तकके कल्पित कॉलममें भी अधिक घनत्वकी वायु होगी और तीसरा, वायुका तापक्रम क्योंकि यदि तापक्रम अधिक हो तो वायु पतली होकर कल्पित कॉलमका वायुभार कम करेगी।
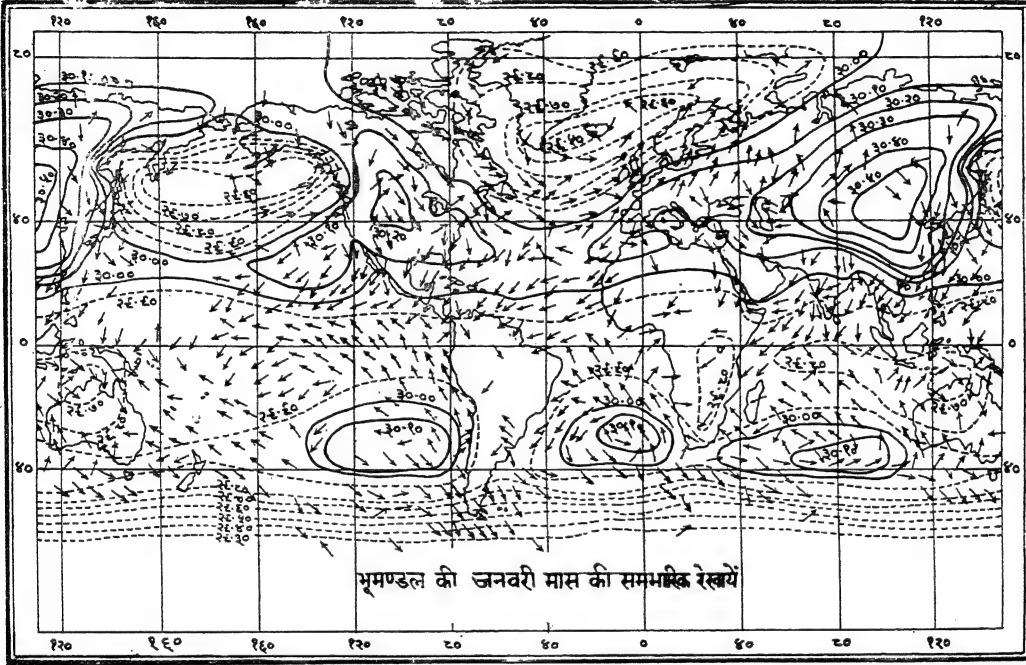
चित्र ७

वायुभारमें भी इसके कारण भिन्न-भिन्न असर होना चाहिये। इसलिये समस्त भूमंडलमें वायुभारमापक यंत्र द्वारा मापे हुये वायुभारमें संशोधन करके उसे समुद्रकी सतह और ४५° अक्षांशपर लागू कर लेते हैं। यह किसी स्थानके पारे वाले वायुभारमापक यंत्र द्वारा मापे हुये वायुभारमें जिसमें कि तापक्रमके कारण जो संशोधन हो वह प्रयोग किया जा चुका हो (क्योंकि पारेपर तापक्रमका भी असर पड़ता है) उसमें उतना वायुभार जोड़ देते हैं जितना कि उस स्थान और समुद्रकी सतहके बीचसे यदि वहाँ पृथ्वी न होती तो होता। यह वायुभार तीन बातोंपर निर्भर है--

इस प्रकार जब वायुभार समुद्रकी सतह और ४५° अक्षांशपर लागू कर लिया जाता है तब एक नक्शेके ऊपर उसे अङ्कित कर देते हैं। एक ही वायुभारके स्थानोंको रेखा द्वारा मिला देते हैं। इन रेखाओंको समभारिक रेखायें कहते हैं और चार्ट भविष्यवाणी प्रकाशित करनेमें मदद करता है क्योंकि वायुभारका वायु संचालनमें पूर्ण हाथ होता है।

वार्षिक समभारिक चार्ट— भिन्न-भिन्न स्थानके वार्षिक औसत वायुभारको चार्टपर अङ्कित करके उन स्थानोंको रेखा द्वारा जोड़कर वार्षिक औसत वायुभारका वितरण दिखाया जा सकता है। यहाँ पर एक चार्ट [चित्र ६] दिया जाता

है जिसमें पृथ्वीके वार्षिक औसत वायुभारका वितरण दिखाया गया है।

मासिक समभारिक चार्ट जिस प्रकार समस्त वर्षके वायुभारको जोड़कर और कई वर्ष तक ऐसा करके फिर उतनेसे भाग देकर उस मासका सामान्य वायुभार प्राप्त कर लिया जाता है। यहाँ पर दो चार्ट दिये जाते हैं जो भूमण्डलकी जनवरी और जुलाई महीनेकी समभारिक रेखायें प्रकट करते हैं।

भूमण्डल की जुलाई मास की समभारिक रेखायें
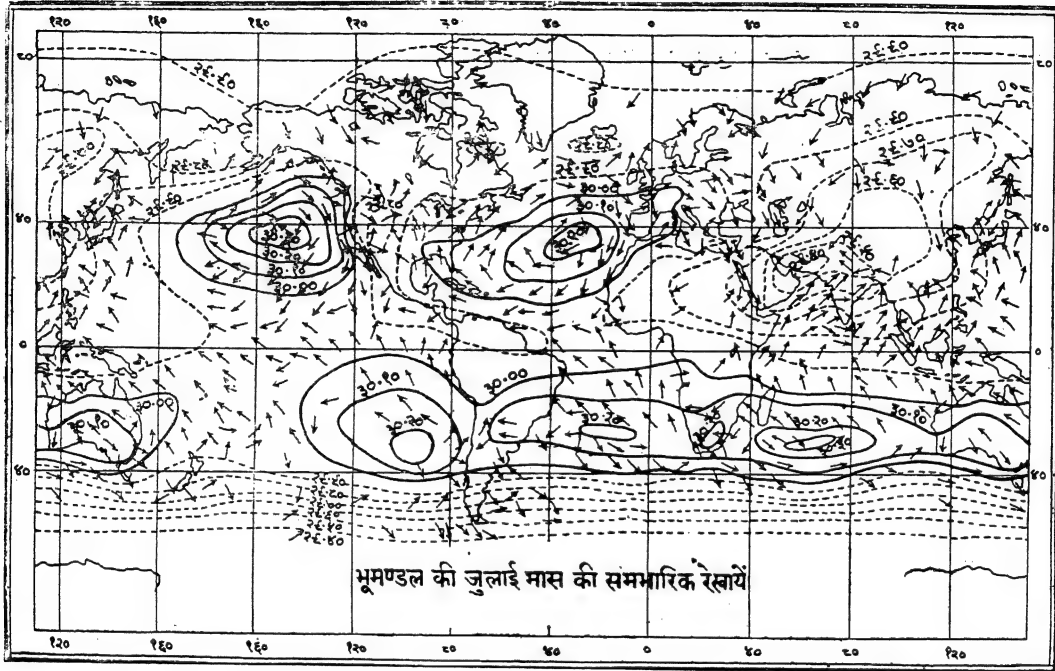
चित्र ८

उसका औसत सामान्य वायुभार निकाल लेते हैं उसी प्रकार एक विशेष महीनेके वायुभारको कई वर्ष तक जोड़कर और

वायुके संचालनका पूर्ण श्रेय वायुभार ही को है इसपर अगले लेखमें विचार किया जायगा।

ब्लॉक कैसे बनते हैं ?

(ले० डा० गोरखप्रसाद; डी० एस-सी०)

पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओंमें जो चित्र छपते हैं वे ब्लाकोंसे छपते हैं। ब्लाक वस्तुतः वही काम करता है जो छींट छापनेके ठप्पे करते हैं। बेलन फेरने पर इसके उभरे हुए भागपर ही रोशनाई लग पाती है। इसलिए रोशनाई लगानेके बाद इसपर काग़ज रखकर छापनेकी मशीनकी सहायतासे काग़ज़को दबाने पर ब्लाकके उभरे अंशोंकी प्रति-लिपि काग़ज़ पर छप जाती है।

ब्लाक दो जातियोंमें बाँटे जा सकते हैं, एक तो लाइन-ब्लाक और दूसरी हाफ़टोन-ब्लाक। लाइन ब्लाकसे छपे चित्रोंमें केवल रेखाएँ और ठोस काले भाग ही रहते हैं। उनमें फोटोकी तरह विभिन्न कालेपनके अंश नहीं रहते। उदाहरणतः इस लेखके सभी चित्र लाइन-चित्र हैं और जिन ब्लाकोंसे ये छपे हैं वे सब लाइन-ब्लाक हैं। परन्तु पृष्ठ २१५ का चित्र हाफटोन-ब्लाकसे छपा है।
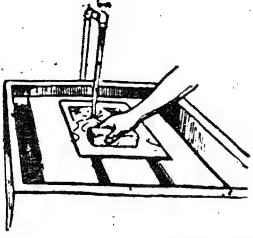
चित्र १ पहले शीशेको धोते हैं।
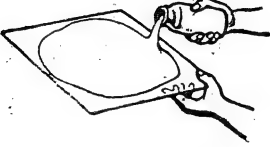
चित्र २—तब शीशेपर अंडेकी सफेदी चढ़ाते हैं।
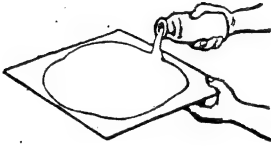
चित्र ३ फिर शीशेपर कलोडियनकी एक तह चढ़ाते हैं।
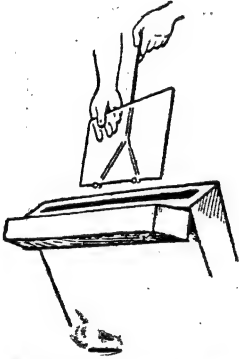
चित्र ४—कलोडियन चढ़े शीशे-को सिलवर नाइट्रेटकी घोलमें डुबाते हैं।
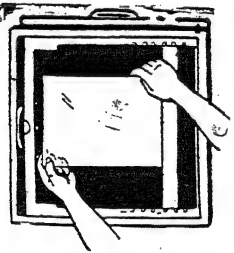
चित्र ५—तब प्लेटघरमें प्लेटको चढ़ाते हैं।

चित्र ६ —अंतमें प्लेटपर फ़ोटो खींचते हैं।

लाइन ब्लॉकके लिए पहले सादा शीशा लेकर उसे अच्छी तरह सोडासे साफ करते हैं और फिर स्वच्छ पानीसे धोते हैं (चित्र १)।

तब अंडेकी सफेदी (ऐलब्युमेन) को पानीमें घोलकर शीशेपर चढ़ाते हैं (चित्र २)। सर्वत्र एक समान पतली तह चढ़ानी चाहिए। फिर शीशेको सुखा लेते हैं।

इसके बाद शीशे पर कलोडियनकी एक तह चढ़ाते हैं। (चित्र ३)। इस तहको कुछ समय तक बिना छेड़-छाड़ किये रहने देते हैं तो कलोडियन जम जाता है (इसे पूर्णतया सूखने नहीं देते)।

तब शीशेको सिलवर नाइट्रेटके घोलमें डुबाते हैं (चित्र ४)। इसमें शीशेको पाँच मिनट तक रहने देते हैं। इस प्रकार शीशा फोटोका प्लेट बन जाता है। इस रीतिसे स्वयं प्लेट बनानेके बदले बना-बनाया प्रोसेस प्लेट खरीदा भी जा सकता है, परन्तु स्वयं बनानेमें प्लेट सस्ता पड़ता है। उपरोक्त क्रिया (अँधेरी कोठरी) के लाल प्रकाशमेंकी जाती है।

उपरोक्त रीतिसे बने या बाज़ारसे ख़रीदे प्लेटोंको प्लेटघर (प्लेट-होल्डर) में लगाते हैं (चित्र ५)। यह क्रिया भी अँधेरी कोठरीके लाल प्रकाशमें की जाती है।

तब प्लेटपर फोटो साधारण रीतिसे खींचते हैं। फोटो उस रेखा-चित्रपर खिंच जाता है जिसका ब्लाक बनाना रहता है। साधारणतः यह काम बिजलीकी रोशनीसे किया जाता है जैसा चित्र ६ में दिखलाया गया है, परन्तु बिजलीके अभावमें दर्पणसे चित्रपर धूप डालनेसे भी काम चल सकता है।

अँधेरी कोठरीकी लाल रोशनीमें प्लेटको साधारण रीति से डेवेलप और स्थायी करते हैं (चित्र ७)। फिर प्लेटको धोकर सूखनेके लिये रख देते हैं। इस प्रकार नेगेटिव तैयार हो जाता है।

नेगेटिवसे जस्ते पर छापते हैं। इसके लिये जस्तेकी मोटी चादरसे उचित नापका टुकड़ा काटकर उसे प्यूमिस पत्थरके बारीक चूर्णसे अच्छी तरह माँजते और धोते हैं (चित्र ८)।

फिर जस्ते पर अमोनियम बाइक्रोमेट और अंडेकी सफे-दीका घोल डालते हैं (चित्र ९)।
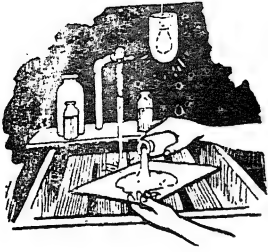
चित्र ७ - प्रकाश दर्शन पाये प्लेटको डेवेलप करते हैं और उसे सूखनेको रख देते हैं।
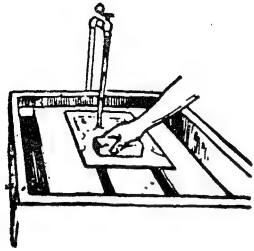
चित्र ८—जस्तेको पहिले अच्छी तरह माँजते और धोते हैं।

चित्र ९—फिर जस्तेपर अंडेकी सफेदी और अमोनियम बाइक्रोमेटका घोल डालते हैं।
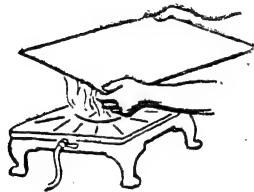
चित्र १० - तब जस्तेको सुखाते हैं।
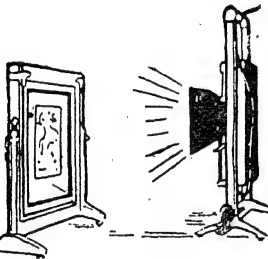
चित्र ११—मसाला लगे जस्तेपर नेगेटिवसे छापते हैं।
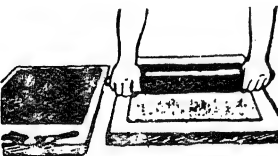
चित्र १२—जस्तेपर फिर रोशनाई लगाते हैं।

ऐसा प्रबंध किया जाता है कि अंडेकी सफेदी और बाइक्रोमेटकी तह सब जगह एक समान और खूब पतली चढ़े। इसे आँचकी सहायतासे सुखाते हैं (चित्र १०)। यह क्रिया मंद प्रकाशमें की जाती है।

इस प्रकार मसाला चढ़े जस्ते पर उपरोक्त रीतिसे बने नेगेटिवसे छापते हैं। इसके लिए साधारणतः बिजलीकी रोशनीसे काम किया जाता है, जैसा चित्र ११ में दिखलाया गया है; परन्तु धूपसे भी काम अच्छी तरह चल सकता है।

अब जस्ते पर विशेष रोशनाई, बेलनकी सहायतासे लगायी जाती है (चित्र १२)

पानीकी धार डालकर अब जस्तेको रूईसे रगड़ने पर (चित्र १३) केवल वहीं-वहीं स्याही रह जाती है जहाँ-जहाँ चित्रमें रेखाएँ रहती हैं। अन्य जगहोंकी स्याही बह जाती है।

जस्तेकी चादरको ज़रा-सा गरम करके इसपर खून-खराबा (Dragon's Blood, ड्रैगन्स ब्लड) का बारीक चूर्ण भुरक देते हैं। जस्तेको गरम करनेसे इसपर लगी स्याही चिपचिपी हो गई रहती है और इसलिए जहाँ-जहाँ स्याही रहती है वहाँ-वहाँ खून-खराबा चिपक जाता है। फालतू खून-खराबेको ब्रशसे झाड़ देते हैं (चित्र १४)।

ब्रशसे फालतू खूनखराबा झाड़नेके बाद जस्तेकी चादर को इतना गरम करते हैं (चित्र १५) कि खून-खराबा पिघल जाय, परन्तु जलने न पाये। इस प्रकार जस्तेपरके चित्रको सब रेखाओंपर पिघला खून-खराबा चढ़ जाता है।

आँचसे हटानेके बाद पानीसे भीगे फलालैन मढ़े बेलनों पर बेल कर जस्तेको ठंढा कर लेते हैं (चित्र १६)।

जहाँ-जहाँ खून-खराबा चिपका रहता है वहाँ-वहाँ तेज़ाब जस्तेको नहीं खा सकता, अन्य स्थानोंको खा सकता है। इसलिए अब जस्तेकी पीठ और किनारोंपर स्पिरिट वार्निश (चपड़े और स्पिरिटके घोल) को पोत कर जस्तेको तेजाबमें डालते हैं (चित्र १७)। वस्तुतः तेज़ाब एक बड़ेसे बक्सकी पेंदीमें रहता है और मशीनको चालू करने पर तेजाब के लगातार छींटे जस्तेकी सतहपर बराबर ज़ोरसे पड़ते हैं। मशीन न हो तो चादरको एनामेलकी तश्तरीमें रखकर तश्तरीको हिलाते रहनेसे भी काम चल जाता है। तेज़ाब वस्तुतः शोरेकी तेज़ाब (नाइट्रिक ऐसिड और पानीका मिश्रण) रहता है)। पहली बार जस्तेको तेज़ाबमें केवल आधे मिनट
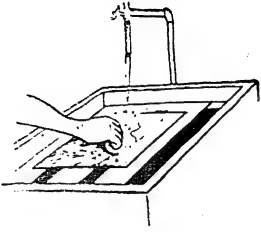
चित्र १३—छापनेके बाद जस्तेपर पानी डालकर उसे रुईसे रगड़ते हैं। फिर जस्तेको सुखा लेते हैं।

चित्र १४—खून-खराबा छिड़क कर फालतू खून-खराबा झाड़ देते हैं।
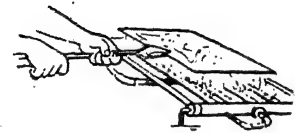
चित्र १५—तब जस्तेको इतना गरम करते हैं कि खून-खराबा पिघल जाय।
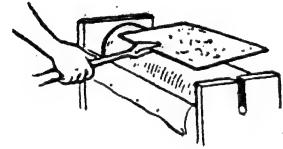
चित्र १६—फिर चादर-को ठंडा कर लेते हैं।
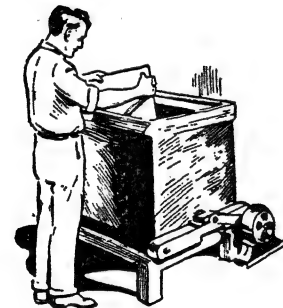
चित्र १७—इसके बाद जस्तेको तेज़ाबमें डालते हैं।
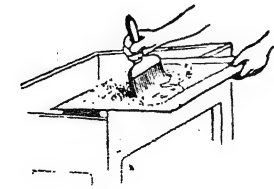
चित्र १८—धो और सुखाकर जस्तेपर ब्रशसे खून-खराबा लगाते हैं।

तक रखते हैं। अधिक समय तक रखनेसे रेखाओंकी बगल को तेजाब खा जायगा और रेखाएँ कटकर निकल जायँगी।

तेजाबसे निकाल और पानीसे धोकर जस्तेको सुखा लेते हैं और तब नरम ब्रशको बराबर एक दिशामें चलाकर खून-खराबेके बारीक चूर्णको जस्तेपर पोतनेकी चेष्टा करते-हैं (चित्र १८)। स्वभावतः चूर्ण केवल रेखाओंके पास ही ठहर पाता है; सपाट जगहोंसे ब्रशके कारण हट जाता है। असलमें खून-खराबा रेखाओंके केवल उस ओर लगता है जिधरसे ब्रश चलाया जाता है। अब जस्तेको गरम करके खून-खराबाको पिघला कर पक्का कर लेते हैं। तब उलटी दिशासे ठीक पहलेकी तरह खून-खराबा लगाकर उसे पिघला कर पक्काकर लेते हैं। इस प्रकार जब दाहिनी और बायीं ओर खून-खराबा लग जाता है तब ऊपरसे नीचेकी ओर ब्रश चलाकर खून-खराबा लगाते हैं (ऐसा करते समय जस्ते की चादरको पहलेकी तरह पट ही अर्थात् चैतिज धरातलमें रखते हैं)। गरम करके खून-खराबाको पक्का करते हैं। अंतमें शेष चौथी दिशासे ब्रश चलाकर खून-खराबा लगाते हैं और पिघला कर पक्काकर लेते हैं। इस प्रकार रेखाओंके चारों ओर पिघला खूनखराबा चिपक जाता है।

उपरोक्त रीतिसे चार बार खूनख़राबा लगाकर जस्तेको फिर तेज़ाबमें डालते हैं और अब की बार उसे दो मिनट तक तेज़ाबमें रहने देते हैं। दो मिनटके बाद जस्तेको धो और सुखा कर बारी-बारीसे चारों ओरसे फिर खूनख़राबा लगाते हैं और तेज़ाबमें डालते हैं। ये क्रियाएँ कई बार दोह-राई जाती हैं। जब रेखाएँ काफी उभरी दिखाई पड़ें तब इस कार्य-क्रमको समाप्त करते हैं।

इसके बाद जस्तेके खुले अर्थात् रेखारहित बड़े-बड़े स्थानोंको राउटिंग मशीनसे काटकर निकाल देते हैं जिसमें छापते समय वहाँ रोशनाईके लचीले बेलनके कुछ धँस जाने पर स्याही न लगने पाये (चित्र १९) राउटिंङ्ग मशीनके न रहने पर यह काम फ्रेट-सॉ (fret saw) से भी किया जा सकता है।

अब जस्तेमें राउटिंङ्ग मशीनके कारण उभड़े हुए फञ्जी (पतली धार) को नहरनीसे छील देते हैं (चित्र २०)। कहीं खूनखराबा फालतू लग जानेके कारण कोई त्रुटि उत्पन्न हो गई हो तो उसे भी ठीक कर देते हैं।

चित्र १९—तेज़ाबसे काफ़ी जस्ता कट जाने पर खुले स्थानोंको 'राउटिंग मशीनसे काट कर निकाल देते हैं।

चित्र २०— फिर नरहरनी से अनावश्यक धार छील देते हैं।

चित्र २१— इसके बाद प्रूफ उठाकर देखते हैं कि ब्लॉक ठीक है या नहीं।
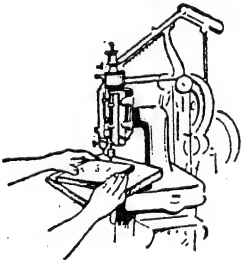
चित्र २२—जस्तेमें जगह-जगहपर छेद करते हैं।
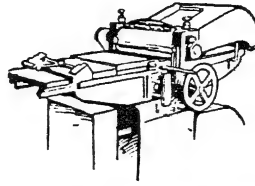
चित्र २३—अंतमें ब्लाक-की पेंदीपर रंदा करते हैं।

फिर प्रूफ उठाकर (चित्र २१) सावधानीसे देखते हैं कि प्रूफ ठीक है या नहीं। आवश्यकता होती है तो नहरनी की सहायता ली जाती है।

फिर छेद करने की मशीनसे (छोटे कारखानोंमें हाथ की बरमीसे) जस्तेमें जगह-जगह पर छेद करते हैं (चित्र २२) और जस्तेको लकड़ी पर जड़ देते हैं।

अन्तमें ब्लॉकको उलट कर लकड़ीपर रंदा करते हैं जिसमें ब्लॉक को ऊँचाई ठीक टाइप की ऊँचाईके बराबर हो जाय। यह काम बड़े कारख़ानोंमें बड़ी-बड़ी मशीनोंसे किया जाता है (चित्र २३)। छोटे कारखानोंमें लकड़ीपर पहलेसे ही रंदा किया रहता है और उसकी ऊँचाई इतनी रहती है कि जस्ता जड़ने पर ब्लॉक टाइपसे कुछ कम ही ऊँचा हो। अंतमें ब्लाक की पेंदोमें कागज़ की चिप्पी लगा कर ब्लॉकको उचित ऊँचाईका कर लेते हैं। (इण्डियन पेपर ऐंड प्रिंटके एक लेखके आधारपर)।

ऊपर जस्तेपर अंडेको सफेदी और अमोनियम बाइक्रोमेटके घोलकी चर्चा की गई है। उसके बदले लीक्विड ग्लू और अमोनियम बाइक्रोमेटका इस्तेमाल किया जा सकता है। नुसखा यह है –

लीक्विड ग्लू	१०० भाग
पानी	२०० भाग
अमोनियम बाइक्रोमेट	५ भाग

वाटिका और उसकी देख भाल

[ले०—श्री प्रभा अष्ठाना बी० ए०]

बागवानीकी कला—बाग़वानीकी कला उच्च सभ्यताका चिह्न है। शान्तिके समयमें इसकी जैसी अच्छी उन्नति होती है युद्धमें वैसी ही अवनति। सबसे प्राचीन वाटिका, जो आजतक ज्ञात हो सकी है, १५०० ई० पू० की है और उसका उभरा हुआ चित्र (relief) मिश्रमें हैं। इस वाटिकामें सजावटके लिये झाड़ियाँ लगाई और नहरें बनाई गई थीं। बेबीलोनके 'लटकते हुये बाग़ (Hanging gardens) जो प्राचीन संसारके सात आश्चर्य्योंमेंसे एक

हैं, एक ऊँचे स्थान पर लगे हुये सुन्दर फूल, झाड़ियाँ और वृक्ष आदि हैं। ये ६६० ई० पू० के बनाये हुये हैं। होमर ने कोर्फूके शानदार बागोंका वर्णन किया है। जहाँ कभी 'हेस्पेरिड्सके सुनहरे सेब' लगते थे वहाँ आज मोरक्कोके सुलतानके बाग़ हैं। जेरिकोके पास अब भी हेरोडके ताड़-खजूर वाले बाग़के अवशेष पाये जाते हैं जहाँ मिश्रकी रानी क्लियोपेटराका स्वागत किया गया था। यूनानी इतिहासकार हेरोडोटस राजा मिडासके एशिया माइनरमें स्थित बाग़ोंका वर्णन करता है। तेरहवीं शताब्दीका एक जर्मन ग्रंथ भी जर्मनीकी गुलाब-वाटिकाका हाल बताता है।

बागवानीकी कला का आरम्भ— एथेन्समें बाग़वानीकी कलाका आरम्भ ऐपिक्यूरसने किया था। वह अपने शिष्योंको अपनी वाटिकामें पढ़ाता था। रोमके निवासी अपने बाग़ोंको ख़ूब सजाते थे। ये लोग प्रेमकी देवी 'वीनस' को वाटिका की रक्षिका मानते थे। उनके बाग़ोंमें छोटे आकारके वृक्ष, फ़ौवारे और टहलनेके लिये पतली सड़कें होती थीं। जूलियस सीज़र ने सार्वजनिक वाटिकायें बनवा कर नगर-निवासियोंके आमोदका अच्छा प्रबन्ध किया था। वहाँके दरिद्र निवासी अपने घरोंमें खिड़कियोंमें बाग़ लगाते थे। मध्य युगमें चीनमें बाग़ लगानेकी बहुत प्रथा थी। वे लोग अधिकतर उन्हीं वृक्षोंको लगाते थे जो उस समय लगभग समाप्त होने पर होते थे। अरब देशके निवासी कृत्रिम उपायोंसे सिंचाई करके बाग़ लगाते थे। इनके परी देशके समान सुन्दर बाग़ मुग़लकालीन आगरे और दिल्लीमें पाये जाते थे। यूरोपमें इस कलाकी ओर उस समय बिलकुल ध्यान नहीं दिया गया था। प्राचीन रोमके नगरोंमें बाग़ों अथवा वाटिका-भवनोंके स्थानपर बड़े-बड़े और उदास महल बनाये जाते थे जिसमें केवल एक छोटासा तरकारियोंका खेत होता था। धार्मिक भिक्षु भी केवल औषधियोंके लिये जड़ी-बूटी इत्यादि लगाते थे। यही जड़ी बूटियों वाले बाग़ आगे चल कर 'बोटेनिक गार्डन' बन गये जहाँ पौधोंका वैज्ञानिक रीतिसे अध्ययन होता था।

अठारहवीं शताब्दी तक बागवानीकी कला— रेनेसांके बाद यूरोपमें फूल लगानेका बहुत अधिक प्रचार हो गया। सबसे पहिला उद्यान सन् १४५० में मिलनके ड्यूकके भवनमें लगाया गया था। पन्द्रहवीं शताब्दीमें पेड़ोंकी विभिन्न आकृतियाँ बनाकर लगानेकी प्रथा थी जैसे आजकल भी कहीं कहीं मेंहदीमें चिड़ियाँ अथवा शेर आदि पशु काटकर बनाये जाते हैं। इटलीमें पोपके बाग़ोंको प्रसिद्ध कलाकार उरबिनोंके ब्रैमेंट ने बनवाया था। उसमें एक नवीनता थी। उन उद्यानोंमें सीढ़ियाँ थीं, गुफायें थीं और ग्रीष्म भवन थे। एक और प्रकारके उद्यान उस समय प्रचलित थे जो नीचे स्थानोंमें लगाये जाते थे। उनके चारों ओरके ढालपर ऊँचाईपर वृक्ष और घास आदि लगाये जाते थे। कुछ समय पश्चात् बाग़ लगानेमें भी कृत्रिमताका आश्रय लिया जाने लगा। उनकी स्वाभाविक सुन्दरताका ध्यान न रखकर उनमें समता और एकता रक्खी गई। बाग़ोंमें इमारतें बनाने और तालाब इत्यादि रखनेका प्रचार हुआ।

परिवर्तन—अठारहवीं शताब्दीके अन्तमें इस तरहके उद्यानोंका आदर नहीं रह गया। अब इंगलैंडके 'क्यू गार्डन' के समान बाग़ लगानेका प्रचार हुआ। पहिलेके सीधे रास्ते अब घुमावदार बनाये जाने लगे। पहिलेके मिले-जुले वृक्षों के स्थानपर अब कटी हुई टट्टियाँ लगने लगीं और पानीसे भरे बड़े-बड़े बर्तनोंकी जगह झरने बनाये गये और स्थान-स्थान पर ध्वंसावशेषोंके तथा महलों और मन्दिरोंके अनुकरण थे। अन्तमें वर्सेलीज़के उद्यानोंकी गणना है जिनमें एक ही स्थानपर पूरी प्रकृतिको दिखलानेका प्रयत्न किया गया। एक वाटिकामें थोड़ा-थोड़ा हर प्रकारकी वस्तुओंका समावेश होना चाहिये। सभी तरहकी प्रणाली एकमें मिले-भारतीय अफ्रीका और फ्रांसके वृक्ष, हालैण्डके ट्यूलिप, अमेरिकाका मैगनोलिया; तालाब, छोटा झरना, कृत्रिम पहाड़ी, सुन्दर ध्वंसावशेष, कुटीर, वायु द्वारा संचालित मिलें, चीनके पैगोडा, डेयरी तथा पिरामिड इत्यादि। ऐसे बाग फ्रांस तथा स्पेनमें बहुत पाये जाते हैं। संसार भरमें नॉर्वेके बाग़ सबसे अधिक उत्तरमें स्थित हैं। उनमें कई जातियोंके वृक्ष, गुलाब इत्यादि लगाये जाते हैं। यद्यपि जूनके महीने तक भी उनको बर्फ़ सहन करनी पड़ती है।

वनस्पति उद्यान— ये प्राचीन-कालसे ही से चले आ रहे हैं। प्रथम ठीक-ठीक ऐसा कहा जाने वाला बाग़ सिसलीमें सन् १३२० लगाया गया। सोलहवीं शताब्दीमें जब अन्वेषणकी यात्रायें होने लगीं थीं तब ऐसे बोटैनिक बाग इटलीमें कई स्थानों पर लगाये गये। फ्रांसका सबसे प्राचीन

बोटैनिक बाग़ सन् १५९३ में हेनरी चतुर्थने लगवाया था। सन् १६३५ में पेरिसमें एक प्रसिद्ध बाग़ बना जहाँ सिलाई करने वाली औरतें राजदरबार की पोशाकोंके लिए फूलोंका नमूना देखने जाती थीं। लंदनके पासके संसार-प्रसिद्ध क्यू बाग़ लगभग सन् १७६० में सैक्से-गोथा की राजकुमारी ऑगस्टर फेडरिक-वेल्सके राजकुमारकी विधवा पत्नी ने आरम्भ किये। अमस्टरडममें पहिले-पहल ऐसे बाग़ सन् १६४६ में बनाये गये। जर्मनीमें लीपजिगमें ऐसा बाग़ सन् १५८० में बना और बर्लिनमें तो १८०९ तक एक भी बाग़ नहीं था। पूर्वमें इस तरहके सुन्दर बाग़ कलकत्ते, लंका और जावामें पाये जाते हैं।

मेक्सिको की झीलोंमें तैरते हुये उद्यान होते हैं। इन झीलोंमें लम्बी-लम्बी लकड़ी की शहतीरें और तख़्ते डाल कर उनपर मिट्टी बिछाई जाती थी और उसपर पेड़ पौधे लगाये जाते थे। काश्मीरमें भी ऐसे बाग़ लगाये जाते हैं।

मध्य युगमें कमल और गुलाबके जो माता मेरी-के चिन्ह हैं लगाने की बहुत प्रथा थी। पन्द्रहवीं शताब्दीमें गुलाबी रंगका गुलाब लगाना आरम्भ हुआ और सोलहवींमें उत्तरी अमेरिकाका सूर्यमुखी। इसी प्रकार एक समय टर्कीका ट्यूलिप भी था। अठारहवीं शताब्दीमें हेसिं-पके फूलका बड़ा प्रचार था किन्तु बादमें इनके स्थान पर ऐस्टर और चीनका कैमिलिया लगाया जाने लगा। उन्नी-सवीं शताब्दीके आरम्भमें नारसिसस, वालफ्लावर और स्टौक बहुत लोकप्रिय थे। पिछले महायुद्धके बाद और चिड और कैक्टी बहुत रुचिकर फूल हो गये। संयुक्त राजमें कारनेशन बहुत लोक-प्रिय है। इङ्गलैण्डमें कृत्रिम फूलोंका भी काफी व्यापार होता है।

भिन्न-भिन्न पौधे और फूल—कुछ पौधे और फूल विभिन्न देशोंके माने जाते हैं, जैसे इङ्गलैण्ड और रूमा-नियाका गुलाब, फारसका लाल गुलाब, स्काटलैंडका थिसल, वेल्सका लीक, आयरलैण्डका शैमरौक, कैनाडा को मेपल की पत्ती, ज़ेकोस्लोवेकियाका नींबू, यूगोस्लावियाकी घाटीकी कमलिनि, फ्रांस की कमलिनि, ग्रीसका लौरल, हंगरी और नीदरलैण्डका ट्यूलिप, जापानका चेरी और चीनका बेर (plum blossom), मिश्र देशका कमल, पैरागुये की नारंगी तथा डेनमार्कका फौरगेट-मी-नौट (forget-me-not) आदि।

जैसे पशु-पक्षियोंके अपने घर होते हैं वैसे ही जंगली फूलोंके भी। इङ्गलैण्डमें पौधोंको एक स्थानसे उखाड़कर दूसरे पर लगानेका यह फल हुआ है कि जो फूल जैसे काउज़्लिप और पिंकरोज़ पहिले वहाँ बहुत पाये जाते थे अब उनका कहीं पता नहीं लगता है। इसीलिये स्विटज़र-लैण्डमें यह कानून बना दिया गया है कि कोई आल्पस पर्वतके वृक्षोंको न उखाड़ सके।

अफ्रीकामें विषुवत रेखाके आस-पास बहुत अधिक वृक्ष पाये जाते हैं। जिन वृक्षोंमें फल लगते हैं, उनमें सबसे दीर्घजीवी नासपातीका वृक्ष है जो लगभग तीन सौ वर्षका होता है। सेबका पेड़ डेढ़ सौ वर्षसे अधिक नहीं रहता है। अंजीरका पेड़ भी बहुत आयुका होता है। नारंगी के पेड़में अस्सी वर्ष तक नारङ्गी लगती है। क्रीमियाके बालक्लावा प्रदेशमें एक ऐसा अखरोटका पेड़ है जिसमें प्रतिवर्ष एक लाख अखरोट लगते हैं और पाँच परिवार उसके हिस्सेदार हैं।

कैलीफोर्नियाके गुलाबके पेड़ोंमें बहुत अधिक फूल लगते हैं। एक गर्मीकी ऋतुमें इक्कीस हज़ार तक हुये हैं। संसारमें सबसे विशालकाय अकेला पुष्प मलायाका रैफ्ले-शिया है जिसकी चौड़ाई एक गज़ होती है, परन्तु संसारका सबसे लम्बा फूल विशाल ऐरम है जिसकी लम्बाई छः फीट होती है। फलियोंका सबसे लम्बा पौधा चिलीमें पाया जाता है जिसके बड़े आदमीकी बाँहके बराबर और फली एक बच्चे के हाथके बराबर होती है और चिडके फूल अत्यन्त मूल्य-वान होते हैं। एक बार ऐसे ही एक फूलका मूल्य तीस हज़ार पौंड तक बढ़ गया था। बलगेरियामें एक बार अत्य-न्त विचित्र नीला गुलाब हुआ था और वह गुलाब पीले गुलाबके वृक्षमें लगा था।

क्रिसमस वृक्ष—क्रिसमस वृक्ष अति प्राचीन कालसे धार्मिक विश्वासोंका प्रतीक है। जर्मन पुजारी पवित्र झरनों-के पास वृक्षके नीचे बलि दिया करते थे और उसकी डालों पर उस देवताके उद्देश्यमें दीपक तथा अन्य पूजाकी साम-ग्रियाँ टाँग दी जाती थीं जिसका वह वृक्ष माना जाता था।

(शेष के लिए पृष्ठ २४० देखो।)
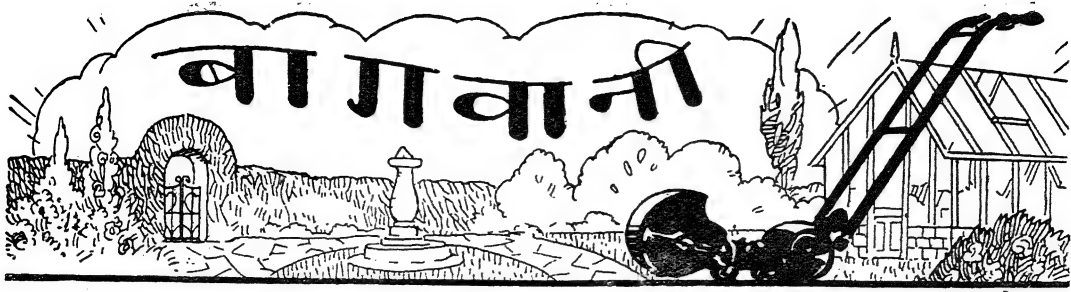
तरबूज (Watermelon) — मध्य जनवरीसे लेकर मार्चके अंत तक इसे बोया जा सकता है। पहाड़ी स्थानोंमें यह नहीं होता। बहुतसे लोगोंका विश्वास है कि तरबूज और खरबूजा केवल नदियोंके रेतोंमें होता है; परन्तु बात ऐसी नहीं है। बगीचोंमें आसानीसे तरबूज पैदा किया जा सकता है। यह एक वार्षिक लता है। तरबूजकी कई जातियाँ होती हैं जिनमें फलका आकार और नाममें विभिन्नता होती है और कभी-कभी तो बीज भी भिन्न रंगका होता है परन्तु खानेमें सब प्रायः एकसे होते हैं। कुछ फल बहुत मीठे और स्वादिष्ट होते हैं और दूसरे फल पानीकी तरह फीके होते हैं।

किसी भी ज़मीनमें तरबूज पैदा हो सकता है, परन्तु बढ़िया फल पैदा करनेके लिये ज़मीनमें खूब खाद देनी चाहिए और ज़मीन बलुही (बालू मिश्रित) हो। जब इसे बगीचेमें पैदा किया जाता है तो पाँच-पाँच फुटकी दूरी पर तीन-तीन चार-चार बीज बो दिया जाता है। बीज बोनेके पहले उस स्थानमें दो चार खाँची खाद भी छोड़ देते हैं। पौधोंके उगने पर सबसे मज़बूत पौधेको रख लेते हैं और शेषको उखाड़कर फेंक देते हैं। आरम्भमें तो तीसरे या चौथे दिन पानी देनेकी आवश्यकता पड़ती है; परन्तु पौधा बड़ा हो जानेके बाद १०-१५ दिनमें एक बार पानी देना काफ़ी होगा। पौधेको पानीकी बहुत आवश्यकता रहती है, परन्तु हवा सूखी रहने पर ही पौधे बढ़ते हैं और उनके फल मीठे होते हैं। इसलिए यथासम्भव मध्य जनवरीमें ही उन्हें बो देना चाहिए। देर करके बोनेका परिणाम यह होता है कि फल तैयार होते-होते एक-आध बार पानी बरस जाता है, जिससे पौधे और फल सड़ जाते हैं।

टिंडा

टिंडा मध्य जूनसे जुलाईके अंत तक बोया जाता है यह तरबूजकी ही एक जाति है; परन्तु यह तरबूजके बराबर बड़ा नहीं होता, उससे बहुत छोटा होता है। बाहरसे यह हलका हरे रंगका होता है। जब यह कच्चा रहता है तब लोग इसकी तरकारी बनाकर खाते हैं। यदि तरकारीमें केवल नमक-मिर्च डाला जाय तो यह स्वादिष्ट नहीं लगता और इसलिए अक्सर इसमें मसाला डालनेकी आवश्यकता पड़ती है।

बीजको तीन-तीन फुटकी दूरी पर बोते हैं; परन्तु एक स्थानमें तीन चार बीज बोना चाहिये और प्रत्येक स्थानमें जो पौधा सबसे मज़बूत हो उसीको रखना चाहिये। बोनेका काम सिर्फ बरसातमें किया जाता है। ज़मीन बलुही हो और इसमें थोड़ी बहुत खाद भी हो। यदि ज़मीनकी मिट्टी ऐसी हो कि भीगने पर वह बँध जाय तो पौधा उत्पन्न ही न होगा।

खरबूज़ा (melon)

मध्य जनवरीसे मध्य मार्च तक इसे बोया जाता है। पहाड़ पर यह नहीं होता। तरबूजकी तरह खरबूजा भी एक वार्षिक लता है। उसकी कई एक जातियाँ होती हैं और बाज़ के फल बहुत मीठे होते हैं। विविध जातियोंके खरबूज़ोंका आकार भी भिन्न-भिन्न होता है। बाज़ पर अक्सर हरे रंगकी धारियाँ रहती हैं। कुछ तो बहुत मीठे होते हैं, परन्तु कुछ प्रायः बिना स्वादके होते हैं। पता नहीं चलता कि क्यों एक ही जातिके बीजसे कभी तो मीठा फल उत्पन्न होता है और कभी बहुत साधारण। बाज़-बाज़ स्थानका फल बहुत मीठा होता है और उनकी ख्याति भी दूर-दूर तक फैल जाती है; परन्तु उसी बीजको अन्य स्थानमें बोनेसे जो फल उत्पन्न होता है उसमें मिठास या स्वाद नहीं होता।

लखनऊ और जौनपुरका खरबूजा बहुत प्रसिद्ध है। जब किसी स्थानका खरबूजा मीठा न हो तो वहाँ पर कोई ऐसा उपाय करनेकी रीति अभी तक नहीं मालूम है कि वहाँका खरबूजा मीठा हो सके। खरबूजा अक्सर नदियोंके किनारे रेतमें बोया जाता है और इसके लिये रेतमें गड्ढा खोदकर और उसमें खाद डालकर बीज दो चार इंचकी गहराई पर बो दिया जाता है। बागमें बोनेके लिए बलुही ज़मीनकी आवश्यकता है और ज़मीनमें खूब खाद पड़ी रहे।

वाटिका और उसकी देख-भाल

(पृष्ठ २३८ के आगे)

अब भी क्रिसमस वृक्षपर मोमबत्ती और अन्य सजावटकी वस्तुयें लटका दी जाती हैं। बारहवीं शताब्दीके फ्रांसीसी कवियों ने इसका वर्णन चमकदार अथवा उज्ज्वल वृक्षके रूपमें किया है। इसके पश्चात् क्रिसमस वृक्ष बनानेकी प्रथा न रह गई। कदाचित् प्राचीन रिवाजोंके प्रति गिर्जेकी द्वेष-भावना इसका कारण रहा हो परन्तु फिर कई सौ वर्षों बाद यह प्रथा प्रचलित हो गई। सन् १६०५ में प्रथम बार जर्मनीमें एक पादरीके घरपर फ़रका एक वृक्ष क्रिसमस वृक्ष-की भाँति सजाया गया। सन् १८१६ में यह रीति आस्ट्रिया में भी फैल गई। उस समय जैसा हालैंडमें अब तक रिवाज है यह वृक्ष क्रिसमसके सुबह सजाया जाता था। उन्नीसवीं शताब्दीके मध्यमें यह प्रथा कैथलिक दक्षिणी जर्मनी में भी आ गई। जार्ज तृतीयके समयमें क्रिसमस वृक्ष इंगलैंड-में आया। सन् १६१७ की रूसी राज्यक्रांतिके बाद क्रिस-मस वृक्ष बनाना बन्द कर दिया गया था। सन् १६३५ में ये फिर सजाये जाने लगे। परन्तु इटली और ग्रीसमें ये नहीं बनाये गये जिससे बनोंमें वृक्षोंकी कमी न होने पाये। एक वष इंगलैंडमें किसी भी प्रकारका वृक्ष नहीं आ पाया क्योंकि दूसरे देशोंमें पौधोंकी ऐसी बीमारी चली थी कि उनके आनेसे इंगलैंडके वृक्षोंको भी हानि पहुँचनेका डर था। इस लिये वहीं होने वाले वृक्षोंसे काम चलाया गया।

न्यूयार्कके एक होटलमें एक अमेरिकन लखपती ने एक बहुमूल्य क्रिसमस वृक्ष लगाया। प्रत्येक शाखामें खान से तुरन्त निकाला हुआ सोना लटकाया गया था और जड़में जो चौखटा लगाया गया था उसमें बीस सोनेके डालर लगे थे। ड्यूक आफ़ नॉर्फ़कके महलमें सबसे विशाल क्रिसमस का वृक्ष लगाया गया था। यह सत्तर फ़ीट लम्बा था और इसका वज़न चार टन था। संयुक्त राज्य के बोस्टन प्रांत में संसारका सबसे लम्बा क्रिसमस वृक्ष है। यह प्रति वर्ष कई वृक्षोंको जोड़कर बनाया जाता है और रंगीन बिजलीकी रोशनीसे सजाया जाता है। यह कहा जाता है कि केवल संयुक्त देशमें ही पाँच करोड़ वृक्ष हर साल काटे जाते हैं। फ़र, सिडार और पाइन इनमेंसे मुख्य हैं।

संयुक्त प्रदेशमें दुनियाको सबसे अधिक वृक्षोंकी खेतीकी जा रही है। यह कैनाडासे लेकर टैक्सास तक होगी। इसका उद्देश्य पश्चिमी धूलके तूफ़ानोंसे पूर्वी देशोंको रक्षा करना है। भिन्न जातियोंके जितने वृक्ष यहाँ लगाये जायेंगे उनकी संख्या लगभग तीस करोड़ होगी।

विषय-सूची

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग।

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते.
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्याभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ५३	प्रयाग, मेष, संवत् १९९८ विक्रमी	अप्रैल, सन् १९४१	संख्या १

श्रीनिवास रामानुजन् आयङ्गर

(१८८७–१९२०)

[ले०—श्री रामचन्द्र तिवारी बी० एस-सी०]

भारतीय गणितका इतिहास

भारतवर्षमें गणितका इतिहास कितनी ही शताब्दियोंसे सूना पड़ा था। बारहवीं शताब्दीमें भास्करने इस विषयका अध्ययन किया। भास्करका समय १११४-११५० तक है। उन्होंने बीजगणितका वर्गात्मक समीकरण (quadratic equation) के ऋण मूल्य (negative-root) का पता लगाया। उदाहरणार्थ

$$क^2 - ४५\ क = २५०$$

इसमें $क = ५०$

$क = -५$

इसके अतिरिक्त उस समय भास्कर ने $\frac{0}{0}$ की समस्या पर भी विचार किया।

उसके पश्चात् यद्यपि साहित्यिक क्षेत्रमें सूर, तुलसी जैसी विभूतियों ने भारतीय साहित्यका श्रृंगार किया, परन्तु गणित अथवा विज्ञानकी अन्य किसी शाखाकी ओर किसी विद्वान्‌का ध्यान आकर्षित हुआ नहीं पाया जाता।

भारत पश्चिमीय साहित्य और संस्कृतिके सम्पर्कमें आया। भारतीय आत्मा मानों सोतेमें कुलबुला उठी। एक प्रकारका चैतन्य शरीरमें दौड़ गया। सत्तावनका ग़दर हुआ और उसके पश्चात् कितने ही महापुरुषों ने भारतमें जन्म लिया। रवीन्द्र, गांधी, मालवीय, राय, बोस इसी कालकी देन हैं। रामानुजन् भी इसी चैतन्यताके प्रभाव जान पड़ते हैं। रामानुजन्‌की असाधारण प्रतिभा सहज थी। संसार उनकी श्रेणीके मनुष्योंकी प्रशंसा कर सकता है, उनका कृतज्ञ हो सकता है। परन्तु उन्हें और उनकी मानसिक क्रिया-शीलनाको समझनेका प्रयत्न अभी सफलताके विशेष निकट नहीं है। केम्ब्रिज विश्वविद्यालयके अध्यापक जी० एच० हार्डी ने ३१ अगस्त १९३६ को अमेरिकामें कला और विज्ञानकी फारवर्ड त्रिशतक कांफ्रेंसमें भारतीय गणितज्ञ रामानुजन् पर एक भाषण दिया (Am. Math. monthly, pp 137-155; 1937)। उन्होंने कहा, "इस भाषणमें मेरा कार्य वास्तवमें कठिन है और यदि मैं असफलताके लिये सब बहाने करना आरम्भ करूँ तो मैं उसे असम्भव भी कह सकता हूँ। गणित के आधुनिक इतिहास के सबसे विचित्र पुरुषके विषयमें मुझे किसी प्रकारका बुद्धि-संगत अनुमान लगाना है और आप लोगोंको भी ऐसा

करनेमें सहायता देना है। रामानुजन्‌का जीवन विचित्रता तथा विरोधोंसे भरा जान पड़ता है। एक दूसरेको बूझ की प्रायः सभी रीतियाँ उसके विषयमें असफल रहती हैं। उसके विषयमें हम कदाचित् इसी एक बातमें एकमत रखते हैं कि वह किसी अर्थमें एक महान् गणितज्ञ था।"

रामानुजन् एक अर्द्धशिक्षित भारतीय थे

रामानुजन्‌को समझनेकी कठिनाइयाँ प्रत्यक्ष और काफी बड़ी हैं। रामानुजन् भारतीय था और ऐसा विचार है कि अंगरेज और भारतीय भली-भाँति एक दूसरेको समझ नहीं पाते। वह अर्द्धशिक्षित भारतीयसे अधिक न था। उसे भारतीय शिक्षा—चाहे वह कैसी भी हो—से कभी लाभ उठानेका अवसर न मिला। वह भारतीय विश्व-विद्यालयोंकी प्रथम परीक्षा भी पास न कर पाया। अपनेको बी० ए० फेल न बना सका। वह अपने जीवनके अधिक भागमें यूरोपियन गणितसे लगभग अज्ञानताकी दशामें कार्य करता रहा और तीस वर्षकी अवस्थामें जबकि उसकी शिक्षा कुछ अर्थोंमें कठिनतासे प्रारम्भ हुई कही जा सकती थी वह चल बसा। उसने बहुत सा काम छापा। उसके छपे हुये पर्चे लगभग ४०० पृष्ठ हैं (Collected Papers of Srinivasa Ramanujan; Hardy, Seshu Aiyar and Wilson; Cambridge University Press, 1927)। इसके अतिरिक्त वह अप्रकाशित कार्यका एक ढेर छोड़ गया है जो पिछले कुछ वर्षोंसे पहिले भली-भाँति विश्लेषित नहीं किया गया, और न समझा गया। इस कार्यमें बहुत कुछ नवीनता है परंतु उससे भी अधिक पुनर्खोज है और प्रायः अधूरी। कभी-कभी यह निश्चित करना कठिन हो जाता है कि उसे इन चीज़ों की पुनर्खोज करनी चाहिये थी और उन्हें वह कहींसे सीख सकता था। अब तक किसी ने यह नहीं कहा है कि वह कितना बड़ा गणिताचार्य था और यह तो और भी कम कहा गया है कि वह कितना बड़ा हुआ होता।

मेरी रामानुजन्‌से आत्मीयता

ये कठिनाइयाँ वास्तविक हैं परन्तु मैं सोचता हूँ कि ये कम हो जायँगी। मेरे लिये रामानुजन्‌के जीवनका प्रत्यक्ष विरोध विशेष कठिनाई उत्पन्न नहीं करता। मेरे लिये वास्तविक कठिनाई यह है कि रामानुजन् एक प्रकार मेरी खोज था। मैंने उसे बनाया नहीं सब महान् पुरुषोंकी भाँति उसने अपना निर्माण स्वयं किया। परन्तु मैं ही पहिला वास्तविक अधिकारी व्यक्ति था जिसने उसका कार्य देखा। मुझे यह याद करके संतोष होता है कि मैंने इस निधि को तुरंत पहिचान लिया। मैं सोचता हूँ कि मैं अब भी रामानुजन्‌के विषयमें सबसे अधिक जानता हूँ। इस विशेष विषयमें अब भी सर्व प्रथम अधिकारी व्यक्ति हूँ। इंगलैंडमें और लोग हैं जिनमें विशेषतया प्रोफेसर माडिल और वाटसन हैं, जो उसके कार्यके कुछ भागोंको मुझसे कहीं अधिक अच्छी तरह जानते हैं। परन्तु रामानुजन्‌को उनमें से कोई भी मेरी भाँति नहीं जानता। मैं कई वर्षों तक लगभग प्रतिदिन उससे मिलता वार्तालाप करता और मुख्य बात यह है कि मैंने उसके साथ कार्य किया। एक व्यक्तिको छोड़कर मैं संसारमें सबसे अधिक उसका ऋणी हूँ। उसके साथ मेरा परिचय मेरे जीवनकी स्मरणीय घटनाओंमेंसे एक है। मेरी कठिनाई यह नहीं है कि मैं उसके विषयमें पर्याप्त नहीं जानता वरन् यह है कि मैं उसकी ओर झुके बिना नहीं रह सकता, यथार्थताके साथ न्याय नहीं कर सकता।

जन्म

रामानुजन्‌का जन्म मद्रास प्रेसीडेंसीके तंजौर जिलेमें एक ब्राह्मण परिवारमें हुआ। उसके पूर्वजोंमें ऐसी कोई विशेषता न थी जिसमें उसकी महानताका बीज ढूँढा जा सके। उसके पिता और पितामह कुम्बाकानम, जो तंजौर ज़िलेका एक प्रमुख नगर है, में एक कपड़ेके व्यापारी के गुमाश्ता थे। उसकी मां पड़ोसी कोयमबटूरके ज़िलेमें इरोड स्थान पर मुन्सिफ़के कोर्टके अमानकी पुत्री थी। विवाहके कुछ समय पीछे तक उसके कोई संतान नहीं हुई। तब रामानुजन्‌के नानाने अपनी पुत्रीकी संतानके लिये नमक्कल नगरमें नामगिरी देवीसे प्रार्थना की। इसके कुछ समय पश्चात् सर्वजित सम्वतकी मार्गशीर्षकी नवमको (अँग्रेज़ी २२ दिसम्बर १८८७ को) रामानुजन्‌का जन्म हुआ। नोबुल पुरस्कार विजेता श्री चन्द्रशेखर वेंकट रमनका जन्म इसके लगभग ग्यारह मास पश्चात् हुआ।

रामानुजन् अपने नानाके यहाँ पैदा हुये थे। उसकी मां रूढ़िके अनुसार अपनी प्रथम संतान वहाँ उत्पन्न करने

चली गई थी। सन् १८६२ में जब वह पाँच वर्षका था तब वह और बालकोंके साथ पाठशाला गया। दो वर्ष पश्चात् वह कुम्बाकोनमके हाई स्कूलमें प्रविष्ट हुआ और अपने स्कूल-जीवन भर वहीं रहा।

बाल्यकाल

उसकी विशेष प्रतिभाका सर्व प्रथम प्रदर्शन उस समय हुआ जब वह तंजौर ज़िलेमें प्रारम्भिक परीक्षामें सर्व प्रथम उत्तीर्ण हुआ। इससे हाई स्कूलमें उसकी आधी फीस माफ हो गई।

इन दिनों भी वह अत्यन्त शान्त और ध्यान-मग्न रहा करता था। यह कहा जाता है कि वह पृथ्वी और ताराओंके अंतरके विषयमें प्रश्न पूछा करता था। वह अपनी कक्षामें उच्च-स्थान पर रहता था इसलिये उसके सहपाठी उसके घर जाया करते थे। उसके माता-पिता उसे बाहर जानेकी आज्ञा नहीं देते थे। इसलिये वह एक खिड़कीसे वार्तालाप किया करता था।

जब वह इसी कक्षामें था (छठी कक्षा मैट्रीकुलेशन थी) तो ऐसा जान पड़ता था कि उसे गणितमें अन्तिम सत्य जाननेकी उत्कट इच्छा थी और वह इस विषयमें ऊँची कक्षाके विद्यार्थियोंसे प्रश्न किया करता था। इनमेंसे कुछ तो पायथोगोरसके प्रमेयोपपाद्य साध्यको और कुछ स्टाक्स और शेयर्स को गणितका अन्तिम सत्य बताते। जब वह तीसरी कक्षामें था तो एक दिन शिक्षक कक्षाको समझा रहे थे कि किसी संख्याको यदि उसीसे भाग दिया जाय तो भजनफल एक होता है। कहा जाता है कि उस समय उसने उठकर पूछा था कि शून्यको शून्यसे भाग देने पर भी क्या भजनफल एक होगा? इन्हीं दिनों उसने तीनों प्रोगरेशनोंको अपने लिये खोज लिया था और उनपर अधिकार कर लिया था। जब वह चौथी कक्षामें आया तो त्रिकोण-मितिका अध्ययन करने लगा। ऐसा कहा जाता है कि उसने अपने एक पड़ोसी बी० ए० के विद्यार्थीसे लोनीकी ट्रिगनोमेट्रीका दूसरा भाग माँगा। उस बी० ए० के विद्यार्थी को यह जानकर आश्चर्य हुआ कि इस चौथी कक्षाके विद्यार्थी ने उस पुस्तकको पढ़ कर समाप्त ही नहीं कर दी है वरन् वह उसके प्रत्येक प्रश्नको विना सहायता हल कर सकता है। इसके पश्चात् वह विद्यार्थी प्रायः रामानुजन् से अपनी कठिनाई दूर करानेको आया करता था। जब वह चौथी कक्षामें था तो उसने स्वयं ऑयलर (Euler) की साइन और कोसाइनकी थ्योरम प्राप्त की थी। परन्तु जब उसने उसे पहिले पुस्तकमें उपस्थित पाया तो अपने प्रमाण और लेखको छिपा कर रख दिया।

गणित-संसारमें प्रवेश

रामानुजन् ने १६ वर्षकी अवस्थासे पहिले गणितकी कोई ऊँची किताब नहीं देखी। विटेकर और वाटसन (Wittaker & Watson) की मॉडर्न एनेलेसिस का भारत तक प्रचार नहीं हुआ था। ब्रोमविच (Bromwitch) की इनफिनिट सिरीज़ का जन्म भी नहीं हुआ था। इसमें संदेह नहीं कि ये पुस्तकें रामानुजन्में महान् अंतर डाल देतीं। रामानुजन्की शक्तियोंको पूर्वतः जाग्रत करने वाली पुस्तक कारकी सिनप्सिस (Synopsis) एक दूसरे प्रकारकी पुस्तक थी। यह पुस्तक अब नहीं मिलती। इसकी एक प्रति केम्ब्रिज विश्वविद्यालयके पुस्तकालयमें है और किसी भाँति एक प्रति कुम्बाकोनमके गवर्नमेंट कालेजमें पहुँच गई थी। वहाँसे एक मित्र ने उसे रामानुजन्के लिये ला दिया था। यह पुस्तक किसी प्रकार भी महान् नहीं है लेकिन रामानुजन्ने उसे प्रसिद्ध कर दिया है। निस्सन्देह इसने उसपर गम्भीर भाव डाला, उसके जीवन-कार्यको एक प्रकारसे नींव डाली।

कारकी पुस्तक अत्यन्त ऊँचे दर्जेकी पुस्तक नहीं है, परन्तु वह एकदम नीची श्रेणीकी भी नहीं है। यह पुस्तक अपने ढङ्गसे सच्ची योग्यता और उत्साहके साथ लिखी गई है। कार स्वयं लंदनमें व्यक्तिगत शिक्षा देनेका कार्य करता था। वह अंडर-ग्रेजुएटकी अवस्थामें जब केम्ब्रिज आया तो उसकी अवस्था लगभग ४० वर्षकी थी। सन् १८८० के मेथेमेटिक ट्राइपस में वह बारहवाँ सीनियर औप्टिम (Senior Optime) था। इसी वर्ष उसने अपनी पुस्तकका पहिला भाग प्रकाशित किया। उसे उसके कालेजमें बिलकुल भूल गये हैं। रामानुजन्ने उसका नाम जीवित रक्खा है। उसमें अवश्य किसी प्रकार को महानता रही होगी।

मैं समझता हूँ कि वह वास्तवमें कारके पढ़ानेके नोट रहे होंगे। उसके शिष्यको पुस्तकके उचित भागोंमें होकर

आगे बढ़ता रहा होगा। यह वर्तमान ट्राइपस शेड्यूल-ए विषयों (जैसा कि १८८० में केम्ब्रिजमें समझाया जाता था) को मोटे तौरसे ढँक लेती है और वास्तवमें मिनॉप्सिस (सारांशतः मुख्य विषयोंका संग्रह) है। इसमें ६१६५ प्रमेयोपपाद्य साध्य, योजनानुसार और वैज्ञानिक रीतिसे लिखे गये हैं। कुछ उपयुक्त भी हैं परन्तु केवल 'क्रास रेफ़ेरेन्स' से अधिक कुछ नहीं है। यही पुस्तकका सर्वाधिक रोचक भाग है। यही ढङ्ग रामानुजन् की प्रसिद्ध नोट बुकोंमें और आगे बढ़ गया है जिनमें प्रमाण बिलकुल नहीं दिया गया है। रामानुजनने इस विषयमें कार की नक़ल की है।

कारकी पुस्तकमें बीजगणित, त्रिकोणमिति कैल्कुलस और विश्लेषणात्मक ज्यामिति पर विभिन्न विभाग हैं। लेकिन कुछ विभाग बेढङ्गे तौर पर बढ़े हैं। वे कारके प्रिय विषय थे। इंटीगरल कैल्कुलस और विशेषतया फंकशनो (functions) की 'formal side' सिद्धान्त उसमें बिलकुल नहीं है और मुझे संदेह है कि रामानुजन् अपने जीवनके अंत तक भी साफ़-साफ़ विश्लेषणात्मक फंकशन्स ठीक-ठीक समझ पाया था। कारकी रुचि और रामानुजनके पिछले कार्यको देखते हुये यह अधिक आश्चर्य है कि इलिप्टिक फंकशन्सका कोई जिक्र पुस्तकमें नहीं है। रामानुजनने इस विषयका विचित्र ज्ञान कारसे प्राप्त नहीं किया।

इस प्रकार रामानुजनके सम्मुख एक नवीन संसार खुल गया। उनके आनन्दका पारावार न रहा। इस पुस्तकने उसकी प्रतिभाको जगा दिया। वह उसमें दिये हुये गुणोंको प्रमाणित करनेमें जुट गया। उसके पास दूसरी पुस्तकों की सहायता न थी इसलिये उसके लिये प्रत्येक हल एक अनुसंधान था। रामानुजन् कहा करता था कि नमक्कलदेवी स्वप्नमें उसे गुर (फ़ारमूले) दिखाती थी और इस विषयमें यह रोचक बात है कि प्रायः बिस्तरेसे उठकर वह फल लिखता था और शीघ्र ही उसे जाँच लेता था यद्यपि वह सदा सही प्रमाण नहीं दे पाता था।

हार्डी कहते हैं कि मुझे पूर्ण विश्वास है कि रामानुजन् रहस्यवादी नहीं था। धर्मने संकुचित पार्थिव अर्थको छोड़कर उसके जीवनमें कोई महत्वपूर्ण भाग नहीं लिया। वह उच्च जातीय कट्टर हिन्दू था और सदा अपनी जातिके विचार पालता था। इङ्गलैंडमें रहने वाले अन्य माता-पितासे उसने ऐसी प्रतिज्ञा की थी और उसका अक्षरशः पालन किया। वह दृढ़ निरामिषभोजी था इससे बीमारीमें उसे बड़ा कष्ट उठाना पड़ा। जब तक वह केम्ब्रिजमें रहा अपने हाथसे भोजन बनाता और कभी बिना कपड़े बदले चौकेमें नहीं घुसा। उसके भारतीय जीवन-चरित्र लेखकोंका विचार है कि नमक्कल देवी पर उसकी विशेष भक्ति थी। वह परमात्माके अस्तित्वमें और मनुष्यद्वारा उसकी प्राप्तिमें विश्वास करता था। इस तथा आगामी जीवन की समस्याओंके विषयमें उसके विचार दृढ़ तथा स्पष्ट थे। हार्डीका विचार है कि उसका धर्म आचार-विचारको वस्तु थी, बौद्धिक विश्वास नहीं। रामानुजनकी दृष्टिमें सब धर्मों में लगभग बराबर सत्यका अंश है।

यद्यपि रामानुजनके धर्मका विषय बहुत महत्वपूर्ण नहीं है तथापि वह एकदम असंगत भी नहीं है। इस विषयमें मैं एक बातपर अधिकसे अधिक बल देना चाहता हूँ। रामानुजनके विषयमें बहुत कुछ अबूझनीय सा है परन्तु इसके लिये हमें रहस्यवादकी शरण नहीं लेनी चाहिये। मैं आपसे स्पष्ट कह देना चाहता हूँ कि मैं उसकी प्रशंसा करता था उससे प्रेम करता था। जब वह केम्ब्रिजमें स्वस्थ तथा आरामप्रद वातावरणमें रहता था तब अपने व्यक्तिगत असाधारणताओंके होते हुये भी वह सीधा सामान्य बुद्धिवादी मनुष्य था। मैं नहीं चाहता कि आप लोग आश्चर्यसे हाथ फैलाकर कहें 'यह देखो। यह बुद्धिको पंगु बना देने वाले पूर्वके प्राचीन ज्ञानका रहस्यमय उद्घाटन है।' मुझे पूर्वके प्राचीन ज्ञानमें विश्वास नहीं है। मैं आपके सम्मुख जो चित्र उपस्थित करना चाहता हूँ वह यह है। रामानुजनमें अन्य महान् पुरुषोंकी भाँति अपनी विचित्रतायें थीं। परन्तु वह ऐसा मनुष्य था जिसकी संगतिमें आप आनन्द उठा सकते थे, जिसके साथ चायकी मेज़पर बैठ कर राजनीति या गणित पर बातचीत कर सकते थे। वह अपार्थिव शक्तिसे परिचालित मूर्ख नहीं है और न वह मनोवैज्ञानिक विचित्रता है। वह एक बुद्धिवादी मनुष्य है जो एक बड़ा गणितज्ञ था।"

कालेजमें प्रवेश

सत्रह वर्षकी अवस्था तक कोई विशेष घटना न हुई। सन् १९०३के दिसम्बरमें उसने मद्रास विश्वविद्यालयसे मैट्रीकुलेशनकी परीक्षा पास की और अगले वर्ष जनवरी में कुम्बाकोनमके गवर्नमेण्ट कालेजमें प्रविष्ट हुआ। उसने सुब्रामनयम छात्रवृत्ति प्राप्त की जो प्रायः उन विद्यार्थियोंको दी जाती थी जो अँग्रेजी और गणितमें चतुर हों।

इसके पश्चात् उसके मार्गमें कठिनाइयाँ आने लगीं।

इस समय वह गणितके अध्ययनमें इतना लीन हो गया था कि अंग्रेजी, इतिहास, दर्शन, सभीके घण्टोंमें वह किसी न किसी गणितके अनुसंधान में लगा रहता। उसे इसका पता न रहता कि कक्षामें क्या हो रहा है। गणितमें अत्यन्त लग्न रहनेके कारण वह अन्य विषयों पर उचित ध्यान न दे पाया और इसका फल यह हुआ कि वह अगली कक्षामें नहीं चढ़ाया गया। उसकी छात्रवृत्ति बन्द हो गई। कुछ निराश होकर और एक मित्रके कहनेसे वह उत्तर को तैलगू देश की ओर भाग गया। परन्तु कुछ समय पश्चात् लौट आया और फिर कालेजमें प्रविष्ट हो गया अधिक अनुपस्थितिके कारण उसकी हाजिरी पूरी न हो पाई और सन् १९०५ का टर्म (term) सर्टिफिकेट उसे न मिला। वह मद्रास गया और वहाँ सन् १९०६ मेपचयाप्पा कालेजमें प्रविष्ट हुआ, परन्तु बीमार पड़ा और पुनः कुम्बाकोनम लौट आया। सन् १९०७ की दिसम्बरमें वह प्राइवेट एफ० ए० में बैठा और फेल हो गया।

इसके पश्चात् सन् १९०९ तक उसके पास कोई विशेष कार्य न था। वह गणित पर लगा रहा और एक कापी पर अपने परिणाम लिखता रहा।

विवाह और जीवनकी कठिनाइयाँ

सन् १९०९ की गर्मियोंमें उसका विवाह हो गया और वह स्थिर जीवन बितानेकी सोचने लगा। परन्तु दरिद्र परिवारमें जन्म होनेके कारण, अभागे कालेज जीवन तथा मित्र विहीन होनेके कारण उसे जीविका जुटाने में बड़ी कठिनाई पड़ी। नौकरी पानेकी आशासे वह अरकाट ज़िलेके एक छोटे नगर तिरु कोलुर, श्री रामास्वामी अय्यर, एम० ए०, भारतीय गणित सोसायटीके संस्थापकसे मिलने गया। वे उस समय वहाँ डिप्टी कलक्टर थे। उसने उनसे म्युनिसिपल या तालुकेके दफ़्तरमें क्लर्कीकी याचना की। ये महाशय स्वयं अच्छे गणितज्ञ थे। उन्होंने देखा कि रामानुजन्‌की कापीमें लिखे परिणाम महत्वपूर्ण हैं। उन्होंने सोचा कि देहातमें उसकी प्रतिभा कुचल उठेगी। इसलिये उसे एक परिचय-पत्र देकर श्री पी० वी० शेषु अय्यरके पास कुम्बाकोनम भेज दिया। शेषु अय्यर रामानुजन्‌को पहिलेसे जानते थे। जब रामानुजन् एफ० ए० में था तो वे उस कक्षाको गणित पढ़ाते थे। अब उनकी सहायतासे रामानुजन्‌को मद्रासके अकाउण्टेंट जनरलके दफ्तरमें एक अस्थायी नौकरी मिल गई। जब इस नौकरीका अंत हो गया तो वह कुछ समय तक ट्यूशन करके गुज़ारा करता रहा। इस प्रबंधसे वह संतुष्ट था। अब शेषु अय्यर ने उसे नेलोरके कलक्टर दीवान बहादुर आर० रामचन्द्ररावके पास एक पत्र देकर भेजा। नेलोर मद्राससे अस्सी मील दूर छोटा सा नगर है। रामचन्द्रराव उसकी कापी पहिले देख चुके थे और उससे उनका परिचय हो चुका था। रामचन्द्रराव और रामानुजन्‌की पहिली भेंट सन् १९१० में कैसे हुई इसका वर्णन उनके शब्दोंमें अत्यंत रोचक है।

"कुछ वर्ष पहिले मेरा एक भतीजा जिसे गणितका तनिक भी ज्ञान नहीं है मेरे पास आया और बोला 'चाचा' एक आदमी आया है वह गणितकी बातें कहता है। क्या कहता है? यह मेरी समझमें नहीं आता। आप उससे मिल कर देखिये कि क्या वह वास्तवमें कुछ है।" उस समय मैंने अपनी गणितकी योग्यताके गर्वमें रामानुजन्‌को अपने सम्मुख आने देनेकी कृपा की। एक नाटा, भद्दी शकलका, मोटा, हजामत बढ़ाये, प्रायः गन्दा मनुष्य, केवल एक प्रभावशाली अंग–दीर्घमान नेत्र लिये–बगलमें एक फटी कापी दबाये अन्दर आया। वह अत्यंत दरिद्र था। वह कुम्बाकोनमसे मद्रास शांतिसे अपना अध्ययन जारी रहनेके लिये भाग आया था। उसे किसी सम्मानकी इच्छा न थी। वह अवसर चाहता था दूसरे शब्दोंमें वह यह चाहता था कि उसके लिये, बिना कुछ काम कराये, साधारण भोजनका प्रबंध कर दिया जाय और उसे स्वप्न देखनेकी छुट्टी दे दी जाय।

"उसने अपनी कापी खोली और अपने अनुसंधानमें से कुछ समझाने लगा। मैंने तत्काल देखा कि वह कुछ असाधारण है। परन्तु मेरा ज्ञान इतना न था कि मैं शुद्ध-

अशुद्धका निर्णय कर सकूँ। कुछ निश्चय न कर सकनेके कारण मैंने उसे फिर आनेको कहा। वह आया। उसने मेरे अज्ञानका अनुमान लगा लिया था। अब उसने पहिले मुझे कुछ अपने सरल परिणाम दिखाये। वे वर्त्तमान पुस्तकोंसे आगे बढ़े हुये थे। मुझे विश्वास हो गया कि वह महान् व्यक्ति है। तब एक एक सीढ़ी करके उसने मुझे 'elliptic integrals', और 'hyper geometric series' दिखाई और अंतमें उसकी divergent series के सिद्धान्त ने, जो अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ था, मुझे पूर्णतः जीत लिया। मैंने उससे पूछा कि वह क्या चाहता है। उसने कहा कि वह सहायता चाहता है जिसपर वह अपनी जीविकाके लिये निर्भर होकर वह अपने अन्वेषणमें लगा रह सके।"

रामचन्द्रराव ने उसे यह कह कर मद्रास भेज दिया कि यहाँ देहातमें उसकी प्रतिभाको उत्तेजना न मिलेगी। उन्होंने कुछ समय तक उसका व्यय अपने उपर लेना भी स्वीकार किया। कुछ समय पश्चात् जब उसके लिये छात्रवृत्ति प्राप्त करनेके सब प्रयत्न असफल हो गये और वह किसी एक व्यक्ति पर अधिक समय तक निर्भर रहनेके लिये तैयार न हुआ तो उसने ३०) मासिक पर मद्रास पोर्ट ट्रस्टके दफ़्तरमें ९ फरवरी सन् १९१२ में एक छोटी नौकरी कर ली।

एक गणितके विद्यार्थीके जीवनमें १८ से २५ वर्षकी अवस्था अत्यन्त महत्वपूर्ण समय है। रामानुजन्‌को इस अवस्थामें महान् हानि हो चुकी थी। रामानुजन्‌को प्रतिभा को फिर पूर्णतया विकसित होनेका अवसर नहीं मिला।

गणित पर सच्ची श्रद्धा और लगन

इन कठिनाइयोंके होते हुये भी इस बीचमें गणितपर उसने अपना कार्य ढीला नहीं किया। भारतीय गणित सोसायटीके पत्रमें उसका लेख सर्व प्रथम प्रश्नोंके रूपमें था। यह शेषु अय्यर द्वारा पत्रको भेजे गये थे और १९११ के फरवरी अंकमें प्रकाशित हुये। उसका प्रथम लम्बा पर्चा इसी वर्ष दिसम्बर अंकमें "Some Properties of Bernoulle's Number" प्रकाशित हुआ। सन् १९१८ में उसमें दो नोट और हल करनेके लिये बहुतसे प्रश्न छापे।

इन्हीं दिनों रामचन्द्ररावने मद्रास इंजीनियरिंग कालेजके मि० ग्रिफिथको रामानुजन्‌में रुचि दिलानेका सफल प्रयत्न किया। मि० ग्रिफिथ ने तब सर फ्रांसिस स्प्रिंगसे, जो मद्रास पोर्ट ट्रस्टके सभापति थे और जिसमें रामानुजन् तब काम करता था, इस विषयमें बातचीत की। इस समयके पश्चात् उसके कार्यका माना जाना सरल हो गया। भाग्यवश इन दिनों पोर्ट ट्रस्ट आफिसके मैनेजर एस० नरायन अय्यर एम० ए० थे। ये गणितके उत्साही विद्यार्थी थे। इन दिनों वे रामानुजन्‌के साथ कभी-कभी कार्य करते और उसे सदा उत्साहित करते रहते थे।

शेषुअय्यर तथा अन्य लोगोंके कहनेसे रामानुजन् ने तब ट्रिनिटी कालेज केम्ब्रिजके फेलो जी० एच० हार्डीसे चिट्ठी-पत्री प्रारम्भ की। १६ जनवरी सन् १९१३ को उसने लिखा।

'मुझे विश्वविद्यालयकी शिक्षा नहीं मिली है, परन्तु साधारण स्कूलका पाठ्य-क्रम समाप्त कर चुका हूँ। स्कूल छोड़नेके पश्चात् मैं अपना समय गणित पर लगाता रहा हूँ। मैंने 'Divergent Series' का विशेष अध्ययन किया है। अभी हालमें मुझे आपका 'Order of Infinity' शीर्षक प्रकाशन मिला। उसके ३६ वें पृष्ठ पर लिखा है कि अभी किसी दी हुई संख्यासे कम 'prime number' की संख्याके लिये कोई निश्चित राशिमाला (expression) नहीं मिल सकी है। मैंने एक ऐसी राशिमाला (expression) खोजी है जो वास्तविक परिणामके अत्यन्त निकट है। उसमें जो अशुद्धि आती है वह नाम मात्र और त्याज्य है। मैं आपसे साथ के कागज़ोंको पढ़नेको प्रार्थना करूँगा। मैं दरिद्र हूँ। यदि आपकी दृष्टिमें इनमें कुछ मूल्य है तो मैं चाहूँगा कि मेरी 'theorem' प्रकाशित कर दी जाय। मैंने वास्तविक अन्वेषण तथा प्राप्त expression नहीं दिये हैं। मैंने उस मार्गको ओर संकेत किया है जिस पर मैं जा रहा हूँ। अनुभव न होनेके कारण आपकी प्रत्येक सम्मति मेरे बड़े कामकी होगी।"

साथ भेजे कागज़ोंमें सौ या इससे अधिक गणितकी theorems का निर्वचन (enunciation) था।

२७ फरवरी १९१३ के अपने पत्रमें उसने लिखा :—

"आपमें मैंने एक ऐसा मित्र पा लिया है जो मेरे कार्य

को सहानुभूतिकी दृष्टिसे देखता है। यह मेरे लिये प्रोत्साहन है। अपना मस्तिष्क बनाये रखनेके लिये मुझे भोजनकी आवश्यकता है और मैं पहिले उसी विषयको सोचता हूँ। आपका एक सहानुभूतिमय पत्र यहाँ विश्वविद्यालय अथवा गवर्नमेंटसे छात्रवृति प्राप्त करनेमें सहायक हो सकेगा।"

एक दूसरे मार्गसे इन्हीं दिनों मद्रास विश्वविद्यालयके सम्मुख पुनः रामानुजन्का प्रश्न लाया गया। फरवरीके आरंभ में डाक्टर जी० डी० वाकर, एफ० आर० एस०, वेधशालाओंके डाइरेक्टर जनरल, शिमला, जो पहिले ट्रिनिटी कालेजके फेलो रह चुके थे, अपने सरकारी दौरे पर मद्रास आये। सर फ्रांसिस स्प्रिंगने इस अवसर पर रामानुजन्के कार्यकी ओर उनका ध्यान आकर्षित किया। इसके फलस्वरूप डा० वाकरने २६ फरवरी १९१३ को निम्नलिखित पत्र मद्रास विश्वविद्यालयके रजिस्ट्रारको लिखा —

"मैं आपका ध्यान एस० रामानुजन्, जो मद्रास पोर्ट ट्रस्टके अकाउण्ट विभागमें क्लर्क हैं, की ओर आकर्षित कराना चाहता हूँ। मैं उससे मिला नहीं हूँ। परन्तु कल मुझे उसका कुछ कार्य सर फ्रांसिस स्प्रिंगकी उपस्थिति में दिखाया गया। मुझे बताया गया कि उसकी अवस्था २२ वर्ष है। उसका जो कार्य मैंने देखा वह मुझे मौलिकता में केम्ब्रिज कालेजके एक गणित फेलोके मुकाबलेका जान पड़ा। मुझे यह एकदम स्पष्ट हो गया कि विश्वविद्यालयका यह कार्य पूर्णतया न्यायसंगत होगा कि वह कमसे कम कुछ वर्षोंके लिये एस० रामानुजन्के जीविकाकी चिंता किये बिना अपना पूर्ण समय गणितपर लगानेकी सुविधा देवे . . ."

विश्वविद्यालयका प्रोत्साहन

इस पत्र तथा गणित-परीक्षा बोर्डको सिफारिशपर विश्वविद्यालय ने गवर्नमेंटकी स्वीकृतिसे रामानुजन्को ४५) रु० मासिककी छात्रवृति दो वर्षके लिये प्रदान की।

इसके फलस्वरूप पहली मई सन् १९१३ से उसने मद्रास पोर्ट ट्रस्टके दफ्तरसे नौकरी छोड़ दी। तबसे जीवन भर गणित ही उसका व्यवसाय रहा।

छात्र-वृतिकी शर्तोंके अनुसार उसने गणित शिक्षा बोर्डको अपने अन्वेषण पर तीन रिपोर्टें ५ अगस्त १९१३, ७ नवम्बर १९१३ और ९ मार्च १९१४ को भेजी।

हार्डीकी इच्छा थी कि रामानुजन् केम्ब्रिजमें कुछ समय रहे जिससे उसके गणित-ज्ञानका परिष्कार हो सके और उसे अच्छे गणितज्ञोंकी संगति मिल सके। परन्तु रामानुजन् जाति-पाँतिकी कट्टरताके कारण इङ्गलैण्ड जानेको तैयार न हुआ।

इंगलैण्ड यात्राकी तैयारी

उसके इस निश्चयसे हार्डी बहुत निराश हुये। वे प्रायः उसे पत्रमें लिखा करते थे कि केम्ब्रिजमें कुछ दिन रहना भी उसके लिये कितना लाभदायक होगा, और उसे इंगलैंड आनेकी प्रेरणा करते थे। जब सन् १९१४ के प्रारम्भमें मैं ई० एच० नेवाइल, एम० ए०, केम्ब्रिज ट्रिनटी कालेजके फेलोको मद्रास विश्वविद्यालयमें एक व्याख्यानमाला देनेके लिये निमंत्रित किया गया तो हार्डी ने इस अवसरसे लाभ उठा कर नेवाइलको यह कार्य सौंपा कि वे रामानुजन्को केम्ब्रिज आनेके लिये प्रेरित करें। इसी बीचमें बहुतसे भारतीय मित्र इस विषयमें उसपर प्रभाव डालते रहे। जब मि० नेवाइल ने इस विषय पर वार्तालाप किया तब वह लगभग तैयार हो गया। परन्तु अब कठिन कार्य उसकी माताकी अनुमति लेना था। यह अनुमति एक विचित्र रीतिसे अत्यंत सरलतासे मिल गई। एक दिन प्रातःकाल उसकी माताने कहा कि उसने स्वप्नमें अपने पुत्रको बहुतसे अँगरेजोंके बीच एक बड़े हालमें बैठा देखा है और नामगिरि देवीने उसे आज्ञा दी है कि वह अपने पुत्रको जीवन-उद्देश्य पूर्ण करनेमें बाधा न बने। इससे सब सम्बंधित लोग प्रसन्न तथा चकित हो गये।

ज्योंही रामानुजन्की स्वीकृति मिल गई मि० नेवाइल ने १८ जनवरी सन् १९१४ को मद्रास विश्वविद्यालयके अधिकारियोंको लिखा -

"मद्रासके रामानुजन्की प्रतिभाकी खोज हमारे समयके गणित-संसारकी सबसे रोचक घटना जान पड़ती है। रामानुजन्को आधुनिक गणित रीतियोंकी सूक्ष्मताओंका ज्ञान प्राप्त कराने तथा ऐसे लोगोंके सम्पर्कमें लाने जिन्हें यह ज्ञात है कि विचारकी किन धाराओंका अन्वेषण हो चुका है और किनका नहीं—के महत्वको बढ़ाया नहीं जा सकता।

"मुझे सन्देहका कोई कारण नहीं जान पड़ता कि रामानुजन्‌में स्वयं सर्वोच्च परिश्रमी गणितज्ञोंके सम्पर्क से प्रायः उत्तेजनासे प्रतिक्रिया होगी। उस दशामें उसका नाम गणितके इतिहासमें महात्मोंमेंसे एक होगा और विश्वविद्यालय तथा मद्रास नगरको इस बातका गर्व होगा कि इन्होंने उसे अंधकारसे प्रसिद्धि तक पहुँचानेमें सहायता की है।"

दूसरे दिन आर० लिटिल हेल्स, एम० ए० जो कि उस समय प्रेसीडेन्सी कालेज, मद्रास, में गणितके प्रोफेसर थे, मद्रास विश्वविद्यालयके रजिस्ट्रारको एक लम्बा पत्र लिखा और उसमें छात्र-वृत्तिके लिये सुगठित प्रस्ताव किया।

इङ्गलैण्ड-यात्रा

इन पत्रोंके परिणामस्वरूप मद्रास गवर्नमेण्टकी स्वीकृतिसे, अगले सप्ताह विश्वविद्यालयके अधिकारियोंने रामानुजन् के लिये २५० पौंड वार्षिक छात्र-वृत्ति स्वीकृत की। इसके अतिरिक्त उसका मार्ग-व्यय तथा वहाँका प्रारम्भिक व्यय देना भी स्वीकृत किया गया। पीछे यह छात्र-वृत्ति १ अप्रैल सन् १९१९ तक के लिये बढ़ा दी गई। यह प्रबन्ध करके विश्वविद्यालय उसकी छात्र-वृत्तिमेंसे ६०) मासिक कुम्बाकोनममें उसकी माताके पास भेज दिया करेगा। रामानुजन्‌ने १७ मार्च सन् १९१४ को इंगलैण्ड-यात्रा की। वह अप्रैलमें केम्ब्रिज पहुँचा और ट्रिनिटी कालेज-में प्रविष्ट हुआ। ट्रिनिटी कालेजने उसे ६० पौंडकी छात्र-वृत्ति प्रदान की।

अब वह अपने जीवनमें प्रथम बार आरामसे था। वह अपना समय निश्चिंततासे अन्वेषणमें लगा सकता था। हार्डी तथा लिटिलवुडने अंग्रेजी पत्रोंमें उसे अपना कार्य प्रकाशित करानेमें सहायता दी। उनके मार्ग-प्रदर्शनमें शीघ्रतासे उसका विकास हो चला।

११ नवम्बर १९१५ को हार्डीने मद्रास विश्व-विद्यालय के रजिस्ट्रारको लिखा—

"युद्धके कारण रामानुजन्‌को बड़ी अड़चनें हुई। मि० लिटिलवुड जो स्वभावतः ही मेरे साथ उसकी शिक्षाका भार लेते रहे हैं और ऐसे प्रतिभाशाली विद्यार्थीके लिये एक शिक्षक पर्याप्त नहीं है। वह निस्सन्देह ही आधुनिक-कालका सर्वश्रेष्ठ भारतीय गणितज्ञ है। वह प्रायः अपने विषय-निर्वाचन तथा उनका कार्य करनेमें कुछ विचित्र रहेगा। परन्तु उसकी असाधारण प्रतिभामें कोई सन्देह नहीं। कुछ विषयोंमें तो उसके समान किसी भी गणितज्ञका मुझे ज्ञान नहीं।"

१६ जून सन् १९१६ को हार्डीने मद्रास विश्वविद्यालय को जो सरकारी रिपोर्ट भेजी है, उसमें उन्होंने रामानुजन् की अत्यन्त प्रशंसा की है। रामानुजन् तब तक एक दर्जनके लगभग पर्चे इंगलैण्ड की गणित-पत्रिकाओंमें प्रकाशित कर चुका था। सन् १९१७ तक सब कुछ ठीक रहा।

सन् १९१७ की मईके आस-पास हार्डीने लिखा "ऐसा सन्देह किया जाता है कि रामानुजन्‌को एक असाध्य रोग हो गया है।"

उन दिनों समुद्री यात्रा पनडुब्बियोंके कारण निरापद न था और युद्धके कारण भारतमें भी अच्छे डाक्टरोंका अभाव था इसलिये उसे कुछ समय और वहीं रोक लेना उचित समझा गया। वह गर्मियोंके प्रारम्भमें केम्ब्रिज के एक रोगी-गृहमें गया और उसके पश्चात् फिर वह कभी पर्याप्त दिनोंके लिये बिस्तरेसे नहीं उठा। सन् १९१८ के पतझड़के आस-पास उसे कुछ सुधारके चिन्ह दिखाई पड़े।

ख्याति और रायल सोसायटीका फेलो चुना जाना

२८ फरवरी १९१८ को वह रायल सोसायटीका फेलो चुना गया। वह पहिला भारतीय था जिसे यह सम्मान दिया गया। ३० वर्ष की अवस्थामें उसका निर्वाचन और जैसी अवस्थामें उसका नाम प्रस्तावित न किया गया यह सब उसकी प्रतिभाके प्रति महत्वपूर्ण श्रद्धांजलि थी। इसी चुनावसे कदाचित् उत्साहित होकर बीमार रहते हुये भी उसने कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। उसकी सुन्दरतम साध्य (theorems) इसी समयकी खोजी हुई हैं। इसी वर्ष १३ अक्टूबरको वह ट्रिनिटी कालेजका फेलो चुना गया और २५० पौंड प्रति वर्षका एक फेलोशिप पुरस्कार ४ वर्षके लिये उसे मिला। इसके साथ न कोई शर्त थी और न कोई निश्चित कार्य था।

उसके निर्वाचन की सूचना देते हुये हार्डीने मद्रास विश्वविद्यालयके रजिस्ट्रारको लिखा।

"वह भारत इतनी बड़ी वैज्ञानिक ख्याति और मान लेकर लौटेगा जितना पहिले किसी भारतीयको प्राप्त

नहीं हुआ है। मुझे विश्वास है कि भारतवर्ष इस निधिका उचित सत्कार करेगा।" इसके साथ इस बातकी प्रेरणा की कि वे ऐसा प्रबन्ध कर दें जिससे रामानुजन् निश्चिंतता के साथ अपना जीवन अन्वेषणमें लगा सके।

रामानुजन् की सफलतासे विश्वविद्यालय प्रभावित हुआ और उसकी गणित-सेवाओंके उपलक्षमें उसे २५० पौंड वार्षिक १ अप्रैल सन्१९१९ से पाँच वर्षके लिये प्रदान किया। इसी तारीखको उसकी पहिली छात्र-वृत्ति समाप्त होती थी। इसके साथ ही इन पाँच वर्षों में उसका इंगलैण्डसे भारत और भारतसे पुनः यूरोपका मार्ग-व्यय भी सिंडीकेटने स्वीकार किया। मि० लिटिल हेल्सके सुझाने पर मद्रास-विश्वविद्यालय एक प्रोफेसरका स्थान बनाने और उसे रामानुजन्को प्रदान करने की बात सोच रहा था।

स्वास्थ्य-हानि और भारत वापस आना

अब उसके स्वास्थ्यने कुछ सुधार दिखाया यद्यपि तपेदिककी ओर उसकी प्रवृत्ति थी तथापि डाक्टरोंकी सम्मतिमें उसपर कभी इस रोगका गहरा प्रभाव नहीं हुआ था। इंगलैंडकी जलवायुको क्योंकि उसके स्वस्थ होनेमें बाधक समझा गया इसलिये उसने भारत लौटनेका निश्चय किया। तदनुसार २७ फरवरी सन् १९१९ को उसने इंगलैण्ड छोड़ा २७ मार्चको बम्बई पहुँचा और २ अप्रैलको मद्रास।

स्वर्गारोहण

जब वह भारत लौटा तो उसका स्वास्थ्य अत्यन्त दुर्बल था। उसके मित्रोंको चिंता हुई। सर्वोत्तम चिकित्साका प्रबन्ध किया गया। तीन मास वह मद्रासमें रहा और इसके पश्चात् दो महीने कोडुमंडी, कावेरीके तट पर एक गाँवमें। यह उसके जन्म-स्थानसे अधिक दूर न था। वह कठिन रोगी था, औषधि-उपचारका प्रायः विरोध करता था। कुछ समयके पश्चात् उसने आगे इलाज करानेसे इन्कार कर दिया। ३ सितम्बरको वह कुम्बाकोनम गया। चिकित्सकोंका विचार था कि उसकी अवस्था बिगड़ती जा रही है इसलिये जनवरी १९२० में बड़ी कठिनतासे उसे इलाजके लिये मद्रास आनेको प्रेरित किया गया। वहाँ वह सर्वोत्तम चिकित्सकोंके निरीक्षणमें रख दिया गया। इस समय कितने ही उदार सज्जनोंने उसकी सहायता की। विशेषतः एस० श्री निवास आयंगर जिन्होंने उसका प्रायः सब व्यय उठाया और राय बहादुर टी० नुम्बरुल चेट्टी, जिन्होंने अपना मकान इस कार्यके लिये दिया—के नाम उल्लेखनीय हैं। मद्रास विश्वविद्यालयके सिंडीकेटके सदस्योंने भी

श्री रामानुजन् आयंगर

व्यक्तिगत रूपसे उसके व्यय की ओर धन दिया। इस सबका परिणाम कुछ न निकला। २६ अप्रैल १९२० को मद्रासके बाहरी भाग चेटपुटमें उसका स्वर्गवास हो गया। उसके कोई सन्तान न थी। माता-पिता तथा पत्नी यही उसके परिवारमें थे।

आकृति और चरित्र

बीमारीसे पहिले उसका रुझान मुटापेकी ओर था। उसका कद मझोला ५ फोट ५ इञ्च था। उसका शिर बड़ा था और मस्तक विशाल। उसकी केश-राशि लम्बी लहरोंदार और काली थी, उसका प्रमुख अंग उसके तेज़ चमकते

काले नेत्र थे। उसका एक चित्र मद्रास विश्वविद्यालयके पुस्तकालयमें लगा है। इंगलैण्डसे जब वह लौटा तो अत्यन्त दुर्बल था और बहुत पीला पड़ गया था। ऐसा जान पड़ता था कि वेदनाने उसे झँझोड़ डाला है। परन्तु उसके मस्तिष्कका प्रकाश मन्द नहीं हुआ था। मृत्युसे चार दिन पहिले तक यह कार्यमें लगा रहा। 'Mock theta functions' पर उसका सब कार्य मृत्यु-शय्या पर ही हुआ है। वेशभूषा और चाल-ढालमें वह अत्यन्त सरल था। उसमें तनिक भी गर्व न था। २६ नवम्बर १९१८ के पत्रमें, जब रामानुजन् रायल सोसायटी तथा ट्रिनिटीका फैलो चुना जा चुका था, हार्डीने लिखा है "सफलतासे उसकी सहज सरलतामें कोई अन्तर नहीं आया है। वास्तवमें आवश्यकता इस बातकी है कि उसे अनुभव कराया जाय कि वह सफल हुआ है।" जब उसके पास थोड़ा रुपया था तो वह अपने दरिद्र माता-पिताकी सहायता न कर सकनेके कारण बड़ा दुःखी रहता था। जब उसे छात्रवृत्ति मिली तो उसने पहिला काम यही किया कि उसका एक भाग अलग उनके लिये सुरक्षित कर दिया। रामानुजन्की सरलता और उसके हृदयकी विशालता मद्रास विश्व-विद्यालयके रजिस्ट्रारको लिखे निम्नलिखित पत्रसे प्रकट होती है।

२ कोलोनेट रोड, पटनी
S.W 15
११ जनवरी १९१९

सेवामें,

रजिस्ट्रार,

मद्रास, विश्वविद्यालय,

श्रीमान्

मुझे आपका ९ दिसम्बर १९१८ का पत्र मिला। मैं विश्वविद्यालय द्वारा दी गई उदार सहायताको कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार करता हूँ।

मुझे ऐसा अनुभव होता है कि भारत लौटनेके पश्चात् जो कि प्रबंध हो जाने पर शीघ्र ही होने वाला है, सब धन जो मुझे मिलना चाहिये मेरी आवश्यकताओंसे कहीं अधिक होगा। मैं आशा करता हूँ कि इङ्गलैंडमें मेरा व्यय तथा ५० पौंड वार्षिक मेरे माता-पिताको देनेके पश्चात्, मेरे आवश्यक खर्चसे जो शेष बचे, वह किसी शिक्षा-कार्यमें, विशेषतः स्कूलमें दरिद्र बालकोंकी फीस घटाने और पुस्तकों का प्रबंध करनेमें व्यय किया जाय। निस्सन्देह मेरे लौटने पर यह सब प्रबंध सम्भव हो सकेगा।

मुझे अत्यंत खेद है कि मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं रहा है। मैं इन दो वर्षोंमें इतना गणित नहीं कर सका हूँ जितना कि पहिले। मुझे विश्वास है कि मैं शीघ्र अधिक कार्य करनेके योग्य हो जाऊँगा और पूर्ण प्रयत्न करूँगा कि आपने जो सहायता मुझे दी है उसके योग्य बनूँ।

मैं हूँ श्रीमान्
आपका अत्यंत आज्ञाकारी
एस० रामानुजन्

"रामानुजनके जीवनमें दुःखकी बात उसकी जल्दी मृत्यु नहीं है। इसमें सन्देह नहीं कि किसी भी महा पुरुष की छोटी अवस्थामें मृत्यु महान् हानि है। परन्तु एक गणितज्ञ ३० वर्षकी अवस्थामें अपेक्षतया अधिक वृद्ध हो जाता है। उसकी मृत्यु इतनी बड़ी हानि नहीं है जितनी कि समझी जाती है। अबेल (Abel) २६ वर्षकी अवस्था में मरा। इसमें सन्देह नहीं कि जीवित रहने पर वह गणित को बहुत कुछ दे जाता परन्तु स्वयं और महान् नहीं हो सकता था। रामानुजन्की अल्पावस्थाकी मृत्यु दुःखप्रद नहीं है। दुःखप्रद यह है कि उसके दुर्भाग्य पूर्ण पाँच वर्षोंमें उसकी प्रतिभाको गलत मार्ग दिखाया गया। वह भटक गई कुछ सीमातक कुरूप हो गई।

हार्डी और रामानुजन्का संपर्क

इङ्गलैंडमें हार्डीके लिये वह एक समस्या बन गया था। उसे आधुनिक गणित सिखानेके लिये क्या किया जा सकता था। उसके ज्ञानकी सीमायें भी उतनी ही आश्चर्यजनक थीं जैसी कि उसकी गम्भीरता। वह एक मनुष्य था जो कि 'modular equations' और अनसुने 'order' तक 'complex' गुणनको 'theorems' निकाल सकता था और 'continued fraction' पर जिसका स्वामित्व कमसे कम 'formal' विभाग पर, संसारके किसी भी गणितज्ञसे अधिक था, जिसने अपने लिये 'zeta function' की 'functional equations' और संख्या

ओंके विश्लेषणात्मक सिद्धांतकी बहुत अत्यंत प्रसिद्ध समस्याओंके 'dominant terms' ढूँढ निकाले थे और जिसने कभी 'doubly periodic function' या 'Cauchy' की 'theorem' का नाम भी नहीं सुना था, complex variable के function के बारे में जिसे अत्यंत अस्पष्ट ज्ञान था, गणितमें प्रमाणका क्या अर्थ है इस विषय पर जिसके विचार एक दम छाया मात्र थे, जिसके नये, पुराने, शुद्ध अशुद्ध सब परिणाम मिश्रित तर्क, सूझ और समानता के प्रयोगसे निकाले गये थे और इस क्रियाका जो कोई सुगठित वर्णन नहीं दे सकता था।

ऐसे मनुष्यको सुयोजित रीतिसे शिक्षा देना असम्भव था। उससे यह नहीं कहा जा सकता था कि फिर सब गणित दुबारा सीखे। हार्डीको इस बातका भी भय था कि यदि मैं इस विषयमें अधिक हठ करूँगा तो कहीं रामानुजन्को कठिनाई न अनुभव हो और उसका आत्मविश्वास तथा सूझका दौरा न टूट जाय और दूसरी ओर ऐसे विषय थे जिनका उसे ज्ञान होना आवश्यक था। उसके कुछ परिणाम अशुद्ध थे विशेषतया वे जिनका सम्बन्ध 'primes' के विभाजनसे था और जिन्हें रामानुजन् अत्यंत महत्वपूर्ण समझता था। हार्डी लिखते हैं कि यह असम्भव था कि मैं उसे जीवन भर यह कल्पना करने देता कि 'zeta function' के सब शून्य वास्तविक हैं। इसलिये मुझे उसे सिखाना अवश्य था और इस कार्यमें कुछ सीमा तक मुझे सफलता भी प्राप्त हुई। यद्यपि यह प्रत्यक्ष था कि उसकी अपेक्षा मैंने उससे अधिक सीखा। कुछ वर्षों में उसे 'functions' के सिद्धांतका पर्याप्त ज्ञान हो गया। वह आधुनिक रीतिका गणितज्ञ न था और ऐसा होना कुछ विशेष अच्छा भी न था। परन्तु उसे यह ज्ञान था कि कब एक 'theorem' सिद्ध हो चुकी है और कब नहीं। उस की मौलिक विचार-धारा में कभी कमी आती दिखाई नहीं दी।

गणितके बाहर भी रामानुजन्की रुचि विचित्र थी। उसे साहित्य और कलामें कोई विशेष रुचि नहीं थी। हाँ वह अच्छे और बुरे साहित्यका पहिचान सकता था। वह दार्शनिक अधिक था कुछ अस्पष्ट ढंगका। वह उत्साही राजनीतिज्ञ, शांति-प्रेमी और कट्टर राष्ट्रवादी था। साहित्य, दर्शन और गणित सबमें उसकी रुचि, अजनबी, विचित्र और कुछ बेढंगी थी और इस प्रकारकी पुस्तकोंका उसने एक छोटा सा पुस्तकालय एकत्रित कर लिया था।

रामानुजन्के प्रकाशित पर्चे और नोट

रामानुजन् ने यूरोप और भारतमें ३८ पर्चे और नोट प्रकाशित किये। इनमेंसे निम्नलिखित पर्चे सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं।

1—'Modular Equations & Approximations to π; Quarterly Jour. Math; vol 45 (1914) pp. 350-72

2—'Highly Composite Numbers' Proc. London. Math Soc. Ser. 2, vol 14 (1915), pp 347-409

3—'On Certain Arithmetical functions'; Trans. Cambridge Phil. Soc; vol. 22 (1916). No 9. pp. 159-184.

4—On Certain Trignometrical sums and their applications in the Theory of Numbers'' Trans. Cambridge Phil. Soc; vol. 22; No 13; (1910). pp. 259-276

5—'Some Properties of p (n), the Number of Partitions of n; Proc. Cambridge. Phil. Soc; vol 19 (1919); pp 207-210.

6—''Proof of certain identities in Combinatory Analysis''; ibid; pp 214-16

7—''Congruence Properties of Partitions.'' Math. Zeitschrift, vol. 9 (1921) pp. 147-153

पर्चोंका सारांश

इनमेंसे पहिलेमें मुख्यतः इङ्गलैण्ड जानेसे पहिले भारतमें किया हुआ कार्य है। इसमेंसे बहुतसा पहिले किया जा चुका है। परन्तु बहुतसा नया है और विशेषतः π

algebraic approximations की एक अत्यंत महत्वपूर्ण तालिका है, इसमेंसे यहाँ दो गुर दिये जाते हैं

$$\pi = \frac{6317+15\sqrt{5}}{257+15\sqrt{5}} ; \frac{1}{2\pi\sqrt{2}} = \frac{1103}{99^2}$$

यह दोनों क्रमशः ९ और ८ दशमलव स्थानों तक सही हैं।

दूसरा लम्बा पर्चा कदाचित् गणितके पिछले भागका कार्य है और सूक्ष्मताओंसे लदा है। परन्तु 'Highly Composite Numbers'— वे संख्यायें जिनके विभाजक किसी भी पहली संख्यासे अधिक हों—अत्यन्त सुन्दर हैं और असमानताके बीजगणित पर (algebra of inequalties) रामानुजन्की असाधारण प्रभुता प्रकट करता है।

तीसरे और चौथे पर्चे एक साथ पढ़े जाने चाहिये और उनके साथ ही L. J. Mordell का "On Mr. Ramanujan's empirical expansions of modular functions (Proc, Cambridge Phil. Soc. vol 19 (1917): pp 117-124' पढ़ा जाना चाहिये क्योंकि रामानुजनूने जो विचारा था पीछे मार्डिल ने उसमेंसे बहुत कुछ प्रमाणित किया है। इनमेंसे विशेषतया संख्याओंको वर्गके जोड़ोंके रूपमें लिखनेके सिद्धांतके विषय अत्यन्त मौलिक और महत्वपूर्ण बातें हैं।

हार्डीका विचार है कि रामानुजनको प्रतिभा पूर्णरूप हमें Partitions के सिद्धान्त और Elliptic functions तथा continued fractions के सिद्धान्तोंसे सम्बन्धित विभागोंमें दृष्टि-गोचर होता है। यह ५ वें, छठे और ७ वें पर्चेमें दिये गये हैं। 'Roger Ramanujan identities' से सुन्दर गुर पाना कठिन है। ये छठे में सिद्ध किये गये हैं। पर इस विषयमें रामानुजन्का स्थान प्रो० रोजरके पीछे होगा। यदि रामानुजनके समस्त कार्यमेंसे एक गुर टूट जाय तो हार्डी Major MacMahon से सहमत होकर छठेमेंसे निम्नलिखिन गुर देंगे।

$$p(4) + p(9)x + p(14)x^2 \ldots\ldots = 5\frac{\{(1-x^5)(1-x^{10})(1-x^{15})\ldots\}^5}{\{(1-x)(1-x^2)(1-x^3)\ldots\}^6}$$

जहाँ p (n) के n partitions की संख्या है।

रामानुजन्के कार्य करनेको कोई गुप्त रीति न थी। हाँ, उसकी स्मरण शक्ति अत्यन्त तीव्र थी। लम्बे गुणा और भागोंको वह अन्य गणितज्ञोंकी भाँति कागज़पर लिख कर ही करता था और उतनी ही तेज़ी तथा शुद्धतासे जितना कि कोई अभ्यासी, तेज़ गणितज्ञ कर सकता है।

हार्डीका मत

हार्डीने अपने भाषणमें कहा कि १६ वर्ष पहिले रामानुजन्के विषयमें मैंने जो कुछ लिखा था इसे मैंने फिर-से देखा है। मैं उसके कार्यको अब पहिलेसे अधिक अच्छी तरह जानता हूँ और उसके विषयमें अधिक निष्पक्षतासे सोच सकता हूँ। मैं अपने लिखेमें विशेष परिवर्तन नहीं करना चाहता। परन्तु एक वाक्य जो मैंने उस समय लिखा था वह अकाट्य नहीं जान पड़ता।

मैंने लिखा था—

"रामानुजन्के कार्यके महत्वके विषयमें उसे किस आदर्शसे जाँचा जाय और उसका गणितके भविष्य पर क्या प्रभाव पड़ेगा—मत-भेद हो सकता है। इसमें अत्यन्त महान् कार्यकी सरलता और प्रत्यक्षता नहीं है। यदि यह इतना विचित्र न होता तो और भी महान् होता। परन्तु इससे एक बात प्रत्यक्ष हो जाती है और उससे कोई मुकर नहीं सकता। वह है रामानुजन्की गम्भीर अजेय मौलिकता यदि उसकी शिक्षा प्रारम्भसे ठीक प्रकारको होती तो वह कदाचित् अधिक बड़ा गणितज्ञ होता। उसने जो नवीन है अधिक उसको खोज की होती और कहनेकी आवश्यकता नहीं कि यह बहुत महत्वपूर्ण होता। परन्तु तब वह रामानुजन् कम होता और यूरोपियन प्रोफेसर अधिक और हानि शायद लाभसे बढ़ जाती।"

अन्तिम वाक्यके अतिरिक्त मेरे विचार अब भी वही हैं। यह वाक्य हास्यास्पद भावुकता है। जिस समय कुम्ब कोनमके कालेजने अपने अकेले महापुरुषको निकाल दिया तो कोई लाभ नहीं हुआ। हानि जो हुई वह पूरी नहीं की जा सकती अयोग्य और जड़ शिक्षा पद्धतिसे कितनी हानि पहुँचाई जा सकती है उसका सबसे बड़ा उदाहरण मेरे जान में यही है।

संसारको अपना एक और सर्वश्रेष्ठ गणितज्ञ प्राप्त करनेके लिये आवश्यकता थी केवल पाँच वर्ष तक ६० पाउण्ड प्रतिवर्षकी और ऐसे लोगोंसे कभी-कभी सम्पर्ककी जिन्हें गणितका वास्तविक ज्ञान होता और जो कुछ कल्पनाशील होते।

रामानुजन् ने जो पत्र हार्डीको लिखा था उसमें कुछ गुर थे। इनमेंसे कुछ ज्ञात थे, कुछका प्रमाण पीछे ज्ञात हुआ। इन्हीं गुरोंमें एक गुर अधूरा था और एक अशुद्ध। यह अशुद्ध ही अत्यंत फलदायक सिद्ध हुआ। इसने रामानुजन् तथा हार्डीके 'Partitions' के कार्यकी नींव डाली।

हार्डी कहते हैं कि परीक्षापर रामानुजन्के कार्यके बहुत बड़े भागका नया न होना आवश्यक था। वह बड़ी कठिनाइयोंके विरुद्ध लड़ रहा था। वह दरिद्र अकेला हिन्दू यूरोपके एकत्रित ज्ञानसे लड़ता प्रतीत होता है। उसे वास्तवमें कोई शिक्षा नहीं मिली थी। भारतमें ऐसा कोई न था जिससे वह कुछ सीख पाता। उसने तीन चार ही अच्छी पुस्तकें देखी थी और वह अँग्रेजीकी थी। अपने जीवनके कुछ समयमें उसकी पहुँच मद्रास पुस्तकालयमें हो गई थी परन्तु यह बहुत अच्छा पुस्तकालय न था। इसमें फ्रेंच तथा जर्मन भाषाओंकी थोड़ी पुस्तकें थीं और रामानुजन् इन भाषाओंका एक अक्षर भी न जानता था। मेरा अनुमान है कि भारतमें किये गये सर्वोत्तम काममेंसे दो तिहाई पुनर्खोज है। उसके जीवनमें इसमेंसे लगभग नहींके बराबर प्रकाशित हुआ। वाटसन, जिन्होंने उसकी नोटबुकोंका नियमानुसार अध्ययन किया है, ने और अधिक कार्य पर प्रकाश डाला है।

रामानुजन्की पुनर्खोजोंका दिग्दर्शन

रामानुजन्के प्रकाशित कार्यका अधिकतर भाग इङ्गलैंड में किया गया। यद्यपि उसके मस्तिष्कमें कुछ कठोरता आ गई थी तथापि वह कभी एक दम कट्टर गणितज्ञ नहीं बना। वह नवीन विषय पर कार्य करना सीख सकता था और उस कार्यको अत्यंत कुशलतासे करता था। उसे नियमानुसार पढ़ाना अत्यंत कठिन था, वह नवीन दृष्टिकोण धीरे-धीरे ग्रहण करता था। अन्तमें उसने प्रमाणका अर्थ समझ लिया था, उसके पिछले पर्चे, यद्यपि वे सदा की भाँति व्यक्ति गत और बेढंगे रहते थे, एक विद्वान गणितज्ञको कृति जान पड़ते हैं। उसकी रीति और शस्त्र अपने ही रहे। यह सोचा जासकता है कि रामानुजन जैसा फारमूलों वाला व्यक्ति 'Cauchy' की theorem में आनन्द लेता रहा होगा। परन्तु सच यह है कि उसने कभी इसका प्रयोग नहीं किया। 'the theory of Residues' में उसका हवाला पेश किया हुआ है। उसकी नियमित आशुयोग्यताका सर्वाधिक आश्चर्यमय प्रमाण यह है कि उसे कभी इसको तनिक भी आवश्यकता नहीं अनुभव हुई।

रामानुजन्की पुनर्खोजोंकी एक प्रभावशाली तालिका प्रस्तुत की जा सकती है। परन्तु स्वाभावतः ही ऐसी तालिका एकदम शुद्ध न होगी, क्योंकि कभी उसे 'theorem' का एक भाग मिला और कभी यद्यपि उसे पूर्ण 'theorem' ज्ञात हो गई तथापि उसका प्रमाण जिससे वह ठीक-ठीक समझी जा सके, ज्ञात न हुआ।

'वाटसन और मार्डिलके अनुसन्धानके पश्चात् भी यह कहना कठिन है कि इसमेंसे क्या कुछ स्वयं उसकी खोज है और क्या उसे इधर-उधरसे मिल गया है।

'मुझे स्वीकार करना होगा कि इस विषयमें मैं अपराधी हूँ। क्योंकि अब हम उसके विषयमें जो कुछ जानना चाहते हैं वह मैं उस समय अत्यंत सरलतासे मालूम कर सकता था। मैं रामानुजन्से प्रतिदिन मिलता था और साधारण पूछ-ताछसे उसके विषयमे बहुत सी बातोंका निश्चय किया जासकता था। रामानुजन् सब प्रश्नोंका सीधा उत्तर देनेको सदा प्रस्तुत रहता था और कभी अपनी सफलताओंको रहस्यमें नहीं छिपाना चाहता था। मैंने कदाचित् ही इस विषयमें उससे कोई प्रश्न किया हो। मैंने उससे यह कभी नहीं पूछा कि उसने Cayley या Greenhill का 'Elliptic functions' देखा है या नहीं। यद्यपि मेरा विचार है, कि मुझे यह पूछना चाहिये था।

मुझे अब इसके लिये शोक है परन्तु इससे कोई विशेष हानि नहीं। ओर वह एकदम स्वाभाविक ही था।

प्रथम तो मुझे यह भय नहीं था कि रामानुजनकी मृत्यु हो जायगी और फिर उसे स्वयं अपने इतिहास और मानसिक अवस्थामें अधिक रुचि न थी। वह अपने कार्यमें संलग्न गणितज्ञ था। रामानुजन्से मिलने पर एक गणितज्ञको ऐतिहासिक खोजके अतिरिक्त और अधिक रोचक विषय विचारणीय होने थे। उसने कहा था वह ज्ञात सिद्धांत कैसे पाया इस विषय पर उसे तंग करना मुझे ठीक न जँचता था और विशेषतया उस अवस्थामें जब कि वह प्रायः नित्य मुझे आधी दर्जन नवीन 'theorems' दिखाया करता था।

मेरा विचार है कि इंगलैंड आनेसे पहिले रामानुजन्ने क्लासीकल थ्योरी आफ़ नम्बर्स (Classical Theory of Numbers) के विषयमें कोई विशेष खोज नहीं की। वास्तवमें उसे इस विषयमें बहुत अधिक ज्ञात न था। इंगलैंड आनेके पश्चात् ही इस विषयमें उसके बड़े अनुसन्धान हैं। बात तो यह है कि जो मनुष्य स्वयं संख्याओंसे उसका प्रेम नहीं समझ पाता, वह उसे नहीं समझ पाता। वह सख्याओंकी स्वाभाविक विचित्रताको दैविक रीतिसे समझता जान पड़ता है। लिटिलवुडने कहा है "प्रत्येक धन संख्या रामानुजन्की व्यक्तिगत मित्र थो। मुझे याद है कि जब पटनीमें बीमार पड़ा था तो मैं उसे एक बार देखने गया। मैं १७२९ नं० की मोटरमें बैठा था।"

मैंने उससे कहा 'यह संख्या कुछ विशेष रोचक नहीं है और पता नहीं कि अशुभ हो।'

"नहीं" उसने उत्तर दिया "यह अत्यन्त रोचक संख्या है। यह वह सबसे छोटी संख्या है जो दो प्रकार दो धनोंके जोड़के रूपमें लिखो जा सकती है।

$$(१७२९ = १२^3 + १^3 - १०^3 + ९^3)"$$

मैंने सहज ही उससे पूछा कि क्या वह इस प्रकार की चौथी शक्ति की समस्याका हल बता सकेगा।

उसने कुछ देर सोचनेके पश्चात् उत्तर दिया कि मुझे कोई प्रत्यक्ष उदाहरण ज्ञात नहीं परन्तु मेरा विचार है कि इस प्रकार की पहली संख्या बहुत बड़ी होगी।

Euler का उदाहरण निम्नलिखित है।

$६३५३१८६५७ = १५८^४ + ५९^४ = १३४^४ + १३३^४$। बीज गणितमें रामानुजन्का मुख्य कार्य 'Hyper Geometric series' और 'continued fractions' के बारेमें है। यह विषय एक दम उसके योग्य था और इसमें वह निस्सन्देह महान् आचार्योंमेंसे था। बीजगणितके फारमूलोंमें इनफ़िनिट सीरीज़ अपरिवर्त्तन तथा अन्य ऐसी बातोंमें उसकी सूझ अत्यन्त आश्चर्य-प्रद थी। इस विषयमें मुझे वास्तवमें उसकी समानताका कोई नहीं मिला। मैं उसकी तुलना ऑयलर और जैकोबीसे कर सकता हूँ। अधिकांश वर्त्तमान गणितज्ञोंसे वह कहीं अधिक संख्याके उदाहरणोंकी तुलनासे काम करता था। उदाहरणतया उसकी सब 'congruence properties of partitions इस प्रकार खोजी हुई थीं। उसकी स्मरण शक्ति, उसका धैर्य तथा उसकी गणित करनेकी योग्यताके साथ उसमें सामान्यीकरण की विचित्र शक्ति थी, उसमें रूपके लिये अनुभव था और अपनी कल्पित योजनाओंको शीघ्र परिवर्तित तथा परिवर्द्धित करनेकी क्षमता थी। उसके यह गुण कभी-कभी गहरे अचम्भेमें डाल देते थे और इन्होंने उसे अपने कार्यक्षेत्रमें अपने समयमें अद्वितीय रक्खा।

मेरे विचारमें ये शब्द अतिशयोक्ति नहीं हैं। यह सम्भव है कि फारमूलोंका महान् समय बीत चुका है और रामानुजन्को अबसे सौ वर्ष पहिले उत्पन्न होना चाहिये था। परन्तु वह अपने समयमें सबसे कहीं अधिक महान् फारमूले वाला था। पिछले पचास वर्षोंमें उससे भी अधिक पूर्ण, मुझे महान् कहना चाहिये, बहुतसे गणितज्ञ हुये हैं, परन्तु उनमेंसे ऐसा कोई भी न था जो उसकी बराबरी करता। ऐसे खेलमें, जिसके नियम वह जानता हो, वह किसी भी गणितज्ञको हरा सकता था।

'Functions' का सिद्धान्त न जाननेके कारण 'Analysis Proper' पर रामानुजन्का कार्य कम प्रभावशाली हुआ है, तो भी रामानुजन्ने अत्यन्त सुन्दर 'Analytical identities' इतनी संख्या में ढूँढ निकाली है कि उन्हें देखकर आश्चर्य होता है। 'Analytical functions' पर रामानुजन्का कार्य इतना विशेषतामय और जटिल है कि उसे केवल विद्वान ही समझ सकते हैं।

संख्याओंकी विश्लेषणात्मक सिद्धान्त (Analyti-

cal theory) विषय और भी कठिन है। रामानुजन् इस विषयमें असफल रहा। उसने आश्चर्य-जनक कल्पना-शक्तिका प्रदर्शन किया परन्तु कुछ प्रमाणित न कर पाया और उसकी कल्पनाका कुछ भाग भी अशुद्ध था। एक गणितज्ञ साधारणतया सूझ की शक्तिसे सिद्धान्त (theorem) निकालता है परिणाम विशेष उसे सत्य-सा दीखता है। इसके पश्चात् वह प्रमाण बनाने बैठता है। कभी-कभी यह अभ्यासकी बात होती है और कोई भी अनुभवी विद्वान् इस आवश्यकता की पूर्ति कर सकता है। परन्तु प्रायः कल्पना ऐसी पथ-प्रदर्शिका है कि उस पर निर्भर नहीं रहा जा सकता। संख्याओंके विश्लेषणात्मक सिद्धान्तके विषयमें रामानुजन्‌को कल्पनाने उसे बुरा भटका दिया। यह विषय गणित की उन शाखाओंमेंसे है जहाँ प्रमाण ही सब कुछ हैं। यहाँ बिना प्रमाण कोई खोज नहीं की जा सकती। हम कदाचित् यह कह सकते हैं कि उसकी असफलता ऐसी है जो तोलने पर उसकी योग्यताओंके लिये हमारी प्रशंसा घटानेके स्थान पर बढ़ा देती है, क्योंकि इससे हमें उसकी कल्पना-शक्ति तथा विस्तीर्ण योग्यताका आश्चर्य-जनक परिचय मिलता है।

रामानुजन् वैज्ञानिक विकासके युगमें भारतका प्रथम प्रतिनिधि है। उसने अपनी प्रतिभा की ओर ही संसारको आकर्षित नहीं किया। उसने भारतका नाम मानसिक क्रियाके क्षेत्रमें अन्य उन्नत देशोंकी पंक्तिमें ला रक्खा। वह अकेला दरिद्र भारतीय पश्चिमके एकत्रित ज्ञानसे मानो भिड़ गया। उसने पूर्वमें सामान्यतः विज्ञानका तथा विशेषतः गणितके पुनर्जीवनका सूत्रपात किया। भारतमें विज्ञान युगका यह पताका-वाहक है, उसके शङ्खनादने पूर्वको सचेत कर दिया। उसको आत्माको हिला दिया, उसके आत्म सम्मानको जगा दिया, वैज्ञानिक प्रतिभा पर पश्चिमके आधुनिक एकाधिकारको नष्ट कर दिया।

उपसंहार

हमारे शिला-लेखोंको यूरोपियन विद्वानोंने जीवित किया। हमारे धर्म-ग्रन्थोंके उद्धारका कार्य प्रथम उन्होंने अपने हाथमें लिया। रामानुजन्‌के उद्धारका-उसे ख्याति प्राप्त करानेका अवसर देनेका – श्रेय भी उन्हींके हाथ रहा। जड़ शिक्षा पद्धति और अचेतन मानसिक वातावरणमें उत्पन्न उसके शिक्षक तथा मित्र उसकी प्रतिभाके प्रति उदासीन रहे। इस उदासीनताके कारण रामानुजन्‌को, भारतीय प्रतिष्ठाको, और गणितको कितनी हानि हुई है इसका अनुमान नहीं किया जा सकता। कुछ भी हो उसे उचित सहायता और सहानुभूति न दे सकनेके उत्तरादायित्वके भारसे वे मुक्त नहीं हो सकते। उसके कालेज और विश्व-विद्यालयको जहाँ यह गर्व है कि उन्होंने रामानुजन्‌को उत्पन्न किया, वहाँ यह अमिट लांच्छन भी सदा उनपर रहेगा कि उन्होंने उसकी प्रतिभाके प्रति उदासीन रह कर उसे महान् हानि पहुँचाई, और बिना यूरोपियन प्रभाव पड़े उसकी कोई सहायता न की।

(डा० कोठारीको उनकी सहायताके लिये धन्यवाद)

वैद्य गोपीनाथ जी गुप्तका निधन

अत्यन्त खेद है कि आरोग्य दर्पणके सम्पादक तथा भारत भैषज्य रत्नाकरके संकलनकर्ता वैद्य गोपीनाथजी गुप्त का न्यूमोनियासे देहान्त हो गया।

आपकी मृत्युसे आयुर्वेदका एक समुज्ज्वल रत्न उठ गया। आप जिस तत्परतासे आयुर्वेद की सेवाकर रहे थे वह वैद्य समाजके लिये आदर्श रहा है। हम आपके परिवारसे इस शोक संविग्न स्थितिमें समवेदना प्रकट करते हैं।

दूध पैस्च्युराईज़ किया हुआ

दूधको खौलानेसे जीवाणु मर अवश्य जाते हैं और इसलिए यह अधिक समय तक टिक सकता है. परन्तु इस क्रियामें इसमें रासायनिक परिवर्तन हो जाता है और दूधके कई एक गुण मिट जाते हैं। इसलिए बिना खौलाये ही यदि जीवाणुओंको मारना हो तो दूधको पैस्च्युराइज़ किया जाता है। इस क्रियासे दूध कच्चा ही रहता है. परन्तु तो भी प्रायः खौलाये दूधकी तरह बहुत समय तक ठहर सकता है। नीचे इस क्रियाकी सरल रीति दी जाती है जो दस-पाँच सेर दूधके लिए सुविधा-जनक है। यदि मन दो मन या अधिक दूधको पैस्च्युराइज करना हो तो विशेष मशीनोंका उपयोग करना पड़ेगा। दूधको छोटे-छोटे बरतनोंमें रक्खो जिनमें सेर दो सेर तक दूध अँटता हो। इन बरतनों मुँहोंको ढक दो और तब इनको सपाट पेंदेके कड़ाहे या कड़ाहोंमें रक्खो परन्तु बरतनोंका पेंदा कड़ाहको न छूये। इसके लिए कड़ाहे में एक तह कंकड़-पत्थर (इंच आध इंच मोटी) बिछा दो। फिर कड़ाहेमें इतना पानी भरो कि दूधके बरतनोंके मुँहके तीन-चार अंगुल नीचे तक पानी पहुँच जाय। तब कड़ाहेके नीचे तेज़ आँच लगा कर पानीको इतना गरम करो कि इसका तापक्रम लगभग १५५ डिगरी फारनहाइट हो जाय। इसके बाद दूधको शीघ्र खूब ठंढा करो गरमी और फिर तुरन्त सरदी पाकर अधिकांश जीवाणु मर जाते हैं।

घरेलू डाक्टर

[सम्पादक डा० जी० घोष, डा० गोरखप्रसाद आदि]

पट्टी बाँधना

चित्र १४—सेंटजॉन झोलाका आरंभ।

सेंटजॉन-झोला— इस झोलेमें हाथ अच्छी तरह ऊपर उठा रहता है। [नीचे जो बातें दी हैं, वे उस समयके लिये हैं जब चोट बायीं ओर लगी हो। जब चोट दाहिनी ओर हो तो "बायें" शब्दके स्थानमें "दाहिना" शब्द पढ़ना चाहिए और "दाहिने" के स्थानमें "बायाँ"।]

(क) रोगीका बायाँ हाथ छातीके दाहिने भागपर ऐसे रक्खो कि अँगुलियाँ दाहिने कन्धेकी ओर हों और हथेली छातीकी हड्डीपर हो।

(ख) तिकोनी पट्टी पूरी। खोल लो। इसका शीर्ष अपने दाहिने हाथमें पकड़ो और एक सिरा बायें हाथमें लो। पट्टीको इस प्रकार पकड़ कर रोगीकी बायीं भुजापर बिछाओ। शीर्ष कोहनीसे खूब नीचे बढ़ी रहे। अपने बायें हाथ वाला सिरा रोगीके दाहिने कन्धेपर रक्खो (चित्र १४)।

चित्र १५—सेंटजॉन झोला सामनेसे।

(ग) बायीं कोहनीको अच्छी तरह थामे रहो। पट्टीके कर्णको बायें हाथ और भुजाके नीचे खिसकाओ और नीचे वाले सिरेके पीठपरसे होते हुये दाहिने कन्धे पर ले आओ। शीर्षको बाहरकी ओर लटकने दो। दोनों सिरोंको हँसली (गलेके नीचेकी कॉलर-बोन) की दाहिनी ओरके गड्ढेके ऊपर बाँध दो

(घ) अपने बायें हाथसे बायीं भुजापर पड़ी हुई पट्टीके किनारेको कुछ उठा लो और अपने दाहिने हाथसे शीर्षको बायीं भुजा और उठाई पट्टीके बीचमें डाल दो।

चित्र १६—सेंटजॉन झोला, पीछेका दृश्य ।

(ङ) पट्टी थोड़ी दूर तक दोहरी हो जायगी । पट्टी जिस जगहसे मुड़ती है उस कोरको भुजाके पीछेकी ओर ले जाओ और पीठ परसे गयी पट्टीमें मज़बूतीसे पिनसे टाँक दो (चित्र १५, १६) । (सत्यप्रकाश)

लम्बी पट्टी—घावोंपर अकसर लम्बी पट्टियाँ (roller bandage) ही बाँधी जाती हैं । इसलिए इनको सभीने देखा होगा । यों तो किसी भी प्रकारसे लम्बी पट्टी लपेट कर अनाड़ी भी काम चला ही सकता है, परन्तु यदि विधिवत बाँधी पट्टी और अनाड़ीकी बाँधी पट्टीकी तुलनात्मक जाँच की जायगी तो तुरन्त पता चल जायगा कि थोड़े ही समयमें अनाड़ीकी पट्टी खिसक जायगी या खुल जायगी, या वह पट्टी इतनी कसी बँधी होगी कि रक्त-संचारके रुक जानेके कारण बँधे अंगमें कष्ट होने लगेगा या अन्य कोई बुराई दिखलाई पड़ेगी । इसलिए लम्बी पट्टीका उचित रीतिसे बाँधना सबको अभ्यास द्वारा सीख लेना चाहिए । यह काम सरल है यद्यपि बाँधनेकी विधिको पढ़ कर पहली बार पट्टी बाँधना कठिन जान पड़ता है ।

लम्बी पट्टी निम्न पाँचमेंसे किसी एक अभिप्रायके लिए बाँधी जा सकती है—

(१) मरहम या अन्य दवा लगे गाज या लिंट तथा रुईको घावपर टिकाये रखनेके लिए ;

(२) खपाची (splint) को अपने स्थानपर टिकाये रखनेके लिए;

(३) अंगको सहारा देनेके लिए;

(४) अंगको कुछ कसनेके लिए जिसमें वह अधिक सूजने न पाये;

(५) अंगको इस प्रकार कस देनेके लिए कि रक्त-स्राव बन्द हो जाय; जब घावसे रक्तकी धारा अपने आप नहीं रुकती तो ऐसा करना आवश्यक हो जाता है ।

पट्टियाँ कैसी हों ?—किसी भी स्वच्छ कपड़ेसे लम्बी पट्टी बनाई जा सकती है, परन्तु यदि दवाखानेसे जीवाणु-रहितकी गई (sterilised) पट्टी खरीदी जा सके तो अधिक अच्छा होगा । लखनऊके मेडिकल कॉलेजके अस्पतालमें पट्टियाँ बाज़ारसे खरीदे साधारण नये कपड़ेकी बनती हैं, परन्तु लपेटनेके बाद उनको भापसे गरम किये गये विशेष तन्दूरमें रखकर इतना और इतनी देर तक गरम किया जाता है कि वे पूर्णतया जीवाणु-रहित हो जाती हैं । जीवाणु-रहित पट्टीके अभावमें साधारण पट्टीसे ही काम चलाना पड़ेगा । घरपर अकसर पुरानी धोती या साड़ीका कपड़ा फाड़कर पट्टियाँ बनाई जाती हैं, परन्तु यदि ऐसा किया जाय तो यथासंभव बिना माड़ी लगा (बिना कलफ किया) कपड़ा लेना चाहिए । यदि नये कपड़ेकी पट्टी बनायी जाय तो कोई खँखरा कपड़ा खरीदना चाहिए । मोटे और कड़े कपड़ेकी पट्टी अच्छी तरह नहीं बाँधी जा सकती ।

व्यवहारमें लाई हुई पट्टीको खौलते पानीमें १५ मिनट तक रख कर और फिर धूपमें सुखाकर दोबारा भी काममें लाया जा सकता है । यदि पानीमें थोड़ा बोरिक ऐसिड छोड़ लिया जाय तो और भी अच्छा होगा । बिना इस प्रकार खौलते पानीसे स्वच्छ किये किसी पट्टीको दोबारा इस्तेमाल करनेमें घावके पक जानेका बहुत डर रहता है । यदि घाव न हुआ रहे तो पट्टीको केवल साबुन और पानीसे धोकर दुबारा इस्तेमाल करनेमें कोई हानि नहीं है ।

पट्टीकी चौड़ाई आवश्यकतानुसार एक इञ्च या कुछ कमसे लेकर तीन-चार इञ्च या अधिक हो सकती है । यदि पहलेसे बनाकर रखना हो तो दो-चार विभिन्न चौड़ाइयों की बनाकर कई एक पट्टियाँ रखनी चाहिए । ये पट्टियाँ ६ या ७ गज लम्बी हों । पट्टी बाँधने पर यदि वह आवश्यकतासे अधिक लम्बी सिद्ध हो तो अनावश्यक अंश काट कर निकाल दिया जाता है ।

दो-चार ही पट्टी लपेटनी हो तब तो वे हाथसे ही लपेट ली जाती हैं, परन्तु जहाँ बहुत-सी पट्टियों की आवश्यकता होती है वहाँ समय बचानेके ख़्यालसे पट्टी लपेटने

की मशीनका प्रयोग किया जाता है। इसकी बनावट चित्र १ से स्पष्ट हो जायगी। इस मशीनके नीचे एक पेंच रहता है जिससे मशीन किसी भी मेज़ पर कसी जा सकती है।

पट्टियोंको कसकर लपेटना चाहिए और परत सब ठीक एकके ऊपर एक पड़े, नहीं तो पट्टीके बाँधनेमें कठिनाई पड़ेगी।

पट्टी बाँधनेके कुछ व्यापक नियम—चाहे कहीं भी पट्टी बाँधा जाय, निम्न बातों पर ध्यान रखना चाहिए।

(१) पट्टी बाँधना आरम्भ करते समय पट्टीकी बाहरी सतह रोगी के अंग पर रक्खी जाती है। इससे बाँधते समय पट्टी आसानीसे खुलती चली जाती है।

(२) पट्टी को पहलेसे ही खोल कर लम्बी न कर लेना चाहिये, नहीं तो इसको रोगीके शरीर पर लपेटनेमें
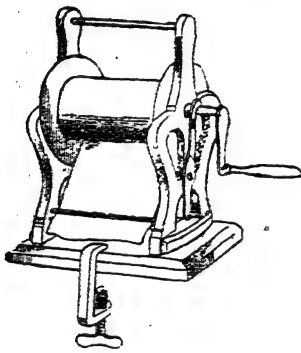
चित्र १ पट्टी लपेटनेकी मशीन।

कठिनाई पड़ेगी। वस्तुतः कभी-भी दो-चार इञ्चसे अधिक पट्टी एकबारगी न खोली जाय तो अच्छा रहेगा।

(३) हाथ या पैरमें पट्टी बाँधते समय कलाई या टख़ने (घुट्टी) की ओरसे प्रारम्भ करके ऊपरकी ओर बढ़ना चाहिए।

(४) पट्टी की हर-एक परत पहले वाली परतके ऊपर लगभग दो तिहाई चढ़ी रहे। इस प्रकार धीरे-धीरे आगे बढ़नेसे पट्टी मज़बूत बँधती है। नीचे जहाँ कहीं भी लिखा गया है कि प्रत्येक फेरेमें ज़रा-सा ऊपर या नीचे की ओर खिसकते जाओ वहाँ इसी नियमके अनुसार ऊपर या नीचे खिसकना चाहिए।

(५) बाँधते समय पट्टी चौरस बैठे; यह कहीं मुड़ने न पाये। हाँ इसे जान-बूझ कर कहीं मोड़ा जाय तो बात दूसरी है। पट्टी कस कर बाँधनी चाहिए, परन्तु इतना कसकर नहीं कि रक्त-संचार रुक जाय। ठीक तरहसे पट्टी बँधी

चित्र २—सरकी पट्टी, एक विधि।

चित्र ३—सरकी पट्टी, दूसरी विधि।

रहनेकी पहचान यह है कि बँध जाने पर पट्टी पर हाथ फेरनेसे इसके किनारे उठें नहीं। यदि वे उठ आयें या उलट जायँ तो समझना चाहिए की पट्टी ढीली बँधी है। परन्तु यदि पट्टी खोलने पर पट्टी बाँधनेके चिन्ह दिखलाई पड़ें तो, समझना चाहिए कि पट्टी आवश्यकतासे बहुत कसी बाँधी गई थी।

(६) पट्टीके अंतिम छोरको सेफ्टीपिनसे या अन्य किसी रीतिसे अच्छी तरह टाँक देना चाहिए जिसमें पट्टी खुलने न पाये।

पट्टी बाँधने की चार प्रधान रीतियाँ—नीचे विशेष-विशेष अंगों पर पट्टी बाँधने की विविध रीतियाँ दी गई हैं, परन्तु यदि ध्यानसे देखा जाय तो वस्तुतः पट्टी बाँधनेकी केवल चार ही रीतियाँ हैं और इन्हींमें थोड़ा-बहुत स्थानानुसार परिवर्तन करनेसे सब विशेष विधियाँ उत्पन्न होती हैं। ये चार विधियाँ निम्न लिखित हैं—

(१) साधारण लपेट—इस विधिमें बँधे हुए अंगके चारों ओर कई बार पट्टी लपेट दी जाती है। प्रत्येक बार पट्टीको ज़रा-सा बगल की ओर हटाकर लपेटनेसे लंबे अंगों पर पट्टी सर्वत्र बँध जाती है। ऐसी पट्टी उन्हीं जगहोंमें ठीक पड़ती है जहाँ अंग समान मोटाईका रहता है, जैसे कलाईके पास, या अँगुली पर। यदि ऐसी पट्टी किसी गावदुम भागमें बाँधी जाय, जैसे टाँगमें या कलाईसे लेकर केहुनी तक

तो तुरन्त पता चलेगा कि पट्टी चिपक कर नहीं बैठती। इसलिए गावदुम स्थानोंमें निम्न रीतिका प्रयोग किया जाता है।

(२) उलट-लपेट - उलट-लपेट नामक विधिसे पट्टी बाँधनेमें जब पट्टी एक बार लपेट ली जाती है तब इसे मोड़कर उलट देते हैं; एक फेरा उलटी हुई पट्टी लपेटनेके
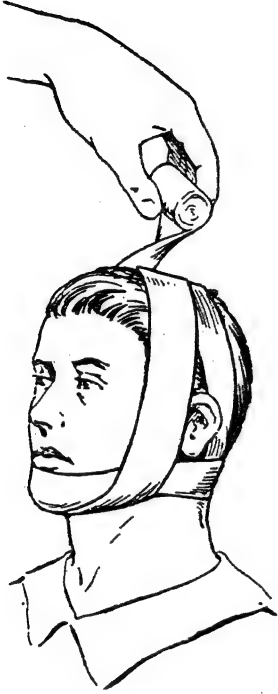
चित्र ४—सरको पट्टी, तीसरी विधि।

बाद पट्टीको फिर मोड़कर उलट देते हैं, इत्यादि। भुजा पर पट्टी बाँधनेके सम्बन्धमें इस विधिका ब्योरेवार वर्णन नीचे किया जायगा।

(३) दोहरा फंदा - इस विधिका उपयोग संधियोंके पास किया जाता है। उदाहरणतः, घुटने पर पट्टी इसी रीतिसे बाँधी जाती है। पहले एक फंदा टाँग की ओर वाले अंग पर डाला जाता है, तब एक फंदा जाँघ की ओर वाले अंग पर, तब फिर एक फंदा टाँग की ओर वाले अंग पर और एक फंदा जाँघकी ओर वाले अंग पर; इसी प्रकार अंत तक दोहरे फंदे पड़ते रहते हैं। दो फन्दों की शक्ल मिलकर अँग्रेजी गिनती आठ की शक्लसे कुछ मिलती-जुलती है। इसीलिए ऐसी पट्टीको अँग्रेज़ीमें "फ़िगर ऑव एट (figure of 8) बैंडेज" कहते हैं। घुटने और केहुनीके सम्बन्धमें ऐसी पट्टियोंका ब्योरेवार वर्णन नीचे दिया जायगा।

(४) यवाकार पट्टी (spica)- यवाकार पट्टी वस्तुतः दोहरे-फंदे वाली पट्टी है, परन्तु एक फंदा बहुत छोटा और दूसरा बहुत बड़ा पड़ता है। यदि छोटे फंदेका विचार न किया जाय तो बड़ा फंदा ज़रा लम्बा होनेके कारण कुछ-कुछ जौके आकारका जान पड़ता है। इसीसे इसे यवाकार पट्टी कहते हैं। (लैटिनमें अनाजके दानेको "स्पाइका" कहते हैं, इसीलिए इस पट्टीको अँग्रेज़ीमें स्पाइका नाम दिया गया है।) ऐसी पट्टी अँगूठे, कंधे या ऊरुसंधि (groin) पर बाँधनी पड़ती है।

नीचेकी विशेष रीतियोंका अभ्यास करते समय इस बात पर ध्यान देना चाहिये कि पट्टी चौरस बँधे। यदि ऐसा करनेमें यहाँ दिये गये चित्रों और तुम्हारी पट्टीमें थोड़ा-बहुत अंतर भी पड़ जाय तो परवाह न करनी चाहिए। कारण यह है कि विविध व्यक्तियोंके अंगोंकी आकृति ठीक एक-सी नहीं होती।

सर की पट्टी—चित्र न० २ में सिरमें पट्टी बाँधने की सबसे सरल विधि दिखाई गई है। माथे और सरके पीछे हिस्सेको लेते हुए दो लपेट लगाओ। कानके पास लपेटमें एक सेफ्टीपिन लगा दो। अब लपेटको ठुड्डीके नीचेसे निकाल कर सिरके ऊपर ले आओ। ठुड्डीके नीचेसे एक बार निकाल कर एक लपेट और दे दो।

चित्र २ में देखनेसे पता चल जायगा कि पिन लगा कर नीचे ठुड्डी की ओर पट्टी घुमाने पर पट्टी उलट जाती है। पहिले जो सतह नीचे थी वह ऊपर आ जाती है।

यदि घाव सिरके ऊपर हो तो इस विधिको उलट देना चाहिये। पहिले सिरके ऊपर और ठुड्डीके नीचेसे दो-दो लपेट दो। फिर कानके पास पिन लगा कर, माथे और सिर-के पीछे वाले हिस्सेके चारों ओर लपेट देकर पट्टी बाँध दो।

दबावके लिये सर की पट्टी - कभी-कभी आवश्य-कता होती है कि सरके किसी भाग पर दबाव डाला जाय। इसके लिये साधारण लपेट की पट्टी बाँधी जानी चाहिये। चित्र ३ में यह विधि दिखाई गई है। माथे और

शिर पृष्ठके चारों ओर दो-तीन लपेट साधारण विधिसे दे दो। अब हर एक आगेके लपेटमें पट्टीको उस स्थान पर जहाँ दबाव डालना हो एक बार कुछ नीचे और दूसरी बार कुछ ऊपर खिसका दो। इस प्रकार पाँच-छः लपेट दो।

चित्रमें देखनेसे ऐसा आभास हो सकता है मानो पट्टी प्रत्येक बार दबावके स्थान पर उलट कर बाँधी गई हो,
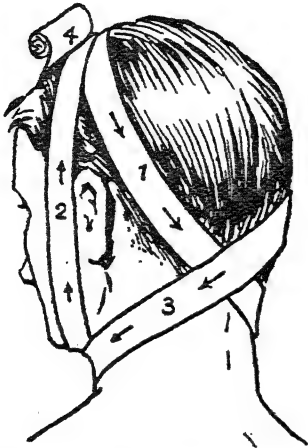
चित्र ५—सरकी पट्टी, चौथी विधि।

पर ऐसा नहीं है। पट्टी एक-सी बाँधी है। ऊपर और नीचे खिसका देनेके कारण ऐसा लगा रहा है।

सरकी पट्टी; एक और विधि—चित्र ४ में पट्टी बाँधनेकी एक और विधि दिखलाई गई है। मुँहपर या सरपर लगे घावोंमें यह विधि उपयोगी है। इसके लिए निम्न क्रमसे काम करना चाहिए।

(१) सिरके ऊपरसे पट्टी लपेटना आरम्भ करो। पट्टीको रोगीके बायें कानके आगेसे निकालते हुए ठुड्डीके नीचेसे लपेटकर दाहिने कानके आगेसे निकाल कर सरके ऊपर इस प्रकार ले आओ कि छुट्टल (प्रथम) सिरा दब जाय।

(२) फिर पट्टीको बायें कानके पीछेसे होते हुए सिरके पीछे ले जाओ और दाहिने कानके पीछेसे होते हुए सरके ऊपर उस स्थान पर ले आओ जहाँ पट्टीका छुट्टल सिरा दबा है।

(३) अब फिर पट्टीको बायें कानके पीछेसे होते हुए सिरके पीछे ले जाओ, परन्तु वहाँसे दाहिने कानके नीचेसे होते हुए पट्टीको ठुड्डीपर लाओ और ठुड्डीको दबाते हुए पट्टीको गरदनके पीछे ले जाओ। वहाँसे दाहिने कानके पीछेसे होते हुए सिरके ऊपर ले आओ।

अब पट्टी एक बार सर्वत्र बँध चुकी। परन्तु इतना ही काफ़ी नहीं है। पट्टीको दो-तीन बार फिर पैरा १, २ और ३ वाले मार्गोंसे ले जाओ। अंतमें पट्टीके अंतिम सिरेको सेफ्टीपिनसे टाँक दो (चित्र ४)।

एलियट-ब्लेककी रीति- चित्र ५ में सिरमें पट्टी बाँधने की जो विधि दिखाई गई है वह एलियट-ब्लेककी विधि कही जाती है।

पट्टीका सिरा सिरके ऊपर रक्खो। इसे कुछ तिरछा ले जाकर रोगीके बायें कानके पीछेसे शिरके पिछले भागके नीचे लाओ (चित्र ५ में भाग १) और गर्दनके दाहिने ओरके आधे हिस्से पर लपेट कर टेढ़ा करते हुए ठुड्डीके नीचेसे निकालो। फिर बायें गालकी ओर पट्टीको टेढ़ा ले जाते हुए ऊपर ले आओ जहाँसे आरम्भ किया था (चित्र ५ में भाग २)। अब एक लपेट पूरा हुआ। दूसरा लपेट भी अब इसी प्रकार दो पर अब की तुम्हारी दाहिनी ओरसे नहीं, बाईं ओरसे जावे। अर्थात् सिरके ऊपरसे आरम्भ
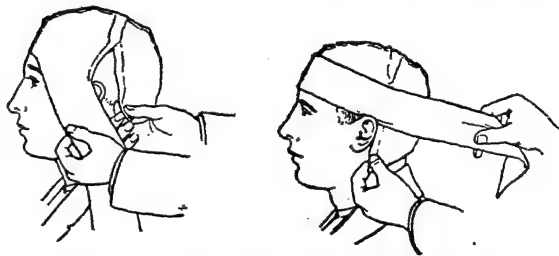
चित्र ६-७ - सरके लिए विशेष आकृतिकी पट्टी।
पट्टी बाँधनेकी क्रियाका प्रथम और द्वितीय पद।

करो; सिरके पीछे नीचे की ओर टेढ़ा करते हुए रोगीके दाहिने कानके पीछेसे पट्टीको निकालो। शिरके पीछे वाले भागके नीचेसे ले आओ। पहिले लपेटको काटते हुए गर्दन के बायें भाग पर होकर ठुड्डीके नीचेसे निकालो। यहाँ फिर पहले वाला लपेट कटेगा। अब दाहिने गालकी ओर होते हुए (रोगीके दाहिने कानके सामनेसे) ऊपर ले जाओ, इस प्रकार दूसरा लपेट पूरा हो गया। आवश्यकतानुसार

घावके स्थान की दृष्टिसे लपेट दोहराये भी जा सकते हैं।

टेबलॉयड विधि—यह विधि सरल भी है और विश्वसनीय भी। परन्तु इसमें विशेष पट्टीकी आवश्यकता पड़ती है। चित्र ६ से ६ में यह दिखाई गई है। इस कामके लिये पट्टी आरम्भमें अधिक चौड़ी होती है, फिर बादको मामूली चौड़ी। चौड़ा भाग बीचमेंसे कटा रहता है। इस अधिक चौड़े भागको हम टोपीनुमा भाग कह सकते हैं, क्योंकि रोगीके सिरपर यह टोपी की तरह रक्खो जाती है।

पट्टीका टोपीनुमा भाग सिर पर रक्खो, और पट्टीको बाईं ओरसे निकालो। चौड़े भागको नीचे तानकर उसके ऊपर पट्टीको यथेच्छ कसो (चित्र ७) और पीछे की ओर ले जाओ। फिर इसे घुमा कर माथे पर ले आओ जहाँसे आरम्भ किया था (चित्र ८)। चौड़े भागके लटकते हुए सिरों को ऊपर उठा कर ऊपरसे पट्टीको लपेट दो। पट्टीके अंतिम सिरेको सेफ्टीपिनसे टाँक दो।

समूचे सिर की पट्टी—यदि विशेष पट्टी न हो और समूचे सिरको पट्टीसे ढकना पड़े तो निम्न रीति से पट्टी बाँधनी चाहिए। इसके लिए ढाई इंच चौड़ी दो
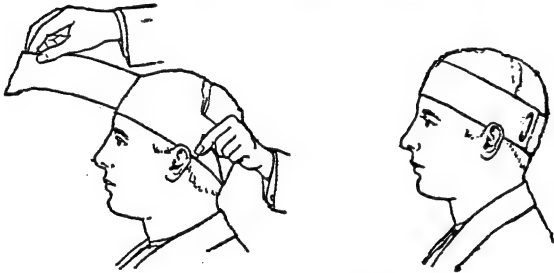
चित्र ८-६ —सरके लिए विशेष आकृतिकी पट्टी। तृतीय और चतुर्थ पद।

६-गजी पट्टियाँ लो और बीचसे सीकर उनको जोड़ दो। रोगीको बैठा दो और तुम उसके पीछे खड़े हो जाओ। दोनों पट्टियोंकी संधिको रोगीके मस्तकके बीचमें, भौंहोंको छूते हुए रक्खो। पट्टियोंके लपटे हुए पुलिंदे भीतर की ओर रहें। वर्णनकी सुविधाके लिये तुम्हारे दाहिने हाथ वाली पट्टीको हम खड़ी पट्टी और बायें हाथ वालीको पड़ी पट्टी कहेंगे। दोनों पट्टियोंको पीछेको ओर लाकर उनको चित्र १० में दिखलाई रीतिसे फँसाओ। इस प्रकार खड़ी पट्टी ऊपर की ओर चली जायगी। इस पट्टीको सरके ऊपरसे ले जाकर ललाट पर ले जाओ। दूसरी पट्टीको सर पर लपेटते हुए आगे ले जाओ और इससे पहली पट्टी को दबा दो अब पहली अर्थात् खड़ी पट्टीको पीछे लाओ। चित्र ११ में खड़ी पट्टीको दो बार आगे (ललाट की ओर) ले जाने और एक बार पीछे ले आनेके बादका दृश्य दिख-

चित्र १०—सरके लिए पट्टी, छठवीं विधि, आरंभ।
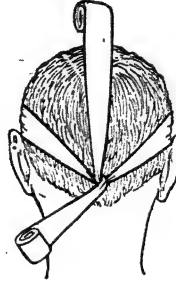
लाया गया है। खड़ी पट्टीको इसी प्रकार बार-बार आगे और पीछे ले जाना चाहिए, परन्तु हर बार इसे पहले एक बगल, फिर दूसरी बगल ज़रा-ज़रा खिसका कर बाँधना चाहिए। जब-जब यह खड़ी पट्टी मुड़े तब-तब यह पड़ी
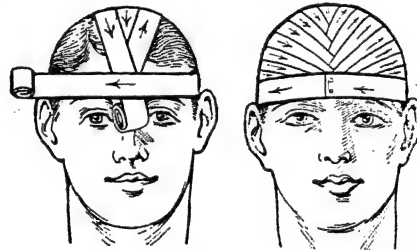
चित्र ११-१२—सरके लिए पट्टी, छठवीं विधि। मध्य और अंत।

पट्टीसे बँध जाय। अन्तमें, जब खड़ी पट्टीसे सारा सिर ढक जाय तो पड़ी पट्टीको सिरके चारों ओर दो बार लपेट कर सेफ्टीपिनसे सामनेको ओर टांक दो (चित्र १२)।

अँगुलियोंके लिए सरल लपेट वाली पट्टी—अँगुलियों पर पट्टी बाँधनेके लिए एक इंच चौड़ी पट्टी चाहिए। छोरको गाँठ देकर बाँधनेके लिये थोड़ी-सी पट्टी छोड़कर पट्टीको कलाई परसे लपेटना आरम्भ

करो। कलाईकी भीतरी सतहसे आरम्भ करो (भीतरी सतह वह है जो हाथ लटकानेपर शरीर की ओर पड़ता है, और पट्टी कलाईकी भीतरी सतह पर कानी अँगुली वाली ओरसे चल कर अंगूठे वाली ओर की दिशामें जाय। कलाईपर एक बार पट्टी लपेट कर उसे फिर कलाईके अंगूठेकी ओर वाले किनारे पर ले आओ। अब पट्टीको हाथ (पंजे) की पीठ पर तिरछा ले जाकर उस अँगुली पर ले जाओ जिस पर पट्टी बाँधनीहो (हाथकी पीठ वह सतह है जो मुट्ठी बाँधने पर बाहर की ओर पड़ती है)। यदि सब अँगुलियों पर पट्टी बाँधनी हो तो कानी अँगुलीसे प्रारम्भ करो। यदि कानी अँगुलीमें पट्टी न बाँधनी हो, परन्तु एकसे अधिक अँगुलियों पर पट्टी बाँधनी हो, तो पहले इसे अँगुलीसे प्रारम्भ करो जो कानी अँगुली की ओर हो।

चित्र १३—अँगुलियोंके लिए पट्टी।
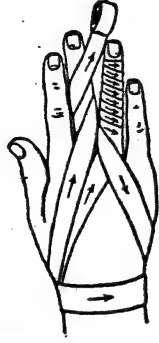
पट्टी कलाईसे चलकर अँगुलीके जड़के पास पहुँचे। इसके बाद पट्टीको अँगुली पर एक बार लपेटो परन्तु इसे इतना तिरछा लपेटो कि एक या डेढ़ फेरेमें पट्टी अँगुलीके सिरेके पास पहुँच जाय, जैसा चित्र १३ में दिखलाया गया है। इस चित्रमें उस समयकी दशा दिखलाई गई है जब कानी अँगुलीकी बगल वाली अँगुली पर पट्टी पूर्णतया बाँधा जा चुकी है और बीच वाली अँगुली पर पट्टी लपेटना आरंभ किया जा रहा है।

जब उपरोक्त रीतिसे पट्टी अँगुलीके छोरके पास पहुँच जाय तब इसे अँगुली पर लपेट देना चाहिए; प्रत्येक फेरा में ज़रा-ज़रा हटते रहनेसे सात-आठ बारमें सारी अँगुली पर पट्टी बँध जायगी। पहला फेरा नाखूनकी जड़के पास पड़े तो अच्छा है; अंतिम फेरा अँगुलीका जड़के पास। इसके बाद पट्टीको कानी अँगुलीकी जड़की ओर ले जाओ, और इस प्रकार हाथकी पीठपर चल कर कलाईकी भीतरी (अँगूठेकी ओर वाले) किनारे पर पहुँच जाय। तब एक बार कलाईपर पट्टीको लपेट दो। यदि एक ही अँगुली पर पट्टी बाँधनी हो तो अब पट्टीके दोनों सिरोंको गाँठ लगा कर बाँध दो। परन्तु यदि किसी दूसरी अँगुली पर भी पट्टी बाँधनी हो तो पट्टीको उस अँगुलीकी जड़ तक ले जाओ और ऊपरकी रीतिसे उस पर भी पट्टी बाँधो; इत्यादि।

अँगूठेकी जवाकार पट्टी—१ इंच चौड़ी पट्टी चाहिए। कलाईकी भीतरी (गद्दीकी ओर वाली) सतहसे आरंभ करो। पट्टी कलाईके उस किनारेसे जिधर कानी अँगुली रहती है चलकर उस किनारेकी ओर जाय जिधर अँगूठा रहता है, परन्तु सीधा न चलकर पट्टी तिरछे चले, और अँगूठे और तर्जनी (अँगूठेकी बगल वाली अँगुली) की संधिकेपास पहुँचे। अब पट्टीको अँगूठेपर इस प्रकार एक
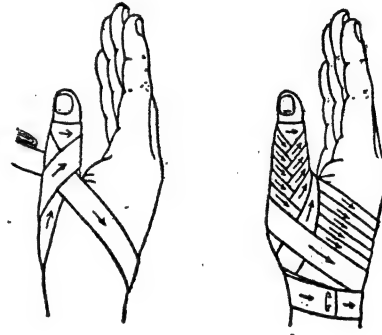
चित्र १४-१५—अँगूठेकी पट्टी।

बार लपेटो कि पट्टी तिरछा चलकर अँगूठेके नखकी जड़के पास पहुँच जाय। अब एक बार पट्टीको अँगूठे पर सीधा (न कि तिरछा) लपेटो। फिर अँगूठेकीपीठ परसे पट्टीको तिरछा ले जाकर हाथकी पीठको पार करते हुए पट्टीको कलाई तक ले जाओ। फिर पारी-पारीसे एक बार अँगूठे पर, एक बार कलाई पर लपेटते रहो। प्रत्येक बार ज़रा-सा पट्टीको अँगूठेकी जड़की ओर खिसकाते रहो जिससे धीरे-धीरे सारे अँगूठे पर पट्टी बँध जाय; अँगूठा केवल नखके पास खुला रह जायगा। अंतमें कलाई पर पट्टीको दो बार लपेट कर सेफ्टीपिनसे टाँक दो (चित्र १४ और १५)।

पंजेके लिए पट्टी—पंजेके लिए दो या ढाई इंच चौड़ी पट्टी चाहिए। अँगूठे और तर्जनीके बीचसे आरंभ करके, (हाथकी पीठ परसे होते हुए), पट्टीको कलाईके उस किनारे पर ले जाओ जिधर कानी अँगुली होती है। वहाँसे

कलाईके सामनेसे होते हुए कलाईके दूसरे किनारेपर पट्टीको लाओ। वहाँसे पट्टीको कानी अँगुलीके नख तक ले जाओ (नख न ढके)। अब चारों अँगुलियों पर एक बार पट्टीको सीधा लपेटो (चित्र १६)। अब पारी-पारीसे पट्टीको एक बार कलाई पर और एक बार पंजे पर
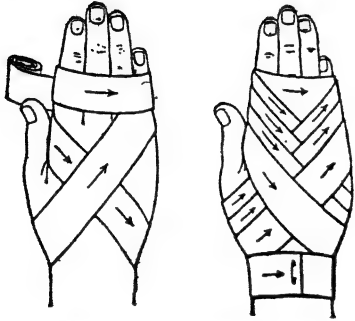
चित्र १६-१७—पंजेकी पट्टी।

लपेटो, परन्तु प्रत्येक बार ज़रा-सा कलाईकी ओर खिसकते जाओ जिसमें सारे पंजे पर पट्टी बँध जाय। फिर पट्टीको कलाई पर लपेट कर सेफ्टीपिनसे टाँक दो।

अग्र भुजाके लिए पट्टी—पट्टी दो या ढाई इंच चौड़ी हो। कलाई के भीतर वाली सितहसे (अर्थात् उधर की सितहसे जिधर गदोरी रहती है) आरंभ करो। पट्टीको कलाईके भीतरी (अर्थात् अँगूठेकी ओर वाले) किनारेसे कलाईके बाहरी किनारेकी दिशामें ले जाओ। फिर पट्टीको पंजेकी पीठ परसे तिरछा ले जाकर कानी अँगुलीकी जड़के पास ले जाओ। वहाँसे हथेली (गदोरी) परसे होते हुए सीधे तर्जनी अँगुलीकी जड़ तक ले जाओ; फिर पट्टीको अँगूठे और तर्जनीके बीचसे निकाल कर पंजेकी पीठको तिरछा पार करते हुये कलाई तक ले जाओ। वहाँसे पट्टीको फिर उन्हीं-उन्हीं मार्गोंसे ले जाओ जिधर-जिधरसे पहली बार ले गये थे, परन्तु अबकी बार ज़रा-सा कलाईकी ओर खिसका कर पट्टीको बाँधो। फिर कलाई पर दो तीन बार पट्टीको लपेटो, परन्तु ज़रा-ज़रा केहुनीकी ओर खिसकते चलो। अब भुजाका गावदुम भाग आ जायगा। यहाँ पर उलट-लपेट वाली विधिसे पट्टी बाँधनी पड़ेगी। इसके लिए देखो कि यदि पट्टीको चौरस रखनेकी चेष्टाकी जाय तो पट्टीको बहुत तिरछी दिशामें लपेटना पड़ेगा; पट्टी चार ही पाँच चक्करमें केहुनी तक पहुँच जायगी और समूचा हाथ न ढक सकेगा। पहले बतलाया गया यह नियम भी कि पट्टीकी पहली लपेट पर दूसरी लपेट करीब दो तिहाई चढ़ी रहे, भंग हो जायगा। परन्तु यदि पट्टी काफी तिरछी न लपेटी जाय तो वह चौरस बैठेगी ही नहीं; पट्टीका वह सिरा जो कलाईकी ओर रहता है कुछ उठा-सा रहेगा। इस त्रुटिको मिटानेके लिए पट्टीको तिरछा ही बाँधना आरंभ करो, परंतु जब पट्टी भुजाके उस सतह पर पहुँचे जो चित्र १८ में दर्शककी ओर है तो पट्टीको उलट दो। इससे पट्टीकी वह सतह जो भुजाको पहले छू रही थी ऊपर आ जायगी। मोड़नेकी रेखा पट्टीके कोरके हिसाबसे से बहुत तिरछी होगी। चित्र १८ में पट्टी ज्योंही मोड़ी
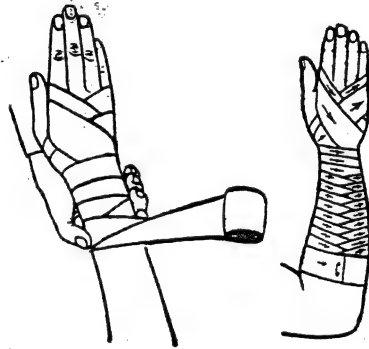
चित्र १८—अग्र भुजाकी पट्टी। आरंभ। चित्र १९ अग्रभुजाकी पट्टी। अंत।

गई है दिखलाई गई है। मोड़नेका परिणाम यह होता है कि पट्टीकी दिशा बदल जाती है। पहले पट्टी तिरछी हो कर ऊपरको (केहुनीकी ओर) जा रही थी, परन्तु मोड़नेके बाद वह तिरछी हो कर नीचेको (पंजेकी ओर) जायगी। जब पट्टी भुजाकी आधी सतह पर लपेटे जानेके बाद दूसरी ओर निकलेगी तब उसे फिर उलट दिया जायगा। इसी प्रकार अंत तक पट्टीको प्रत्येक फेरेमें एक बार उलटा जायगा। केवल अंतिम बार पट्टीको बिना उलटे एक या दो बार सीधा लपेट कर सेफ्टीपिनसे टाँक दिया जायगा (चित्र १९)।

केहुनी, घुटने और घुट्ठी (टखने) के लिए पट्टी—इन संधियों पर बाँधनेके लिए ३ इंच चौड़ी पट्टी चाहिए। पट्टीको पहले ठीक संधिपरसे लपेटना चाहिये। फिर ज़रा-ज़रा अगल-बगल हट कर लपेटना चाहिए, परन्तु यदि एक बार दाहिनी ओर हटे तो दूसरी बार बायीं ओर हटना चाहिए; इसी प्रकार पारी-पारीसे दाहिनी और बायीं ओर हटते हुए पट्टीको चित्र २० और २१ में दिखलाई रीतिसे बाँध डालना चाहिए। अंतमें पट्टीके सिरेको सेफ्टीपिनसे
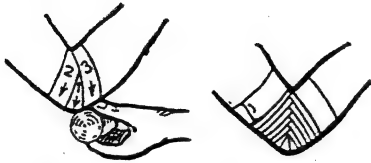
चित्र २०-२१—केहुनीकी पट्टी।

टाँक देना चाहिए। यह वस्तुतः दोहरे फंदेकी पट्टी है। एक फंदा संधिके नीचे वाले अंगपर पड़ता है; दूसरा ऊपर वाले अंग पर।

कंधेके लिए यवाकार पट्टी—कंधेके लिए ३ इञ्च चौड़ी पट्टी चाहिए। मान लो बायें कंधे पर पट्टी बाँधनी है। पट्टीको पहले कंधेके पास रोगीके बायें बाँहमें दो बार इस प्रकार लपेटना चाहिए कि पट्टीके सिरेके निकल पड़नेका कोई डर न रहे। बाँधनेकी दिशा चित्र २२ से स्पष्ट हो जायगी। इसके बाद पट्टीको रोगीकी पीठपरसे ले जाकर दाहिने हाथकी काँखके पाससे निकालो। फिर छाती-के पार पट्टीको ले जाकर बायें हाथके ऊपरसे होते हुए पट्टीको पीछे ले जाओ और बाईं काँखसे सामने निकाल लो। इस समयकी दशा चित्र २२ में दिखलाई गई है। अब बार-बार पट्टीको पहली बार की तरह पहले बाईं भुजा पर फिर छाती पर लपेट डालो, परन्तु प्रत्येक बार ज़रा-सा ऊपरकी ओर खिसकते जाओ जिसमें समूचा कंधा चित्र २३ में दिखलाई गई रीतिसे ढक जाय। अंतमें पट्टीके सिरेको सेफ्टीपिनसे टाँक दो।

छाती या स्तनके लिए पट्टी—तीन इञ्च चौड़ी पट्टी चाहिए। मान लो रोगीके दाहिने स्तन पर पट्टी बाँधनी है। कमरके पीछेसे आरम्भ करो और रोगीके दाहिने हाथकी ओरसे पट्टीको सामने लाओ। पट्टीको एक बार कमरपर लपेटो। फिर दाहिने स्तनके नीचेसे होते हुए पट्टीको बायें कंधे पर ले जाओ और पीठपर पट्टीको
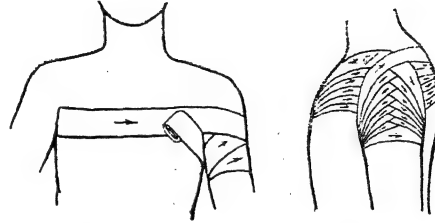
चित्र २२-२३ कंधेकी पट्टी।

तिरछा ले जाकर कमर पर दाहिनी ओर प्रायः पहले वाले स्थान पर निकालो (चित्र २४)। अब पट्टीको एक बार कमर पर लपेटो। फिर उसे पहलेकी तरह स्तन और बायें कंधे परसे लपेटो। इसी प्रकार लपेटते जाओ और प्रत्येक बार ज़रा-ज़रा ऊपर खिसकते जाओ। जब स्तन काफी ढक जाय तो पट्टीको कमर पर सेफ्टीपिनसे टाँक दो (चित्र २५)।

समूचे छाती या दोनों स्तनोंके लिए पट्टी—इसके लिए भी तीन इञ्चकी पट्टी चाहिए। कमरके पीछेसे
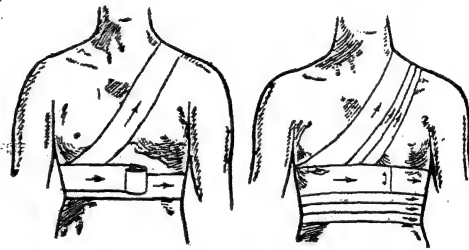
चित्र २४-२५—एक छातीके लिए पट्टी।

आरम्भ कर पट्टीको रोगीको दाहिनी ओरसे निकाल लाओ, कमरपर एक बार लपेटो और फिर बायें कंधे पर होते हुए पीठपरसे तिरछा लाकर कमरके पास दाहिनी ओर निकालो। यहाँ तक तो रीति वही है जो पहले एक स्तन पर पट्टी बाँधनेके सम्बन्धमें बतलाई गई थी। अब पट्टीको कमर परसे ले जाकर केवल बाईं ओर तक जाओ। वहाँसे पट्टीको पीठ पर तिरछे ले जाकर दाहिने

कंधे पर ले जाओ। दाहिने कंधेसे पट्टीको उतार कर बायें स्तनके नीचेसे कमरकी बाईं ओर लाओ (चित्र २६)। फिर पट्टीको पीछेसे ले जाकर कमरके पीछेसे होते हुए पट्टीको दाहिनी ओर निकालो। यहाँसे पट्टीको बायें स्तन पर ले जाओ; इत्यादि। इस प्रकार पारी-पारीसे बायें और
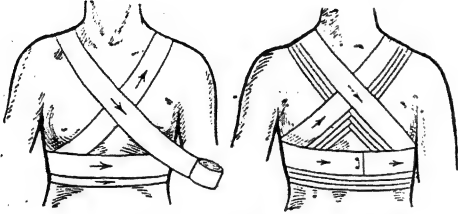
चित्र २६-२७- दोनों छातीके लिये पट्टी।

दाहिने कंधे पर पट्टी जायगी। प्रत्येक बार पट्टीको कुछ ऊपरकी ओर खिसकाते चलो। जब दोनों स्तन ढक जायँ तो पट्टीके सिरेको कमरके पास सेफ्टीपिनसे टाँक दो।

ऊरुसंधि या नितंबके लिये पट्टी—पेट और जंघेके बीचवाले कुछ धँसे हुए भागको ऊरुसंधि कहते हैं। चूतड़को नितंब कहते हैं। इन भागों पर यवाकार पट्टी बाँधा जाता है; एक फंदा कमरमें लगता है, दूसरा जाँघमें। तीन इंच चौड़ी पट्टी चाहिए। अब मान लो कि रोगीकी दाहिनी ऊरुसंधि पर पट्टी बाँधनी है। इसके लिए पट्टीके सिरेको फँसानेके अभिप्रायसे पहले दाहिने जाँघमें दो बार पट्टी
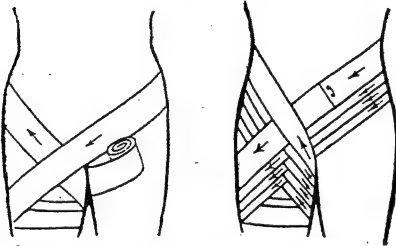
चित्र २८-२९—ऊरुसंधिके लिये पट्टी।

लपेटो; ऐसा करनेमें पट्टी जाँघोंके बीचमेंसे होकर पीछेसे सामने आवे। जाँघपर दो बार लपेटनेके बाद जब पट्टी जाँघोंके बीचमेंसे निकले तब उसे तिरछी ले जाकर कमर तक पहुँचा दो। वहाँसे कमरके पीछेसे होते हुए बाईं ओरसे पट्टी निकलेगी। तब पट्टीको तिरछी ले जाकर दाहिने जाँघ पर ले जाओ। यहाँसे पट्टी जाँघके पीछे जायगी और प्रायः सीधी चलकर जाँघोंके बीचमेंसे निकलेगी जैसा चित्र २८ में दिखलाया गया है। अब पट्टीको पहली बारकी तरह पारी-पारीसे कमर और जाँघ पर लपेटते जाओ परंतु प्रत्येक बार कुछ ऊपर खिसकते जाओ। जब ऊरुसंधि इच्छानुसार ढक जाय तो पट्टीके सिरेको सेफ्टीपिनसे टाँक दो (चित्र २९)।

पाँवके लिए पट्टी—पाँव (पद) के लिए २½ इंच चौड़ी पट्टी चाहिए। घुट्ठी (टखने) के भीतरी किनारेसे आरंभ करो। पाँवके ऊपरसे पट्टीको तिरछा ले जाकर कानी अँगुलीकी जड़के पास ले जाओ। पट्टीको पंजेके पास अब तीन बार ज़रा-ज़रा खिसकते हुए लपेटो। फिर पट्टीको बीचमेंसे उलट-उलट कर लपेटते चलो। उलटनेकी आवश्यकता
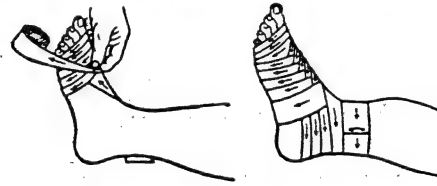
चित्र ३०-३१ पाँवके लिए पट्टी।

इसलिए पड़ती है कि यहाँ पाँव गावदुम रहता है। उलटनेकी रीति अग्रभुजा पर पट्टी बाँधनेके संबंधमें बतलाई जा चुकी है। पट्टी प्रत्येक लपेटमें घुट्ठीकी ओर बढ़ती चले। जब पट्टी घुट्ठीके पास पहुँच जाय तब दोहरे फंदे वाली पट्टीकी रीतिसे पट्टी बाँधनी चाहिए; एक फंदा पाँवपर और दूसरा फंदा घुट्ठी पर पड़े। जब पाँव इच्छानुसार ढक जाय तो पट्टीको घुट्ठीके ज़रा-सा ऊपर, पैर पर, एक या दो बार लपेटो और सिरेको सेफ्टीपिनसे टाँक दो।

टाँगके लिए दोहरे फंदेकी पट्टी—तीन इंच चौड़ी पट्टी चाहिए। घुट्ठीकी भीतरी ओरसे पट्टीको तिरछा ले जाकर पाँवके ऊपरसे होते हुए बाहरी किनारे पर ले जाओ। पाँवपर आधा फेरा लगाओ और फिर पट्टीको घुट्ठीपर ले जाओ। फिर एक बार पाँवपर पहलेकी तरह लपेटो और तब घुट्ठीपर। तब सारी टाँगको पट्टीसे बाँध दो। इसके लिए या तो बार-बार दोहरे फंदे वाली पट्टी बाँधने की रीतिका उपयोग करो (जैसा चित्र ३२ में दिखलाया

गया है) या प्रत्येक बार पट्टीको बाचसे उलटकर बाँधो
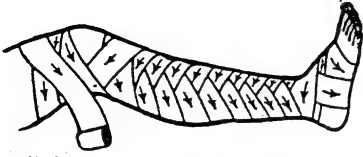
चित्र ३२—पैरके लिए पट्टी।

जैसा अग्रभुजा बाँधनेके लिए पहले बतलाया जा चुका है। अंतमें पट्टीको सेफ्टीपिनसे टाँक दो। ध्यान रहे कि दोहरे फंदे वाली रीतिमें पट्टी बाँधनेमें भी प्रत्येक परत नाचे वाली परत पर दो-तिहाई चढ़ी रहे।

टूटी हँसलीके लिए पट्टी— गरदनके नीचे और छाती के ऊपरकी धन्वाकार हड्डीको हँसली कहते हैं। हँसलीके
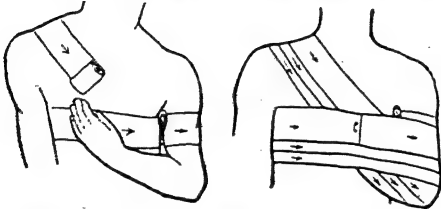
चित्र ३३-३४—टूटी हँसलीके लिए पट्टी।

लिए ४ इंच चौड़ी पट्टी चाहिए। मान लो रोगीकी हड्डी बाईं ओर टूटी है; तो निम्न क्रमसे कार्य करना चाहिए।

(१) पहले अलगसे कपड़ेकी एक गद्दी बनाओ जो लगभग दो इंच मोटी हो और ४ इंच लंबी और इतनी ही चौड़ी हो। इसे बाईं काँखके नीचे रख दो।

२) लंबी पट्टीके सिरेको बाईं भुजापर (कंधेसे कुछ नीचे) एक बार लपेट कर सेफ्टीपिनसे टाँक दो। इस प्रकार पट्टीमें एक फंदा बन जायगा और भुजा उस फंदेमें बँधी रहेगी।

(३) पट्टीको रोगीकी पीठपरसे ले जाओ और दाहिनी काँखके नीचेसे सामने निकालो। पट्टी काफी तनी रहे जिसमें बाईं भुजा कुछ पीछे खिंच जाय। पट्टीको छाती परसे ले जाकर बाईं काँख तक पहुँचा दो और फिर पट्टी को पीठकी ओर ले जाओ।

(४) बायें हाथको उठाकर छाती पर रक्खो।

(५) पट्टीको पीठपर तिरछे ले जाकर दाहिने कन्धे पर ले जाओ। वहाँसे पट्टी सामने लाओ (चित्र ३३) और तीन बार इस प्रकार लपेटा कि पट्टी कंधेसे केहुनी
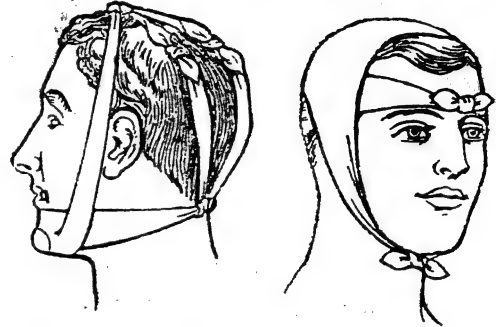
चित्र ३५-३६—जबड़ेके लिए पट्टी। सरके लिए पट्टी।

तक जाय और वहाँसे पीठपर होती हुई फिर कंधेपर जाय। पट्टी तनी रहे जिसमें बाईं केहुनी (और इसलिए बाँयें कंधेको) पूरा सहारा मिले। प्रत्येक बार पट्टीको ज़रा-सा ऊपरकी ओर खिसका कर लपेटो।

(६) इसके बाद जब पट्टी केहुनीपर पहुँचे तो उसे पीठ पर तिरछा ले जानेके बदले सीधा ले जाओ और इस प्रकार
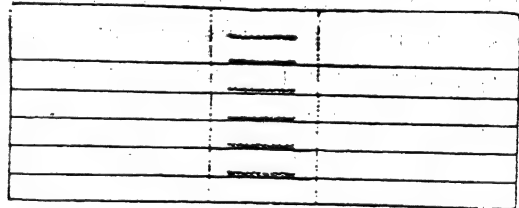
चित्र ३७—बहुपुच्छ पट्टी।

पट्टीको तीन बार सीधा धड़के चारों ओर लपेटो। पट्टी कसी रहे जिसमें कंधा बाहरकी ओर कुछ निकल पड़े। इस प्रकार पट्टी बँध जानेसे टूटी हुई हड्डी अन्य स्थानोंमें धँस कर नया नुकसान न पहुँचा सकेगी।

(७) अंतमें पट्टीके सिरेको सेफ्टीपिनसे टाँक दो (चित्र ३४)।

जबड़ेके लिए पट्टी—तीन इंच चौड़ी और डेढ़ गज़ लंबी पट्टी लो। बीचमें कैंचीसे काटकर एक छोटा सा छेद बना दो। फिर पट्टीके प्रत्येक सिरेके ठीक बीचसे फाड़ो परन्तु बीच वाले छेद तक पहुँचनेके डेढ इंच पहले ही रुक

जाओ। इस प्रकार पट्टी बाँधनेके लिए छेदको ठुड्डी पर
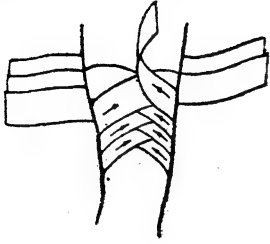
चित्र ३८ बहुपुच्छ पट्टी बाँधनेकी रीति।

रक्खो और चित्र ३५ में दिखलाई गई रीतिसे बाँधो।

सिरके किसी भी भागके लिए पट्टी— ६ इंच चौड़ा और ढाई फुट लंबा मज़बूत कपड़ा लो। प्रत्येक सिरेके बीचसे पट्टीको चीर डालो, परंतु पट्टीके मध्य भागमें लगभग १२ इंच बिना चिरा हुआ रह जाय। चित्र ३६ में दिखलाई गई रीतिसे इसे बाँधो।

यदि मस्तकपर पट्टी बाँधनी हो तो पट्टीको उल्टी दिशामें बाँधनी चाहिए जिसमें वह गाँठ जो मस्तक पर पड़ी हुई चित्र ३६ में दिखाई पड़ती है सिरके पीछे पड़े।

बहुपुच्छ पट्टियाँ—ऊपर दो उदाहरण बहुपुच्छ पट्टियोंके आ गये हैं। बहुपुच्छ पट्टियोंमें पट्टीके सिरोंको चीर कर कई एक धज्जियाँ कर दी जाती हैं। ऐसी पट्टियोंको मज़बूत कपड़ेसे बनाना चाहिये। जिस अंगपर पट्टी बाँधनी हो उसके घेरेसे पट्टीको ड्योढ़ी लंबी होनी चाहिए। मध्य भागको नहीं चीरना चाहिए, परंतु दोनों सिरोंकी ओरसे पट्टीको चीर डालना चाहिए। ये धज्जियाँ सब बराबर-बराबर चौड़ाईकी हों। उनकी चौड़ाई दो-से-चार इंच तक रक्खी जा सकती है। मोटे अंगोंके बाँधनेके लिए धज्जियाँ चौड़ी रक्खी जायँ, परंतु पतले अंगोंको बाँधनेके लिए धज्जियोंको कम चौड़ा होना चाहिए। दोनों सिरोंकी ओरसे पट्टियोंको केवल इतनी दूर तक चीरना चाहिए कि बीच में पट्टीको लंबाईके पाँचवें भागके लगभग बिना चिरा बच जाय।

इससे भी अच्छी रीति यह है मज़बूत कपड़ेकी और आवश्यकतानुसार २ से ४ इंच तक चौड़ी धज्जियाँ एकके ऊपर एक इस प्रकार रक्खी जायँ कि प्रत्येक धज्जी नीचे वाली धज्जी पर एक तिहाई चौड़ाई तक चढ़ी रहे। फिर मध्यसे थोड़ा सा हट कर प्रत्येक बगल सिलाई कर दी जाय जिसमें ये पट्टियाँ एक दूसरेको पकड़ लें। केवल दो सीवन डाल देना काफी होगा; ये पट्टीकी लंबाईकी दिशासे सम-

चित्र ३९—हाथ या पाँवके लिए बहुपुच्छ पट्टी।
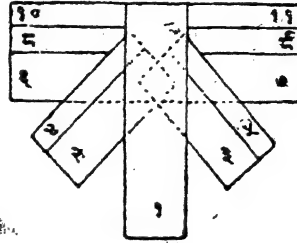
कोण बनाती रहें (चित्र ३७)। इच्छा हो तो बीचमें दूसरा कपड़ा रखकर सिलाईकी जा सकती; इससे बीचका भाग और मज़बूत हो जायगा। ऐसी पट्टी बाँधनेकी रीति चित्र ३८ में दिखलाई गई है। इसमें विशेष गुण यह होता है कि बिना रोगीको हिलाये-डुलाये ही पट्टी खोली जा सकती है या गाज-रूई आदि बदली जा सकती है।

हाथ या पाँवके लिए बहु-पुच्छ पट्टी— यदि हाथ
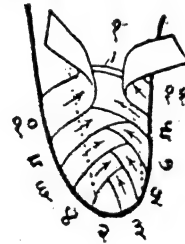
चित्र ४०—हाथ या पाँव पर बहुपुच्छ पट्टी बाँधने की रीति।

या पाँवके सिरेको भी पट्टीसे ढकना हो तो चित्र ३९ की तरह धज्जियोंको सिलाई करके जोड़ना चाहिए और चित्र ४० की तरह उनको बाँधना चाहिए। पट्टी मज़बूत कपड़े की बनाई जाय और धज्जियाँ लगभग ३ इंच चौड़ी हों।

सेंट जॉन ऐंबुलेंस ऐसोसियेशनके फ़र्स्ट एड टु दि इनजर्डके आधारपर।)

आघात—प्रत्येक आकस्मिक दुर्घटनामें नाड़ीमंडलके शिथिल पड़ जानेसे रोगी बहुत दुर्बल-सा हो जाता है। इसको आघात या सदमा (shock) कहते हैं। चीर-फाड़के बाद भी ऐसी ही दशा हो जाती है। रोगी वर्ण-हीन और पसीनेसे तर हो जाता है। जाड़ेके दिनोंमें भी पसीना हो आता है। नाड़ी शिथिल हो जाती है यद्यपि प्रति मिनट यह साधारणसे अधिक बार चलती है। साँस भी अनिय-

मित और ओछी चलती हैं। प्यास अधिक लगती है। वमन भी हो सकता है। कुछ-कुछ मूर्च्छा-सी रहती है और बेचैनी जान पड़ती है। कभी-कभी तो शरीर पूर्णतया संज्ञाहीन हो जाता है, यहाँ तक कि मृत्यु तक हो जाती है।

जब आघातकी दशा चोट लगनेके तुरन्त बाद ही होती है तब इसे आद्याघात (primary shock) कहते हैं। यह नाड़ीमंडलसे उत्पन्न होता है और रोगी थोड़े ही समयमें इससे मुक्ति पा जाता है। परन्तु कभी-कभी आघातको दशा चोट लगनेके कई घंटे बाद उभड़ती है और तब वह कई गूढ़ कारणोंसे उत्पन्न होती है। ऐसे आघातको द्वैतीयिक आघात (secondary shock) कहते हैं। कुछ ऐसी घटनाएँ होती हैं जिनमें चोटसे बढ़ कर आघात की दशा ही भयानक होती है। ऐसी दशामें आघातका उपचार तुरन्त करना चाहिए। निम्न दुर्घटनाओंमें आघातके लक्षण विशेष प्रचंड रूपमें उभड़ सकते हैं—

(१) अधिक रक्त बहना

(२) रोगीको ठंड लग जाना

(३) अधिक पीड़ा

(४) चिंता

उपचार—चोटकी तात्कालिक चिकित्साके बाद रोगीको आरामसे चारपाई पर लेटा दो। साधारणतः चित लेटाना अच्छा होता है। तकिया या तो लगाओ ही नहीं या बहुत नीची तकिया लगाओ। पैतानेको चार-पाँच इञ्च ऊँचा कर दिया जाय तो अच्छा होगा, क्योंकि तब सिरमें रक्त-संचार अधिक अच्छी तरह होता है। यदि कपड़े कहीं भी चुस्त हों तो उनको ढीला कर दो। स्वच्छ हवा रोगीको बराबर मिलती रहे। जाड़ेका दिन हो तो रोगीको रजाई या कम्बल ओढ़ानेके अतिरिक्त सेंक भी करो; परन्तु विशेष ध्यान रक्खो कि सेंक इतना गरम न हो कि रोगी जल जाय; शायद मूर्च्छाके कारण वह स्वयं कुछ न बोल सकेगा। रोगीको ढाढ़स दो, वह घबड़ाने न पाये और उसे किसी प्रकारकी चिंता न हो। उसकी शोचनीय दशा पर कोई उसके सामने बात न करे, या मुखसे यह भाव प्रकट न होने दे कि रोगी खतरेमें है। यदि रक्त-स्राव (खून बहने) का डर न हो तो रोगीको कुनकुना दूध पिलाओ। दरवाजे और खिड़कियोंपर परदा डाल कर, या रात हो तो बत्ती धीमी करके रोशनी धीमी कर दो। शोर-गुल ज़रा भी न होने पावे।

यदि रोगीकी चेतना-शक्ति अधिक कम हो गयी हो या कमज़ोरी बहुत हो तो डाक्टरको अवश्य बुलाओ। गुदा द्वारा बृहदंत्रमें लवणका घोल पहुँचा कर या किसी नसमें लवणके घोलकी पिचकारी देकर या अन्य उपायोंसे डाक्टर रोगीकी दशा सुधार सकता है।

तीव्र मानसिक आघातसे भी रोगीकी दशा वैसी ही हो जा सकती है जैसा ऊपर बतलाया गया है। उपचार भी वही है। (गोरखप्रसाद।)

अब कुछ विशेष आकस्मिक दुर्घटनाओंका अकारादि क्रमसे वर्णन दिया जायगा।

अंत्रवृद्धि— आँत उतरनेको अंत्रवृद्धि कहते हैं। इस रोगका पूरा विवरण यथास्थान दिया जा चुका है। एका-एक आँत उतरने पर रोगीको लेटा देना चाहिए, रोगी पैर सिकोड़ ले (घुटनों-परसे भी मोड़ ले) और उसके नीचे तकिया रख दी जाय। सूजे स्थान पर ठंढे पानीकी पट्टी या बरफ रक्खो। डाक्टरको बुलाओ।

कुछ पारिभाषिक शब्द— शरीरके विविध अंगोंके वर्णनमें निम्न शब्दोंकी आवश्यकता अकसर पड़ती है।

मध्यवर्ती (medial) उस कल्पित धरातलको जो रोगीके अङ्गको दो समान भागोंमें विभाजित करेगी, और रोगीकी नाक, ठुड्डी, छातीके बीच, पेटके बीच और पीठके बीचसे होकर जायगी, मध्य धरातल कहते हैं। इसलिए रोगीके शरीरका वह अंग 'मध्यवर्ती' अंग कहलाता है जो इस मध्य धरातलके समीप पड़ता है। उदाहरणतः, रोगीके दाहिने जाँघका वह भाग जो दूसरे जाँघकी ओर पड़ता है दाहिने जाँघका मध्यवर्ती भाग कहलाता है।

पार्श्ववर्ती (lateral)—यह शब्द मध्यवर्तीका उल्टा है। रोगीके शरीरका वह अंग जो मध्य धरातलकी उल्टी ओर पड़ता है 'पार्श्ववर्ती' अंग कहलाता है। उदाहरणतः, यदि रोगी हाथ लटका कर खड़ा हो तो उसके दाहिने जाँघका वह भाग जो उसके दाहिने हाथकी ओर पड़ेगा जाँघका पार्श्ववर्ती भाग होगा।

वक्षदेशीय (ventral)—उस ओरको जिधर रोगीकी छाती, नाक, मुख आदि रहते हैं वक्षदेशीय ओर या वक्षदेशीय अभिमुख कहते हैं। दूसरे शब्दोंमें, यदि रोगी

दर्शककी ओर मुँह करके खड़ा हो तो रोगीके वे सब भाग जो दर्शककी ओर पड़ेंगे वक्षदेशीय भाग कहे जायँगे।

यों तो रोगी अपने हाथको कहीं भी और किसी भी प्रकार मोड़ सकता है, परन्तु वर्णन करनेके लिए यह मान लिया जाता है कि रोगी हाथ लटका कर खड़ा है और उसकी गदोरियाँ दर्शककी ओर हैं। इस प्रकार गदोरी स्वयं हाथका वक्षदेशीय भाग है।

पृष्ठदेशीय (dorsal)—वक्षदेशीयका उल्टा पृष्ठ-देशीय है। पीठकी ओर जो कुछ रहे उसे पृष्ठदेशीय कहते हैं। उदाहरणतः, टाँगका पृष्ठदेशीय भाग वह है जिधर पिंडली (calf) रहती है। हाथका पृष्ठदेशीय भाग वह है जो गदोरीकी उल्टी ओर रहता है।

असन्निकृष्ट (distal)-यह विशेषण शरीरके किसी अंग या हड्डीके उस भागके लिए प्रयुक्त होता है जो जोड़से अधिकतम दूरी पर रहता है। उदाहरणतः, अँगूठेका सिरा अँगूठेका असन्निकृष्ट भाग है और अँगूठेकी जड़ अँगूठेका सन्निकृष्ट भाग है।

सन्निकृष्ट (proximal)--यह शब्द असन्निकृष्टके उल्टे अर्थमें प्रयुक्त होता है।

अभिमुख (aspect)—अभिमुख शब्दसे सतह, सामना या मुख समझना चाहिए। उदाहरणतः, बाँहका पृष्ठदेशीय अभिमुख वह दृश्य है जो पीठकी ओरसे देखने पर दिखलाई पड़े; इसका वक्षदेशीय अभिमुख वह दृश्य है जो सामनेसे देखने पर दिखलाई पड़े; इत्यादि।

अस्थि-भंग (fracture)—हड्डी टूटनेको अस्थि-भंग कहते हैं। अस्थि-भंगके साधारण कारण नीचे दिये जाते हैं :—

१—स्थानीय चोट (direct violence)—इस दशामें हड्डी उसी स्थान पर टूटती है जहाँ चोट लगती है। उदाहरणार्थ, टाँगके ऊपरसे यदि गाड़ीकी पहिया चली जाय तो गाड़ीके बोझसे टाँगकी हड्डी उसी स्थान पर टूट जायगी जहाँ पहियेका भार पड़ेगा। यदि बाँह पर लाठीकी चोट लगेगी या गोली लगेगी तो चोट लगे स्थान पर ही अस्थि-भंग होगा।

२ दूरवर्ती चोट (indirect violence)—जब शरीरके किसी भागपर चोट या असाधारण झटका लगे और किसी दूसरे स्थान पर अस्थि-भंग हो तो कहा जाता है कि दूरवर्ती चोटके कारण अस्थिभंग हुआ। उदाहरणार्थ, यदि कोई मनुष्य पृथ्वीपर गिरने लगे और बचनेके लिये हाथ फैला कर अपनेको गिरनेसे रोकनेका प्रयत्न करे तो साधारणतः हँसली (गलेकी हड्डी) टूटेगी। इस दशामें शरीरका समूचा बोझ तो अँगुलियों और हाथ पर पड़ेगा, परन्तु इन भागोंमें अस्थिभंग न होकर हँसली टूट जायगी, क्योंकि झटका वहाँ भी लगेगा और वहीं हड्डी अपेक्षाकृत कमज़ोर पड़ेगी।

३—मांसपेशियोंका संकोच (muscular action)—शरीरके किसी संधिको मोड़नेके लिये उस संधिकी मांसपेशियाँ यदि बहुत जोर लगाती हैं तो कभी-कभी वह हड्डी जिसमें मांस पेशी लगी रहती है टूट जाती है, क्योंकि उस अस्थिपर बहुत अधिक खिंचाव पड़ता है। इस प्रकार का अस्थि-भंग प्रायः घुटनेकी हड्डी (knee-cap or patella) में होता है।

कभी-कभी विशेष रोगोंके कारण अस्थियाँ इतनी निर्बल हो जाती हैं कि अनायास ही या बहुत साधारण ही झटका लगनेसे टूट जाती हैं। इसे रोगजनित अस्थिभंग (pathological fracture) कहते हैं।

अस्थि-भंग तीन जातियोंमें विभक्त की जा सकती है :—

१ सरल (simple) अस्थिभंग जब हड्डी टूट जाती है परन्तु चर्म और मांस-पेशियों पर इतनी साधारण चोट लगती है कि बाहरसे लेकर टूटी हड्डी तक घाव नहीं रहता और इसलिए हड्डी तक बाहरके कीटाणुओंके पहुँचनेका भय नहीं रहता तो कहा जाता है कि सरल अस्थिभंग है।

२—संयुक्त (compound) अस्थिभंग- इस दशा में हड्डी टूट जाती है और चर्म तथा मांस-पेशियोंमें इतनी गहरी चोट लगती है कि हड्डी तक खुला रास्ता घाव द्वारा हो जाता है जिससे बाहरके कीटाणु हड्डी तक पहुँच सकते हैं। संयुक्त अस्थिभंगमें अकसर हड्डीका नुकीला भाग चमड़ा फाड़ कर बाहर निकल आता है। यदि गोली लगनेसे अस्थिभंग हुआ हो तो जिस स्थान पर चर्ममें गोली घुसी है वहाँसे लेकर टूटी हड्डी तक बराबर रास्ता बन जायगा; ऐसे अस्थिभंगको भी संयुक्त अस्थिभंग कहते

हैं। संयुक्त अस्थिभंग इसलिये भयानक समझा जाता है कि इसमें बाहरसे कीटाणु हड्डी तक पहुँच सकते हैं और इसलिए हड्डीके सड़ जानेका डर रहता है।

३—विषम (complicated) अस्थिभग—इस दशामें अस्थिभंगके अतिरिक्त आस-पासके किसी अन्य भागमें अधिक चोट आजाती है। उदाहरणार्थ, पसलीके टूटनेसे यदि हड्डी फेफड़ेमें घुस जाय तो अस्थिभंगके साथ ही फुप्फुस
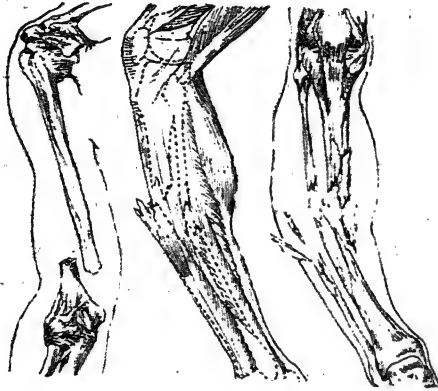
विविध प्रकारके अस्थिभंग।

१ सरल, २ संयुक्त, ३—चूर्ण।

आदिके फट जानेसे रोगीकी दशा बहुत भयानक हो जायगी। टूटी हड्डीकी नोक धमनी, शिरा, या नाड़ीको काट या फाड़ सकती है। कूल्हेके अस्थिभंगसे मूत्राशय भी फट सकता है।

कभी कभी साधारण अस्थिभंग संयुक्त या विषम अस्थिभंगमें परिवर्तित हो जाता है क्योंकि रोगी अपने शरीरको हिलाता-डुलाता है या रोगीके उपचारक अनजानमें या अज्ञानके कारण टूटे अंगको उचित रीतिसे नहीं उठाते हैं जिससे टूटे अंगमें और अधिक क्षति पहुँचती है।

उपरोक्त रीति ही से अस्थिभंगोंका नामकरण प्रचलित प्रथा है परन्तु कभी-कभी निम्न रीतिसे भी अस्थिभंगोंका वर्णन किया जाता है।

(१) जब चोट लगनेसे अस्थियाँ चूर हो जाती हैं तो उसे चूर्ण अस्थिभग (comminuted fracture) कहते हैं। (२) बच्चोंकी अस्थियाँ कुछ लचीली होती हैं। इससे चोट लगने पर बच्चोंकी अस्थियाँ टूट कर दो टुकड़े नहीं हो जातीं; वे केवल हरी टहनीकी भाँति लच कर टेढ़ी हो जाती हैं; बहुत होना है तो हड्डी एक ओर कुछ चटक जाती है। ऐसे अस्थिभंगको टहनीटूट अस्थिभंग (greenstick fracture) कहते हैं। (३) बहुत अधिक जोरके चोट लगनेसे टूटी अस्थिका एक भाग दूसरे भागमें घुस जा सकता है। ऐसे अस्थिभंगको पच्चड़ी अस्थिभंग (impacted fracture) कहते हैं।

अस्थिभंगके लक्षण—

१—रोगीको टूटी हड्डीके स्थान पर, या उसके पास बहुत पीड़ा होगी।

२—टूटी हड्डी वाले अंगको रोगी हिला-डुला नहीं पायेगा।

३—टूटी हड्डी वाला स्थान फूल जायगा। हड्डी टूटते ही वह स्थान नहीं फूलता, इसमें कुछ समय लगता है
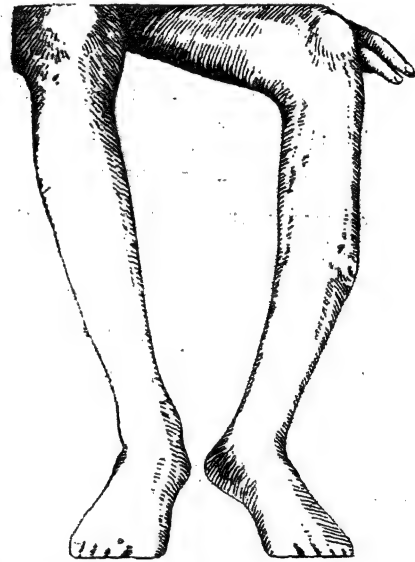
टूटी वाले हड्डी अंगकी आकृति बदल जाती है। तीरसे सूचित स्थानकी हड्डी टूटी है।

क्योंकि रक्त और रक्तरस आदि धीरे-धीरे चोट लगे स्थानमें इकट्ठा होते हैं। इस फूलनेके कारण हड्डीके ठीक हालका पता लगाना पीछे कठिन हो जाता है।

४—टूटी हड्डी वाले अंगकी आकृति बदल जाती है।

५--यदि हड्डी बहुत अधिक मांसपेशियोंसे घिरी न हो तो टटोलनेसे हड्डी टूटी हुई या चटकी हुई मालूम हो सकेगी।

६—अंग अप्राकृतिक रीतिसे हिल सकेगा। उदाहरणार्थ, जाँघकी हड्डी यदि बीचसे टूट जाय तो घुटने और कूल्हेकी प्राकृतिक संधियोंपरसे हिलनेके साथ-ही-साथ अंग टूटे स्थान परसे भी कुछ मोड़ा जा सकेगा।

७--टूटे स्थानको हिलानेपर हड्डीके दोनों सिरोंके आपसमें रगड़ खानेसे खुरखुराहट या तो कानसे सुनाई देगी या हाथ द्वारा अनुभव की जा सकेगी, परन्तु इस रीतिसे जाँच करनेमें रोगीको बहुत कष्ट होता है; इसलिए अनाड़ीको इस रीतिका प्रयोग नहीं करना चाहिए।

अस्थि-भङ्गकी तात्कालिक चिकित्सा—तात्कालिक चिकित्साका उद्देश्य केवल इतना ही होना चाहिये कि रोगीको सुरक्षित स्थानमें पहुँचा कर उसके आराम की व्यवस्था कर दी जाय। परन्तु ऐसा करनेमें ध्यान रखना चाहिये कि टूटे अंगमें और अधिक क्षति न पहुँचे।

रोगीको दूसरे स्थानपर ले जानेके पहले अस्थिभंग वाले अंगमें उचित खपची बाँध देनी चाहिये जिससे टूटा हड्डियाँ हिल न सकें। उनके हिलनेसे रोगीको कष्ट तो होता ही है; साथ ही इस बातका भी बहुत डर रहता है कि घाव और बढ़ न जाय; या हड्डी त्वचा फाड़ कर बाहर न निकल पड़े। चाहे अस्थिभङ्ग किसी भी स्थानमें हुआ हो, चाहे यह मोटर और गाड़ियोंसे भरी सड़क ही पर क्यों न हुआ हो, टूटे अङ्ग पर खपची बाँधे बिना रोगीको न उठाना चाहिए।

यदि किसी धमनीमें चोट आ गई हो और रक्त-स्राव हो रहा हो तो सबसे पहले रक्त रोकनेका प्रयत्न करना चाहिये (देखो रक्त-स्राव)। आघात (shock) दूर करनेका उपाय भी करना चाहिए।

बनी-बनाई खपचियाँ बिकती हैं पर यदि खपचियाँ समय पर न मिलें तो पटरा, लकड़ी, छाता, छड़ी, लाठी, पेड़ की डाल इत्यादिसे खपचीका काम निकालना चाहिए। बाँधनेके लिये पट्टी न रहने पर साफा, रूमाल या धोती फाड़ कर काममें लाना चाहिये। खपची बाँधते समय ध्यानमें रखना चाहिये कि कहीं भी अङ्गमें खपचीकी नोकके गड़नेकी संभावना न रहे। हो सके तो खपचीको रुई, कपड़े या काग़ज़में लपेट लेना चाहिये। खपची कसकर और मज़बूत कपड़ेसे बाँधना चाहिए, परन्तु इस पर ध्यान रखना आवश्यक है कि पट्टी इतनी कसी न हो कि बँधे अङ्गमें रक्त-संचार रुक जाय। जाँचके लिये बँधे स्थानके उस ओर जो हृदयसे दूर पड़ता है किसी नाड़ी पर अँगुली रखकर देख लेना चाहिये कि नाड़ी चल रही है या नहीं। खपची काफी मज़बूत होनी चाहिये। लम्बाई इतनी हो कि टूटे स्थानसे ऊपर और नीचेकी संधियों पर भी खपची पहुँच जाय।

यदि ठीक प्रकार पता न लगे कि अस्थिभङ्ग हुआ है या नहीं तो रोगीका उपचार उसी प्रकार करना चाहिये जैसा अस्थिभङ्ग होने पर किया जाता है। यदि हड्डी त्वचा फाड़कर बाहर न निकली हो तो खपची बाँधनेके पहले टूटे अंगको तानकर यथासंभव सीधा कर लेना चाहिये। इस काममें ज़ोर धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिए। यदि त्वचा फाड़ कर हड्डी बाहर आ गई हो तो हड्डीके बाहर निकले भागको भीतर न डालना चाहिये क्योंकि बाहर निकली हड्डीमें कीटाणु पहुँच गये होंगे। इसलिए इस हड्डीके भीतर जानेसे घावके पक जानेका अधिक डर रहेगा।

खपची बाँधनेके पहले त्वचाके घायल भागको स्वच्छ (हो सके तो कीटाणु-रहित किये गये) कपड़ेसे ढक लेना चाहिये।

विशेष अस्थि-भङ्ग—

(१) खोपड़ीका अस्थि-भंग—छतसे गिरनेसे या लाठी इत्यादि की चोटसे खोपड़ी अकसर फट जाती है। रोगी अधिकतर बेहोश हो जाता है। सर टटोलनेसे पता चलता है कि कहीं गुमटा पड़ा है, या कहीं पर हड्डी चटख गई है। कान या नाकसे खून भी निकल सकता है। यदि पानी की भाँति तरल या लबाबदार रस निकले तो समझना चाहिये कि हड्डी टूटनेके साथ ही मस्तिष्ककी झिल्ली भी फट गई है और मस्तिष्क-रस निकल रहा है। ऐसी अवस्था बड़ा भयानक है। यदि केवल गुमटा हो पड़ कर रह गया हो और मूर्च्छा न हो तो कोई विशेष चिंता की बात नहीं है, परन्तु यदि मूर्च्छा हो या खोपड़ी फट गई हो तो रोगीको शीघ्र ही सावधानीसे स्ट्रेचर,

चारपाई या गाड़ी इत्यादिसे सुरक्षित स्थानमें पहुँचाना चाहिए और तब डाक्टर बुला लेना चाहिये। बरफकी पट्टी सिर पर रखना चाहिए। रोगीको होश आने पर भी लेटे रहना चाहिये।

जबड़ेका अस्थि-भंग—घूसा लगनेसे या गिरने आदिके चोटसे जबड़ेका अस्थि-भंग होता है। मुँह चलानेमें कठिनाई होती है और मुँह तथा इसके आस-पासके अंग अकसर फूल आते हैं। दाँतोंकी पंक्ति टेढ़ी-मेढ़ी हो जाती है, और मसूड़ोंसे रक्तपात होता है। जबड़े पर चार पूँछ वाली पट्टी बाँधनी चाहिये। इसका वर्णन पहले किया जा चुका है।

रीढ़की हड्डी—रीढ़का अस्थि-भंग प्रायः बहुत ऊँचाई से कूदनेसे, या पीठ या सर पर भारी बोझके गिरनेसे होता है। यदि सुषुम्नामें भी चोट लगती है तो अंगमें फालिज (लकवा) मार जाता है। रीढ़ टटोलनेसे टेढ़ी प्रतीत होगी और टूटे स्थान पर बहुत दर्द होगा।

यदि रोगीको होश है तो उसे बतला देना चाहिए कि चुपचाप चित लेटे रहना उसके लिये बहुत आवश्यक है। बेहोश रोगीको सुरक्षित स्थान पर ले जानेकी आवश्यकता हो तो विशेष ध्यान रखना चाहिए कि उसे बैठाया या खड़ा न किया जाय बल्कि धीरेसे चौकी या पटरे पर रखकर ले जाना चाहिए और फर्श या चौकी पर (कड़े सपाट वस्तु पर) लिटाना चाहिये। इस पर रजाई या गद्दा बिछा ले तो अच्छा है। चारपाई पर लिटानेसे पीठ बीचमें लच जाती है जो हानिकर है। रोगीको जमीनसे उठानेकी एक रीति यह है—यदि और कोई उपाय न हो सके तो दरी, कम्बल, चादर, या धोती इत्यादि जो कुछ भी समय पर हाथ लगे रोगीके बगलमें फैला दो और तब रोगी को धीरेसे इस वस्त्र पर लुढ़का दो। रोगी वस्त्रके बीचमें आ जाय और चित पड़ा रहे। फिर कुछ लोग चारों कोनोंको मजबूतीसे पकड़ कर तान लें और कुछ लोग सिर की ओर और दोनों बगलमें खड़े होकर चादरको तान लें। इस प्रकार रोगीको उठाकर उसे चौकी या पटरे पर लेटा सकते हैं। ध्यान रहे कि कपड़ा कभी भी ढीला न होने पावे। रीढ़के मुड़ने पर हानि बढ़ जा सकती है।

पसलीकी हड्डियाँ—ये हड्डियाँ भीड़में दब कर या मोटर आदि से दब कर टूट जाती हैं या लाठी इत्यादिके लगानेसे टूट जाती हैं। फेफड़ेमें या फेफड़ेकी झिल्लीमें टूटी पसलीके घुस जानेका बहुत डर रहता है। साँस लेने पर टूटे स्थानमें कष्ट होता है और यदि वहाँ हाथ रक्खा जाय तो रोगीके साँस लेने पर प्रायः कुरकुराहट मालूम होती है। फेफड़ेमें भी चोट लग गई होगी तो खाँसी आती है और थूकमें रक्त आता है। रोगीको लेटा देना चाहिए और दो चौड़ी पट्टियाँ सीनेपर बाँध देनी चाहिये जिसमें साँस लेते समय टूटी हड्डियाँ कम हिलने पावें।

कूल्हेकी हड्डी—ऊपरसे गिरनेसे या गाड़ी वगैरहसे कुचल जानेसे कूल्हेकी हड्डी टूट जा सकती है। तब खड़ा होना कठिन हो जाता है। यदि मूत्राशय फट जाता है तो मूत्रके साथ रक्त आता है, या मूत्र त्याग नहीं किया जा सकता। कूल्हेकी हड्डी बहुत मज़बूत होती है; बहुत अधिक चोट लगती है तभी यह हड्डी टूटती है। इसलिए साथ ही आघात (shock) की मात्रा अधिक होती है। रोगीकी कमरपर चौड़ी पट्टी लपेट कर रोगीको लेटाये रखना चाहिये। आघातका उचित उपचार करना चाहिए।

हँसली—यह हड्डी मांस-पेशियोंसे बहुत कम ढकी रहती है और साथ ही कमजोर भी होती है। इससे थोड़ी ही चोट लगनेसे टूट जाती है। गिरते हुये लोग जब हाथ फैला कर बचनेका प्रयत्न करते हैं तो हाथमें झटका लगता है जिससे प्रायः हँसली टूट जाती है। स्वस्थ शरीरमें हँसली हीके सहारे हाथ टिका रहता है; इसलिए हँसलीके टूट जानेसे कंधा नीचे लटक जाता है (चित्र ३३)। रोगी अपने स्वस्थ हाथसे टूटे ओरकी केहुनीको उठाये रहता है जिसमें कंधेपर अधिक ज़ोर न पड़ने पाये। हँसलीपर हाथ फेरने से टूटे भागपर दरार मिलता है। कभी-कभी दोनों ओरकी हँसलियाँ साथ ही टूट जाती हैं। पहले बतलाई रीतिसे पट्टी बाँधनी चाहिए और हाथको झोलामें लटकाना चाहिए।

स्कंधास्थि (कन्धेकी वह चौड़ी हड्डी जो पीठकी ओर रहती है, scapula)—यह हड्डी बहुत कम टूटती है। टूटे तो कन्धे पर चौड़ी पट्टी बाँधो और टूटे ओरकी बाँहको झोलेमें लटकाये रक्खो।

रंगीन पदार्थ

[ले० — श्री शिरोमणि सिंह चौहान, एम० एस-सी०, विद्यालङ्कार, विशारद, सब-रजिस्ट्रार, सफ़ीपुर (उन्नाव)]

रङ्गोंका मूल कारण

रंग भी परमात्मा की एक अनोखी देन है। इनके द्वारा पदार्थोंका सौन्दर्य बढ़ जाता है। हम नित्य देखते हैं कि हाट-बाज़ारमें रङ्गीन वस्त्र एवं पदार्थ और बन-उपवनोंमें रङ्गीन पुष्प एवं लता पत्रादि कितना अधिक लोगोंका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करते हैं। तुच्छ कीड़े किस भाँति रङ्गीन पुष्पों पर मतवाले होकर टूटते हैं कि जिसका ठिकाना नहीं।

सभी रङ्गोंका मूल कारण प्रकाश होता है। प्रकाश (चन्द्र प्रभा भी) सूर्यसे प्राप्त होता है। अतएव रङ्गोंका आदि कारण सूर्य है।

सर आइज़क न्यूटनने प्रयोग द्वारा इस बात की परीक्षा की थी। उसने एक अँधेरी कोठरीके छेदसे होकर आती हुई सूर्य की किरणोंको एक श्वेत परदे पर ग्रहण किया। परदे पर पड़ने वाला प्रकाशका रङ्ग बिलकुल सफेद था। तत्पश्चात् उसके इस रश्मि-पुंजके मार्गमें काँचका एक ठोस त्रिपार्श्वका व्यवधान इस भाँति कर दिया कि किरणें उसके एक पहल पर पड़ीं। तब उसने देखा कि श्वेत परदेपर जहाँ अभी उज्ज्वल प्रकाश था, वहाँसे कुछ हटकर अब एक रङ्गीन पट्टी बन गई, उज्ज्वल प्रकाश विभिन्न रंगोंसे फट गया। इस रंगीन पट्टीमें सात रङ्ग—लाल, नारङ्गी, पीला, हरा, आसमानी, नीला, और कासनी होते हैं; जो एक दूसरे से सटे हुये नजर आते हैं। ऐसी रङ्गीन पट्टीको जिसकी बायीं ओर लाल रङ्ग होता है रश्मि चित्र अथवा सप्तक (spectrum) कहते हैं। यही सातों रंग, इसी क्रम से, इन्द्र धनुषमें भी देख पड़ते हैं। आकाशमें इन्द्र-धनुष भी एक वृहदाकार सप्तक ही है। पुराणोंके अनुसार भी सूर्य विचित्र रंगोंके सात घोड़ोंके रथ पर आरूढ़ हुये माने जाते हैं। उनका सारथी अरुण है। विविध रंगोंके सात घोड़ों की कल्पना और रश्मि चित्रके सात रंगोंके आधुनिक सिद्धान्तका सामंजस्य क्या ही महत्वपूर्ण है।

न्यूटनके इस प्रयोगसे हम निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सूर्यका उज्ज्वल प्रकाश सात प्रकार की रङ्गीन किरणोंके मिश्रणसे बनता है। जब ये किरणें त्रिपार्श्वके बीचसे होकर गुज़रती हैं तो वे कुछ हटकर आवर्जन (refracted) होकर सप्तकके सात रंगोंमें अलग-अलग बँट जाती हैं। प्रकाशमें ये सातों रङ्ग गुप्त रूपसे प्रस्तुत रहते हैं।

न्यूटन साहबने इसका उल्टा प्रयोग भी किया। उन्होंने एक ताल द्वारा सात रङ्गोंकी किरणोंको मिश्रित करके पुनः उज्ज्वल प्रकाशमें परिणित किया। उसने छेदसे आते हुये उज्ज्वल प्रकाशको त्रिपार्श्वके बीचसे गुज़ार कर सप्तक निर्माण किया और फिर इस सप्तकको एक दूसरे त्रिपार्श्व (पहले त्रिपार्श्व की विपरीत दिशामें रखकर) में से गुज़ार कर पुनः उज्ज्वल प्रकाशमें बदल दिया।

इस बातको हम स्वयं भी प्रयोग करके देख सकते हैं। दफ़्तीका एक गोल टुकड़ा काटकर उसे केन्द्रसे परिधि तक चार समान भागोंमें विभाजित करें। इनमेंसे हर एक खाने को उसी भाँति सात भागोंमें बाँटें। इन सात भागोंको क्रमसे उन्हीं रङ्गोंसे रँग दें जो सप्तक अथवा रश्मि-चित्रमें अभी हम देख चुके हैं। दफ़्तीके शेष खानोंको भी हम इसी भाँति रंग दें। अब यदि हम इस दफ़्तीके बीच तागा लगाकर इसे जोरसे घुमावें तो यह हमें सफेद रङ्गका नज़र आयेगा।

सूर्यके उज्ज्वल प्रकाशका सात रंगोंमें फटना तथा पुनः सातों रंगोंका मिलकर श्वेत हो जाना यह ज़ाहिर करता है कि सूर्यका प्रकाश सात रंगोंके मिश्रणसे बना है। अब हमें यह विचार करना है कि जब सूर्यका यही उज्ज्वल प्रकाश सभी पदार्थों पर पड़ता है तो फिर ये पदार्थ भिन्न-भिन्न रंगोंके क्यों देख पड़ते हैं। असलमें, किसी पदार्थका रंग विशेष होना इस बात पर निर्भर होता है कि उस पदार्थ की सामग्री अपने ऊपर पड़ने वाले प्रकाशके साथ कैसा व्यवहार करती है। जब सूर्यकी किरणें किसी पदार्थ पर पड़ती हैं तो उनमेंसे कुछ तो पार हो जाती हैं, कुछ को वह पदार्थ सोख लेता है और कुछ उसपरसे प्रतिक्षिप्त होकर हमारी आँखों पर पड़ती हैं। पदार्थपरसे वापस आई हुई किरणें जब हमारी आँखों पर पड़ती हैं तब हमें उस पदार्थका ज्ञान होता है। जो पदार्थ हमें जिस रंगका दिखाई पड़ता है वह पदार्थ उस रंग की किरणोंके अतिरिक्त सप्तककी शेष किरणोंका शोषण (absorb) कर लेता है।

यदि कोई पदार्थ सप्तकके किसी भागको नहीं सोखता और सभी किरणोंको वापस कर देता है तो वह पदार्थ हमें उज्ज्वल दिखाई देता है, जैसे बर्फ़, खड़िया और श्वेत कागज़। प्रकाश की समस्त किरणें इन पदार्थोंसे टकरा कर सटी-सटाई हमारे नेत्रों तक पहुँचती हैं।

हमारे पास ऐसा भी यन्त्र मौजूद है जिसके द्वारा हम यह जान सकते हैं कि अमुक पदार्थ प्रकाश की किन-किन किरणोंका शोषण करता है और किन-किनको वापस लौटाता है अथवा सभीका शोषण करता है या सभीको वापस कर देता है। इस यन्त्रको रश्मि-चित्र-दर्शक यन्त्र (spectroscope) कहते हैं। इस यन्त्रमें प्रकाश की सातों रंग की किरणें पृथक् पृथक् दिखाई देती हैं और यदि प्रकाशमें किसी विशेष रंग की किरणोंका अभाव होता है अथवा उसमें रंग की किरणका कुछ अंश विद्यमान नहीं होता तो ऐसी दशामें उस रंग विशेषके स्थान पर इस यन्त्रमें काले रंगकी एक पट्टी या लकीर दिखाई देती है। इसे हम 'शोषण-पट्टी' (absorption-band) कहते हैं।

जब हम बर्फ़ अथवा खड़ियासे आते हुए प्रकाशको रश्मि चित्र-दर्शक यन्त्र द्वारा देखते हैं तो उसमें हम सप्तक में पाये जाने वाले सातों रंग पाते हैं। परन्तु जब हम इस यंत्रसे किसी काले पदार्थको देखते हैं तो हमें सप्तक लेश मात्र भी नज़र नहीं आता। इसका कारण यही है कि काले पदार्थसे प्रकाश की कोई किरणें हमारी ओर नहीं लौटतीं। जितना प्रकाश इस पदार्थ पर पड़ता है उस सबको यह समान रूपसे सोख लेता है। रश्मि-चित्र-दर्शक यन्त्रकी ओर आनेके लिये प्रकाशकी कोई किरण शेष नहीं रह जाती। इस कारण वह पदार्थ काला दिखाई पड़ता है। सप्तकके रंगोंके अभावको ही काला कहते हैं।

कल्पना कीजिये कि हमने एक अँधेरे कमरेमें प्रकाशके सातों रङ्गोंका सप्तक निर्माण किया और उसके एक सिरेसे दूसरे सिरे तक लालसे कासनी तक लाल फलालैनके एक टुकड़ेको फेरा तो हमें फलालैनका यह टुकड़ा सप्तकके लाल रङ्गके क्षेत्रमें तो लाल दिखाई दिया और शेष सभी रङ्गोंकी सीधमें आने पर वह काला दिखाई पड़ा। स्पष्ट है कि लाल फलालैन इस कारण 'लाल' है कि यह उज्ज्वल प्रकाशकी लाल किरणोंके अतिरिक्त सभी रङ्गोंकी किरणोंको अपने अंदर सोख लेता है और उस पदार्थपरसे केवल लाल रङ्गकी किरणें ही प्रतिक्षिप्त होकर हमारे नेत्रों तक पहुँचती हैं और इन्हीं लाल किरणोंका प्रभाव हमारी आँखों पर पड़ता है। यही दशा दूसरे रङ्गीन पदार्थोंकी होती है। वृक्षोंकी पत्तियाँ हमें इस कारण हरी दिखाई पड़ती है कि प्रकाशकी हरी किरणोंके अतिरिक्त सभी किरणें उनमें प्रवेश कर जाती हैं। सप्तकको केवल हरी किरणें उनपरसे प्रतिक्षिप्त होकर हमारे नेत्रोंकी ओर घूम आती हैं। प्रकृतिमें कोई पुष्प पूर्ण रूपसे काला नहीं होता है क्योंकि कोई पुष्प सप्तकको सब किरणोंको अपने भीतर नहीं सोख पाता है।

ऊपरके विवेचनसे हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि कोई पदार्थ किसी विशेष रङ्गका इसलिये दिखाई पड़ता है कि वह अपने धरातलसे प्रकाशको उस रङ्ग विशेषकी किरणों-को वापस फेंकता है और इन्हीं वापस आई हुई किरणोंका प्रभाव हमारी आँखों पर पड़ता है। शेष रङ्गकी किरणोंको वह पदार्थ अपने भीतर सोख लेता है इसलिये वे रंग हमारे नेत्रों तक नहीं आने पाते।

यद्यपि प्रकाशके रश्मि-चित्रमें केवल सात रङ्ग ही होते हैं तथापि प्रकृति और कला (arts) में हज़ारों प्रकारके 'रङ्ग' होते हैं। उनमेंसे कुछ 'रङ्ग' तो श्वेतसे मिल कर शुद्ध रङ्गके तनकरण (dilution) मात्र होते हैं, जैसे गुलाबी रङ्ग श्वेत और लाल रङ्गके मिलनेसे बनता है; नीला रङ्ग हरे और श्वेतकी मिलावटसे बनता है। ऐसे रङ्गोंको अँग्रेजीमें 'tints' कहते हैं।

इसके सिवा कुछ विशेष रङ्ग ऐसे भी होते हैं जो काले रङ्गके साथ मिलकर नये रङ्ग बनाते हैं। इन नये रङ्गोंको झलकदार रङ्ग "shades" कहते हैं। जैसे लाल और काला मिलकर गहरा लाल या कत्थई रङ्ग बनाते हैं।

अनेकों रङ्ग ऐसे भी पाये जाते हैं जो रश्मि-चित्रमें न होते हुये भी दो अथवा अधिक रङ्गोंके सम्मिश्रणसे बनते हैं। ये मिश्रित अथवा योगके रङ्ग श्वेत रंगसे मिलाकर फीके किये जा सकते हैं। इस प्रकार बैंजनी रंग लाल और नीले रंगके संयोगसे बनता है। बाद को इसे फीका अथवा गहरा भी कर सकते हैं।

फोकस करना

विषय—नौसिखियेके लिये पहले किसी सरल विषय का फोटो खींचना उचित होगा, उदाहरणतः ऐसा विषय जिस पर धूप पड़ रही हो, परन्तु दृश्यका कोई बड़ा भाग सायेमें न हो जिसमें कोई वस्तु तेज़ोसे चलती न हो, जिसमें कोई सुहावनी वस्तु बीस-पचीस फुटकी दूरी पर हो जैसे कोई सुन्दर छोटा पेड़ या फाटक, या झोपड़ी, या तालाबका किनारा, या नदी-तट, या गाय-बैल, या अन्य कोई ऐसी वस्तु। विषयके रंगसे मुग्ध न होना चाहिये। प्रकाश और छायाके विन्यास पर ध्यान देना चाहिए।

उन विषयोंका चित्र अच्छा लगता है जिसमें कोई सुहावनी वस्तु बीस-पचीस फुटकी दूरीपर हो।

बहुतसे फोटोग्राफर सोच नहीं पाते कि वे किस वस्तुका फोटो लें। वे केवल अपने मित्रोंका फोटो ही ले पाते हैं, परंतु सुन्दर विषय अनेक हैं। कुछ ये हैं—सुन्दर भूदृश्य (landscape), बादल और ऐसे दृश्य जिनमें बादल प्रधान हों, नदी इत्यादिके दृश्य (जिसमें नाव हों) सड़कों के दृश्य, हवाई जहाज़ या ऊँची मीनारसे लिया दृश्य, यात्रा के समय नवीन देशोंकी नवीन वेश-भूषा या रहन-सहन प्रदर्शित करने वाले दृश्य, चित्रोंके चित्र, सुन्दर बच्चे, सुन्दर स्त्रियाँ, समूह चित्र, ऐसे व्यक्तियोंका चित्र जिनसे किसी विशेष जाति या समूह जैसे काबुली, गोंड़, गँवार भिखमंगा छैला, विद्यार्थी प्रोफेसर, इत्यादि व्यक्त किया जा सके, ऐसे चित्र जो कलाकी दृष्टिसे सुन्दर हों; मकान, मकानोंके भीतरका दृश्य, मन्दिर, इत्यादि; पालतू जानवर और उनकी भाव-भंगी, जंगली जानवर (चिड़ियाखानेमें), चिड़िया;
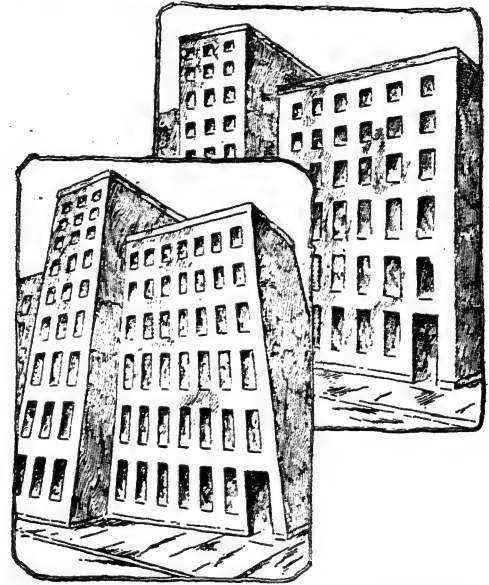
मकानका फोटो खींचते समय कैमेरेकी पीठ ठीक खड़ी रक्खी जाय और आवश्यकतानुसार लेंजको ऊपर खिसका दिया जाय। इससे मकानकी खड़ी लकीरें खड़ी उतरेंगी (देखो ऊपर वाला चित्र)। नहीं तो मकान गिरता सा जान पड़ेगा (देखो नीचेवाला चित्र)।

कृत्रिम प्रकाश (बिजली और फ्लैशलाइट) से मनुष्य चित्रण; आतशबाज़ी; लकड़ी आदिका सुन्दर काम, नक्काशी प्राचीन मूर्तियाँ, इतिहास प्रसिद्ध खंडहर आदि; फल, फूल

कीड़े-मकोड़े; बीस पचीस गुने बड़े पैमाने पर लिये गये चित्र (जैसे मकड़ीकी टाँग; पौधेके तनेकी कत्तल, इत्यादि; इसके लिए विशेष प्रबंधकी आवश्यकता पड़ेगी); सुन्दर जवाहिरात; सिलुएट चित्र (जिसमें सफेद जमीनमें एक-दम काला ब्योरा-रहित चित्र उतरता है), कोई विशेष क्रिया करनेके ढंगको बतलानेके लिए खींचा गया फोटो; खेल-कूद, दौड़ आदिका फोटो, समाचार-पत्रोंके लिए फोटो; रात्रिके समय सड़कके दृश्य या अन्य फोटो; दूरस्थ विषयोंका टेलिफोटो; अनजानमें लिये गये चित्र जिससे मित्रों या नेताओंका कोई विशेष भाव प्रकट होता हो; कोई अभिनय या कथानक प्रदर्शी फोटो, छल-कपटसे बनाया गया ऐसा फोटो जो साधारणतः असंभव हो, जैसे कोई अपने हीसे बात करता हो, इत्यादि; सैरबीनके लिए चित्र, रंगीन चित्र इत्यादि।

प्रकाश विषयपर प्रकाश ऐसा पड़ना चाहिए कि चित्र सुन्दर लगे। साधारणतः प्रकाशका सामने और दाहिनी बगलके बीचसे या सामने और बायीं बगलके बीचसे आना चाहिये और प्रकाशको एक-दम खड़े या एक-दम बेंड़े न पड़ कर कुछ तिरछे हो कर आना चाहिए। प्रत्येक चित्रमें एक प्रधान वस्तु होनी चाहिए। जिस फोटोमें बहुत सी फुटकर वस्तुएँ रहती हैं वे गिच-पिच जान पड़ती हैं और अच्छी नहीं लगतीं। मनुष्य-चित्रणमें पीछेकी जमीन एक रंगकी हो, या एक ओर कुछ गाढ़ी और दूसरी ओर कुछ हलकी हो।

मकानोंका फोटो खींचते समय कैमेरे की पीठ ठीक खड़ी रक्खी जाय और आवश्यकतानुसार लेंजको ऊपर खिसका दिया जाय (केवले अच्छे प्लेट कैमेरोंमें ऐसा किया जा सकता है)। इससे मकानकी खड़ी लकीरें खड़ी उतरेंगी। नहीं मकान गिरता-सा जान पड़ेगा (कुछ लोग ऐसा चित्र जान-बूझ कर बनाते हैं—अपनी-अपनी पसंद)। यदि लेंजको ऊपर उठाया जाय तो लेंज-छेदको छोटा (फ़/१६ या फ़/२२) कर लेना भी जरूरी है।

कैमेरेके भिन्न-भिन्न भाग; फिल्म चढ़ाना कैमेरेके विविध कल पुरज़ोंका काम दूकानदारसे पूछ कर, या कैमेरेके साथ मिली प्रयोग-विधि-पुस्तिकाको पढ़ कर जान लेना चाहिए। फिल्म चढ़ानेकी रीति भी अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। फ़िल्म चढ़ानेका काम बहुत उँजालेमें न किया जाय और फिल्मका पुलिंदा ढीला होने, या खुलने न पाये; अन्यथा भीतर प्रकाशके घुस जानेके कारण फिल्म खराब हो जायगा। पुलिंदेको कसनेकी चेष्टा करना भी बुरा है क्योंकि तब भीतर-ही-भीतर फिल्म पर खरोंच पड़ जाता है।

प्लेट घर भरनेकी रीति आगे बतलाई जायगी।

फोकस करना—विषयके प्रधान वस्तुकी दूरीको या तो यंत्रमें लगे दूरी-मापकसे नापना चाहिए, या फीतेसे, या छड़ीसे। दूरी मापक (range finder) केवल बहुमूल्य कैमेरोंमें रहता है और फीते आदिसे दूरी नापनेमें असुविधा होती है। ऐसी दशामें दूरी आँक कर ही काम चलाया जा सकता है। कुछ अभ्यासके बाद (बार-बार अनुमान करके दूरीको वस्तुतः नापनेसे) इसमें सभी दक्ष हो सकते हैं।

नपी या अनुमानित दूरीके अनुसार लेंज़को उचित स्थानमें ला देना चाहिए। इसमें भूल हो जानेसे फोटो अतीक्ष्ण उतरेगा।

यदि प्लेट या रिफ़्लेक्स कैमेरा हो तो फोकस पर्दे पर लेंजसे बनी मूर्तिको देखकर फोकस करना चाहिए। हो सके तो प्रवर्द्धक ताल द्वारा इस मूर्तिको देखना चाहिए जिसमें फोकस खूब सच्चा किया जा सके।

यदि कैमेरेमें फोकस करने (अर्थात् लेंजको हटाने-बढ़ाने) का कोई प्रबंध न हो तो इस बात पर ध्यान रखना चाहिए कि प्रधान वस्तु दस-बारह फुटसे अधिक समीप न हो और गौण (अप्रधान) वस्तुओंमेंसे कोई भी सात-आठ फुटसे अधिक पास न हो।

कितना बड़ा लेंज छेद?—विषयके सब भाग अकसर एक ही दूरी पर नहीं रहते। ऐसी दशामें औसतसे कुछ कम दूरी पर फोकस करना ठीक न होगा। उदाहरणतः यदि विषयका कोई भाग १० फुट पर है और कोई २५ फुटपर है तो औसत १७½ फुटके बदले १५ फुटकी दूरी स्थिति पर लेंजको रखना उचित होगा। इसके बाद लेंज-छेदको इतना (नीचे देखो) छोटा कर देना चाहिए कि विषयके सब भाग तीक्ष्ण उतरें।

यदि विषयके सब भाग प्रायः एक ही दूरी पर हों तो लेंज-छेदको छोटा करनेकी कोई आवश्यकता नहीं। हाँ,

कभी-कभी शटरमें उचित गति (वेग) न रहने पर भी लेञ्ज-छेद्को छोटा या बड़ा करना पड़ता है। जैसे यदि फ़/११ पर $\frac{१}{४}$ सेकंडका प्रकाश-दर्शन देना हो और शटरमें $\frac{१}{४}$ सेकंडकी गति न हो तो छेद्को फ़/२२ करके १ सेकंडका प्रकाश दर्शन दिया जा सकता है। या, यदि कैमरेमें केवल $\frac{१}{२५}$ सेकंडकी शटर

लेञ्ज-छेद और फोकसकी गहराई। ज्यों-ज्यों लेञ्ज-छेद छोटा किया जाता है त्यों-त्यों फोकसकी गहराई बढ़ती जाती है। फ़ ४·५ पर केवल मनुष्य फोकसमें है; फ़/८ पर मनुष्य और पेड़; और सामनेकी झाड़; फ़ २२ पर अनन्त दूरीसे लेकर पास तककी वस्तुएँ सभी तीक्ष्ण हैं।

गति हो तो फ़/४·५ पर १ २५ सेकंड का प्रकाश-दर्शन दिया जा सकता है।

ऊपर कहा गया है कि लेंज-छेद इतना छोटा करना चाहिए कि विषयके सब भाग फोकसमें आ जायँ (अर्थात् तीक्ष्ण हो जायँ)। अधिकतर तो इसमें अनुमानसे काम लिया जाता है क्योंकि छेद्को आवश्यकतासे अधिक छोटा कर देनेसे कोई हानि नहीं होती। परन्तु यदि अधिक सच्चाई को आवश्यकता हो तो ध्यान रखना चाहिए कि २$\frac{१}{२}$″ × ३$\frac{१}{२}$″ के चित्रोंके लिए और साधारण (न कि टेलिफ़ोटो) लेञ्ज लगे रहने पर विविध लेञ्ज-छेदोंके लिये फोकसकी गहराईका पता नीचेकी सारिणीसे चल सकता है। जब सारिणीमें दी गई किसी दूरी पर फोकस दिया जाता है तो उससे पहले लिखी दूरीसे लेकर उसके बादको लिखी दूरी तककी सब वस्तुएँ फोकसमें रहती हैं।

फ़ोकसकी गहराई

फ़, ३·५—अनंत १२०,६०,४०,३०,२४,२०,१७,१५,१२,

लेञ्ज छेद और फोकसकी गहराई। देखो कि बड़े लेञ्ज-छेद (फ़/४·५) केवल बालक तीक्ष्ण फोकसमें है; मझोले लेञ्ज-छेद (फ़/८) पर बालक और स्त्री दोनों तीक्ष्ण फोकसमें है; छोटा लेंज-छेद (फ़/२२) पर कुत्ते से लेकर दूर पर स्थिति वृक्ष तक सभी तीक्ष्ण फोकसमें हैं।

१२,११.१०,९ २,८·६ ८.७ ५,७ फुट

फ़/४·४ अनंत ७०,३५,२३ १७·५,१४.११ ७,१० ८·७५ ७ ८, ७ फुट

फ़, ५·६—अनंत,६०,३०,२०,१५,१२,१०,८ ६,७ ५,६·७ फुट

फ़/८—अनंत, ४०,२०,१३,१०,८.६·७ फुट

फ़/११—अनंत,३०.१५ १० ७ ५.६ फुट

फ़ १६—अनंत,२०.१०,६·७ फुट

बड़े कैमेरोंमें फोकसकी गहराई कम और छोटेमें अधिक होती है, परन्तु चूँकि बड़े चित्रोंको कम और छोटे चित्रोंको

कई गुना बड़ा पड़ता है, इसलिए ऊपरकी सारिणीसे छोटे या बड़े कैमेरे वाले भी काम चला सकते हैं।

शटरकी गति— लेंज-छेद ठीक करनेके बाद शटरकी गतिको आवश्यकतानुसार कम या अधिक करके प्रकाश

कोई वस्तु यदि सीधे कैमेरेकी ओर आती हो तो विशेष तेज़ शटरकी आवश्यकता नहीं पड़ती; उदाहरणतः चित्रमें दिखलाये विषय १/२५० सेकंडके प्रकाश-दर्शनमें भी काफ़ी तीक्ष्ण उतरेगा।

दर्शन दिया जाता है; इसे कितना अधिक या कम करना चाहिये यह आगे बतलाया जायगा।

परन्तु इस बात पर ध्यान रखना चाहिए कि यदि प्रकाशदर्शन इतना अधिक निकले कि उतने समयमें विषय के हिल जानेकी संभावना हो तो चित्र न लेना ही उचित है। जैसे, यदि लेंज इतना सुस्त है (जैसे फ़/११) या प्रकाश इतना मंद है (जैसे बदलीमें) कि प्रकाश दर्शन १/१०० सेकंड निकले और विषय दौड़ती मोटर हो तो फोटो लेना बेकार है। क्योंकि १/१०० सेकंड प्रकाशदर्शन देने पर चित्रमें मोटरकी जगह लीपा-पोती हो जायगा। ऐसे विषयोंके लिये लेंज और प्रकाशको इतना तेज़ होना चाहिये कि प्रकाश दर्शन १/१००० सेकंडका लगे।

कोई वस्तु यदि सीधे कैमेरेकी ओर आती हो या सीधे इसकी विपरीत दिशामें जाती हो तो प्रकाश-दर्शन कुछ अधिक भी दिया जा सकता है। जैसे साइकिल सवार, दौड़ते मनुष्य, रेलगाड़ी, मोटरकार आदिके लिए, यदि वे कैमेरेसे पचीस-तीस फुट या अधिक दूरी पर हों और कैमेरेकी ओर या ठीक उलटी दिशामें वे चलते हों तो १/५०० सेकंडके प्रकाश-दर्शनसे काम चल जायगा परंतु यदि वे दृष्टि-क्षेत्रको पार कर रहे हों (और बीस-पचीस फुट की दूरीसे फोटो लिया जाय) तो इनमेंसे कई एकके लिए १/१००० सेकंडका प्रकाश-दर्शन भी काफ़ी तेज़ नहीं

तीव्र गतिसे चलते विषयका फोटो साधारणतः ऐसे दृष्टिकोणसे लेना चाहिये कि दर्शनके हिसाब से वे तिरछी दिशामें चलते हों।

होगा। साधारणतः इन विषयोंका फोटो ऐसे दृष्टि-कोणसे लेना चाहिए कि वे तिरछी दिशामें आते या जाते हों। तब २० या २५ फुट की दूरीसे फोटो लेनेपर १/५०० या १/१००० सेकंडका प्रकाश-दर्शन देनसे काम चल जायगा (नज़दीकसे फोटो लेनेपर इतने कम समयके प्रकाश-दर्शन देनेपर भी वे नेगेटिवमें काफ़ी हिल जायँगे)। अवश्य ही लेंज़-छेद इतना बड़ा हो (लेंज़ इतना तेज़ हो) कि प्लेट या फिल्मको इतने ही में पूरा प्रकाश-दर्शन मिल जाय।

तिपाई— यदि प्रकाश-दर्शन १/२५ सेकंडसे अधिक देना हो तो कैमेरेको हाथमें पकड़नेके बदले तिपाई (tripod) पर रखना चाहिए, अन्यथा हाथके हिलनेसे फोटो अतीक्ष्ण हो जायगा। कैमेरेके लिए तिपाइयाँ बिकती हैं। यथासंभव मज़बूत तिपाई लेनी चाहिए। हल्की या कम दामकी तिपाइयाँ शीघ्र डगडगाने लगती हैं।

फोटो खींचनेके विविध पद—(१) विषयको सुनिए और आगे-पीछे या अगल-बगल हटकर और कैमेरेको ऊपर-नीचे रखकर देख लीजिये कि चित्र कहाँसे अच्छा आता है। कैमेरेके दृश्य-बोधक (viewfinder) या

फोकस-परदेसे इस बातमें सहायता मिलेगी।

नोट—सस्ते कैमेरोंके दृश्य-बोधकों पर बहुत भरोसा न करना चाहिए, अर्थात् किनारेके स्थानोंमें चित्रका कोई आवश्यक अंग न रहे। दृश्य बोधकके ज़रा भी टेढ़ा रहने पर ये भाग फोटोमें कट जा सकते हैं।
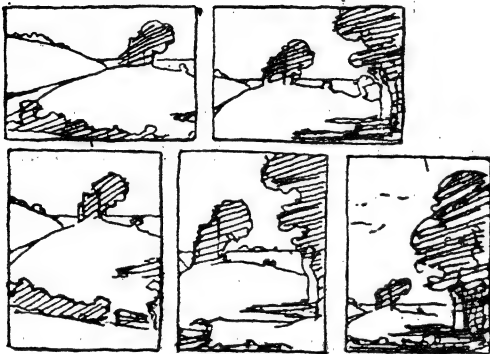
आगे-पीछे, या अगल-बगल हटकर और कैमेरेको ऊपर-नीचे रखकर देख लीजिये कि चित्र कहाँसे अच्छा आता है। ऊपरके नक्शेमें एक ही विषयका चित्र पाँच स्थानोंसे खींच कर दिखलाया गया है, वे कितने विभिन्न हैं।

(२) मापकसे या सारिणीसे प्रकाश-दर्शनका पता लगाइये।

(३) कैमेरेको खोलकर तैयार कीजिए।

(४) लेंज़को विषयकी दूरीके अनुसार उचित स्थितिमें लाइए।

(५) लेंज-छेदको आवश्यकतानुसार छोटा या बड़ा कीजिए।

(६) शटरको उचित गतिपर लाकर तैयार कीजिए।

(७) कैमेरेको दृढ़तासे पकड़ कर साँस रोक कर प्रकाश दर्शन दीजिए।

(८) चाभी ऐंठ कर फिल्मका एक नया भाग लेंज़के सामने लाइए (या प्लेट बदलिए या फिल्म पैक हो तो पुछिल्ला खींचकर फिल्म बदलिए)।

(९) तब दूसरा फोटो लीजिए, नहीं तो कैमेरेको पाकेट या थैलेमें रखकर चल दीजिए।

कौन-सा फिल्म—यदि दूकानदारसे डेवेलप कराना है तो कोई भी फिल्म (या प्लेट) खरीदिये। परन्तु यदि स्वयं डेवेलप करना है तो पहले साधारण फिल्म या प्लेट (जो पैनक्रोमैटिक न हो) खरीदना चाहिए, क्योंकि पैनक्रोमैटिक फिल्म या प्लेटको एक दम अंधेरेमें डेवेलप करना पड़ता है।

यदि प्लेट या फिल्ममें ऐंटी हैलेशन बैकिङ्ग हो तो और भी अच्छा। इससे वह रोशनी जो जेलेटिनको पार करके फिल्म या प्लेट तक पहुँचती है लौटने नहीं पाती। इसलिए चित्र अधिक तीक्ष्ण उतरता है; हैलेशन नहीं उत्पन्न होता (हैलेशन प्लेट या फिल्मकी पीठसे लौटे प्रकाशके कारण विषयके रूप-रेखाके फैलनेको कहते हैं)।

नौसिखियेको चाहिए कि वह कुछ समय तक एक ही कंपनीके किसी एक फिल्मका इस्तेमाल करे। इसके प्रयोग में सिद्ध हो जाने पर वह जो चाहे सो करे। पहले ही फिल्म बदलते रहनेसे अंदाज़ जल्द नहीं मिलता।

नोट—फिल्म, प्लेट, ब्रोमाइड और लाइट कागज़को यथासंभव सूखे और ठंढे स्थानमें रखना चाहिए। गरमी और सीड़से वे खराब हो जाते हैं।

प्रकाश-छनना—लेंज़के सामने प्रकाश छनना या फिल्टर (filter) न लगाने पर जो चित्र उतरता है उसमें यह त्रुटि रहती है कि पीली, हरी और लाल वस्तुएँ आवश्यकतासे अधिक काली और नीली वस्तुएँ आवश्यकता
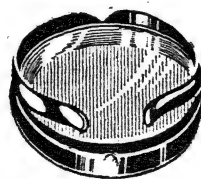
फिल्टर।

लेंज़के सामने पीला फिल्टर लगाकर फोटो लेनेसे चित्रमें बादल भी उतर आ सकता है।

से अधिक सफेद उतरती हैं। उदाहरणतः यदि नीले आसमानमें कहीं-कहीं सफेद बादल हों तो बिना फिल्टरके फोटोमें नीला आसमान इतना सफेद आता है कि उसमें

बादल दिखलाई नहीं पड़ते। प्रकाश छनना लगाने पर नीला आसमान कुछ काला छपता है और बादल सफेद छपते हैं। इसलिए बादल स्पष्ट दिखलाई पड़ते हैं। इसी प्रकार लाल फूल साधारण रीतिसे लिये गये फोटोमें काले उतरते हैं। उचित प्रकाश छनना लगाने पर वे काले नहीं उतरते।

पैनक्रोमैटिक फिल्मोंके साथ हरे या पीले-हरे छननेका इस्तेमाल होता है और ऑरथोक्रोमैटिक फिल्मोंके साथ पीले छननेका। रोल फिलम सभी या तो पैनक्रोमैटिक या ऑरथोक्रोमैटिक बनते है, परन्तु कुछ प्लेट ऐसे भी बनते हैं जो न तो पैनक्रोमैटिक और न ऑरथोक्रोमैटिक होते हैं। उनके साथ छननेका इस्तेमाल नहीं किया जा सकता।

गीला मंजन (टूथ-पेस्ट) बनानेकी विधि

बढ़िया साबुन	१ पौंड
टैलकम	१ पौंड
ऑरिस-रूठ	१ पौंड
चीनी	½ पौंड
पानी	½ पौंड
इत्र लौंग	७५ ग्रेन
इत्र पिपरमिंट	१८० ग्रेन

साबुनको अच्छी तरह घोलनेके लिए काफी समय लगेगा और बार-बार चलाना भी पड़ेगा। बाजारमें ऐसा मंजन राँगेकी नलिकाओंमें बन्द कर बेंचा जाता है। घरके लिए इसे चीनी मिट्टी, शीशे, सेलुलायड या बेकलाइटकी डिबियोंमें रक्खा जा सकता है।

अकसर मंजन लाल रँग दिया जाता है। इसके लिए किरमिजका रंग (कारमाइन) डालना अच्छा है।

चीनीके बदले अकसर सैकरीन डाला जाता है। जरा-सा सैकरीन बहुत-सी चीनी (करीब २०० गुनी चीनी) का काम देता है क्योंकि इसमें मिठास बहुत होती है। सफेद मंजनोंमें सैकरीन ही अधिक उपयुक्त है क्योंकि चीनीसे रंग कुछ मैला हो जाता है।

(उपयोगी नुसख़ेसे)

आवश्यक सूचना

श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव कृत सूर्य-सिद्धान्त के विज्ञान भाष्य के अंतिम दो अध्याय, तथा भूमिका और अनुक्रमणिका छप गई है और विज्ञान परिषद् के सभ्यों के पास २२ मार्च १९४१ को भेज दी गई है। यदि किसी सभ्य के पास न पहुँची हो तो कृपया मुझे सूचित करें।

मंत्री, विज्ञान परिषद्।

विषय-सूची

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग।

विज्ञान

प्रयागकी विज्ञान-परिषद्का मुख्यपत्र

VIJNANA THE HINDI ORGAN OF THE VERNACULAR SCIENTIFIC SOCIETY ALLAHABAD.

भाग ५३

मेष-कन्या १९९८, अप्रैल-सितम्बर १९४१

प्रकाशक—

विज्ञान–परिषद्, प्रयाग

वार्षिक मूल्य तीन रुपये

विषयानुक्रमणिका

आयुर्वेद विज्ञान व चिकित्सा विज्ञान

उद्योग और कलाकौशल

औद्योगिक रसायन

कृषि व बागवानी

छाया चित्रण (फोटोग्राफी)

जीवाणु-कीटाणु विद्या

जीवन चरित्र

प्राणि-विद्या

वनस्पति शास्त्र

भौतिक विज्ञान

रसायन विद्या

विद्युत् शास्त्र

साधारण

विज्ञानं ब्रह्मेति व्याजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्याभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५४

भाग ५३	प्रयाग, मेष, संवत् १९९८ विक्रमी	मई, सन् १९४१	संख्या २

प्रसरणशील जगत् (३)

[ले० प्रो० ए० सी० बैनर्जी]

गत लेखमें आइन्सटाइन-विश्व और डि-सिटेरके विश्वका उल्लेख किया जा चुका है। यदि विश्वांकको शून्य वा ऋण मान लिया जाय तो टॉलमनके अनुसार विश्वका स्पन्दित रूप (oscillating) स्वीकार करना पड़ेगा। तापगतिविज्ञानके आधारपर विश्वोंके सम्बन्धमें प्रवाहको कल्पना असंभव है, और अन्तमें समस्त द्रव्य की विकिरण-में परिणत होनेकी सम्भावना ही अधिक है। टॉलमनने ऐसे विश्वकी भी धारणा प्रस्तुत की है जिनमें प्रत्यावर्त्त प्रक्रियाओंके लिये यह आवश्यक नहीं है कि उनकी एण्ट्रॉपी अधिकतम हो जाय या स्वतन्त्र-सामर्थ्य (free energy) न्यूनतम हो जाय।

विश्व प्रसारमें चरम-क्षण—यह स्मरण रहना चाहिये कि हमारा गोलाकार अन्तरिक्ष यूक्लिड वाला नहीं है। यह तो चार मितियों वाले परम गोलेकी त्वचा है। द्रव्यके समान यह अन्तरिक्ष भी वक्र हो जाता और बन्द हो जाता है। इसमें स्थित किसी एक गैलेक्सीको हम दूसरी गैलेक्सीकी अपेक्षा अधिक केन्द्रीय नहीं मान सकते हैं, और किसी एकको दूसरेके बाहर नहीं कह सकते हैं। एक और बात ध्यान देने योग्य है। आइन्सटाइन-विश्वके चारों ओर प्रकाशकी किरण घूम आ सकती है, पर डि-सिटेरके विश्व-के चारों ओर नहीं जा सकती। विश्वके प्रसारके समय पीछे हटनेकी गति जब प्रकाशकी गतिसे अधिक हो जाती है तो फिर प्रकाश-रश्मिको विश्वका चक्कर लगाना असंभव हो जाता है। इसे हम चरमावस्था या चरम-क्षण (critical moment) कहते हैं। जिस किरणको हम देख रहे हैं, सम्भव है, वह चरम-क्षणसे पहले चली हो, और हम तक पहुँचनेसे पूर्व इसने विश्वके कई चक्कर लगा लिये हों। चरम-क्षणके पश्चात् प्रकाशको ऐसे पथपर दौड़ना होता है जो प्रसरणशील है और इष्ट स्थान (जहाँ तक दौड़ना है) प्रकाशकी गतिसे अधिक गतिके साथ पीछे हटता जाता है। व्यासार्ध प्रसरित होकर जब पहलेका १·०७३ गुना हो जाता है, तो चरमावस्था आ जाती है, और

तब प्रकाश आधा चक्कर भी नहीं लगा सकता है। इस चरम-क्षणके पश्चात् प्रत्येक तारेके लिये विश्वका एक भाग है जहाँ इसकी किरण कभी पहुँच ही नहीं सकती। हम तब सचमुच कह सकते हैं कि बुलबुला फूट गया, क्योंकि ऐसे स्थान, जिनके बीचमें प्रकाश द्वारा संपर्क न हो सके, फूटे हुये बुलबुलेके समान हैं।

प्रेत तारे— यदि हम सृष्टिको गोलाकार मानें तो गणितकी दृष्टिसे एक उल्लेखनीय बात प्रस्तुत होती है। यह है "प्रेत-तारों' का सिद्धान्त। पूर्ण गोल सृष्टिमें एक बिन्दुसे चारों ओरको गई हुई समस्त किरणें सृष्टिका चक्कर लगाकर फिर उसी बिन्दुपर संग्रहीत हो जायँगी। इस प्रकार बिन्दुका एक वास्तविक बिम्ब होगा जिसमें फिर किरणें सब दिशाओंको चलेंगी। सम्भव है कि भूलसे लोग इस बिम्बको वास्तविक बिन्दु समझ लें। पर प्रकाशको सृष्टिके चारों ओर जानेमें समय लगता है और कम-से-कम परिधि होने पर भी, अपने स्थान तक लौट आनेमें प्रकाशको ६७००० लाख वर्ष ($6 \cdot 7 \times 10^9$ वर्ष) लगेंगे। दूसरे, तीसरे और इसी प्रकार अन्य चक्करोंको पूरा करने पर दूसरे, तीसरे और अन्य बिम्ब बनेंगे। पर सृष्टि पूर्ण गोलाकार नहीं है, अतः ये सब बिम्ब अस्पष्ट धुँधले होंगे। ये बिम्ब ही "प्रेत-तारा" हैं। पूर्ण गोल सृष्टिमें तो कोई घटना घट ही नहीं सकती; इस सृष्टिकी असमानतायें ही घटनाओं का कारण हैं।

पृथ्वीकी आयु— एडिंगटनने हिसाब लगाकर बताया है कि हमारा विश्व एक अरब तीस करोड़ वर्षोंमें पहलेकी अपेक्षा दुगुना हो जाता है। उनके हिसाबसे प्रसरणसे पूर्व विश्वका प्रारम्भिक व्यासार्ध ३२८ मेगापारसेक अथवा १ अरब ६ करोड़ ८० लाख प्रकाशवर्ष ($1 \cdot 068 \times 10^9$) था। भौतिक विज्ञानवेत्ता ये बताते हैं कि १ अरब वर्षोंमें आउन्स यूरेनियम विच्छिन्न होकर ०·८६५ औंस सीसा और ०·१३५ औंस हीलियम देता है। यह विच्छेद-प्रक्रिया स्वाभाविक और स्वतः है। अतः यूरेनियमका विच्छेद हमारे लिये एक विश्वसनीय घड़ीका काम देता है, यदि हम यह जाने सकें कि किसी समय तक कितना यूरेनियम बच रहा है और कितना सीसा बन गया। इस प्रकार यदि यूरेनियम वाली शिलाकी हम परीक्षा करें, तो हम कह सकते हैं कि पृथ्वीके ठोस होनेसे इस समय तक कितने वर्ष लगे। इस हिसाबसे पृथ्वीकी आयु १ अरब ४० करोड़ वर्ष ठहरती है। पर यह घड़ी यह नहीं बता सकती कि पृथ्वी वावस्थामें कितने समय रही, क्योंकि इस अवस्थामें विच्छेद-प्रक्रियासे उपलब्ध पदार्थ छिन्न भिन्न हो गये। यूरेनियम और एक्टिनो यूरेनियमकी सापेक्ष मात्राओंका हिसाब लगाया जाय तो उससे पृथ्वीकी आयु ३ अरब ४० करोड़ वर्षके लगभग ठहरती है।

जिस गतिसे ग्रहों और उपग्रहोंके कक्षोंके आकार बदलते हैं उनका भी कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। डा० जेफरीज़ने मरकरी-ग्रहके कक्षके आकारसे यह अनुमान लगाया है कि जबसे ग्रह बने तबसे अब तक सौरमंडलकी आयु १ अरबसे १० अरब वर्षके बीचकी हुई। चन्द्रमा को कक्षासे यह आयु ४ अरब वर्षकी ठहरती है। मोटे तौरपर हम कह सकते हैं कि जबसे ग्रह बने, हमारे सौर-मंडलकी आयु २ खरब वर्षके लगभग की है * उल्काओंमें विद्यमान यूरेनियम भी पृथ्वीकी इतनी ही आयु बताता है।

यदि यह मान लिया जाय कि तारोंकी कक्षायें धीरे-धीरे सामर्थ्यकी साम्यावस्थाके प्रति परिवर्तित होती रहती हैं और इन कक्षाओंकी उत्केन्द्रताओंका हिसाब लगाया जाय तो तारोंकी औसत आयु ५०००००००००००० (५० अरब वर्ष) से लेकर १०००००००००००००० (१०० खरब वर्ष) तक ठहरती है। तारोंसे विकीर्ण प्रकाश द्वारा भी आयुका अनुमान इतना ही होता है। औसत तारा जिसमें सूर्यकी अपेक्षा दुगुना भार हो, सूर्यकी अपेक्षा ८ गुनी सामर्थ्य विकीर्ण करता है। सूर्य या किसी तारेकी भूतकालीन एवं भविष्य आयुकी गणना लगाते समय इस बातको ध्यानमें रखना चाहिये। इसके कारण भूतकालीन आयु घट जाती है और भविष्यकालीन बढ़ जाती है। ८० खरब वर्ष पूर्वके सूर्यमें तो इतना अधिक भार मानना पड़ेगा जिसकी कल्पना करना भी कठिन है। औसत तारेकी आयु बराबर ही (८० खरब वर्ष) है। पर प्रसरणशील विश्व के सिद्धान्तके अनुसार सूर्य अथवा तारोंकी यह आयु ठीक

* आर्योंका सृष्टि संवत्सर १ अरब ९७ करोड़ वर्ष है। स० प्र०

नहीं ठहरती। आइन्सटाइनका स्थिर विश्व जिस समयसे प्रसरित होने लगा उस समयसे यदि हम विश्वकी आयुकी गणना करें, तो सूर्य या तारोंकी आयु ऊपर दी हुई आयुओंसे कम ठहरती है। मुझे तो ऊपर दी गई ज्योतिष-विधियोंसे निकाली गयी आयु अधिक विश्वसनीय प्रतीत होती है। विश्वकी प्रसरणशीलताकी दृष्टिसे हमें यह मानना पड़ेगा कि विश्व स्थिर अवस्थामें बहुत अवधि तक रहा, और इसके प्रसरण होनेसे पूर्व ही तारोंका जन्म हो चुका था। पर इसमें भी एक कठिनाई है। यह स्थिर विश्व भी परिवर्तनशील है तो इतने अधिक समय तक यह कैसे स्थिर रह सका? टॉलमनका प्रसरण और संकोच वाला विश्व सम्भवतः अधिक उपयुक्त हो। विश्वमें बहुत समय तक बारी-बारीसे संकोच और प्रसार होता रहा हो, और इस समय यह प्रसारकी दशा है। टॉलमनकी पुष्टि एक और बातसे भी होती है। यह सम्भव है कि किसी दूरस्थ नीहारिकाकी पिछड़ी हुई गति प्रकाशकी गति तक पहुँचनेसे पूर्व ही विश्वका प्रसार संकोचमें परिणत हो जाय। ऐसी अवस्थामें विश्वमें क्रम-भंगता आनेकी आशंका नहीं रहेगी।

अभी हालमें आइन्सटाइन और डि-सिटेरने विश्वांकको शून्य माना, और इस आधार पर उन्होंने जो सूत्र दिये उनसे प्रकट है कि आरम्भसे तो समस्त द्रव्य कोणीय-गतिसे विस्फुटित हुआ, और फलतः जिस गतिसे गैलक्सियोंका इस समय विस्तरण हो रहा है उसमें कहीं अधिक गतिसे उनका विस्तरण हुआ। डि-सिटेरने यह भी कहा कि विश्वांक ऋण संख्या भी हो सकता है। ऐसा मानने पर विश्वमें हटावके स्थानमें आकर्षण होने लगेगा। किसी नीहारिकाका दूर हटता जाना विश्वाकर्षणका प्रमाण नहीं है।

मिलने यह बताया है कि यदि वर्तमान वेग वाली (या इससे अधिक वेगवाली) गैलेक्सियोंको थोड़ेसे आयतनमें संघटित माना जाय तो यह मानना पड़ेगा कि जिनकी गति इस समय सबसे अधिक है, वे सबसे दूर भी भ्रमण कर चुकी है। गुरुत्वाकर्षणके प्रभावको छोड़ देने पर हमें यह पता चलता है कि एक विशेष क्षेत्रमें गति केन्द्रसे क्षेत्रकी दूरीके समानुपाती है। इस सिद्धान्तके अनुसार शून्यसे लेकर प्रकाश तककी सभी गतियाँ सम्भव हैं। छोटी गतियोंकी अपेक्षा बड़ी गतियोंकी सम्भावना अधिक है। गैलेक्सियोंके सघन समूहमें इस प्रकारकी गतियाँ कैसे प्रारम्भ हो सकीं इसकी कल्पना करना बड़ा कठिन है।

प्रोफेसर कैस्टलनूवोने एक सघन केन्द्रीय नीहारिका कल्पना की है जिसके कारण आकाश-गंगा और गैलेक्सीसे बाहरकी नीहारिकायें अलग-अलग छितरी रह सकीं। उनका कहना है कि इस कल्पनाके आधारपर रश्मिचित्र द्वारा प्रकट घटनाओंका समाधान किया जा सकता है। पर यह केन्द्रीय नीहारिका आकाश-गंगा और गैलेक्सीसे बाहरकी नीहारिकाओंको कैसे अलग अलग छितरा सकी, यह कहना कठिन है।

डा० ज़्विकीने पहले यह धारणा प्रस्तुत की थी कि गुरुत्वाकर्षणके प्रभावके कारण प्रकाशकी कुछ सामर्थ्य गैलेक्टिक क्षेत्रमें फैले हुये द्रव्योंके कणोंको प्राप्त हो जाती है; पर बादको पता चला कि ज़्विकीके हिसाबमें गलती थी।

डि-सिटेरके सूत्रसे यह परिणाम निकलता है कि आणविक कम्पनमें दूरीके समानुपाती ह्रास हो जाता है, और उसके अनुपातसे ही रश्मि चित्रकी रेखाओंमें लाली आ जाती है पर इसका कारण क्या है, यह स्पष्ट नहीं।

प्रो० मैकमिलन की सम्मति है कि रेखाओंका लाली-की ओर अग्रसर होनेका कारण फोटोनकी सामर्थ्यका कालान्तरमें ह्रास होना है। फोटोनका ह्रास या तो आन्तरिक अस्थिरताके कारण होता है या दूसरे फोटोनोंसे संघर्ष खानेके कारण।

जान्स हॉपकिन्स यूनिवर्सिटीकी कुमारी क्लार्कने इस सम्बन्धमें एक मनोरञ्जक कल्पना की है। उनका कहना है कि नीहारिकाओंकी गतिओंमें जो अन्तर दिखाई पड़ता है वह कालकी अपेक्षासे है न कि दूरीकी अपेक्षासे। सभी नीहारिकायें एक निश्चित वेगसे चल रही है और गुरुत्वाकर्षण और विश्वाकर्षणके कारण (विश्वांक ऋण होकर) यह वेग कालकी अपेक्षासे कम हो जाता है। वह प्रकाश जो १५०० लाख वर्ष पहले किसी नीहारिकासे चला था हमें यह बताता है कि नीहारिकाकी गति उस समय २५००० किलोमीटर प्रति सेकण्ड थी। पाँच समीपतम नीहारिकायें (जिनकी गतिके विषयमें हमें कुछ परिचय है)

हमारी ओर बढ़ी आ रही हैं, न कि हमसे दूर हट रही हैं। इसका अभिप्राय यह है कि अब वह समय बीत चुका जब कि विश्वमें प्रसरण होता था, अब तो इसमें संकोच आरम्भ हो गया है।

इस लेखमें जो कुछ सिद्धान्त लिखे गये हैं वे अधिकतर कल्पनाकी उड़ान हैं। रश्मि चित्रकी रेखायें क्यों स्थानान्तरित होती हैं, इसका ठीक कारण हमें नहीं ज्ञात है। आजकलके ज्योतिषीकी अवस्था उस अन्धे व्यक्तिके अनुरूप है जो अँधेरी कोठरीमें उस काली बिल्लीकी खोज कर रहा है जो वहाँ नहीं है।

मधु-मक्खी पालन

[लेखक—श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालङ्कार]

मधुमक्खी पालनका इतिहास—लगभग अज्ञात कालसे सम्भवतः पृथ्वीके प्रत्येक भागमें मधु मक्खियोंके अध्ययनकी ओर ध्यान दिया गया है। समस्त देशोंके प्राचीन साहित्यमें मधु, मधुमक्खी और उसके छत्तेका वर्णन मिलता है।

सृष्टिके आदि मनुष्यमें धीरे-धीरे जब कला-कौशलका विकास हुआ तो उसने इस अत्यन्त उपयोगी पदार्थ मधु की ओर ध्यान दिया और मधुमक्खियोंका पालना आरम्भ किया। उसके साधन अत्यन्त सरल और परिमित होते थे। उसने दीवारोंमें सुरंगे बना कर या लकड़ीके खोखले लट्ठोंमें अथवा तिनकेकी टोकरियोंमें मक्खियाँ पालीं।

मनुष्य ने जब लकड़ी काटकर तख्ते बनाना सीखा तब उसने मक्खियोंको रखनेके लिए लकड़ीके बक्स बनाए। पहले ये बक्स बहुत भद्दे और मक्खियोंके लिये बहुत सुविधाजनक नहीं होते थे। धीरे-धीरे ज्ञानकी उन्नतिके साथ-साथ अपने अनुभवोंसे लाभ उठाते हुए उसने आधुनिक सब आरामदेह, पूर्ण उन्नत और पेचीदा साधनोंका आविष्कार किया। यूरोपमें कई स्थानों पर अब भी गरीब किसान जो आधुनिक मँहगे उपकरण जुटानेमें असमर्थ हैं टोकरियों आदिमें ही मक्खियाँ पालते हैं।

भारतमें सबसे पूर्व मधुमक्खियोंका पालन पञ्जाबमें आरम्भ हुआ प्रतीत होता है। पञ्जाब और हिमालयके दक्षिणमें यह व्यवसाय सम्भवतः अज्ञात कालसे चल रहा है। रावलपिण्डी मारी, हजारा, शिमला पहाड़ और कुल्लूमें अब भी मक्खियाँ बहुत अधिक पाली जाती हैं और उन स्थानों पर इस घरेलू-धन्धेका प्रारम्भिक इतिहास ढूँढ निकालना कठिन है।

अब, पिछले चालीस–पैंतालीस वर्षसे लोगोंका ध्यान इस ओर खिंचा है और सरकार ने तभीसे इसमें दिलचस्पी लेनी आरम्भ की। संयुक्त प्रान्त, पञ्जाब तथा अन्यान्य प्रान्तीय सरकारें इन दिनों इस धन्धेको उन्नत करनेके लिये विशेष रूपसे प्रयत्नशील हैं। संयुक्त प्रान्तमें नैनीताल और पञ्जाबमें कांगड़ा मधुमक्खी-पालनकी शिक्षा देने के लिए केन्द्र बना दिये गये हैं।

मधुमक्खी पालनकी वर्तमान अवस्था- वर्तमान समयमें यह व्यवसाय भारतमें कुछ स्थानोंपर सफलतापूर्वक चलाया जा रहा है। मधुमक्खी पालनेके लिए हमारे देशमें अभी बहुत अधिक क्षेत्र है विशेषकर पर्वतीय प्रदेशों में यह कार्य अच्छी सफलताके साथ चलाया जा सकता है। उत्तर भारतमें हिमालय, काश्मीर, कांगड़ा, कुल्लू, होशियारपुर, मण्डी स्टेट, मसूरी, गढ़वाल, नैनीताल आदि इसके लिए उपयुक्त स्थान हैं। पहाड़ों पर मक्खियाँ अधिक अच्छा और परिमाणमें भी अधिक शहद उत्पन्न करती है। दक्षिण भारतमें त्रावनकोर, नीलगिरि, कोयम्बटूर, सलेम, कुर्ग आदि पश्चिमी घाटके नौ सौ मील लम्बे क्षेत्रमें और पूर्व और पश्चिमी घाटमें तथा आबू, विन्ध्य आदि पहाड़ोंमें भी यह उद्योग चलाया जा सकता है। पहाड़के पासके स्थानोंमें, जैसे हरिद्वार, देहरादून और बंगालमें कलकत्तामें भी मक्खियाँ पाली जा रही हैं। उपयुक्त स्थानोंमें कई जगह अच्छी सफलता मिली है। गृह उद्योगके अतिरिक्त व्यापारिक परिमाणमें भी उन स्थानोंसे शहद बाजारमें आने लगा है।

मधुमक्खी पालन एक लाभदायक उद्योग है—

यह एक ऐसा उद्योग है जिससे अमीर गरीब सब

लाभ उठा सकते हैं। उसके लिए बड़ी पूँजी और लम्बे चौड़े स्थानकी आवश्यकता नहीं होती। थोड़ेसे परिश्रम और ध्यानसे कोई भी व्यक्ति अपने कमानेके धन्धेको करता हुआ भी सहायता उद्योगके रूपसे उसे सुगमतासे चला सकता है। माली, किसान, बढ़ई, घड़ीसाज़, वकील व्यापारी, मिशनरी, सरकारी उच्च ऑफिसर, कॉलेज के प्रोफेसर, स्कूलके मास्टर और विद्यार्थी आदि सभी प्रकार के वर्गोंके व्यक्तियोंको हमने मधु-मक्खियाँ पालते देखा है। इनमेंसे अनेक यूरोपियन मधु-मक्खी पालक भी हैं।

अवकाशके समय उस गृह-उद्योगका अभ्यास मनोरंजनके साथ-साथ हमें दुनियादारीकी चिन्ताओंसे भी कुछ देरके लिए मुक्त कर देता है। खेती और बागवानीका काम करने वालोंके लिए यह धन्धा बहुत लाभप्रद है। परिश्रमी मक्खियाँ फूलोंके परागको एक दूसरे फूलमें पहुँचा कर उन्हें अधिक उपजाऊ बना देती हैं। परिणामतः, फसलकी पैदावार बहुत अधिक बढ़ जाती है। परीक्षणोंसे देखा गया है कि जिन बागोंमें मक्खियों ने परागका वहन किया है उनमें फल पहलेकी अपेक्षा आकारमें डेढ़ गुने या दुगुने बड़े और फसल भी बहुत अधिक प्राप्त हुई है। संसारमें कोई ऐसी चीज नहीं है जो मधुमक्खियोंकी अपेक्षा अधिक अच्छी तरह फूलोंमें परागका आदान-प्रदान कर सके।

खेती और बागवानीमें मधुमक्खियोंको उपयोगिताको ध्यानमें रखते हुए दक्षिण भारतके कुछ स्थानों पर गरीब किसानों और फलोंको खेती करने वालों ने उसी उद्देश्यसे मक्खियोंको पालना आरम्भ किया है। ग्राम्यवासियोंको इस उद्योगके कारण एक मूल्यवान पदार्थ मधु तो मिलता ही है साथ ही उनकी आय भी इस उद्योगके काफ़ी बढ़ जाती है विशेषकर हमारे देशमें क्योंकि और देशोंके मुकाबलेमें मधुमक्खियाँ यहाँ अधिक होती हैं।

मधुमक्खीके गुण—शहदकी मक्खी एक छोटा सा उड़ने वाला सामाजिक जीव है। उसका प्रत्येक सेल हर एक अणु क्रियाशीलता, भविष्य-दूरदर्शिता और धैर्यसे सराबोर होता है। इसके त्रिभुजाकृति चेहरेके पीछे छोटेसे सिरमें समस्त पशुजगत्में सबसे अधिक उन्नत और विकसित मस्तिस्क होता है। अधिक समृद्ध खण्डों और गहरी रेखाओं वाले संकुचित मस्तिष्कका भार इसके शरीर भारका एक सौ पैंसठवाँ हिस्सा बनाता है जब कि मीर्टामें यह दो सौ छियासीवाँ हिस्सा होता है।

इस आश्चर्यजनक प्राणीके सहवाससे हमें जो अनेक प्रकारके लाभ होते हैं वे इसके शहदसे भी अधिक मूल्यवान है। यदि आप प्रेमकी महान् कलाकी उपासना करना चाहते हैं, उदार और विवेकशील बनना चाहते है, मन मस्तिष्क और हाथोंकी शक्तिको विकसित करना चाहते हैं और सच्चे अर्थों में सभ्य बनना चाहते हैं तो मधुमक्खियोंका पालना सीखिए। इन मक्खियोंके जीवन और इनके रीतिरिवाजोंका अवलोकन और मनन करनेसे मनुष्यको व्यवसाय, सहयोग, स्वामिभक्ति, उद्यम और संयमकी अत्यन्त अनूठी शिक्षाएँ मिलती हैं। मधुमक्खियाँ आज सोश्यलिज्म का पूर्ण उदाहरण कहीं जा सकती हैं। अनिवेशकी प्रत्येक मक्खी समाजकी भलाई और हितसाधनके लिए प्रयत्न करती है। प्रत्येक पूर्णतया चतुर है और कोई समाजके लिए अनावश्यक नहीं है। उद्योग निरन्तर क्रियाशीलता और निष्प्रयोजन कुछ न करना समाजके शासक सिद्धान्त हैं। शहदकी मक्खियाँ इन सिद्धान्तोंकी प्रतीक हैं। समयकी कद्र, सेवाका महत्व, कर्त्तव्यका गुरुत्व और ऐक्यका सार समझने वाला यह एक उपयोगी सीधा सादा और हानिरहित निर्दोष जीव है।

शहदका महत्व—पहले शहद नित्योपयोगी वस्तुओंमें था परन्तु अनेक कारणोंसे इस समय भारतमें उसका उतना प्रचार नहीं है। आयुर्वेदमें इसका प्रयोग बहुत विस्तृत रूपमें मिलता है। च्यवनप्राश आदि अवलेह, मकरध्वज आदि रस तथा अनेकानेक चूर्ण, वटी, कषाय आदि सिद्ध औषधियोंके साथ उसका उपयोग होता है। इसके बिना भारतीय चिकित्सा शास्त्र पंगु है। हिन्दू चिकित्साके सर्वोत्तम ग्रंथ, सुश्रुतके अध्ययनसे हमें ज्ञात होता है कि उस कालके लोगोंने इस विषयका बहुत विस्तृत ज्ञान प्राप्त किया था। मधु उत्पन्न करने वाली मक्खियोंके भेद और विभिन्न प्रकारके शहदों पर विद्वान् लेखकने बहुत उत्तमतासे विचार किया है। यह ग्रंथ लगभग तीन हज़ार साल पहिलेका लिखा है जिससे मालूम होता है कि संसारकी किसी जातिकी अपेक्षा सबसे पहले भारतीयोंने इस विषयकी ओर ध्यान दिया था।

बाज़ारू शहदका निकम्मापन—हमारी मांग पूरा करने वाला बाज़ारोंका शहद भयावह तरीकोंसे इकट्ठा किया जाता है। भारतके बड़े-बड़े हिस्सेमें शहद बहुतायतमें जंगली उत्पन्न होता है। भारतीय जंगल शहदके धनी हैं। परन्तु जंगल विभाग भोजन और औषधिके उस महत्वपूर्ण पदार्थकी ओर समुचित ध्यान नहीं देता। जंगलसे शहद निकालनेके ठेके दे दिये जाते हैं। ठेकेदार वहाँके बाशिन्दों-सारङ्ग मक्खी (रौकीवी) के छत्तोंसे शहद इकट्ठा करनेका आदेश देता है। ये जंगली साहसी आदमी अपनेको बड़ी जोखिममें डाल कर ऊँची-ऊँची चट्टानों और वृक्षों पर आग और धुएँसे मक्खियोंको नष्ट करने और भगानेके लिए चढ़ जाते हैं और छत्तेको काट लेते हैं। तब एक ग्राम्य तरीकेसे शहद निचोड़ लिया जाता है और ठेकेदारको बेचनेके लिए सौंप दिया जाता है।

ज़रा सोचिए। निचोड़ने वालेके मैले हाथ किस बेरहमीसे मक्खियोंके अंडोंकी हत्या कर रहे हैं। फिर वह मक्खियोंके अंडोंके रूपसे भावित शहदको तमाखु या किसी दूसरी अप्रिय नाक सिकोड़ने वाली गन्ध छोड़ते हुए कपड़ेमें छान रहा है। कोई आश्चर्य नहीं कि इसके भारमें उसकी लार या सिनक भी थोड़ा हिस्सा ले ले। तो क्या आप शहदकी ओर देखना पसन्द करेंगे, खाना तो दरकिनार। और आगे चलिए। इस शहदमें प्रायः खाण्डकी चासनी भी मिला दी जाती है। सबसे अधिक दुर्भाग्य तो यह है कि इसमेंसे सब मलिनताओंको निकाल देनेके इरादेसे यह उबाल डाला जाता है। संग्रहकर्ता जंगलीको तो क्या मालूम कि सीधी गरमी इसके उपयोगी गुणोंको खो देती है।

ग्रामीण मधुमक्खी पालक वास्तवमें मक्खी-मारक है—वर्तमान समयमें भारतके पर्वतीय ग्रामोंमें किसी-किसी स्थान पर मक्खी पालनेका उद्योग देखनेमें आता है। बड़े-बड़े मटकों, दीवारके छिद्रों और लकड़ीके खोखलोंमें मक्खी पाली जाती है। शहद इकट्ठा हो जाने पर सालमें दो या तीन बार छत्ते काटकर शहद निचोड़ लिया जाता है और छत्ते फेंक दिये जाते हैं। इस विधिमें निम्न दोष हैं—

(१) छत्तेके निचोड़नेमें मक्खियोंके अंडों और बच्चोंके पिस जानेसे शहद शुद्ध नहीं प्राप्त हो सकता है।

(२) यह शहद जल्दी ही बिगड़ जाता है। खमीर उठ कर दुर्गन्ध आने लगती है और स्वाद खट्टा हो जाता है।

(३) अंडे और बच्चेके मर जानेसे मक्खियोंके वंशका नाश हो जाता है और हिंसाका पाप लगता है।

(४) परिमाणमें शहद कम प्राप्त होता है। नये तरीकोंमें इसकी अपेक्षा कई गुना अधिक शहद प्राप्त होता है।

मक्खियोंको पाल कर ग्राम्य तरीकेसे शहद प्राप्त करने वालेको हम मक्खी-पालककी अपेक्षा मक्खी-मारक कहना अधिक पसन्द करेंगे। मक्खी मारक मक्खियोंके घरोंको नष्ट करके जो शहद प्राप्त करता है उसमें बहुत-सी मलिनताएँ होती हैं। और यह तथा कथित शहद थोकमें दो आनेसे ढाई आने तक प्रति पौंड बिक जाता है। शहदकी मक्खियोंके अनेक शत्रु होते हैं, परन्तु उनका सबसे बुरा दुश्मन मनुष्य है और वह भी मक्खी मारककी शक्लमें जो पृथ्वी पर सबसे अधिक चतुर लूटने वाला प्राणी है। उसका कार्य शहदकी मक्खीको भारसे लोप करना होता है जहाँ उसने जन्म पाया है। आधुनिक वैज्ञानिक विधियोंसे मक्खियोंका पालना मक्खीमारकोंको मक्खी पालक बनाता है। मक्खियोंको मार कर शहद प्राप्त करना ठीक वैसा ही जैसे सोनेका अंडा देने वाली मुर्गीको मारना। मक्खियोंको पालनेसे हम उनसे कहीं अधिक लाभ निकाल सकते हैं। आधुनिक भारतीय मधु-मक्खी पालक अपना शहद डेढ़ रुपया प्रति पौंड बेच लेता है। इससे स्पष्ट है कि मक्खियोंमार कर पुराने तरीकोंसे शहद प्राप्त करने वाले मक्खी मार एक अपेक्षा मक्खी पालक एक हज़ार प्रतिशतक अधिक है।

मधुमक्खी पालनकी वैज्ञानिक विधियाँ—

अमेरिका, यूरोप, आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड जैसे देशोंमें यह व्यवसाय उन्नत विधियोंके अनुसार सफलता पूर्वक किया जा रहा है। वहाँ शहदकी पैदावार टनों और वैगनोंमें तोली जाती है। संयुक्त राज्य अमेरिकामें मक्खी पालने वालोंकी संख्या दस लाख अनुमान की जाती है। संयुक्त राज्य कृषि विभागके कृषि अर्थशालाके ब्यूरोके अनुसार संयुक्त राज्यमें पाँच सालोंमें (१६२६ से १६३३ तक) शहदकी पैदावार औसत १७२२२६८७० पौण्ड है। हम

मेंसे अधिकांश लोगोंके लिए इस बड़ी राशिका मानसिक चित्र खींचना भी कठिन होगा। यदि इतने शहदको एक पौण्डके मर्तबानोंमें भर कर पास-पास सीधी पंक्तिमें रखा जाय तो यह ८१५७ मीलसे लम्बी चली जायगी या ऐसा कह सकते हैं कि पृथ्वीके चारों ओरकी एक तिहाई दूरी तक पहुँच जायगी। अमेरिकामें हर साल नौ करोड़ रुपयेका लाभ मक्खियाँ पालनेसे होता है। वहाँ बहुतसे लोगोंके पास सैकड़ों और हजारोंकी संख्यामें पेटीमें पाली हुई शहदकी मक्खियोंके छत्ते रहते हैं। इन देशोंमें मक्खी पालनेकी नई किस्मकी पेटियों और शहद निकालनेके बिजलीके यन्त्रोंका आविष्कार हो जानेसे इस व्यवसायमें बहुत तरक्की हुई है। आजकल तो मनोरंजन और आर्थिक लाभ, प्रत्येक दृष्टिसे, यह उद्योग इतना अधिक लोकप्रिय हो रहा है कि लाखों नर-नारियोंका ध्यान इस ओर गया है। लाखों बेकारोंको इससे प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूपसे काम भी मिलता है। किन्तु भारतमें अभी तक इसके प्रारम्भिक ज्ञानसे भी लोग अनभिज्ञ हैं। यद्यपि यहाँ इस व्यवसायके लिए विशाल क्षेत्र विद्यमान है और यदि आधुनिक साधनोंका उपयोग करके इसका प्रचार किया जाय तो बहुत अधिक शहद पैदा किया जा सकता है और विदेशोंसे हरसाल भारतमें आने वाले लाखों रुपयेके आयात को बन्द करके भारतकी आमदनामें वृद्धि की जा सकती है।

गैलीलियो गैलीली

(१५६४ से १६४२)

[लेखक—श्री रामचन्द्र तिवारी]

गैलीलियोके कार्यका महत्व—गैलीलियो अत्यंत प्रतिभाशाली पुरुष था। उसकी प्रतिभाके प्रभावसे तत्कालीन विज्ञानकी दशा बिल्कुल बदल गई। उसने इधर-उधर बिखरी सामग्री तथा कल्पनाओंको एकत्रित कर पदार्थके गतिविज्ञानकी नींव डाली और इसे सुडौल ज्ञानका रूप दिया। क्योंकि निर्जीव अनुभवगम्य तथा तोले जा सकने वाले सब पदार्थों का-सूक्ष्मतमसे लेकर महानतम् तकका, परमाणुओंसे लेकर ग्रहों तथा ब्रह्माण्डमें विशालकाय सूर्यों तक का तथा उनके भागोंका-मुख्य गुण गति है, इसलिये गैलीलियोको पदार्थके समस्त भौतिक-शास्त्रका जन्मदाता कहा जा सकता है। गैलीलियोके लेखोंसे पता लगता है कि उससे पहिले गिरते हुये तथा फेंके गये पत्थरकी गतिके समान सरल गतिके गुण भी भली-भाँति नहीं समझे जाते थे। ऐसी गतियोंके मार्गका पहिलेसे गणित कर लेना तो और भी दूरकी बात थी। यह समझा जाता था कि संसारमें प्रत्येक वस्तुका अपना एक स्वाभाविक स्थान होता है वह वस्तु वहीं पहुँचनेकी चेष्टा करती है और इसीलिये गतिवान होती है। आज हमें यदि गतिवान पदार्थों और शक्तियोंके परिमाण मोटे तौर पर ज्ञात हों तो हम गतिकी प्रत्येक दशा का पहिलेसे गणित कर सकते हैं। इसी नींव पर वर्तमान कलशास्त्र, ध्वनि शास्त्र (acoustics) और तापके सिद्धांतकी इमारत खड़ी है। यही सब मिलकर पदार्थका भौतिकशास्त्र बनाते हैं। गैलीलियो इस प्रकार लगभग सारे भौतिकशास्त्रका पिता माना जा सकता है। इस विवरणमें गैलीलियोके कार्यका ज्ञान होगा। यदि यह कार्य अकेले गैलीलियोके न होकर कई मनुष्योंके होते तो उनमेंसे प्रत्येक महानतम् वैज्ञानिकोंमें गिना जाता।

जन्म तथा प्रारंभिक जीवन

गैलीलियोका जन्म फ्लोरेंसके एक प्राचीन और प्रतिष्ठित घरानेमें हुआ। इसी वर्ष इङ्गलैंडमें शेक्सपियरका जन्म हुआ था। गैलीलियोका पिता सौदागर जान पड़ता है। परन्तु वह इसके साथ संगीत शिक्षक भी था। इस विषय पर उसने पुस्तकें भी लिखी थीं। उसके पुत्रको भी इस कलासे प्रेम था; उसने बांसुरी बजानेमें असाधारण योग्यता प्राप्त कर ली थी चित्रकलामें भी उसने अपनी योग्यता प्रदर्शितकी थी। उसके पिता उसे चिकित्सक बनाना चाहते थे। इस ध्येयसे उसने ७ वर्षकी अवस्थामें पीसा विश्वविद्यालयमें प्रवेश किया। वहाँकी शिक्षाका आधार अरस्तू था। अध्ययनके

पश्चात् मननकी अवस्था पर पहुँचकर गैलीलियोको इस शिक्षाका विशेष मूल्य नहीं जान पड़ा। उसमें प्राचीन लेखकोंके विरुद्ध शंका उत्पन्न होगई। पिताकी अनिच्छा होने पर भी उसने बीस वर्षकी अवस्थामें यूक्लेडका अध्ययन प्रारम्भ कर दिया। इसने उसकी प्रतिभाको बढ़ानेका अवसर दिया। यूक्लेड और शीघ्र ही आर्कमेडीज ने उसका समस्त ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया। इसमें सन्देह नहीं कि यूक्लेड ने उसे पूर्णतया अमिश्रित विज्ञानके सहज रूपकी स्पष्ट झांकी दी और आर्कमेडीज़की पुस्तकोंने उस पर गहरा प्रभाव डाला। अपने पहिले लेखके प्रारम्भमें वह कहता है कि हम यह प्रत्यक्ष देखे बिना नहीं रह सकते कि दूसरे मस्तिष्क किस प्रकार आर्कमेडीज़से नीचे हैं और कोई उसकी रचनाओंके टक्करके आविष्कार करनेमें कहाँ तक कुशल हो सकता है। साहित्यमें वह पहिले-पहिल आर्कमेडीज़के सम्पर्कमें आया। उसने तैरती वस्तुओं तथा मध्याकर्षणके केन्द्रके विषयमें दो अध्ययन प्रकाशित किये। इनका प्रचार पहिले हस्तलिखित रूपमें ही हुआ। वे पीछे जाकर छपे। इन दिनों वह तरलोंमें डुबोकर पदार्थोंका बोझ मालूम करनेकी रीतिसे बहुतसे पदार्थोंकी आपेक्षिक गुरुता निकालने में लगा हुआ था।

गैलीलियोकी खोजोंका इतिहास- पीसामें उसने अपना अध्ययन ठीक समाप्त किया नहीं जान पड़ता। उसके शुभचिन्तकों ने उसकी असाधारण प्रतिभाको पहिचान लिया और ऐसा प्रबंध कर दिया गया कि वह फ्लोरेंसमें गणित पढ़ाकर अपना जीवन यापन कर सके। पच्चीस वर्ष की अवस्थामें उसे पीसामें गणित अध्यापकका पद दिया गया। यहाँ पर उसने गतिकी समस्याओं पर चिंतन किया, जिनके सुलझानेमें आगे चलकर उसने अपनी महानता प्रदर्शित की। परन्तु यह सफलता उसे सरलतासे न मिली। गतिकी समस्यायें—साधारण स्वतंत्र नीचे गिराव, सीधा या तिरछा ऊपरको फेंका जाना, झूलन (pendulum)—निस्संदेह पीसामें ही उसके सामने आई थीं। इनका हल पीछे पाया गया।

प्रायः गैलीलियो द्वारा पीसाकी मीनारपरसे दो असमान भारके पत्थर गिरानेके परीक्षणकी बात कही जाती है। प्रो० लेनकूपर ने अभी हालमें अपनी पुस्तक "अरस्तू, गैलीलियो और पीसाकी मीनार" में मूल ग्रंथोंके आधारपर यह प्रमाणित कर दिया है कि यह परीक्षण किम्बदंती मात्र है। यह वास्तवमें गैलीलियोकी कल्पना थी। वह लिखता है कि यदि एक ऊँचे मीनारसे दो पत्थरके टुकड़े जिसमें बड़ा छोटे से दूना हो नीचे गिरायें तो उनके गिरनेके विषयमें यह कल्पना करना, कि जब बड़ा भूमि पर पहुँच चुका होगा तो छोटा आधे मार्गमें होगा, नितांत हास्यास्पद है। वह स्वयं कहता है कि हम उदाहरणकी अपेक्षा तर्कसे अधिक कार्य लेंगे, क्योंकि हम घटनाके कारणके अध्ययन करना चाहते हैं और अनुभव इस विषय पर कुछ प्रकाश नहीं डालता।

अपने ज्ञानके बीचकी विभिन्न दशायें उसे हिप्यारकूज के विचार मिले, परन्तु वह अब भी अधूरे थे। वह प्रायः समझता था कि कठिनाई पर विजय प्राप्त होगई है, पर शीघ्र ही उसे अपनी अशुद्धिका पता लग जाता था। धीरे-धीरे यह क्रमशः विकास अत्यंत रोचक है और यहाँ पर पूर्णतया नहीं दिया जा सकता। पर इससे यह पता लगता है कि प्रतिभाशाली भी कैसे अशुद्ध दशाओंमें होकर शुद्धताकी ओर बढ़ता है। इस सबकी कुञ्जी जड़त्वके नियम (inertia) के ज्ञानमें तथा इस बातपर निर्भर थी कि किसी शक्तिसे प्राप्त गतिकी अन्तिम परिणामात्मक गति दूरी पर नहीं वरन् समय पर निर्भर मानी जानी चाहिए, अर्थात् परिमाणात्मक रूपमें हमें गति-अन्तर-क्रम (acceleration) की भावना की आवश्यकता थी। यह सब पीछे उसके प्रसिद्ध वार्तालापके रूपमें प्रकाशित हुआ। इस महान् पुस्तकमें जिसमें वह कल शास्त्रके नियमोंको प्रकाशित करता है, वह गिरावके नियम और अबाधक माध्यममें फेंकित पिंड (projectile) के परवलीय (parabolic) मार्ग निश्चित करता है उसने गिरावका नियम इस कल्पनासे निकाला कि समान सूक्ष्म समयांतरोंमें समान गति-वृद्धि होती है। अपनी तर्क धारामें उसने प्रत्येक समयांतरमी अनन्त क्षणोंमें विभक्तनीय समझा। इस प्रकार अंतर रीति की (differential method) प्रथम झाँकी प्रस्तुत की। उसने समान गति वृद्धिको समान शक्तिसे सम्बंधित नहीं किया। प्रकाशतः उसने गिरावमें गति वृद्धिका कारण शक्तिमें वृद्धि समझा। और भी। उसने इस गिरावको पृथ्वीके आकर्षणके कारण नहीं वरन् वस्तुके स्वभावके कारण माना। गति वृद्धिके सच्चे

कारणके विषयमें वह उसी प्रकार मौन है जैसे न्यूटन मध्याकर्षणको प्रकृतिके विषयमें। इस विषयमें वार्तालापके तीसरे दिनसे सालवियातोके भाषणका हवाला दिया जा सकता है। वह कहता है कि वर्तमान समय प्राकृतिक गतियोंकी वृद्धि के कारण अनुसंधान के उपयुक्त नहीं जान पड़ता। इस विषय में विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न सम्मतियाँ प्रकट की हैं। कुछ इसके केन्द्रकी ओर आकर्षण बताते हैं, कुछ पदार्थके अत्यन्त सूक्ष्म कणोंमें विकर्षण (repulsion) कहते हैं, जब कि कुछ इसे चारों ओर के माध्यम में एक प्रकारका तनाव कहते हैं जो कि गिरती हुई वस्तुको पीछे जुड़ता जाता है और उसे आगे बढ़ाता जाता है। इनसे नाना प्रकारकी परीक्षणीय समस्यायें उत्पन्न हो जाती हैं। अभी हमारा विचारा केवल वृद्ध गतिके गुणोंका अनुसंधान करना है, चाहे इस गति-वृद्धि का कारण कुछ भी हो।

पड़ी गतिके सम्बन्धमें गेलीलियो जड़त्वको पूर्णतया समझ गया था और उसने इस तथ्यका, कि पड़ी शक्तिकी अनुपस्थितिमें पड़े तलमें पदार्थ समान गतिसे गतिवान होता है, का प्रयोग फेंकित पिंड (projectile) के मार्ग अन्वेषणमें किया। ऐसी दशामें उसे खड़े स्वतंत्र गिरावके विषयमें जड़त्वका कुछ भी ध्यान न रहना आश्चर्य का विषय है। यह कहा गया है कि यह उसकी अरस्तुकी शिक्षाका अवशेष है। पृथ्वीके तलकी दिशामें पड़ी गति अर्थात् एक अत्यन्त बड़ी वृत्ताकार गति आकाशीय पिंडों की गतिकी भाँति सहज पूर्ण गति थी। परन्तु इस कल्पना तक जानेकी अवस्था नहीं जान पड़ती। आइन्स्टाइनके आपेक्षवादके सिद्धान्तसे जैसा ज्ञात हुआ है कि वृद्ध गति को एक योजनामें सम्मिलित करना सरल गतिकी अपेक्षा कहीं अधिक कठिन कार्य है। किसी भी दशामें समान समयांशोंमें समान गतिवृद्धिकी कल्पनाके आधार पर ज़रूरी तौर पर आलेखिक जोड़ (graphic integ ration) की रीतिसे उसने यह निकाल लिया था कि गतिसे ढँका स्थान समयके वर्गके अनुपातमें होता है।

अन्य अन्वेषण—बीचके समयमें उसका ध्यान दूसरे अन्वेषणोंमें लगा रहा। निस्संदेह गिरती, फेंकी वस्तुओं तथा झूलनों ने पीसामें ही उसका ध्यान आकर्षित किया था, परन्तु इस विषय पर हम जितना समझते हैं उतनी भी जानकारी हमें प्राप्त नहीं है।

पीसामें अध्यापकका पद बहुत अच्छा न था। तीन साल बाद यह पाडवामें एक अच्छे स्थान पर चला गया और वहाँ अट्ठारह वर्ष तक रहा। उसके जीवनके ये वर्ष सफल और आनन्दमय थे। यहाँ उसने गतिमें अपनी खोजको आगे विकसित किया, और वस्तुओंकी शक्ति के नवीन विज्ञानकी नींव डाली। यह सब अनुसंधान "दो नये विज्ञानोंके विषयमें वार्तालाप" में बहुत पीछे प्रकाशित हुआ। गैलीलियो ने तन्यता सामर्थ्य (tensile strength) के मूल विचारोंको आगे बढ़ाया। इसको 'liver' के सिद्धान्तके साथ मिलाया और छड़ों, त्रिपार्श्वों तथा विभिन्न नापके विभिन्न प्रकारसे लदे हुये बेलनोंको तोड़नेकी ताकतके विषयमें नियम निकाले। उसने त्रिपार्श्वों से भिन्न अधिक शक्तिशाली और कम बोझके आधारके विशेष आकारोंके लाभको पहचाना और समझाया। उसने खोखले बेलनको ठोस बेलनसे अधिक लाभदायक सिद्ध किया। इनसे पदार्थोंकी शक्तिका एक व्यावहारिक सिद्धान्त प्रारम्भ होता है और लचकके सिद्धान्तकी भी नींव पड़ती है। कार्य में ध्यान देनेकी बात यह है कि गैलीलियो तोड़नेकी शक्ति की प्रकृति पर एक विशेष रीतिसे विचार करता है, अर्थात् ठोस पदार्थोंकी ठोसतापर ध्यान देता है। इसका एक कारण वह रिक्तताकी शक्तिमें पाता है जो कि पदार्थोंको बाहरसे एक साथ दबाती है, इससे वह हवाके दबावको एकदम सही भावना तक पहुँच जाता है और यह उस समय इस विषयमें चारों ओर अज्ञान फैला हुआ है।

उस समय इस दबावके सब दृश्य प्रभाव, जैसे हवा खींचनेके पम्पमें पानीके ऊपर उठना, प्रकृतिकी रिक्तताके प्रति महान् घृणाके कारण समझे जाते थे। गैलीलियोने रिक्तताकी शक्तिको एक पिस्टन और सिलेंडरके यंत्रसे नापा और उसने पता लगाया कि पम्प पानीको ३० फीट या १८ हाथसे अधिक ऊँचा नहीं उठा सकता। यह एक महत्त्वपूर्ण निरीक्षण था। वह कहता है कि यदि ताँबेका सापेक्षगुरुत्व ९ है तो ताँबेकी अधिकतम ऊँचाई जो रिक्तताकी शक्ति सँभाल सकेगी १८ ÷ ९ = २ हाथ होगी। इस प्रकार वह टारसेलीकी पारेकी नली वाले

परीक्षणके पास आ जाता है। जहाँ तक परिमाणका सम्बन्ध है उसने सबसे पहले वायुका सापेक्षगुरुत्व नापा। क्योंकि उसके पास हवा खींचनेका पम्प नहीं था। इसलिये उसने इस कार्यके लिये विशेष उपाय निकाले थे।

उसने पता लगाया कि संगमरमरकी तनाव शक्ति रिक्तताकी शक्तिसे चौगुनी है। उसे अब रिक्तताके अतिरिक्त एक और शक्तिकी कल्पना करनी पड़ी। यह शक्ति विभिन्न वस्तुओंमें विभिन्न परिमाणोंमें मानी गई और उनकी आन्तरिक शक्तिका कारण समझी गई। इसकी प्रकृतिका पता नहीं लगा। गैलीलियोके लिये उस समय ज्ञानकी सीमा प्राप्त हो गई थी।

अपने 'वार्तालाप'में एक क्षणके लिये वह साग्रेडोसे (जो कि वह स्वयं है) कहलाता है कि उसकी समझमें नहीं आता कि किसी पदार्थके सूक्ष्मतम परमाणुओंकी सम्बद्धता किस प्रकार तन्यता शक्तिका कारण हो सकती है। इसके पश्चात् निरपेक्ष सत्यकी भाँति नहीं, वरन् अनबूझे विचारकी भाँति कदाचित् घुमा फिरा कर रिक्तता की शक्तिके आधार पर उसे समझनेका प्रयत्न किया जाता है। इससे पता लगता है कि ज्ञानकी तत्कालीन अवस्थामें पदार्थोंके अङ्गोंमें परस्पर आकर्षण शक्तिका मानना कितना अबौद्धिक रहा होगा। इस भावनाके लिये १०० वर्ष पीछे हुई न्यूटनकी गुरुत्वाकर्षणकी खोजकी आवश्यकता थी।

गैलीलियो ने बताया कि पुल, मकान, पेड़ आदि यदि एक ही वस्तुके एक आकारसे बड़े बना दिये जायँ तो वे अपने भारसे आप ही टूट जायँगे, अर्थात् पृथ्वीकी आकर्षण गति उनकी शक्तिको जीत लेगी।

वार्तालापके पहिले दिनोंमें नाद-तरङ्गों तथा नादके विषयमें कहा गया है। पाइथोगोरस तथा अन्य प्राचीन संगीतज्ञोंकी सम्मतिको स्पष्ट किया गया है। स्वरकी उच्चता उसकी (frequency) कम्पनाङ्कसे नापने तथा सुरे-बेसुरे स्वरांतरों (आठवाँ, पाँचवाँ, तीसरा और दूसरा) के कम्पनोंके सम्बन्धमें बातें बताई गई हैं। तन्तुओंका कम्पन उनके भार तथा तनावकी शक्ति पर निर्भर है। यह भी उसे भली-भाँति ज्ञात है। सहकम्पन (resonance) की पूर्ण जानकारी दी गई है। सह कम्पन आगे चलकर सम्पूर्ण भौतिक विज्ञानके लिये एक महत्वपूर्ण विषय हो जाता है। इसके विषयमें उस समय इतनी पूर्ण सूक्ष्म स्पष्टता हमें आश्चर्यमें डाल देती है।

उन दिनों गैलीलियो तापमापक बनानेमें लगा था। इन यंत्रोंसे पहिले-पहल ठण्डे तथा गर्मकी परिमाणात्मक रूपमें परिभाषा की जा सकी थी। तापसे हवा, पानी और एलकोहलका फैलाव देख कर उसने तापको परिमाणात्मक रूपसे समझनेकी चेष्टा की। उसने वही मार्ग पकड़ा जिसे पाइथोगोरसने विज्ञानकी उन्नतिके लिये नितांत आवश्यक बनाया था।

गैलीलियोकी आकाशीय खोजोंमेंसे प्रथम पैडूवामें हुई थी। इनका महत्व उसकी गति पर अनुसंधानोंसे तनिक भी कम नहीं। उसने अपनेसे पहिले अगोचर दृश्यों पर दृष्टि डाली। मानव-जातिके इतिहासमें उसने सबसे पहिले आकाशको दूरबीन-द्वारा देखा। यह नया यंत्र चश्मोंके काँचोंसे बनाया गया था। हॉलैंडमें, जहाँ चश्मोंके काँचोंको घिसाईका काम अत्यंत कौशलके साथ किया जाता है, यह पहिले-पहल बनाया गया था। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि हॉलैंडमें ही पहिले-पहल ऐनक बनी। काँच तथा पत्थरके चश्मोंके प्रयोगका साक्षी अत्यंत प्राचीन कालकी सभ्यताओंमें पाया जाता है।

यह लैंसोंकी नली (दूरदर्शक) पृथ्वी परकी वस्तुओं को आश्चर्यजनक रीतिसे दिखानेके कारण शीघ्र प्रसिद्ध हो गई। गैलीलियो ने जब इसकी चर्चा सुनी तो उसने स्वयं एक दूरबीन बना डाली और फिर बाज़ारमें मिलने वाली दूरबीनोंसे अच्छी बना ली। इसके पश्चात् वह सूक्ष्म-दर्शक बनानेमें भी सफल हुआ।

सन् १६०९ में उसने अपने दूरदर्शकका मुख चन्द्रमाकी ओर फिराया और घड़ियों पर पड़ती हुई पहाड़ियोंकी छाया को पहचाना। आकाशीय पिण्ड भी पृथ्वीके समान हैं इसका यह प्रथम साक्षी था। फिर उसने स्थिर तारोंकी अविश्वसनीय संख्याका पता लगाया। ये अब तक केवल नेत्रोंसे दिखाई नहीं पड़ते थे। दूरदर्शकसे देखने पर ये आकाशमें घने बिछे हुये दिखाई देते हैं। आकाशगंगा असंख्य तारोंमें परिवर्तित हो गई। कोपरनिकस तथा टाइको द्वारा समझा गया यह ब्रह्माण्ड इस प्रकार तारोंसे भरा दिखाई दिया जैसा स्वप्नमें नहीं विचारा गया

था। तारोंकी इस महान् संख्याके अतिरिक्त गैलीलियोका ध्यान कुछ तारोंकी ओर खिंचा जो दूरदर्शक द्वारा ही पहिचाने जा सकते थे। ये बृहस्पतिके पास थे और उसके चार चंद्रमा थे। उसने इन्हें पहिले-पहिल ७ जनवरी सन् १६१० की रातको देखा। अगली रात्रिको उसने इन्हें बृहस्पतिका चन्द्रमा समझ लिया, क्योंकि उनकी स्थितिमें पर्याप्त परिवर्तन हो गया था। वे लगभग दीर्घवृत्ताकार क्षेत्र घेरते थे। इससे यह प्रत्यक्ष था कि ये बृहस्पतिके चारों ओर घूम रहे हैं। आकाशका एक रहस्य भेद हो गया। पृथ्वी और उसके चन्द्रमाका ब्रह्माण्डमें वही स्थान जान पड़ा जोकि बृहस्पति और उसके चार चन्द्रमाओंमें था। सूर्यके चारों ओर भ्रमणशील दोनों ग्रहोंमेंसे प्रत्येकको संसार कहलानेका अधिकार था। कोपरनिकसका कहना था कि पृथ्वीका चन्द्रमा पृथ्वीके चारों ओर घूमता है और फिर दोनों निराधार सूर्यके चारों ओर घूमते हैं। यह कथन कठिनतासे बुद्धिगम्य होने पर भी अब सम्भव मानना पड़ा। अब प्रत्येक व्यक्ति रात्रिको दूरदर्शक द्वारा ऐसी गतियोंको प्रत्यक्ष देख सकता था और केवल एक चन्द्रमाकी ही गति नहीं, वरन् बृहस्पतिके चार चन्द्रमाओं की। और साथ ही साथ इस बातका ठोस प्रमाण मिल गया कि आकाशीय पिण्ड ऐसे बन्द मार्गों पर घूम रहे हैं जिनका केन्द्र पृथ्वी नहीं है। गैलीलियोसे पहिले तो क्या पीछे भी कुछ ही मनुष्योंको इस प्रकार बहु संख्यक नवीन निरीक्षकों तथा विचारोंका सौभाग्य प्राप्त हुआ होगा जैसा कि गैलीलियोको दूरदर्शक द्वारा इन ग्रहोंको देखने तथा सूक्ष्मतासे उनका निरीक्षण करनेमें। उसने स्वयं फ्लोरेंसके दरबारको लिखा कि मैं आश्चर्य-चकित हूँ और उस परमात्माके प्रति अत्यन्त कृतज्ञ हूँ जिसने पिछली शताब्दियोंमें अदृश्य अद्भुत वस्तुओंको पहिले-पहिल मुझे दिखाया।

गैलीलियोकी इच्छा थी कि वह किसी निर्धारित विषय का शिक्षक न रहे। इन नई खोजोंसे उनकी यह इच्छा अब पूर्ण हो गई। मैडीसोके प्रिंस कौसिमो ने फ्लोरेंसमें उसे ऐसा स्थान दिया और सितम्बर सन् १६१० के बाद वहीं रहा। शिक्षककी भाँति पौडूवामें उसका काम उसे पीसाके कार्यसे अधिक संतोष न दे सका। उस समयके विश्वविद्यालयोंमें अरस्तूका पढ़ाना एकदम आवश्यक समझा जाता था। इन दिनों गैलीलियोमें एक प्रकारका व्यङ्ग उत्पन्न हो गया था। परन्तु इससे यह न समझना चाहिये कि वह अपने अध्ययन और अनुसंधानों पर भाषण देने लगा था। यदि वह ऐसा करता तो उसे घोर विरोधका सामना करना पड़ता। उस समय कोपरनिकस भी खिल्ली उड़ाने योग्य समझा जाता था। गैलीलियो ने नाक्षत्रिक दूत 'The Sidereal Messenger" में अपने अध्ययन प्रकाशित किये। इटलीके विश्वविद्यालयोंके दर्शन तथा भौतिक शास्त्रके शिक्षकोंने इसका कठोर विरोध किया। दूरदर्शक द्वारा दृश्यके विरुद्ध उन्होंने तर्क किया और ऊँट-पटाँग, आधाररहित विरोधी बातें गैरजिम्मेदाराना तरीकेसे फैलाई गईं। इन सबका सामना करनेके लिये गैलीलियो ने एक ओर तो बड़ी संख्या में अच्छे दूरदर्शक बनाने प्रारम्भ किये और दूसरी ओर श्रोताओंकी बड़ी संख्याओंके सम्मुख तीन सार्वजनिक भाषण दिये। परन्तु उसके सरल प्रवचन और उसके सुन्दर यंत्र विरोधियों पर कोई प्रभाव न डाल सके। उन्होंने बृहस्पतिके उपग्रहोंको तो क्या दूरदर्शकको भी देखनेसे इन्कार कर दिया। उसके साथियोंमेंसे प्रेगका एक नौजवान समकालीन विद्वान् ही उसे भली-भाँति समझ पाया और उसने उसकी पूर्ण प्रशंसा की। गैलीलियोके 'messenger' का खूब प्रचार हुआ था। इसलिये कुछ शिक्षित परन्तु विज्ञान से अनभिज्ञ लोगों पर भी गैलीलियोका बड़ा प्रभाव पड़ा।

गैलीलियो कुछ समय तक दूरदर्शक द्वारा स्वयं निरीक्षण में लगा रहा। बृहस्पतिके उपग्रहोंके अध्ययनमें वह बहुत अधिक व्यस्त रहा। उनके चक्रकाल नापनेमें बड़ी कठिनाई, हुई क्योंकि दूरदर्शक अभी सही नापनेके कार्यमें लाने योग्य नहीं हुआ था। पर उसे यह शीघ्र ही पता लग गया कि सबसे भीतर स्थित चन्द्रमा सबसे तेज़ घूमता है तथा सबसे बाहरका सबसे धीरे। उनके चक्रकाल उसने पीछे मालूम किये। इसके पश्चात् उसने शनिका विचित्र आकार देखा, जो तीन भागोंमें विभक्त पिण्ड-सा दिखाई देता था। इससे इस ग्रहकी अंगूठीवत बनावटका प्रथम आभास मिला। आगे उसने शुक्रकी विभिन्न दशायें मालूम कीं जो चन्द्रमाकी भाँति थीं। इससे यह प्रमाणित

हुआ कि यह ग्रह स्वयं काला अंधकारमय है और सूर्यके प्रकाशसे प्रकाशित होता है। यह बात न केवल उस समय अज्ञात ही थी, वरन् असम्भव समझी जाती थी। इसके साथ ही साथ शुक्रकी इन विभिन्न दशाओं ने यह भी सिद्ध कर दिया कि यह ग्रह सूर्यके चारों ओर घूमता है। जब पृथ्वीके समान काले तारे दूरदर्शक द्वारा चमकते तथा आकाशमें चलते देखे जाते हैं तो इस पर विश्वास करना सरल हो जाता है कि पृथ्वी स्वयं सूर्यके चारों ओर घूमने वाला एक ग्रह-तारा है। अंतमें सूर्यके धब्बों तथा पहाड़ियों ने दिखाया कि अग्निमय यह महान् गोल पिण्ड भी घूम रहा है। पहिले पृथ्वीके लिये कही गई गति आकाशीय पिण्डोंमें प्रत्यक्ष देखी गई।

इस सब ने कोपरनिकसके संसार-चित्रको गैलीलियोके लिये इतनी ऊँची कक्षा तक पहुँचा दिया कि उसने धीरे-धीरे अब तक साधी हुई चुप्पी छोड़ दी और जनतामें पृथ्वी, ग्रहों तथा स्थिर तारोंके विषयमें अपना मत प्रतिपादन करना प्रारम्भ कर दिया। अच्छे नये दूरदर्शकोंके बननेसे आकाशीय अनुसंधान साधारणतया स्वीकार किये जाते थे। परन्तु उसकी इन खोजोंसे जो निष्कर्ष निकले उनको सरल भाषामें उसने जनताके सामने रक्खा। इससे उसका एक नया विरोध उठ खड़ा हुआ। सूर्यको अपनी धुरी पर घूमता हुआ माननेसे न केवल अरस्तूके शिष्य ही भयभीत हुये, वरन् उनसे भी अधिक ईसाई धर्माधिकारियों पर इसका प्रभाव पड़ा। गैलीलियो इस घूमनेके पक्षमें ज्यों-ज्यों अच्छे कारण और तर्क उपस्थित करता था त्यों-त्यों उसके विरोधियोंकी कटुता बढ़ती जाती थी। अपने विचारों के विरोधी विचारोंके फैलनेके कारण पादरियों और पोपको अपना प्रभुत्व खो देनेका भय लगने लगा। २५ फरवरी १६१५ से रोमन धर्मरक्षक सभा ने गैलीलियोकी ओर ध्यान देना आरम्भ किया और बादमें उसकी मृत्यु तक लगभग ३० वर्ष तो कभी उस परसे अपनी दृष्टि नहीं हटाई। वास्तवमें उसके प्रति उनका व्यवहार कठोरतर ही होता गया। बीस वर्ष तक गैलीलियोको यह आशा लगी रही कि वह अंतमें विद्वान् पादरियों और स्वयं पोपको भी अपने विचारोंकी सत्यता स्वीकार करानेमें सफल होगा। उसने यह अनुभव नहीं किया कि उसके विरोधी न तो गम्भीरतासे उसे समझनेकी इच्छा रखते हैं और न उनके पास समझनेकी शक्ति ही है, और धर्मरक्षक सभाकी कार्यवाहीकी वास्तविकताके अधिकतम प्राप्य ज्ञानपर स्थित सिद्धांत बनानेसे कोई सम्बन्ध नहीं, वरन् वे केवल चर्चकी सम्मतिको बनाये रखनेकी दृष्टिसे कार्य कर रहे हैं।

सन् १६१६ में गैलीलियोके लेखों पर प्रतिबंध लगा दिये गये और उससे कहा गया कि वह अपने अशुद्ध विचार छोड़ दे, नहीं तो उसे कारागारमें निवास करना पड़ेगा। उसने यही स्वीकार किया। पीछेकी घटनाओंसे ज्ञात होता है कि जैसे ऊपरी तौर पर न्यायाधीशों ने उसके विचारोंकी खोज बीन की थी वैसे ही ऊपरी तौर पर उसने दण्ड स्वीकार किया था। चर्चकी सत्ताके प्रति गैलीलियोका बर्ताव अंत तक गिओरडेनो ब्रूनोसे दूसरे प्रकारका रहा। गिओरडेनो ब्रूनो १६ वर्ष पहिले सत्यको न मानने वाले चर्चका विद्रोही हो गया था। उसने जीवित जलाये जानेके समय भी चर्च से मेल करनेसे इन्कार कर दिया और इसलिये वह जीवित जला दिया गया। गैलीलियोका काम अभी बाक़ी था। वह संसारको जो देना चाहता था वह अभी उसमें ही सीमित था। उसकी दो सबसे महत्वपूर्ण पुस्तकें अभी नहीं लिखी गई थीं, वरन् वे अभी एक प्रकारसे तैयार की जा रही थीं। अपने इस व्यवहारसे वह उन अन्वेषणोंको नष्ट होने से बचा पाया जो भविष्यमें ज्ञानके प्रासादकी नींव बनीं और जिनके द्वारा सत्यकी अन्तिम विजय प्राप्त की गई। गैलीलियोके काग़ज़-पत्रोंके सबसे अधिक कुशल छान-बीन कर्ता, ईऑलबिल, उसके जीवनके इन कठिन क्षणोंके विषय में लिखते हैं कि इन दिनोंके अन्तर्द्वन्द्व तथा घोर मानसिक उथल-पुथलके विषयमें उसके हाथका लिखा कुछ भी नहीं है। यदि हमें मानव हृदय पर विश्वास है तो हमें गैलीलियोके हृदयके इस अन्तर्द्वन्द पर भी विश्वास करना पड़ेगा। फिर जब हम थोड़े समयके पश्चात् उसकी बातें सुनते हैं तो उसमें महान् परिवर्तन हो चुका होता है। गैलीलियो अब भी स्वतंत्र था। उसके ग्रांडड्यूककी रक्षा नितांत अप्रभावशाली नहीं रही। उससे आगेका कार्य हमें केवल पत्रों द्वारा ही ज्ञात होता है जिससे ज्ञात होता है कि धर्म रक्षक सभाद्वारा लगाई कठोरता उसके समीपवर्ती सम्बन्धों में नहीं बरती जाती थी।

सन् १६२४ में जब नया पोप चुना गया तो गैलीलियोकी नई आशायें हुईं। वह रोम गया, कोपरनिकसके विचारोंकी सस्यनाके पक्षमें भावपूर्ण प्रार्थना को और चाहा कि उस परसे दण्ड हटा लिया जाय। उसने कहा कि यह व्यवहार कैथोलिक लोगोंके वैज्ञानिक दृष्टिकोणके प्रति भी अन्याय करता है। पोपसे वह छः बार मिला, परन्तु उसका कोई फल न निकला।

गैलीलियो तब बहुत दिनोंसे लिखी जा रही पुस्तक "संसारकी दो महान् योजनाओंके विषयमें वार्तालाप" पूरी की। इसमें उसने कोपरनिकसकी ग्रह योजनाके विरुद्ध प्रत्येक सम्भाव्य आपत्तिका उत्तर दिया है। यह उत्तर वास्तविकता तथा प्रयोगों पर अवलम्बित है। इस वार्तालापमें तीन व्यक्ति भाग लेते हैं। समाधानकर्त्ताका कार्य सालवियार्ती नामक व्यक्ति करता है। इसका चरित्र विरोधोके प्रति आदरणीय नम्रता है और तर्कमें कायल करनेकी शक्ति। सिम्पिलिशियो अरस्तूकी शिक्षाओंका विद्वान् है, परन्तु उसमें गैलीलियोके जीवित विरोधियों जैसी संकीर्ण हृदयता नहीं है। वार्तालापमें जो वह तर्क करता है उसमें उसको हार होती है। तीसरा व्यक्ति साग्रेदो एक हँसमुख दयालु व्यक्ति है। वह साक्षी है। वह नया ज्ञान प्राप्त कर प्रसन्न होता है और क़ैदसे छूटे कैदीका सा आनन्द प्रकट करता है। "वार्तालाप" के पाठकोंने गैलीलियोको जो पत्र लिखे थे वे अब भी सुरक्षित हैं। उनमेंसे बहुतोंको वार्तालाप पढ़नेके बाद एक प्रकारकी स्वतंत्रताका अनुभव हुआ था। गैलीलियोने पृथ्वीकी गतिके विषयमें अपने जीवन भरका एकत्रित ज्ञान इसमें दिया है। इसमें मुख्य बात यह है कि विभिन्न प्रकारसे उत्पन्न गतियोंका अप्रतिरोधित आरोप तथा जड़त्व का नियम भी दिया गया है। यद्यपि यह सब अत्यंत सरल हैं, पर गैलीलियोसे पहिले इस विषयमें कोई—स्वयं केपलर भी इतना स्पष्ट नहीं था। और इस अस्पष्टताके कारण पृथ्वीकी गतिके विषयमें बहुत-सी आपत्तियाँ उत्पन्न हो गई थीं।

गैलीलियो ने केवल इन आपत्तियोंका ही अन्त नहीं किया। उसने गतिविज्ञान की और इसलिये पदार्थके भौतिक शास्त्रकी नींव डाली। "वार्तालाप" में प्रमाणके तौर पर ऐसे निरीक्षण उपस्थित किये गये हैं जिनका अनुभव पहिले लोगोंको हुआ अवश्य होगा, परन्तु जो भली-भाँति समझे नहीं गये थे। इसमें सन्देह नहीं कि इस अस्पष्टताका मुख्य कारण अरस्तूकी शिक्षा थी। उदाहरणार्थ, यदि एक दौड़ते हुये घोड़े परसे सवार एक गेंद नीचे गिराये तो वह गेंद घोड़ेसे पीछे नहीं रहती वरन्, वह सवार की गतिसे आगेको बढ़ती है और साथ ही साथ नीचे गिरती जाती है। इसी प्रकार चलते हुये जहाज़ों पर गतियोंकी क्रिया बिलकुल उसी प्रकार होती है मानों कि वह जहाज़ खड़ा हो। चलते हुये जहाज़ पर बन्द कमरेमें यदि गति पर परीक्षण किये जायँ तो यह कहना असम्भव होगा कि जहाज़ चल रहा है या खड़ा है। जहाज़के खड़े होते या चलना प्रारम्भ करते समय जो विचित्र घटनायें जड़त्वके नियमके कारण होती हैं उनका भी स्पष्टतया वर्णन किया गया है। इस वार्तालापको पोप ने प्रकाशित करनेकी स्वीकृति दे दी यद्यपि आदि और अंतमें कुछ परिवर्तन करा कर। गैलीलियो इस पर राज़ी हो गया। इस प्रकाशनसे एक ओर तो बड़ा उत्साह उत्पन्न हुआ और दूसरी ओर उससे भी भयानक घृणाकी नींव पड़ी। ज्यों-ज्यों गैलीलियो अज्ञात पर आगे बढ़ता जाता था त्यों-त्यों अंधकार और प्रकाशके समर्थकोंका विरोध तीव्र होता जाता था। ज्ञानके समर्थक थोड़े थे और अधिकार दूसरे पक्षके हाथमें था। इस प्रकारकी सत्ता अनियमित शक्तिका शासन पसन्द करती है, क्योंकि वह जानती है कि मैं वास्तविक ज्ञानकी उन्नति का विरोधी हूँ और इसलिये वास्तविक ज्ञानकी तनिकसी भी उन्नति मेरे लिये काल हो सकती है। परन्तु इस प्रकार की सत्ता सरलतासे फैल जाती है और दुर्बल मस्तिष्क वाले लोगोंका बहुमत अपने पक्षमें बना लेती है।

जैसुइट लोगों ने क्रोध दबाये हुये अपनी खिल्ली उड़ाई जाती देखी। "वार्तालाप" में सिम्पिलिशियोकी पूर्ण हार उनकी पराजय थी। उन्होंने बड़ी योग्यतासे गैलीलियोका विरोध किया। उन्होंने तब तक चैन न लिया जब तक पोपको यह न जँचा दिया कि सिम्पिलिशियो उन्हीं लोगोंका प्रतिनिधि है।

पहली अक्टूबर सन् १६३२ को जब गैलीलियो ६६ वर्ष का था वह फिर रोममें धर्मरक्षक सभाके सम्मुख बुलाया गया। महान् कष्ट-कारक यात्राके पश्चात् उसके मुक़दमेको

सुनवाई हुई। पोप ने अपनी योजनानुसार गैलीलियोके चल पृथ्वीके सिद्धान्तको वैधानिक रीतिसे रद्द कर दिया। गैलीलियो ने उस समय क्या कहा इसका कोई लिखित साक्षी नहीं है, क्योंकि इस मुक़दमेके काग़ज़ात, जो २५० वर्ष बाद जनताके निरीक्षणके लिये खोले गये, विश्वसनीय नहीं जान पड़ते। उसमें बहुत काट-छाँट और पुनर्लिखन है जिससे उनके ऊपर सन्देह और भी बढ़ जाता है। गैलीलियोके कथनकी सच्चाई जाँचनेकी कहीं बात भी नहीं है, और कहीं उसके पक्षमें बुद्धिका प्रयोग किया गया है। ऐसा जान पड़ता है कि शारीरिक कष्ट देने के आयुध मुक़दमेके समय पास तैयार रक्खे जाते थे। कुछ भी हो, गैलीलियो ने रोम धर्मरक्षक सभाके बन्दीकी हैसियतसे छोड़ा और मृत्युपर्यन्त उसका बन्दी रहा। कुछ दिनोंके पश्चात्, यद्यपि उसे फ्लोरेंसके पास अपने देहातके मकानमें रहनेकी आज्ञा मिल गई तो भी फ्लोरेंस के अधिकारी ने उस पर कड़ी दृष्टि रक्खी। वह अपने घरमें ही बिल्कुल बन्द रहता था और केवल वही लोग उससे मिलने दिये जाते थे जिन्हें उसके रक्षक ठीक समझते थे। इस घटनाका सार्वजनिक प्रभाव एकदम लक़वा सा पड़ा। विज्ञानकी ओरसे इस पर कोई आपत्ति न की गई। विश्वविद्यालयोंके किसी विरोधका लेख भी इतिहासमें नहीं पाया जाता।

इस कारावासके दिनोंमें गैलीलियोने अपनी दूसरी और अन्तिम पुस्तक "दो नवीन विज्ञानोंके विषयमें वार्तालाप" लिखी। इसमें उसने गतिके समस्त परीक्षणोंका ब्यौरा दिया है। इसमें उसने पहिली बार अपने फल तथा उनके पक्षमें तर्क दिये हैं और उनके आधार पर नवीन निष्कर्ष निकाले हैं। यहाँ हमें स्वतन्त्र गिरावकी चर्चा मिलती है। तिरछी धरातल के सहारे गिरनेका वर्णन है और इसके साथ-साथ उसके विषयके परीक्षण भी दिये गये हैं, क्योंकि उस समय अच्छी घड़ियाँ नहीं थीं, इसलिये गैलीलियोने समय पानीके बहावसे नापा था। फेंके पदार्थों की गतिका सूक्ष्मतासे विवेचन किया गया है। मूलनके नियम तथा गतिसम्बन्धी अन्य महत्वपूर्ण विषयों पर भी विचार किया गया है। इस पुस्तकका मुद्रण कैथोलिक देशोंमें धर्मरक्षक सभाके प्रतिबंधानुसार असम्भव था। परन्तु फिर भी मित्रोंके प्रयत्नोंसे एक डच पुस्तक-विक्रेताके द्वारा प्रकाशनका प्रबन्ध किया गया। यद्यपि यह सब गैलीलियो की इच्छानुसार हो रहा था तथापि यह भेद गुप्त रक्खा गया।

जब यह रचना प्रकाशित हुई तो गैलीलियो ७४ वर्षका था। उसकी आँखोंमें बहुत दिनोंसे एक कष्टकारक रोग था। इसी कारण वह एक वर्ष पहिले दृष्टि खो चुका था। उसने पोपसे प्रार्थना की कि आँखोंके इलाजके लिये उसे फ्लोरेंसमें अपने घर रहनेकी सुविधा दे दी जाय। उसकी यह प्रार्थना अस्वीकृत हुई और इसके साथ उसे रोमके कारागरमें डालने का भय दिखाया गया। अन्तमें एक डाक्टरके साथ धर्मरक्षक सभाके सदस्य उससे मिले। डाक्टर ने उसे असाध्य अंधा पाया। उसकी अवस्था इतनी शोचनीय थी कि वह जीवितसे अधिक मृत जान पड़ता था। ऐसी दशामें उसे चिकित्साके लिये फ्लोरेंस जानेकी आज्ञा मिली और वह भी इस शर्त पर कि वह अपने घरसे बाहर न निकले और किसीसे पृथ्वीके घूमनेके विषयमें बातचीत न करे, नहीं तो उसे आजीवन कारावास काटना पड़ेगा। वह अपने देहाती मकान आर्सेट्रीको लौट आया और वहाँ ८ जनवरी सन् १६४२ में ७८ वर्षकी अवस्थामें उसकी मृत्यु हो गई। इसी वर्ष इंग्लैंडमें न्यूटनका जन्म हुआ। गैलीलियो को अपनी मृत्युके ९५ वर्ष बाद अपने योग्य कब्र मिली।

एच० सी० ल्यूमर लिखते हैं कि गैलीलियोको पिछले दिनोंमें कठोर दण्ड मिले, परन्तु इन्हीं दण्डोंके कारण उसका यश इतना व्याप्त हुआ। क्योंकि गैलीलियो कोपरनिकसका समर्थक बन कर खड़ा हुआ था इसलिये कोपरनिकस भी अधिक विख्यात हो गया। परन्तु यह सब बड़ा विचित्र जान पड़ता है जब कि हमें यह ज्ञान होता है कि उस समय गैलीलियो केवल अग्रगामी विचारोंका नेता ही न था वरन् वह वास्तवमें अपने समयसे २५ वर्ष पीछे था।

सन् १५९७ में गैलीलियो और केपलरमें पत्र व्यवहार पाया जाता है। पर जब सन् १६०९ में केपलरकी 'Astronomia Nova' प्रकाशित हुई तो वह इसके महत्व

को न समझ पाया। वह टाइकोकी भाँति उस अर्थमें ज्योतिषी न था। वह वास्तवमें पहिला ज्योतिष-भौतिक शास्त्री था। वह टोलमी-कोपरनिकसके सिद्धान्तोंमें रुचि नहीं लेता था। वह अरिस्टारकूज़-कोपरनिकसके सिद्धांतों से कभी आगे नहीं बढ़ा। यहाँ पर वह बृहस्पतिकी उपग्रह योजनाकी तुलना पर स्थित दुर्बल तर्कके कारण स्थिर हो गया। यदि ऐसा न हुआ होता तो उसने अपना समय व्यर्थके तर्कों पर नष्ट न किया होता, जिनमेंसे बहुतसे अत्यन्त निर्बल हैं। जब तक कि सूर्य केन्द्रिक सिद्धान्तको अधिक स्पष्ट अर्थ नहीं दिया जाता केवल तर्ककी सहायता से कुछ निर्णय नहीं हो सकता। केपलर द्वारा वह अर्थ दिया गया जब कि उसने यह पता लगाया कि सूर्यको नाभि मान कर पृथ्वी और मंगल दोनों सूर्यकी अपेक्षा दीर्घ-वृत्तीय कक्षाओंमें घूम रहे हैं। इस प्रथम कलनके पश्चात समर्थनके लिये न तो नक्षत्र लम्बन ('stellar parallax) के लिये ठहरना आवश्यक था और न अपरोग (aberration) की खोजके लिये हो। भविष्यमें उन्नतिका मार्ग ठीक निरूपित हो गया था।

केपलरके कार्यके मौलिक महत्वको न समझनेका दोष गैलीलियो को नहीं दिया जा सकता। गैलीलियोकी भाँति हाइगिन्स भी उसे नहीं समझ पाया। पचास वर्षकी उन्नतिके लिये ध्यान रखते हुये हाइगिन्सको गैलीलियोसे बड़ा मनुष्य कहा जा सकता है।"

जब धर्म-रक्षक सभासे पहिले-पहिल गैलीलियोको पाला पड़ा था तभी उसने अपने एक पत्रमें लिखा था कि मेरा विश्वास है कि ज्ञानके प्रति अज्ञानकी घृणासे बढ़कर घृणा संसारमें दूसरी नहीं है। घटनाओं ने इस कथनकी सत्यता प्रमाणित की। ज्ञानकी उन्नति निरन्तर होती रही, परन्तु क्योंकि ज्ञान सदा नवीन सीमाओंका उल्लंघन करता रहता है, और अज्ञानके हाथमें शक्ति होती है इसलिये अज्ञान सदा भयावह हो सकता है और दोनोंके बीचकी घृणाका अन्त नहीं होता। यह प्राचीनसे हटकर नवीन वस्तुओंके प्रति होने लगती है। यह सदा प्रकाशकी शक्ति का, जो नवीन ज्ञानोपार्जन करती है, विरोध करती है और सदा विनाशकारी ही सिद्ध होगी, यदि इसके सेवक अज्ञानियोंकी संख्यामें कमी नहीं की जायगी।

वृक्षोंकी रसायन

[ले०—श्री प्रभा अष्ठाना, बी० ए०]

वृक्ष जीवधारी हैं

वृक्ष भी उसी भाँतिके जीवित प्राणी हैं जो श्वास लेते हैं, भोजन करते हैं, बढ़ते हैं और दूसरे वृक्षोंकी सृष्टि करते हैं। इन सब बातोंके लिये कुछ चीज़ोंकी आवश्यकता होती है। यहाँ तक कि एक बीजको भी वृक्ष रूपमें परिणित होनेके लिये वायु और नमीकी आवश्यकता होती है। इन वृक्षोंके होनेमें तीन बातें आवश्यक हैं। पहिले तो बीजोंको कुछ आराम मिलना चाहिये। इसका प्रमाण इसी बातसे मिलता है कि यदि दो स्थानोंमें बीज बोये जायँ तो जहाँ वायुका प्रवेश होगा उसी स्थानसे बीजोंसे पौधे निकलेंगे दूसरेसे नहीं। वाटिकाओंमें बोये गये बीज भी जमीनमें बहुत गहरेमें नहीं डाले जाते हैं, बल्कि अच्छी तरह खोदी हुई ढीली मिट्टीमें डाल दिये जाते हैं। घरके अन्दर भी यदि छोटे-छोटे पौधे लगाने हों तो छिछले बीजोंके बर्तनमें उन्हें बोया जाता है। वायुकी आवश्यकता का प्रत्येक दशामें ध्यान रक्खा जाता है।

बीजकी आवश्यकताएँ—बीजको जिस दूसरी वस्तु की आवश्यकता है वह गर्मी है। विभिन्न जातिके बीजमें से पौधा उगनेके लिये भिन्न-भिन्न तापक्रमकी आवश्यकता होती है जैसे गेहूँके लिये हिम-बिन्दुसे कुछ ही कम तापक्रम ठीक रहता है और इसीलिये यह जाड़ोंमें भी बोया जा सकता है, परन्तु ऐसे बीज जैसे खजूर आदि केवल गर्म देशोंमें ही होते हैं क्योंकि इन्हें काफी गर्मीकी आवश्यकता होती है।

बीजोंको जलकी भी आवश्यकता होती है परन्तु बहुत नहीं। यदि खेतमें बहुतसा पानी भर जायगा तो बीज सड़ जायँगे। परन्तु इतना पानी अवश्य होना चाहिये जिससे बीजके अन्दर जमा हुआ भोजन नर्म होकर प्रत्येक

भागमें पहुँच सके। ज्योंही पौधा बढ़ने लगता है उसको भोजनकी आवश्यकता होने लगती है। जब यह जमा हुआ भोजन समाप्त हो जाता है तब पौधा अपनी जड़ोंके द्वारा भूमिमेंसे भोजन खींचता है। पौधेके लिये मिट्टी इतनी अधिक आवश्यक नहीं होती है जितना कि पानी जिसमें कुछ तरहके नमक घुले रहते हैं और वह मिट्टीके कणोंमें मिलकर पौधेके बढ़नेमें सहायता करते हैं।

उत्तर-पूर्व साइबेरियामें कुछ ऐसे पौधे हैं जो -५०°श से कम तापक्रममें भी फूलते हैं। क्रिसमसका गुलाब पालेके मौसममें ही खिलते हैं और कुछ पौधे तो ऐसे हैं जो केवल पालेमें ही होते हैं। मनुष्यों और पशुओंकी भाँति पौधोंका अपना तापक्रम बाहरी वातावरणके तापक्रमसे अधिक नहीं होता है। मनुष्य या पशुओंके शरीरकी गर्मी भोजन करनेके पश्चात् बढ़ जाती है, परन्तु पौधोंमें यह बात नहीं है। साँस लेनेमें भी उनकी गर्मी केवल एक डिग्रीके दसवें भागके बराबर बाहरके तापक्रमसे अधिक होता है। अधिक-से-अधिक तापक्रम एक पौधेमें उसको काट डालने अथवा कहीं चोट पहुँचानेसे किया जा सकता है और वह भी १°श से कम ही बढ़ता है।

बिजलीसे पौधे लगानेमें सहायता- वृक्षों पर बिजलीकी गर्मी, रोशनी और वोल्टेजका क्या प्रभाव पड़ता है, इस सम्बन्धमें कई खोजें की जा चुकी हैं। इस रीतिको इलक्ट्रो-कल्चर (electro-culture) कहते हैं। शीत कटिबन्धोंमें जहाँके वायुमंडलमें बहुत परिमाणमें प्राकृतिक बिजली रहती है वहाँकी छोटी-छोटी ग्रीष्म-ऋतुमें बहुत अधिक पैदावार होती है। पानी और बदलीमें भी वहाँ अधिक पैदावार होती है। इन्हीं सब बातोंको देखकर अब अधिक उपज करनेके लिये पौधोंके पास अधिक वोल्टकी बिजली प्रवाहित की जाती है। बिजलीका दूसरा उपयोग वृक्षोंके लिये प्रकाशके रूपमें किया गया है और अभी हालमें बिजलीसे मिट्टी गर्म करनेका काम लिया गया है। सन् १९२२ में नार्वेके एक बिजलीके इंजिनियर ने इस बातका अनुसन्धान किया कि बिजलीसे गर्म किये हुये स्थानमें गर्म खाद के खेतोंसे अधिक पैदावार होती है और वे पौधे जल्दी निकलते तथा बढ़ते भी हैं। यद्यपि इस प्रयोगमें धन अधिक व्यय होता है, परन्तु बाज़ारमें तरकारी पहिले पहुँच जानेसे इस प्रयोग वालोंको लाभ भी अधिक होता है। विद्युत्-धारा से खेतके हानिकारक पदार्थ भी नष्ट किये जाते हैं।

पौधोंके लिये लाल और पीली रोशनी सबसे अधिक उपयोगी होती है। डच लोग खेतीके लिये हाइड्रो-कार्बन को आवश्यक बताते हैं और यह पौधे पर लाल तथा पीली किरणोंके प्रकाशको डालनेसे बनता है। इस प्रकाशमें गर्मी नहीं होती है। आस्ट्रेलियाका कैसुएरिना (casuarina) सबसे अधिक शीघ्रतासे बढ़ने वाला पौधा है। यह दस वर्षमें सौ फीट बढ़ जाता है। लिचेनका पौधा सबसे देरमें बढ़ता है। यह पचास वर्षमें कठिनतासे एक हाथकी चौड़ाईके बराबर बढ़ता है और दो सौ वर्ष तक रह सकता है

एक अकेला वृक्ष अधिकसे अधिक कितने बीज पैदा कर सकता है, इसका आश्चर्यजनक उदाहरण पॉपी (poppy) है। इसके प्रत्येक फूलमें तीन हज़ार बीज होते हैं। यदि प्रत्येक बीजसे ऐसे ही वृक्ष होते जायँ तो छः सालमें यूरोपके बराबर सात हज़ार महाद्वीपोंमें इनकी दो फीट तीन इंच मोटी तह बिछ जाय। ऑरचिड (orchid) से भी हज़ारों बीज होते हैं। छोटी-सी 'विलो' घासमें भी लगभग आध लाख बीज होते हैं।

वृक्षोंके बीज-कोष मनुष्योंकी अपेक्षा अधिक शीघ्रतासे और अपेक्षाकृत कम बोझके दबावसे भी प्रभावित हो जाते हैं। मनुष्य एक मिलीग्रामके ३/१००० वें भागसे कम का अनुभव नहीं कर सकता है। जिस प्रकार पशुओंमें ज्ञानशक्ति होती है वैसे ही पौधोंमें भी। पौधोंको पृथ्वीके ऊपर सीधा खड़ा रहनेमें नशास्ताके दाने, जो उनकी जड़ोंमें रहते हैं, बहुत सहायता करते हैं।

वृक्षोंकी कुछ विचित्रताएँ

फूलोंके कुछ वृक्षोंका भोजन करनेका ढंग बड़ा विचित्र होता है। इसमें तीन मुख्य प्रकार है। पहिला सैप्रोफाइट— जो नष्ट हुये पौधोंका भोजन करते हैं, दूसरा पैरासाइट— जो दूसरे जीवित पौधेमें से भोजन निकालते हैं और तीसरा कीड़े खाने वाला— जो सबसे विचित्र है। सैप्रोफाइट वृक्ष भी दो प्रकारके होते हैं — एक तो कुछ अंशोंमें और दूसरे पूर्ण रीतिसे सैप्रोफाइट होते हैं। जो कुछ अंशोंमें होते हैं उनका भोजन हरी पत्तियाँ तथा अन्य कुछ

वृक्षों वाला भोजन होता है और जो पूर्ण होते हैं वे केवल प्राकृतिक पदार्थोंका ही भोजन करके नहीं रह जाते हैं बल्कि धरतीके फूलकी सहायतासे कुछ ऑरगैनिक भोजन भी पाते हैं। पहले प्रकार वाले सैप्रोफाइट अपनी तरहका भोजन तो करते ही हैं ऊपरसे दूसरी तरह वालोंका भी करते हैं। पूर्ण रीतिसे सैप्रोफाइट वृक्षोंमें अब हरी बालियाँ इत्यादि नहीं रह गई हैं और अब उनका रङ्ग गंदे भूरे रङ्गका हो गया है। इंगलैंडमें इस प्रकारका वृक्ष चिड़ियाके घोंसले वाला और चिड़े हैं जिसके तनेका निचला भाग छोटी और मोटी जड़ोंसे भरा होता है और ऊपरी भागमें पत्तियोंके स्थानपर पीले-भूरे काँटे होते हैं। यह ऑरचिड केवल ऐसे ही स्थानोंमें होता है जहाँ पत्तियोंके बड़े-बड़े ढेर होते हैं क्योंकि उनमें ऑरगैनिक पदार्थ अधिकतासे होता है। इस भोजनको अपनी जड़से खींचने के बदले ऑरचिड उसको धरतीके फूलके द्वारा खींचते हैं और वह इस प्रकार कि धरतीके फूलकी जड़ें ऑरचिडकी जड़ोंमें छेद करती हैं और अपना खींचा हुआ भोजन उसमें प्रकाशित करती हैं।

सैप्रोफाइटकी भाँति पैरासाइट पौधे भी पूर्ण और आंशिक होते हैं। कुछमें हरी पत्तियाँ होती हैं और अपना थोड़ा बहुत भोजन स्वयं ही बना लेते हैं. वह अपना पानी घुले हुये नमक पृथ्वीमेंसे सीधे न लेकर किसी अन्य पौधेके द्वारा लेते हैं। इन्हींमें "सिलवटो" भी है। और भी इसी वृक्षोंकी जड़ोंसे विशेषकर घास भोजन लेते हैं।

मांसाहारी वृक्ष—कुछ वृक्ष मांसाहारी हैं। वह साधारण भोजनके स्थान पर पत्तियोंसे कीड़े पकड़ कर खाते हैं। सनड्यूके वृक्षकी पत्तियाँ गोल होती हैं और उनके किनारों पर गुलाबी बाल होते हैं जिनपर एक प्रकार-का चिपकने वाला द्रव्य पदार्थ लगा रहता है। वह बाल अत्यन्त शीघ्रतासे किसी भी कीड़ेका पत्ती पर बैठना जान जाते हैं और तुरन्त उसको चारों ओरसे घेर कर उस पर द्रव्य पदार्थ गिरा देते हैं जिससे वे कीड़े मर जाते हैं और वृक्षमें मिल जाते हैं। इन कीड़ोंको खा जानेके बाद वह बाल फिर वैसे ही खड़े हो जाते हैं। इस बातकी सत्यता जाननेके लिये कई बार माँसके टुकड़े अथवा अंडे की सफेदी पत्ती पर रक्खी गई और उसको भी इन बालों अथवा काँटों ने शीघ्र ही पचा डाला। एक और कीड़ा पकड़ने वाला पौधा 'बटरवर्ट' है। यह इङ्गलैंडमें होता है। इसकी पत्तियाँ दलदलमें मछलीकी भाँति फैली रहती हैं। इसकी चिपकनी पत्तीका किनारा अन्दरकी ओर मुड़ जाता है और कीड़ेको पकड़ लेता है। केवल स्थल पर ही नहीं बल्कि जलमें भी ऐसे वृक्ष होते हैं। ब्लैडर वर्ट ऐसा ही बिना जड़का जल-वृक्ष है जो पानीके कीड़ोंको अपने ब्लैडर में बन्द कर लेता है। दूसरे देशोंमें भी बहुतसे ऐसे वृक्ष होते हैं।

साथी वृक्ष—कुछ ऐसे पौधे हैं जो दो एक साथ लगते हैं, अकेला एक नहीं। जैसे लिचेनका पौधा। बहुतसे बहुतसे छोटे-छोटे हरे साधारण पौधे केवल नम जगहोंमें ही होते हैं। इन्हें ऐलगे जातिका कहते हैं। जल अथवा नम स्थानोंको छोड़ कर खुलेमें ये सूख जाते हैं, -ब कि कुछ ऐसे पौधे होते हैं—जैसे फंगी (fungi) जातिके जो ठंडमें नहीं हो सकते, परन्तु लिचेन इन दोनों पौधोंसे मिलकर बनता है और यह प्रत्येक प्रकारकी जल-वायुमें लग सकता है। जिन स्थानों पर न तो खाली 'उपलगा' और न खाली 'फंगस' लगता है वहाँ भी लिचेन आसानीसे निकल सकता है। हरी 'अलगा' घास लिचेनके लिये साधारण वृक्षोंकी रातिसे भोजन जमा करती है और फंगस उसको पृथ्वी पर खड़ा रखता है तथा आस-पाससे भोजन जमा करके 'अलगा' तक पहुँचाता है। यह लिचेन यद्यपि प्रत्येक प्रकारकी जलवायुमें होता है, परन्तु वायु की खराबियोंमें नहीं हो पाता है। इसीलिये यह खुले स्थानों में बड़े नगरोंकी अपेक्षा अधिक होता है। यह बहुत देरमें बढ़ता है और बहुत दिनों तक जीवित रहता है।

उत्तरी ध्रुव प्रदेशोंमें जो एक प्रकारकी काई होती है वह भी वही लिचेन है। वहाँके जानवर इसीको खाते हैं। आइसलैण्डके मनुष्य तक इसको खाते हैं। एशियाके दक्षिण-पश्चिमी देशोंमें भी मनुष्य अनाजके बदले लिचेन खाते हैं।

छोटे परन्तु आवश्यक वृक्ष— छोटे परन्तु दूसरे वृक्षोंके लिये अत्यन्त उपयोगी पौधोंमें से डायटम एक है। यह एककोषीय 'अलगा' है जिसके ऊपर कोमल पथरीला

अस्तर चढ़ा रहता है और जो सन्दूक के आकारका होता है। इसके ढक्कन पर भाँति-भाँतिके सुन्दर नमूने बने रहते हैं। यह पौधे हज़ारोंकी संख्यामें खेतोंमें, नदियों और झीलोंमें, तथा सागरकी ऊपरी सतहमें होते हैं। इनका भोजन अत्यंत साधारण होता है। इनमें जो हरियाली होती है उन पर धूप पड़नेसे एक प्रकारका चर्बीदार तेल पौधेमें हो जाता है। पानीके साथ-साथ कुछ और खनिज पदार्थ भी इन पौधोंमें चले जाते हैं जिससे कुछ और 'प्रोटीन' पदार्थका जन्म होता है। सागरमें रहने वाले छोटे-छोटे जीव-जन्तु इन पौधोंको खाते हैं और उनको फिर बड़ी मछलियाँ खा जाती हैं। इन मछलियोंके तेलमें, जैसे कॉड लिवर आयल और हैलीबूत लिवर आयल जो विटमिन 'ए' होता है वह इन्हीं पौधोंमें आता है।

रोगियोंके कमरेके पुष्प वृक्ष—रात्रिके समय रोगियोंके कमरेमें से अकसर फूलोंके गमले इत्यादि हटा दिये जाते हैं और इसका कारण यह बताया जाता है कि दिनमें पौधे ऑक्सीजन गैस अपनी साँस द्वारा बाहर करते हैं और रातको कारबोनिक ऐसिड गैस। परन्तु यह सब बातें ठीक नहीं है। पशुओंकी भाँति वृक्ष भी सदा ऑक्सीजन तो अपने अन्दर ले लेते हैं और कारबन डाइ-ऑक्साइड बाहर कर देते हैं। यह रात-दिन बराबर एकसा होता है। परन्तु दिनके समय पौधोंकी सांस लेनेकी प्रक्रिया एक दूसरी प्रक्रिया – कारबन ऐसिमिलेशनसे मिल जाती है। इस दूसरी प्रक्रियासे पौधे कारबन अपनेमें ले लेते हैं और आक्सीजन बाहर कर देते हैं। और इस भाँति यह क्रिया साँस लेनेकी क्रियाके सर्वथा विपरीत है। जिससे पौधोंकी साँस लेनेसे दूषित वायुको यह फिरसे शुद्ध कर देती है। परन्तु रात्रिमें सूर्य न रहनेसे कार्बन ऐसिमिलेशन बन्द हो जाता है और साँस लेनेमें पौधे बराबर ऑक्सीजन लेते रहते हैं और कार्बन बाहर करते रहते हैं। वास्तव जो कुछ भी अशुद्ध गैस पौधे बाहर करते हैं वह इतनी नहीं होती है कि मनुष्यको हानि पहुँचा सके। इससे पौधोंको रात्रिमें बाहर कर देनेकी अपेक्षा यह कहीं अच्छा है कि कमरेकी खिड़कियाँ इत्यादि खुली रक्खी जायँ।

पौधे के विभिन्न भाग

जड़े पौधेका पहिला भाग जो बीज डालने पर सबसे पहिले निकलता है उसकी जड़ है। जड़के दो प्रधान काम हैं एक तो पौधेको पृथ्वी पर दृढ़तासे जमा और दूसरा ज़मीनके अन्दरसे नमक मिला हुआ पानी खींचना। किसी-किसी पौधेमें तो जड़ ही असली चीज़ होती है और मूली, शलजम इत्यादि में। जड़े पौधोंके लिये और काम भी करती हैं जैसे एक मुख्य जड़मेंसे उसको सहारा देनेके लिये और वायुमेंसे पानी सोखनेके लिये कई और छोटी जड़ निकल आती हैं।

पृथ्वी के भीतर के तने—पौधेमें तनेका काम है पत्तियोंको पृथ्वीसे ऊपर उठाना जिससे उन्हें वायु और प्रकाश मिले। तना ही जड़से भोज्य-पदार्थ लेकर पत्तियों तक पहुँचाता है। किसी-किसी पौधेसे जैसे आइरिस (iris) में ऐसा तना होता है जो पृथ्वीकी सतहसे कुछ ही नीचे पर एक मोटी जड़के रूपमें सतहके समानान्तर होता है और वही खानेके काममें आता है। आलू भी कुछ इसी तरहका होता है—एक फूला हुआ खानेके काममें आने वाला तना। आलूको जो बहुत लोग जड़ मानते हैं तो वह उसकी आँखें अच्छी तरह देखनेसे निर्मूल सिद्ध हो जाता है। कुछ तने पत्तियोंका भी काम करते हैं। उदाहरणके लिये कैक्टसका वृक्ष लीजिये जिसमें तने और पत्तियोंमें कोई अन्तर ही नहीं। तनोंका एक काम यह भी है कि वह दूसरे पौधे उगाते हैं। एक पौधेका तना बढ़कर झुक जाता है और फिर वह पृथ्वीमें अन्दर तक जाकर एक दूसरे पौधे को जन्म देता है। धीरे-धीरे वह पहिले वाले पौधेसे टूटकर अलग हो जाता है।

पौधों और पत्तियोंकी श्वास क्रिया— लगभग सभी वृक्ष अपनी पत्तियोंके द्वारा साँस लेते हैं। यही पत्तियाँ उनका भोजन भी अपनेमें जमा रखती हैं। इन कामोंके अतिरिक्त पत्तियाँ कभी-कभी पौधोंकी रक्षा भी करती हैं। उनमें तेज़ काँटे निकल आते हैं जिससे पशु इत्यादि उनके पास नहीं पहुँच पाते हैं। यही पत्तियाँ बेलोंको किसी आधार पर चढ़ने में भी सहायता करती हैं।

फूल—फूलोंका काम बीज उत्पन्न करना है जिससे आगे चलकर नये-नये वृक्ष बनें। कई वृक्षोंमें इन्हीं फूलोंसे

फल भी बनते हैं। फूलके भिन्न-भिन्न भागका अलग काम है, परन्तु अन्तमें सबका यही परिणाम होता है कि वह फल में परिवर्तित हो जाते हैं और उस फलमें बीज जमा हो जाते हैं। फूलका बाहरी हरा भाग आवरणकी तरह उसकी रक्षा करता है। कलीकी आवश्यतामें पुष्प इसी हरे आवरण के भीतर छिपा रहता है। उस आवरणके भीतर रंगीन और मनोमोहक पंखुड़िया होती हैं जिनके बीचमें पराग रहता है और बीजका कोष भी।

पौधे भोजन कैसे जमा करते हैं—पौधोंका जितना भोजन बीजमें जमा रहता है उसके समाप्त हो जाने पर उन्हें बाहरसे भोजन लानेकी आवश्यकता होती है। उनमें से कुछ पदार्थ तो उन्हें जड़ों द्वारा खींचे हुये पानीमें मिल जाते हैं। यह खनिज लवण (mineral salts) होते हैं, जैसे पोटेशियम नाइट्रेट आदि। जिन पौधोंकी जड़ें स्रविन जलमें रक्खी जाती हैं वह बड़ी जल्दी नष्ट हो जाते हैं, जिनको कुछ लवण डालकर पानीमें रक्खा जाता है वह कुछ अधिक दिन चलते हैं, परन्तु जिन पौधोंको ठीकसे भोजन मिलता है वह उतने ही दिन चलते हैं जितने दिन एक अच्छे बागमें लगाये हुये पौधे। पौधोंके लिये निम्न भोजन आवश्यक है—पौधोंके भोजनमें इन लवणोंका होना

पोटैशियम नाइट्रेट	······ १ ग्राम
कैलशियम सलफेट	·· ½ ,,
सोडियम क्लोराइड	··· ½ ,,
मैगनेशियम सलफेट	··· ½ ,,
कैलशियम फ़ोसफ़ेट	·· ½ ,,
आइरन क्लोराइड	······ कुछ बूँदें
पानी	····· १ लिटर

तो आवश्यक है ही उसके अतिरिक्त कार्बन भी होना चाहिये। यह कार्बन वृक्षोंको वायुकी कारबोनिक ऐसिड गैसमेंसे मिलता है। इस गैसकी कार्बन वृक्ष ले लेते हैं और बची हुई ऑक्सीजन बाहर रह जाती है। चीनी तथा स्टार्च आदि पदार्थमें कार्बनके होनेका एक यह चिन्ह है कि जब उन्हें बहुत अधिक गर्म किया जाता है तो वे काले पड़ जाते हैं और यह कालापन उनमेंका पानी इत्यादि जल जानेके बादका बचा हुआ कार्बन होता है।

पत्तियोंके कुछ आश्चर्यजनक काम—वृक्ष अपना भोजन कई मार्गोंसे जमा करते हैं। एक तो जड़ोंके द्वारा पृथ्वीमेंसे खनिज पदार्थ प्राप्त करते है और दूसरा पत्तियों द्वारा कार्बन डाइऑक्साइड। इन्हें इस प्रकार भोजन जमा करनेमें शक्तिकी आवश्यकता पड़ती है। और यह शक्ति इन वृक्षोंको सूर्य्यके प्रकाशसे मिलती है। पत्तियोंमें एक प्रकारका हरा पदार्थ होता है जिसको क्लोरोफ़िल कहते हैं। इस पदार्थका यह गुण है कि यह आकाशका नीला प्रकाश और सूर्य्यका लाल प्रकाश अपनेमें ले लेता है और पीली किरणोंको बाहर कर देता है जिससे वह पौधेको आवश्यकता से अधिक गर्म करके हानि न पहुँचा सके। पशुओंको उनका भोजन अपने आप बना बनाया मिल जाता है, परन्तु पत्तियाँ वायु, जल और खनिज पदार्थोंसे स्वयं ही अपना भोजन तैयार करती हैं। वृक्षोंका जीवन ही एक प्रकारसे पत्तियों पर निर्भर रहता है। आलूमें पत्तियाँ स्टार्च जमा करती हैं, चुकंदरमें शक्कर और गेहूँमें प्रोटीन।

डालमियानगरमें एक दिन

[लेखक—श्री दुर्गाप्रसाद करन, बी० ए०]

चीनी, सिमेण्ट तथा कागजका कारखाना

प्राचीन कालमें भारतवर्षकी अवस्था बहुत अच्छी थी। यहाँके निवासी पूर्ण सुखी थे। वे परिश्रम कर सरलतासे भोजन उपार्जन कर लेते थे। यहाँकी भूमि बड़ी उपजाऊ थी। कल-कारखाने भी कम नहीं थे। इसके समान समृद्धशाली देश दूसरा न था। बिहार विहार-स्थल था ही। राजे महाराजे अनेक विराजमान थे। इसका नाम 'सोनेकी चिड़िया' था। प्रति दिनकी आवश्यकताएँ बढ़ती जाती थीं और यहाँ ही उनकी पूर्ति भी हो जाती थीं। कोई विदेश नहीं जाता था। संसारकी प्रत्येक आश्चर्यकारी वस्तुका विकास प्रथम भारतमें ही हुआ था। संसार परिवर्तनशील है जो कल उजाड़ सुनसान जंगल और पहाड़ोंसे भरा पड़ा

था। आज वही हरा-भरा बड़े-बड़े विशाल कारखाने और अट्टालिकाओंसे भरा पड़ा है। नये-नये भवन कला-कौशल तथा शिल्पकारीके आश्चर्यजनक बिजली, नल, टेलीफोन. रेडियो, ट्राम आदि वस्तुओंसे ठसाठस भरा मालूम पड़ता है।

बिहार एक पिछड़ा हुआ प्रान्त होनेके कारण विदेशियों और दूसरे प्रान्त वासियोंका एक जबरदस्त अड्डा बन गया है और ये लोग यहाँकी जमीन, यहाँकी खान, यहाँके उद्योग-धन्धे, यहाँके व्यापार और यहाँकी नौकरियों और व्यवसाय पर पूरा दखल जमाये हुये हैं। यदि आज हमें ध्यान आ जाय कि हम क्या थे और क्या हो गये तो अवश्य कुछ न कुछ लाभ हो सकता है। विहारियोंके लिये कितने आनन्दकी बात है कि एक छोटा सा प्रान्त जिसका कुछ ही वर्ष पूर्व कोई महत्व नहीं था आज अपने कला-कौशल और व्यापारिक उन्नति द्वारा अन्य प्रान्तों तथा देशोंसे सम्बन्ध जोड़ गगनमें नक्षत्रकी भाँति जगमगाने लगा है। यह भारतवर्षके दूसरे प्रान्तोंके लिये एक आदर्श प्रान्त होगा।

उन्नति तथा समृद्धिका साधन व्यवसाय है। आजकलके युगमें भारतवर्षको व्यापारिक उन्नतिकी सबसे अधिक आवश्यकता है। इससे बेकारीके प्रश्न हल हो सकते हैं। यह अन्धकारको प्रकाश तथा निर्जीवको सजीव बना सकता है।

सेठ रामकृष्ण डालमिया बड़ी प्रशंसाके पात्र हैं जिनकी देश-सेवा, प्रेम तथा उद्योगसे बिहार क्या सारा हिन्दुस्तान जगमगा उठा है। इनके यशका गान सूर्यको दीपक दिखाना है। जिस बिहारमें बेकारी उग्र रूप धारण कर रही थी, सहस्रों उदर क्षुधाकी कराल-वेदनाके मारे तड़फड़ा रहे थे, ऐसी स्थितिमें जहाँ उन्नतिका स्वप्न देखना भी भूल था; जहाँके लोगोंके लिये आर्थिक तथा भौतिक कोई उन्नति असम्भव सी हो रही थी वहाँ आज दूर-दूरके प्रान्तोंसे लोग आकर अपनी जीविका आनन्दसे उपार्जन कर रहे हैं।

बिहार प्रान्तके शाहाबाद जिलेमें डिहरी नामक स्थान है। यह ई० आई० रेलवेका जंकशन है। मोगलसरायसे पूर्व और गयासे पश्चिम ग्रैण्ड कार्ड लाइन पर स्थित है। इसीके उत्तर तरफ स्टेशनसे भी उत्तर डालमिया नगर बसा है। इसी नगरमें 'रोहतास इण्डस्टरी' नामका कारखाना श्रीयुत रामकृष्ण डालमियाके द्वारा खोला गया है। इसमें व्यापार करना तथा सूद पर रुपया चलाना दोनों गुण मिश्रित हैं। इस रीतिसे पूँजीका लगाना निश्चित रूपसे लाभकारी है। कारण यह है कि पहले तो ऐसी पूँजीसे बहुत संख्यामें उद्योग-धन्धे खोले जाते हैं। दूसरे जो हिस्सेदार ऐसे धन्धेमें रुपया लगाते हैं वे अधिकतर लाभमें रहते है। उनका रुपया निरापद तथा लाभदायक धन्धेमें लग जाता है।

कल-कारखाना इस उद्योगसे सीमेण्टका एक बड़ा कारखाना चल रहा है जिसमें दो लाख टन सीमेण्ट प्रति वर्ष तैयार होता है। दूसरा कारखाना चीनीका है जिसमें १८०० टन प्रतिदिन केतारी पेरा जाता है। तीसरा कारखाना कागज बनानेका है जिससे सालमें नाना प्रकारके कागज ६५०० टन तैयार होता है। सबसे ज्यादा आनन्द को बात यह है कि ७५० टन कास्टिक सोडा (costic soda) तथा ब्लीचिंग पाउडर (bleaching powder) भी रासायनिक कारखानेमें यहाँ तैयार किया जाता है।

इसी कारखानेमें एक बड़ा बिजलीघर (power house) है जिसमें दो 'turbo-alternators, १२०००' के डबलूके हैं, तीन 'skoda water tube boilers' ४०० पाउण्डके चापके हैं और एक पानी ठराढ़ा करनेका भी कारखाना है। यह बिजलीघर डालमियानगरके समस्त कारखानेको बिजली देती है और उसके अलावा ई० आई० रेलवेको भी देती है। तब भी इतनी विद्युत् शक्ति बची रहती है कि इतना ही बड़ा और एक कारखाना चलाया जा सकता है। इसलिये यह बिजलीघर पैसा पैदा करने वाली वस्तु है जो दूसरे कारखानोंमें नहीं पायी जाती। इससे कारखानेके हिस्सेदारोंको विश्वास है कि उनका रुपया किसी विशेष व्यवसायके भाव गिर जानेसे अत्यधिक हानि होनेकी सम्भावनामें नहीं रहेगा, क्योंकि एक व्यवसायकी घटी दूसरे व्यवसायके लाभसे पूर्ण हो जायगी। इस विषयमें डालमियाकी बड़ी विजय हुई है। इस कारखानेकी पूँजीमें ३० लाख साधारण

और २० लाखकी श्रेष्ठ पूँजीमेंसे २७ लाख ७५ हजार रुपया रिजर्वमें पड़ा है और हिस्सेदारोंको मुनाफा चीनीके कारखाने से बराबर दिया गया है।

उद्योग-धन्धोंका पारस्परिक सहयोग

रोहतासके जुदे-जुदे कारखाने एक दूसरेसे भिन्न मालूम पड़ते हैं, किन्तु वे एक दूसरेको अधिकांशमें सहायता देने वाले हैं। जैसे चीनी कारखानेमें बहुत सी मिट्टी इत्यादि रसके छाननेसे निकल आती हैं जिनका वजन हजारों मनसे बढ़ जाता है, पर यह बेकार समझ कर फेंक नहीं दी जाती, बल्कि सीमेण्टके उत्पादनका एक प्रधान अंग बन जाती है। दूसरी बेकार चीज ऊखका छिलका है जिसको चेपुआ कहते है। यह भी भट्ठी (boiler) में गलाकर काम लायक बना लिया जाता है। इसका एक अंग कागजके कारखानेमें व्यवहार कर लिया जाता है।

रोहतास कारखानेका भविष्य उज्वल तथा आशापूर्ण है, क्योंकि इस उद्योग-धन्धेकी विकशित होनेकी अधिक सम्भावना है जो वर्तमान उद्योगको सहायता करेगा और अधिक लाभ देगा।

रासायनिक कारखानेमें हाइड्रोजन (hydrogen) बहुत परिमाणमें पैदा होता है जिसका व्यवहारिक उपयोग न होनेसे व्यर्थमें हवाके साथ बरबाद हो जाता है। इस हाइड्रोजनका उपयोग बहुत सरलताके साथ वानस्पतिक घी बनानेमें आ सकता है। इस प्रकारका घी बनाने वाले कारखानेको बहुत धन हाइड्रोजन बनानेके लिये लगाना पड़ता है लेकिन डालमियानगरमें यह पदार्थ पैदा होकर व्यर्थमें नष्ट हो जाता है।

कारखानेके संचालकों ने जाँच-पड़ताल कर यह निश्चय किया है कि ऊखके छिलकेसे 'newsprint' किफायतमें बनाया जा सकता है। भारतमें 'newsprint' बनानेसे यहाँका बहुत साधन विदेश जानेसे बच जायगा और कारखानेको समृद्धशाली बना देगा। इसी प्रकारके और कई धन्धे यहाँ चलाये जा सकते हैं। बिहार सरकारका यह इरादा है कि गावोंमें बिजली द्वारा नल वाले कुएँसे सिंचाईका काम किया जाय। इसमें सरकार सफल हो गई है और बारह कुएँ ऐसे बनाए हैं कि सिंचाईका काम सुचारु रूपसे चल रहा है। यह कुआँ बिजलीसे चलता है जिसमें नहरके ऐसा पानी नालियोंके द्वारा चलने लगता है और खेतीकी उत्पादन शक्तिको अत्यधिक बढ़ा देता है। अतः रोहतासके बिजली घरके सामने बहुत लाभदायक प्रयत्न मौजूद है जिससे इस प्रान्तके उद्योग और कृषिका पूरा विकास होगा और इसके पूँजीपतिओंको अकथनीय लाभ भी होगा।

कच्चा माल

इन कारखानोंको चलानेके लिये कच्चे मालका सुगमता से मिलना अत्यावश्यक है और इनको प्रचुर परिमाणमें मिलना भी उतना ही आवश्यक है। भाग्यवश डालमिया नगरके आस-पासके स्थानोंसे कारखानेके समस्त पदार्थोंका जुटान हो जाता है। दक्खिन बिहारके खेतोंमें ऊखकी खेती होती है और पैदावार भी उच्च कोटिकी होती है जो बिना कारखानेमें दिये लाभदायक नहीं हो सकती। इसके और दक्खिन तरफ पहाड़के पहाड़ भरे पड़े हैं जिनमें चूनेके पत्थरका खजाना सा है और इसीसे सिमेण्ट बनाया जाता है। इससे और आगे बढ़ने पर डालटेनगंजके घने जंगल नजर आते हैं जिनमें बांस और सावे नामक घासका ढेर है और इन्हीं पदार्थोंसे कागज बनाये जाते हैं।

बनी चीजोंकी खपतके लिये बाजार भी बहुत निकट है। बंगाल बिहार तथा संयुक्त प्रान्तके वृहद् बाजार डालमिया नगरके समीप ही हैं। बड़े-बड़े शहर जैसे लखनऊ, कानपुर प्रयाग, बनारस, गोरखपुर, पटना तथा गया सबके सब २०० मीलके भीतर हो हैं। इसलिये कच्चे मालोंका निकट होना तथा उनके खर्चके केन्द्रोंका सामीप्य विजय प्राप्त करनेका मूल कारण है और रोहतासके कारखानेके उज्वल भविष्यका द्योतक है।

डालमियानगर

शाहाबाद जिलेके ससराम तहसील सोन नदीके किनारे डिहरी नामक स्थान व्यापारका एक केन्द्र है। यहीं ग्रैंड ट्रंकरोड सोनको पार करती है। यह सोन नगरका केन्द्र स्थान है। यहाँ सोन नदीमें ५२ फाटक लगाकर पानीको संचित किया गया है। इससे दो नहरें निकली हैं, एक गया जिलेमें डिहरीसे पटना तक और दूसरी डिहरीसे आरा गई हैं। यहाँ डालमिया एराड कम्पनीके कई बड़े-बड़े कारखाने और मिलें हैं। इस कारण ई० आई० रेलवेके उत्तरी हिस्से

का नाम डालमियानगर पड़ गया और इसी नामका एक डाकघर कम्पनीके खर्चेसे खोला गया है। कारखानेके कारण यह स्थान यात्रियोंको आकर्षित करनेमें चुम्बकका काम करता है। पहले तो सोन नदी पर हिन्दुस्तानमें सबसे बड़ा पुल यहीं है जिसकी लम्बाई क़रीब दस हजार फीटकी है। स्थान भी रमणीक है, क्योंकि यह सुन्दर जंगलोंके मध्य स्थित है। इसके दक्खिन ओर सुन्दर नीले और लाल पहाड़ों और घाटियोंके बीच सोन नदी उज्ज्वल चाँदीके धागे की तरह लुप्त हो गई है और तीनों ओर जहाँ तक आँख दौड़ सकती है वहाँ तक सुनहले-सुनहले अन्नोंकी फसल नजर आती है। इन्हीं सौन्दर्य्य, आनन्द और मनोहर रंगके बीचसे कितनी चिमनी आकाशमें ऊपरको मुँह उठाये नजर आते हैं और उनके नीचे आठ हजार मनुष्य चलते-फिरते जीवन-निर्वाह करते हैं।

दर्शक लोग स्टेशनसे सौ गज भी नहीं जाने पाते कि भारतके एक बड़ेसे बड़े कारखानेमें दाखिल हो जाते हैं और सड़कको दाईं ओर वृहताकार चीनीका कारखाना दृष्टिगोचर हो जाता है जहाँ प्रतिदिन १८०० टन ऊख पेरा जाता है और चीनीके रूपमें परिणत किया जाता है आश्चर्य्यकी सीमा नहीं रहती जब देखनेमें आता है कि हवेमें रस्सी आकाशी रोप-वेके द्वारा बोझे बोझे नहरसे आये हुए ऊखको ढो रही है। दूर-दूरसे नहरमें आए हुए ऊख नहरके किनारे उतारे जाकर कुलियोंसे एक खाट बराबर लोहेके तख्तेमें रक्खे जाते हैं और पहिये द्वारा दस गज रास्ता तै कर रस्सी पर लटक जाते हैं और चलते-चलते उस स्थान पर पहुँच जाते हैं जहाँ एक बड़े गड्ढेमें डाल दिये जाते हैं और वहाँसे टुकड़ा टुकड़ा होकर क्रसरमें पहुँचाये जाते हैं। इस स्थान पर बीसों कुली रेलवे डब्बेसे ऊख निकाल निकाल कर गड्ढेमें फेंकते जाते हैं जहाँ से विद्युत् शक्ति द्वारा ऊपर पहुँच कर क्रसरमें गिराये जाते हैं। इस स्थानमें छोटी ऊखकी गुल्ली पेरी जाती है और रस एक ओर और छिलके दूसरी ओर सैकड़ों फीट दूर फेंका जाता है। यह रस छन जानेके बाद दूसरी टंकीमें जाता है और चूनेके पानीसे मिलकर फिलटर होकर तीसरे स्थानमें नालियों द्वारा भेज दिया जाता है। तब बड़े-बड़े कड़ाहोंमें पकाया जाकर भट्टीमें (boiler) औटाते हैं। यहाँ पर राब तैयार किया जाता है और उसके गुण निरीक्षक (expert) बराबर राबको निकाल-निकाल कर देखते हैं कि उचित राबका अंश तैयार हुआ कि नहीं। तब (centrifugal) अर्थात मथने वाले पम्पमें सुखाये जाते हैं और उसमें नील इत्यादि देकर इसके मैलको एकदम साफ कर उजला चीनीका रंग चढ़ा देते हैं। इसके बाद यह चीनी धीरे-धीरे तख्ते पर आगे बढ़ता जाता है और उस स्थानमें पहुँच जाता है जहाँ बोराबंदी करके गोदाममें पहुँचाया जाता है। यही क्रियायें एक दर्शककी समझमें आती हैं जिससे मालूम पड़ता है कि कितनी जल्दी ऊखसे रस निकाल कर चीनी बनाया जाता है।

चीनीके कारखानेके लिये बिहार एक श्रेष्ठ स्थान है। इसमें डालमियानगरके मुकाबलेका स्थान इस प्रान्तमें नहीं हो सकता है, क्योंकि यह स्थान ऐसी जगह पर स्थित है जहाँ ऊख उत्तम श्रेणीकी पैदा होता है और नहर, सड़क तथा रेल द्वारा थोड़े खर्च पर खेतसे कारखाने और कारखानेसे बाजारमें भेज दिये जाते हैं। इसी अपूर्व अवस्थाके कारण सेठ डालमिया ने ऐसा विचारा था कि आधुनिक काल के यंत्रों द्वारा प्राचीन कालके हलोंको हटा कर खेतके जोतने का काम लिया जावे।

इसी चीनीके कारखानेसे कारबोनिक ऐसिड और सलफ्युरिक ऐसिडके नमक बनाये जाते हैं और इस प्रक्रियामें इसने साधारण नमकके कारखानेसे अधिक अच्छा फल दिया है। भारतमें बड़े-बड़े कारखानोंमेंसे एक होनेके कारण इसका ऊख पेरनेका कल बहुत बड़ा है जिसमें बड़े-बड़े रोलर्स और चाकू ऊख काटनेके लिये व्यवहारमें लाये गये हैं। ऊखसे निकाला हुआ रस बार-बार रासायनिक क्रियाओं द्वारा साफ किया जाता है और फिलटर करने बाद शून्य स्थानोंमें लाया जाता है जहाँ बहुत तापके चापमें शरबतके रूपमें बदल जाता है। यह सिरप हीरेके कनके रूपमें बदल जाता है और वायुमण्डलकी धूलियोंमें बिना मिले या पड़े ही खूब तेजीसे मथने वाले कड़ाहेमें साफ कर दिये जाते हैं। चीनी तैयार हो जाती है लेकिन इसको हाथसे छू नहीं सकते, क्योंकि यह गरम रहता है।

दर्शकोंका मन आनन्दसे भर जाता है और प्रबल इच्छा होती है कि देखें कि पत्थरसे सिमेण्ट कैसे बनाया जाता है और चीनीकी मधुरताको छोड़ पत्थरकी धूलोंमें

घूमनेका साहस करने लगता है। यहाँ इनको भारतके एक बड़े सिमेंट बनाने वाले कारखानेको अपनी आँखोंसे देखनेका मौका मिलता है जिसके बारेमें अखबारोंमें बहुत बार पढ़ा होगा पर समझनेका ऐसा सुवसर नहीं मिला होगा। कैसे बड़े-बड़े भवन निर्माण किये गये हैं जो देखने में मध्यकालके किलेके सदृश मालूम पड़ते हैं। यहाँ पर भी यह शंका होने लगती है कि ये किले हैं या कारखाने। और आगेसे तोपके मोर्चे लगे हैं, किन्तु यह भाव तुरन्त पलट जाता है कि बड़े-बड़े भवन ऐसे कमरे हैं जिनमें राजा महाराजाकी तो बात दूर रही हवा तककी गुंजाइश भीतर जानेको नहीं है, क्योंकि इसमें सामान पानीसे मिले द्रव्य पदार्थ ही रह सकते हैं। इसको 'slurry silo' कहते हैं और यह ६० फीट ऊँचा है और इसमें १००० टन पत्थरका घोल हो रह सकता है। और यह ताप गोला बरसाने वाले नहीं हैं बल्कि पत्थरके स्रावको सिमेंटमें बने चूल्हेमें जलाने वाले भट्टी हैं। अब आगे बढ़कर इसकी प्रक्रियाओंको देखनेकी इच्छा और भी प्रबल हो उठती है।

देखते हैं कि आगे सैकड़ों फीट चौड़ा मैदान पड़ा है। इसमें उजाले लाल तरह-तरहके पत्थरकी चट्टाने पड़ी हैं। ये चट्टानें क्रसरमें पड़ते ही चूर-चूर हो जाती हैं और पीस-पीस कर पानीके साथ मिलाई जाती हैं तब एक बड़े टैंकमें लाई जाती हैं। इसके बाद नलों द्वारा टबमें लाई जाती हैं और लोहेके गोलेसे टकरा-टकरा कर पत्थरके बचे-खुचे टुकड़े महीन कर दिये जाते हैं, तब तोपके सदृश बड़े-बड़े भट्टी (kiln) में तापसे पकाये जाते हैं जिसमें बराबर झन-झन आवाज आती रहती है।

एक ५० टनका घूमने वाला बड़ा हथौड़ा जिसको 'crusher' कहते हैं एक घण्टेमें १०० टनका चूनेका पत्थर जो कम-से-कम दो-दो फीट घेरेके मोटे-मोटे पत्थरके चट्टानोंको एक बारमें चूर कर, एक-एक इञ्चका टुकड़ा कर देता है। यदि सैकड़ों भीम या हरकुलिज़ एक साथ काम करते तो इतनी खूबीके साथ लगातार काम करनेमें विफल हो जाते। ये टुकड़े यंत्रके द्वारा एक बड़े हॉलमें जमा किये जाते हैं जहाँ एक क्रेन इनको दूसरे पदार्थ जैसे 'gyp-sum, coal' तथा 'clinker' गले पत्थरको उठा लेता है और मिलके ऊपर बहुतसे नलोंमें डाल देता है। यहाँ एक बड़ा क्रेन जिसका वजन ६० टन है और विस्तार १०० फीट है, काम करता है। यह खेपमें ५ टन पत्थर ले जाता है। क्रेनके नीचे और चारों तरफ धूलके बादल छाये रहते हैं और दर्शक लोग धूलके मारे अपनी नाकको रूमालसे बन्द करनेको बाध्य हो जाते हैं।

पत्थरको पीसने वाला एक बड़ा यंत्र है। इसका घेरा ८ फीट है और ऊँचाई ३१ फीट है, वजन इसका ८८ टन है और प्रत्येक घण्टेमें ४३ टन पत्थरको महीन पीस डालता है। पानीसे मिला हुआ पत्थरका सफूफ एक जगह जमा किया जाता है और ८ बड़े-बड़े टंकोंसे मिलाया जाता है जो ६० फीट ऊँचा है और एक बड़े बर्तनमें घुमाने वाली भट्टियोंमें डाल दिया जाता है जिसमें पड़कर (clinker) हो जाता है।

यहाँ एक दैत्याकार भट्टी (kiln) है जिसमें २३ डिब्बे लगे हैं। इसमेंसे सबसे भारी ३२ टनका है और जिसके लानेके लिये रेलवे कर्मचारियोंसे विशेष आज्ञाकी आवश्यकता हुई थी। ये सब भट्टी १२ फीट मोटी और ४७१ फीट लम्बी है और इसका वजन २००० टन है और यह ४०० टन प्रतिदिन (clinker) तैयार करती है। यह पका हुआ पत्थर थोड़े सामानके लिये इकट्ठा कर घोंट दिया जाता है और तब सिमेंट मिलमें उचित परिमाण के साथ 'gypsum' मिला कर पीस दिया जाता जाता है। और तब सिमेंट बोराबन्दीके लिये तैयार अपनेसे चलने वाले और बोराबन्दी करने वाले यंत्रमें पहुँचता है। वहाँ १२०० बोरे प्रति घण्टे माल तैयार होकर बोराबन्दी हो जाता है। यहाँसे दक्खिन दफ्तर है जहाँ सिमेंटकी जाँच होती है कि उसकी कितनी शक्ति है जब एक इंच मोटा सिमेंट ५०० पौंडका चाप सह लेता है तो उत्तम काम लायक समझा जाता है इससे और दक्खिन लकड़ी चीरनेका आरा (sawmill) है जो बात-बातमें लकड़ी चीर कर ढेर लगा देता है। इसीसे पश्चिम खराद घर है जहाँ लोहेका कील पहिया इत्यादि खराद कर तथा ढाल कर बनाया जाता है जिससे बहुतसा लोहेका सामान विदेश से नहीं मँगा कर यहीं तैयार कर लिये जाते हैं।

यह कारखाना इतना शीघ्र और आश्चर्यजनक रूपमें बढ़िया पोर्टलैण्ड सिमेंट तैयार कर लेता है कि दर्शकगण

अवाक् रह जाते हैं। सेठ रामकृष्ण डालमिया इन सब कारखानोंके आदि कर्त्ता-धर्त्ता है और सिमेंटके कारखाने कई केन्द्रोंमें देश भरमें खोला गया है। इन कारखानोंसे प्रतिवर्ष ८ लाख टन सिमेंट तैयार होता है। थोड़े दिनोंमें इस सिमेंटके पैदावारसे सिमेंट सस्ता और सर्व प्रिय हो जायगा और जितने कच्चे मिट्टीके मकान ईंटोंसे बनते हैं थोड़े समयमें सिमेंटसे बन कर पक्का बन जायेंगे जो काम पुराने जमानेमें जादूसे होता नजर आता था वह आज सिमेंट कर दिखायेगा और हज़ारों मनुष्योंके भरण पोषण और पालनमें सहायक बन बैठेगा।

बिजली घर (power house)

इस बिजली घरमें दो (turpines) है जिनमें ६००० के. डब्ल्यू. (K.W.) पैदा करनेकी शक्ति प्रत्येक को है और ऐसी आशा की जाती है कि दक्षिणी बिहारको यहां बिजली देगी जब सरकार देहातोंमें बिजलीसे (tube well) के द्वारा पानी देना शुरू कर देगी। कारखानेके लिये सब बिजलीकी शक्ति यहाँ ही पैदा की जाती है। सिमेंट फैक्टरीको दक्खिन तरफ ८०० गजके फासले पर सबसे ऊँची चिमनी बिजली घर हो की है। यहाँ तीन 'boilers' हैं जिनसे 'turpines' को ४०० पौण्ड के भापका ७००° फारनहाइटका ताप मिलता है।

कागजका कारखाना

यह स्थान बहुत सुन्दर शान्त तथा मनोहारी मालूम पड़ता है। न यहाँ कोई चिमनी है न पत्थर न धूल। सब ही जगह स्वच्छ और निर्मल दिखाई पड़ता है। यहाँ के यंत्र चिकने, चमकीले सिलेण्डरसे बने हैं। यहाँके भवन डालमिया सिमेंटसे बनाये गये जो देखनेमें अति सुन्दर और मजबूत मालूम पड़ते हैं। यहाँ एक टन कागज बनाने में एक लाख गैलन पानी खर्च होता है और बहुत पानी सुखाने वाले सिलेण्डरोंमें सूख जाता है। इससे यह पता चलता है कि पानी कितना आवश्यक है। कागज यहाँ विशेष प्रकारके बनते हैं जो भारतमें कहीं नहीं बनता है जैसे Kraft, Poster Duplex इत्यादि, जो जो आज तक विदेशोंसे आते थे। इसकी तैयारीसे लाखों रुपये, जो भारतसे बाहर चले जाते थे, बच गये हैं और भारतके कागज धन्धेके लिये पूँजीको प्रोत्साहन दे रहे हैं। यहाँ पानी छेदोंसे नीचे गिरता जाता है और रेशे सब जमते जाते हैं और तब जमा हुआ माल (suction box) के कागज बनानेकी प्रक्रिया इतनी सुन्दर, मनोहारी तथा सुखवर्द्धक मालूम पड़ता है कि घण्टों बैठ कर देखनेकी इच्छा प्रबल हो जाती है। पहले बाँसके घास टुकड़े-टुकड़े कर पेरे जाते हैं इस पेरने वाले यंत्रका नाम (crusher) है तब उसीन (digester) ने वाली टंकीमें पकाये जाते हैं जिसमें बहुत ऊँचे दर्जेका ताप दिया जाता है। इसके बाद पका हुआ माल 'diffusers' में साफ किया जाता है और तब 'screener' अर्थात् बनाने वाले यंत्रमें भेजे जाते हैं जहाँ सब प्रकारके न पचने वाले पदार्थ छन जाते हैं। इसके बाद कुछ गला हुआ गूदा बाँसका (pulp) साफ कर दिया जाता है जिससे उजले कागज बनते हैं और बाकी (unbleached) बिना साफ किये रह जाता है जिससे भूरे रङ्गके कागज बनाये जाते हैं।

बाँस, घास रस्सी और रद्दी कटे हुये कागजके टुकड़े गूदे (pulp) के रूपमें आकर कागजके बनानेके लिये तैयार हो जाते हैं। यहाँसे डाले हुये बाँसके ढेरको कूटने वाले यंत्र (beaters) में भेजते हैं जहाँ बड़े-बड़े तख्ते हैं और घूमने वाली रोलोंमें चाकू लगे रहते हैं जो गल कर जमे हुये ढेरको टुकड़े कर यानी कूट फाड़ कर रेशेके रूपमें बदल देते हैं। यही माल खजानेके टैंकमें जमा होता है तब कागज बनाने वाले यंत्रमें भेज दिये जाते हैं।

कागजका यंत्र अनगिनती तारके कपड़ेके तहका बना हुआ है जिसमें कागजके बनाने वाला माल बहता जाता है और लगातार कागजके तख्तेमें परिणत होता जाता है। इस मालको बहुत दाबने वाले यंत्रमें होकर रेशेको जमाने और पानीके निचोड़ने वाले यंत्र तथा सुखाने वाले सिले-ण्डरोंके मध्य होकर गुजरना पड़ता है। तारके कपड़ेका उद्देश्य यह है कि उसमें रेशे जमा होकर बराबर सतहके तख्तेमें बदल जाते हैं। ये माल पानीके रूपमें होते हैं और बहते हुये (sluice) कड़ाहेमें जाते हैं जहाँ विशेष प्रकारके कागज, कागजके वजन मुताबिक जमा हो जाते हैं तब (sluice) से निकलकर तारों पर बहते हैं और

पानी छेदोंसे नीचे गिरता जाता है और रेशे सब जमते जाते हैं और तब जमा हुआ माल (suction box) यानी सटने वाले यंत्र तथा चाप वाले रोलर्सके बीचसे बहता है जो बहुत मुलायम और भीगे हुये कमल पर जम जाता है और धीरे-धीरे गरम रोलर्स पर चढ़कर सूख जाता है और थानके थान कागज तैयार होने लगता है। इसके बाद यह कागजका थान ऐसे यंत्रों पर चढ़ाया जाता है जहाँ नापे हुये पैमाने पर सब कागज कट जाते हैं और तब गिनती होकर थोकके थोकमें पहिये गाड़ीसे अलग कर दिये जाते हैं। इस प्रकार करोड़ों टन बाँस और घास सरस्वती देवीके सेवाके लिये प्रतिदिन काट और गला कर कागज बनाये जाते हैं।

रासायनिक उद्योगशाला

यह स्थान छोटा पर सबसे अधिक मनोरंजक है। भारतमें 'caustic soda' तथा 'bleaching powder' पैदा करनेका यही एक कारखाना है। इसमेंसे 'hydrogen' अपरिमित परिमाणमें निकल कर हवेमें विलीन हो जाता है। यह 'hydrogen' वानस्पतिक घी बनानेके काममें आता है। यदि ऐसे घीका कारखाना खोला जाय तो बहुत रुपया 'hydrogen' उत्पादन करनेमें लगेगा। किन्तु यह मूल्यवान पदार्थ डालमियानगर में बिना सदुपयोगके नष्ट हो जाता है। 'bleaching powder' तो स्थानीय कागजके कारखानेमें कागजके बांसके गूदे 'pulp' को साफ करनेमें आ जाता है जिससे कागजके बनानेके खर्चेमें बचत हो जाती है। क्लोराइन गैस तथा निमककी कड़ी बूसे उपांत होनेकी नौबत आ जाती है और मन यही चाहता है कि कैसे बदबू रूपी नरकसे निकल भागे। पर इससे निबटारा शीघ्र ही हो जाता है जब हम लोग तैयारी कागजके मैदानमें पहुँच जाते है।

इसके अतिरिक्त कर्मचारियोंका वास स्थान भवन इत्यादि देखने योग्य हैं। कम्पनीके खर्चेसे एक मिडिल स्कूल, एक वाचनालय तथा एक अस्पताल भी उत्तम रीतिसे चलाया जा रहा है।

आँवला

[ले०—श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालङ्कार]

केवलामलक रसायन ❀—इस रसायनका सेवन करने वाला एक साल तक केवल दूध पर निर्वाह करता हुआ गौओंके बीचमें रहे और वहाँ जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी रहता हुआ मनमें गायत्री मन्त्रका ध्यान करता रहे। एक साल बाद पौष, माघ व फाल्गुन की किसी शुभ तिथिमें प्रयोग आरम्भ करे। प्रयोगसे पूर्व तीन दिन उपवास करे। फिर स्नान आदिसे शुद्ध होकर आँवलेके बनमें किसी बड़े फल वाले आँवलेके वृक्ष पर चढ़ कर शाखामें लगे हुए फलको हाथसे पकड़ कर ओमूका जप करे। तब आँवलेको खाय। जितने आँवले खायगा उतने ही हजार साल युवा होकर जीवित रहेगा। यदि भर पेट खाकर तृप्त हो जाय तो अमर सदृश ही हो जाता है अर्थात् उसकी आयु बहुत दीर्घ हो जाती है और कान्ति, लक्ष्मी, वेद और सरस्वती स्वयं उस मनुष्यके पास उपस्थित हो जाती हैं।

सामान्य उपयोग

जंगलोंमें आँवलेके वृक्षोंको काटकर लकड़ी ले ली जाती

❀संवत्सरं पयोवृत्तिर्गवां मध्ये वसेत्सदा।
सावित्री मनसा ध्यायन् ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः॥
संवत्सरान्ते पौषीं माघीं वा फाल्गुनीं तिथिम्।
त्र्यहोपवासी शुक्लश्च प्रविश्यामलकवनम्॥
बृहत्फलाढ्यमारुह्य द्रुमं शाखागतं फलम्।
गृहीत्वा पाणिना तिष्ठेतज्जपन् ब्रह्मामृतागमात्॥
तदा ह्यवश्यममृतं वसत्यामलके क्षणम्।
शर्करामधु कल्पानि स्नेहवन्ति मृदूनि च॥
भवन्त्यमृतसंयोगात्तानि यावन्ति भक्षयेत्।
जीवेद्वर्षसहस्राणि तावन्त्यगातयौवन:॥
सौहित्यमेषां गत्वा तु भवत्यमरसन्निभः।
स्वयं चास्योपतिष्ठन्ते श्रीर्वेदा वाक्च रूपिणी॥
—चरक, चिकित्सित स्थान; अध्याय १; करप्रचितीय रसायन पाद; श्लोक ८ से १३ तक।

है। जड़से इसकी फिर नई शाखाएं निकल आती हैं, बड़े होने पर उन्हें फिर काट लिया जाता है। इस प्रकार ईंधन के लिए इसमेंसे पर्याप्त लकड़ी निकल आती है। लकड़ीकी बल्लियाँ अच्छी बनती हैं। कृषिके औज़ारों और फ़र्निचर बनानेके लिए यह उपयोगी है। यह घटिया इमारती लकड़ी है। सुखाते हुए मुड़ जाती है और दरारें पड़ जाती हैं। पानीमें यह टिकाऊ होती है इसलिए कुएं संबन्धी प्रयोजनमें काम लाई जा सकती है। लकड़ीकी छोटी कतरनें और छोटी शाखाएं गदले पानीमें डालनेसे पानी साफ़ हो जाता है इसलिए कूपवृत्तोंको बनानेमें इसका उपयोग बहुत किया जाता है।

टेनिनके उत्पादनके लिए वृक्षका विशेष महत्व कहा जाता है, परन्तु लकड़ीकी दृष्टिसे यह निश्चित रूपसे कम माँग वाला वृक्ष है। रंगने और कमानेके लिए छालकी माँग बढ़ सकती है। वृक्षसे अधिक लाभ लेनेकी विधि यह है कि कुछ बड़ा होने पर वृक्षको काट दिया जाय। फिर जड़से नयी शाखाएं निकलेंगी उनसे छाल और ईंधन दोनों प्राप्त किये जा सकते हैं।

फल, पत्ते और छाल सबमें टेनिन होनेसे भारतके विभिन्न भागोंमें चर्म कर्मके लिए प्रायः हरड़ आदि किसी पक्के टेनिन पदार्थके साथ मिलाकर प्रयुक्त होते हैं। बंगालके चमार पत्तोंको कमानेके लिए बहुत अच्छा समझते हैं। त्रावन्कोरमें छाल चर्म-कर्ममें काम आती है। भारतमें किये गये वैज्ञानिक परीक्षणोंके अनुसार उत्तम चमड़ा प्राप्त करनेके लिए निम्न मिश्रण चर्म-कर्ममें अच्छा रहता है। आमलेकी छोटी शाखाओंकी छाल पचास प्रतिशतक, करौंदेकी तीस प्रतिशत और धौरा या बाकली (Anogeissus latifolia, Wall = एनोजीसस लैटिफोलिया) की बीस प्रतिशतक। इस मिश्रणसे रंगा हुआ चमड़ा लालिमा लिए हुए भूरा होता है।

कपड़ा रँगनेमें भी आँवलेके विभिन्न भागोंका उपयोग होता है। फलोंसे प्राप्त रंग काला-सा भूरा होता है। फल अकेला बहुत कम प्रयुक्त होता है। बहेड़े और हरड़की तरह काला रंग प्राप्त करनेके लिए यह प्रायः लोहेके लवणोंके साथ या अन्य वृक्षोंकी छालोंके साथ प्रयोगमें आता है। यह रंगको अधिक गाढ़ा कर देता है। टसर और मलबैरी पर इससे सुन्दर हलके भूरे रंग प्राप्त किये गये हैं। रुई पर बहुत बढ़िया रंग नहीं देता। छाल और पत्ते भी इसी तरह प्रयुक्त होते हैं और वही रंग देते हैं। पत्तोंमें हलके मैले और भूरेसे पीले रंगके रञ्जक पदार्थ स्वल्प परिमाणमें होते हैं। ये पानीमें विलेय हैं। टसर, रेशम, मलबेरी और ऊन पर इस रंगकी हलकी परन्तु बहुत सुन्दर छायाएं आती हैं। पत्तोंके प्रयोगसे रेशम पर सुन्दर भूरे रंगकी छायाएँ प्राप्त की जाती हैं और लोह लवणोंके साथ रङ्ग कालेमें बदल जाता है। हौंगकौंगमें चीनी लोग पत्तोंको रँगनेके लिए इस्तेमाल करते हैं। जावामें इनसे चटाइयाँ रंगी जाती हैं। शिव सागर ज़िलेमें हरड़, जामुन और अमरूद की छालके साथ आँवलेकी छाल मिलाकर काला रंग बनानेमें काम आती है।

मलायामें फल भोजनोंमें मसालेके रूपमें काम आता है। भारतकी तरह मलायामें भी इसका आचार और मुरब्बा डाला जाता है। डच ईस्ट इण्डीज़में भी यह इसी तरह प्रयुक्त होता है। मुरब्बा बनानेके लिए भारतमें बनारसी आँवलेने बहुत ख्याति प्राप्त की है। यह आँवला कलमें बाँधकर तैयार किया जाता है। सामान्य आँवलोंकी अपेक्षा आकारमें बनारसी आंवला लगभग तिगुना या चार गुना बड़ा होता है। मुरब्बा बनानेके लिए ताज़े हरे फलोंको एक-दो दिन चूनेके पानीमें डुबो रक्खें, फिर सादे जलमें उबालें। ज़रा-सा मृदु हो जाने पर काष्ठकी शलाकासे सछिद्र कर दुगनी या तिगुनी खाण्डकी चाशनीमें डालें। जब फल पानी छोड़ दें तो आग पर रख कर जल भाग उड़ा दें। आँवलोंके अन्दर अच्छी तरह चाशनी चली जाने पर मुरब्बा बन गया समझें।

सूखे फल मैल साफ़ करने वाले समझे जाते हैं और इसलिए साबुनके स्थान पर सिर धोनेके काम आते हैं। रातको पानीमें भिगो कर रख देते हैं। और अगले दिन इस पानीसे सिर धोते हैं। यह बालोंको मुलायम और लम्बा भी करता है, ऐसा विश्वास प्रचलित है।

कहते हैं कुछ पशु फलोंको चावसे खाते हैं और पत्ते अच्छा चारा समझे जाते हैं।

वृक्षमेंसे एक गोंद निकलता है। यह उपयोगी नहीं होती।

प्रभाव तथा चिकित्सोपयोग

हिन्दू चिकित्साका आँवला एक महत्वपूर्ण पदार्थ है। प्राचीनतम लेखक चरक सुश्रुतसे लेकर आधुनिक लेखकों तकने इसे बहुत महत्व दिया है। अनेक योगोंमें यह महत्वपूर्ण भाग लेता है और बहेड़े और हरड़के साथ मिलाकर त्रिफला रूपमें यह प्रायः सब रोगोंमें विभिन्न रूपोंमें प्रयुक्त किया जाता है।

ताज़ा फल तृषाशामक, मूत्रल और अनुलोमक होता है। शुष्क फल ग्राही और पाचक होता है। फूल शीतल और सारक होते हैं। छालमें पके फलकी ग्राहकता होती है।

मुसलमान हकीम इसे हिन्दू चिकित्सकोंकी तरह प्रयोग करते हैं। वे इसे ग्राही, तृषाशामक, हृद् और शरीरके दोषों को शुद्ध करने वाला समझते हैं। शीतल और ग्राही गुणके कारण वे इसे बाह्य प्रयोगमें भी लाते हैं।

बहिः तथा अन्तः प्रयोगमें शीत होनेसे आँवला पित्त को शान्त करता है। पित्तके प्रकोपसे हृत्कम्प और हृद् शूल हो तो आमलकीके योग खिलाने चाहिए। पैत्तिक विकारोंमें आंवलेके मुरब्बेका उपयोग किया जाता है। प्रतिदिन प्रातः दूधसे लिया जाता है और भोजनमें भी खाया जाता है। रक्त प्रदर, रक्तार्शस्, नाशा रक्त स्राव, पूय मेह आदि पित्त प्रकोप जन्य रोगोंमें आंवलेके योग पित्त प्रकोपके शमनके लिए दिए जाते हैं।

आमलेका चूर्ण यकृत और अमाशयके लिए बहुत गुणकारी है। सूखे आंवलोंका चूर्ण लोहेके भस्मके साथ पाण्डु, कामला और अजीर्णके लिए उपयोगी औषध समझा जाता है। आंवलेका चूर्ण, लोह भस्म, सोंठ, मरिच, पिप्पली और हल्दीके चूर्णको एकत्र मिलाकर घी, शहद और खाण्डके साथ मिलाकर कामला तथा हलीमकमें देनेसे बहुत लाभ होता देखा गया है*।

महास्रोतस् पर आमलकीका शामक और रेचक प्रभाव होता है। आमाशयमें पित्त प्रकोपके कारण अम्लपित्त हो जाने पर प्रातःकाल आमलकी खण्ड दिया जाता है अथवा भोजनके पीछे आधा तोला आमलकी चूर्ण दिया जाता है†। अजीर्णमें आमलकीके अनेक योगोंका प्रयोग किया जाता है। क्षुधा उत्तेजक रूपमें आँवलेका मुरब्बा और आचार खाया जाता है। शुष्क फल अतिसार और प्रवाहिकामें ग्राही रूपसे बहुत दिया जाता है। संग्रहणी और अतिसारमें तीन माशा धात्री चूर्ण दिनमें तीन बार दिया जाता है। चिरस्थायी प्रवाहिकामें ताज़े आंवले खूब खाने चाहिए। ताज़े फलका रस अतिसार और प्रवाहिकामें ग्राही, लेपक और बल्य रूपमें एकसे तीन ड्रामकी मात्रामें दिनमें तीन-चार बार पिलाया जाता है। पर्शियामें आंवलेको उदर कृमिहर रूपमें इस्तेमाल करते हैं। हस्ति चिकित्सक आमलकी वृक्षकी छालको हाथीकी आमाशय सम्बन्धी सब शिकायतोंकी चिकित्सा समझते हैं।

श्वास संस्थानके लिये आंवला विशेष गुणकारी समझा जाता है। पुरातन कास और जुकाममें च्यवनप्राशका प्रयोग बहुत होता है। पुरातन कासमें च्यवनप्राश उत्तेजक क्रिया शील कफ़ निस्सारकका काम करता है और फेफड़ोंको शक्ति देता है। सरदियोंमें जुकाम और खाँसीकी प्रवृत्ति वाले लोगोंके लिये इसका सेवन बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ है। शारीरिक और मानसिक दृष्टिसे निर्बल बच्चोंको आधेसे एक तोला च्यवन प्राश प्रतिदिन प्रातःकाल गायके दूधसे सेवन कराया गया है और प्रत्येक उदाहरणमें आश्चर्यजनक उन्नति देखी गई है। रेडियो माल्ट और विभिन्न ब्रैण्डोंके कौडलिवर ऑयल आदि यद्यपि आजकल शक्तिजनक औषधियोंके रूपमें बहुत अधिक प्रयुक्त हो रहे हैं परन्तु बालक जितनी सुगमतासे च्यवनप्राशको लेते हैं उतना दूसरी चीज़ोंको नहीं लेते। कौडलिवर ऑयल (मछलीका तेल) की अपेक्षा बच्चोंके लिए यह अधिक सात्म्य पड़ता है। अरुचिकर गन्ध और स्वादके कारण मछलीके तेलसे उत्पन्न होने वाले जी मचलाना आदि लक्षण च्यवनप्राशके सेवनमें नहीं उत्पन्न होते। क्षयकी प्रवृत्ति वाले मनुष्योंको प्रतिदिन च्यवनप्राश सेवनसे लाभ होता है। क्षयकी प्रारम्भिक अवस्थामें भी इसके उप-

---

*धात्रीलौहरजोव्योष निशाक्षौद्राज्यशर्कराः।
भक्षणाच्च विनिघ्नन्ति कामलाञ्च हलीमकम्॥
—रसेन्द्रसार संग्रह; पाण्डु कामला चिकित्सा; श्लोक २।

† भुक्तान्ते वारिणा पीतं चूर्णं धात्रीफलोद्भवम्।
त्र्यहाच्चिहन्त्यम्लपित्तं कण्ठदाहसमायुतम्॥
—भैषज्यरत्नावली; अम्लपित्ताधिकार; श्लोक १८।

योगसे बहुत लाभ होता देखा गया है। कैल्शियम, लोह लवण तथा अनेक शक्तिप्रद वानस्पतिक औषधियोंका मिश्रण होनेसे च्यवनप्राश सब अङ्गोंको पुष्टि देता है और इसका नियमित सेवन शरीरमें रोग प्रतिरोधक शक्ति पैदा करता है। पहले जो आमलकीके योग दिये गये हैं उन सबकी यह उपयोगिता है इसीलिए वे योग रसायन कहे जाते हैं।

आँवलेके स्वरसमें शहद और पिप्पली मिलाकर चाटनेसे हिचकी और वेदनानुगामी श्वासमें लाभ होता है। ताज़ा फल फेफड़ोंकी शोथमें सेवन कराया जाता है।

मलायामें पत्तोंका कषाय ज्वरमें देते हैं और शिरोवेदना या शिरोभ्रममें पत्तोंका कल्क माथे पर रखा जाता है। पिपासा शान्तिके लिए मूलका फाण्ट बना कर दिया जाता है। ज्वरोंमें पसीना लानेके लिए भी बीजोंका फाण्ट दिया जाता है। छोटा नागपुरमें आंवलेके कल्कको गरम करके खसरेकी फुन्सियों पर लेप करते हैं। विष विकारोंमें रोगीको दिये जाने वाले शाकके रसोंको स्वादु बनानेके लिए आँवलेका रस डालकर खट्टा कर लेते हैं*।

पित्त प्रकोपके कारण मुखमें छाले पड़ गए हों या मुख पाक हो तो मूलकी छालको घिस कर शहदसे लेप करनेसे लाभ होता है। पत्तोंके कषायसे गरारे करनेसे भी आराम आ जाता है। आंवलेमें विटेमिन सी प्रचुर परिमाण में होती है इसलिए स्कर्वीमें यह बहुत उपयोगी होता है। जिन बच्चोंके दाँत कमज़ोर हों, ठीक तरह न निकलते हों, बहुत भंगुर हों या शीघ्र ही कीड़ोंसे खाये जाते हों उन्हें रोज़ ताज़े आंवले खाने चाहिये या इसके च्यवनप्राश आदि योग नियमसे सेवन करने चाहिए। आँवलोंको चबानेसे या दाँतों पर घिसनेसे दन्त रोगोंमें लाभ होता है†।

लगभग दो ड्राम आंवलेका कल्क बना कर शहदके साथ प्रदरमें आते हुए ख़ूनको रोकनेके लिए और गर्भाशयसे होते हुए रक्त स्रावको बन्द करनेके लिए दिया जाता है। श्वेत प्रदरमें शुष्क फलोंको शहद और खाण्डके साथ मिला कर देनेसे लाभ होता है। ताज़े फलके रसको मिश्री या मधुके साथ सेवन करनेसे योनि दाह शान्त होती है। धात्री चूर्णको जलमें मिलाकर लेप करना वस्तिशूल, योनि शूल मूत्र निग्रह और दाहको दूर करता है। आंवलेके क्वाथमें खाण्ड मिलाकर पित्त गुल्ममें सेवन करना चाहिए*।

मूत्र मार्गमें भी आंवला पित्त प्रकोप को शान्त करता है। शर्करा मिश्रित शुष्कफलचूर्ण रक्तपित्त, दाह, मदात्यय, मूत्रकृच्छ्रादि पैत्तिक रोगोंमें लाभकारी है। ताज़े फलोंका रस प्रायः मधुके साथ मिलाकर एकसे तीन ड्रामकी मात्रामें मूत्रल रूपमें दिया जाता है। आंवलेके कषायमें भी मधु और खाण्ड मिला देनेसे स्वादु शीतल पेय बन जाता है और मूत्रल होता है। कोंकणमें ताज़ी छालका रस शहद और हल्दीके साथ मिलाकर पूयमेहमें दिया जाता है। पूयमेहके रोगियोंके लिए ताज़े फल रोज़ खाना लाभदायक है। आधी छटांक सूखे आंवले रातको अष्ट गुण जलमें भिगोकर प्रातःकाल जल निथार लें। इसमें मधु डाल कर पीना, सुज़ाक, मूत्रकृच्छ्र दाह और नकसीरको शीघ्र दूर करता है। यह पेय अच्छे मूत्रलका कार्य करता है और शीत होनेसे मूत्र मार्गकी दाह आदिको भी शान्त करता है। साफ़ किशमिश या मुनक्कोंको रात भर पानीमें भिगो दें। प्रातःकाल किशमिशोंको पानीके अन्दर हाथसे कुचल दें। इसमें आंवलेका स्वरस और शहद मिलाकर पिएं। ताज़े आंवले न मिल सकें तो सूखे आंवलोंका शीत कषाय बना लिया जा सकता है। पूयमेहके रोगी इस उत्तम स्वादु और बल्य शर्बतको प्रतिदिन तीन बार एक-एक गिलास पी सकते हैं। मूत्रल होनेसे यह पेशाब खूब लाता है जिससे मूत्र प्रणालीका प्रक्षालन हो जाता है। आँवलेके स्वरसमें मधु मिलाकर चिरकाल तक निरन्तर सेवनसे सब प्रकारके प्रमेह दूर हो जाते हैं†। मूत्राशयके क्षोभमें वस्ति प्रदेश पर

---

*धात्री दाड़िमम्लार्थे...... . ...

—चरक; चिकित्सित स्थान; अध्याय २३; श्लोक २२५।

†धात्रीफलेन संघृष्टं दन्त रोग निवारणम्।

—हारीत संहिता; तृतीय स्थान; अध्याय ४६; दन्त-रोग चिकित्सा; श्लोक १२।

*धात्री क्वाथः सितायुक्तं शस्यते पित्तगुल्मिनाम्॥

—भैषज्य रत्नावली; गुल्माधिकार; श्लोक १८।

† आमलकस्य स्वरसं मधुना च विमिश्रितम्।

.... सर्वमेहरोगनिवारणम्॥

—हारीत संहिता; तृतीय स्थान, प्रमेह चिकित्सा, अध्याय २८; श्लोक ४३।

फलोंके कल्कका बाह्य लेप उपयोगी होता है। कल्कमें नीलोत्पल, केसर और गुलाबकी पखुरियाँ भी मिलाई जा सकती हैं। मूत्रावरोधमें भी वस्ति प्रदेश पर इस लेपको करनेसे लाभ होता है।

मधु मिश्रित धात्री स्वरस मधुमेहमें लाभकारी होता है। मधुमेहीको पिपासा शान्तिके लिए ताज़े फलोंका चूसना उत्तम तृषाशामक है। बीजोंका फाण्ट भी मधुमेह में दिया जाता है। एक तोला आमलकी स्वरसको प्रतिदिन शहदके साथ चिरकाल तक सेवन करनेसे बहुमूत्रता नष्ट होती है† । बहेड़ेके साथ फलोंके कषायका अन्तः प्रयोग उत्पादक अङ्गोके स्रावमें अत्युत्तम ग्राही है। मूत्ररक्तस्रावमें कषाय लाभदायक है।

सूखे आंवलेके कषायसे क्षत स्थानको धोनेसे खून बहना बन्द हो जाता है। इसी की पट्टी कर दी जाय तो ज़ख़्म साफ़ होकर धीरे-धीरे ठीक हो जाता है। बड़ौदामें आँवलेका रस दुर्गन्धि व्रणों पर उत्तम लेप समझा जाता है। गौज़को रसमें भिगो कर व्रणों पर रक्खें और पट्टी बाँध दें। आवश्यकतानुसार दिनमें दो बार या प्रतिदिन एक बार गौज़ बदल कर नई पट्टी बाँधी जा सकती है।

नेत्रोंमेंसे रक्त संचयको हटानेके लिए आमलकी शीत-कषायसे नेत्र धोए जाते हैं। सूखे आंवलोंको रात भर पानीमें भीगा रहने दें। प्रातः छान कर इससे आँख धोएं। नेत्राभिष्यन्दमें इससे बहुत लाभ होता है। इस शीतकषायको ठण्डा या गरम जैसा आँखको सुखकर प्रतीत हो वैसा प्रयोग किया जा सकता है। आँवलेके रसको आंखोंमें डालने से नूतन अभिष्यन्दमें लाभ होता है‡। नेत्रपटलशोथ (Conjunctivitis) में पत्तोंके कल्कका बाह्य प्रयोग होता है। आँवलेके क्राथसे आँखोंमें परिषेचन करनेसे आँखो के विकारोंमें लाभ होता है† । वृक्ष पर लगे हुए आँवलेको सूईसे चीरा देनेसे निकले हुए रसको आँखोंमें डालनेसे सम्पूर्ण आँखोंके रोग दूर हो जाते हैं*।

नासारक्तस्रावमें तथा शिरोऽभिघातके कारण सिरमें रक्तसंचय हो जाय तो आँवलेके कल्कका सिर पर लेप किया जाता है तथा आमलकी शीत कषायको नासिकामें पिचकारी दी जाती है।

आंवलेका बाह्याभ्यन्तरिक प्रयोग मेध्य और केश्य है। आंवलेके जलसे सिर धोना बहुत गुणकारी है। गरमियोंमें सिरके रक्त संचयको हटानेके लिए आंवलेका तेल लगाया जाता है। मस्तिष्क रक्तसञ्चारमें कुछ बाधा हो, सिर और नेत्रोंमें ज्वलन अनुभव होता हो और सिर दर्दकी प्रवृत्ति, विचारोंमें गड़बड़ी, बाल गिरना आदिमें आंवलेका तेल सिर पर मलनेसे लाभ होता है। कुछ ही दिनोंमें ज्वलन शान्त हो जाता है, मस्तिष्कको विचारशक्ति ठीक होती है और बाल झड़ने बन्द हो जाते हैं।

सहायक पुस्तकें

(१) फ़ॉरेस्ट फ़्लोरा; डी ब्रैण्डिस (१८७४)।
(२) ए डिक्शनरी ऑफ़ दि इकॉनॉमिक प्रॉडक्ट्स ऑफ़ इण्डिया; वाट (१८९२)।
(३) इण्डिजिनस ड्रग्स ऑफ़ इण्डिया; के० एल० दे० (१८९६)।
(४) ए मैनुअल ऑफ़ इण्डियन ट्रीज़; गैम्बल (१९०२)।
(५) इण्डियन ब्रैट्रीज़; रिडस (१९०७)।
(६) दि सिल्विकलचर ऑफ़ इण्डियन ट्रीज़; ट्रूप (१९२१)।
(७) फ़्लोरा सिमलेन्सिस; कॉलेट (१९२१)।
(८) इण्डियन मेडिसिनल प्लाण्ट्स; वसु एण्ड कीर्तिकर (१९१६)।
(९) इण्डियन मैटीरिया मेडिका; के० एम० नादकरणी (१९२७)।

† धात्रीफलस्य रसकं मधुना च पिबेत्सदा।
बहुमूत्रक्षयं कुर्यात्................ ॥
—भैषज्य रत्नावली, शुक्रमेहाधिकार; श्लोक ८।

‡ धात्रीफलनिर्यासो नवदृक्कोपं निहन्ति पूरणतः।
—चक्रदत्त नेत्र रोग चिकित्सा; श्लोक ५।

† क्राथः सुशीतो नयने निषिक्तः सर्वं प्रकारं विनिहन्ति शुक्रम् ॥
—भैषज्य रत्नावली; नेत्ररोगाधिकार; श्लोक ७१।

* तरुस्थविद्धमामलकरसः सर्वाक्षिरोगनुत्।
—चक्रदत्त, नेत्ररोग चिकित्सा; श्लोक ३९।

(१०) फ़ार्माकोपिया इण्डिका; कार्तिक चन्द्र बोस (१९३२)।
(११) ए डिक्शनरी ऑफ़ दि इकॉनॉमिक प्रॉडक्ट्स ऑफ़ दि मलाया पेनिन्सुला; आई० एच० बुर्किल (१९३५)।
(१२) चरक संहिता; जयदेव विद्यालंकार (१९३६)
(१३) सुश्रुत संहिता; मोती लाल बनारसीदास (१९३३)।
(१४) अष्टांग हृदय; निर्णयसागर मुद्रणालय (१९३३)।
(१५) हारीत संहिता; श्री वेङ्कटेश्वर प्रेस।
(१६) बंगसेन संहिता; नवल किशोर प्रेस (१९०४)।
(१७) रसेन्द्रसार संग्रह; विद्याधर विद्यालङ्कार (१९३६)।
(१८) भैषज्य रत्नावली; जयदेव विद्यालंकार (१९३३)।
(१९) चक्रदत्त सदानन्द, (सम्वत् १९८८)।
(२०) शार्ङ्गधर संहिता; लक्ष्मी वेङ्कटेश्वर प्रेस (१९२८)।
(२१) कैयदेव निघण्टु; सुरेन्द्रमोहन।
(२२) भाव प्रकाश निघण्टु; श्रीवेङ्कटेश्वर प्रेस (सम्वत् १९७२)।
(२३) राजनिघण्टु; आनन्दाश्रम मुद्रणालय (१८९६)।
(२४) धन्वन्तरि निघण्टु; आनन्दाश्रम मुद्रणालय (१८९६)।
(२५) मदन विनोद निघण्टु; त्र्यम्बक शास्त्री।

आदि, आदि।

हाफ़टोन ब्लॉक कैसे बनते हैं ?

(लेखक डा० गोरखप्रसाद, डी० एस-सी०)

पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओंमें जो चित्र छपते हैं वे ब्लॉकोंसे छपते हैं। ब्लॉक वस्तुतः वही काम करता है जो छींट छापनेके ठप्पे करते हैं। बेलन फेरने पर इसके उभरे हुए भागपर ही रोशनाई लग पाती है। इसलिए रोशनाई लगानेके बाद इसपर काग़ज़ रखकर छापनेकी मशीनकी सहायतासे काग़ज़को दबाने पर ब्लॉकके उभरे अंशोंकी प्रति-लिपि काग़ज़ पर छप जाती है।

ब्लॉक दो जातियोंमें बाँटे जा सकते हैं, एक तो लाइन-ब्लॉक और दूसरी हाफ़टोन-ब्लाक। लाइन ब्लॉकसे छपे चित्रोंमें केवल रेखाएँ और ठोस काले भाग ही रहते हैं। उनमें फोटोकी तरह विभिन्न कालेपनके अंश नहीं रहते। उदाहरणतः इस लेखके सभी चित्र लाइन-चित्र हैं और जिन ब्लॉकोंसे ये छपे हैं वे सब लाइन-ब्लाक हैं। परंतु पृष्ठ ११ का चित्र हाफटोन-ब्लाकसे छपा है। हाफ़टोन ब्लाकोंसे छपे चित्रोंमें फोटोग्राफकी तरह एक दम कालेसे लेकर क़रीब सफेद तक हर गहराईका कालापन रहता है।

लाइन ब्लॉक बनानेकी रीति मार्चके अंकमें दी गई थी। यहाँ हम हाफ़टोन ब्लॉक बनानेकी रीति बतलावेंगे।
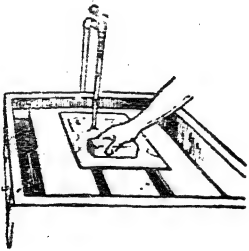
चित्र १—पहले शीशेको धोते हैं।
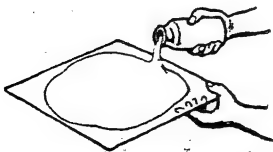
चित्र २ - तब शीशेपर अंडेकी सफेदी चढ़ाते हैं।

हाफ़टोन ब्लॉकके लिए पहले सादा शीशा लेकर उसे अच्छी तरह सोडासे साफ़ करते हैं और फिर स्वच्छ पानीसे धोते हैं (चित्र १)।

तब अंडेकी सफेदी (ऐलब्युमेन) को पानीमें घोलकर शीशेपर चढ़ाते हैं (चित्र २)। सर्वत्र एक समान पतली तह चढ़ानी चाहिए। फिर शीशेको सुखा लेते हैं।

इसके शीशेपर कलोडियनकी एक तह चढ़ाते हैं। (चित्र ३)। इस तहको कुछ समय तक बिना छेड़-छाड़ किये रहने देते हैं तो कलोडियन जम जाता है (इसे पूर्ण-तया सूखने नहीं देते)।
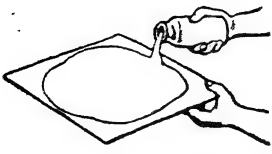
चित्र ३—फिर शीशेपर कलोडियनकी एक तह चढ़ाते हैं।
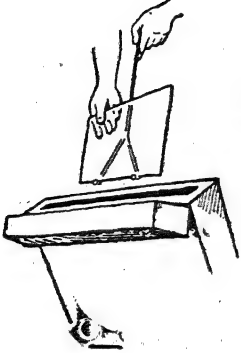
चित्र ४—कलोडियन चढ़े शीशे-को सिलवर नाइट्रेटकी घोलमें डुबाते हैं।
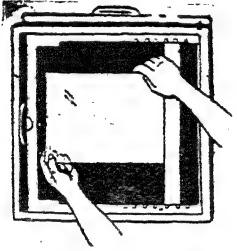
चित्र ५—तब प्लेटघरमें प्लेटको चढ़ाते हैं।
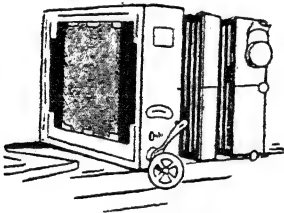
चित्र ६ – कैमेरे में एक चार खानेदार शीशा लगा रहता है।
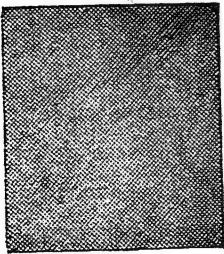
चित्र ७—चारखानेदार शीशेपर तिरछी, समानांतर और बराबर-बराबर दूरी पर बहुत सी रेखाएँ खिंची रहती हैं।

तब शीशेको सिलवर नाइट्रेटके घोलमें डुबाते हैं (चित्र ४)। इसमें शीशेको पाँच मिनट तक रहने देते हैं। इस प्रकार शीशा फोटोका प्लेट बन जाता है। इस रीतिसे स्वयं प्लेट बनानेके बदले बना-बनाया प्रोसेस प्लेट खरीदा भी जा सकता है. परन्तु स्वयं बनानेमें प्लेट सस्ता पड़ता है। उपरोक्त क्रिया अँधेरी कोठरी के लाल प्रकाशमें की जाती है।

उपरोक्त रीतिसे बने या बाज़ारसे ख़रीदे प्लेटोंको प्लेट-घर (प्लेट-होल्डर) में लगाते हैं (चित्र ५)। यह क्रिया भी अँधेरी कोठरीके लाल प्रकाशमें की जाती है।

कैमेरेमें एक चारखानेदार शीशा इस स्थितिमें लगा रहता है कि वह प्लेटके सामने पड़े चित्र ६)। इस चारखानेदार शीशेको स्क्रीन या हाफ़टोन स्क्रीन कहते हैं। कैमेरेमें ऐसा प्रबन्ध रहता है कि बाहर लगे एक पेंचको घुमानेसे यह स्क्रीन प्लेटके बहुत पास लाया जा सकता है। यह परमावश्यक है कि स्क्रीन प्लेट अपने प्रत्येक स्थान में प्लेटके ठीक-ठीक समानान्तर हो, अर्थात् स्क्रीनके चारों कोने प्लेटकी धरातलसे ठीक एक ही दूरी पर रहें।

स्क्रीन वस्तुतः दो शीशोंको चिपका कर बनाया रहता है। दोनों शीशोंपर बहुत पास-पास आड़ी समानान्तर रेखाएँ खींची रहती हैं। एक इंचमें ४५ से लेकर १७५ रेखाएँ हो सकती हैं। रेखाएँ प्रत्येक इञ्चमें जितनी अधिक होंगी उतनी ही बारीक बिंदियोंका ब्लॉक बनेगा, और छपा चित्र उतना ही अधिक सुन्दर लगेगा, परन्तु बारीक स्क्रीनसे बने ब्लाक केवल बहुत चिकने काग़ज़ (आर्ट पेपर) पर ही छापे जा सकते हैं। यदि कागज़ काफ़ी चिकना न होगा तो बारीक ब्लॉकसे छापने पर चित्रमें लीपा-पोती हो जायगी। इसीलिए एक (खुरखुरे) कागज़ पर छपे बड़े चित्रोंके लिए ही, विशेषकर ऐसे चित्रोंके लिए जो विज्ञापनके अभिप्रायसे दीवारों पर चिपका दिये जाते हैं ४५ लाइन प्रति इंचके स्क्रीनका प्रयोग किया जाता है। समाचार-पत्रोंके लिए ८५ या १०० रेखाओं वाले स्क्रीनका प्रयोग किया जाता है; पुस्तकों या अच्छी पत्रिकाओंके लिए ११३ लाइन प्रति इञ्चके स्क्रीनका प्रयोग किया जाता है। उदाहरणतः विज्ञानके इस अंकके पृष्ठ ७४ पर छपे चित्रका ब्लॉक १३३ लाइन प्रति इञ्चके स्क्रीनसे बना है। आर्ट
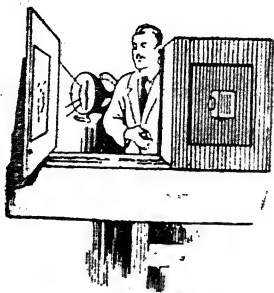
चित्र ८—चारखानेदार शीशाके पीछे रक्खे प्लेटपर फोटो खींचते हैं।
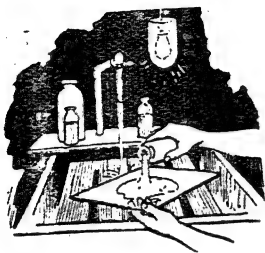
चित्र ९—प्रकाशदर्शन पाये प्लेटको डेवेलप करते हैं और उसे सूखनेको रख देते हैं।
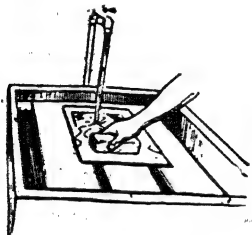
चित्र १०—ताँबेकी चादर ले उसको पहिले अच्छी तरह माँजते और धोते हैं।
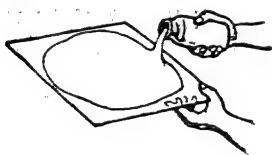
चित्र ११—फिर ताँबेपर सरेस और अमोनियम बाइक्रोमेटका घोल डालते हैं।
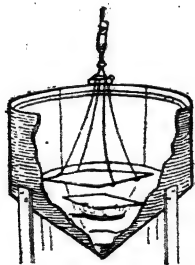
चित्र १२—तब ताँबेको ज़ोरसे नचाते हैं जिससे फालतू मसाला छिटक जाय और चादर सूख जाय।
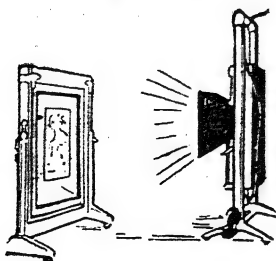
चित्र १३—मसाला लगे ताँबे पर नेगेटिवसे छापते हैं।

पेपर पर छापनेके लिए बने ब्लॉक अकसर १७५ लाइन प्रति इञ्चके ब्लॉकसे बनते हैं। पृष्ठ ७४ वाले चित्रको ध्यानसे देखने पर, विशेष कर इसे प्रवर्द्धक ताल (मैगानिफ़ाइंग ग्लास) द्वारा देखने पर पता चलेगा कि चित्रमें असंख्य बिंदियाँ हैं। जहाँ चित्र काला है वहाँ ये बिंदियाँ इतनी बड़ी हैं कि वे एक दूसरेसे सट गयी हैं। जहाँ चित्र प्रायः श्वेत है वहाँ ये बिंदियाँ बहुत छोटी हैं। वस्तुतः इन बिंदियोंके छोटे-बड़े होनेके कारण ही चित्र कहीं अधिक, कहीं कम काला जान पड़ता है। जैसे ऊपर बतलाया गया है, यह चित्र १३३ लाइन प्रति इञ्च वाले स्क्रीनसे बने ब्लाकसे छपा है। यदि १७५ लाइन प्रति इञ्चके स्क्रीनसे बने ब्लाककी छाप देखो जाय तो बिंदियाँ इतनी छोटी होंगी कि वे अलग-अलग आसानीसे न देखो जा सकेंगी इसके विपरीत यदि ८५ लाइन प्रति इञ्चका चित्र पाससे देखा जाय तो बिंदियाँ बहुत स्पष्ट दिखलाई पड़ेंगी और इसलिए चित्र भद्दा जान पड़ेगा।

ऊपर कहा गया है कि स्क्रीन दो शीशों को चिपका कर बनाया रहता है और दोनों शीशों पर गाड़ी लकीरें रहती हैं। ये लकीरें शीशेको हीरेकी कलमसे खरोंच कर खींची जाती हैं और पीछे उनमें काला रंग भर दिया जाता है। अंतमें खरोंची सतहें पारदर्शक मसाला लगा कर एक दूसरेसे चिपका दी जाती हैं। चिपकाने पर इन शीशोंकी काली रेखाएँ एक दूसरेको समकोण बनाती हुई काटती हैं (चित्र ७)।

साधारणतः ४५, ५५, ६५, ८५, १००, ११०, १२०, १३३, १५० और १७५ रेखाओंके स्क्रीनोंका ही इस्तेमाल किया जाता है।

स्क्रीन और प्लेटके बीचकी दूरी स्क्रीनकी बारीकी लेंजके छेद और अन्य कई बातों पर निर्भर है। स्क्रीनको उचित दूरी पर रखकर फोटो लिया जाता है (चित्र ८)। इस प्रकार नेगेटिवमें छोटी-बड़ी बिंदियाँ बन जाती हैं।

प्रकाश-दर्शन (एक्सपोजर) देनेके बाद प्लेटको साधारण रीतिसे डेवेलप करते हैं (चित्र ९)। अवश्य ही इस कामको अँधेरी कोठरीके लाल प्रकाशमें करना पड़ता है।

उधर नेगेटिव सूखता रहता है; इधर ताँबेकी चादरको तैयार किया जाता है। इसे प्यूमिस पत्थरके बारीक चूर्णसे खूब माँजा और धोया जाता है (चित्र १०)।
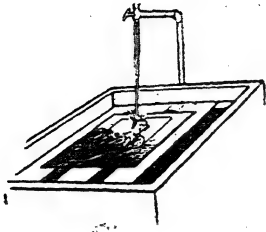
चित्र १४—अब ताँबेको पानीसे धोकर बैगनी रङ्गसे रङ्ग देते हैं।
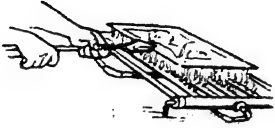
चित्र १५—इसके बाद ताँबेको चूल्हेपर गरम करते हैं।
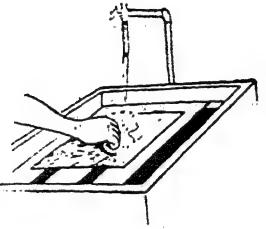
चित्र १६—ठंडा होने पर ताँबेको पहले सिरका और नमकसे, फिर पानीसे धोते हैं।
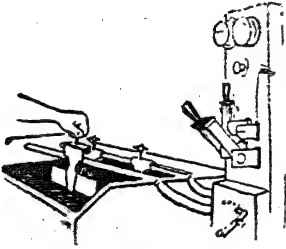
चित्र १७—तब ताँबेको तूतियाके घोलमें डालकर बिजली चालू कर देते हैं।

चित्र १८—जहाँ-जहाँ ताँबा काफ़ी गहरा हो जाता है उसे वार्निशसे रङ्ग कर दोबारा रासायनिक घोलमें डालते हैं।
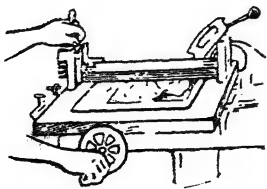
चित्र १९—ताँबेके किनारे को तिरछा छील देते हैं और इच्छानुसार रेखायें खींच देते हैं।

ताँबे पर अब सरेस (फिश ग्लू) और अमोनियम बाइक्रोमेटकी एक बहुत पतली तह चढ़ाई जाती है। इसके लिए सरेस और बाइक्रोमेटके घोलको ताँबे पर उड़ेला जाता है (चित्र ११)।

इस अभिप्रायसे कि सरेसकी तह खूब पतली और सर्वत्र एक ही मोटाईकी चढ़े, ताँबेको विशेष फिरकीमें फँसा कर जोरसे नचाते हैं। ऐसा करनेसे फालतू सरेस छिटक जाता है। कार्यकर्त्ता अपनी रक्षाके लिए, नचानेके पहले ताँबेको एक खुले मुँहके बड़े बरतनमें लटका लेता है कि अपने ऊपर सरेसके छींटे न पड़ें। इस बरतनमें नीचे एक अँगीठी भी रहती है। इसलिए सरेस बातकी-बातमें सूख जाता है। यह काम अँधेरी कोठरीमें किया जाता है।

अब ठीक उसी प्रकार जैसे नेगेटिवसे फोटो छापते हैं नेगेटिवको छापनेके चौखटेमें रखकर और उस पर ताँबेकी मसालेदार सतह रखकर ताँबे पर छापते हैं (चित्र १३)।

इसके बाद ताँबेको अँधेरी कोठरीमें पानीके नीचे रख कर धोते हैं (चित्र १४)। ऐसा करनेसे बिंदियोंके बीच वाले खाली स्थानोंसे सरेस बह जाता है। इससे बाद ताँबेको बैगनी रंगमें डुबा देते हैं। ऐसा करनेसे बिंदियाँ रँग उठती हैं, क्योंकि वहाँ सरेस रहता है। बिंदियोंके गाढ़े बैगनी रंगके हो जानेसे चित्र स्पष्ट दिखलाई पड़ने लगता है और यदि कोई त्रुटि रह गई हो तो तुरन्त पता चल जाता है।

अब ताँबेको अँगीठी पर खूब गरम करते हैं (चित्र १५) और उसे धीरे-धीरे ठंडा होने देते हैं। इससे ताँबे पर चढ़ा मसाला कड़ा हो जाता है और तेजाबमें भी नहीं कटता।

इसके बाद सावधानीसे ताँबेको सिरका और नमक मिले पानीसे साफ करते हैं जिसमें बिंदियोंके बीचके खाली स्थान पर ज़रा-सा भी मसाला लगा न रह जाय (चित्र १६)।

इस प्रकार साफ किये ताँबेकी पीठ और किनारों पर विशेष वार्निश लगा कर ताँबेको आयरन पर क्लोराइडके घोलमें डालते हैं। इससे भी अच्छी और नवीन रीति यह है कि ताँबेको तूतियाके घोलमें डालकर बिजली चालू कर देते हैं (चित्र १७)। इन दोनों रीतियोंमेंसे प्रत्येकमें ताँबा धीरे-धीरे कटने लगता है। ताँबा बिंदियोंके बीचके खाली स्थानोंमें इस प्रकार कुछ समयमें गहरा हो जाता है।

चित्र २०—फिर नहरनोंसे आवश्यकतानुसार सुधार कर देते हैं।
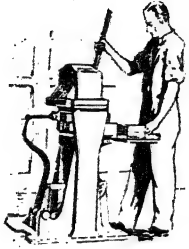
चित्र २१— इसके बाद प्रूफ उठा कर देखते हैं कि ब्लॉक ठीक है या नहीं।
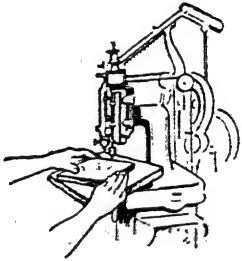
चित्र २२ — ताँबेके तिरछे किये गये किनारोंमें जगह-जगह छेद करते हैं और ताँबेको लकड़ीपर जड़ देते हैं।
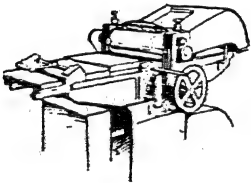
चित्र २३—अंतमें ब्लॉक-की पेंदी पर रंदा करके ब्लॉकको उचित ऊँचाईका कर देते हैं।

कुछ समय बाद ताँबेकी जाँचकी जाती है और जहाँ-जहाँ बिंदियोंके बीचकी जगह काफी गहरी हो जाती है वहाँ-वहाँ विशेष वार्निश पोत दी जाती है (चित्र १८) और तब ताँबेको फिर और कटनेके लिए पूर्वोक्त रासायनिक घोलमें डाल दिया जाता है। इस प्रकार चार-पाँच बारमें छोटी बिंदियाँ इच्छानुसार छोटी हो जाती हैं। यदि बीच-बीचमें कुछ अंशों पर वार्निश पोत कर उनकी रक्षा न की जाय तो अन्य स्थानोंकी बिंदियाँ भी आवश्यकतासे अधिक छोटी हो जाती हैं और ब्लॉकसे चित्र फीका छपता है।

इसके बाद ताँबेके किनारोंको तिरछा या पतला कर दिया जाता है जिसमें यह काठ पर जड़ा जा सके। इच्छा होती है तो बार्डरके लिए एक-दो रेखाएँ भी खींच दी जाती हैं (चित्र १९)।

फिर खुदे हुए ताँबेकी सूक्ष्म जाँच की जाती है और जहाँ कहीं सुधारने योग्य कोई त्रुटि दिखलाई पड़ती है वहाँ हाथसे खुदाई करके सुधार दी जाती है (चित्र २०)।

फिर प्रूफ उठाकर देखते हैं कि ब्लॉक ठीक है या नहीं (चित्र २१) और कहीं आवश्यकता हुई तो सुधा कर देते हैं।

इसके बाद ताँबेके तिरछे किये या पतले किये किनारों में छेद करते हैं (चित्र २२) और उसे लकड़ी पर जड़ देते हैं।

अंतमें ब्लॉककी पेंदी पर रंदा करके ब्लॉककी ऊँचाई ठीक टाइपोंकी ऊँचाईके बराबर कर देते हैं। इस प्रकार ब्लॉक तैयार हो जाता है। (इंडियन पेपर ऐंड प्रिंटके एक लेख के आधार पर।)

१३३ लाइन के स्क्रीन वाले ब्लॉक से छपा चित्र

प्रकाशदर्शन

प्रारम्भिक – फ़ोटो लेनेके लिये जितने समय तक शटर खुला रहता है और प्रकाश भीतर जाकर फिल्म पर पड़ता है उतने समयको प्रकाशदर्शन (एक्सपोज़र exposure) कहते हैं। कितना प्रकाश-दर्शन देना चाहिये यह महत्वपूर्ण विषय है; परन्तु नौसिखिये और सस्ते कैमेरे वाले निम्न मोटे नियमोंसे काम चला सकते हैं।

१—सस्ते कैमेरे वालेको तेज़ प्लेट या फिल्म इस्तेमाल करना चाहिये जिसमें कम प्रकाशदर्शनके कारण फोटो ख़राब न हो। स्मरण रहे कि जिन शटरोंमें केवल एक ही गति (तेज़ी या स्पीड) रहा है उनमें शटरसे लगभग १/२५ सेकंडका प्रकाशदर्शन मिलता है। यदि लेंज़ पर कोई नम्बर न पड़ा हो तो लेंज़-छेदको फ़/१६ मान लिया जा सकता है।

२ धूपमें स्थित सब साधारण विषयोंके लिये फ़/१६ वाला लेंज़-छेद और १/२५ सेकंड वाली शटर गति इस्तेमाल करना चाहिये। बादल रहने पर फ़/११ या अधिक बड़ा लेंज़ छेद इस्तेमाल करना पड़ेगा।

३—दालानमें बैठाकर मनुष्यचित्र लेनेके लिये (जब बाहर धूप हो और दालानके सामने पासमें ही ऊँचे पेड़ या मकान न हों तो) कैमेरेको तिपाई या मेज पर रख कर फ़/११ पर १/२ सेकंड या फ़/४·५ पर १/१० सेकंडका प्रकाशदर्शन देना पड़ेगा; इसलिये वहाँ नौसिखियोंको चित्र नहीं खींचना चाहिये।

प्रकाशदर्शन किन बातों पर निर्भर है?

प्रकाशदर्शनकी मात्रा (१) प्रकाशकी तेज़ी, (२) लेंज़ छेद, (३) प्लेटकी तेज़ी, (४) विषयकी दूरी और रङ्ग, और (५) प्रकाश-छनना (फ़िल्टर, filter) के लगे रहने या न लगे रहने पर निर्भर है।

प्रकाश जितना ही तेज़ होगा, प्रकाशदर्शन उतना ही कम लगेगा। लेन्ज़-छेद जितना ही छोटा होगा प्रकाशदर्शन उतना ही अधिक लगेगा। लेंज़ पर अकसर फ़/१·४, २, २·८, ४, ५·६, ८, ११, १६, २२ और ३२ वाले नंबर रहते हैं। हाँ, आरंभके नंबर शायद न हों (क्योंकि सब लेंज़ इतने तेज़ नहीं होते कि उन पर फ़/१·४, फ़/२ इत्यादि वाले नंबर भी हों)। संभवतः पहला नंबर भी
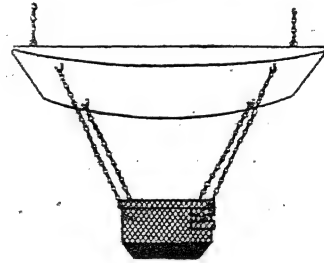
चित्र १ – अँधेरी कोठरीके लिये बढ़िया प्रकाश: प्रकाश पहले लैंपके ऊपर लगे रिफ़्लेक्टर पर पड़ता है और तब बिखर कर सारी कोठरीमें फैलता है।

इस क्रमका नहीं होगा। शेष नंबरों पर प्रकाशदर्शन दुगुना होता चला जायगा। जैसे, यदि फ़/५·६ पर १ सेकंडका प्रकाशदर्शन ठीक होगा तो फ़/८ पर २ सेकंडका ठीक होगा, फ़/११ पर ४ सेकंडका, फ़/१६ पर ८ सेकंडका इत्यादि।

यदि लेंज़ पर कोई ऐसा नंबर हो जो उपरोक्त श्रेणीमें न हो तो उस नंबरके वर्गसे ६४ को भाग देने पर पता चल जायगा कि उस नम्बर पर लेंज़-छेदको रखनेके बदले फ़/८ पर लेंज़-छेदको रखनेसे कितना गुना अधिक प्रकाशदर्शन लगेगा। जैसे, ३·५ का वर्ग हुआ ३·५×३·५ अर्थात् १२·२५। अब ६४ को १२·२५ से भाग देने पर मिलता है लगभग ५। इसलिए फ़/८ की अपेक्षा फ़/३·५

लगभग ५ गुना तेज़ है ।

प्लेटकी तेज़ीके लिए प्लेटके डिब्बों पर या कैटलगोंमें नम्बर छपे रहते हैं । नम्बरोंकी इन दिनों तीन पद्धतियाँ हैं । एच० डी०, शाइनर और डी० आइ० एन० । भिन्न-भिन्न प्लेट अपने-अपने एच० डी० नम्बरोंके अनुपातके

नीची अँधेरी कोठरीके लिये लैंप; जब अँधेरी कोठरी नीची होती है तब लैंपके ऊपर रिफ़्लेक्टर की आवश्यकता नहीं पड़ती—कोठरीकी छत ही रिफ़्लेक्टर का काम देती है ।

अनुसार तेज़ या मंद होते हैं; जैसे, ३०० एच० डी० के प्लेटकी अपेक्षा ३००० एच० डी० का प्लेट १० गुना तेज़ होगा। शाइनर नम्बरोंमें एक बढ़नेसे प्लेट सवाई, या ३ बढ़नेसे दुगुना तेज़ होता है, जैसे ३० शाइनरका प्लेट २७ शाइनरके प्लेटसे दुगुना तेज़ होगा । डी० आई० एन० संख्यामें लगभग १० जोड़नेसे शाइनर नम्बर प्राप्त होता है । कभी-कभी डी० आई० एन० नम्बर भिन्नके रूपमें लिखा जाता है जिसका हर (नीचेकी गिनती) सदा १० होता है । ऐसी दशामें भिन्नके अंश (ऊपरकी गिनती) में १० जोड़ने पर शाइनर नम्बर मिलेगा । उदाहरणतः १८ या $\frac{१८}{१०}$ डी० आइ० एन० = २८ शाइनर या २८° शाइनर । परन्तु स्मरण रखनेकी बात है कि विविध कारणोंसे एक कंपनीके नम्बर दूसरी कंपनीके नम्बरसे ठीक मेल नहीं खाते और फिर एक ही कंपनीके प्लेटोंमें अकसर तेज़ प्लेटों पर आवश्यकतासे अधिक तेज़ नम्बर पड़ा रहता है (शायद इस ख्यालसे कि वह खूब बिके) । इसलिए ऊपर कहा गया है कि नौसिखियेको फिल्म बदलते न रहना चाहिए । उसे किसी नामी कंपनीको चुनना चाहिए और कुछ समय तक बराबर एक ही फिल्मका इस्तेमाल करना चाहिए।

माल ताज़ा होना चाहिए । रक्खे रहनेसे, विशेष कर गरमी और बरसात खानेसे फिल्म और प्लेट कुछ ख़राब हो जाते हैं ।

विषयका रंग जितना ही गाढ़ा होगा उतना ही अधिक प्रकाशदर्शन लगेगा । बहुत दूर वाले विषयोंमें कुछ कम प्रकाशदर्शन लगता है ।

लेंज़ पर प्रकाश छनना लगानेसे प्रकाशदर्शन दुगुना, तिगुना या चौगुना हो जाता है । यह फिल्मकी जाति और छननेके रंग और गाढ़ेपन पर निर्भर है । प्रकाश-छनने पर
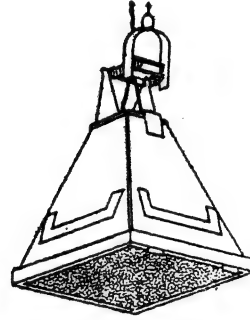
अँधेरी कोठरी के लिये लैंप; इसमें रोशनी सीधे निकलती है, परन्तु सुविधानुसार लैम्प टेढ़ा भी किया जा सकता है ।

या कैटलगमें अकसर लिखा रहता है कि उसके लगाने पर कितना गुना अधिक प्रकाशदर्शन देना चाहिए ।

प्रकाशदर्शन-मापक (exposure meters)—बाज़ारमें ऐसे प्रकाशदर्शन-मापक मिलते हैं जिनसे प्रायः ठीक पता चल जाता है कि कितना प्रकाशदर्शन देना चाहिए। यदि पहली बार सफलता न मिले तो प्रथम प्रयासके परिणामके अनुसार फिल्मकी तेज़ीको कम या अधिक मान कर काम करनेसे अवश्य ही सफलता मिलेगी ।

प्रकाशदर्शन-मापक कई प्रकारके होते हैं । वे जो फोटो-एलेक्ट्रिक (वैद्युत) होते हैं बहुत सच्चे और सुविधाजनक होते हैं । हो सके तो ऐसा ही प्रकाशदर्शन-मापक लेना लेना चाहिए, परंतु इसका दाम अधिक होता है (पचास रुपया या अधिक) ।

प्रकाशदर्शन मापकोंकी एक जाति ऐसी होती है जिसमें उत्तरोत्तर गाढ़े रंगके शीशे द्वारा विषयकी ओर देखते हैं और जब विषयका ब्योरा मिट जाता है तब (या अन्य किसी
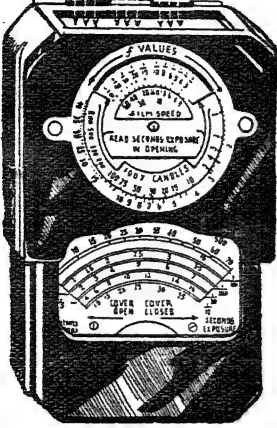
चित्र ४—वैद्युत प्रकाशदर्शन-मापक। इससे उचित प्रकाशदर्शनका बहुत सच्चा पता तुरंत चलता है।
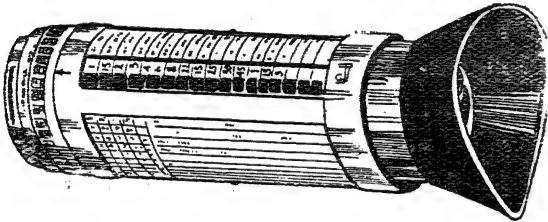
चित्र ५—दृष्टिगत प्रकाशदर्शन-मापक। इस प्रकाशदर्शन-मापकके एक सिरेको आँखमें लगाकर दूसरे सिरेको घुमाया जाता है। जब दृश्यका ब्यौरा मिट जाय तो बाहर लगे नंबरसे पता चल जाता है कि प्रकाश-दर्शन कितना देना ठीक होगा।

संकेतसे) प्रकाश नप जाता है। इससे प्रकाशदर्शन ज्ञात हो जाता है। ये सुविधाजनक तो होते हैं, परन्तु वैद्युत प्रकाशदर्शन-मापकोंके बराबर सच्चे नहीं होते।

तीसरी जातिके प्रकाशदर्शन-मापकोंमें ऐसा काग़ज़ लगा रहता है जो प्रकाश लगनेसे (बिना डेवेलप किये ही) काला हो जाता है। जितने समयमें काग़ज़ काला होता है उससे प्रकाशकी तेज़ीका पता चल जाता है और इसलिए प्रकाशदर्शनका पता चल जाता है। ये बहुत सुविधाजनक और सच्चे तो नहीं होते, परंतु सस्ते होते हैं।

चौथी जातिके प्रकाशदर्शन-मापक वस्तुतः मापक नहीं गणक होते हैं। कुछ कारखाने वाले उन्हें गणक (reckon-

चित्र ६—परिवर्तनशील काग़ज-युक्त प्रकाशदर्शन मापक। जितने समयमें परिवर्तनशील काग़ज़ काला होता है उसे नापनेसे और बाईं ओर वाले ढक्कनमें लिखे नंबरको देखनेसे पता चल जाता है कि कितना प्रकाशदर्शन दिया जाय।
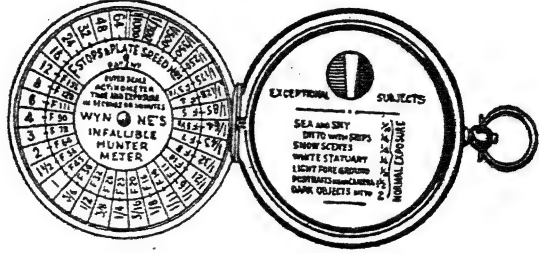
er) कहते भी हैं, परन्तु अन्य कारखाने वाले उन्हे मापक (meter) ही कहते हैं। ये बहुत सस्ते होते हैं, परंतु नीचेकी सारिणीसे वे किसी प्रकार अधिक सच्चे नहीं होते। हाँ, वे कुछ अधिक सुविधाजनक अवश्य हो सकते हैं क्योंकि वे पॉकेटमें आसानीसे रक्खे जा सकते हैं।

सरल प्रकाशदर्शन गणक—प्रकाशदर्शन के अनुमान करनेमें कठिनाई केवल प्रकाशकी तेज़ीके आँकनेमें पड़ती है। यह (१) समय (दिनमें कितना बजा है और ऋतु क्या है), (२) बादलोंकी उपस्थिति या अनुपस्थिति, और (३) स्थान (विषय खुले मैदानमें है या पेड़के नीचे या दालानमें) इन तीन बातों पर निर्भर है।

नीचे समय, बादल, स्थान, विषय, लेंजछेद, प्लेट-तेज़ी आदिके लिये संख्यायें दी गई हैं। प्रत्येक बातके लिए उचित संख्या लेकर सबको जोड़ डालना चाहिये। तब अंतिम सारिणीमें योगके सामने देखकर उचित प्रकाशदर्शन जान लेना चाहिए।

समय—गरमीके दिनोंमें ६ बजेसे ३ बजे तक और

जाड़ेके दिनोंमें १० बजेसे २ बजे तक, ०; इस समयके दो घंटे पहले तक या २ घंटे बाद तक, १ ।

बादल - धूप, ०; हलके बादल, परछाईं पड़ती हो, १; गाढ़े बादल, परछाईं न पड़ती हो, २; काली घटा ३ ।

स्थान—धूपमें, या बादल हो तो खुले मैदानमें, ०; वृक्ष या मकानके सायेमें (आधा आकाश दिखलाई पड़ता हो), ४; दालानमें, ५; दो बड़ी खिड़कियों वाले चुनौटी किए मकानमें, ६; यदि एक ही खिड़की हो, ७; यदि खिड़कियों द्वारा आकाश न दिखलाई पड़े, ८ से अधिक ।

फ़िल्म या प्लेट – एच० डी० ४८०० (ब्रिटिश), ०; २४००, १; १२००, २; ६००, ३; ३००, ४; १५०, ५; या शाइनर ३३, ०; ३०, १; २७, २; २४, ३; २१, ४ ।

लेंजछेद—फ़/२·८, ०; फ़ ४, १; फ़ ५·६, २; फ़/८, ३; फ़/११, ४; फ़/१६, ५; फ़/२२, ६; फ़/३२ ७ ।

प्रकाश छनना—न रहे तो ०; हलका, १; गाढ़ा, २ । स्मरण रहे कि आरथोक्रोमैटिक फ़िल्म या प्लेट पर केवल पीला प्रकाश छनना लग सकता है; साधारण प्लेटके साथ प्रकाश छनना इस्तेमाल नहीं किया जा सकता ।

विषय— साधारण (मनुष्यचित्र, ऐसे दृश्य जिनमें २०-२५ फ़ुट पर कोई साधारण रंगकी वस्तु हो, इत्यादि) ०; गाढ़े रंगकी वस्तु या साँवले मनुष्य १; हलके रंगकी वस्तु, या दूरस्थ दृश्य,– १; केवल सफ़ेद वस्तु,–२; केवल जल, आकाश और बादल, –३ । [–१ को जोड़ने का अर्थ है १ घटाओ, इत्यादि]

उपरोक्त संख्याओंको जोड़ो और योगके अनुसार सारिणीसे प्रकाशदर्शन निकालो ।

उदाहरण– मार्चमें ६। बजे सवेरे, धूपमें, सड़कका दृश्य लेना है । लेंज़ छेद फ़/११ है और कैमेरेमें साधारण तेज़ीका फ़िल्म लगा है । क्या प्रकाशदर्शन दिया जाय ? प्रकाश छनना नहीं लगा है ।

२ — $\frac{1}{1000}$ सेक	३ — $\frac{1}{500}$ सेक	४ — $\frac{1}{250}$ सेक	५ — $\frac{1}{100}$ सेक	६ — $\frac{1}{50}$ सेक
७ — $\frac{1}{25}$ सेक	८ — $\frac{1}{16}$ सेक	९ — $\frac{1}{8}$ सेक	१० — $\frac{1}{4}$ सेक	११ — $\frac{1}{2}$ सेक
१२ — १ सेक	१३ — २ सेक	१४ — ४ सेक	१५ — ८ सेक	१६ — १६ सेक
१७ — ३२ सेक	१८ — १ मि	१९ — २ मि	२० — ४ मि	२१ — ८ मि

सारिणी

यहाँ समय-संख्या है ०; बादल संख्या ०; स्थान-संख्या, ०; विषय-संख्या, ०; फ़िल्म-संख्या, १; लेंज़-छेद-संख्या, ५; प्रकाशछनना-संख्या ०; । इनका योग हुआ ६ । इसलिए प्रकाश-दर्शन लगभग $\frac{1}{50}$ सेकंड होगा ।

नोट—(१) यदि शटरसे वह प्रकाश-दर्शन न दिया जा सकें जो सारिणीसे निकले तो लेंज छेदको घटा या बढ़ाकर प्रकाशदर्शनको सुविधानुसार बढ़ा या घटा लेना चाहिए ।

(२) यदि शटरमें ठीक वही गति न मिले जो प्रकाश-दर्शन-सारिणीसे निकले तो कुछ अधिक (सवाई, डेवढ़ा या दुगुना) प्रकाशदर्शन दे देनेमें हानि न होगी ।

(३) यदि प्रकाशदर्शन $\frac{1}{2}$ सेकंडसे अधिक हो तो समय गिनती गिन कर नापा जा सकता है । एक-दो-तीन-चार-पाँच छै-सात आठ इतना खूब तेज़ीसे गिननेमें १ सेकंड लगता है । इसीको बार-बार दोहरानेसे अधिक समय भी नापा जा सकता हैं ।

(४) साधारण फ़िलमको २६ या २७ शाइनरका समझना चाहिए । तेज़ फ़िलमको ३० शाइनर का ।

(५) इंगलैंडकी अपेक्षा अन्य यूरोपीय देश वाले प्लेटों का एच० डी० नम्बर बहुत बढ़ा कर लिखते हैं । उनका नम्बर ब्रिटिश नम्बरका लगभग तिगुना होता है । ऊपरकी सारिणीमें एच० डी० संख्याको ब्रिटिश एच० डी० समझना चाहिए । शाइनर संख्याएँ सर्वत्र एक-सी होती हैं ।

[शेष पृष्ठ ८० पर]

समालोचना

सरल ज्ञानमाला की तीन पुस्तकें—

वैज्ञानिक साहित्य मन्दिर, जार्जटाउन, इलाहाबादके अध्यक्ष श्री शालग्राम वर्मा वैज्ञानिक सहित्यमें गत पच्चीस वर्षोंसे रुचि ले रहे हैं। 'विज्ञान' के प्रारम्भ कालमें श्री वर्मा जी ने हमारे पत्रकी यथेष्ट सेवाकी थी। यह हर्षकी बात है कि आपने 'सरल ज्ञानमाला' के अन्तर्गत बहुत अच्छी पुस्तकें निकालनेकी आयोजना की है। अब तक तीन पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं और कई और तैयार हो रही हैं। संसारकी प्राकृतिक घटनाओं और जीवधारियोंका सरल, रोचक और सचित्र वर्णन इस मालाकी पुस्तकोंमें दिया गया है, और कठिनसे कठिन वैज्ञानिक रहस्यों और सिद्धान्तों की सरलसे सरल आकर्षक भाषामें विवेचना करना इस मालाका ध्येय है। अब तक निम्न पुस्तकें निकली हैं।

१—पदार्थ परिचय—ले० श्री कृष्णानन्द गुप्त, पृ० सं० १४१—सुन्दर सजिल्द सचित्र पुस्तकका मूल्य १)

इस पुस्तकमें सन्तू और मास्टर साहबके संवादके रूप में पदार्थोंके रूप, और पदार्थों की बनावट, गरमी, शब्द, प्रकाश, रंग, विद्युत, सूर्य्यादि ग्रह, शक्ति, वर्षा, इन्द्रधनुष रसायन शास्त्र आदिके संबंधमें १५ अध्याय हैं।

२—नागरिक जीवन—ले० श्री कृष्णानन्द गुप्त, पृ० सं०१६१, सजिल्द पुस्तकका मूल्य १)।

छपाई सफाईमें यह पुस्तक पहली पुस्तकके तद्रूप है। इसमें संवाद नहीं है। पर पुस्तक बड़ी मनोरंजक है। राज्य क्या है?, सरकार क्या है, नागरिक कौन है और उसके क्या अधिकार हैं, कानूनका उद्देश्य क्या है, समाजमें मनुष्यका स्थान क्या है, परिवारका महत्व, स्कूलका जीवन, सार्वजनिक जीवन, स्वयंसेवक, पड़ोसी, देश सेवा आदि कितने ही विषयों पर लेखक ने अपने विचार प्रकट किये हैं। १५-१६ वर्षके विद्यार्थीको इस संबंधमें जो कुछ जानना चाहिये, वह सब इस पुस्तकमें है।

जीव की कहानी—ले० श्री कृष्णानन्द गुप्त, पृ० सं० १५८, सुन्दर सचित्र सजिल्द पुस्तकका मूल्य १)।

१८ अध्यायोंको इस पुस्तकमें योग्य लेखक ने वृक्ष जगत्से लेकरके मनुष्यों तकके जीवोंका उल्लेख किया है। सम्पूर्ण पुस्तकका विषय है—"मा के पेटमें बच्चे कहाँसे आते हैं और कैसे पैदा होते हैं?" बीज, कोष, पराग, केसर अंडे, रज, वीर्य, भ्रूण आदि विषयों पर गंभीरतासे विचार किया गया है। कृष्णानन्दजीकी अन्य पुस्तकोंकी अपेक्षा यह पुस्तक अधिक उत्कृष्ट है, और सबके पढ़ने योग्य है।

इतनी सुन्दर, सुरुचिपूर्ण, ललित और सर्वोपयोगी पुस्तकें निकालनेके लिये लेखक और प्रकाशक दोनों धन्यवाद के पात्र हैं। हमें आशा है कि इस मालाकी सभी पुस्तकें एकसे एक अच्छी निकलेंगी।

विज्ञान की चमत्कार—ले० श्री भगवती प्रसाद श्रीवास्तव, एम० एस-सी०, प्रकाशक, ज्ञानमंडल काशी, पृ० सं० १६६, मूल्य १)।

श्री भगवतीप्रसाद जी हिन्दी वैज्ञानिक साहित्यके उदीयमान लेखकोंमेंसे हैं। "आज" में आपके लगभग प्रति सप्ताह विज्ञान संबंधी लेख निकला करते थे। यह पुस्तक उन लेखोंमेंसे ही कुछका संग्रह है। सुरुचिपूर्ण भाषामें वैज्ञानिक लेख लिखनेमें भगवतीप्रसाद जी ने अच्छी कुशलता प्राप्त कर ली है। इस पुस्तकमें छोटे बड़े ३३ लेख हैं। चन्द्रमा; उल्कापात, दूरबीन, फोटोग्राफी, बिजली, रेडियो, टेलीविज़न, वायुयान, सबमैरीन, भूकंप, पैराशूट, विटेमिन, मांसाहारी पौधे आदि अनेक विषयोंका इन लेखों में समावेश है। हमें विश्वास है कि जनता इन लेखोंका आस्वादन अवश्य करेगी। पुस्तक सर्वथा संग्रहणीय है।

—सत्यप्रकाश

फ़ोटोग्राफ़ी

[पृष्ठ ७८ के आगे से]

(९) डेवेलप करनेके बाद नेगेटिवको देखनेसे पता चल सकता है कि फिल्मको प्रकाशदर्शन ठीक मिला था या न्यूनाधिक। इसकी रीति आगे बतलाई जायगी। यदि आरम्भमें एक नोटबुकमें प्रत्येक फ़ोटोके लिये लिख लिया जाय कि समय और ऋतु, बादल, स्थान, विषय, लेन्ज़-छेद और प्रकाश-छनना क्या थे, सारिणीसे कितना प्रकाशदर्शन निकला और वस्तुतः कितना दिया गया और अन्तमें परिणाम क्या हुआ तो सच्चा प्रकाशदर्शन अनुमान करनेका गुर शीघ्र मिल जायगा।

सहनशीलता—सभी प्लेटों और फिल्मोंमें (परन्तु विशेषकर उन फिल्मोंमें जो 'डबल-कोटेड' रहते हैं—इनकी सूचना कैटलगोंमें रहती है) सहनशीलता या लैटीच्यूड (latitude) होती है जिसके कारण शुद्ध प्रकाशदर्शन के लगभग चौथाई भागसे लेकर लगभग चालीस गुने तक प्रकाशदर्शन देने पर भी चित्र नष्ट नहीं होता। इसलिये प्रकाशदर्शनमें बड़ी बारीकीकी आवश्यकता नहीं है। नौसिखियेको यथासम्भव डबल कोटेड फ़िल्म इस्तेमाल करना चाहिये।

जलना

यदि किसीके कपड़ेमें आग लग जाय तो व्यक्तिको फ़र्श पर तुरन्त लिटा दो, नहीं तो आगकी आँच उठकर मुँह और बाल तक पहुँचेगी और दम भी घुटेगा। फिर तुरन्त जलते कपड़ेके ऊपर मोटी चादर, कंबल, दरी या अपना कोट ही फेंक कर दबा दो। पानी डालकर बुझाना बुरा है।

यदि शरीरका अधिक भाग जला हो तब चिकित्साका मुख्य उद्देश्य पहले सदमेके कारण उत्पन्न होने वाली बेहोशीसे बचानेकी कोशिश है। रोगीको गरम कपड़ेसे सावधानीसे ढककर लिटाओ। आँचके पास लिटाओ जिसमें हाथ-पैर ठंढा न होने पावे। आवश्यकता पड़ने पर ब्रैण्डी और पानी दो (या गरम दूध)। पैरकी ओर चारपाईके नीचे एक-एक ईंट रखकर ऊँचा करो। डाक्टरको बुलाओ क्योंकि डाक्टर पीड़ा दूर करनेके लिये सूई (इंजेक्शन) और नसमें पानी चढ़ानेके लिये प्रबन्ध आवश्यकतानुसार करेगा।

विषय-सूची

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग।

विज्ञानं ब्रह्मेति व्याजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्याभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५४

भाग ५३ | प्रयाग, मेष, संवत् १९९८ विक्रमी जून, सन् १९४१ | संख्या ३

मधु

[ले०—श्रीयुत रामेशवेदी आयुर्वेदालङ्कार, लाहौर]

शहदके रंग

विभिन्न प्रकारोंके शहद रङ्ग, स्वाद और घनतासे एक दूसरेसे बहुत अधिक भिन्न होते हैं। एक शहद प्रायः रङ्ग रहित हो सकता है जब कि दूसरा शहद उसी स्थानमें उन्हीं मक्खियोंसे और एक जैसी अवस्थाओंमें ही परन्तु तद्भिन्न फूलोंसे बनाया गया है, गहरे भूरे रङ्गका हो सकता है। एक प्रकारके मधुमें सत्रह प्रतिशतकसे कम पानी हो सकता है और दूसरेमें पच्चीस प्रतिशतक भी पानी मिल जाता है।

सबसे अच्छा शहद जलीय श्वेत माना जाता है। कमल, सेव, खीरा, ट्यूपिलो (tupilo) कपास, नारंगी आदिसे सफ़ेद शहद प्राप्त होता है। एम्बर वर्ण शहद निम्नलिखित फूलोंसे प्राप्त होता है—यूकलिप्टस, चम्पा गेंदा और दूब घास।

जलीय सफेदसे हलका पीला, भूरा, गहरा मटियाला और लगभग कृष्ण वर्णका शहद भी होता है। लाल शहद बहुत बार देखनेमें आता है। कुछ शहद हरी सी आभा लिये हुये होते हैं।

स्वाद और गन्ध

शहदका स्वाद बतानेके लिये उसके स्रोतका नाम लेना पर्याप्त होता है। जिन फूलों परसे शहद लिया जाता है उसके नामसे शहदका स्वाद मालूम हो जाता है। नीम, कमल, सरसों आदिके फूल स्रोत हों तो निम्ब मधु, कमल मधु और सर्षप मधु आदि नाम दिया जा सकता है।

दूसरी बात स्वाद पर असर डालने वाली यह होती है कि छत्तेमें शहद पूर्ण परिपक्व हो गया था या नहीं। जिस छत्तेके प्रत्येक कोष्ठ (cell) पर मोमकी टोपी चढ़ी हुई है उसके शहदको परिपक्व शहद समझना चाहिये। पतले और बादमें खुली टंकियोंमें पकाकर गाढ़े किये हुये शहदोंकी तुलनामें टोपीबन्द शहद कहीं बढ़िया होता है। टोपीबन्द करनेके बाद जितनी देर शहद छत्ते

में रहता है उतना ही उसका स्वाद बढ़िया हो जाता है। परन्तु यदि छात्र मधु (combhoney) में टोपियों का रङ्ग काला पड़ गया है और तब भी शहदको छत्तेमें पड़ा रहने देकर बेचा जाता है तो उसका अच्छा दाम नहीं मिलता, इसलिये नहीं कि शहदका स्वाद खराब हो गया है, बल्कि इसलिये कि उसका रूप अच्छा नहीं रहा।

ऊष्मा शहदके स्वादको हानि पहुँचाती है। बहुत अधिक ऊष्मा पर या बहुत अधिक देर तक गरम करनेसे शहदका स्वाद बहुधा बिलकुल खराब हो जाता है। इस लिये शहदके अनेक शौकीन न गरम किया हुआ अर्थात् जिस रूपमें वह छत्तेसे निकलता है, उसी रूपमें शहदको पसन्द करते हैं। विधियोंमेंसे गुज़ार कर बोतलोंमें भरे हुये शहदमें निस्सारक यन्त्र (extractor) से तुरन्त निकाले हुये निस्सारित मधु या छात्र मधुके स्वादका प्रायः अभाव होता है। स्वादको हानि न पहुँचने देनेके लिये बोतलों, डिब्बों और कनस्तरोंमें बन्द करनेके लिए शहदको १६०° फार्नहाइटसे ऊपर कभी नहीं गरम करना चाहिये।

शहद खानेमें जो मज़ा आता है उसका कारण शहद की गन्ध है अथवा उसका स्वाद, यह ठीक-ठीक कहना बहुत कठिन है। बहुतसे पौधों और फूलोंमें आह्लादजनक सुगन्धें होती हैं। इसके साथ ही कभी-कभी इनमें मक्खियों के लिये प्रचुर पुष्प रस होता है। फूल या पौधोंकी गन्ध और पुष्परस या शहदकी गन्ध प्रायः एक ही होती है परन्तु क्योंकि बहुतसे सुगन्धोत्पादक फूल पुष्परससे शून्य होते हैं और बहुतसे पुष्परस स्रवित करने वाले पौधे गन्ध रहित होते हैं इसलिये यह निश्चित् परिणाम निकाला जा सकता है कि फूलोंकी गन्ध पुष्परसकी गन्धसे स्पष्ट भिन्न हो सकती है। दोपहर में बक ह्वीट (buck wheat) अपने फूलोंकी गन्धसे वायुको भर देता है जब कि इस समय पुष्परस फूलोंको भरना बन्द कर चुका होता है।

सब शहदोंमें स्वाद पैदा करने वाले पदार्थ एक ही प्रकृतिके नहीं होते। कुछ शहदोंमें सुगन्धित पदार्थ तथा उड़नशील तेल (essential oils) स्वादका कारण होते हैं। कुछ विद्वानोंका विश्वास है कि स्वादजनक पदार्थ अधिक उच्च और संयुक्त एल्कोहल (complex alcohols) हैं। स्वादजनक पदार्थों के बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण तत्व सम्भवतः उड़नशील अम्ल और अम्ल मिश्रण (acid compounds) हैं जिनमेंसे अनेकको हम जानते हैं।

दाने या स्फटिक बन जाने पर सब शहदोंके स्वादमें कुछ परिवर्तन हो जाता है। सब भस्म शहद, चाहे वे द्रव्य हों या स्फटिककाकार, समान रूपसे अच्छे होते हैं परन्तु इनका स्वाद एक जैसा नहीं होता। इन परिवर्तनों-का स्पष्टीकरण अब तक रहस्य ही है। गरम और ठण्डे शहदोंका स्वाद एक जैसा नहीं होता। यह स्पष्ट है कि गरम करनेसे सुगन्धित पदार्थ निकल जाते हैं इससे स्वाद में फ़र्क पड़ जाता है। खानेसे पहले शहदको थोड़ी देर रेफ्रिजरेटर (refrigerator) में रख कर ठण्डा कर के खानेसे उसमें उत्तम नाज़ुक स्वाद आ जाता है।

स्वाद नष्ट न होने देना

छत्तेमें शहदके परिपाक कालमें ही बहुतसे गन्धमय पदार्थ नष्ट होने लगते हैं। किसी भी शान्त सायंकालमें शहदकी मौसममें मधुमक्खीशाला शहदकी गन्धसे भरी होती है। गन्धके इस नाशको रोका नहीं जा सकता और शायद प्रायः वाञ्छनीय भी होता है, कम-से-कम कुछ-कुछ शहदोंमें तो ज़रूरी ही होता है। मधु निस्सारकसे शहद चुआनेकी प्रक्रियामें बहुतसे गन्धमय पदार्थोंका एक उपयोगी परिणाम नष्ट हो जाता है। यदि कम तापमान पर शहद निकाला जा सके तो इस नाशको बहुत हद तक रोका जा सकता है। परन्तु प्रत्येक मधुमक्खी पालक जानता है कि बिना गरम किये शहदको छत्तेमें से निका-लना कितना कठिन या असम्भव कार्य है। छत्तेकी कोठ-रियोंमें बन्द शहद परसे जब टोपियाँ उतारी जाती हैं और छत्तेको मधुनिस्सारकमें रक्खा जाता है तो छत्तोंमेंसे निकल कर शहद मधु निस्सारककी अन्दरकी दीवारोंके साथ लग जाता है और वहाँसे धीरे-धीरे रिसता है। इस विधिसे कितने अधिक समय तक शहद वायुके खुले सम्पर्कमें रहता है और इस प्रकार गन्धको उड़ने देनेके लिये स्वत-न्त्रता दी जाया करती है। दीवारोंसे रिस कर यह मधु निस्सारकके तलमें पहुँच जाता है और अन्तमें टंकीमें चला जाता है, तब भी यह अच्छा गरम होता है। इन टंकियोंमें आह्लादजनक गन्ध उठती रहती है जिसका मतलब है कि

गन्ध अब तक भी नष्ट हो रही है। मधुनिस्सारकको ढक देते थे जैसा कि किसी-किसी मधु निस्सारकमें प्रबन्ध होता है, और विशेषतः टंकियोंको कस कर बन्द रखनेसे कुछ अंशमें सुगन्धोंका नाश बचाया जा सकता है, परन्तु सामान्यतया सारी प्रक्रियामें जितनी सावधानी रखनी संभव हो उसके होते हुये भी शहद चुआते समय मधु गृहमें एक सुगन्ध होती है कि वायुरहित (एयर टाइट) पात्रों में रख कर गरम करना चाहिये।

रासायनिक विश्लेषण

पहले यह समझा जाता था कि शहदका संगठन प्रायः वही होता है, जो मक्खियोंसे इकट्ठा किये गये पुष्प रस का होता है, परन्तु नवीन खोजें हमें बताती हैं कि पुष्प रस जब इकट्ठा किया जाता है तो यह लगभग सम्पूर्ण शुद्ध गन्नेकी शर्करा (सूक्रोज़) का पचहत्तर या अस्सी प्रतिशतक जलीय घोल होता है। मक्खीकी मधुकी थैली (honey rac) में जाकर पुष्प रसकी गन्नेकी शर्करा उलटी शर्करा (invert sugar) में परिणत हो जाती है जो कि डेक्स्ट्रोज़ (dextrose) और लेवुलोज़ (labuolose) होती हैं। कुछ निरीक्षकोंका ख्याल है कि पुष्प रस जिस समय चूसा जा रहा होता है और मक्खीके निचले ओष्ठके मध्य भागके ऊपरसे जा रहा होता है उसी समय इसमें लाला ग्रन्थियोंका स्राव मिल जाता है। इसलिये जब मक्खी रस निगल रही होती है तब पुष्प रस मधु बन गया होता है, यद्यपि पूर्ण मधु नहीं। कुछ रसायनविज्ञोंके अनुसार गन्नेकी खाण्डका यह परिवर्तन पूर्ण होता है और तैयार मधुमें यह बिलकुल नहीं होती। इसके विपरीत बहुतोंका मत है कि गन्नेकी शर्करा हमेशा कुछ न कुछ विद्यमान रहती है। सम्मतियोंकी इस भिन्नताका कारण सम्भवतः यह हो सकता है कि परीक्षा किये गये शहदके नमूने विभिन्न अवस्थाओंमें लिये गये हों, क्योंकि यह भी ठीक है कि छत्तेमें रक्खे जानेके बाद भी कुछ हद तक परिवर्तन होते रहते हैं।

शहदोंका रासायनिक संघटन यद्यपि भिन्न-भिन्न होता है पर औसतन शहदोंका तीन-चौथाई भाग मुख्यतया दो खाण्ड फलोंकी (लेवुलोज़) और अंगूरी खाण्ड (ग्लूकोज़) होता है। गन्नेकी खाण्डका इसमें बहुत कम परिमाण होता है—दो प्रतिशतकसे भी कम। इसमें डेक्स्ट्रीन, गोंद और लोह, कैल्शियम (खट), प्रस्फुरक, ताम्र, क्लोरीन (हरिण) सोडियम, गन्धक, एलुमीनियम, पोटैशियम, मैग्नीशियम, मैंग्नीज़ आदि खनिज पदार्थ ०.२३ प्रतिशतक होते हैं। यद्यपि यह परिमाण इतना नहीं कि भोजनके खनिजोंका आवश्यक स्रोत बन सके। बहुत कम परिमाणमें अम्ल जैसे पिपीलिकाम्ल (फ़ौर्मिक एसिड) सिरकाम्ल (एसिटिक ऐसिड), तातेरिकाम्ल (तार्तरिक ऐसिड) और मौलिक अम्ल होते हैं। ये अम्ल पाचन क्रियामें रसोंके साथ कबेनित बनाते हैं जो रक्त तथा अन्य द्रव्योंकी क्षारीयताको स्थिर रखनेमें सहायक होते हैं। रञ्जक तथा स्वादु द्रव्य, वृक्षोंके रस पैदा करने वाले अणुओं (cells) में पाई जाने वाली जलीय और वसा विलेय दोनों प्रकारकी विटामिन्स और कई प्रकारके उड़नशील तेल, खमीर (एन्ज़ाइम्स), इन्वर्लेज़ और पानीका अठारह या बीस प्रतिशतक हिस्सा भी इसके संघटनमें भाग लेते हैं।

शहद लेवोरोटेटरी (laevorotatory) होना चाहिए। जलाने पर राख २६ प्रतिशतक प्राप्त होती है। राखका परिमाण ०.१० प्रतिशतक तक हो सकता है।

शहदके अनेक नमूनोंकी आणुवीक्षिक (माइक्रोस्कोपिक) परीक्षा की गई और इसमें विद्यमान पराग कणोंका अध्ययन किया गया। मक्खियाँ जिन फूलोंसे रस लाई थीं शहदमें उन्हीं फूलोंके पराग कण पाये गये। शहदोंमें यह भी देखा गया है कि जिन फूलोंसे रस लाया गया है उनके पराग कण शहदमें अनुपस्थित थे।

आणुवीक्षिक परीक्षासे यह मालूम किया जा सकता है कि शहदमें किस फूलके पराग कण हैं। जिस फूलके पराग शहदमें हों उसका उद्भव स्थान भी वही फूल होंगे। इसके लिए आवश्यक है कि विभिन्न फूलोंके पराग कणोंकी विशेष पहिचानमें दक्षता प्राप्त कर ली जाय।

जमाव बिन्दु

शहदको द्रव वायुके तापमान पर रखकर देखा गया है कि यह कभी भी किसी तापमान पर नहीं जमता। शहदका उबाल बिन्दु पानीसे ऊँचा है। इस तापमान पर इसकी उपयोगिता सर्वथा नष्ट हो जाती है। शहदको

पतला करके जमाया जाय तब भी यह नहीं जमता, लेकिन इस घनताका साधारण खाण्डका घोल जम जाता है।

शहदका ग्रेड नियत करना

छात्र और निस्सारित मधु भी दूसरी सब भोजन सामग्रियोंकी तरह विभिन्न गुणों और मूल्यों वाले होते हैं। निस्सारितका रंग प्रायः जलीय श्वेत, सफ़ेद हलका एम्बर गहरा एम्बर या काला सा हो सकता है। छात्र मधुमें टोपियाँ पोतिया सफेद, पीली, मैली पीली या काली सी हो सकती हैं। सामान्यतया शहद जितना सफेद होता है उसका उतना ही कोमल और मृदु स्वाद होता है। इसके विपरीत काले रंगकी ओर शहदका जितना झुकाव होगा उसका स्वाद उतना ही तीव्र होगा, यद्यपि इस नियमके अपवाद भी हैं।

बाज़ारमें बिकने वाले शहदोंके रंगोंकी सूक्ष्मतासे तुलना की जाय तो बीस-पचीस प्रकारके रंगोंके शहद बाज़ारमें मिलते है। अभ्याससे इन रंगोंके ये भेद मालूम होने लगते हैं। शहद खरीदते समय शहदके रंगको ध्यानसे देखकर जितना सम्भव हो हलके या सफेद रंगका शहद लेना चाहिए। अमेरिकामें गवर्नमेण्ट ने कुछ ऐसे उपकरण बनाये हैं जो शहदके रंगोंको ठीक-ठीक मालूम करते हैं और उसके अनुसार शहदका ग्रेड नियत करते हैं।

निस्सारित मधुकी घनता

कुछ शहद बहुत गाढ़े होते हैं, एक गैलनमें साढ़े बारह पौण्ड आते हैं। कुछ शहद पतले या अपरिपक्व होते हैं और गैलनमें साढ़े ग्यारह पौण्ड आते हैं। उत्तम या साधारण शहद गैलनमें औसत लगभग बारह पौण्ड आ जाते हैं।

एक गैलनमें जितने पौण्ड शहद आ जाय प्रायः वही शहदकी घनता कही जाती है। मार्केटके लिए उपयुक्त और आदर्श (स्टैण्डर्ड) शहद एक गैलनमें ६७° फ़ार्नहाइट पर बारह पौण्डसे कम नहीं आना चाहिए। गैलन में ११$\frac{1}{2}$ या ११$\frac{3}{4}$ पौण्ड आने वाले शहद बहुत पतले होते हैं और सड़ जाते हैं।

घनता शहदकी अच्छाईकी सूचक है।

शहदोंका आपसमें न मिलना

जब एक ही दिनमें कई पेटियोंसे शहद निकाला जाता है और उन सब विभिन्न घनताओंके शहदोंको एक ही टंकी में मिला दिया जाता है तो अगले दिन सुबह देखनेमें आता है कि पतला शहद ऊपरकी सतहमें और भारी या सम्यकतया परिपक्व शहद टंकीके तलमें बैठ जाता है। विभिन्न घनताओंके शहदोंमें आपसमें शीघ्रतासे न मिलने का यह गुण सड़ाँद (फ़र्मंण्टेशन) और खमीरों (yeasts) की उत्पत्तिमें सहायक हो सकता है। स्वाभाविक रूपसे यह समझमें आता है कि विभिन्न घनताओंके शहद मिला कर एक टंकीमें डाल देनेसे सारा समुदाय एक ही घनता का बन जायगा, परन्तु वास्तवमें, जैसा कि ऊपर लिखा गया है, ऐसा होता नहीं है। जब शहद टंकोमें इकट्ठा किया जाता है तब यह बहुत अधिक सम्भव है पतला शहद ऊपर आ जाता हो और टंकीके ऊपरके पृष्ठमें खमीरोंकी उत्पत्तिके लिये अधिक उपयुक्त माध्यम प्रधान करता हो।

खमीरोंकी उत्पत्तिके लिए अनुकूल अवस्थाएं

शहदमें इक्कीस प्रतिशतकसे अधिक पानी खमीरोंकी उत्पत्तिके लिए अनुकूल होता है। बहुतसे उदाहरणोंमें, विशेषकर दानेदार शहदोंमें अपेक्षाकृत कम पानीकी उपस्थितिसे भी फ़र्मण्टेशन हो जाती है। नम स्थानोंमें, विशेषतः उच्च तापमानमें शहद रखनेसे यह नमीको बहुत अधिक सोख लेता है जिससे शहद का औस्मैटिक दबाव (osmatic pressure) इतना घट जाता है कि उसमें खमीरोंकी उत्पत्ति हो सकती है। शहदका औस्मैटिक दबाव जितना अधिक होगा उतना ही यह खमीरोंकी उत्पत्तिके लिए प्रतिकूल होगा। मालूम होता है कि अनेक उदाहरणोंमें पर्याप्त समय तक खमीर अक्रियाशील पड़े रहते हैं और फ़र्मण्टेशन पैदा नहीं करते और ज्यों ही शहदके किसी भागमें, विशेषतः ऊपरके पृष्ठमें पानीका परिमाण बढ़ता है ये शीघ्रतासे बढ़ना आरम्भ कर देते हैं।

सम्यक् परिपक्व शहदोंमें नमीका शोषण धीरे-धीरे होता है परन्तु यदि शहद तुरन्त मार्केटमें भेज दिया जाय और ग्राहक उसका उपयोग कर रहा है तो फ़र्मण्टेशनसे कोई नुक़सान होता हुआ नहीं देखा गया। शहदको दूसरे साल तक पड़ा रहने दिया जाय तो फर्मेण्टेशनसे नुक्सान की सम्भावना बहुत अधिक बढ़ जाती है और शहद बेचने

वाले इस बातको अच्छी तरह जानते है कि अधिक पुराने शहदोंमें फर्मेण्टेशन अधिक साधारण होता है।

मधु और आर्द्रता

लेवुलोज़, जो मधुकी मुख्य शर्कराओंमेंसे एक है, में यह गुण होता है कि वायुमण्डल या उसके सम्पर्कमें आने वाले आर्द्र पदार्थोंसे नमी सोख लेती है। इसलिए शहद को यदि आर्द्र वायुमें रक्खा रहने दिया जाय तो यह आर्द्रता सोख लेगा। परीक्षणोंसे यह देखा गया है कि अत्यधिक नमीदार अवस्थाओंमें वायुसे नमी सोख कर निस्सारित मधु अपने वास्तविक भारसे तैंतीस प्रतिशतक अधिक बढ़ जाता है। सामान्यतया जिन अवस्थाओंमें शहद जमा किया जाता है उनमें इतनी अधिक नमी नहीं आती। इसी तरह यह भी देखा गया है कि अत्यधिक शुष्क स्थानमें छत्तेमें विद्यमान मधु (comb honey) अपना भार खो देता है और यह भी देखा गया है कि ऐसी परिस्थितियोंमें सात साल तक रक्खा रहे तो औसत कमी साढ़े सात प्रतिशतक होती है। अत्यधिक शुष्क अवस्थाओंमें इतने लम्बे समय तक रक्खा हुआ छात्र मधु (comb honey) फिर अधिक आर्द्र वायुमें रक्खा गया तो उसने शीघ्र ही अपने वास्तविक भारको प्राप्त कर लिया—केवल दस दिन या इससे भी कम दिनोंमें—और बादमें यह शहद अपने वास्तविक भारसे तीन प्रतिशतक अधिक बढ़ गया। छात्र मधु इस प्रकार पहले सुखा कर और फिर उच्चतर तापमान पर नमीमें रखा गया तो वह वास्तविक भारसे पन्द्रह प्रतिशतक अधिक हो गया। इस प्रकार यह ज्ञात हुआ कि यदि वायुमेंसे नमी सोखने दिया जाय तो निस्सारित मधु और छात्र मधु दोनों खमीरोंकी उत्पत्तिके लिए उपयुक्त माध्यम बन जाते हैं। इसलिए सदा यह कहा जाता है कि शहदको शुष्क स्थान पर रखना चाहिए।

विराट् ब्रह्माण्ड और जीव सृष्टि

[ले०—श्री रामविलास सिंह]

रहस्यमय जगत्—मानव-हृदय स्वभावसे ही जिज्ञासु है, उसकी उत्सुकता और ज्ञान-पिपासा कभी शान्त नहीं होती। अपनी सृष्टिके आदिकालसे अद्यावधिपर्य्यन्त वह इस विशाल ब्रह्माण्डके रहस्योद्घाटनमें ही मस्त और सलंग्न रहा है, परन्तु इस रहस्यमय जगत्के गूढ़ भेदका पता पाना क्या आसान है? इस तुच्छ मानवकी हस्ती ही क्या है, बुद्धि ही कितनी है, जो विश्व-नियामक शक्तिके कृत्योंकी थाह पा सके। तो भी अपनी सामर्थ्यके अनुसार जो कुछ इसने किया है वह प्रशंसनीय है।

मनुष्यकी तो गिनती ही क्या है जब कि हमारी यह पृथ्वी ही इस अनन्त अन्तरिक्षमें एक रज-कणके तुल्य भी नहीं है। अँधेरी रातमें आकाशकी ओर दृष्टि निक्षेप करने पर असंख्य ज्योति-पिंड दिखाई पड़ते हैं जिनमेंसे एक-एक इस पृथ्वीसे ही नहीं बल्कि सूर्य्यसे भी करोड़ों गुणा बड़े और ज्योतिर्मय हैं। यह पृथ्वी सौर-सम्प्रदायकी एक सदस्या मात्र है और सौर-परिवार भी मंदाकिनी समाज (galactic system) का केवल एक सभासद है; मंदाकिनी समाज अन्तरिक्षके तारक-पुरों (star cities) की समष्टिकी केवल एक व्यष्टि हैं और तारक पुरोंकी समष्टिसे ही इस अखिल ब्रह्माण्डका निर्माण हुआ है। यदि इसके परे कोई पदार्थ हो सकता है तो सिर्फ दूसरा पूर्ण ब्रह्माण्ड हो जिसका सम्बन्ध हमारे ब्रह्माण्डसे नहीं है।

नीहारिकायें—पृथ्वीके सबसे वृहत् दूरवीक्षणयंत्रसे लगभग बीस लाख समरूपिणी नीहारिकायें (regular-shaped nebulae or star-cities) दिखाई पड़ती हैं जिनमेंसे प्रत्येकमें लगभग दो सौ करोड़ सूर्य्योंके बराबर पदार्थ विद्यमान हैं। अन्तरिक्षमें दिखाई पड़ने वाली सबसे दूरस्थ नीहारिका यहाँसे लगभग चौदह करोड़ प्रकाश-वर्ष (light-years) पर स्थित है अर्थात् उसके प्रकाशको पृथ्वी तक पहुँचनेमें लगभग चौदह करोड़ वर्ष लग जाते हैं। प्रकाश प्रति सेकण्ड १,८६, ३२५ मीलकी गतिसे चलता है, इसलिये एक प्रकाश-वर्ष

(६० × ६० × २४ × ३६५ × १,८६,३२५) = ५८,७५ ६४,५२,००,००० मीलोंका हुआ। इसीसे आप नीहारिकाओंकी दूरीका अनुमान लगा सकते हैं। यहाँसे निकटतम नीहारिका म ३३ (M 33) लगभग ८,५०,००० प्रकाश वर्षकी दूरी पर है जो त्रिकोणात्मक नक्षत्र (constellation triangulum) में अवस्थित है। साधारणतया एक तारकपुरसे दूसरे निकटतम तारक-पुर तक जानेमें प्रकाशको लगभग दो प्रयुत वर्ष लग जाते हैं।

यह ब्रह्माण्ड बुदबुदकी नाईं आकारमें बढ़ता जा रहा है और नीहारिकायें प्रतिक्षण एक दूसरीसे दूर हटती जा रही हैं। अतः एक समय ऐसा आवेगा जब कि यह इतनी तीव्रतासे विस्तृत होगा कि कोई भी प्रकाश-किरण पूर्णतया इसके चारों ओर कभी गमन न कर सकेगी। इस ब्रह्माण्ड के आकारके बारेमें हम केवल इतना ही जानते हैं कि यदि यह फैलकर विस्तृत न होता तो इसकी परिधि पचास सहस्र करोड़ वर्षोंसे कम होती। अनुमान किया जाता है कि इसकी परिधि सम्भवतः आठ सौ करोड़ प्रकाश-वर्ष और पचास हजार करोड़ वर्षोंके मध्यमें कहीं अवस्थित है।

यह ब्रह्माण्ड अविनाशी नहीं है; यह भी हमीं लोगों की तरह जन्म-मरणके चक्करमें पड़ा हुआ है। सभी तारे सतत अपनी शक्ति ऊष्णता-विसर्जन क्रियाके रूपमें खोते जा रहे हैं। सूर्य्य भी प्रतिमास अरबों टन परिमाणमें कम होता जा रहा है। अनवरत तौलमें कम होते जानेके कारण ग्रहों पर उसका गुरुत्वाकर्षण भी दिनोदिन दुर्बल पड़ता जा रहा है। परिणामस्वरूप पृथ्वीके साथ ही साथ अन्यान्य सभी ग्रह भी अन्तरिक्षके हिमवत् शीतल प्रान्तों में अविराम रूपसे सुदूर हटते चले जा रहे हैं। यही दशा अन्यान्य तारक-पुरोंकी भी है। किसी न किसी तरह यह द्रव्यात्मक जगत् स्वप्नकी नाईं शून्यता में घुलकर मिलता सा प्रतीत हो रहा है। इसका रहस्य अभी मानव-जातिकी समझसे बाहरकी बात है; अभीसे हमें आश्चर्यसे आँखें फाड़-फाड़ कर इस विचित्र दृश्यको केवल देखना है।

मंदाकिनी समाज—हम पूर्व ही कह चुके हैं कि हमारे सूर्य्यका सम्बन्ध मंदाकिनी समाजसे है जो छायापथ (milky way) से घिरे रहनेके कारण चक्राकार दिखलाई पड़ता है। अक्षके चारों ओर घूमते रहनेसे ही यह चक्र अपना रूप कायम रखता है। सूर्य्य भी उस अक्षसे कुछ दूरी पर लगभग दो सौ मील प्रति सेकंडके हिसाबसे घूम रहा है। सम्भवतः सभी तारे पारस्परिक गुरुत्वाकर्षणसे ही यथास्थान स्थित हैं; किसी बृहत् केन्द्रीय सूर्य्यकी सम्भावना नहीं दिखाई पड़ती। मन्दाकिनी समाज में तारोंकी संख्या लगभग १०,००० करोड़ है।

सूर्य्य और तारोंका प्रकाश—रश्मिदर्शन यंत्र (spectroscope) से परीक्षण करने पर ज्ञात हुआ है कि सूर्य्य तथा तारोंके प्रकाश उनके निर्मायक अणुओं (molecule) के विच्छिन्न होकर परमाणुओं (atoms) में परिवर्तित होनेसे ही उत्पन्न हुये हैं। परमाणुमें एक नाभि (nucleus) होती है और कई विद्युतन या ऋणाणु (electrons) होते हैं। सभी विद्युतन हर प्रकारसे समान होते हैं; लेकिन नाभियाँ असमान होती हैं। सभी विद्युतनोंमें विद्युच्छक्ति पाई जाती है जिससे प्रत्येक नाभि विद्युतनोंको आकृष्ट रखती है। तापके अत्यधिक होनेसे परमाणु भी विच्छिन्न हो जाते हैं। अम्लजन (oxygen) का पूर्ण परमाणु आठ विद्युतनोंके योग से बना है। करोड़ों अंशके तापमान पर अम्लजनके परमाणु भी पूर्णतया टूट जाते हैं। सूर्य्यका केन्द्रीय भाग इतना संतप्त है कि वहाँ अम्लजनका एक परमाणु भी अविच्छिन्न नहीं है। वहाँ केवल नाभि-समुदाय और विद्युतन-समूहका मिश्रण अव्यवस्थित रूपसे इतस्ततः शीघ्रतासे भ्रमण करता दिखाई पड़ता है। परन्तु अनुमान किया जाता है कि सूर्य्यके केन्द्रमें भी कुछ दूसरी तरहके ऐसे परमाणु हैं जिनके साथ कमसे कम दो विद्युतन संयुक्त हैं। ये सभी पदार्थ सामान्यतया प्रति सेकण्ड तीस हज़ार मीलकी तीव्र गतिसे परिभ्रमण कर रहे हैं जिसके परिणाम स्वरूप अपार ताप उत्पन्न हो रहा है। लगभग चार करोड़ अंशके अमित उत्तापके कारण सूर्य्यके केन्द्रस्थ पदार्थ फैलना चाहते हैं, परन्तु साथ ही साथ लगभग चार सहस्र करोड़ वायुमंडलके दबाव (atmospheric pressure) के कारण वे संकुचित भी होना चाहते हैं (क्षिति-तलके प्रति वर्ग इञ्च पर वायुका दबाव लगभग १५ पौंड पड़ता है जिसे एक वायवीय भार कहते हैं।)।

अतः इन परस्पर-विरोधी दो शक्तियोंकी खींचतानका परिणाम यह होता है कि वायुमंडलका दबाव ही किंचित् परिमाणमें विजयी हो जाता है और सूर्य्यके पदार्थ बिखरने नहीं पाते हैं।

विभिन्न गृह—सूर्य्य-सम्प्रदायके अन्तर्गत बुद्ध, शुक्र पृथ्वी, मंगल, अवान्तरग्रह (asteriods), वृहस्पति, शनि, यूरेनस (uranus), नेपचून (neptune) और प्लूटो (pluto) ये नव ग्रह, अनेकों उपग्रह (satellites), धूमकेतु (comets) उल्काएँ (shooting stars), रजकण, परमाणु और असंख्य परमाणु-भाग हैं। ग्रहोंकी वर्तमान गति और स्थिति पर विचार करनेसे ज्ञात होता है कि लगभग बोस अरब वर्ष हुये सम्भवतः कोई बहुत ही विशाल तारा सूर्य्य के अत्यंत पाससे होकर अकस्मात् गुजरा था। उसके गुरुत्वाकर्षणके फलस्वरूप सूर्य्य-तल पर दीर्घाकार ज्वार-भाटे उठे और उनके कुछ अंश अन्तरिक्षमें इतस्ततः प्रक्षिप्त होकर ग्रहोंके रूपमें सूर्य्यके चारों ओर चक्कर लगाने लगे। पहले उनकी कक्षाएँ प्रलंबाकार थीं, पर पीछे क्रमशः वृत्ताकार बनती गईं।

हमारी पृथ्वी—हमारी पृथ्वी भी सूर्य्यका ही एक छोटासा टुकड़ा है; राँगा, सीसा, प्लैटीनम (platinum) आदि धातुएँ जो पृथ्वी पर मिलती हैं वे सूर्य्यमें भी पाई जाती हैं। इसकी अवस्था लगभग बीस अरब वर्ष है। सूर्य्य इससे लगभग ९,२९,००,००० मील दूर है। इसकी तौल करीब ६०००,०००,०००,०००,०००,०००, ०००, टन है। पृथ्वीके अक्ष-परिभ्रमण (rotation) के कारण रात-दिन होते हैं और सूर्य्यकी परिक्रमा (revolution) करनेसे वर्ष तथा ऋतुएँ होती हैं। इसकी धुरी आजकल ध्रुव तारेकी ओर आकाशमें संकेत करती है। अतः इसके अक्ष-परिभ्रमणके कारण सारा आकाशीय सम्वत् ध्रुव तारेको परिक्रमण करता-सा प्रतीत होता है। पृथ्वी पूर्णतया गोल नहीं है. वरन् इसके दोनों ध्रुव-प्रदेश चिपटे तथा मध्य भाग कुछ उभड़े हुये हैं; इसलिये सूर्य्यके गुरुत्वाकर्षणका प्रभाव पृथ्वीके सभी भागों पर समान रूपसे नहीं पड़ता। पृथ्वीके उन्नतांश (bulge) पर सूर्य्यके गुरुत्वाकर्षणका प्रभाव इसके अक्षके सिरेकी दिशाको अन्तरिक्षमें धीरे-धीरे पर अविराम रूपसे परिवर्तित होता रहता है। परिमाण यह होता है कि खध्रुव—वह नभ विन्दु जिस पर पृथ्वीकी अक्ष संकेत करती है—आकाशमें चक्कर लगाकर २५,८०० वर्षोंमें एक पूर्ण वृत्त बना डालता है। इस क्रियाको ज्योतिषकी भाषामें अयन-चलन (precession) हैं। यही नहीं बल्कि चन्द्रमा भी पृथ्वी पर अपनी आकर्षण-शक्तिका प्रभाव डालता है और सूर्य्यके गुरुत्वाकर्षणसे उत्पन्न मंद, पर अत्यन्त महत्वपूर्ण गतिको शीघ्रतासे कुछ विचलित करता रहता है (चन्द्रमा पृथ्वी का उपग्रह है और पृथ्वीसे बहुत ही छोटा है। इसका गुरुत्वाकर्षण पृथ्वीके षष्ठांशके बराबर है जिससे यदि वहाँ मनुष्य रहता तो यहाँसे छः गुणा अधिक ऊपर उछल सकता था।) । इस क्रियाको अक्ष-विचलन (mutation) कहते हैं। इन गतियोंके कारण पृथ्वीकी धुरी सदैव ध्रुवतारेकी ओर ही संकेत नहीं करती वरन् अन्यान्य ओर भी परिवर्तित होती रहती है।

नीलवर्ण आकाश—पृथ्वीका वायुमंडल रजकणसे भरा हुआ है इसीसे आसमान हमें नीला दिखाई पड़ता है, नहीं तो वह अर्धरात्रिके आकाशकी तरह निबिड़ अंधकारमय और सूर्य्य बिम्ब नील ज्योतिके एक पिंडसा दिखाई पड़ता है। सूर्य्यालोककी नीली तरंगें रजकणोंके द्वारा विकीर्ण होकर चारों ओरसे हमारी आँखोंमें प्रवेश करती हैं। परन्तु लाल तरंगें वायवीय बाधाओंकी परवाह न कर सीधे हमारे पास पहुँच जाती हैं। परिणाम यह होता है कि जितनी अधिक बाधाएँ उपस्थित होती हैं उतनी हमारे पास नीली तरङ्गें नहीं पहुँच पातीं और सूर्य्य उतना ही लाल दिखाई पड़ता है। इसीसे हम प्रातः और सायंकालमें सूर्य्यको लाल देखते हैं।

ज्योतिषियोंका कथन है कि आकाश कहीं तो अतिशय प्रतप्त और कहीं अत्यन्त शीतल है; इस कारणसे उन अन्तरिक्ष-भागोंमें जीवधारियोंकी उत्पत्ति सम्भव नहीं है। ग्रह-परंपराका प्रादुर्भाव भी अत्यन्त ही विरल घटना है; परन्तु जीवोन्मेषके निमित्त यह अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि पृथ्वी-सरीखे ग्रहोंमें ही जीवधारियोंकी उत्पत्ति और विकास संभव है। इसके लिए अनुकूल भौतिक अवस्थायें अपेक्षित हैं जिनमें सबसे मुख्य तो है वह तापमान जिस

पर द्रव्य द्रव रूपमें स्थित रह सकते हैं। छायापथके पार आकाशका तापमान ४८० अंश (480°F.) से भी अधिक है; अतः उधर जीव सृष्टि संभव नहीं है। सौभाग्यसे हमारी पृथ्वी अंतरिक्षके सम कटिबंधमें स्थित है और सूर्य्यसे उतना ही आलोक और उत्ताप है जितना जीवन-धाराके लिए यथेष्ट है। परन्तु हम पहले ही कह चुके हैं कि पृथ्वी सूर्य्यसे दिनोदिन दूर हटती जा रही है और सूर्य्य भी प्रतिक्षण अपना प्रकाश और उत्ताप विसर्जन कर के अपेक्षाकृत शीतल होता जा रहा है। अतः एक समय ऐसा आवेगा जब कि पृथ्वी सूर्य्यके अत्यन्त दूर हटकर जीव-सृष्टिके सर्वथा अयोग्य हो जायगी।

विश्वका निर्माण—सभी जीवोंके शरीर कार्बन, जलजन, (hydrogen), ओषजन (oxygen), नत्रजन (nitrogen) आदि साधारण रासायनिक परमाणुओंके संयोगसे बने हैं। कार्बनके परमाणु विशेष शक्ति-सम्पन्नके कारण सहस्रों विजातीय परमाणुओंका सहयोग प्राप्त कर जीव-रचना करते हैं। पहले लोग समझते थे कि अनुप्राणित करने वाली कोई खास शक्ति अपना अलग अस्तित्व रखती है, परन्तु ऊलर (Wöhler) साहबने अपनी प्रयोगशालामें यूरिया (Urea) की रचना कर यह प्रमाणित कर दिखाया है कि जीवन कार्बनके परमाणु पर ही निर्भर करना है। महाशय रुदरफोर्ड (Rutherford) के मतानुसार परमाणु ऋणाणु अथवा विद्युत (electrons) और धनाणु (protons) के योगसे बने हैं। कार्बनके परमाणु छः विद्युतके योगसे बने हैं जो नाभि (nucleus) के चतुर्दिक चक्कर लगाया करते हैं। इसी छः विद्युत वाले परमाणुमें जीवनका रहस्य छिपा हुआ है; पर जिस प्राकृतिक नियमके कारण इसमें यह शक्ति अन्तर्निहित है उसे जाननेमें गणितात्मक भौतिक विज्ञान अभी तक असफल रहा है।

भौतिक विज्ञानका कथन है कि केवल जीव ही नहीं वरन् सारा ब्रह्माण्ड विनश्वर है। एक समय ऐसा आवेगा जब कि सभी नीहारिकायें नष्ट-भ्रष्ट हो जायँगी और ब्रह्माण्डके सभी पदार्थोंका तापमान समान हो जायगा तथा अखिल शक्ति समरूपसे विभक्त हो जायगी। यह तापमान इतना कम होगा कि जीवन असंभव हो जावगा। आश्चर्य्यकी बात है कि इस सम्बन्धमें जो बातें आजके वैज्ञानिक युगमें अनेक यंत्रोंके प्रयोगसे ज्ञात हो सकी हैं वे सहस्रों वर्ष पूर्व वैशेषिक तथा सांख्यदर्शनके रचयिता कणाद और कपिलके विचारोंसे बहुत कुछ मिलती-जुलती हैं। पुराणोंसे ज्ञात होता है कि एक बार विश्वामित्र भी जीव-रचना करनेमें समर्थ हो सके थे; वे सूर्य्य-विज्ञानके विशेषज्ञ भी थे। अतः इसमें आश्चर्य्य नहीं कि जब पुष्पक विमान जैसे वायुयानोंकी रचना सम्भव हो गयी तो फिर विश्वामित्र सरीखे मानवों द्वारा जीव-सृष्टि भी दूर नहीं है। शोककी बात इतनी ही है कि ऐसे महत्त्वपूर्ण कार्य्योंमें हम भारतीय औरोंसे बहुत ही पिछड़े हुए हैं। महर्षियों ने जो पौधे उपजाये उनकी समुचित वृद्धि तथा विकास करना तो दूर रहा, हम उनकी रक्षा करनेमें भी अपनी असमर्थता प्रकट कर रहे हैं।

बदनाम हवा

[ले० ठाकुर शिरोमणि सिंह चौहान, एम० एस-सी०, सब रजिस्ट्रार, सफीपुर, उन्नाव]

हवा पर व्यर्थका दोषारोपण—जिन पुरुषों ने मानव संबंधी कुछ व्याधियोंके संबंधमें यथार्थ ज्ञान प्राप्त करनेका प्रयत्न किया और किसी कारणसे, वे उस सत्यकी खोजमें विफल रहे तो उनमेंसे अधिकांश ने, गलतीसे, उन व्याधियोंका दोष निरपराध हो हवा गले मढ़ा; व्यर्थ ही हवाको बदनाम किया।

खोजके इतिहासमें हवा, एक-दो बार नहीं वरन् कई बार निर्दोष ही, अपने कुप्रभावोंके हेतु कलंकित की जा चुकी है। इस भाँतिकी विलक्षण और भयंकर भूलोंके चार उदाहरण तो अत्यंत प्रसिद्ध हैं जिनकी यथार्थ जानकारी हमारे नित्यके जीवनमें परम उपयोगी है।

हवाको एक बार उस समय कलंकित किया गया जब

यह बात घोषित की गयी कि मलेरिया (ज्वर) का मूल कारण दलदलकी हवा या भाप है; उसके उपरांत रातको वृक्षोंके तलेकी हवा दूषित ठहरायी गयी; तीसरी बार हवाकी ओषजन गैस हानिकारक जीवाणुओंका उद्गम स्थान करार दी गयी और अंतिम बार घावोंके विकृत हो जानेका सारा दोष हवाके माथे मढ़ा गया। इस लेखमें हम हवाके ऊपर व्यर्थके किये गये इन चारों दोषारोपण के औचित्य पर क्रमशः प्रकाश डालेंगे।

मलिन वायु—मलेरिया ज्वरका प्रचार-प्रसार दलदल की 'मलिन वायु' के कारण होता है यह विश्वास अत्यंत प्राचीन है। यही विश्वास इस बीमारीके नाम पड़नेका कारण हुआ, क्योंकि मलेरिया (Italian, malarria) मलिन वायुको कहते हैं। किन्तु अब हम इस बातको बड़ी आसानीसे समझ सकते हैं कि यह मिथ्या विश्वास हमारे मस्तिष्कमें किस प्रकार घर कर गया। वास्तवमें इस विश्वासका कारण यह है कि इस बीमारीका प्रकोप प्राय: दलदलों और सीड़के स्थानोंके समीप ही होता है। दलदलकी हवा और मलेरियाका साहचर्य्य ही इस विश्वासकी नींवको बहुत कुछ कमज़ोर कर देता है, क्योंकि हवा, फिर चाहे वह आर्द्र हो अथवा शुष्क, किस भाँति किसी बीमारीका कारण हो सकती है जब कि 'वह जीवन की प्राणदा है ?'

दलदलोंके भयानक प्रभावोंकी छाप लोगोंके मस्तिष्क पर इतनी दृढ़ हो गई थी कि मलेरियाको लोग "पैल्यूडिज्म" (from the Latin palus, दलदल) दलदली विषके नामसे संबोधित करते थे। अब कौन नहीं जनता कि दलदलका मलेरिया ज्वरसे केवल इतना ही सरोकार है दलदलोंमें उन मच्छरोंका पालन-पोषण होता है जो इस बीमारीको उत्पन्न करने वाले परस्वत्वादी कीटाणुओंको एक स्थानसे दूसरे स्थानको ले जाते हैं।

भूलके कारण—(१) जब तक बहुतेरी बीमारियोंके अणुवीक्षणीय कारणोंका अनुसंधान नहीं किया गया था तब तक विशेष प्रकारके संकटके मूल कारणको कुछ-का-कुछ समझ बैठना बड़ा सरल था। सत्यकी खोजका काम बड़ा दुस्तर है। सत्यकी खोज ही विज्ञान है। उसके यथार्थ जानकारी होनेसे पूर्व भूल-भटक जाना अत्यंत स्वाभाविक ही है। दलदलकी तर हवाका मलेरियासे घनिष्ठ संसर्ग था ही और वहाँ भापके अतिरिक्त और कुछ दिखायी न पड़ता था, अतः तर हवा ही इस संकटका जिम्मेदार ठहराई गयी जो वास्तवमें भारी भूल थी। तर हवा इस रोगके आगमनकी सूचना भले ही देती हो, परन्तु न भाप और न हवा ही स्वयं किसी रोगका कारण विशेष हो सकती है।

(२) इस भाँतिकी भूलका दूसरा उदाहरण लोगोंकी यह भावना थी कि रातको वृक्षोंके तलेकी हवा हानिकर होती है। अभी हाल तक इस बात पर लोगोंका अटल विश्वास रहा है और सच तो यह है कि अधिकांश भूलों की तरह इस विश्वासमें भी सचाईका कुछ अंश मौजूद है। कौन नहीं जानता कि रातको पौधोंके प्रश्वासमें कारबोनिक ऐसिड गैस निकलती है जो प्राणियोंको श्वास-क्रिया (respiration) का विनाश्य (हानिकर) पदार्थ होता है। बहुत समयसे इस गैसको प्राणी जगत्के लिये विषैली मानते चले आये हैं। यह एक बहुत पुरानी प्रथा है कि जब हम किसी पदार्थको विषैला पाते हैं तो बादको हम उसके सभी तनूकरणों (dilutions) को विषैला मानने लगते हैं।

सुरा भी विष है। एक सीमासे अधिक गाढ़ी होने पर यह पूर्ण रूपसे हानिकर है। उस सीमासे क्रमशः हलकी होने पर उसका प्रभाव साधारण रूपसे लेकर 'बेअसर' तक हो सकता है। "रात्रिकी हवा निकृष्ट होती है" इस भावनाका उदय श्री इंजिनहाजके एक भ्रमपूर्ण लेख द्वारा हुआ था जिसमें उन्होंने सन् १७७९ में अपनी एक खोजका उल्लेख किया था कि निशीथ कालमें पौधे प्रश्वास द्वारा कारबोनिक ऐसिड गैस निकालते हैं। यह गैस जरूर निकलती है, परन्तु वह इतनी घनी (dense) नहीं होती कि वह किसी पुरुष अथवा अन्य प्राणीको हानिकारक सिद्ध होवे।

(३) तीसरी बार इस भाँतिकी भूल उस समय हुई थी जब विज्ञान संसारमें 'जीवनकी उत्पत्ति' के विषयमें वाद-विवाद चल रहा था। क्या सजीवनी उत्पत्ति निर्जीव से हो सकती है? इस प्रश्न पर घोर विवाद हुआ था जिसे समाप्त हुए अभी बहुत दिन नहीं बीते। इस वाद-

विवादका विषय अंतमें घटकर केवल इतना रह गया था कि जब हम किसी आंगारिक (सजीव) पदार्थकी बनी हुई कुप्पीका मुँह सावधानीसे बन्द करके किसी उष्ण स्थानमें रख देते हैं तो दो-एक दिनके उपरांत उसमें सजीव पदार्थ (जीवाणु) कहाँसे उत्पन्न हो जाते है? इस समस्याके हल करनेमें जब तक सूक्ष्मदर्शक यंत्रकी सहायता नहीं ली गयी तब तक किसीको यह पता न चल सका कि जिस पदार्थकी कुप्पी बनी थी उसके सड़ने-गलनेसे लखूखा जीवाणु-सड़े-गले पदार्थोंके अणुवीक्षणीय जीवाणु उस पदार्थके भीतर घुस गये और वहीं रहने लगे।

देखनेसे तो यही प्रतीत होता है कि हो न हो जीवन की उत्पत्तिका मूल कारण हवा ही है, क्योंकि किसी पात्रमें जब हम उबली हुई तरकारीका जूस अथवा मांसका शोरबा खुली हवामें छोड़ देते हैं तो कुछ समयके उपरांत उसमें अनेक कृमि (जीव) उत्पन्न हो जाते हैं। इसी भाँति यद्यपि हमने कुप्पीकी हवाको बड़ी होशियारीसे डाट द्वारा बन्द कर दिया था तथापि कुप्पीके पदार्थमें कालोपरांत 'जीवन' का अस्तित्व दृष्टिगोचर होने लगा। इन बातोंसे सजीव पदार्थोंकी उत्पत्तिका मूल कारण हवा ही प्रतीत हुई। कारण कि उस पदार्थमें ये जीवाणु आये कहाँसे? उसके संसर्गमें हवाको छोड़ और कोई पदार्थ तो था नहीं। पर यथार्थमें बात यह न थी। बहुत तर्क-वितर्क एवं निरीक्षण-परीक्षणके अनन्तर यह मालूम हुआ कि जिस हवाको हम रूईके वस्त्रसे छान लेते हैं अथवा जिसे हम आगके समान गरम नलीमें होकर निकाल लेते हैं उस हवासे कुप्पीमें जीवाणु नहीं पैदा होते।

यह भी एक गलतफहमी थी, सजीव पदार्थोंके ले जाने वाले (carrier) को खुद सजीव पदार्थ समझ लिया गया था। यह सच है कि हवाकी ओषजन गैस जीवनका पोषण करती है किन्तु अन्य गैसोंकी भाँति यह जीव को उत्पन्न करनेमें नितांत असमर्थ है।

(४) कीटाणु-रहित चीर-फाड़ या जर्राहीके प्रचलन के संबंधमें हवाको चौथी बार बदनाम किया गया। लोगों का यह पुराना अनुभव था कि जब कोई घाव हवामें विशेष-कर मकानके भीतरकी हवामें खुला रक्खा जावे तो वह विकृत हो जाता था। पर अब हम सब भली प्रकार जानते हैं कि हवामें विशेषकर औषधालयोंकी हवामें घावोंके खोलने का यह अर्थ होता है कि हम उसे धूल और असंख्य अदृश्य जीवाणुओंके संपर्कमें लाते हैं।

लिस्टर महोदयकी खोज—जब तक श्री लिस्टर महोदय ने इस समस्याके हल करनेमें सूक्ष्मदर्शक यंत्रका उपयोग नहीं किया तब तक घावोंके विकृत होनेके असली कारणकी ओर किसीका ध्यान तक न गया। ऑपरेशन किये हुए फोड़ोंकी भयानक अवस्था हो जाने पर उसका सारा दोष प्रायः हवा हीके गले मढ़ा जाता रहा है। लिस्टर महोदय ने असीम धैर्यके साथ यह प्रतिपादित किया कि घावोंके बिगाड़नेकी अपराधिनी हवा नहीं वरन् उसमें पाये जाने वाले अन्य पदार्थ हैं; दोष हवाका नहीं वरन् उस पदार्थका है जिसे वह अपने साथ लिये फिरा करती है। सूक्ष्मदर्शक यंत्रके नीचे लिस्टर महोदय ने नन्हे-नन्हे कोषमय जीवाणुओंका अवलोकन किया जो घावके मवादको सड़ा रहे थे। अतः इस बार भी हवा निर्दोष ठहराई गयी।

हवा रोगियोंके लिये लाभदायक है—अब हम सबको भली प्रकार मालूम है कि शुद्ध हवा घावोंके लिये परम लाभदायक है। सभी चेतन पदार्थोंकी भाँति घाव भी ताज़ी हवामें स्वस्थ रहते हैं। डाक्टरोंसे यह बात छिपी नहीं है कि उत्तुंग पर्वतों और समुद्रकी कीटाणुरहित वायुमें घाव शीघ्र ही भर आते हैं।

एक समय था जब बाहरकी ताज़ी हवा यक्ष्माके रोगियोंको हानिकारक समझी जाती थी। इसी कारण ये बेचारे ऐसे गरम कमरोंमें बन्द रक्खे जाते थे जिनमेंसे ताज़ी हवा पहले ही से निकाल दी जाती थी। यक्ष्माके रोगियोंको मकानके बाहर बैठा हुआ देख लोग समझते थे कि वे खुद ब खुद अपनी मृत्युका आवाहन कर रहे हैं।

सन् १८४० ई० में डा० बोडिंगटन ने अपने एक लेखमें फेफड़ोंके गर्त्तों और घावोंके पुरानेमें शुष्क और शीतल वायुकी उपयोगिताका उल्लेख किया। उस समय लोगोंने उनके विचारोंका घोर विरोध किया। डा० गैरीसन ने एक स्थान पर लिखा है कि समकालीन आलोचकों ने

बोडिंगटन साहबके इस मतका इतना तीव्र विरोध किया कि वे बेचारे पस्त हिम्मत हो गये और अपने इस विचार को क्रियात्मक रूप न दे सके।

अनुसंधान एवं आविष्कारकर्त्ता तरह-तरहकी यातनाएँ और कष्ट सहन कर कभी-कभी जीवनकी बाजी लगा कर नूतन पथ खोजते अथवा निर्माण करते हैं जिस पर बादके लोग अपेक्षाकृत सुखपूर्वक पयान करते हैं। इस भाँति अपूर्व त्यागों और बलिदानोंसे विज्ञानका इतिहास भरा पड़ा है। उनकी वीरता, साहस, और त्यागकी जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है।

'संत, विटप, सरिता, गिरि, धरनी.
पर-हित हेतु सबन के करनी।'

फ़्यूज तार कैसे लगावें?

[ले०—श्री महेन्द्रनाथ गुप्त]

प्रायः देखा जाता है कि लोग बिजलीकी प्रारम्भिक मामूलीसी बातोंसे अपरिचित होनेके कारण व्यर्थ कष्ट उठाते हैं। फ़्यूज़ वायर एक ऐसी चीज़ है जो अक्सर किसी न किसी कारणसे जल जाती है और तब सब लोगोंको, यदि मिस्त्री महोदय समीप न हुये तो घण्टों अन्धकारकी शरण लेनी पड़ती है। यह बात केवल उन लोगोंके विषयमें नहीं है जिन्होंने कभी विज्ञानका अध्ययन नहीं किया, वरन् अधिकतर उन कालेज और यूनिवर्सिटीके छात्रोंके लिये भी सच है जो एफ० एस-सी० और बी० एस-सी० पास हैं। ये बातें हमारी शिक्षा-प्रणालीके दोषोंको प्रकट करती हैं।

एक बारकी बात है कि मैं एक विज्ञानके प्रमुख अध्यापकसे भेंट करने गया; लगभग रात्रिके आठ बजेका समय था। उनके यहाँ घोर अन्धकारका साम्राज्य था। मैंने पहले सोचा कि कदाचित् आज सब लोग कहीं बाहर चले गये हैं। फिर इच्छा हुई क्यों न पूछ कर भ्रम दूर ही कर लिया जावे। पुकारने पर ज्ञात हुआ कि अध्यापक जी इत्यादि सब उपस्थित थे, केवल विद्युत्के कारण जिस पर वे बहुत ही क्रोधित थे यह सब परेशानी थी। यही नहीं, मिस्त्री भी न जाने आज कहाँ चला गया था और अब रात्रि भर अन्धकारमें रहनेके अतिरिक्त कोई उपाय न था, क्योंकि उनके यहाँ कोई लालटेन भी शायद नहीं थी।

मुझे यह देख कर कुछ आश्चर्य भी हुआ और हँसी भी आई। मैंने उनसे फ़्यूज बोर्डका स्थान पूछ कर दिया-सलाईकी रोशनीसे फ़्यूज लगाया तब कहीं विद्युत् महा-रानी प्रसन्न हुईं।

ऐसी बातें प्रायः सुननेमें आती रहती हैं. वे केवल मन गढ़न्त नहीं हैं। अतः इस लेखमें यह बतानेकी चेष्टा की जावेगी कि किस प्रकार आप बिना विज्ञान और विद्युत्के विषयमें कुछ जाने इस प्रकारकी परेशानियोंसे बच सकते हैं।

आप पहले किसी समय दिनमें अपने फ़्यूज बोर्डके समीप जाइये तो आप देखेंगे कि एक लकड़ीके (जहाँ आपका मीटर लगा हुआ है) तख्तेके ऊपर बहुत सारे चीनी के कुछ चौकोर व गोल-सी वस्तुयें उसमें जड़ी हुई हैं। उन सबके नीचे एक प्रधान स्विच (main switch) है अर्थात् उसमें दो स्विचकी ऊपरी तीलियाँ एक लकड़ीकी गोल डंडीसे जुड़ी हुई हैं और उस लकड़ीके डंडेको ऊपर करनेसे सारे मकानकी विद्युत् बुझ जाती है।

इस स्विचको बन्द करनेके बाद आप अब मकानके किसी भागके (जो उस स्विचकी सीमामें है) किसी वैद्यु-तिक भागको छू सकते हैं। अब आप चीनीकी वस्तुओंकी ओर ध्यान दीजिये। गोली नालियोंके ऊपर प्रायः एक ढक्कन होता है जिसके घुमानेसे वह अलग हो जाता है और अन्दर आपको दो तार दिखाई पड़ेंगे। यही वह फ़्यूज वायर है जो आपको समय-असमय कष्ट दिया करते हैं। जब फ़्यूज उड़ता है तो यह तार जल जाता है और उसके स्थानमें दूसरा लगानेसे बिजली फिरसे आने लगती है।

चौकोर चीनीकी वस्तुयें दो प्रकारकी होती हैं। एक पर चौकोर ढक्कन एक पीतलके पेंच द्वारा बन्द होता है। इसके खोलनेसे आपको उसी प्रकारके दो तार दिखाई पड़ेंगे जैसे

कि गोल वालेमें आप देखे थे। दूसरी प्रकारके चीनीके चौकोर फ़्यूज अपनी ओर खींचनेसे निकल आते हैं। इनमें तार उस भागमें लगे होते हैं जो बाहर निकल आता है। आपको चाहिये कि आप अपने यहाँ वाले फ़्यूजको भली प्रकार देख लें और समझ लें। पिछली प्रकार अधिकतर एक लोहेके बक्समें बन्द होती है, और उस पर सपलाई कं० की सील होती है। यदि ऐसा हो तो आप खोलनेकी चेष्टा मत करिये।

.फ्यूज तारको लगाना—प्रधान स्विचको बन्द करके आप फ़्यूजके चीनीके बक्सको खोलिये तो आपको एक या दोनों तार लगे हुये दिखाई पड़ेंगे। तारके दोनों सिरे दो पेंचमें कसे होते हैं। उनको खोल कर फेंक दीजिये और एक नया तारका टुकड़ा उसके स्थान पर लगा दीजिये। चीनीके ढक्कनको यथास्थान लगा कर अपने हाथ हटाकर प्रधान स्विचको नीचेकी ओर यदि और कहीं कोई और दोष नहीं है तो प्रकाश हो जावेगा। यदि न हो तो प्रधान स्विच बन्द करके फिर चीनीके बक्सको खोल कर देखिये। विशेष जान पहचानके लिये नीचे पढ़िये।

मुख्य बातें जो एक बिजलीसे काम करने वाले मनुष्यको याद रखना चाहिये।

(१) अपने पैरोंमें यदि हो सके तो आप रबरके जूते पहनिये और खड़े होनेके लिये यदि लकड़ीका स्टूल हो तो अत्युत्तम है। यदि .फ्यूज बोर्ड नीचा है तो लकड़ीका ही एक पटरा इत्यादि नीचे रख सकते हैं।

(२) जब कभी आप बिजलीके किसी भागको खोलें या छुयें इत्यादि, तो प्रधान स्विचको सबसे पहिले और अवश्य ही बन्द कर दें। नहीं तो बिजलीका धक्का लगना तो अवश्य ही है और सब कुछ भी हो सकता है।

(३) जब सब कुछ आप ठीक कर लें तो अपना हाथ सबसे हटा कर ही प्रधान स्विच को नीचे करें, क्योंकि प्रधान स्विचको नीचे करते ही तुरन्त बिजली सब भागोंमें घूम जाती है।

(४) .फ्यूज वायर जो आपके मकानके लिये उपयुक्त हो वही लगावें। अधिकतर ५ एमपीयर ठीक होता है, वह आपको बाज़ारसे मिल सकता है। कुछ लोग .फ्यूज वायर में भी बचत करते हैं, वे कोई भी तार लगा डालते हैं। बिजली तो निस्संदेह ही आने लगती है, परन्तु इससे मकान में आग लगनेका तकका डर रहता है।

इसका कारण तो हर एकको समझना कठिन है, परन्तु इच्छुक लोगोंको यह बात (explanation) यथेष्ट होगी। एक तार एक विशेष (amount) बिजलीको ले जाता है। यदि बिजली उससे अधिक बढ़ जाती है तो वह वायर गल जाता है। असलमें जब किसी वस्तुमें (जो बिजलीको ले जा सकती है, conductors) बिजली जाती है तो वह वस्तु गरम हो जाती है और इसका गरम होना कई बातों पर निर्भर है। उन बातोंमें एक बात बहाव (current) है। यदि बहाव अधिक है तो वस्तु अधिक गर्म हो जायगी। गर्मी इतनी बढ़ सकती है कि वह वस्तु चमकने लगे। यह सिद्धान्त बिजलीके लैम्पोंमें काममें लाया जाता है। आप सबने किसी लोहार या सोनारको काम करते अवश्य देखा होगा। जब वह गर्म वस्तुको भट्टीके बाहर निकालता है तो वह लाल होती है और चमकती है। बिजलीके लैम्पोंमें इतनी गर्मी बहुत कम है, हमें इससे भी अधिक गर्मीकी आवश्यकता है। इस गर्मीसे लैम्पके अन्दरका तार गर्म होकर सफ़ेद प्रकाश देने लगता है।

तो हाँ, यदि गर्मी और अधिक बढ़ जावेगी तो तार गल जावेगा क्योंकि तारका द्रवण-विन्दु (melting point) जल्दी ही आ जाता है। बिजलीके लैम्पोंके अन्दरके तारोंका द्रवण-विन्दु बहुत ऊँचा होता है इसीसे वे नहीं पिघलते हैं, पर .फ्यूज तार ऐसे धातुओंके मिलानेसे बनाये जाते हैं (यह तार टीन या सीसेके होते हैं), जिसका द्रवण-विन्दु बहुत कम हो।

यों यदि आपने अपने मकानमें उपयुक्त .फ्यूज वायर के अतिरिक्त कोई तार लगा दिया है तो वह अधिक बिजली ले जाने पर भी नहीं पिघलेगा और यदि किसी कारणसे आपके यहाँ अधिक बिजली (अर्थात् जितनीके लिये आपके यहाँ तार इत्यादि लगाये गये हैं उससे अधिक) व्यय होने लगती है तो यह सम्भव है कि वह तार जिनमें होकर बिजली आ रही है इतने गरम हो जावें कि तारके चारों तरफ़की रबर, रूई और लकड़ीको जला दें और इस सब से मकानमें आग लग जावे। कभी-कभी सीड़नके कारण,

या बहुत पुराने होनेके कारण, या चूहों इत्यादिके काट डालनेके कारण ताँबेके तार बाहर आ जाते हैं और जब वे आपसमें छू जाते हैं तो बहुत अधिक बिजली व्यय होती है और वह इतनी गर्मी उत्पन्न कर सकती है जो मकान जला दे। अतः फ्यूज तार परम उपयोगी हैं। यदि कभी बिजली उनके होते हुये आवश्यकतासे अधिक हो जाती है तो वे एकदम पिघल कर बिजलीका आना ही बन्द कर देते हैं। उनका काम आपको तथा आपके मकानको सुरक्षित रखना है।

बिजलीके प्रकाशवान घेरेमें दोष।

दोषोंकी उत्पत्तिके कारण और उनका निवारण

कारण-(१) कभी-कभी बिजली कम्पनीकी ओरसे बन्द हो जाती है, परन्तु ऐसा बहुत ही कम होता है। यदि ऐसा ही हो तो आपके पड़ोसीके यहाँ अन्धकार होगा।

(२) दोषित लैम्प—दोषोंका पता लगानेसे पूर्व यह अनिवार्य है कि आप पहले प्रधान स्विचको बन्द कर दें और तब फ्यूज़ बॉक्सको खोलें। एक या दोनों तार अवश्य गल गये होंगे। नया तार उपरोक्त विधिके अनुसार लगा दीजिये।

(अ) प्रधान स्विचको नीचे कर दीजिये और एक लैंपको उसके स्विचसे प्रकाशित करिये। यदि यह प्रकाश देता है तो दूसरोंको इसी प्रकारसे देखिये। यदि लैम्प प्रकाश नहीं दें तो निम्न विधिसे चलिये।

(ब) प्रधान स्विचको ऊपर कर दीजिये तथा मकानके छोटे स्विचोंको भी बन्द कर दीजिये। फिर नये तार .फ्यूज़ बॉक्समें लगाइये। एक या दोनों तार अवश्य जल गये होंगे और उनका जलना यह प्रकट करता है कि दोष घेरे (circuit) में ही है।

(स) प्रधान स्विचको नीचा कर दीजिये और छोटे स्विचोंको एक-एक करके नीचा करिये। आपको एक ऐसा लैम्प अवश्य मिल जावेगा जो प्रकाश नहीं देता। कदाचित् यही वह दोषयुक्त लैम्प है जो कि प्रकाशित करने पर .फ्यूज़ तारको पिघला देता है और जिससे सारे घरमें अन्धकार हो जाता है।

(द) प्रधान स्विचको ऊपर कर दीजिये और दोषयुक्त लैम्पको निकाल लीजिये और उसके स्थान पर एक पहले वाला प्रकाशित लैम्प लगाइये। .फ्यूज तार बदल दीजिये।

(ई) अब फिर प्रधान स्विचको नीचा करिये। यदि यह लैम्प प्रकाश देता है और शेष सब लैम्प भी तो दोष केवल निकाले हुये लैम्पमें ही था और वह भी शार्ट सरकिटके रूपमें। यह लैम्प सर्वथा व्यर्थ है और नष्ट कर दिया जाना चाहिये।

(३) परन्तु यदि नवीन लैम्प जो कि आपने लगाया है अपने स्विचके नीचे किये जाने पर प्रकाश नहीं देता तो दोष लैम्पको पकड़ने वाले धातुमें (lamp holder) या उसकी डोरीमें है। लैम्प निर्दोष है यह तो प्रकट ही है।

(अ) प्रधान व छोटे स्विचोंको ऊपर कर दीजिये और नवीन लैम्पको निकाल कर नये फ़्यूज तार लगा दीजिए; प्रधान स्विचको नीचा कीजिये और सन्दिग्ध लैम्प होल्डर के स्विचको छोड़ कर शेष सब स्विचोंको नीचा करिये। यदि शेष सब ठीक प्रकारसे प्रकाश देते हैं तो दोष इसी लैम्प होल्डर में है।

(ब) प्रधान स्विचको बन्द करिये और उस लैम्प होल्डरको खोल कर भली प्रकार देखिये। दोनों तार कहीं न कहीं अवश्य मिल रहे होंगे यदि डोरीमें कोई दोष है। एक-एक इञ्च हर एकसे काट दीजिये और लैम्प होल्डरको फिरसे लगाइये और उपरोक्त तरहसे नीचे करिये कि ठीक हुआ या नहीं।

(स) यदि दोष डोरीमें नहीं है तो लैम्प होल्डरमें या छत इत्यादिके तारोंमें कहीं दोष है। इन सबको आप बिजलीके मिस्त्रीके लिये छोड़ सकते हैं।

वृक्षोंके कारखानेका रूप

[ले०—श्री प्रभा अस्थाना, बी० ए०]

बन सबसे बड़े रासायनिक कारखाने हैं जो वायुके पदार्थों (तत्वों) को इधरसे उधर किया करते हैं। ये वृक्ष अपनी पत्तियोंके छोटे-छोटे छिद्रोंके द्वारा—जिनकी संख्या एक पत्तेमें करोड़ों तक होती है—सांस लेते हैं। वायुकी ऑक्सीजन गैस ये ले लेते हैं और कार्बन बाहर कर देते हैं। उसी समय वृक्षोंकी हरी पत्तियाँ सूर्य्यके प्रकाशमें वायुमेंसे कार्बन डाई-ऑक्साइड ले लेती हैं और उसको पानीमें मिला कर शक्कर और चरबी बना डालती हैं। इस विधिके करनेमें ऑक्सीजन वृक्षोंमेंसे बाहर हो जाता है और फिर वायुमें मिल जाता है। इस प्रकार जो कुछ ऑक्सीजन पशुओं आदिके सांस लेनेमें ख़र्च हुआ था वह फिर पूरा हो जाता है। यदि वृक्षोंका यह उपयोगी कार्य्य कम हो जाय तो अन्य पशुओंका जीवन संकटमें पड़ जाय। वृक्षोंकी पत्तियोंमेंसे बहुत-सा काममें आने वाला जल भी मिलता है। उदाहरणके लिये यह हिसाब लगाया गया है कि बीच के वृक्षोंकी एक खेतीमेंसे नित्य चालीस हज़ार गैलन जल निकलता है।

खाने-पीनेकी सामग्रियोंको अधिक काल तक सुरक्षित रखनेके लिये आज कल कई उपाय निकाले गये हैं। उनमेंसे एक खोज यह है कि कार्बनके वातावरणमें रहनेसे फल अधिक देरमें पकते हैं और बैक्टीरिया भी रुक जाते हैं। सेब एक ऐसा जीवित फल है जो तोड़नेके बाद भी सांस लेता रहता है। बीज जब तक कि पूरे पक नहीं जाते हैं फलमें रहते हैं और यही कारण है कि फलके वृक्षसे अलग हो जाने पर भी बीजोंको भोजन मिलता जाता है। यदि वृक्षसे तोड़े हुये सेबोंको अधिक दिन सुरक्षित रखना है तो उसके पकनेकी क्रियाको कम करनेके लिये फलोंको नीचे तापक्रममें अथवा कम ऑक्सीजन और अधिक कार्बन वाले वायुमंडलमें रखना चाहिये। दूसरी रीति अधिक सफल है क्योंकि इस रीतिसे वह सेब भी जो कि साधारण ठंडे स्थानोंमें सुरक्षित रहते हैं, परन्तु बाहर आते ही नष्ट हो जाते हैं—सुरक्षित रह पाते हैं। मोहर बन्द तहखानोंमें अथवा गैस-स्टोरमें रक्खे हुये सेब ऑक्सीजनको अपने अन्दर कर लेते हैं और कार्बनको निकाल देते हैं और इस तरहसे सुरक्षित रहते हैं। विज्ञान ने विभिन्न रीतियाँ फल संरक्षण के लिये निकाली हैं और इन्हीं उपायोंको ज़रा हेर-फेर कर के फल संरक्षण किया जाता है। उदाहरणके लिये फलको जल्दी पककर सड़ जानेसे रोकनेके लिये उसकी सांस-प्रक्रियाको धीमा कर दिया जाता है, परन्तु यदि इसीको बिल्कुल बन्द कर दिया जाय तो फल श्वासके अभावसे भी नष्ट हो जायगा।

पौधोंसे मिलने वाले बहुमूल्य पदार्थ—एक हरे-भरे वृक्षकी तुलना एक कारखानेसे की जाती है। अपनी सूर्य्यके प्रकाशको ग्रहण करने तथा काममें लानेकी शक्तिके द्वारा ये कई मिश्रित पदार्थ बना सकते हैं। पहिला काम शक्करका बनाना है। यह पानी तथा कारबोनिक ऐसिडसे मिलकर बनता है। इसके पश्चात् पृथ्वीमेंसे जड़ों द्वारा खींचे हुये अन्य पदार्थ जैसे फ़ॉसफेट, नाइट्रेट तथा सलफेट इत्यादि। यही पानी और शक्करमें मिलकर प्रोटीनकी रचना करते हैं। इस प्रकार वृक्षोंके लिये भोजन द्वारा प्राप्त शक्ति जब व्यय होने लगती है उसके साथ ही साथ नवीन शक्तिका संचय होता जाता है। वृक्षोंके इन कामोंसे अन्तमें प्रोटीन तथा अन्य पदार्थ अलग-अलग हो जाते हैं और कार्बन डाइ ऑक्साइड वृक्षमेंसे बाहर हो जाता है। विभिन्न वृक्षोंके अपने काम करनेके मार्ग भी भिन्न-भिन्न हैं जिनसे भिन्न प्रकारको रासायनिक प्रक्रियाओंसे सर्वथा नवीन पदार्थों की रचना होती है। इन पदार्थोंमें रद्दी तथा खानेके काममें आने वाले दोनों प्रकारके पदार्थ रहते हैं। रद्दी पदार्थ वृक्षके किसी ठीक काममें नहीं आते हैं। वह 'क्रिस्टल' के रूपमें पौधोंमें रह जाते हैं और कीड़ोंसे उनकी रक्षा करते हैं। इनमेंसे कुछ अलकलो जैसे मर्फिया और कुनैन इत्यादि होते हैं जो दवाकी तरह काम में लाये जाते हैं। ये विष हैं, परन्तु इनकी कम मात्रायें दवाकी भाँति काममें लाई जाती हैं। इस प्रकार विषैले पौधे और दवाके पौधे एक ही पौधेके दो नाम हैं।

कुछ तेल जिनके वृक्षोंमें सुगन्ध आती है—मनुष्यों

को कभी-कभी वृक्षोंके रद्दी पदार्थ ही नहीं बल्कि सहायक पदार्थों की भी आवश्यकता होती है। उदाहरणके लिये हम कुछ वृक्षोंके ऐसे तेलोंको ले सकते हैं जैसे लौंग, कपूर, दालचीनी तथा लैवेंडरके तेल। इस प्रकारके तेल उन वृक्षों को सुगन्धित बनाते हैं और उन कीड़ोंको अपनी ओर आकर्षित करते हैं जिनसे वृक्षोंको लाभ पहुँचता है, क्योंकि ये कीड़े परागको इधरसे उधर ले जाते हैं। फूलोंको डिस्टिल करके तेल निकाले जाते हैं। वृक्ष अपने पास कुछ सुरक्षित पदार्थ भी रखते हैं जो आगे आने वाले वृक्षों के भोजनके काम आता है। इन पदार्थों में तेल और चर्बी दोनों हैं, जैसे अलसीका तेल तथा बिनौलेका तेल, इत्यादि। बहुतसे सुगन्धित पदार्थ बीजों और फलोंमेंसे भी निकाले जाते हैं, जैसे ऑरचिडके बीजमेंसे बिनौला, लाल बेरीमेंसे काली मिर्च जो सूख कर काली हो जाती है। इसी प्रकार राई भी राईके बीजसे निकाली जाती है।

खाने वाले फूल—अमेरिकाके रेड इंडियन सूर्य्य-मुखीके बीजकी रोटी बनाकर खाते हैं। मवेशी तथा मुर्गी बतक भी इन बीजोंको खाती हैं और इनका तेल साबुन तथा तेलहन बनानेके काममें आता है। टर्कीमें मनुष्य गुलाबकी पत्तियोंको शक्करमें उबाल कर और संरक्षण करके खाते हैं। चीनमें सुखाई हुई गुलाबकी कलियाँ, वायलेट और चमेलीके फूल खानेके काममें आते हैं। वहाँ एक प्रकारके कमलको तरकारीकी तरह खाते हैं। भारतकी कुछ पहाड़ी जातियाँ मक्खनके वृक्ष (butter tree) के फूलोंको कई तरहसे बनाकर खाते हैं। जापानमें केलेका फूल खाया जाता और यह तो भारतमें भी तरकारी बनाने के काममें आता है। पिपरमेंटकी पत्तियोंमेंसे तेल निकाल कर मिठाइयों और दवाइयोंमें डाला जाता है। कुछ समय पहिले इंगलैंडके सारे प्रांत भरमें पेपरमिंटकी खेती होती थी।

विषैले और मीठे आलूका परिवार—आलूकी एक जाति विशेषमें कुछ ऐसे आलू भी होते हैं जो अत्यंत तीव्र विषसे परिपूर्ण होते हैं। फिर भी इनसे औषधियाँ बनाई जाती हैं और खानेके काममें भी आते हैं। इसी प्रकार टमाटर, तम्बाकू, हेनबेन और कई अन्य वृक्षोंमें भी होती है।

नाइटशेड नामक एक बेल होती है जो पेड़ों पर चढ़ जाती है। इसमें ऐसे बैगनी रंगके फूलोंके गुच्छे लगते हैं जिनके बीचका भाग पीला होता है और इसमें लाल-लाल छोटे अत्यन्त विषैले फल निकलते हैं। इस बेलकी ही तरह एक और बेल भी होती है जिसका नाम बेलाडोना है। इसमें घंटोंके आकारके बैगनी फूल तथा चमकदार काले फल होते हैं. ये फल खानेमें मीठे परन्तु अत्यन्त विषैले होते हैं। जड़में इससे भी अधिक विष होता है और आँखमें डालनेकी दवा बनानेके लिये इसीमेंसे एट्रोपाइन निकाला जाता है। बेलाडोना आँखकी दवाके लिये तथा बाहरी सूजनमें लगानेके काम आता है। योग्य हाथोंमें यह एक उपयोगी औषधि है, परन्तु और सब विषोंकी भाँति इसको भी सावधानीसे काममें लाना चाहिये। हेनबेन भी दवाके काममें आता है। इसका फूल क्रीम रंगका होता है जिसमें बहुत सी बैजनी नसें होती हैं। इसकी पत्तियाँ बड़ी-बड़ी और बालदार होती है। इसमें अत्यन्त तीव्र दुर्गन्ध आती है।

तम्बाकू भी इसी जाति की है। यह एक नशे वाली वस्तु है जो यदि ठीकसे न खाई जाय तो हानिकारक हो सकती है। इस जातिमें आलू और टमाटर इतने विषैले नहीं होते हैं यद्यपि आलूके वृक्षमें विष होता है। इसकी पत्तियों और 'बेरी' में विष होता है और कभी-कभी स्वयं आलूमें भी होता है। यह विष ऐसे आलुओंमें अधिक होता है जो पृथ्वीकी सतहके पास रहते हैं और हरे हो जाते हैं। छीलने से उनका दूषित छिलका निकल जाता है और पकानेके बाद तो उनका विष बिल्कुल नष्ट हो जाता है। आलूके विषको घटनायें अधिकतर उन्हीं पशुओंसे सम्बन्ध रखती हैं जिन्हें कच्चे हरे आलुओंका छिलका खानेको दिया जाता है।

प्रकाश देने वाले वृक्ष—अकसर वृक्षोंमेंसे प्रकाश निकलता हुआ दिखाई देता है, परन्तु इसका कारण सदैव वृक्ष ही नहीं होता है। जिस प्रकार मांस और मछली बैक्टीरिया होनेके कारण अँधेरे में चमकते हैं उसी प्रकार वृक्ष भी बैक्टीरिया अथवा फफूंदीके होनेसे चमकते हैं। जब कभी लकड़ीके लट्ठे चमकते हुये दिखाई देते हैं तो उनकी लकड़ीमेंसे प्रकाश नहीं निकलता है, बल्कि उसके अन्दर गये हुये फफूंदीके तारोंमेंसे निकलता है। कुछ

विशेष वातावरणोंमें बढ़े तापक्रममें बहुत सी तरहकी फफूंदी चमकने लगती हैं। जैतूनका वृक्ष बहुत चमकता है। जर्मनीमें ऐसी कोयलेकी खाने हैं जहाँ फफूंदीके तारोंके गुच्छे इतना चमकते हैं कि अन्धकारपूर्ण स्थानोंको परियोंका देश बना देते हैं।

किरणोंको ग्रहण करने वाले कोष—स्वीडनकी एक महिला ने बहुत दिन हुये तब कहा था कि नैस्टशियम के फूलमेंमें प्रकाश निकलता है। कुछ और देखने वालों ने भी कहा है कि पौपी और मैरीगोल्डके फूलमेंसे भी प्रकाश निकलता है। इन सब बातोंके होते हुये भी कई वैज्ञानिकोंका यह मत है कि यद्यपि कभी-कभी जब वायुमें विद्युत्‌की अधिकता हो जाती है तब फूलमेंसे प्रकाश निकलने लगता है, परन्तु बहुधा यह प्रकाश केवल भ्रम ही है। और इसका कारण यह है कि सूर्य्यास्तके समय फूलोंके रंग अधिक चटकीले हो जाते हैं। एक प्रकारकी चमकदार काई जिसमेंसे प्रकाश निकलता हुआ कहा जाता है उसका भी यही हाल है। असलमें यह काई अँधेरी गुफाओंमें होती है और कभी सूर्य्यकी किरणें उन गुफाओंके अन्दर प्रवेश करती हैं तो यह चमकने लगती है। काई एक हरा पौधा है। इसलिये इसको सूर्य्यके प्रकाशकी आवश्यकता होती है और इसमें छोटे-छोटे लेंज़की भाँति कोष रहते हैं जो सूर्य्य की किरणोंको ग्रहण कर लेते है और फिर बाहर भी कर देते हैं। इन किरणोंको बाहर करनेकी क्रियामें यह काई अँधेरेमें चमकने लगती है।

वृक्षोंका बैरोमीटर का काम—बहुतसे फूल ऐसे हैं जिन पर प्रकाश, गर्मी तथा नमीका बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है और उनके कार्य्यों से उन्हें बैरोमीटर कहा जा सकता है। लाल पिम्परनेलके फूलको 'दरिद्र मनुष्यका मौसम बताने वाला यंत्र' कहते हैं। खेतोंका तथा मार्गोंके किनारेका यह सुन्दर फूल उदास दिनोंमें दिन भर बन्द रहता है. धूप निकलने पर यह प्रातःकाल खिल जाता है और तीसरे पहर जल्दी बन्द हो जाता है। जिस समय फूल खिला रहता है उस समय यदि वर्षा होने लगती है तो वह बन्द हो जाता है और ऐसे अपने परागकी रक्षा करता है। इसी प्रकार एक और पीला फूल होता है जिसके वैज्ञानिक नामका अर्थ है 'सूर्य्य का फूल'। धूप निकलने पर यह पूरा खिल जाता है और नम मौसममें इसकी पत्तियाँ सिकुड़ी और दबी हुई ज्ञात होती हैं। बन में होने वाला एनेमोन भी ऐसा ही फूल है। इसका 'वायु का फूल' नाम इसके स्वभावका सूचक है। यह फूल जरा सी भी वायु चलनेसे एक विशेष प्रकारसे हिलने लगता है। यह सूर्य्यकी गति विधिका भी अनुकरण करता है और बदलते हुये तापक्रमके अनुसार कार्य्य करते हैं। जब वर्षा होती है और जब रात्रि आने लगती है तब ये बन्द हो जाते हैं। एक तरहका छोटा सा तारेके आकारका सफेद घास । फूल मौसमका अच्छा परिचायक है। जब फूल बिल्कुल खिला हो तो अच्छा मौसम और जब बन्द हो तो वर्षा होने वाली होगी समझना चाहिये। बनमें होने वाला 'सौरेल' भी बैरोमीटरका काम देता है। रातमें अथवा जब पानी बरसनेको होता है इसकी लौंगकी तरहकी पत्तियाँ तनेकी ओर झुक जाती हैं। इस पौधे पर अँधेरे और उजालेका भी बहुत प्रभाव पड़ता है और स्पर्श करते ही इसकी पंखुड़िया बन्द हो जाती हैं। एक प्रकारका जंगली जिरेनियम होता है जिस पर वातावरणकी नमीका बड़ा प्रभाव पड़ता है और इससे आने वाले मौसमका हाल भी मालूम हो जाता है।

फूलोंकी घड़ियाँ—कुछ फूलोंकी खुलने और बन्द होनेकी इतनी ठीक आदत है कि उससे समयका पूरा-पूरा ज्ञान हो जाता है। इसीलिये कहीं-कहीं विशेषकर एडिनबराके प्रिंस स्ट्रीट बागमें इस प्रकार फूलोंके वृक्ष लगाये जाते हैं जिनसे घड़ीका आकार बन जाय और ठीक-ठीक समय घड़ीके वृक्षमें एक स्थान-विशेषके खिले हुये फूलोंसे मालूम हो जाता है। विशेष समय पर वृक्षमें स्थित भिन्न-भिन्न स्थानोंके फूल खिलते हैं। 'दोपहराका फूल' ठीक दोपहरको बन्द हो जाता है। डैंडीलियन प्राचीन कालके चरवाहोंको समयका ज्ञान करवाता था। इसी प्रकार 'सुनहरा फूल' भी इन लोगोंको घड़ीका काम करता था जो प्रातः पाँच बजे खिल जाता था और रातको आठ बजे खिल जाता था। इसी प्रकार जंगली चिकोरीका फूल जो जुलाईसे अक्टूबर तक खिलता है प्रातः आठ बजे खिलता है और सायंकाल चार बजे बन्द हो जाता है।

फूल और संगीत—कुछ फूलोंपर ध्वनिका एक विशेष प्रभाव पड़ता है। कुछ फूल उससे अधिक प्रभावित होते हैं और कुछ कम। प्रयोगों द्वारा यह देखा गया है कि कारनेशन और साइक्लेमनके फूल बाजा बजाने वालों की ओरसे संगीत सुनकर विमुख हो जाते थे। तब एक बार और चेष्टा की गई और फूलोंको आरचेस्ट्राके बिल्कुल पास रक्खा गया, परन्तु इस बार फिर सब फूलों ने दूसरी ओर मुड़ कर अपनी अनिष्ठा दिखाई।

अँधेरेमें चमकनेवाले रंगोंका आविष्कार

भारतीय वैज्ञानिकों का उपयोगी कार्य

हवाई आक्रमणोंसे बचनेके लिए नगरोंमें रातको अँधेरा रक्खा जाता है। भारतमें कुछ नगरोंमें आंशिक रूपमें अँधेरा रखनेका प्रबन्ध किया गया है। इस अन्धकारमें मोटर चलाने वालों, पैदल चलने वालों तथा रक्षा अधिकारियोंको बड़ी कठिनाइयाँ होती हैं। इन कठिनाइयोंको दूर करनेके उद्देश्यसे भारतीय वैज्ञानिकों ने चमकदार रंगोंका आविष्कार किया है।

हालमें ही अलीपुरकी प्रयोगशालामें कुछ भारतीय वैज्ञानिकों ने भारतीय वस्तुओंसे चमकीले रंग बनाये हैं। इनके मूल्य भी अधिक नहीं हैं। कलकत्तेमें हवाई आक्रमणों से बचनेके लिए हालमें ही जो उपाय किये गये थे उनमें ये रंग उपयोगी सिद्ध हो चुके हैं। अलीपुरके परीक्षण भवनमें इनके प्रदर्शनका भी प्रबन्ध किया गया है। अभी तक ये रंग यूरोपसे आते थे। परन्तु मूल्य इनके बहुत अधिक थे।

रेडियमके समान चमक

ये रंग सूर्यका प्रकाश ग्रहण कर लेते हैं और फिर अँधेरेमें ८ से लेकर १२ घंटे तक ठीक उसी प्रकार चमकते रहते हैं जिस प्रकार घड़ियों पर लगाया जाने वाला रेडियम। रेडियमके रंगोंको सूर्यका प्रकाश ग्रहण करनेकी आवश्यकता नहीं होती, परन्तु वे बड़े कीमती होते हैं। भारतमें बनाये गये रंग कुछ मिनटों तक प्रकाशमें रखनेसे कई घंटों तक चमकते रहते हैं।

अँधेरेमें सुविधा

चमकने वाले रंगोंको बनानेकी आवश्यकता गत महायुद्धमें हुई थी। उस समय वायुयानोंके चंदोवों तोपगाड़ियों तथा साइकिलोंके नम्बर आदि पर इन रंगोंको लगानेकी आवश्यकता हुई थी। वर्तमान युद्धमें हवाई आक्रमणोंका भय बहुत बढ़ जानेके कारण चमकने वाले सस्ते रंगोंका महत्व बहुत बढ़ गया है। यूरोपमें चमकने वाले रंगोंका बहुत प्रयोग किया जा रहा है। हवाई आक्रमणोंसे बचनेके आश्रयस्थानों, अस्पतालों, दवा रखनेकी मेजों आदि पर, थियेटरों और घरोंमें इन्हें लगाया गया हैं। सड़कोंके संकेत चिन्ह, घरोंके नम्बर, नामोंकी तख्तियाँ, सीढ़ियों और दरवाजोंके कुंडों आदि पर चमकने वाले रंग लगा देनेसे लोगों को अँधेरेमें बड़ी सुविधा हो जाती है।

वायुयानोंसे दिखायी नहीं देते

सड़कोंके यातायातका नियन्त्रण करने वाले कानिस्टेबिलोंकी टोपी तथा वस्त्रों पर भी चमकदार रंग लगा दिये गये हैं। इससे मोटर चलाने वालोंको बड़ी सुविधा हो गयी है। विचित्र बात तो यह है कि ऊपर उड़ने वाले वायुयानोंसे ये रंग नहीं दिखायी देते।

बिजलीसे चमकने वाले अक्षरोंके स्थानों पर चमकनेवाले रंगोंके अक्षर लिखनेसे बिजलीका प्रयोग घटता जा रहा है। इससे विज्ञानको तथा थियेटरोंके लिये एक नया युग आरम्भ हो गया है।

भारतीय मसालोंसे रंगोंका निर्माण

आजकल भारतमें कमसे एक दर्जन कारखाने भारतीय मसालोंसे रंगोंका निर्माण कर रहे हैं। ये कारखाने सूखे गाढ़े, मिश्रित रंग, वारनिशें, तेल आदि सभी प्रकारके रंग बनाते हैं।

ये रंग साधारण कार्योंमें काम आने वाले नीचे दर्जेके रंगोंसे लेकर रेल, जहाज तथा कारखानोंमें काम आने वाले ऊंचे दर्जेके रंगों तक, सभी श्रेणियोंके बनाये जाते हैं। इतना ही नहीं, ये कारखाने युद्ध कार्यके लिए उपयोगी अनेक प्रकारके रंग भी बना सकते हैं, जो फफोले दूर करने, शत्रुकी दृष्टिसे छिपानेके लिए वस्तुओंको रंगने, गर्मी रोकने

आदिके काम आते हैं। सजावटके काम आने वाले रंगोंके अतिरिक्त उद्योगोंके लिए भी उपयोगी रंग बनाये जाते हैं।

इनमें प्राकृतिक तथा वैज्ञानिक प्रक्रियाओं द्वारा तैयार की गयी गोंदकी पॉलिश और वारनिशें, वनस्पति तेल आदि उल्लेखनीय हैं।

भिलावाँसे वारनिशें

आधुनिक अनुसन्धानकार्यसे भारतके रंग उद्योगोंको बहुत लाभ पहुँच रहा है। वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसन्धानके डाइरेक्टरकी प्रयोगशालाओंमें भिलावाँसे वारनिशें और रंग बनानेकी एक प्रक्रिया निकाली गयी है। व्यापारिक दृष्टिसे भी यह सन्तोषजनक है। इन वारिनशों और रंगोंकी जो परत चढ़ती है वह अन्य रंगोंकी परतोंसे अधिक मुलायम तथा टिकाऊ होती है।

नवीन परीक्षण

भारतीय अनुसन्धानशाला ने चूर्णरूपमें चमड़ेकी वारनिशें तैयार करने तथा कटकके डाइरेक्टर आफ डेवलपमेंटके विभाग ने लकड़ी पर चपड़ेकी वारनिश करनेके विषयमें परीक्षण कार्य समाप्त कर लिया है। भारतीय लाख अनुसन्धानशाला ने रंगहीन लाख तथा कड़ी लाख बनायी है। ये वस्तुएँ बिजलीके उद्योगोंमें काम आती हैं। लन्दन तथा नामकुममें किये गये अनुसन्धानोंके फलस्वरूप चपड़े तथा सूख जाने वाले तेलोंसे वारनिशें बनानेकी कई विधियाँ निकल आयी हैं। नागपुरका विज्ञान कालेज शीशेका सफेद रंग तथा धातुओं और लकड़ीकी पालिशें बनानेका प्रयत्न कर रहा है।

भारतीय रंगोंकी श्रेष्ठता

भारतमें बनाने वाले रंग विदेशी रंगोंकी अपेक्षा बहुत लाभप्रद हैं। एक बात तो यह है कि वे उन्हीं अवस्थाओंमें बनाये जाते हैं, जिनमें उनका उपयोग होता है। अब कारखानोंमें रासायनिक परीक्षणकी सुन्दर प्रयोगशालाओं तथा योग्य वैज्ञानिकोंका प्रबन्ध हो गया है। ये व्यक्ति प्रत्येक बातका भली प्रकार ध्यान रखते हैं।

विदेशों को निर्यात

भारतमें रंगों तथा वारनिशोंकी जो माँग है उसे पूरा करनेके अतिरिक्त भारतीय रंग लंका और बर्माको भी भेजे जाते हैं। युद्ध छिड़ जानेसे भारतीय कारखानोंमें बनने वाले रंगोंकी मांग और भी बढ़ गयी है। हालके महीनोंमें रंग निकट तथ सुदूरपूर्वमें ईरान, मेसोपोटेमिया, अफ्रीका, श्याम सिंगापुर तथा पूर्वी द्वीप समूहको भेजे गये हैं।

युद्ध में काम आने वाली वस्तुएँ

भारतमें ही बनना आरम्भ

हालमें ही रसद विभाग ने युद्ध संचालनमें काम आने वाली भारतमें बनी प्रायः २०,००० वस्तुओंके नमूने पास किये हैं। ये वस्तुएं अभी तक बाहरसे आती थीं परन्तु अब वे भारतमें ही बनने लगी हैं।

नये साधनोंका पता चला

युद्ध संचालनमें प्रायः ४०,००० प्रकारकी वस्तुएं काम आती है जिनमेंसे प्रायः २०,००० आजकल भारतमें ही बनायी जा रही हैं। जबसे प्रान्तीय कन्ट्रोलरों और रसद सलाहकार समितियोंकी स्थापना हुई हैं, वे अपने अपने प्रान्तोंमें बराबर शेष वस्तुओंको प्राप्त करनेके विषयमें खोज कर रही हैं। फलतः अनेक वस्तुओंके नये साधनोंका पता चल गया है।

कुछ अन्य वस्तुएँ

अधिकांश नमूने सेफ्टी पिनों, बोतलोंके लिए रबड़की डाटों, सेना और तोपखानेकी सीटियों, बढ़ईके काम आने वाली पेन्सिलों आदि छोटी-छोटी वस्तुओंके हैं। खाना खाने आदिके चीनीके बर्तन और कांटे, चम्मच तथा दूध और काफीके बर्तन आदि अत्यन्त सन्तोषजनक पाये गये हैं। बाइसिकलोंकी घंटियों, जेबी घड़ियों, मिनट गिननेकी घड़ियों, हरीकेन लालटेनों, कांचके गोलों, बटनों, ताँबेके बिगुलों और तुरहियों आदिके नमूने भी स्वीकार कर लिये गये हैं।

खाद्य पदार्थ

खाद्य पदार्थोंमें आटेके नमूने, सरसों, जईका आटा, बनावटी मक्खन, चटनी, टमाटर, नारंगीका अचार, डिब्बों में बन्द खाद्य पदार्थ, पोले आड़ू, बेर, अंगूर, आमके टुकड़े, डिब्बोंमें बन्द मटर, शर्बत आदि वस्तुयें अच्छी पायी गयी हैं।

वैज्ञानिक कार्य

वैज्ञानिक कार्यके लिए जो वस्तुएँ पास की गयी हैं उनमें परीक्षण नलिकायें और वैज्ञानिक सरेस उल्लेखनीय हैं।

(भारतीय समाचारसे)

सूक्ष्मदर्शक यंत्रके चमत्कार

[ठाकुर शिरोमणि सिंह चौहान, विद्यालंकार, एम० एस-सी०, विशारद, सब-रजिस्ट्रार, सफीपुर, उन्नाव]

हमारे अधिकांश पाठकोंको यह नहीं मालूम है कि ज्ञान-विज्ञानके प्रचार-प्रसारमें सूक्ष्मदर्शक यंत्रने मानव जातिकी कितनी अमूल्य सेवाएं की हैं। कुछ समय पूर्व जिन सूक्ष्म पदार्थोंको हमने अपनी आँखोंके नहीं देखा था और न उनका नाम सुना था अर्थात् जिन्हें हम खाली नेत्रोंसे देखनेमें नितांत असमर्थ थे, आज इस यंत्रकी बदौलत हम उनमें एक ब्रम्हांडकी सी रचनाका साक्षात्कार करते हैं। इस यंत्रके द्वारा हमारी जानकारीमें इतनी अधिक उन्नति हुई है कि हमारे रहन-सहर, हमारे उद्योग-व्यवसाय और हमारे औषधोपचारमें आकाश-पातालका अंतर हो गया है। इस प्रस्तावमें हम कुछ ऐसी बातोंका उल्लेख करेंगे जिन्हें इस यंत्रके मानव समाजके सम्मुख लाकर रख दिया है और जिसके लिये हम लोग इस यंत्रके निर्माण कर्त्ता ड्रावेल साहबके सदैव ऋणी रहेंगे।

पहले-पहल इस यंत्रकी सहायतासे यह निश्चित किया गया कि सजीवकी उत्पत्ति सदैव सजीव हीसे होती है: जीवन निरंतर जीवन हीसे आता है।

कोई दो सौ वर्ष पहले लोगोंकी यह धारणा थी कि अनेक जीवधारियोंकी उत्पत्ति मृत पदार्थों से होती है जैसे 'मरी देहसे' नन्हे नन्हे कीड़े। सन् १८६० ई० में पास्टियर ने सिद्ध किया कि यदि मृत शरीर इस भाँति रखा दिया जाय कि कोई बाहरी वस्तु उस तक न पहुँच सके तो वह शरीर सड़ेगा नहीं, क्योंकि कोई पदार्थ सड़ता तभी है जब बैक्टोरिया पहुँचकर उस पर फैलते हैं। पस्टियरका कहना था कि 'जीवित प्राणी ही प्राणका सृजन करता है अर्थात् प्राण एक जीव हीसे दूसरे जीवको मिलता है।

ऐसी समस्त दशाओंमें, जहाँ कुछ ऐसे तरल पदार्थों में जीवित प्राणी उत्पन्न हुए जिनमें पहले कोई जीवित प्राणी प्रत्यक्ष रूपसे, मौजूद न थे, अणुवीक्षण यंत्र ने दिखा दिया कि उन सभी तरह पदार्थोंमें कुछ-न-कुछ प्राणी पहले हीसे उपस्थित थे। 'निर्जीवसे सजीवकी उत्पत्ति' वाली समस्याका रूप अंतमें घटकर इतना रह गया था यदि शोरबा या दूध आदि विगलित पदार्थ कुछ दिनके लिये खुले छोड़ दिये जावें और तब उसमेंसे एक बूंद लेकर अणुवीक्षण यंत्रके नीचे निरीक्षण किया जावे तो पता लगेगा किइसमें नन्हे-नन्हे असंख्य वानस्पति जीवाणु-पुंज, जिन्हें साधारणतः विभाजन-जीवाणु (germs of decomposition) कहते हैं, दिखाई पड़ते हैं, परन्तु यदि उतना ही द्रव पदार्थ उबाल लिया जावे और उसके अनन्तर वह हवाके संसर्गसे एकदम सुरक्षित रक्खा जावे तो जाँच करने पर उसमें गुण जीवाणुओंका बिलकुल अभाव होगा।

जिन खोजकर्त्ताओंका यह विश्वास था कि उन्होंने ऐसे प्राणियोंका अवलोकन किया है जो निर्जीव पदार्थोंसे उत्पन्न हुए थे, सूक्ष्मदर्शक यंत्र ने स्पष्ट रूपसे उन्हें दिखा दिया तो उन्होंने उस पदार्थके उन प्राणियोंको पूर्ण रूपसे नष्ट नहीं किया था जो उसमें पहले हीसे मौजूद थे अथवा बादको, उसके जीवाणु रहित पदार्थमें धूलके कण पहुँच गये थे। ऐसे विवादयुक्त विषयोंमें अब तो अणुवीक्षण यंत्र ही अपीलकी सबसे ऊँची अदालत है और उसका अंतिम निर्णय यही होता है– जीवकी जीव हीसे उत्पत्ति!

इसका तात्पर्य यह नहीं है कि प्राचीन कालमें भी किसी सजीवकी उत्पत्ति निर्जीवसे न हुई थी अथवा, भविष्यमें कोई विज्ञानवेत्ता 'सजीवकी निर्जीवसे उत्पत्ति' सिद्ध करनेमें समर्थ न हो सकेगा। इसका तात्पर्य तो केवल इतना ही है कि हम लोगोंके अनुभवमें जीव सदैव जीव ही से उत्पन्न हुआ है, निर्जीवसे कभी नहीं।

दूसरी समस्या जिसे अणुवीक्षण यंत्र ने सुलझाया है वह है पुनर्जनन क्रियाके अंगोंका यथार्थ ज्ञान। अरिस्त-शिशु या गर्भकी उत्पत्ति कैसे और किस विधिसे होती है? आप कहेंगे—माताके शरीरसे। ठीक है। पर प्रश्न यह है कि क्रियाके सम्पादनमें नर कितना भाग लेता है? सूक्ष्म-दर्शक यंत्र ने यह दिखा दिया कि दूसरी पीढ़ीकी नींव डालने वाला अथवा अगुवा एक नन्हा-सा मादाका रजकोष

होता है और जब तक इस रजकोषमें, इससे भी तुच्छ नरका शुक्रकीट प्रवेश नहीं करता, तब तक इसकी वृद्धि बिलकुल नहीं होती। जब अणुवीक्षण यंत्र द्वारा हम अणुवीक्ष्य रजकोष और अणुवीक्ष्य शुक्रकीटको अपनी आँखोंसे देखनेमें समर्थ हुए तब कहीं पूनर्जनन क्रियाका रहस्य खुला कोई सौ वर्ष हुए होंगे जब रूसके प्रसिद्ध वैज्ञानिक वान बिअर (Von Bear) ने पहले-पहल एक स्तनधारी (शशक) प्राणीके जीवित डिम्ब (रजकोष) को देखा था।

इसी भाँति वनस्पति वेत्ता (Nehemiah Grew) ने इसयंत्रकी सहायतासे पौधोंके पुष्पोंका निरीक्षण-परीक्षण किया और वह पहले-पहल इस निश्चय पर पहुँचा था कि पुष्पोंके पुंकेसर और गर्भकेसर, वास्तवमें, पौधोंके पुरुष और स्त्रीजननेन्द्रिय हैं। तत्कालीन वैज्ञानिकोंने यह भी बताया कि बीज उपजानेके हेतु यह अत्यावश्यक है कि पुंकेसरका पराग, गर्भनालके रजपात्र तक किसी विधि पहुँचाया जावे।

औषधोपचार एवं व्रण चिकित्सामें सूक्ष्मदर्शक यंत्रने बड़ी महत्वपूर्ण सेवाएं की है? इसी यंत्रकी बदौलत हमें 'जीवित तंतुओं' का बोध हुआ है। 'तन्तु' तो हमारे शरीर के अत्यावश्यक उपादान होते हैं। अस्थि, मांसपेशी, त्वचा, वातरज्जु और ग्रन्थि हमारे शरीरके कुछ तन्तु हैं। इस यंत्र द्वारा अध्ययन किये जानेके पूर्व भी हमें मालूम था कि शरीरके सब तन्तु एक-से नहीं होते हैं, क्योंकि खाली आँखोंसे भी देखने पर वे एक दूसरेसे भिन्न दिखायी देते हैं। इस यंत्रकी सहायतासे तो उनके विषयमें हमारी जानकारी और अधिक विस्तृत हो गयी। अब हम फौरन बता सकते हैं कि एक तन्तु दूसरे तन्तुसे किन-किन बातोंमें भिन्न है। जैसे मांसपेशियाँ लम्बे-लम्बे अर्धतरल बेलनों की बनी होती हैं, वात तन्तु अत्यंत लम्बे पतले सूत्रोंके, अस्थि अत्यंत पेचीदा नलियोंकी और त्वचा अदृश्य सेलोंकी अनेकों तहोंकी बनी होती है व्यवच्छेदक (histologist) उन रूपों और क्रमोंका सांगोपांग वर्णन कर सकता है जिनके आधार पर प्रत्येक तन्तुका निर्माण हुआ है। वह आपने तालों (lenses) से देखकर चन्द मिनटमें यह निश्चयपूर्वक बता सकता है कि वह दांत, अस्थि, मस्तिष्क, मांस, त्वचा, अथवा ग्रंथिके अति क्षुद्रभागका निरीक्षण कर रहा है।

प्राणियोंकी देहके तन्तुओं बनावटका सम्यक् ज्ञान ही तो नूतन अणुवीक्ष्य जीवविद्या एवं आयुर्वेदके समस्त विभागोंका, जिनका कुछ समय पहले नामकरण तक न हुआ था, मूलाधार बना।

इसके अतिरिक्त, यंत्रकी सहायतासे हम यह बताने योग्य हुए हैं कि रोगी और निरोगी तन्तुओंमें क्या भेद होता है। जब हम किसी रोगके अस्तित्वका अवलोकन खाली नेत्रोंसे करते हैं तो समझ लो कि उस रोगका आरंभ उस समयसे बहुत पहले हो चुका था। किन्तु अब इस यंत्र की सहायतासे रोग अपनी आदि अवस्था हीमें हमारे सम्मुख आ जाती है और हम तुरन्त उसके निवारण एवं उपचारमें जुट जाते हैं।

यही नहीं इस यंत्रने चीर-फाड़ (surgery) और चिकित्सा शास्त्रमें और भी अनेकों सेवाएँ की हैं। उदाहरणार्थ अब हम यह भली-भाँति जान गये हैं कि जिन तन्तुओंसे गुल्म (tumour) बना होता है वे कोई ऐसे तन्तु नहीं हैं जिन्हें हम पहलेसे न जानते हों। असलमें वह तो हमारे जाने-बूझे पाँच छः प्रकारके तन्तुओंमें किसी विशेष आकृति का होता है। अस्थि या मांस या ग्रन्थिका गुल्म तो असल में अस्थि, मांस या ग्रन्थि ही है जो किसी स्थान पर आवश्यकतासे अधिक बढ़ जाती है जहाँ उसे साधारणतः उतना न बढ़ना चाहिये।

इसी भाँति सूक्ष्मदर्शक यंत्रने पौधोंके तन्तुओंमें एक विशिष्ट प्रकारकी योजना (plan) का दिग्दर्शन कराया जिसके कारण नूतन 'अणुवीक्ष्य वनस्पति विज्ञान' का निर्माण हुआ। अब हमें पूरे तौरसे मालूम है कि पत्तोंकी अदृश्य अंतरचना तने और मूलकी अंतरचनासे बिलकुल भिन्न है। इसी प्रकार पौधोंके रोगोंके आदि कारणोंका स्पष्टीकरण किया गया। अब हम समझते हैं कि गिरुई (smuts) अथवा अन्यान्य परसत्वादियोंका उन्मूलन हमें किस भाँति करना चाहिये।

अणुवीक्षण यंत्रकी सर्वोत्तम देन तो इस बातकी खोज है कि अधिकांश संक्रामक रोगोंकी उत्पत्ति एवं प्रचार शरीरमें पाये जाने वाले अनेकों अति तुच्छ जीवाणुओंकी

वृद्धिके कारण होता है। प्रत्येक जीवाणु विशेष प्रकारके रोगका संचार करते हैं। इस भाँति अब यह बात स्पष्ट हो गयी कि अधिकांश छूतके रोग जैसे बलयरोग (डिफ्थीरिया), धनुर्वात (टिटेनस), आलर्क (पागल कुत्ते अथवा गोदड़के काटनेका रोग Rabies, ऐनथ्रैक्स (Anthrax) मंथर ज्वर, हैज़ा, पेचिश, नज़ला, खाँसी और क्षय आदि भिन्न-भिन्न कीटाणुओं द्वारा उत्पन्न होते हैं और ये समस्त रोग उत्पादक या रोग वाहक सूक्ष्म कीटाणु अणुवीक्षण यंत्र द्वारा पहिचाने जा सकते हैं। अणुवीक्षण यंत्रके आविष्कार के पहले इस अपूर्व सृष्टिका किसीको पता तक न था और और ये मानव जातिके संहारमें बेधड़क जुटे रहते थे। इस निःशस्त्र सेनाको करतूतसे न जाने कितने गाँव उजड़ गये होंगे; बस्तियोंकी बस्तियाँ वीरान हो गई हों भी कितने ही घरोंमें पानीका देवा और नामका लेवा न रह गया होगा। सूक्ष्मदर्शक यंत्रने ऐसे भीषण विनाशकारी शत्रुओं को ला हमारे सामने रख दिया अब वे टट्टीकी ओटसे हमारा शिकार नहीं कर पाते।

इस यंत्रने यह भी दिखाया कि इन नन्हे-नन्हे कीटाणुओंमें कुछ हमारे मित्र बनकर हमारे नित्य काम आने वाले कुछ पदार्थोंके निर्माणमें हमारी सहायता भी करते हैं। गन्नेके रससे सिरका बनाना चीनी या चीनीजनक पदार्थोंसे खमीकरण द्वारा मद्य बनाना, दूधसे दही बनाना, मृत शरीरको सड़ाना-गलाना और अनेकों संक्रामक रोगोंका उत्पन्न होना ये समस्त क्रियायें इस बातमें समान हैं कि ये सबकी सब फफूंदीसे मिलते-जुलते लाखों नन्हे नन्हे कीटाणुओं द्वारा सम्पादित होती हैं। मलसे खाद बनाना भी कीटाणुओं पर निर्भर है। इन कीटाणुओंके अनुसंधानसे हमारे उद्योग-व्यावसायको बहुत लाभ पहुँचा है।

अणुवीक्षण यंत्रने हमें यह भी सुझाया कि प्रायः हमारे घावोंमें सड़न और रक्तमें विष क्यों फैल जाता है पस्टयूर ने सिद्ध कर दिया कि दूध इस कारण खट्टा हो जाता है कि उसमें अति सूक्ष्म वानस्पतिक जीवाणुओंका आविर्भाव होने लगा था। इसी बातको आधार मानकर लिस्टर महोदय ने घावोंके पीबकी परीक्षाकी। फल यह हुआ कि उनमें भी उसी प्रकारके वानस्पतिक जीवाणु उपस्थित पाये गये।

बहुत खोज-बीनके अनन्तर उन्होंने यह सिद्ध किया कि यदि घावको समस्त अणुवीक्ष्य जीवाणुओंसे मुक्त कर दिया जावे तो वह घाव बिना सूजे और मवाद दिये ही अच्छा हो जावेगा। सच तो यह है कि लार्ड लिस्टर दूसरोंकी उपेक्षा और उपहासकी परवाह न करके एवं असीम धैर्य और दृढ़ताके साथ सर्जरी (जर्राही) विद्याको एक भयंकर कलासे सुरक्षित विज्ञानका रूप दिया।

अणुवीक्षण यंत्रने निर्जीव पदार्थोंकी जानकारीमें भी उन्नति करके मानव समाजकी अपार सेवा की है। इसने चट्टानों, बेशकीमती पत्थरों, खनिज पदार्थों एवं धातुओंकी आकृति (structure) पर काफी प्रकाश डाला है। इसकी सहायतासे यह देखा गया कि जब कोई तार अत्यधिक खींचा अथवा ऐंठा जाता है तो उसकी अदृश्य आकृति में परिवर्तन हो जाता है।

सूक्ष्मदर्शक यंत्रने हमारा परिचय एक दूसरे लोक अति सूक्ष्म लोकसे कराया। जिस भाँति दूरबीनने हमें दूरस्थ महालोकों की झाँकी दी उसी प्रकार अणुवीक्षण यंत्रने हमारा प्रवेश ऐसी दुनियामें कराया जहाँकी आबादी उतनी ही घनी, उतनी ही अद्भुत और उतनी ही अगम्य है जितनी कि नक्षत्र-संसार की। सच तो यह है कि इस अदृश्य लोककी जानकारी मानव जातिके कल्याणके हेतु अत्यंत उपयोगी एवं महत्वपूर्ण सिद्ध हुई है।

कोल्ड क्रीम

कुछ लोग, विशेषकर वे जिनकी त्वचा सूखी होती है, अब भी पुराने फ़ैशनका कोल्ड क्रीम पसंद करते हैं जिनमें थोड़ासा तेल पड़ा रहता है। ऐसी क्रीमका एक नुसख़ा नीचे दिया जाता है।

१—लीक्विड पैराफिन	१ गैलन
पैराफिन वैक्स	१ पौंड
सफेद किया मधु मक्खीका मोम	३ पौंड
सोहागा (बोरैक्स), बारीक चूर्ण	३ पौंड
गरम पानी	१ गैलन

लीक्विड पैराफिनमें पैराफिन वैक्स और मोम डाल कर जरा गरम करो। सोहागाको गरम पानीमें घोलो। दोनोंको मिलाओ और खूब चलाओ। जब जमने लगे तब इत्र गुलाब ७ ड्राम (या अन्य कोई सुगन्धि), छोड़ो।

त्रिफला

[ले० श्री रामेशवेदी, आयुर्वेदालंकार]

त्रिफला आयुर्वेदका प्रसिद्ध द्रव्य है। आयुर्वेदमें हरड़, बहेड़े और आँवलेका प्रयोग सम्मिलित रूपमें त्रिफला नाम से अधिक प्रसिद्ध हुआ है। इसलिये इसके तीनों अंगका पृथक्-पृथक् वर्णन करनेके बाद भी सम्मिलित त्रिफलाका पृथक् वर्णन किया जा रहा है।

नाम

तीनों फलोंका समूह होनेसे इसके संस्कृत✱नाम त्रिफला, फलत्रिक, फलत्रय आदि हैं। व्यवहारमें त्रिफला नाम अधिक प्रसिद्ध है। अँग्रेज़ीमें त्रिफला का श्रीमाइरोबेलेन्स नाम भी फलोंके त्रिकको देख कर रक्खा गया है।

उपयोगी भाग तथा संग्रह

रसायनार्थ लिये जाने वाले हरड़, आँवला आदि फल हिमालय पर्वतपर उत्पन्न होने चाहिये। श्रेष्ठ हिमालय पहाड़ औषधियोंकी उत्कृष्ट भूमि है। इसलिये अपनी ऋतुओंमें उत्पन्न हुए फलोंको हिमालयसे ही समय-समय पर यथाविधि ग्रहण करें। फल, रस और वीर्यसे पूर्ण होने चाहिये, सूर्यकी धूप, जल, छाया और वायुसे तृप्त होने चाहिये। जले हुये, सड़े हुये, चोट खाये हुये, और रोगाक्रान्त न हों।†

एक भाग हरड़, दो भाग बहेड़ा और तीन भाग आँवला मिलानेसे त्रिफला बन जाता है।※ भावमिश्र† तीनो फलोंको सम भागमें लेनेके लिए लिखता है। तीनों फलोंकी गुठली रहित लेना चाहिए।‡

गोविन्ददासने हरड़, बहेड़ा और आँवला तीनों मिले हुए फलोंको महती त्रिफला नाम दिया है।§ गम्भारी, द्राक्ष तथा फालसेके मिले हुए फलोंको ह्रस्व त्रिफला नाम दिया है। त्रिफला शब्दसे प्रायः सर्वत्र महती त्रिफलाका ही ग्रहण होता है।

गुण

त्रिफला कुष्टमेहास्त्रकफ पित्त बिना शिनी ॥
चक्षुस्या रोपणी दूधा वयसः स्थापनी सरा।
—मदन विनोद निघण्टु, अभयादि प्रथम वर्ग।
त्रिफला कफ पित्तघ्नी मेहकुष्टहरा सरा।

✱ त्रिफलैतत्त्रयेण स्याद्वरा श्रेष्ठा फलोत्तमा।
—मदनविनोद निघण्टुः अभयादि प्रथम वर्ग ॥
फलोत्तमा फलश्रेष्ठा च फलत्रयम्।
फल त्रिकं वरा ज्ञेया पथ्याधात्रीविभीतकैः ॥
—कैयदेव निघण्टु; औषधिवर्ग; श्लोक २२९।
हरीतक्याश्चामलक्याः विभीतकस्य च फलम्।
त्रिफलेत्युच्यते वैद्यैः.............. ॥
—हरीतसंहिता; कल्पस्थान; द्वितीय अध्याय।

† औषधीनां परा भूमिर्हिमवान् शैलसत्तमः।
तस्मात्कालानि तज्जानि ग्राहयेत्कालजानि तु ॥
अपूर्णरसवीर्याणि काले काले यथाविधि।
आदित्यसलिलच्छायापवनप्रीणितानि च ॥
यान्यजग्धान्यपूतीनि निर्व्रणान्यगदानि च।
—चरक; चिकित्सितस्थान; अध्याय १; श्लोक ३६, ३७ और ३८।

※ एकभागो हरीतक्या द्वौ भागौ च विभीतकम्।
आमलक्यास्त्रिभागश्च सहैकत्र प्रयोजयेत्।
—हारीतसंहिता, कल्पस्थान; द्वितीय अध्याय।
कैयदेवने हरड़, बहेड़े, और आँवलेको संख्यामें क्रमशः एक, दो और चार लेनेके लिये लिखा है।
एका हरीतकी योज्या द्वौ च योज्यौ विभीतकौ।
चत्वार्यामलकानीति त्रिफला, पोच्यते बुधैः ॥
—कैयदेव निघण्टु, औषधि वर्ग श्लोक २२९ से १३१ तक।

† पथ्याविभीतकधात्रीणां फलैः स्यात्त्रिफला समैः।
फलत्रिकं च त्रिफला सा वरा च प्रकीर्तिता ॥
—भावप्रकाश निघण्टु; हरीतक्यादि वर्ग, श्लोक ४२।

‡ अतश्यामृतकल्पानि विधात्कर्मभिरीहशैः।
हरीतकीना शस्यानि भिषगायस्तकस्य च ॥
— चरक; चिकित्सित स्थान; अध्याय १; श्लोक ३५।

§ पथ्या विभीतकं धात्री त्रिफला महती स्मृता।
हस्वा काश्मर्यमृद्वीका पसषक फलानि च ॥
—भैषज्यरत्नावली परिभाषा प्रकरण; श्लोक १५।

अशुस्या दीयनी सत्वा विषमज्वरनाशिनी ॥
— भावप्रकाश निघण्टु; हरीतक्यादि वर्ग श्लोक ४३।
त्रिफला पित्तकफहृद्रसायनवरा सरा।
रोपणी कुष्ठमेहास्र क्लेदमेदो विनाशनी ॥
चक्षुष्या दीपनी दक्ष, विषम ज्वरनाशनी।
—कैयदेव निघण्टु: औषधि वर्ग; श्लोक २३०।
त्रिफला कफपित्तहारी पित्तघ्नी महाकुष्ठ विनाशनी।
आयुष्यादीपनी मैव चक्षुस्या वणशोदिनी ॥
वर्णप्रदाचिनी वस्टा विषमज्वरनाशिनी।
दृष्टि प्रदा कण्डुहरा वमिगुल्मार्शनाशिनी ॥
सर्वरोगप्रशमनी मेधा स्मृतिकरा परा।
हारीत संहिता; कल्प स्थान; द्वतीय अध्याय।

योग

त्रिफलादि क्वाथ—त्रिफला, गिलोय, वामा किरात-निम्ब, कटुकी, निम्ब: सब समान भागमें लेकर कषाय बनाएँ।

मात्रा—एकसे चार औंस।

रोग—कामला, पाण्डु, रक्तपत्ति, अम्लपत्ति, त्वक् रोग, ज्वर, आदि।

त्रिफलादि चूर्ण—त्रिफला चार तोला, मुलैठी दो तोला, लोहभस्म एक तोला चूर्ण बनाएँ।

मात्रा—

रोग—पाण्डु, कामला, आर्शस्, नेत्र रोग, पलित रोगा।

अभयावटक—हरड़ बारह तोले, त्रिफला, सोंठ, मिरच, और पिप्पली प्रत्येक चार तोला, अजमोदा, सव्य-चिनक, वायविडङ्ग, अम्लवेत, सेंधा नमक और वच प्रत्येक दो तोला, दालचीनी तेजपत्र, इलायची प्रत्येक तीन तोला; सबका सूक्ष्म चूर्ण करें। १२० तोला गुड़ मिलाकर एक-एक तोले की गोली बनाएँ।

मात्रा—एक या दो गोली।

रोग—प्लीहोदर, अर्श, गुल्म, मन्दाग्नि, पाण्डु, कामला आदि।

कंस हरीतकी—दशमूल क्वाथ २ सेर ३२ तोला, हरड़ १००, गुड़ ५ सेर; अवलेह बनाएं। इसमें सोंठ, मिरच, पिप्पली, दालचीनी, इलायची और तेजपत्र प्रत्येक का एक तोला चूर्ण मिलाएं। शीतल होने पर हर तोला शहद और जरा सा यवक्षार मिला दें।

मात्रा तथा सेवन विधि—एक हरड़ खाकर एक तोला लेह चाट लें।

रोग—शोथ, कास, ज्वर, पाण्डु, अम्लपित्त, यकृत-प्लीहारोग।

दशमूल हरीतकी*—१९२ तोला दशमूल क्वाथमें सौ हरड़ पकाएं। गाढ़ा होने पर पाँच सेर गुड़, सोंठ, मरिच और पिप्पली सोलह तोला मिलाएं। शीतल होने पर दाल-चीनी, इलायची, तेजपत्र प्रत्येक का चूर्ण एक तोला और शहद बत्तीस तोला डाले।

मात्रा—एकसे दो तोला।

रोग—शोथ, उदर रोग, श्वास, पाण्डु आदि।

अभया वटी†—हरड़, मिरच, पिप्पली, शुद्ध सुहागा प्रत्येक दो तोला, जमालगोटेके शुद्ध बीज चार तोला: ठंडा थोहरके दूधमें घोंट कर एक रत्ती की गोलियाँ बनाएं।

मात्रा—तथा सेवन विधि—एक या आधी गोली एक हरड़के चूर्णके साथ गरम जल से लें। गरम जल से विरे-चन होगा ठंडा पानी पीनेसे विरेचन बन्द हो जायेंगे।

---

*दशमूली कषायस्य कंसे पथ्याशतं युगत्।
तुलां पचेद्घने दद्यात् क्षारात् चतुष्पलम् ॥
त्रिजातकं सुचूर्णं प्रस्थार्धं मधुना लिहेत्।
दशमूली हरीतक्या शोथं घ्नन्ति सुदुस्तरम् ॥
ज्वरारोजक गुल्मार्शोमेह पाण्डूदरामयान्।
श्वासकार्श्यामवाताऽम्लपित्तं वन्हेश्च मन्दताम् ॥
—बङ्गसेन संहिता; शोथाधिकार; श्लोक १८, १९, २०।

†अभयामरिचं कृष्णा रङ्कणश्च समांशकम्।
सर्वचूर्णसमञ्चैव दद्यात्कानकजं फलम् ॥
स्नुहीक्षीरैर्वटी कार्या यथा स्विन्नकलायवत्।
वटीद्वयं शिवायैकां पिष्ट्वा चोष्णाम्बुना पिबेत् ॥
उष्णाद्भिरेचयेदेषा शीते स्वास्थ्यमुपैति च।
जीर्णज्वरं पाण्डुरोगं प्लीहास्थीलोदराणि च।
रक्तपित्तमूलपित्तादि सर्वाजीर्णं विनाशयेत् ॥
— रसेंद्रसार संग्रह; गुल्म चिकित्सा; २२ से २४ तक

रोग—जीर्ण ज्वर, पाण्डु, प्लीहा, रक्तपित्त, अम्लपित्त अजीर्ण आदि।

त्रिफलादि क्षार*—हरड़, बहेड़ा, आँवला, अपराजिता, मध्य बिल्वगिरी, लोहभस्म कटुकी, मोथा, कुष्ठ, पाठा, हींग, मुलैठी।
मुष्कका क्षार, यवक्षार, सोंठ कालीमिरच, पिप्पली, वच, वायविडङ्ग, पिप्पलीमूल, सर्वक्षार, नीमकी छाल, चित्रक, मूर्वामूल, अजवायन, इन्द्र जौ गिलोय और देवदारु प्रत्येक १ तोला, सैन्धव, सौंचल, विड औद्भिद और सामुद्र प्रत्येक नमक आठ तोला, इन्हें दही, घी, तेलमें मिलाकर मंदाग्नि पर अन्तधूँम जलाये।

*त्रिफलां कश्मो भव्यं बिल्वमध्य मयोरजः।
रोहिणीं कटुकां मुस्तं कुष्ठं पाठां चहिङ्गु च॥
मधुकं मुष्ककयवक्षारौ त्रिकटुकं वचाम्।
विडङ्ग पिप्पलीमूलं स्वर्जिका निम्बचित्रकौ॥
मूर्वाजयोदेन्द्रयवान् गुडूचीं देवदारू च।
कार्षिक लवणाना च पञ्चानां पलिकान्पृथक्।
भागान्दधिन त्रिकुडवे घृततैलेन मूर्च्छितान्।
अन्तर्धूमं शनैर्दग्ध्वा तस्मात्पाणितलं पिबेत्॥
सर्पिषा कफवातोत्थेग्रहणीपाण्डु रोगवान्।
प्लीहमूत्रग्रह श्वासहिक्का कासक्रिमिज्वरान्॥
शोषातिसारौ श्वयथुं प्रमेहानाहहृद्ग्रहान्।
हन्यात्सर्वविषं चैव क्षारोऽग्निजननो वरः॥
जीर्णे रसैर्वा मधुकैरैरश्नीयाल्ल्ययसाऽपि वा।
—चरक; चिकित्सित स्थान; अध्याय २५; श्लोक १८८ से १९४ तक।

मात्रा—एकसे दो माशे तक।

रोग—कफ वातज अर्श, ग्रहणी, पाण्डु रोग, प्लीहा श्वास, कास, कृमि अग्निमान्ध आदि।

फलारिष्ट*—हरड़ और आँवले प्रत्येक १ सेर ४८ तोला, इन्द्रायण, कैथफलका गूदा, पाठी, चित्रक मूल प्रत्येक सोलह तोला, के यवकुट चूर्णको २ मन २२ सेर ३२ तोले पानीमें पकाएँ। एक चौथाई पानी बच जाने पर उतार कर छान लें और दस सेर गुड़ घोल दें। घृतसिक्त घड़ेमें पन्द्रह दिन तक रखा रहनेके बाद छानकर प्रयोग करें। चरक ने यद्यपि धातकी द्रव्यका पाट नहीं किया लेकिन ३२ तोला धायके फूल डाल देना चाहिये।

मात्रा—सवासे ढाई तोला तक।

रोग—ग्रहणी, अर्श, हृद्रोग, पाण्डु, कामला, प्लीहा मलबन्ध, अग्निमान्द्य, कास, वातरोध आदि।

* हरीतकी फलप्रस्थं प्रस्थयामलकस्य च॥
विशालाया दधित्थस्य पाठाचित्रकमूलयोः।
द्वे द्वे समापोथ्य हृद्रोणे साधयेदयाम॥
पादावशेषे पूते च रसे तस्मिन् प्रदापयेत।
गुडस्यैकां तुलां वैद्यस्यस्थास्यं घृतभाजने॥
पक्षस्थितं पिबेदनं ग्रहणयर्शोविकारवान्।
हृत्पाण्डुरोगं प्लीहानं कामलां विषमयज्वरम्॥
वर्चोमूत्रानिलकृतान्विबन्धानग्नियार्दवम्।
कासं गुल्ममुदावर्तं फलारिष्टो व्यापोहति॥
अग्निसन्दीपना ह्येष कृष्णात्रेयेण भाषितः।
—चरक; चिकित्सितस्थान; अर्शचिकित्सा; अध्याय १४; श्लोक १४८ से १५३ तक।

[शेष पृष्ठ ११३ पर]

घरेलू डाक्टर

[सम्पादक डा० जी० घोष, डा० गोरखप्रसाद आदि]

हँसली—यह हड्डी मांस-पेशियोंसे बहुत कम ढकी रहती है और साथ ही कमज़ोर भी होती है। इससे थोड़ी ही चोट लगनेसे टूट जाती है। गिरते हुये लोग जब हाथ फैला कर बचनेका प्रयत्न करते हैं तो हाथमें झटका लगता है जिससे प्रायः हँसली टूट जाती है। स्वस्थ शरीर में हँसली हीके सहारे हाथ टिका रहता है; इसलिए हँसलीके टूट जानेसे कंधा लटक जाता है। रोगी अपने स्वस्थ हाथसे टूटे ओरकी केहुनीको उठाये रहता है जिसमें कंधेपर अधिक ज़ोर न पड़ने पाये। हँसलीपर हाथ फेरनेसे टूटे भाग पर दरार मिलता है। कभी-कभी दोनों ओरकी हँसलियाँ साथ ही टूट जाती हैं। पहले बतलाई रीतिसे पट्टी बाँधनी चाहिए और हाथको झोलामें लटकाना चाहिए।

स्कंधास्थि (कन्धेकी वह चौड़ी हड्डी जो पीठकी ओर रहती है, scapula)—यह हड्डी बहुत कम टूटती है। टूटे तो कन्धेपर चौड़ी पट्टी बाँधो और टूटे ओरकी बाँहको झोलेमें लटकाये रक्खो।

बाँहकी हड्डीका टूटना—यदि हड्डी कन्धेके पास टूटे तो कपड़े या रूईकी गद्दी गोल गेंदके समान बनाकर टूटे ओरकी काँखमें रख दो और बाँह (केहुनीसे ऊपर रहने वाले अंग) को सीनेके साथ चौड़े पट्टोसे बाँध दो जिसमें बाँह हिल न सके। फिर अग्र बाहुको (केहुनीसे नीचे वाले अंगको) झोलेमें लटका दो।

यदि बाँहकी हड्डी बीचसे टूटे तो वहाँ खपची बाँधो और अग्रबाहुको झोलेमें लटका दो।

यदि हड्डी केहुनीके पास टूटे तो समकोण खपची बाँध कर झोलेमें अग्रबाहुको लटका दो। समकोण खपची बनानेके लिए दो खपचियोंको समकोण पर रखकर रूमाल या सुतलीसे बाँध देना चाहिये।
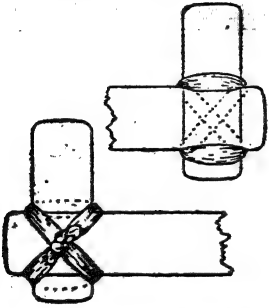
चित्र १—समकोण खपची। ऐसी खपची दो चौड़ी खपचियोंको रूमाल या सुतली से बाँधकर बनायी जाती है।

यदि अग्रबाहुकी हड्डी टूटे तो अग्रबाहुको दो चिपटी खपचियोंके बीचमें रखकर बाँध देनेके बाद उसे झोलेमें लटका देना चाहिये।

जाँघकी हड्डी—जाँघकी हड्डी टूटनेसे बहुत आघात (shock) होता है। वृद्धावस्थामें यह हड्डी अकसर ठोकर खाकर गिरनेसे टूट जाती है, परन्तु जवानीमें भारी बोझसे दबनेसे या बहुत चोट लगनेसे ही हड्डी टूटती है। इस हड्डीके टूटने पर रोगी खड़ा नहीं हो सकता। वह टूटे पैरको उठा भी नहीं सकता है। ऐसी दशामें काँखसे एँड़ी तक लम्बी खपची बगलमें बाँधनी चाहिये (चित्र २ देखो)। खपची पहले टूटे पैरमें बाँधी जाती है। फिर दूसरी टाँग भी टूटी टाँग और खपचीके साथ बाँध दी जाती है जिससे टूटा पैर जरा भी न हिले।

घुटनेकी हड्डी (knee-cap)—घुटनेकी हड्डीके टूटनेसे घुटना फूल जाता है और पैर न मोड़ा जा सकता है और न सीधा किया जा सकता है। टटोलने पर हड्डीमें
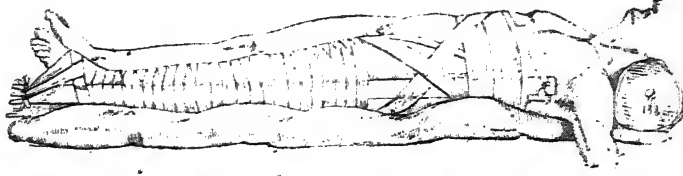
चित्र २—जाँघ टूटने पर काँखसे एँड़ी तक खपच्ची बाँधनी चाहिए।

दरार आसानीसे मालूम होगा, क्योंकि इस हड्डी पर मांस नहीं रहता है। हड्डी टूटने पर रोगीको चित लेटा कर पैर के नीचे ईंट रख देना चाहिये। फिर जाँघसे पैर तक लम्बी खपची पीछे (पृष्ठदेशीय भाग) की ओर लगा कर बाँध देनी चाहिये। फिर एक रूमालको घुटनेसे कुछ जाँघकी ओर हटकर इस प्रकार तिरछा बाँधना चाहिए कि तनाव घुटने की ओर रहे। इसी प्रकार एक दूसरा रूमाल घुटनेसे कुछ पैरकी ओर हटकर इस प्रकार तिरछा बाँधना चाहिए कि तनाव फिर घुटनेकी ओर रहे। इस प्रकार टूटी हड्डियाँ बहुत कुछ आस-पास आ जायँगी और उनके बीचमें बहुत सा जमा हुआ रक्त न बैठने पायेगा। ठंढी पट्टी या
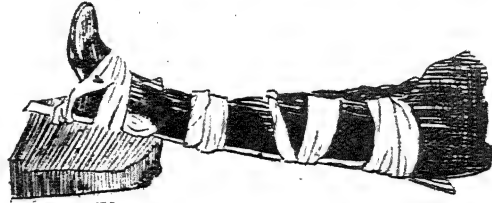
चित्र ३—घुटनेके लिए खपची।
घुटनेकी हड्डीके टूटने पर जाँघसे एँड़ी तक लंबी खपची बाँधनी चाहिए। घुटनेसे ऊपर और नीचे रूमालोंको इस प्रकार तिरछा बाँधना चाहिए कि टूटी हड्डियाँ यथासंभव सट जावँ।

बरफकी थैली (न हो तो कपड़ेमें बरफ लपेट कर) घुटने पर रखनेसे गुमटा बहुत कड़ा नहीं बनने पायेगा।

टाँगकी हड्डी—टाँगकी हड्डी टूटने पर तीन खपचियाँ चाहिए। एक-एक बगलमें एक-एक खपची और पीछेकी तीसरी खपची रक्खो। जहाँ पैर पतला पड़ता है वहाँ रुई

या कपड़ेकी गद्दी लगा दो और कसकर तीनों खपचियोंको एक साथ ही बाँध दो।

पाँवकी हड्डी —पाँवकी हड्डियोंके टूटने पर चिपटी खपची पाँवके नीचे रखकर बाँधनी चाहिये (चित्र ४ देखो)। यदि समकोण वाली विशेष खपची बन सके तो और भी अच्छा होगा।

चित्र ४ पाँवकी खपची। पाँवकी हड्डी टूटने पर तलवे पर खपची बाँधनी चाहिए।

जाँघ और टाँगकी हड्डियोंके टूटने पर यदि कोई दूसरा उपाय न हो सके तो घायल टाँग या जाँघको स्वस्थ टाँग या जाँघके साथ बाँध देना चाहिए। इस प्रकार स्वस्थ पैर ही खपचीका काम करता है।

अस्थिभंगकी चिकित्सा—ऊपर विविध अस्थिभंगों के लिए केवल प्राथमिक चिकित्सा बतलाई गयी है जिसमें पता चलता है कि डाक्टरके आने तक क्या करना चाहिए। डाक्टर क्या करेगा यह जान लेना भी अच्छा होगा। वह टूटी अस्थियोंको यथासंभव ठीक स्थानमें लाकर खपची बाँध देगा। अस्थियोंको ठीक स्थानमें लानेके लिये वह कभी कभी एक्स-रश्मि (X-rays) की सहायता लेता है जिससे हड्डियाँ स्पष्ट दिखलाई पड़ती हैं। टूटी हड्डियाँ सटी रहने पर कुछ सप्ताहमें आप-से-आप जुट जाती हैं। डाक्टर अकसर खपचीके बदले प्लैस्टर आफ पेरिस (Plaster of Paris) सान कर पट्टीके साथ छोप देते हैं। कुछ घंटोंमें प्लैस्टर जम कर पत्थरकी तरह कड़ा हो जाता है। इससे टूटी हड्डियाँ और भी गति शून्य हो जाती हैं। पैर और हाथकी मांसपेशियाँ इतनी मज़बूत होती हैं कि वे टूटी हड्डियोंको ज़ोरसे दबा लेती हैं और इसलिए यदि कोई उपाय न किया तो वह अंग हड्डी के जुटनेके बाद कुछ छोटा पड़ जाता है। इससे बचनेके लिए डाक्टर लोग अकसर टूटे अंगमें रस्सी बाँध कर उस रस्सीमें भारी बोझ बाँध देते हैं और गराड़ी (पुली) परसे लटका देते हैं जिसमें रस्सी टूटे अंगको ताने रहे।

किसी-किसी स्थानमें केवल खपची बाँधनेसे काम नहीं चलता। वहाँ चाँदीके तारसे हड्डी सी देते हैं या बाँध देते हैं; या पीतलका पत्र डालकर हड्डी और पीतलमें
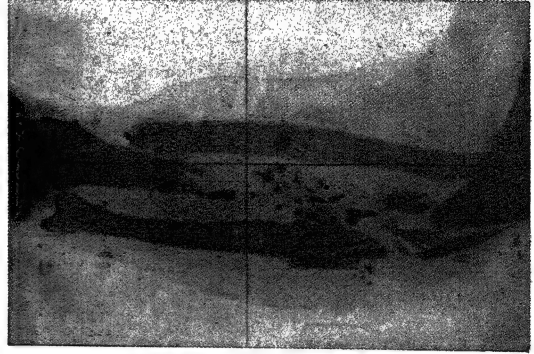
चित्र ५—टूटी हड्डियोंका एक्स-रश्मि चित्र। एक्सरश्मियाँ मांसके भीतर घुस सकती हैं। इस लिए इन रश्मियोंसे भीतरकी हड्डियाँ देखी जा सकती हैं। ऊपरका चित्र एक्स-रश्मियोंसे लिया गया फोटो है। हड्डियाँ चूर-चूर हो गई हैं। चोट गोलीसे लगी थी।

बरमीसे छेद कर कीलसे जड़ देते हैं; या दो हड्डियोंको लोहेके दोमुँहे कीलसे जोड़ देते हैं। बड़े-बड़े अस्पतालोंमें रोगीकी टाँगसे पतली हड्डी काटकर उसीको टूटी हड्डियों के बीच पहना देते हैं (टाँगमें दो हड्डियाँ होती हैं, एक मोटी, एक पतली। पतली हड्डीमेंसे एक टुकड़ा काट लेने से विशेष हानि नहीं होती।)

अस्थिभंगके साथ यदि त्वचा भी फट जाती है तो उसकी भी उचित चिकित्सा करनी पड़ती है।

हड्डीकी मोटाईके अनुसार तीनसे छः सप्ताहके बाद खपची खोल दी जाती है। उसके बाद बहुत सँभाल कर अंगको हिलने देना चाहिए। उस अंगमें सुबह-शाम सँभाल कर मालिश भी करनी चाहिए।

कुछ लोग, जो शरीर-रचना ठीक नहीं जानते, हड्डी जोड़नेका काम करते हैं और अकसर उनका बहुत नाम रहता है। परन्तु उनसे कभी-कभी बड़ी भद्दी भूलें भी हो

जाती हैं। जैसे, हाथमें दो हड्डियाँ होती हैं और कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि एक हड्डीका टुकड़ा दूसरी हड्डीके टुकड़ेमें जुट जाता है। ऐसा हो जाने पर हाथको रोगी भी घुमा या ऐंठ नहीं सकता। कभी टूटी हड्डियोंके चारों सिरे एकमें जुट जाते हैं या दो सिरे जुटते हैं और दो अलग ही रह जाते हैं। और भी कई प्रकारकी गलतियाँ हो जाती हैं। यदि कोई गलती न भी हुई तो अकसर संधि पर बड़ी-सी गाँठ बन जाती है। इसलिए यथासंभव हड्डी के जोड़नेका काम किसी विशेषज्ञसे या बड़े अस्पतालमें जहाँ एक्स-रश्मि यंत्र हो, कराना चाहिए। (उमाशंकर प्रसाद)।

उखड़ना या संधिभङ्ग (dislocation)—यदि शरीरकी किसी संधिकी अस्थियोंमेंसे एक अपने प्राकृतिक स्थानसे हट जाय या पृथक हो जाय तो कहा जाता है कि वह अंग उखड़ गया। इसीको संधि-भंग भी कहते हैं।

संधिभङ्गके तीन कारण हैं :—

(१) चोट या झटका लगना। यही मुख्य कारण है।

(२) संधि-रोग। संधिके अस्थि या बंधनमें किसी प्रकारके रोग होनेसे भी संधि-भङ्ग हो जाता है।

(३) जन्म-कालके विकार, अर्थात् संभव है जन्मसे ही हड्डी उखड़ी हो या उचित आकार की न बनी हो, या बन्धनियाँ ठीक न बनी हों। ऐसा बहुत विरला होता है।

चोट लगनेसे संधिभङ्ग—संधियों पर दूरसे ज़ोर पड़ने या झटका लगने पर (indirect violence के कारण) संधिभङ्ग हो जाता है। ऐसा साधारणतः उन संधियोंमें होता है जिसके स्थानमें मांसपेशियाँ ही अधिक होती हैं। उदाहरणतः कंधेकी संधि इसी प्रकारकी संधि है। कमर (hip joint) झुकी हालतमें पीठपर चोट लगनेसे उखड़ जा सकती है। ठीक संधिके ऊपर चोट लगने या ज़ोर पड़नेसे (direct violence से) संधिभङ्ग बहुत कम होता है। ऐसा भङ्ग घुटनेमें (knee) कभी-कभी हो जाता है। यदा-कदा मांसपेशियोंके खिचाव ही से संधि-भङ्ग हो जाता है, जैसे मुँह फैलाकर दाँतसे कड़ी वस्तुको तोड़ते वक्त, या बूढ़ोंमें ज़ोरसे जँभाई लेते वक्त, जबड़ेकी संधि उखड़ जाती है।

संधिभंग हो जाने पर मांसपेशियोंके संकोचसे टूटी अस्थियाँ अकसर एक पर एक चढ़ जाती हैं। बच्चोंमें अस्थि-भङ्ग बहुत कम होता है, क्योंकि उनमें अस्थियोंके बढ़ने वाले सिरे कमज़ोर होनेके कारण चोट लगने पर वे ही टूट जाते हैं। इसी प्रकार वृद्धोंमें अस्थियाँ स्वयं बहुत कमज़ोर हो जाती हैं जिससे चोट या झटका लगने पर हड्डी ही टूट जाती है। संधि-भङ्ग प्रायः जवानोंमें मिलता है।

संधि रोगसे भी संधिभङ्ग हो जाता है। यदि किसी संधिमें मवाद पड़ जाय या क्षय रोग हो जाय तो आस-पास के बन्धन निर्बल हो जायँगे, अस्थियाँ गलकर छोटी हो जायँगी। इसलिये मांसपेशियोंके थोड़ा ही खिंचनेसे अस्थियाँ अपने स्थानसे हट जायँगी।

संधिभङ्गके साथ-साथ यदि अन्य किसी प्रकारका कोई चोट न हो तो वह "साधारण संधिभङ्ग" कहलाता है, परन्तु कभी-कभी गहरी चोट या जबरदस्त झटका लगनेसे हड्डी चमड़ेको फाड़कर बाहर निकल आती है। यह दशा बहुत भयानक है, क्योंकि तब संधिके भीतर सरलतासे बाहरी कीटाणु प्रवेश कर सकते हैं। ऐसे संधिभंगको संयुक्त संधि-भंग (compound dislocation) कहते हैं। कभी-कभी संधि-भङ्गके साथ ही संधिके पासकी हड्डी या हड्डियाँ टूट भी जाती हैं। संधि-भङ्ग ताज़ा या पुरातन हो सकता है, और सन्धिभङ्गमें धमनियों, शिराओं तथा नाड़ीको भी चोट पहुँच सकता है। तब इसे विषम संधि-भङ्ग (complicated dislocation) कहते हैं।

संधि-भङ्गके लक्षण—(१) कुरूपता (deformity) देखनेमें तथा हाथसे टटोलने पर सन्धि अपनी प्राकृतिक अवस्थासे भिन्न आकारकी जान पड़ेगी। सूक्ष्म नाप द्वारा यह भी ज्ञात होगा कि अङ्ग लम्बा या छोटा हो गया है और उसका घेरा बढ़ गया है। साथ ही सन्धि कुछ असाधारण दिशाओंमें भी मोड़ी जा सकेगी।

(२) सन्धिमें अपना काम करनेकी शक्ति न रहेगी (loss of function)।

(३) सन्धि और आस-पासके अङ्ग फूल आयेंगे, क्योंकि वहाँकी शिराओंके दब जानेसे रक्त वापस नहीं जा सकता है। कुछ समयके पश्चात् चमड़ेका रंग भी बदल जायगा क्योंकि त्वचाकी छोटी धमनियोंमें चोट लगनेसे रक्त-स्राव

होने लगेगा। यह पहले रक्तवर्ण होगा और कुछ समय बाद नीला हो जायगा।

(४) पीड़ा—पीड़ा स्थानीय भी होती है तथा दूरके स्थानोंमें भी वर्तमान रह सकती है। सूजन आ जानेसे

चित्र ६—संधिभंग या उखड़ना।
अंगूठेकी हड्डी उखड़ गई है। उखड़ी हुई संधि चित्रमें तीरसे सूचितकी गई है। यह एक्स-रश्मियोंसे लिया गया फोटो है।

नाड़ियों पर दबाव पड़ता है जिससे बहुत पीड़ा होती है। यदि धमनियों पर बहुत दबाव पड़े तो नीचेका अंग संज्ञा-शून्य भी हो जा सकता है।

सन्धिमें अप्राकृतिक रुकावट आ जायगी जिससे सन्धि पूर्णतः नहीं मोड़ी जा सकेगी, क्योंकि अस्थियाँ आपसमें फँसने लगेंगी। मोड़नेमें कभी-कभी हड्डियोंकी रगड़से खसखसाहटका भी अनुभव होता है।

संधि-भङ्गकी चिकित्सा--सन्धि-भङ्ग हो जाने पर सन्धिका बैठाना प्रायः सरल नहीं होता है, क्योंकि अस्थियाँ हट गई रहती हैं और मांसपेशियाँ अब अस्थियोंको अप्राकृतिक दिशामें खींचती हैं। पर यदि सन्धि ठीक-ठीक बैठा दी जाय तो केवल कुछ सन्धियोंको छोड़कर अन्य सन्धियोंमें दोबारा सन्धि-भंग होनेका विशेष डर नहीं रहता है। यह अवश्य सत्य है कि जो सन्धि एक बार भंग हो चुकी है पहले की भाँति ताकत फिर नहीं दृढ़ रहेगी; उस सन्धिमें कुछ निर्बलता आ ही जाती है। समय तक थोड़ी-बहुत पीड़ा भी रहती है और कुछ कड़ापन (stiffness) भी आ जाता है।

यदि सन्धि-भङ्गके बाद सन्धि बैठाई न जाय तो सन्धिकी कटोरी कुछ दिनोंमें छिछली हो जायगी। वहाँ की उपास्थि सौत्रिक तन्तुमें (fibrous tissue) परिवर्तित हो जायगा और सन्धिकी कटोरीको भर देगा। बन्धन तथा झिल्लीके फटे हिस्से आपसमें मिलकर एक हो जायेंगे जिससे सन्धि परसे अंग मुड़ेंगे नहीं। काममें न आनेसे मांसपेशियाँ कमज़ोर हो जायँगी। कभी-कभी झूठी सन्धि भी बन जायगी जो शायद पहलेकी भाँति सन्धिकी पूर्ति करे।

सन्धि-भङ्ग होने पर डाक्टरको शीघ्र ही बुलवाना चाहिये। वह आवश्यकता पड़ने पर एक्स-रश्मिकी सहायतासे और क्लोरोफार्मसे बेहोश करके, सन्धि बैठाकर उचित रीतिसे उपचार करेगा। जब तक डाक्टर पहुँचे, तात्कालिक चिकित्सा करनी चाहिये। वह यह है कि उखड़े सन्धि पर ज़ोर न पड़े, या सन्धिसे नीचे वाला अंग लटक कर या अन्य भाँति और अधिक हानि न उत्पन्न कर दे। घायल स्थान पर ठंढी पट्टी रखनी चाहिये जिससे दर्द और सूजन न बढ़े। रोगीको डाक्टर या अस्पताल तक ले जाना हो तो उसे चारपाई पर लेटाकर ले जाना चाहिये, परन्तु चारों ओर इस प्रकार तकिया लगा देना चाहिये कि रास्तेमें उखड़े सन्धि पर झटका न लगे या ज़ोर न पड़े। आघातका उपचार करना चाहिये। अनाड़ीको उखड़ी सन्धिको बैठानेकी चेष्टा न करनी चाहिये, क्योंकि इससे लाभके बदले हानि ही होनेकी अधिक संभावना है।

जब जोड़ बैठ जाय तो दस-बारह दिन तक उस सन्धि पर ज़रा-सा भी ज़ोर नहीं पड़ने देना चाहिए। कन्धेका जोड़ उखड़ा हो तो हाथको बराबर झोलेमें रखना चाहिए। बूढ़े आदमियोंको उखड़े जोड़के बैठा दिये जानेपर महीने सवा महीने तक उस जोड़को प्रायः स्थिर रखना चाहिए। फिर सन्धिको धीरे-धीरे काममें लाना चाहिए और कुछ सप्ताह तक मालिश करानी चाहिए।

—उमाशङ्कर प्रसाद

उठाना, असहायको—कभी-कभी मूर्छित या घायल व्यक्तिको तुरन्त उठा कर सुरक्षित स्थानमें ले जाना आवश्यक हो जाता है, जैसे आग लगने पर। अकसर घायल

व्यक्तिको इसलिए हटाना आवश्यक हो जाता है कि उस स्थान पर धूप, वर्षा, शीत आदिसे बचानेका उपाय नहीं किया जा सकता, या वहाँ डाक्टर या अन्य किसी प्रकारकी सहायताके पहुँचनेकी संभावना नहीं रहती। यदि अन्य व्यक्ति सहायताके लिये मिल जायँ और स्ट्रेचर, या चारपाईका प्रबन्ध हो सके तब तो रोगीको पहले बतलाई गई रीतिसे उठाया जा सकता है, परन्तु कभी-कभी ऐसा भी हो सकता है कि अन्य कोई सहायता न मिले। इसलिए प्रत्येक व्यक्तिको जानना चाहिये कि ऐसी परिस्थितियोंमें क्या करना चाहिए। नीचे असहाय व्यक्ति को उठाकर अन्यत्र ले जानेकी कुछ रीतियाँ दी जाती हैं।

यदि अकेले ही रोगीको उठाना हो और उसे गोदमें उठा लेनेकी शक्ति हो तो बच्चोंकी तरह रोगीको दोनों हाथों पर उठा लेना सर्वोत्तम होगा। अपना एक हाथ रोगीकी पीठके नीचे और एक घुटनेके नीचे रखना चाहिए।

यदि रोगी बहुत भारी हो, या उसमें इतना होश हो कि वह सहारा देने पर चल सके तो उसकी बग़लमें उससे सट कर खड़े हो जाओ। उसकी कमरके पीछेसे हाथ ले जाकर उसे कमरके पास पकड़ लो। रोगीके समीप वाले हाथको अपनी गरदन परसे ले आकर अपने दूसरे हाथसे पकड़ लो। इस प्रकार रोगीको अच्छा सहारा मिल सकेगा।

आग बुझाने वालोंकी रीति—नीचे एक ऐसी रीति दी जाती है जिससे उठाने वालोंका एक हाथ खाली रह जाता है। इसलिये यह रीति कभी-कभी बहुत उपयोगी सिद्ध होती है, विशेषकर जब मूर्छित व्यक्तिको उठाकर सीढ़ी पर चढ़ना या उतरना रहता है। इसे अँग्रेज़ीमें फ़ायरमैन्स लिफ़्ट (fireman's lift) कहते हैं। असहाय व्यक्तिको पृथ्वीपर लेटा देते हैं (उसकी छाती पृथ्वीकी ओर हो)। तब सहायक सिरकी ओर खड़ा होकर अपने दोनों हाथोंसे असहायको उठाकर अपने कंधे पर लाद लेता है। इसके लिये सहायकको पहले झुकना पड़ता है। रोगीको कंधेपर रख कर सहायकको धीरे-धीरे उठाना चाहिये। यदि रोगीको अपने दाहिने कंधे पर उठाया जाय तो अपने दाहिने हाथको उसके जाँघोंपर से लाकर उसका दाहिना हाथ पकड़ लेना चाहिए। रोगीका दाहिना हाथ सहायकके बायें कंधेपरसे आये, जैसा चित्रमें दिखलाया गया है, जिससे रोगीके सरक कर गिरने का कोई डर न रहे।

इसके बदले रोगीको पीठ पर लादकर भी ले जाना संभव है। विशेषकर यदि रोगी अपने हाथोंसे सहायकको

चित्र ७—असहायको कंधे पर लादा जा सकता है।

पकड़ सके तो यह रीति पहले बतलाई गई रीतिसे अच्छी है।

यदि दो सहायक हों—यदि दो सहायक हों और स्ट्रेचर, चारपाई या पालकीका प्रबन्ध न हो सके तो रोगीको उठानेके लिए सहायक लोग रोगीके अगल-बगल खड़े हो जायँ। वे स्वयं एक दूसरेके आमने-सामने खड़े हों और रोगीके नीचेसे हाथ डालकर प्रत्येक सहायक अपने-अपने दाहिने हाथसे दूसरे सहायककी बाईं कलाई पकड़ ले। प्रत्येक सहायकका एक हाथ रोगीकी पीठके नीचे रहेगा। रोगीकी पीठके नीचे हाथ डालनेके लिए आरंभमें दूसरे हाथसे प्रत्येक सहायक रोगीके कंधेको ज़रा-सा ऊपर उठा सकता है। जब

रोगीकी पीठके नीचे सहायकोंके हाथ एक दूसरेमें मज़बूतीसे बँध जायँ तो सहायक अपने खाली हाथोंको रोगीकी जाँघके नीचे डालें और एक सहायक अपने दाहिने हाथसे दूसरेकी बाईं कलाईको मज़बूतीसे पकड़ ले। अब रोगी आसानीसे उठाया जा सकता है। सहायकोंको बहुत सँभल-सँभल कर चलना चाहिए (चित्र ८ देखो)। इसके बदले ऐसा भी किया
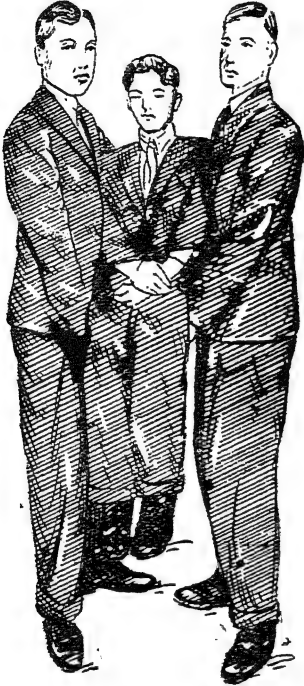
चित्र ८—असहायको दो व्यक्ति अपने हाथों पर उठा सकते हैं।

जा सकता है कि एक सहायक अपने बायें हाथको रोगीके कमरके नीचेसे ले जाकर दूसरे सहायकका बायाँ हाथ पकड़े। फिर एक सहायक अपने खाली (दाहिने) हाथसे रोगीके कंधे और सिरको सँभाले; दूसरा सहायक रोगीके जाँघको सँभाले।

हाथोंकी चौकी—यदि रोगीको होश हो और उसके हाथ बेकाम न हुए हों तो दो सहायक अपने हाथोंको चित्र में दिखलाई रीतिसे पकड़ लें। रोगी पैर लटका कर इस पर बैठ जाय और सहायकोंके गलोंमें हाथ डालकर उनको पकड़ ले। इसके लिए अवश्य ही सहायकोंको झुकना पड़ेगा। अब सहायक खड़े हो सकते हैं और रोगीको इच्छित स्थान पर ले जा सकते हैं।

स्ट्रेचर—चारपाई या पालकीकी अपेक्षा स्ट्रेचरमें यह

चित्र ९—हाथोंकी चौकी। दो व्यक्ति इस प्रकारसे अपने हाथोंको पकड़ कर और उसपर असहायको बैठाकर ले जासकते हैं।

सुविधा रहती है कि स्ट्रेचर ज़मीनसे दो चार ही इंच ऊँचा होता है। इसके नीचे पहिये भी लगे रहते हैं (देखो १० चित्र)। इसलिए रोगीको ज़रा-सा उठाकर उसके नीचे स्ट्रेचर खिसका देना आसान होता है। रोगीको उठानेके लिए दो

चित्र १०—स्ट्रेचर। इसपर लेटा कर असहायको जहाँ चाहें ले जा सकते हैं।

सहायक एक बगल और दो दूसरी बगल खड़े हों। पाँचवाँ व्यक्ति स्ट्रेचर खिसकानेके लिये रहे। यदि इतने सहायक न मिलें तो तीनसे ही काम चल सकता है। चारपाईकी अपेक्षा स्ट्रेचर हलका भी होता है।

ऐंठन, तैरते समय—ठंढे पानीमें बहुत देर तक रहने पर कभी-कभी हाथ या पैर अचानक ऐंठ जाता है और तैरने वाला डूबने लगता है। ऐसी दशामें घबड़ानेसे तैरने वाला अवश्य ही डूब जायगा। परन्तु यदि वह घबड़ाये नहीं तो ऐंठे हाथ या पैरको दूसरे हाथ या पैरसे वह रगड़ सकता है और साथ ही केवल पैर या हाथके बल धीरे-धीरे तैर भी सकता है।

यदि कोई दूसरा तैरने वाला साथ हो तो वह ऐंठे अंग वाले व्यक्तिको सहारा दे सकता है। सहारा देनेकी रीति किसी अच्छी पुस्तकसे या उस्तादसे सीखनी चाहिए। अन्यथा संभव है कि डूबता व्यक्ति सहायता देने वालेको इस प्रकार पकड़ ले कि दोनों डूब जायँ।

ऐंठन अकसर आप-से-आप ही एक दो मिनटमें मिट जाती है। इसलिए यदि रोगी घबड़ाये नहीं तो स्वयं ही बच सकता है।

कचक (bruise) — जब शरीरके किसी अंगमें इतने ज़ोरसे चोट लगती है कि त्वचाके नीचेकी तन्तुएँ आहत हो जाती हैं, परन्तु त्वचा नहीं कटती है तो उस चोटको कचक कहते हैं। चोटके स्थानका चमड़ा अकसर नीला पड़ जाता है। ऐसी चोट मोटी वस्तुओंसे लगती है जैसे घूँसा, लाठी इत्यादिसे, या कुचल जानेसे लगती है। त्वचा तो नहीं कटती लेकिन त्वचाके नीचेकी कोमल तन्तु टूट जाती है और शिराओंसे (बहुत बारीक रक्त-धमनियोंसे) थोड़ा-बहुत रक्त-स्राव होता है। इस कारण वहाँ कुछ फूल आता है। कुछ समयमें वहाँकी त्वचा नीली पड़ जाती है। जैसे-जैसे जमे हुए रक्तका शोषण (absorption) होता है वैसे-वैसे त्वचाका रङ्ग भी बदलने लगता है। त्वचा पहले गाढ़ी नीली, फिर भूरी, तब कुछ हरी और अन्तमें पीली होकर साधारण रङ्गकी हो जाती है।

यदि कोई बड़ी धमनी फट जाय तो उस स्थान पर बहुत अधिक रक्त इकट्ठा हो जायगा और त्वचा बहुत फूल आयेगी जिसे गुमटी पड़ना कहते हैं। छूनेसे यह पिलपिला मालूम होगा। इसके पचकनेमें कई दिन लग सकता है। गुमटेके भीतरका रक्त तरल भी रह सकता या सूख भी जा सकता है। इस गुमटेमें यदि कीटाणु किसी प्रकार प्रवेश कर जायँ तो वहाँका एकत्रित रक्त उनके लिये बहुत पौष्टिक खाद्य होगा। इसलिए वहाँ कीटाणु बहुत जल्द बढ़ेंगे और उनका विष सारे शरीरमें फैल सकता है। पलक, अंडकोष आदि स्थानोंकी त्वचा बहुत ढीली होती है। इससे इन स्थानोंमें थोड़ी-सी चोट लगनेसे बहुत फूल आता है। ललाट तथा गालकी त्वचा बहुत कसी होती है इससे यहाँ फूलता तो कम है परन्तु दर्द अधिक होता है। कभी-कभी कचक लगनेसे मांसपेशियोंकी झिल्लियोंके नीचे रक्त-स्राव होता है। तब त्वचाके नीला होने और फूलनेमें कुछ दिन लग जाता है, तथा कचक लगे स्थानसे दूर पर त्वचा फूलती है, क्योंकि रक्तस्रावके कारण निकला रक्त त्वचा तक पहुँचते कुछ दूर तक बह जाती है।

कचकका उपचार यह है कि उस अंगको हिलाये-डुलाए नहीं, उस अंगको पूर्ण विश्राम दे। कचक लगे स्थान पर ठंढे पानीसे तर कपड़ेकी गद्दी दबाकर रखना चाहिये। ठंढक से धमनियाँ सिकुड़ जाती हैं और रक्त-स्राव बन्द या कम हो जाता है। मिल सके तो कचक पर बरफ की थैली या बरफ रखना चाहिए। परन्तु यदि कचक लगे देर हो गया हो और रक्त धमनियोंके बाहर निकल कर त्वचाके नीचे जम चुका है तो ऊपरका उपचार व्यर्थ है, व्यर्थ हो नहीं, हानिकारक भी होगा।

धीरे-धीरे मालिश करना या सेंक करना चाहिये, जिससे संचित रक्तका शोषण हो जाय और दर्द न हो। यदि बहुत बड़ा गुमटा बन जाय और पीड़ा बहुत हो तो डाक्टरको दिखाना चाहिए। कभी-कभी चीर कर भीतरका संचित रक्त निकालना आवश्यक हो जाता है, क्योंकि यदि ऐसा न किया जाय तो गुमटेके पक जानेका डर रहता है।

कटना और ताज़े घाव (सद्यव्रण)— जब चोट लगनेसे त्वचा भी फट या कट जाय तो उपचारकी चेष्टा यह होनी चाहिये कि घाव पके नहीं। यदि घाव गहरा न हो तो कटे स्थान पर टिंकचर आयोडीन लगा देना काफी होगा। इसके सूख जाने पर शुद्ध (कीटाणुरहित) कपड़े और रूईसे रखकर पट्टी बाँध देनी चाहिये। टिंकचर आयो-डीन लगानेसे पकनेका डर नहीं रहता। टिंकचर आयोडीन से भीगा कपड़ा कभी नहीं बाँधना चाहिये, अन्यथा घाव पर छाला बन जायगा जिससे कष्ट होगा और पकनेका डर भी रहेगा।

यदि गहरा घाव हो जाय या अधिक कट जाय तो दो बातों पर ध्यान रखना चाहिये।

(१) रक्त रोकना तथा (२) घावपर पट्टी बाँधना। रक्त रोकनेके लिये स्वच्छ अँगुलीसे कटे स्थानको कुछ समय तक दबाये रहना चाहिए, या कटे स्थानको हृदयसे ऊँचा उठाये रहना चाहिए, या कटे स्थान पर रक्त लाने वाली धमनीको दबाना चाहिए। इतने हीसे साधारणतः रक्तका

बहना रुक जायगा। कसकर पट्टी भी बाँधनेसे रक्त रुक सकेगा। पूरे विवरणके लिए नीचे रक्तस्राव शीर्षक खंड देखो।

यदि डाक्टर तुरंत न आ सके तो कटे स्थानको स्वच्छ उबाले हुये कुनकुना पानीसे धोना चाहिए। पानीमें बोरिक ऐसिड डाल दिया जाय तो अच्छा होगा (पाव भर पानीमें दो चायके चम्मच भर बोरिक ऐसिड रहे)। बोरिक ऐसिडसे ऐक्रिफ्लेविन (acriflavin) बहुत अच्छा होगा। एक हजार भाग पानीमें केवल एक या दो भाग ऐक्रिफ्लेविन डालना चाहिये। फिर उपरोक्त बोरिक लोशन या ऐक्रिफ्लेविन लोशनमें गाज (gauze) डुबा कर और निचोड़ कर घाव पर रखना चाहिए। गाज घावको पूर्णतया ढक ले। ऊपर से रुई रखकर पट्टी बाँध देनी चाहिए। घावका उपचार करनेके पहले स्वयं अपने हाथोंको साबुन और स्वच्छ पानीसे धो लेना चाहिये। फिर हाथोंको ऐक्रिफ्लेविन या अन्य कीटाणुनाशक घोलसे धो लेना चाहिये और हाथों को बिना कपड़ेसे पोंछे ही काम करना चाहिये।

घावको यथासंभव शीघ्र डाक्टरको दिखाना चाहिए क्योंकि यदि घावमें मिट्टी या अन्य बाह्य पदार्थ हों तो उन्हें और कुचले तथा मरे तंतुओंको निकाल देना आवश्यक होता है। चोटोंमें मिट्टी लग जानेसे टिटैनस (tetanus) नामक भयंकर रोग होनेका डर रहता है। इसलिए संभव है डाक्टर टिटैनस ऐंटीटॉक्सिनका इंजेकशन देना उचित समझे। गहरे घावोंमें टांका लगानेकी भी आवश्यकता रहती है।

कृत्रिम श्वास—कभी-कभी किसी दुर्घटनाके कारण साँसका चलना बंद हो जाता है, परन्तु हृदयमें कोई रोग या चोट नहीं लगी रहती और यदि एक बार फिर साँस का चलना किसी प्रकार आरंभ करा दिया जाय तो वह व्यक्ति फिर सँभल जाता है तथा मरनेसे बच जाता है। यह ठीक उसी प्रकार है जैसे किसी अच्छी और चाभी भरी

चित्र ११—कृत्रिम श्वास चलानेका प्रथम पद। अभी पीठपर भार नहीं डाला गया है; अगले चित्रसे तुलना कीजिए।
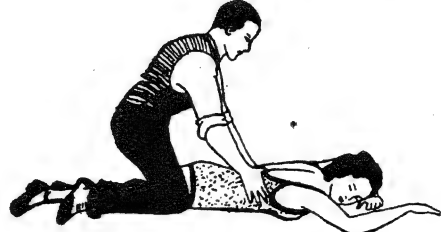
चित्र १२—कृत्रिम श्वास चलानेका द्वितीय पद। पीठपर भरपूर दबाव डाला जाता है।

हुई घड़ीका लंगर किसी प्रकार रुक जाय तो घड़ी रुकी ही रह जायगी, परन्तु यदि एक बार लंगर चला दिया जाय तो घड़ी फिर चलने लगेगी। डूबने पर या बिजलीके मार देने पर या अन्य कुछ दुर्घटनाओंमें ऐसा अकसर होता है कि साँस रुक जाती है, परन्तु साँसके रुक जानेके कुछ समय बाद तक हृदय चलता (धड़कता) रहता है। यदि हृदयकी गतिके रुकनेके पहले ही कृत्रिम रीतिसे साँस चलना आरंभ करा दिया जाय तो अकसर हृदयकी गति बनी ही रह जाती है और साँस भी आपसे आप चलने लगती है। इसलिए यह नितांत आवश्यक है कि प्रत्येक युवा व्यक्ति जाने कि कृत्रिम श्वास किस प्रकार चालू की जाती है। संभव है वह अपने ज्ञानके कारण किसी समय किसी की जान बचा सके। कृत्रिम श्वासका गुर यही है कि ऐसा किया जाय कि रोगीके भीतर हवा प्रायः उसी प्रकार जाय और बाहर निकले जिस प्रकार स्वस्थ दशामें ऐसा होता है। इसकी कई एक रीतियाँ हैं।

शेफरकी रीति—साधारणतः अब शेफरकी रीतिका ही प्रयोग किया जाता है। यह विधि सरल भी है, परन्तु किसी स्वस्थ व्यक्ति पर पहले इसका अभ्यास करके इसे अच्छी तरह सीख लेना चाहिए। एक बार आजाने पर पीछे जब कभी आवश्यकता पड़ेगी इस रीतिका प्रयोग आसानीसे जा सकता है, क्योंकि इसमें कोई ऐसी बारीकी नहीं है कि इसका बराबर अभ्यास करनेकी आवश्यकता हो।

[शेष पृष्ठ १०४ के आगे का]

त्रिफला

फलत्रिकाद्यरिष्ट ※—त्रिफला, चित्रक, पिप्पली, अजवायन, लौहभस्म, बायविडङ्ग, प्रत्येकका चूर्ण ३२ तोला मधु १२८ तोला, जल १ मन ११ सेर १६ तोला, १० सेर पुराने गुड़को घृत भावित पात्रमें डालकर मुख बन्द करें और यवराशिमें रक्खें।

मात्रा—एकसे ढाई तोला।

रोग—हृद्रोग, पाण्डुरोग, प्लीहा आदिके कारण होने वाली शोथ, गुल्म आदि।

अभयारिष्ट (१) †—हरड़ ६५ तोला, आँवले १२८ तोला, कैथकी मज्जा १ सेर, इन्द्रायण ½ सेर, वायविडङ्ग पिप्पली, लोध, काली मिरच, एल्वालुक प्रत्येक १६ तोला इन सबको ५ मन ४ सेर ६४ तोले जलमें पकाएँ। १ मन ११ सेर १६ तोले शेष रह जाने पर २० सेर गुड़ घोल कर घृत स्निग्ध घड़ेमें बन्द कर दें। १५ दिन बन्द कर निकाल लें और छानकर बोतलोंमें भर दें।

मात्रा—सवासे ढाई तोला।

रोग—ग्रहणी, पाण्डु, तिल्ली, कृमि अर्श, कृमि ज्वर राजयक्ष्मा आदि।

अभयारिष्ट (२) ‡—हरड़ १० सेर, मुनक्का ५ सेर,

※ फलत्रिकं चित्रक पिप्पली च।
सदीप्यकं लोहरजो विडङ्गम्।
चूर्णीकृतं कौडविकं द्विरंशं
क्षौद्रं पुराणस्य तुलां गुडस्य॥
मासं विदध्याद् घृतभाजनस्थं
यवेषु तानेव निहन्ति रोगान्॥
चरक संहिता, चिकित्सित स्थान; श्वयथु चिकित्सा, अध्याय १२, श्लोक ३८।

† हरीतकीनां प्रस्थार्धं प्रस्थमामलकस्य च॥
स्यात्कपित्थाच्छशपलं ततोऽर्धा चेन्द्रवारुणी।
विडङ्गं पिप्पली लोध्रं मरिचं सैलवालुकम्॥
द्विपलांशं जलस्यैतच्चतुर्द्रोणे विपाचयेत्।
द्रोणशेषे रसे तस्मिन्पूते शीते समावपेत्॥
गुडस्य द्विशतं तिष्ठेत्तत्पक्षं घृतभाजने।
पक्षादूर्ध्वं भवेत्येषा ततो मात्रा यथाबलम्॥
अस्याभ्यास्यादरिष्टस्य नश्यन्ति गुदजा द्रुतम्।
ग्रहणीपाण्डुहृद्रोगप्लीह गुल्मोदरापहः॥
कुष्ठशोकारुचिहरो बल वर्णाग्निवर्धनः।
सिद्धोऽयमभयारिष्टः कामलाश्वित्र नाशनः॥
कृमिग्रन्थ्यर्बुदव्यङ्गराजयक्ष्मा ज्वरान्तकृत्।
—चरक; चिकित्सित स्थान; अर्श चिकित्सा; अध्याय १४; श्लोक १३८ से १४४ तक।

वाग्भट इस अरिष्टमें १२८ तोला धातुकी पुष्प भी डालनेका विधान करते हैं—

सलिलस्य वहे पक्त्वा प्रस्थार्धमभयात्वचम्॥
प्रस्थं धात्र्या दशपलं कपित्थानां ततोऽर्धतः।
विशालां रोध्रमरिच कृष्णाएल्लैलवालुकम्॥
द्विपलांशं पृथक्पादशेषे पूते गुडात्तुले।
दाता प्रस्थं च धातक्याः स्थापयेद् घृत भाजने॥
पक्षात्स शीलितोऽरिष्टः करोत्यग्निं निहन्ति च।
गुदजग्रहणीपाण्डुकुष्ठोदरगरज्वारान्॥
श्यमथुप्लीहहृद्रोगगुल्मयक्ष्मवमिकृमीन्।
—अष्टाङ्ग हृदय; चिकित्सा स्थान, अर्श चिकित्सा; अध्याय ८; श्लोक ६४ से ६८ तक।

‡ अभयायास्तुलामेकां मृद्वीकाद्वितुलां तथा।
विडङ्गस्य दशपलं मधूक कुसुमस्य च॥
चतुर्द्रोणे जले पक्त्वा द्रोणमेवावशेषयेत्।
शीतीभूते रसे तस्मिन् पूते गुडतुलां क्षिपेत्॥
श्वदंष्ट्रां त्रिवृतां धान्यं धातकीमिन्द्रवारुणीम्।
भव्यं मधुरिकां शुण्ठीं दन्तीं मोचरसं तथा॥
पलयुग्ममितं सर्वं पात्रे महति मृण्मये।
क्षिपत्वां संरुध्य तत्पात्रं मासमात्रं निधापयेत्॥
ततो जातरसं ज्ञात्वा परिस्राव्य रसं नयेत्।
बलं कोष्ठाञ्च वह्निञ्च वीक्ष्य मात्रं प्रयोजयेत्॥
अर्शांसि नाशयेच्छीघ्रं तथावष्टावुदराणि च।
वर्चोमूत्रविबन्धघ्नो वह्निं सन्दीपयेत् परम्॥
—चरक जयदेव विद्यालङ्कार कृत टीका, पृष्ठ २४०,८२४०१।

वायबिडंग १ सेर, और महुएके१ सेर फूलको ५ मन ४ सेर ६४ तोले पानीमें पका कर १ मन ११ सेर १६ तोले जल शेष रख लें। जान कर इसमें १० सेर गुड़ घोलें और निम्न प्रक्षेप द्रव्योंको मिला कर घड़ेमें बन्द कर दें। प्रक्षेप द्रव्य गोखरू, निशोथ, धनिया, धायके फूल, इन्द्रायण, चक, सौंफ, सोंठ दन्तीमूल और मोक्ष रस प्रत्येक १६ तोला। एक महीने बाद अरिष्ट तय्यार हो जाय तो छान कर रख लें।

मात्रा—एकसे दो तोला।

रोग—अर्श तथा अन्य उदर रोग, मलबन्ध, मूत्र कृच्छ्र आदि।

महाभयारिष्ट ❀—

शिवा गुग्गुल †—हरड़, बहेड़ा और आँवला प्रत्येक ३२ तोलाको ६ सेर ३२ तोला जलमें चौथाई पानी शेष रहने तक पकाएँ। वस्त्रपूत क्वाथमें एरण्ड तेल १६ तोला शुद्ध गन्धक ३ तोला और शुद्ध गुग्गुल १६ तोला डाल कर पकाएँ। पाक शेषके समय निम्न प्रत्येक द्रव्यका एक तोला चूर्ण डालकर मिला दें—रास्ना बिडङ्ग, मिरच, पिप्पली, दन्तीमूल, जटामासी, सोंठ और देवदारु।

मात्रा—छः रत्तीसे चार माशा।

रोग—आमवात, कटिशूल, गृध्रासी आदि।

त्रिफलादि घृत ❀—गौका घी ३¼, त्रिफला क्वाथ १३ सेर, दूध ३¼ सेर, कल्कके लिये त्रिफला ६४ तोले; यथाविधि सिद्ध करें।

मात्रा—आधा तोला प्रतिदिन सायंकाल सेवन करें।

रोग—तिमिर रोग।

त्रिफलादि (३)†—घृत ३¼ सेर, त्रिफला क्वाथ १३ सेर, शतावरीका रस १३ सेर, कल्कके लिये मुलैठी ६४ तोला, यथाविधि घृत पाक करें।

मात्रा—आधा तोला।

रोग—त्रिदोष, तिमिर।

अनुपात—मधु।

महात्रिफलादि घृत ‡—गौका घी ३¼ सेर, त्रिफला

❀हरीतकीनां श्रेष्ठानां द्वे शते जर्जरीकृते॥
दशूलसुधादत्तीकरञ्जाधोगुडासनाः।
मयूरकं देवदारु निचुलं कुट जाटजी (?)॥
कटङ्कटेरी बृहती रास्नाश्योनाकचित्रकौ।
वरुणं चेति संकुट्य पञ्चविंशतकैः पलैः॥
षड्द्रोणेऽपां पचेदेतधावत् पञ्चाढकं स्थितम्।
तस्मिन् पूते गुडतुलां दत्वा भूयश्च साधयेत्॥
परिवृत्तं समालक्ष्य घृतभाण्डे निधापयेत्।
मरिचानि विडङ्गानि मार्गी शक्रयनांस्तथा॥
आवयेत् कुटबीजानि पिप्पलीप्रस्थमेव च।
मधुप्रस्थं च संसृज्य मासादूर्ध्वं प्रयोजयेत्॥
पथ्याशी मात्रया काले मुच्यते कफजैर्गदैः।
महाभयारिष्ट इति कश्यपेन प्रकल्पितः॥
काश्यप संहिता: राजयक्ष्मचिकित्सिताध्याय; पृष्ठ ६६।

† शिवाबिभीतामलकाफलानां प्रत्येकशो मुष्टिचतुष्टयञ्च।
तोपाढके तत्क्वथितं विधाय पादावशेषे त्ववतारणीयम्॥
एरण्डतैलं द्विपलं विधाय पिचुत्रयं गन्धक नामकस्य।
पचेत्पुरस्यात्र पलद्वयञ्च पाकावशेषे च विचूर्ण दद्यात्॥
रास्ना विडंगं मरिचंकणा च दन्ती जटा नागरदेवदारु।
प्रत्येकशः कोलमिलं तथैषां विचूर्ण्य निःक्षिप्य नियोजयेच्च॥
आमवाते कटीशूले गृध्रासो क्रोष्टुशीर्षके।
न चान्यदस्ति भैषज्यं यथायं सुगुग्गुलः स्मृतः॥
—रसेन्द्रसार संग्रह; आमवातचिकित्सा; श्लोक १६से२० तक।

❀ त्रिफलाक्वाथकल्काभ्यां सपयस्कं कृतं घृतम्।
तिमिराण्यचिराद्धन्ति पीतमेहन्निशामुखे।
—भैषज्य रत्नावली; नेत्ररोगाधिकार; श्लोक १६२।

† फलत्रिकाभीरुकसायसिद्धं कल्केन यष्टीमधुकस्य युक्तम्।
सर्पिः समं क्षौद्रचतुर्थभागं हन्यात्रिदोषं तिमिरं प्रवृद्धम्॥
—भैषज्य रत्नावली; नेत्ररोगाधिकार; श्लोक १२६।

‡ त्रिफलाया रसप्रस्थं प्रस्थं भृगंरसस्य च।
वृषस्य च रसप्रस्थं शतावर्याश्च तत्समम्।
अजाक्षीरं गुडूच्याश्च आमलक्या रसं तथा॥
प्रस्थं प्रस्थं समाहृत्य सर्वैभिर्घृतं पचेत्॥
कल्कः कणा सिता द्राक्षा त्रिफला नीलमुत्पलम्।
मधुकं क्षीरकाकोली मधुपर्णी निदिग्धका॥
तत्साधु सिद्धं विज्ञायशुभे भाण्डेनिधापयेत्।
ऊर्ध्वपानमधःपानं मध्ये पानञ्च शस्यते॥
यावन्तो नेत्ररोगास्तान् पानादेवापकर्षति।
नक्तान्ध्ये तिमिरे काचे नीलिकापटलार्बुदे॥

क्वाथ ३$\frac{1}{4}$ सेर (मिलित त्रिफला १२८ तोला, क्वाथार्थ जल १३ सेर, शेष ३$\frac{1}{4}$), भांगरेका रस ३$\frac{1}{4}$ सेर, बाँसका रस ३$\frac{1}{4}$ सेर, शतावरीका रस ३$\frac{1}{4}$ सेर, बकरीका दूध ३$\frac{1}{4}$ सेर, गिलोयका स्वरस ३$\frac{1}{4}$ सेर, ऑवलेका रस ३$\frac{1}{4}$ सेर, कल्क द्रव्य—पिप्पली, द्राक्षा, त्रिफला, नीलोत्पल, खाण्ड मुलहठो, क्षीर ककोली, छोटी कटेरी, सब मिलाकर ६४ तोला, यथाविधि सिद्ध करें।

मात्रा तथा सेवन विधि—आधा तोला घृत भोजनसे पूर्व, मध्य तथा अन्तमें सेवन करें।

रोग—रात्र्यन्ध, आँख दुखना, पड़वाल, मन्द दृष्टि, नेत्र कण्डु, नेत्र स्राव, आसन्न दृष्टि (समीप दृष्टि अर्थात् पासकी चीज़ोंको देखनेकी आँखमें क्षमता होना और दूरस्थ द्रव्योंका न दीखना), दूर दृष्टि आदि नेत्र रोग।

त्रैफल घृत ❀—घृत ३$\frac{1}{4}$ सेर, त्रिफला क्वाथ ९$\frac{3}{4}$ सेर (त्रिफला ३$\frac{3}{4}$ सेर, जल ३६ सेर, शेष ९$\frac{3}{4}$ सेर) कल्कके लिए त्रिफला, त्रिकटु, डाभ, मुलहठी, वायविडङ्ग, नागकेसर, नीलोत्पल, अनन्तमूल, कृष्णा कारिवा, लाल चन्दन और हल्दी प्रत्येक दो तोला; यथा विधि सिद्ध करें।

मात्रा—आधा तोला।

रोग—तिमित, नेत्र स्रवा, कामला, प्रदर, कण्डू, खालित्य तथा आँखोंके सब रोगोंमें यह लाभ करता है दृष्टि को निर्मल करता है।

हरीत आदि योग †—हरड़, बहेड़ा, आँवला और पाँचों पञ्चमूलका क्वाथ १० मन ६ सेर ४८ तोले, इतना ही विदारी कन्दका स्वरस, दूध २० मन १६ सेर १६ तोले; पिप्पली, मुलहठो, महुएके फूल, काकोली, क्षीर काकोली, कौंच बीज, जीवक, ऋषभक और क्षीर विदारी का कल्क २५ सेर ४८ तोले, गौ घृत २ मन २२ सेर ॥२ तोले, यथाविधि सिद्ध करें।

मात्रा तथा सेवन विधि—पाचन शक्तिके अनुसार आधेसे एक तोलेको मात्रामें सेवन करें

पथ्य—औषध जीर्ण हो जाने पर दूध और घीके साथ शाली व काठीके चावल खाएं। गरम पानी पिएं।

रोग—इसका नियमित सेवन शरीरके अंगोंको बल देता है, बुद्धि तीव्र करता है, बुढ़ापेको दूर करके आयु दीर्घ करता है।

अभिष्यन्देऽभिमन्थे च यक्ष्मकोपे च दारुणे।
नेत्ररोगेषु सर्वेषु वातपित्तकफेषु च ॥
अदृष्टिं मन्ददृष्टिञ्च कफवातप्रदूषिताम्।
स्रवतो वातपित्ताभ्यां सकण्ड्वासन्नदूरदृक् ॥
मृध्नदृष्टिकरं सद्यो बलवर्णाग्निवर्द्धनम्।
सर्वनेत्रामयं हन्यात् त्रिफलाद्यं महद् घृतम् ॥

—भैपज्य रत्नावली; नेत्ररोगाधिकार; श्लोक ७६३से१८० तक।

❀ त्रिफलायूषणं द्राक्षा मधुकं कटुरोहिणी।
प्रमौण्डरीकं सूक्ष्मैला विडङ्गं नागकेशरम् ॥
पीलोत्पलं शारिवे द्वे चन्दनं रजनीद्वयम्।
कार्षिकैः पयसा तुल्यं त्रिगुणं त्रिफलारसम् ॥
घृत प्रस्थं पचेदेतत् सर्वनेत्रआपहम्।
तिमिरं दोषामास्रावं कामला काचभर्बुदम् ॥
विसर्पं प्रदरं कण्डूं रक्तं श्वमथुमेव च।
खालित्यं पलितं चैव केशानां पतनं तथा ॥
विषमज्वरमर्माणि शुक्रञ्चाशु व्ययोहति।
अन्ये च बहवो रोगा नेत्रजा ये च वर्त्मजाः ॥
तान् सर्वान्नशयत्याशु भास्करस्तिमिरं यथा।
न चैसस्मात्परं किञ्चिद्दषिभिः काश्पादिभिः ॥
दृष्टि प्रसादनं दृष्टं यथा स्यात् त्रैफलं घृतम् ॥

भैषज्य रत्नावली: नेत्ररोगाधिकारः श्लोक १८१से१८६ तक।

† हरीत कामलकवि भीतकपञ्चपञ्चमूम निर्यूहेण पिप्पली मधु मधूक काकोलो क्षीर काकोली त्यात्म गुप्ता जीवक र्षभकक्षीर शुक्लाकल्क सप्रंयुक्तने विदरीस्वरसेन शीराष्ट कुणसप्रंयुक्तने च सर्पिसः कुम्भं काथपित्वा प्रयुञ्जानोऽग्नि-बलसमां मात्रां, जीर्णे च क्षीरसर्पिभ्यां शर्मलिषष्टिक पुरुणोदकानुपान मश्नन्, जराहयाधि पापाभि मारप्यपरम्फयः शरीरेन्द्रिय बुद्धिबलमतुलमुलम्पाप्त हित तसर्वारम्भः परमायुरवाप्नुया दिति ॥

चरकः चिकित्सितस्थानः अध्याय ७; अभयामलकीय रसायन पाद; ६४।

अष्टाङ्ग संग्रहकार ❀ के अनुसार इसमें द्रव्योंका परिमाण निम्न है—घी २ मन २२ सेर ३२ तोला, हरड़ आदिका काथ ५ मन ५ सेर ८ तोले, विदारीकन्दका स्वरस ५ मन ५ सेर ८ तोले, दूध २० मन १९ सेर १६ तोले और पिप्पली आदिका कल्क २५ सेर ४८ तोले।

चार रसायनें †—आँवला और हरड़, आँवला और बहेड़ा हरड़ और बहेड़ा या आँवला, हरड़ और बहेड़ा; इन चारोंमेंसे किसी एक पर ढाककी ताज़ी गीली छाल अच्छी प्रकार लपेट दें और उसके ऊपर मिट्टी लेप कर दें। इसे उपलोंकी अग्निमें स्विन्न करें। पलाशकी छाल तथा आपने जलीय भागके वाष्पोंसे आदरके पदार्थ स्विन्न हो जायँगे। सम्पुटको आगसे बाहर निकाल कर खोल लें और गुठलियोंको निकाल फेंके। इस प्रकार स्विन्न और गुठलियोंसे रहित उस योगको १०० सेर लेकर ऊखलमें कुचलें। यदि आँवले और हरड़ोंका योग हो तो दोनों द्रव्य समान समान भाग में लें।

सेवन विधि तथा पथ्य—इसे दही, घी, मधु, तिलकल्क तिलतेल, तथा खाण्ड मिला कर कुटीप्रावेशिक विधिसे खाएं और कोई आहार न करें। इसके पश्चात् पेया आदि के क्रमसे पथ्य पर रखते हुए स्वाभाविक भोजन पर ले आएं। प्रतिदिन घीकी मालिश और जौके आटेसे उबटन करना चाहिए। अग्निबलके अनुसार अधिकसे अधिक दिन में दो बार इस योगका सेवन करना चाहिए। भोजनमें घृतयुक्त साठीके चावलको यूष या दूधके साथ खाएं।

रोग—अज़मतमें होने वाले बुढ़ापेके प्रभावोंको दूर करता हो उत्तम रसायन है।

जितने दिन तक इस रसायनका सेवन किया है उससे दुगुने दिनों तक यावगू, यूष, दूध, साठीके चावल आदि पथ्यमें खाना चाहिए और घीकी मालिश तथा जौका उबटन करना चाहिए। ❀

ब्राह्म रसायन †—पाँचों पञ्चमूलोंमें प्रत्येक पृथक-

❀ अभयामलकबिभीतकपञ्चात्मक पञ्चमूलनिर्यूहे।
वल्लीपलाशकरसे द्विगुणे क्षीरेऽष्टगुणे च विपचेत॥
घृतस्य कुम्भं मधुकं मधूकं काकालियुग्मं च बला स्वगुप्ताम्
सक्षीरशुक्लमृषभं सजीवमुष्णाम्बुपस्तच्च पिबेत्गुणाढ्यम्

†—अष्टाङ्गसंग्रह

अथामलकहरीतकीनामामलकबिभीतकानां हरीतकीबिभीतकानामामलकहरीतकी बिभीतकानां वा पलाशखगवनद्धानां मृदावलिप्तानां कुकूलस्विन्नानामकुलानां पलसहस्रमुदूखले संपोथ्य दधिघृतमधुपललतैलशर्करासंप्रयुक्तं भक्षयेदनन्नभुग्यथोक्तेन विधिना तस्यान्ते यवाग्वादिभिः प्रकृत्यवस्थापनं, अभ्यङ्गोत्सादनं सर्पिषा यवचूर्णैश्च, अयं च रसायनप्रयोगप्रकर्षोद्विस्तावदग्निबलमभिसमीक्ष्य प्रतिभोजनं यूषेण पयसा वा षष्टिकः ससर्पिष्कः, अतः परं यथासुखविहारः कायभक्षयः स्यात्; अनेन प्रयोगेणर्षयः पुनर्युवत्वमवायुः; बभूवश्चानेकवर्षशतजीविनो निर्विकाराः परं शरीरबुद्धीन्द्रियबलसमुदिताः चेरुश्चात्यन्तानिष्ठया तप इति॥

चरकः चिकित्सितस्थानः अध्याय १, अभयामलकीयरसायनपाद; ७६३।

❀ प्रयोगान्ते ततो द्विगुणं कालं यवागूयूषक्षीरघृतषष्टिकाक्रमाहारोऽभ्यञ्जनं सर्पिसद्वर्तनं यवचूर्णमिति॥

अष्टाङ्ग संग्रहः उत्तरस्थान; अध्याय ४९।

† पञ्चानां पञ्चमूलानां भागान्दशपलोन्मितान्।
हरीतकीसहस्रं च त्रिगुणामलकं नवम्॥
विदारीगन्धां बृहतीं पृश्निपर्णी निदिग्धिकाम्।
विद्याद्विदारीगन्धाद्यं श्वदंष्ट्रा पञ्चमभणम्॥
बिल्वाग्नि मन्थस्योनाकं काश्मर्यंथ पाटलाम्॥
पुनर्नवां शूर्पपर्ण्यौ बलामैरण्डमेव च।
जीवकर्षभकौ मेदां जीवन्तीं सशतावरीम्।
शरेक्षुदर्भकाशानां शालीनां मूलमेव च॥
इत्येषां पञ्चमूलानां पञ्चानामुपकल्पयेत्।
भागान्यथोक्तांस्तत्सर्वं साध्यं दशगुणेऽम्भसि॥
दशभागावशेषं तु पूतं तं ग्राहयेद्रसम्।
हरीतकीश्च ताः सर्वाः सर्वाण्यमलकानि च॥
तानि सर्वाण्यन स्थीनि फलान्यापोथ्य कूर्चनैः।
विनीय तस्मिन्निर्यूहे चूर्णानीमानि दापयेत्॥
मण्डूकपर्ण्याः पिप्पल्याः शङ्खपुष्ट्याः प्लवस्य च।
मुस्तानां सविडङ्गानां चन्दनागुरुणोस्तथा॥
मधुकस्य हरिद्राया वचायाः कनकस्य च।
भागांश्च तुष्यलान् कृत्वा सूक्ष्मैलायास्त्वचस्तथा॥
सितोपलासहस्रं च चूर्णितं तुलयाऽधिकम्।

पृथक् १ सेर, हरड़ १०००, ताजे आँवले ३०००, इन्हें एकत्र लेकर दस गुने जलमें क्वाथ बनाएँ। हरड़ और आँवले तौलमें लेने हों तो १२३/४ सेर हरड़ें और ३६१/४ सेर आँवले लेने चाहिये। हरड़ और आँवलोंको अन्य क्वाथ्य द्रव्योंके साथ खौला डालनेके स्थान पर पतले कपड़ेकी ढीली पोटलीमें बाँध कर डालनेसे सुविधा रहती है। १/१० भाग शेष रहने पर पात्र को आग परसे उतार लें और क्वाथको छान लें। हरड़ और आँवलोंको गुठली निकाल फेंकें और रेशे निकाल दें। प्राप्त हरड़ और आँवलोंकी पीठीको छाने हुये कषायमें डाल दें और उसमें निम्न द्रव्य डाल दें—कण्डूकपर्णी, पिप्पली शङ्ख पुष्पी, केवटी मोथा (पल्व) मोथा, वायविडङ्ग, लाल चन्दन, अगर, मुलहठी, हल्दी, वच, नागकेसर, छोटी इलायची, और दालचीनी प्रत्येकका चूर्ण ३२ तोले, मिश्री १ मन ३० सेर, तिल तेल २५ सेर ४८ तोला, घी ३८ सेर ३२ तोला। इस सबको मन्द मन्द अग्नि पर कलई किये हुये ताम्र पात्रमें पकाएँ। जब लेह ठीक बन जाय उतार लें। दग्ध न होने दें। ठण्डा होने पर घी और तेल के मिलित परिमाणसे आधा-३२ सेर विशुद्ध मधु मिला दें और अच्छी प्रकार मिल जाने पर घीसे भावित पात्रमें रख छोड़ें।

इस रसायन लेहको च्यवनप्राशावलेहकी तरह भी पकाया जा सकता है। विधि इस प्रकार है—क्वाथ पाक के समय आँवले और हरड़की पोटली डाल दें। क्वाथ तैयार हो जाने पर इनकी गुठलियाँ निकाल फेंके और इन्हें पीस कर कपड़ेमें हाथ से मल कर छान लें। कपड़े में बचे हुये रेशे आदिको फेंक दें। छाननेसे प्राप्त पीठीको तेल और घीके चमकमें भून लें। मृदु भुन जाने पर वस्त्र से छाना हुआ क्वाथ और मिश्री डाल दें। मन्द-मन्द पकाएँ। ठीक पक जाने पर नीचे उतार लें और मण्डूकपण्ड आदिका चूर्ण मिला कर लकड़ीके खोंचे अच्छी तरह मिला दें। शीतल होने पर शहद मिलाएँ।

मात्रा—आधेसे एक तोला। इस मात्रासे भूख बन्द

तैलस्य द्व्याढकं तत्र दद्यात्त्रीन्नि च सर्पिषः ॥
साध्यमौदुम्बरे पात्रे तत्सर्वं मृदुनाऽग्निना।
ज्ञात्वा लेहमदग्धं च शीतं क्षौद्रेण संसृजेत् ॥
क्षौद्र प्रमाणं स्नेहार्धं तत्सर्वं घृत भाजने।
तिष्ठेत्संमूर्च्छितं तस्य मात्रां काले प्रयोजयेत् ॥
या नोपरुन्ध्यादाहारमेवं मात्रा जरां प्रति।
षष्टिकः पयसा चात्र जीर्णे भोजन मिष्यते ॥
वैखानसा बालखिल्यास्तथा चान्ये तपोधनाः।
रसायनमिदं प्राप्य बभूवुरमितायुषः ॥
भुक्त्वा जीर्णं वपुश्चाग्र्यमवापुस्तरुणं वयः।
वीततन्द्राक्लमश्वासा निरातङ्काः समाहिताः ॥
मेधास्मृतिबलोपेताश्चिररात्रं तपोधना।
ब्राहम्यं तपो ब्रह्मचर्यं चेरुश्चात्यन्तनिष्ठया ॥
रसायनमिदं ब्राह्मयायुस्कामः प्रयोजयेत्।
दीर्घमायुर्वयश्भाग्र्यं कामांश्चेष्टान् समश्नुते ॥

—चरक; चिकित्सित स्थान; अध्याय १, अभयामलकीय रसायपाद; श्लोक २६ से ५५ तक।

वाग्भटने भी इस योगको दिया है। इसमें घी और तैल का परिणाम् चरकसे दुगुना है।

पथ्यासहस्रं त्रिगुणाधात्रीफलसयन्वितम्।
पञ्चानां पञ्चमूलानां सार्धं पलशतद्वयम् ॥
जले दशगुणे पक्त्वा दशभागस्थिते रसे।
आपोथ्यकृत्वा व्यस्थीनि विजयामलकान्यथ ॥
विनीय तस्मिन्नियूँहे योजयेत्कुडवांशकम्।
त्वगेलायुस्तरजनीपिप्पल्यगुरूचन्दनम् ॥
मण्डूकपर्णीकनकशङ्खपुष्पीवचाप्लवम्।
यस्त्याध्वयं विडङ्गं च चूर्णितं तुलयाधिकम् ॥
सितोपलार्धभारं च पात्राणि त्रीणि सर्पिषः।
द्वे च तैलातश्चेत्सर्वं तदग्नौ लेहतां गतम् ॥
अवतीर्णं हिमं युञ्ज्याद्विंशैः क्षौद्रशतैस्त्रिभिः।
तयः खजेन माथितं निदध्याद्घृतभाजने ॥
या नोपरुन्ध्यादाहारमेकं मात्रास्य सा स्मृता।
षष्टिकः पयसा याऽत्र जीर्णे भोजनमिस्यते ॥
वैखानसा बालखिल्यास्तथा चाऽन्ये तपोधनाः।
ब्रह्मणा विदितं धन्यमिदं प्राश्य रसायनम् ॥
तन्द्राश्रमक्लमवलीपलितायवर्जिताः।
मेधास्मृतिबलोपेता बभूवुरमितायुषः ॥

—अष्टांग हृदय; उत्तर स्थान; अध्याय ३९; रसायन अध्याय; श्लोक १५ से २३ तक।

हो जाय तो अग्नि बलके अनुसार मात्रा कम या अधिक की जा सकती है।

रोग—तन्द्रा, क्लम, श्वास आदि रोगोंको यह रसायन दूर करती है और दीर्घ आयु प्रदान करती है।

पथ्य—औषधिके जीर्ण होने पर दूधके साथ साठीके चावल खाना चाहिये।

इस योगमें और हरीतक्यादि योगमें वर्णित पाँच पञ्चमूल ये हैं—

पहला पञ्चमूल—शालपर्णी (विदारि गन्धा) पृश्नपर्णी, छोटी कण्टकारी, बड़ी कटैली और गोखरू। इसे विदारीगन्धाधाणा या क्षुद्र पञ्चमूल भी कहते हैं।

दूसरा पञ्चमूल—विल्व, श्योनाक, गाम्भारी, पाटला और अरणी। इसे महत्पञ्चमूल कहते हैं।

तीसरा पञ्चमूल—पुनर्नवा, मुग्दपर्णी, माषपर्णी, बला और एरण्ड।

चौथा पञ्चमूल—जीवक, ऋषभक, मेदा, जीवन्ती और शतावरी।

पाँचवाँ पञ्चमूल—सरकण्डा, ईख, दर्भ, कास और शालीकी जड़।

इनमें से जो क्षुप है या जिनकी जड़ें छोटी होती हैं उनकी सम्पूर्ण जड़ ही लेनी चाहिये और जो बड़े वृक्ष हैं जैसे महापञ्चमूल उनकी जड़की छाल ली जानी चाहिये।

इन पाँचों पञ्चमूलकी प्रत्येक औषधि १ सेर लेनी चाहिये। इस प्रकार प्रत्येक पञ्चमूल ५ सेर होगा और पाँचों पञ्चमूल २५ से होंगे।

उपयोग

प्रायः सब योगोंमें त्रिफला डाला जाता है। प्राचीन आयुर्वेदिक ऋषियों ने इसको बहुत उपयोगी समझा था। सुप्रसिद्ध विद्वान् वाग्भट्ट ने इसकी प्रशंसा करते हुये यहाँ तक लिख डाला है कि त्रिफला सब रोगोंको नाश करके मेधा, स्मृति और बुद्धिको बढ़ाती है ❀। रसायन रूपमें त्रिफला बहुत महत्वपूर्ण द्रव्य समझा गया है। शरीरको रोगोंसे बचाने और स्वास्थ्य वृद्धि के लिये भी त्रिफलाका प्रतिदिन सेवन किया जाता है। स्वेदक, सारक, बाजीकरण और सामान्य बल्य तथा रसायन औषधियोंमें आमलकादि वर्गमें सुश्रुत † ने आँवले और हरड़को गिनाया है।

रसायन रूपमें त्रिफलाको सेवन करनेकी एक विधि चरक और गोबिन्ददास ‡ लिखते हैं—आहारके प्रथम दो बहेड़े, भोजनके पश्चात् चार आँवले घी और मधुके साथ खाना चाहिये। इस त्रिफला रसायनका एक वर्ष तक प्रयोग करनेसे मनुष्य बुढ़ापे और व्याधि रहित होकर दीर्घ काल तक जीवित रहता है। चरक $ त्रिफला सेवन की कुछ विधियाँ लिखते हैं—

त्रिफलाके कल्कको नये लोह पात्रमें लेप करें। चौबीस घण्टे बाद उसे उतार कर शहदके शर्बतमें घोल कर पी

❀ त्रिफला सर्वरोगाघ्नी मेधायुः स्मृतिबुद्धिदा ॥
—अष्टाङ्ग हृदय; उत्तर स्थान; रसायन अध्याय ३९; श्लोक ४३।

† सुश्रुत
त्रिफला सर्वरोगघ्नो त्रिभाग घृतमूर्छितः।
वयसः स्थापनं चापि कुर्यात्संततसेविता ॥
—सु० सू० अ० ४५ श्लोक ७१

‡ जरणान्तेऽभयामेकां प्राग्भक्ते द्वे विभीतके।
भुक्त्वातु मधुसर्पिर्भ्यां चत्वार्यामलकानि च ॥
प्रयोजयेत्समामेकां त्रिफलाया रसायनम्।
जीवेद् वर्षशतं पूर्णमजरोऽव्याधिरेव च ॥
—भैषज्यरत्नावली; रसायनाधिकार; श्लोक ३,४।
—चरक; चिकित्सितस्थान, अध्याय १; करप्रचितीय रसायन पाद श्लोक ४०, ४१।

$ त्रैफलेनायसीं पात्रीं कल्केनालेपयेन्नवाम्।
तमहोरात्रिक लेपं पिबेत्क्षौद्रोदकाप्लुतम् ॥
प्रभूतस्नेहमशनंजीर्णे तत्र प्रशस्यते।
अजरोऽरुक् समाभ्यासाज्जीवेच्चैव समाः शतम् ॥
मधुकेन तुगाक्षीर्या पिप्पल्या क्षौद्रसर्पिषा।
त्रिफला सितया चापि युक्ता सिद्धं रसायनम् ॥
सर्वलोहैः सुवर्णेन बचया मधु सर्पिषा।
विडङ्गपिप्पलीभ्यां च त्रिफला लवणेन च।
संवत्सरप्रयोगेण मेधास्मृतिबलप्रदा।
भवत्यायुष्प्रदा धन्या जरारोगनिबर्हणी ॥
—चरक चिकित्सित स्थान; अध्याय १; करप्रचितीय रसायनपाद; श्लोक ४२ से ४६ तक।

जायँ। यह पच जाने पर खूब घी डाले हुये चावल आदि का भोजन करें। एक वर्ष तक इस रसायनका सेवन करना चाहिये।

त्रिफलाके साथ मुलहठी, वशंलोचन, पिप्पली और खाण्ड मिलाकर मधु और घीके साथ सेवन करें। यह उत्तम रसायन औषधि है।

हरड़ एक तोला, बहेड़ा एक तोला, आँवला एक तोला, चाँदी; वङ्ग, सीसक, तम्बा, यशद् और लोहा प्रत्येककी भस्म सोलह रत्ती, सुवर्ण भस्म एक तोला, बचा, बाय-विडङ्ग, और सेंधा नमक प्रत्येक एक तोला; इनका चूर्ण बना कर एक साल तक प्रयोग करें। यह रसायन है दोसे चार रत्तीकी मात्रामें शहद और घीके साथ सेवन की जाती है।

उपरोक्त सब रसायनें मेधा, स्मृति, बुद्धि, बल और आयुको बढ़ाती हैं। रोगोंको नष्ट करके शरीरमें रोग क्षमता को बढ़ाती है।

महर्षि आत्रेय ने अनेक रोगोंमें त्रिफलाका उपयोग करनेका उपदेश किया है। हारीत संहिता*से दी गई नीचे की तालिकामें यह दिखाया गया है कि भिन्न-भिन्न रोगोंमें किन-किन औषधियोंके साथ त्रिफलाका प्रयोग करना चाहिये।

नाम रोग	किस औषधिके साथ त्रिफला सेवन करना चाहिये
वातिक रोग	घी और गुड़।
पैत्तिक रोग	शहद और खाण्ड।
श्लैष्मिक रोग	सोंठ, मिरच और पिप्पली।
मेह रोग	शहद और जल।
कुष्ठ	घी।
अग्निमान्द्य	सेंधा नमक।
कण्डू	घी।
वमन	बिजोरा निम्बुका रस
गुल्म और अर्श	गुड़ और जिमिकन्द।
राजयक्ष्मा (क्षय)	दूध।
पाण्डु	गुड़।
बाल पकना	भांगरेका रस और गुड़।
विषम ज्वर	दूध और गुड़के साथ त्रिफला कषाय
सब प्रकारके जीर्ण ज्वर	खाण्ड और घीके साथ त्रिफला क्वाथ।
शोक, कामला, पाण्डु	गोमूत्र।
अतिसार, ग्रहणी	लस्सी (तक्र)
निर्बलता, जीर्ण ज्वर	दूध।
नेत्ररोग, शिरोरोग, व्रण, मूत्राघात कामला आदि	जल।

हरड़की तरह त्रिफलाको भी सब ऋतुओंमें रसायन रूपमें सेवन किया जाता है। सरदियोंमें गुड़ और सोंठके साथ, गरमियोंमें खाण्ड और दूधके साथ और वर्षा ऋतुमें

---

* वाते घृतगुडोपेता पित्ते समधुशर्करा।
श्लेष्मे त्रिकटुकोपेता मेहे समधुवारिणा॥
कुष्ठे च घृतसंयुक्ता सैन्धवेनाग्निमन्धहा।
अक्षुर्धावनके क्वाथो नेत्ररोगनिवारणः॥
घृतेन हरते कण्डूं मातुलुङ्गरसैर्वमिम्।
गुल्मार्शोगुडसूरणैः स स्यात्तु गुणकारकः॥
क्षीरेण राजयक्ष्माणं पाण्डु रोगं गुडेन च।
भृङ्गराजरसेनापि घृतेन सहयोजितः॥
बलीपलितहन्ता च तथा मेधाकरः स्मृतः॥
क्षीरः सगुड क्वाथो विषमज्वरनाशनः।
सशर्करावृतः क्वाथः सर्वजीर्णज्वरापहः॥
एषानराणां हितकारणी च सर्वप्रयोगे त्रिफला स्मृति च।
सर्वा यदानांशयती च सद्यः सतेज कान्तिं प्रतियांकरोति॥
शोके तथा कामलापाण्डुरोगे तथोदरे मूत्रयुताहिता च।
क्षीणेन्द्रिये जीर्णज्वरे च यक्ष्मे क्षीरेण युक्ता त्रिफला हिता च॥
स्यान्नेत्र रोगे च शिरोगदे च।
कुष्ठे च कण्डू व्रणपीडने च।
मूत्रग्रहे कामलकेऽग्निमान्द्य।
जलेन पीतस्त्रिफलादि कल्कः॥
—हारीत संहिता; कल्पस्थान; अध्याय २; श्लोक ६ से १५ तक।

सोंठके साथ त्रिफला सब रोगोंके शमनके लिये सेवन किया जाता है ॐ।

रसायनद्रव्य रूपमें भस्मोंका प्रयोग आयुर्वेदमें बहुत होता है। भस्मोंके मारणके लिये त्रिफला बहुत प्रयुक्त होता है गोपालकृष्ण भट्ट ने सामान्य पुटपाक और लोह मारणके लिये उपयोगी त्रिफलादि भागमें इसका पाठ किया है †।

अनुलोमनके रूपमें त्रिफलाका प्रयोग एक प्रतिशत घरेलू दवा है। रातको सोते समय दो-तीन माशे त्रिफला चूर्णको दूधके साथ खा लेनेसे अनुलोमक कार्य हो जाता है। कई लोग रातको त्रिफलाको शीत जलमें भिगोकर रख छोड़ते हैं। सुबह उठते ही पानीमें त्रिफला मसल लिया जाता है। कपड़ेमें छान कर मधु मिला कर पी लेते हैं। कुछ लोग त्रिफलाके प्रयोगको रुक्षताजनक समझते हैं। त्रिफला चूर्णको बादाम रोगनके साथ मिला कर अनुलोमन के लिये ले सकते हैं।

हरड़ और आँवला प्रत्येक चार ड्राम और रेवन्द चीनी एक ड्राम लेकर एक पाइण्ट पानीमें कषाय बनाएँ। दो औंसकी मात्राओंमें यह कषाय दिनमें तीन बार दिया जा सकता है। इससे अच्छा अनुलोमन हो जाता है। साथ ही यह पेशाबको भी खुल कर लाता है।

चिरस्थायी मलबन्धके लिये त्रिफलाके चूर्ण, कषाय या अवलेहका निरन्तर सेवन करना चाहिये। विरेचक दस औषधियोंमें चरकॐ ने हरड़, बहेड़े और आँवलेको परिगणन किया है। तीनों द्रव्योंके समान भक्त चूर्णको बादामके तेल और मधुमें मिला कर आठ दिन तक बन्द रख कर चिरस्थायी मलबन्धमें व्यवहार किया जाता है। बादाम तेल मिश्रित यह त्रिफलावलेह एकसे चार चम्मचकी मात्रामें प्रतिदिन या सप्ताहमें दो बार लिया जा सकता है।

गुल्मरोगीकी कोष्ठबद्धतामें हरड़ और गुड़को मिला कर दूधके अनुपानसे रोगीको खिलना चाहिये †। पिप्पली और मधु युक्त त्रिफला के अन्तः प्रयोगसे गुल्मका भेदन हो जाता है ‡। पित्त गुल्म जैसे एपेण्डिसाइटिज़में त्रिफला कषायके साथ त्रिफला गुग्गुलका निरन्तर सेवन कराया जाय और अन्य भोजनोंको कम करके दूध विशेष रूपसे दिया जाय तो बहुत लाभ होता है।

ॐ सशीतकाले गुडनागरेण सशर्करा क्षीरयुता तथोष्णे।
वर्षासु शुण्ठीसहिता फलत्रिका फलत्रिका सर्वजाहरा स्यात्॥
—हारीत संहिता; कल्पस्थान; अध्याय २; श्लोक१५,६१।

† त्रिफला..............................।
..............................लोहमारकः।
..................प्रोक्तस्त्रिफलादिरयं गणः।
सामान्यपुटपाकार्थयेतानिच्छन्ति सूरयः॥
—रसेन्द्रसार संहिता; अध्याय १; श्लोक ३१९ से से ३२२ तक।

ॐ द्राक्षाकाश्मर्यपरुषकाभयामलकविभीतककुवलबदरकर्कन्धूपीलूनीति दशेमानि विरेचनोपगानि भवन्ति।
—चरक; सूत्रस्थान; अध्याय ४; २४।

† क्षीरानुयानामभयां सागुडां संप्रयोजयेत्।
गुल्मिनां बद्धवर्चानां..................॥
—काश्यप संहिता; गुल्मचिकित्साऽध्याय; श्लोक २७।

‡ त्रिफलायाः प्रयोगैश्च पिप्पलीक्षौद्रसंयुतैः।
—चरक; चिकित्सितस्थान; अध्याय २१; श्लोक १२९।

विषय-सूची

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग।

विज्ञानं ब्रह्मेति व्याजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्याभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५ ॥

भाग ५३ | कर्क, संवत् १९९८ विक्रमी | जुलाई, सन् १९४१ | संख्या ४

आगपर चलना

बहुतसे भारतीयोंने कभी-न-कभी किसीको नंगे-पैर आगपर चलते देखा होगा। यहांके लोगोंका विश्वास है कि ऐसे लोग अग्निकी पूजा करके उसे अपने वशमें कर लेते हैं। कुछ ही समय हुआ दो भारतीयोंने यूरोपमें अग्नि पर चलनेकी क्रिया प्रदर्शित की थी। तब इस विषयपर पश्चिमीय वैज्ञानिकोंको अपनी सम्मति प्रकट करनेका अवसर मिला था। उन्होंने इस सम्बन्धमें कई वैज्ञानिक बातोंका पता लगाया। अवश्य ही विज्ञानके पाठकोंको ये बातें, रोचक प्रतीत होंगी। इसलिए नीचे हम 'सायंटिफिक अमेरिकन' में फायर-वाकिंग पर छपे एक लेखका सारांश देते हैं।

चमड़ीको बिना किसी प्रकारकी क्षति पहुंचे लाल अंगारों या तप्त पत्थरोंपर नंगे पैर चलनेका लोमहर्षण दृश्य शताब्दियों से लोगोंको आश्चर्यमें डालता रहा है। सदा ही यह रहस्य अंध विश्वासमें लिपटा रहा है। पॉलीनेशिया और भारतवर्षके जादूगर प्राचीन कालसे अपनी करामातसे भय और आश्चर्य उत्पन्न करते रहे हैं। सदा वे ऐसे कामको पूजा-पाठ और उपवासके बाद करते हैं।

यूरोपियन और अमेरिकन लोगोंने प्रदर्शिनियों को हजारों बार देखा है और अपने-अपने देशके पत्रोंको व्योरेवार सूचनाएं भेजी हैं। धूर्तता, हाथकी सफाई या विज्ञानके नियमोंकी शरण लेकर इन लोगोंके न जलनेका कारण बतलाया है। ये लेख पढ़नेमें अत्यन्त रोचक होते हुए भी विज्ञानकी दृष्टिसे निकम्मे हैं, क्योंकि उनमें उन वैज्ञानिक ब्योरोंका अभाव है जिनके सहारे ही कोई पक्का सिद्धांत निर्माण किया जा सकता हो।

अन्तमें अब वैज्ञानिकोंको आगपर चलनेके रहस्यको अध्ययन करनेका अवसर मिला है और ऐसा जान पड़ता है कि इसका भेद लग गया है। असली बात बहुत सरल है। रहस्य

और ढोंगने—जो इसे इतने दिनों तक घेरे था—चीर कर पृथक् कर दिया गया है और सच्ची बात निकल आई है। इसमें कोई भेद है ही नहीं। कोई भी आगपर चल सकता है, बस चलनेकी हिम्मत चाहिए।

आगपर चलनेके दो भेद हैं, एक तो अंगारोंपर चलना, दूसरा तप्त पत्थरोंपर चलना। पत्थरोंपर चलनेकी रीति पॉलीनेशियामें—फ़ीजी, कुक आइलैंड्स, सोसायटी आइलैंड्स, मारकेसास और हवाइयन आइलैंड्स में है। प्रशांत महासागरके इन द्वीपोंमें विचित्र-विचित्र रहस्यमयी बातें हुआ करती हैं। यहां यह प्रथा है कि घुटने तक गहरा, और बड़ा गोलाकार या चौकोर गड्ढा खोदा जाता है। उसमें बहुतसी लकड़ी जलाई जाती है और यह आग बराबर घण्टों तक धधकती रक्खी जाती है। इसपर पत्थरके बड़े ढोंके रहते हैं जो हाथ हाथ भरके होते हैं। ये आगके कारण गरम होकर लाल हो जाते हैं। इसके बाद पुरोहित, अनेक पूजा-पाठके बाद, जिससे जनतामें बड़ी श्रद्धा और भक्ति उत्पन्न होती है, नंगे पैर इन लाल पत्थरों पर चला जाता है। उसके पैरमें एक छाला भी नहीं पड़ता।

अङ्गारोंपर चलना अधिकतर भारतवर्ष में देखा जाता है। परन्तु ऐसा केवल भारतवर्षमें ही नहीं, संसारके उन सब प्रदेशों में होता है जहां भारतीयोंने जाकर अपना उपनिवेश बनाया है, जैसे—ट्रिनिडाड, नेटाल, मॉरिशस आदिमें, जापानमें भी अंगारों पर चलने वाले व्यक्ति हैं। गड्ढे चौकोर खोदे जाते हैं जो लगभग ६ फुट चौड़े और १२ फुट लम्बे या इससेभी बड़े होते हैं। गड्ढा घुटने तक गहरा होता है। इसमें लकड़ी खूब जलाई जाती है, जब लकड़ी जल जाती है और अंगारे रह जाते हैं तब जादूगर इसके एक सिरेसे दूसरे सिरेतक नंगे पैर जाता है। वह इसे पार करनेमें विशेष जल्दबाजी नहीं करता। उसे किसी प्रकारकी पीड़ा नहीं होती और न किसी प्रकारकी हानि। वह इस तमाशेको बार-बार दिखला सकता है। क्या यह वैज्ञानिक नियमोंके परे की बात है?
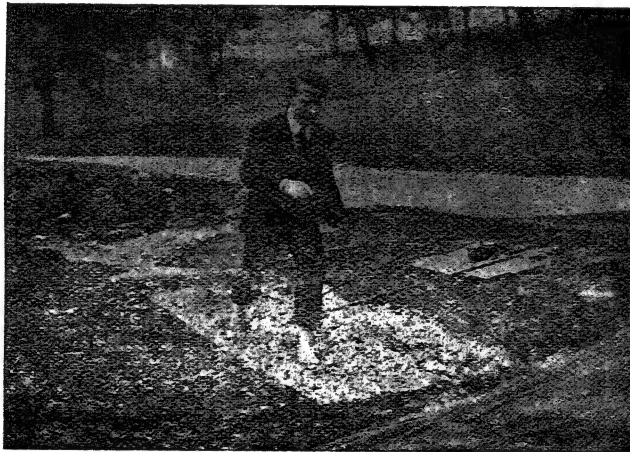
खुदाबख्श आगपर चलकर बाहर निकल रहा है। यह तमाशा उसने लण्डनमें दिखाया था।

मनुष्य विज्ञान वेत्ता बहुत दिनोंसे जानते हैं कि कुछ जातियोंमें आगपर चलना एक साधारण सी परिपाटी थी। फ्रेज़रकी लिखी पुस्तक 'गोल्डन बाउ' और ऐंड्रू लैंगकी पुस्तक 'मैजिक ऑव रीलिजन' दोनों अत्यन्त प्रामाणिक पुस्तकें हैं। जब किसी विज्ञानवेत्ताको मनुष्यके धार्मिक इतिहासकी किसी विशेष बातको जानना रहता है तो वह इन पुस्तकोंमें ढूंढता है। इन दोनों पुस्तकोंमें उस पूजा-पाठका वर्णन है जो अग्निपर चलनेके पहिले कई जातियोंमें किया जाता है। इनमें इस पूजा-पाठ और उपवासका अर्थ भी बतलाया गया है। अग्नि पूज्यदेव है, इससे सब कुत्सित शक्तियां नष्ट होती हैं; उदाहरणतः रोग। रोग का भूत अग्नि सहन नहीं कर सकता, इसलिए किसी भीव्यक्तिका यह भूत अग्निके उस पार तक पीछा नहीं कर सकता।

प्रोफ़ेसर लैंगलीने-वही जिसने वायुयानों के सम्बन्धमें प्रारम्भमें अनेक महत्त्वपूर्ण गवेषणाएंकी थीं, और जो स्मिथसोनियन इंस्टिट्यूशनका अध्यक्ष था—एकबार राइएटियामें तप्त पत्थरोंपर चलनेकी क्रियाको देखा। यह स्थान टाहिटीके पास सोसायटी द्वीपमें है। गड्ढा २१ फुट लम्बा, ९ फुट चौड़ा और घुटने तक गहरा, नीचे मोटे-मोटे कुंदे रख दिये गये और लकड़ीके ऊपर लगभग २०० ढोंके रख दिये गये। ये ज्वालामुखी पर्वतसे निकले स्थानीय छिद्रमय पत्थरके ढोंके थे

और इनमेंसे एक-एककी तोल २० से ४० सेर थी। इन पत्थरोंको लकड़ियों पर लाद दिया गया फिर आग जलादी गई और ४ घंटेमें पत्थर लाल होगये, कुछ तड़ाक-तड़ाक टूटने भी लगे। तब पुरोहित बार बार इन पत्थरोंके ऊपरसे होकर गुजरा। वह नंगे पैर था और उसे किसी प्रकारका कष्ट नहीं हुआ। लैंगलीने एक पत्थर जिस पर पुरोहितका पैर पड़ा था आगसे निकाल लिया और उसे पानी भरी बाल्टीमें छोड़ दिया। वह पानीको १२ मिनट तक उबालता रहा, जिससे सिद्ध होता है कि पत्थर अच्छा ताप-संचालक नहीं था। यदि पत्थर अच्छा ताप-संचालक होता तो वह बहुत शीघ्र ठंडा होता और कदाचित् पुरोहितका पैरभी जला देता। लैंगलीने इस पत्थरको अपनी प्रयोगशालामें लाकर उतना ही लाल किया जितना लाल वह राइएटियामें किया गया था। तब तापक्रम नापनेसे पता चला कि इसका तापक्रम १२०० डिगरी फारनहाइट था। सीसा ६२१ डिगरीपर पिघलता है।

केवल हालमें ही लैंगलीके उपरोक्त सरल प्रयोगके आगे कुछ उन्नति होसकी है।

पर्सिवल लॉविल, जिसकी ख्याति ज्योतिषके संबंधमें सारे संसारमें फैली हुई है, उसने जापानमें एक आदमीको अंगारोंपर चलता देखा था। गड्ढा १२ या १८फुट लम्बा रहा होगा और इसमें कोयले भर दिये गये, फिर इन्हें सुलगाकर लाल कर दिया गया, इसके बाद पुरोहित मंत्र पढ़ने लगा, तब वह गम्भीर परन्तु निःसंकोच मुद्रासे गड्ढेके एक सिरेसे दूसरे सिरे तक चला गया। वह नंगे पैर था। उसका कहना था कि उसने ऐसा मंत्र पढ़ा कि अग्निमें से जलाने की शक्ति चली गई थी। परंतु लॉविलको इसपर विश्वास नहीं हुआ। उसका कहना था कि उस व्यक्तिके तलुवे औरोंसे कुछ अधिक कड़े थे, यूरोपियनों की अपेक्षा पूर्वियोंको आंच कम लगती है और पूजा-पाठ तथा मंत्र-तंत्रके कारण वह व्यक्ति कुछ मंत्र-मुग्धसा भी था। इस प्रकार भौतिक, शारीरिक और मानसिक सभी कारण पीड़ा न होनेके अनुकूल थे।

[यहांपर अनुवादककी आंखों देखी घटनाका वर्णन अनुचित न होगा, परन्तु खेद यही है कि उस समय वह छोटासा बालक था और इसलिए सब बातें उसे स्मरण नहीं हैं। वह सातवीं या आठवीं कक्षाका विद्यार्थी रहा होगा और इसलिये उस समय उसकी आयु १२-१३ वर्षकी रही होगी। यह आजसे तीस-बत्तीस वर्ष पहिले की बात है। गवर्नमेन्ट जुबली हाई स्कूल गोरखपुरके हातेमें हैडमास्टरकी देख-रेखमें बड़ासा गड्ढा खोदा गया और उसमें खूब लकड़ी भरदी गई। आग लगाने के कई घंटे बाद हम लोग तमाशा देखनेके लिये बुलाए गए। स्कूलके सब मास्टर, जिनमें मेरे पिताजी भी थे, वहीं उपस्थित थे। जब

अहमदहुसेन आगपर चल रहा है और उसकी बांह पकड़कर कुछ अंग्रेज भी आगपर चल रहे हैं।

लकड़ी सब जल चुकी तब बड़े-बड़े बांसोंसे अंगारे उलट-पुलट दिये गये जिसमें राख हट जाय और अंगारे चौरस हो जांय। इसके पूर्व गड्ढेके आस-पासकी जमीन पर खूब पानी छिड़का गया था, क्योंकि स्कूलके नौकर जो आगको उलटने-पुलटनेके लिए बुलाए गए थे बिना पानी छिड़के वहां खड़े नहीं रह सकते थे। इसके बाद जादूगर—यह तमाशा ही था, कोई पूजा-पाठ नहीं—नंगे पैर गड्ढेके आर-पार चला गया। फिर उसने सुनाया कि कोई भी जो उसके साथ आग पर चलेगा, जलेगा नहीं; शर्त इतनी ही थी कि लोग एक दूसरेको पकड़े

रहें और उनमेंसे एक व्यक्ति उसे पकड़े रहे। हेडमास्टर साहब-श्री अघोरनाथ चटर्जी—ने किसीभी विद्यार्थीको आगमें न जाने दिया। परन्तु मास्टरोंमें से एक या दो व्यक्तियोंने हिम्मत करके आग पर चलने वालेका साथ दिया। जब उन्होंने बतलाया कि उन्हें कोई कष्ट नहीं हुआ तबतो बहुतसे लोग आग पर चलनेके लिए तैयार होगये। इसलिए दूसरी बार पूरी भीड़ आगमें पिल पड़ी। उसमें कई डरपोक भी थे। एक-दो दौड़ भागे। पीछे वे शिकायत करने लगे कि उनका पैर खूब भभा रहा है (अर्थात् उसमें जलन हो रही है), परन्तु उनको और कोई नुकसान न हुआ। केवल एक व्यक्तिके तलवेमें छोटा सा छाला पड़ गया, सो इसलिए कि अंगारेका एक छोटा-सा टुकड़ा उसके पैर में चिपक गया था। जादूगर के लिए यह बहाना था कि लोग हाथ छुड़ा कर भागे और इस लिए जले। चुपचाप चले चलते तो कुछ न होता। खैर, जो कुछभी कारण रहा हो, मास्टरोंका मज़ा कुछ किरकिरा हो गया। लड़कोंको तो खूब मज़ा आया; छुट्टी मिली थी, तमाशा देखा गया और जले हुए मास्टरों की उछल-कूद भी !]

रेजीनल्ड ऐड काक आग पर चल रहा है। लोहे के डंडे वस्तुतः विद्युत् ताप मापक हैं।

सायंटिफिक अमेरिकन लिखता है कि एक बार एक लेखक ने यह पूछा कि कहीं ऐसा तो नहीं होताकि हिपनाटिज्म से अचेत होकर दर्शक समझते हैं कि वे आगपर चलना देख रहे हैं यद्यपि सच्ची बात कुछ और ही रहती है। संपादकने इस प्रश्नको छाप दिया, जिसका परिणाम यह हुआ कि संसारके विभिन्न कोनों से लोगोंकी चिट्ठियां आने लगीं, जिनमें आंखोंसे देखी घटनाओंका वर्णन था। उदाहरणतः भारतवर्षसे निम्न पत्र पहुंचा।

"मैंने कम-से-कम दो बार आगपर चलनेकी क्रिया देखी है। मुझे यह देखकर बड़ा ही अचरज हुआ कि आगपर चलने वालोंको किसी प्रकारकी भी क्षति नहीं पहुंची। चिंगलपट ज़िला के पल्लावरम गांवमें मैंने देखा कि १८ व्यक्तियोंने जिनकी आयु १८ से ६५ वर्ष रही होगी, संस्कारमें भाग लिया। अग्निकुंड १६ फुट लम्बा, १२ फुट चौड़ा और ४ फुट गहरा था। इसमें मोटे-मोटे कुंदे जलाये गये। छः घंटे तक आग धधकती रही और तब उपरोक्त मनुष्य उसमें नंगे-पैर घुसे। वे केवल भीगी लुंगी पहने थे।

इन व्यक्तियोंने अग्निमें जानेके पहले स्नान किया था और भीगी लुंगी पहने हुए गये थे। कुछ विचित्र मंत्र गाते हुए वे अग्निपर निधड़क चल कर पार होगये।

मेरी ऐसी धारणा है कि अग्निपर चलने वालों ने अपने शरीर पर किसी पत्तीका रस लगा लिया होगा जिससे उनकी त्वचा आगसे नहीं जल सकी।"

"मैंने दूसरीबार जहां आग पर लोगोंको चलते देखा वहां संस्कारमें ५५ व्यक्तियोंने भाग लिया और केवल एकको क्षति पहुंची।"

नेटाल (दक्षिणीअफ्रीका) में बहुतसे पूर्वी निवासी हैं और उनके आग पर चलनेकी रीतिका निम्न वर्णन पीटरमारिट्सबुर्गके एफ०एच० विलियम्स से प्राप्त हुआ है। वे लिखते हैं कि "यह संस्कार एक प्रकारका प्रायश्चित्त है। इसका उद्देश्य यही है कि कर्ताओंको पापसे मुक्ति मिले और भविष्यमें वे पाप से बचें। दस दिन पहिले ही से वे व्रत रखते हैं। और इन दस दिनों तक वे किसी प्रकार का मांस, मत्स्य या मदिरा का सेवन नहीं करते, तथा स्त्रियोंसे भी दूर रहते हैं। प्रति दिन दो बार स्नान करते हैं। प्रति दिन मन्दिरों में जाकर वे पूजा करते हैं और भांति-भांतिकी प्रार्थना करते हैं। मूर्तियोंके सामने दण्डवत्

करते हैं वे किसी प्रकार का नशा नहीं खाते और न अपने पैरों में किसी प्रकारकी दवा ही लगाते हैं, परन्तु इतना अवश्य सच है कि नंगे पैर चलनेकी आदत रहनेके कारण उनके तलुए कड़े रहते हैं।

"संस्कारके दिन व्रतचारियोंको पुरोहितके आदेशानुसार स्नान करना पड़ता है और बराबर मन्त्र पढ़े जाते हैं। यह स्नान साधारणतः नदीमें किया जाता है। स्त्रियां बसंती साड़ी पहन कर मंगल-गान करती हैं। पुरुष अनेक प्रकारके बाजे बजाते हैं, जिससे यूरोपियनोंको ऐसा जान पड़ता है कि भयंकर नाद हो रहा है। इसके बाद व्रतचारी मंदिरकी ओर जाते हैं। साथ-साथ देवीकी मूर्तिकी चौकी पुरुषोंके कंधेपर चलती है और ढोल, मजीरा, सहनाई आदि बजते रहते हैं।"

"मंदिरके फाटक तक पहुंचते-पहुंचते उन लोगोंको जो अग्निमें चलनेको रहते हैं धार्मिक उन्माद-सा हो जाता है। वे कूदते और चिल्लाते रहते हैं और एक दूसरेको धक्का देकर सर्व-प्रथम अग्निकुण्डमें पहुंचनेकी चेष्टा करते रहते हैं। इस वर्ष १५ व्यक्ति सम्मिलित हुए। आगमें घुसनेके पहले एक बकरा बलि-दान किया गया। गड्ढा ३० फुट लम्बा, १० फुट चौड़ा और १८ इंच गहरा था जिसमें लाल अंगारे भरे थे। लम्बी लकड़ियोंसे हिलाकर अंगारों को चौरस कर दिया गया था।"

"पहले एक पुरोहित अग्निपर गया। उसने साधारण गति से चलकर गड्ढेको पार किया। इसके बाद व्रतचारी चले, दो-दो या तीन-तीन करके, कुछ तो लम्बे-लम्बे डग रखकर निकल भागे, कुछने छोटे-ही-छोटे डग रक्खे, परन्तु पैर तीव्रता से उठाते थे, कुछतो थोड़ी दूर जानेपर हिम्मत हार गए और गड्ढे की बगलकी ओर भागकर निकल आये परन्तु शेषने पूरी यात्रा समाप्त की और गड्ढेकी उस ओर तक जा पहुंचे। वहां दूब जमी थी। कुछ समय तक वे वहीं खड़े रहे। किसीभी व्यक्तिको किसी प्रकारकी क्षति नहीं पहुंची।

"हिंदू मंदिरके एक पहलेके सभापतिसे बात करनेपर मुझे विश्वास हो गया कि इस संस्कारमें किसी प्रकारका धोखा नहीं है और न किसी प्रकारसे तलुएको औषध लगाकर कड़ा किया जाता है। इन सज्जनका जन्म नेटालमें ही हुआ था और ये सुशिक्षित हैं। दो यूरोपियन भी एकबार ऐसे संस्कारमें सम्मिलित हुए। वे भी दस दिन तक व्रत रक्खे रहे। एकतो अच्छी तरह अंगारोंपर चलकर पार हो गया, परन्तु दूसरेके एक अंगूठेमें छोटा-सा फफोला पड़ गया, पैर क्यों नहीं जला यह बात मेरी समझमें नहीं आई। हिन्दुओंका कहना है—कि देवताओंकी कृपा है। मनुष्य पवित्रतासे रहे तो अग्निसे न जलेगा। अज्ञानी लोग तरह तरहके सिद्धान्त उपस्थित करते हैं—मोह, नशा, औषधि आदि—परन्तु ये सब बातें झूठी जान पड़ती हैं। भक्ति ही प्रधान कारण जान पड़ता है।"

एक दर्शक लिखता है कि पैरपर लगे पानीके कारण लोग न जलते होंगे। धोबी लोग इस्त्रीकी गरमी जाननेके लिए अंगुलीको पानीमें भिगोकर इस्त्रीको छूकर देखते हैं, परन्तु उनकी अँगुली नहीं जलती, क्योंकि अँगुली पर लगे पानी से जो भाप उठती है वह अँगुलीको बचाती है। कुछ लोग पिघले सीसेको अँगुलीसे इधर-उधर हटा सकते हैं। इसलिए पैर पर लगा पानी अवश्य ही तलुवेको जलनेसे बचाता होगा।

उपरोक्त दर्शकके मनमें जो बात है अवश्य ही वह वैज्ञा-निक बात है। खूब गरम तवे पर पानी पड़नेसे पानी की बूंद भन भन करके उबलनेके बदले पारेकी बूंदकी तरह गोल हो जाती है और तवे पर बहुत देर तक टिकी रहती है। इसका कारण यह है कि बूंद तवेको छू ही नहीं पाती। वह अपनी ही भाप पर उतराने लगती है। तो भी उपरोक्त दर्शककी यह धारणा ठीक नहीं है कि आगपर चलने वालोंका पैर इसलिए नहीं जलता कि उनके तलुवे में पानी लगा रहता है। यदि पानी-वाला सिद्धान्त ठीक होता तो तलुवे तक लगातार पानी पहुंचने का कोई प्रबन्ध होना चाहिए था, एक बार का लगा जल तो एक आध सेकण्डमें ही सूख जायगा।

सैनफ्रान सिसको से एक व्यक्ति लिखता है कि "मैंने अग्निपर चलने की क्रियाकोएक बार देखा, इसमें मुझे तो कोई रहस्य ही नहीं जान पड़ता।

"आगपर चलनेकी बात टाहिटी द्वीपकी है वहां कुछ राइएटिआ निवासियोंने आकर इसे दिखलाया था। इस बात की पूर्व सूचना मुझे मिली और मैंने अपने उस देशके निवासी कई मित्रोंसे प्रश्न किया। सभीकी समझमें इसमें कोई भूत-प्रेत से सम्बन्ध रखने वाला कारण था, इसपर मुझे विश्वास नहीं हुआ। मैंने सोचा कि अवश्य ही इसका कोई वैज्ञानिक कारण होगा। यदि यहांके निवासी इस काम को कर सकते हैं तो मैं

भी इसे कर सकता हूं, परन्तु पीछे पता चला कि मैंने यहां कुछ गलती की । मैंने उसी समय ठान लिया कि जो कुछ भी यहांके निवासी करेंगे वही मैं भी करूंगा, हां यदि यहां वाले मुझे रोक न दें तो।

"आगपर चलनेका दिन आ ही गया। मैंने देखा कि लगभग १८ फुट लम्बा, १२ फुट चौड़ा और ३ फुट गहरा गड्ढा खोदा गया था। इसकी पेंदीमें पत्थरके ढोंके रक्खे गये जो १२ या १४ इंच व्यासके रहे होंगे। ऐसे ढोंके अक्सर पहाड़ी नदियों के पेदोंमें मिलते हैं । इन पत्थरोंके ऊपर लकड़ी के कुंदे जल रहे थे और इनकी लौ ६ फुट तक उठ रही थी।

"तीसरे पहर मैं वहां फिर गया। देखा बड़ी भीड़ लगी है। आग जलाये अब कई घंटे हो चुके थे और प्रायः बुझ चुकी थी। इस समय पत्थरके ढोंके अंगारोंसे ढंके थे और अंगारों के ऊपर थोड़ी-बहुत लौ उठ रही थी । अब लोगोंने लम्बी-लम्बी बल्लियोंसे पत्थरों को उभाड़ना आरम्भ किया जिससे शीघ्र पत्थर ऊपर आगये और अंगारे उनके नीचे चले गये। पत्थरोंका ऊपरी आधा तो लाल नहीं दिखलाई पड़ता था, परन्तु नीचेका भाग लाल था।

"अब वहांके निवासियोंमें से लगभग ६ व्यक्ति केवल कमरमें लुंगी लपेटे एक पंक्तिमें खड़े होकर आगकी ओर बढ़े। उनकी लुंगियां घुटने तक ही पहुंच रही थीं। अगुआ अपने हाथमें लम्बी पत्तियोंका एक गुच्छा लिये था, वहां यह पत्ती पवित्र मानी जाती है । कुंडके किनारे पहुंच कर अगुआ रुक गया और उसने आकाशकी ओर मुंह करके उच्च स्वरमें कुछ मन्त्र पढ़ा फिर झुक कर एक पत्थर को उसने तीन बार अपने हाथ की पत्तियोंसे झाड़ा। इसके बाद निश्चिन्त भावसे नंगे-पैर पत्थरोंपर चला गया और धीरे-धीरे चल कर पूरा १८ फुट पार कर डाला। उसके साथी भी उसके पीछे-पीछे चल कर पार होगये। इसके बाद वे उल्टी दिशामें भी कुंडको पार कर गए। इस प्रकार यह संस्कार समाप्त हुआ।

"ज्यों ही उपरोक्त व्यक्ति गड्ढेमें से निकल आये, मैं भी किनारे पर नंगे-पैर पहुंचा। जांच करनेके लिए, जैसा मैंने पहलेसे ही निश्चित कर लिया था, मैंने एक पैर बढ़ा कर एक पत्थर पर ज़ोरसे दे मारा और तुरन्त पैर खींच लिया। जैसा मैंने अनुमान किया था बात वैसी ही निकली। मेरा पैर जला नहीं। इसलिए मैं तुरन्त कुंडमें चला गया और तप्त पत्थरों पर पैर रखता कुंडको पार कर डाला । फिर मैं उसी प्रकार वापस भी आया। इस प्रकार वहां के देश-निवासियों की तरह मैंने भी तप्त पत्थरों पर चल कर सफलता पाई, परन्तु इतना मुझे अवश्य मानना पड़ता है कि मैं उतना धीरे-धीरे नहीं चल सका जितना धीरे-धीरे वे चले थे । वस्तुतः मुझे बहुत तेज चलना पड़ा। तब मैंने अपने पैरोंकी जांच की। किसी प्रकारकी क्षति नहीं पहुंची थी, परन्तु उनमें जलन अवश्य जान पड़ रही थी। मैं दो मिनट में फिर उन पत्थरों परसे चला गया और लौट आया और इस प्रकार कुल मिला कर कुंड को चार बार पार किया, परन्तु दोबारा जाना उचित न था, क्योंकि अबकी बार पैरों की जांच करने पर मैंने देखा कि मेरे एक पैरमें अठन्नीके बराबर एक जगह छाला पड़ गया था। सारे तलुएमें खूब जलन मालूम पड़ रही थी। पत्थर बहुत गरम जान पड़ते थे, परन्तु असहनीय नहीं थे।

"जो पत्थर इस्तेमाल किये गये थे वे ज्वालामुखीकी उत्पत्ति के और इन टापुओंके ही थे। देखनेमें वे रबर-स्पंज के समान थे, अत्यन्त छिद्रमय। अवश्य ही वे किसी समय पिघली हुई दशा में और गैसों से भरे रहे होंगे। इसलिए वे ताप के अच्छे संचालक नहीं थे। एक बात और थी। यहां के निवासियों के तलुए की त्वचा मेरे तलुओं की त्वचा से कहीं अधिक कड़ी और मोटी होती है।"

तप्त पत्थरों पर आदमी २५ कदम चल सकता है। पत्थर लाल अवश्य हो जाते हैं, परन्तु वे सर्वत्र एक-समान लाल नहीं हो पाते। प्रोफेसर लैंगली ने देखा था कि पत्थर जहां लाल नहीं रहते वहां भी बहुत गरम रहते हैं। तो भी तप्त पत्थरों पर चलना उतना कठिन और उतना कष्टप्रद नहीं है जितना अंगारों पर चलना । अंगारों पर अपेक्षाकृत बहुत कम ही डग चले जा सकते हैं। साधारणतः अंगारों का तापक्रम पत्थरों से कहीं अधिक होता है; कमसे-कम पत्थरों के उन भागोंसे जहां पर पैर पड़ता है अंगारों का तापक्रम अवश्य अधिक रहता है।

अब हम लगडन की वैज्ञानिक परीक्षाओं की बात करते हैं । वहां पहली बार ऐसा अवसर प्राप्त हुआ कि भौतिक विज्ञानवेत्ता भी जांच में सम्मिलित हो सकें।

कुछ दिन हुए लगडन की प्रेत-विद्या-परिषद् ने अग्नि पर

चलने वालों की परीक्षा करने का निश्चय किया। तब इस परिषद् के मन्त्री ने अग्नि पर चलने वालों को बुलाने के लिए विज्ञापन निकाला। बहुत-सी चिट्ठियां ऐसे लोगों की आईं जिन्होंने दूसरोंको आगपर चलते देखा था, परन्तु उनमें से कोई स्वयं आगपर चलने के लिए तैयार नहीं था। अन्त में एक भारतीय मुसलमान खुदाबख्श आया और उसने कहा कि मैं आग पर चल सकता हूं। तब जांच की तैयारी की गई। नीचे की बातें जांच की रिपोर्ट से उद्धृत की जाती हैः—

"जांचोंका उद्देश्य यह था कि पता लगाया जाय कि क्या सचमुच खुदाबख्श अग्निपर चलते समय अग्निसे सुरक्षित रहता है, और यदि रहता है तो क्यों? आगपर चलने पर किसी छल का प्रयोग किया जाता है या नहीं? क्या चलने वाले अपने पैर को किसी प्रकार विशेष रूपसे तैयार करते हैं? क्या वे दूसरों को भी आग की जलनसे मुक्त कर सकते हैं? क्या कुछ लोगों की धारणा कि वे अपने तलुओंमें फिटकरी, नमक, साबुन और सोडा लगाते हैं, सत्य है? क्या वे आगपर चलते समय मन्त्र-मुग्ध अवस्थामें रहते हैं? क्या उनमें भक्ति और श्रद्धा की आवश्यकता है? क्या वे किसी प्रकारकी दवासे अपना पैर सुन्न कर लेते हैं? क्या अंगारों पर की राख इतनी बुरी ताप-संचालक होती है कि उसीके कारण पैर नहीं जलते? क्या चलने वालेको आगपर झटपट दौड़ जाना पड़ता है या वह वहां धीरे-धीरे भी चल सकता है? क्या उपवास करना आवश्यक है? खुदाबख्शने कहा कि श्रद्धाके कारण वह नहीं जलता। उसने इसका भी दावा किया कि वह दूसरोंको भी अग्निमें न जलने की शक्ति प्रदान कर सकता है और बिना किसी प्रकार की क्षति पहुंचे उन्हें आगपर अपने साथ ले जा सकता है।"

गड्ढा एक फुट गहरा, तीन फुट चौड़ा और २५ फुट लम्बा खोदा गया। इसमें ८० मन लकड़ी रक्खी गई और जला दी गई। डेढ़ घण्टे बाद इसपर लकड़ी का कोयला भी लाद दिया गया; यह मन्त्री के सुझाने पर किया गया जिससे अग्नि अधिक स्वच्छ, और गरम हो जाय और सतह अधिक चौरस हो जाय। आरम्भसे साढ़े तीन घण्टे बाद लकड़ी बिलकुल जल गई थी। केवल लाल और काले अंगारे रह गये थे। इनकी तह तीन इंच मोटी रही होगी। इतनी आग बहुत कम थी। खुदाबख्श चाहता था कि अंगारोंकी तह कमसे कम ६ इंच मोटी हो। वह कारण ठीक ठीक न बतला सका, इतना ही कहा कि अधिक अंगारों पर चलना आसान पड़ता है। तो भी, वह इसी आगपर चला।

आगपर चलनेके पहले खुदाबख्शके पैरोंकी जांच आक्सफोर्डके डाक्टर विलियम कॉलियरने की और सबको बतलाया कि खुदाबख्शके पैरमें कोई विशेषता नहीं है। फिर, भीगी रूई से तलुए रगड़े गये और रूई रासायनिक परीक्षाके लिये भेजी गई, परन्तु उसमें कुछ नहीं निकला। तब एक पैरको अच्छी तरह धो डाला गया जिससे यदि कोई वस्तु पुती हो तो छूट जाय।

खुदाबख्शने अग्निकुंडके किनारे पर खड़ा होकर कुरानकी कुछ आयतें अस्फुट स्वरसे पढ़ीं। तब वह आगपर चला गया और चार कदम चला। प्रत्येक पैर आगपर दो बार पड़ा, वह दौड़ा नहीं, तो भी वह काफी तेज़ीसे चला। फिर वह अग्निकुंड की बगलपर चढ़ गया। इसका कारण उसने यही बतलाया कि आग बहुत छिछली है।

इसके बाद इसी आग पर वह तीन बार गया, परन्तु वह खूब तेज़ीसे गया जिससे उसके पैर आगपर कम बार ही पड़ पाये। उसके पैरोंकी जांचकी गई और पता चला कि किसी प्रकारकी क्षति नहीं पहुंची है। तीस मिनट बाद पैरोंकी फिर जांच हुई; तब भी फफोले नहीं पड़े थे। इसके बाद उसने उस अग्निपर चलनेसे इनकार कर दिया और कहा कि यह आग मुझे पसन्द नहीं है।

उपस्थित डाक्टरोंमें से एकके कहने पर आगकी जांच कपड़ेसे की गई। मनुष्यकी त्वचा कपड़ेकी अपेक्षा कम ताप-क्रम पर ही झुलस जाती है। इसलिए कपड़ेको लकड़ीके फरमेपर लपेटा गया, इस नकली पैरको आगपर चलाया गया और एक ही सैकंडमें कपड़ा झुलस गया। ढाई सैकंडमें कपड़ेमें कई जगह छेद हो गये।

एक व्यक्तिने स्वयं आगपर चलनेकी इच्छासे आगकी परीक्षा लेनी चाही। उसने क्षणभर के लिए अपना नंगा पैर अंगारोंपर रखकर हटा लिया। उसके पैरमें पीछे बहुत समय तक जलन होती रही। फिर उसने दो डग उस अग्निपर रक्खे और कूदकर बाहर निकल आया, कहने लगा कि आग बहुत जल रही है। उसके पैरमें बहुत जलन पैदा होने लगी। कुछ समय

तक तो कोई विशेष बात नहीं हुई परन्तु ३० मिनटके भीतर उसके तलुएमें फफोले पड़ गये। वह खुदाबख्शसे अधिक तेजी से चला था। इसके बाद पता चला कि अंगारोंपर बहुत तेज चलनेसे भी पैर जलते हैं। तोलमें यह व्यक्ति ८४ सेरका था। खुदाबक्श कुल ६० सेरका था। ऐसा अनुमान किया जाता है कि अग्निपर चलने और चलने वालेकी तोलमें कुछ सम्बन्ध है और बहुत भारी आदमियोंको आगपर चलने की चेष्टा नहीं करनी चाहिए।

दूसरी बारके लिए ३० मन जलौनी लकड़ी, २०० मन भारी कुन्दे और एक गाड़ी कोयला इकट्ठा किया गया। गड्ढे को पाटकर कुल ९ इंच गहरा रहने दिया गया, उसे ६ फुट चौड़ा कर दिया गया और खुदाबख्शके कहनेपर इसकी २५ फुटकी लम्बाईके बीचमें ३ फुट चौड़ी जमीन पाट दी गई। इस प्रकार दो ग्यारह-ग्यारह फुटके गड्ढे रह गये और बीचमें तीन फुटका चबूतरा बन गया।

पहली जांचके आठ दिन बाद दूसरी जांच हुई, लकड़ी जला दी गई और कुछ घण्टों बाद केवल अंगारे ही रह गये। नौ इंच गहरा गड्ढा अंगारोंसे भरकर जमीनसे चौरस हो गया था। इसमें से ऐसी आंच निकल रही थी कि ६५ फुटकी दूरीपर स्पष्ट गरमी लगती थी। आगको जलाने वालोंको ठण्डा चश्मा पहनकर काम करना पड़ता था। और सामने लकड़ीकी ढालसे आड़ करनी पड़ती थी। हवा तेज चल रही थी और अंगारोंकी सतह धधक कर खूब चमक उठी थी। राख उत्पन्न होते ही हवामें उड़ती जा रही थी।

इसके बाद आगपर लकड़ीका कोयला डाल दिया गया। २० मिनटमें वहभी सुलग कर लाल हो गया। खुदाबख्श की जांच अब एक डाक्टर और तीन वैज्ञानिकोंने की। अन्य कई एक वैज्ञानिक भी उपस्थित थे। जांचके बाद डाक्टरने कहा कि खुदाबख्शके पैरमें कोई असाधारण बात नहीं हैं। तलुएकी त्वचा कड़ी नहीं थी, वह नरम थी। छूनेमें पैर ठण्डा जान पड़ता था। तापक्रम नापने पर त्वचाका तापक्रम ९३·२ डिगरी निकला। त्वचा बहुत सूखी थी। तब पैर धोये गये और उन्हें अच्छी तरह सुखा दिया गया। तब एक तलुएके बीचमें ज़िंक ऑक्साइड प्लास्टरकी एक चिप्पी लगा दी गई जिसमें देखा जा सके कि प्लास्टरका कपड़ा जलता है या नहीं।

लकड़ी जलाने से लेकर अबतक आठ घण्टे हो चुके थे। खुदाबख्श आगपर गया और केवल पहले गड्ढेको पार किया। इस प्रकार वह केवल ११ फुट ही आगपर चला। घड़ीसे समय नाप लिया गया और पता चला कि इसमें उसे ४½ सेंकड लगे। उसने कुल चार डग रक्खे थे, परन्तु ये दृढ़ता, स्थिरता और कुछ वेगसे रक्खे गये थे। वैज्ञानिकोंके नापोंसे पता चला कि प्रत्येक पग आधे सेंकड तक अग्निपर था।

इसके बाद जब खुदाबख्शके पैरोंका तापक्रम नापा गया तो पता चला कि तापक्रम अब ९३ डिगरी था। यह तापक्रम पहलेसे कुछ कम ही था और इसका कारण यह हो सकता है कि उसने अग्निकुंडके बाहर ठण्डे घासपर पैर रख दिया था। उसके पैरोंमें किसी प्रकारकी क्षति नहीं पहुंची थी। प्लास्टरकी चिप्पी नहीं जली थी, केवल उसके वे किनारे जो ठीकसे चिपक नहीं पाये थे झुलस गये थे। उसने इसके बाद अग्निकुण्डमें चार डग और रक्खे, परन्तु उसके पैरोंमें किसी प्रकारका नुकसान नहीं पहुंचा। ४८ मिनट बाद पैरोंकी फिरसे जांच हुई तो पता चला कि कोई फफोले नहीं पड़े हैं।

जिस आगपर खुदाबख्श चलता था वह कितनी गरम थी? विद्युत् तापमापक लगाकर वैज्ञानिकोंने इसका तापक्रम नापा था उन्होंने बतलाया कि सतहका तापक्रम ८०६ डिगरी फारनहाइट था और भीतर २५५२ डिगरी। भीतरका तापक्रम वस्तुतः इतना था कि उसमें इस्पात पिघल जाता। हवा तेज चल रही थी, इसीसे तापक्रम इतना बढ़ गया था। वस्तुतः जब खुदाबख्श तीसरी बार आगपर चलनेको था तो उसने ५ मिनटकी मोहलत मांगी, परन्तु अन्तमें उसने कहा कि अब मैं फिर आज आगपर नहीं चल सकता हूं; मेरी श्रद्धा इस समय भंग हो गई है और मेरा दिल कह रहा है कि यदि मैं फिर आज आगपर चलूंगा तो जल जाऊंगा। वह चिन्ताग्रस्त और घबराया-सा लग रहा था। इसीलिये मन्त्रीने उससे तीसरी बार चलनेके लिए ज़िद नहीं किया। इसमें सन्देह नहीं कि खुदाबख्श का अनुमान ठीक था; क्योंकि डाक्टर ई० एच० हंटने जो वहां उपस्थित थे और भारतवर्षमें आगपर चलना देख चुके थे—बतलाया कि परिस्थिति बहुत ही विकट है। ऐसी प्रचण्ड अग्निमें शायद ही कोई दूसरा व्यक्ति आगपर चलनेकी हिम्मत करता; तेज हवासे आंच बहुत ही ज्यादा बढ़ गई थी।

उस नौसिखियेने, जो पहिली बार भी आगपर चला था, आज भी आगपर दो डग रक्खे, परन्तु बगलसे होकर निकल आया। डाक्टरने जांचके बाद बतलाया कि पहिलीबार के पड़े छाले अभी बिल्कुल अच्छे नहीं हो पाये हैं और इसबार कुछ नये छाले भी पड़ गये हैं। उसकी त्वचा खुदाबख्श की त्वचासे कम सूखी थी और सम्भव है इसीसे फफोले पड़े हों क्योंकि देखा गया कि एक जगह कोयलेका एक छोटा-सा टुकड़ा चिपक गया था और उसे हटानेपर पता चला कि वहां फफोला पड़ गया था। वह खुदाबख्शसे कुछ अधिक तेजीसे चला था। ये दोनों बातें स्मरणीय हैं क्योंकि पीछे जो प्रयोग हुए उनमें भी इन दोनों बातोंके कुपरिणामके दृष्टान्त मिले। त्वचाके अधिक नर्म रहनेपर अंगारे के चिपकनेकी बातसे उस सिद्धान्त की जड़ कट जाती है जिसके अनुसार भाप पैरोंको जलनेसे बचाती है। तेज चलनेसे कदाचित् परिणाम यह होता है कि पैर आगपर बराबर नहीं पड़ते। कहीं अधिक बल पड़ जाता है और इसलिये पैर वहां जल जाता है। एक ब्रिटिश नौसिखिये ने अपने आप ही आगपर चलना सीख लिया। उसकी चर्चा आगे की जायगी। उसके प्रयोगोंसे स्पष्ट पता चला कि आग पर चलते समय शान्त चित्तसे चलना चाहिये, घबड़ा कर दौड़ना नहीं चाहिये। निःसन्देह इस नौसिखेको अन्दाज मिल गया होगा कि किस वेगसे चलनेसे सबसे कम आंच लगती है, क्योंकि बहुत जल्दबाजीसे भी और बहुत धीरे-धीरे चलनेसे भी पैर जलता है।

इसके बाद एक दूसरे व्यक्तिने भी आगपर चलनेकी चेष्टा की। उसने आगपर कुल दो डग रक्खे और सो भी बहुत तेजी से उसके पैरमें बहुतसे छाले पड़ गये और तीन जगहोंसे रक्त बहने लगा। सम्भव है कि अग्निकुंडसे बाहर निकलनेपर पृथ्वीकी रगड़से कुछ फफोले दरकच गए हों और इसीसे रक्त निकल पड़ा हो। इस व्यक्तिकी तोल ८१ सेर थी।

मन्त्रीने इन सब व्यक्तियोंका सिनेमा चित्र लिया था। उससे पता चला कि खुदाबख्श दोनों नौसिखियोंसे अधिक धीरे-धीरे चला था।

मन्त्री महोदय इस सिद्धान्त पर पहुंचे कि आग पर चल सकनेके लिए यह आवश्यक नहीं है कि अंगारों पर राख पड़ी हो; वस्तुतः प्रत्येक बार आगपर चलनेके पहले राख हटा दी जाती थी। त्वचा कहीं भी आगपर एक बारमें आधे सेकण्ड से अधिक समय तक नहीं रहती थी। इसके पीछेके प्रयोगोंके बाद इस सिद्धान्तमें कुछ परिवर्तन करना पड़ा।

इसके कुछ समय बाद लण्डनमें ही एक दूसरे मुसलमान जादूगर की जांच हुई। इसका नाम अहमद हुसैन था और यह भारतवर्षमें कई बार आगपर चल चुका था। तीन बार जांच हुई। साथ ही कई अंग्रेज वालिन्टियरों (स्वयं सेवकों) की भी जांच हुई क्योंकि हुसैन का यह दावा था कि वह दूसरों को भी अपने साथ आगमें ले जा सकता है। जान पड़ता है कि जांच करने वाली परिषद आगपर चलनेकी विदेशी मॉनोपोली* को तोड़ कर इस व्यवसायको अपने ही देशमें फैलाना चाहती थी, क्योंकि परिषद्ने वॉलिन्टियरोंके लिए विज्ञापन निकाला और ४० व्यक्तियोंने अपना नाम लिखाया। इसमेंसे पांच व्यक्तियों को परिषद्ने चुना। उनके व्यवसाय भिन्न-भिन्न थे और उनकी तोलें क्रमानुसार ६२, ७१, ७२, ७८ और ८९ सेर थीं। हुसैन की तोल ६३ सेर थी।

(शेष फिर)
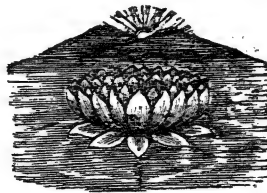
* मॉनोपोली = कोई ऐसा व्यवसाय जिसे दूसरों को करने का अधिकार न हो।

टाइफ़ॉयड फैलाने वाली स्त्री

[लेखक—कैप्टेन डाक्टर उमाशङ्कर प्रसाद एम. बी. बी. एस.]

न्यूयार्कसे मिस मेरी मेलनकी मृत्युकी खबर मिली है। यह महिला ७० वर्षकी अवस्था तक पहुंच चुकी थी और देहातके एक बंगलेमें रहती थी जिसे मेरीके रहनेके लिये स्टेटने अपने खर्चसे १६३३ में खरीदा था। उसकी मृत्यु अर्धाङ्ग रोग द्वारा हुई। मिस मेरी मेलनके शरीरमें मोतीझरा (टाइफ़ॉयड) बीमारीके कीटाणु भरे पड़े थे। वह स्वयं मोतीझरा से बीमार न होकर भी असंख्य मोतीझरा के कीटाणुओंको मल द्वारा नित्य बाहर फैलाती थी जिससे शहरमें मोतीझरा फैलने का बहुत डर था। मिस मेरी मेलनको जनता 'टाइफ़ॉयड मेरी' के नामसे जानती थी। यहां इसका कुछ हाल दिया जा रहा है, जिसे पढ़नेसे आप समझेंगे कि जनताके शारीरिक स्वास्थ्य के विचार से अमरीका की सरकार का स्वास्थ्य-विभाग क्या-क्या करता रहता है।

मेरी न्यूयार्क में रसोई का काम करती थी। १६०४ में इसी घर में चार नौकरों को मोतीझरा हो गया। तब डाक्टरों को शक हुआ कि शायद मेरी ही मोतीझराके कीटाणुओं की खान है! १६०७ में मेरीने दूसरे खानदानमें रसोई बनानेकी नौकरी करली तो वहां भी दो मनुष्यों को मोतीझरा हो गया। जिससे एक की मृत्यु हो गई इससे यह बिचार और दृढ़ हो गया। पता लगाने पर मालूम हुआ कि १६०० ई० में जबसे मेरीने रसोइयेका पेशा शुरू किया था मोतीझरा बीमारी फैलने लगी थी, परन्तु किसीके ध्यानमें यह बात नहीं आई थी। इस प्रकार १६०१, १६०२, १६०४, १६०६ (दो बार) तथा १६०७ में कइयोंको भीषणरूपमें मोतीझरा हुआ। १६०७में मेरीको जबरन नौकरी से अलग होना पड़ा और कई साल तक पृथक् रक्खी गई, क्योंकि उसके शरीरसे मोतीझरा कीटाणु निकलते और फैलते थे। १६१४ में वह पुनः अस्पताल में रसोईदारिन नियुक्त हो गई जिससे पुनः मोतीझरा की जोरदार बीमारी फैली। इसके बाद से मेरी १० साल तक पृथक् रक्खी गई और सरकार के खर्च पर मकान मिला। मेरी के मल तथा पित्त में मोतीझरा के कीटाणु पाये जाते थे। मोतीझराके रोगी प्राय: २ से ५ प्रतिशत मोतीझरा के कीटाणुओं को अपने शरीर में अतिथि बना लेते हैं। स्वयं तो ये लोग अब मोतीझरा से बीमार नहीं पड़ते परन्तु इनके मल-मूत्र में ये कीटाणु भरे रहते हैं और शहर में इस कारण मोतीझरा का बहुत आतंक हो जाता है। अमेरिका तथा अन्य देशों में जहां मोतीझरा बहुत होता रहता है प्राय: ०.११ जनता मोतीझराके कीटाणुओं को अपने अंगों में धारण किये रहती है और स्वयं बीमार नहीं होती। इन लोगों से शहर के पड़ोसियों में बीमारी फैलने का सर्वदा डर रहता है। यदि खाद्य पदार्थ, शाक, तरकारी, दूध, बर्फ का रोजगार इन लोगों के हाथ में रहा तब तो बहुत मुश्किल हो जाती है क्योंकि ऐसी अवस्था में छूत बहुत जल्द दूर तक पहुंच जाती है। सबका प्रयत्न यही रहना चाहिये कि ऐसे लोगों का ढूंढ़ कर पता लगाया जाय और सब लोगों से पृथक् रक्खा जाय तथा उचित चिकित्साकी जाय। ब्राडनिंग महोदय की राय है कि मोतीझरा से अच्छे होने के ६ महीने बाद भी जिनके मल-मूत्र में मोतीझरा मिलता है ऐसे लोग इन कीटाणुओं को फैलाते ही रहेंगे और दो साल तक कीटाणु फैलाने वालों से यह आशा करना कि सम्भवत: कीटाणुओं का शरीर से निकलना आप-से आप बन्द हो जायगा भूल है। अभी तक ऐसे मनुष्यों को कीटाणु मुक्त करने के लिये केवल शल्य चिकित्सा की ही शरण लेनी पड़ती है क्योंकि औषधियां बेकार सिद्ध हुई हैं।

क्या भारतमें हिटलर का गुप्त रेडियो स्टेशन है ?

प्रायः यह सुननेमें आया है कि भारतमें कहीं न कहीं अवश्य ही जर्मनीका रेडियो स्टेशन कार्य कर रहा है। यह धारणा कितनी भ्रमोत्पादक तथा निराधार है, यह आप श्रीजासलिन हेनेसी द्वारा दिल्ली रेडियो पर दिये गये भाषणसे जान लेंगे, जिसका सारांश नीचे दिया जाता है।

क्या भारत में जर्मनी या इटली को सम्वाद भेजने का गुप्त रेडियो स्टेशन है ? कई अवसरों पर मुझ से यह प्रश्न किया गया है, क्योंकि प्रश्न करने वालों का यह विश्वास रहा है कि भारत सम्बन्धी समाचार जर्मन और इटालियन रेडियो तक अद्भुत तेजी से पहुंच जाते हैं।

उदाहरणार्थ २१ मार्च को रोमके रेडियो स्टेशनने दिल्ली में केन्द्रिय व्यवस्थापिका परिषद के किसी सदस्य द्वारा पूछे गये प्रश्न की कुछ ही घण्टे बाद चर्चा की थी। सुभाषचन्द्र बोसके गायब होनेका समाचार, भारतमें ज्ञात होनेके कुछ ही घण्टे बाद, शत्रु पक्षके रेडियोसे भी सुना दिया गया था।

उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर यह है कि जर्मनी और इटली को भारत में अपना गुप्त रेडियो केन्द्र रखने की आवश्यकता नहीं है। समाचारों को एकत्र किये जाने और फिर उन्हें बाहर के स्थानोंमें भेजनेके विषयमें जिन लोगोंको कुछ भी जानकारी है वे रोम और बर्लिननें भारतीय समाचारोंके इतनी जल्दी पहुंचने की बातको आसानीसे समझ सकते हैं।

समाचार समितियों की शृङ्खला

वर्तमान युद्ध प्रारम्भ होनेसे पूर्व समाचार समितियोंकी एक शृंखला संसार भरमें फैली हुई थी। बृटिश राष्ट्रमण्डलकी रायटर्स, अमेरिकाकी एसोशियेटेड प्रेस, जर्मनीकी डी. एन. बी., फ्रांस और फ्रेंच साम्राज्यकी हावास, इटलीकी स्टेफानी, जापान की डोमे तथा स्विटजरलैण्ड, पोलैण्ड और अन्य देशोंकी समितियोंने मिलकर संसार भरके मिले समाचारोंको एकत्र करने और सभी सम्मितियों द्वारा समान रूपसे उनके उपयोगकी व्यवस्थाकी थी।

गत शताब्दीके मध्य हुए एक समझौतेके अनुसार इन समितियोंमें से प्रत्येक अपने अपने क्षेत्रोंमें समाचारोंका संग्रह करती थी और अन्य समितियोंसे उनके समाचारोंको परिवर्तनके रूपमें प्राप्त करती थी। यह इस तरह होता था; रायटर्सके लन्दन वाले प्रधान कार्यालयमें हावास, स्टेफानी तथा अन्य देशोंकी समाचार समितियोंके लन्दन स्थित सम्वाददाताओंके लिए कमरे नियत रहते थे, और संसारके विभिन्न भागोंसे रायटर्सके टेली-फोन और तारसे प्राप्त होने वाले सभी समाचारोंको वे देखते थे, और जिन समाचारोंमें उनकी दिलचस्पी होती थी, उन्हें चुन चुनकर अपने देशोंके लिए भेज सकते थे। इसप्रकार रायटर्सके क्षेत्रमें मिले समाचार डी. एन. बी. को बर्लिनमें, हावासको पेरिसमें और स्टेफानीको रोममें मिल जाते थे।

सबको सुविधा

इस व्यवस्था से सभी समाचार समितियों को सुविधा थी। इससे प्रत्येक समिति के खर्च में भी किफायत होती थी। यदि लन्दन की रायटर्स अथवा अमेरिका की एसोशियेटेड प्रेस समाचार समितियां फ्रेंच समाचारों के लिए हावास पर निर्भर रहने के स्थान पर प्रमुख फ्रेंच नगरों में अपने विशेष सम्वाद-दाता अलग से रखतीं तो वेतनों, कार्यालयों और तारों का खर्च उनके लिए असह्य हो जाता। हावास क्योंकि फ्रांस के विविध केन्द्रों से समाचार संग्रह कर रही थी, इसलिए अन्य देशों की समितियों के लिए उससे समाचार मांग लेना ही विवेकपूर्ण मार्ग था।

युद्ध से पहिले

युद्ध से पहिले रायटर्स समाचार समिति बृटिश राष्ट्रमण्डल भर में सम्वाद संग्रह करती थी और लन्दन के अपने प्रधान कार्यालय में उसका उपयोग अन्य समाचार समितियों को भी कर लेने देती थी, और हावास समाचार फ्रांस समिति और फ्रेंच साम्राज्य के समाचार संग्रह करके पेरिस के कार्यालय में अन्य समाचार समितियों को उनका उपयोग कर लेने देती थी। इसी प्रकार अमेरिकाकी एसोशियेटेड प्रेस समिति संयुक्तराष्ट्र अमेरिका

भरके समाचारोंको संग्रह करके अपने न्यूयार्कके कार्यालयमें उन्हें अन्य समाचार समितियोंके प्रतिनिधियों के आगे रख देती थी।

इससे स्पष्ट है कि युद्ध से पहले भारत की केन्द्रीय व्यवस्थापिका परिषदमें यदि अर्थ-सदस्य कोई घोषणा करते तो कुछ ही मिनट बाद रायटर्सका दिल्ली स्थित सम्वाददाता इस समाचार को लन्दन पहुँचा सकता था। ऐसी हालत में जर्मन समाचार समिति का लन्दन स्थित सम्वाददाता इस समाचार को यदि अपने देश के लिए मनोरञ्जक समझता तो दो या तीन मिनट में बर्लिन भेज सकता था। इसी तरह अन्य समाचार समितियों के सम्वाददाता भी अपने अपने देश को यह समाचार भेज सकते थे। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि भारत में होने वाली किसी भी दिलचस्प घटना का समाचार यहां से रायटर्स के द्वारा संसारके दूरसे दूर भागमें चन्द मिनटोंके ही अन्दर पहुंच सकता था।

बर्लिन के समाचार भारत में

युद्ध छिड़ने के समय से इस व्यवस्था में परिवर्तन होना स्वाभाविक है, क्योंकि जर्मनी एक के बाद एक कितने ही देशों को जीत चुका है। अब रायटर्स के लन्दन वाले कार्यालय में जर्मन अथवा इटालियन समाचार समितियों के, अथवा अन्य ऐसी समितियों के जो जर्मन अधिकृत प्रदेशों को सीधे समाचार भेजती हैं, प्रतिनिधि नहीं रहते। फिर भी यूरोप में स्वीटजरलैंड, स्वेडेन, रूस इत्यादि देश अभी तक तटस्थ हैं और इन तटस्थ देशों के लन्दन स्थित प्रतिनिधियों को अभी तक भारत के समाचार रायटर्स से प्राप्त होते हैं और उनकी मध्यस्थता से रोम और बर्लिन पहुंचते हैं।

इसलिए कहा जा सकता है कि भारत अथवा अन्य देश में क्या हो रहा है यह जाननेके लिए जर्मनी अथवा इटली को गुप्त रेडियो स्टेशन रखने की आवश्यकता नहीं है। मैं यहां यह बता देना आवश्यक समझता हूं कि हिटलर की सरकारी घोषणाएं तथा जर्मन में होने वाली घटनाओं के समाचार भी हमें भारत में बिलकुल उसी तरह प्राप्त हो जाते हैं जिस तरह उन्हें हमारे समाचार मिल जाते है और हमें इसके लिये जर्मनी में गुप्त रेडियो स्टेशन रखने की जरूरत नहीं पड़ती। हमें ये खबरें तटस्थ देशों की समितियों की सहायतासे मिल जाती हैं।

यह कहकर मैं सरकार का कोई गुप्त भेद नहीं प्रकट कर रहा हूं कि युद्ध के प्रारम्भिक महीनों में भारत सरकार और सम्राट्की सरकारका ध्यान इन चकित कर देने वाली अफवाहों की तरफ आकर्षित हुआ था कि जर्मन रेडियोको बृटिश और भारतीय सैनिक दस्तोंकी गतिविधि की आश्चर्यजनक जानकारी रहती है। अफवाहोंमें कहा जाता कि अमुक बृटिश बटालियन को पश्चिमी मोर्चे पर पहुंचते ही उसका परिचय सामने की जर्मन सैनिक कतारों के बीच से लाउडस्पीकरों द्वारा दिया जायगा। अफवाहें फैलती थी कि जिन भारतीय सैनिक दस्तोंके विषयमें अनुमान किया जाता था कि वे समुद्र पार होकर किसी रहस्यमय स्थान को रवाना हो चुकी हैं, जर्मन रेडियो केवल उनकी रवानगी की ही सूचना देता था। जो मूर्ख व्यक्ति ऐसी अफवाहों को फैलाते थे या उनमें विश्वास करते थे वे यह परिणाम निकालते थे कि जर्मनों ने बृटेन और भारत में गुप्तचरों का शक्तिशाली संगठन कर रक्खा है और उससे कभी कोई गलती नहीं होती। भारत सरकार तथा सम्राट्की सरकार दोनों ही जानती थीं कि ये बातें कितनी निराधार हैं, क्योंकि दुश्मन जिस तरह हमारे रेडियो को सुनता है उसी तरह वे भी दुश्मन के ब्राडकास्ट को सावधानी से सुनती थीं। सम्भव है अभी कोई स्टेनोग्राफर रोम या बर्लिनमें बैठा हुआ तेजी से मेरे इस भाषण को लिख रहा हो।

आश्चर्य की बात नहीं

अफवाहें कैसे फैलीं इसका पता लगानेका प्रयत्न भारत और इंगलैंड दोनों ही देशोंमें किया गया। जब भी कोई ऐसी चर्चा चलाता तो उससे पूछा जाता कि उससे यह बात किसने कही है। इस कहने वाले व्यक्ति का पता लगने पर उसकी जानकारी के उद्गम का पता लगानेका प्रयत्न किया जाता। इस तरह पता लगता कि यह अफवाह फैलने की जिम्मेदारी किसी ऐसे गैर जिम्मेदार मूर्ख पर है, जो या तो मित्रों के बीच युद्ध के गुप्तभेद जानने की डींग हांकना चाहता है या कोई ऐसा ईमानदार किन्तु अज्ञानी व्यक्ति है जो इस सीधी सादी बात को नहीं समझता, जिसे मैं ने आपको समझाने का प्रयत्न किया है। जैसा कि मैं कह चुका हूं सीधी सादी बात यही है कि बाहर दुनिया में होने वाली बातों की चर्चा जर्मनी या इटली जिस तेजी से करते हैं उसमें आश्चर्य की बात नहीं है ये देश ऐसाकर सकते हैं, इससे केवल सम्वादोंकी आदानप्रदान प्रणाली पर ही प्रकाश पड़ता है। [भारतीय समाचार से]

पारद

[लेखक—स्वामी अच्युतानन्दजी वैद्यराज बी. ए.]

रस चिकित्साका आरम्भ पारदके व्यवहारसे है। क्योंकि रस नाम पारदका है। जिस योगमें पारद नहीं डाला जाता या पारदका कोई यौगिक न हो, उसे रस नहीं कहते। रस योगोंमें पारद और धातुभस्मोंकी प्रधानता है। धातुभस्मोंमें भी जो स्थान पारदको प्राप्त है वह किसी धातुको नहीं मिला। इसीलिये आज पारदके सम्बन्ध की कुछ आवश्यक बातोंपर विचार करेंगे।

पारद क्या है? आयुर्वेदज्ञोंने पारदकी रस संज्ञा दी है इसके नामोंमेंसे इसका नाम रसराज, रसोत्तम, रसलोह, सर्वधातुपति भी है। रस नाम इसका अलंकारिक है। क्योंकि इसकी उत्पत्ति शिवजीके वीर्यसे मानी गई है रसार्णवमें स्वयं शिवजी ने कहा है—

मम देहरसो यस्माद् रसस्तेनायमुच्यते।

मेरी देहके रससे (वीर्यसे) उत्पन्न है इसलिये इसको रस कहते हैं। पारदकी स्वभावत: द्रवता तरलताको देखकर भी इसको रस कहा गया है, और इसके रस नामकी सृष्टिने ही महारसों (वैक्रान्त, माक्षिक, चपल, आदि) की तथा उपरसों (गन्धक, हरिताल, मन:शिला आदि) की सृष्टि की।

आधुनिक गवेषणासे पारद धातु श्रेणीका ही एक धातु तत्त्व है और उसकी उत्पत्ति भी उसीतरह खनिजोंसे है जैसे अन्य धातुओंकी अपने २ खनिजोंसे होती है। खनिज द्रव्य पृथ्वी को खोदकर निकाले जाते हैं इसलिये सब खनिज संज्ञक हैं और उन खनिजोंसे जो द्रव्य प्राप्त किये जाते हैं वह प्राय: धातु और अधातु नामसे दो श्रेणीमें विभक्त होते हैं। पारद धातु लक्षणोंसे मिलता है, केवल कोई अन्तर है तो वह एकमात्र द्रव रूपका है। समस्त धातुएं ठोस होती हैं पारद एक द्रव धातु है। उस तरह तो रस शास्त्रियों ने इसे धातुपति भी कहकर धातुओंकी श्रेणीमें बिठा दिया है, पर ज्ञात होता हैं कि उस पूर्वकाल में पारदकी उत्पत्ति व प्राप्तिके सम्बन्धमें कई प्रकार की किम्वदन्तियें फैली हुई थीं, इसीलिए इसके खनिजोंका ज्ञान होने पर भी वह किम्वदन्त्योद्भव भावना को दबा न सके, वह भावना उन विचारवानोंके हृदयमें इतनी दृढ़तासे घर कर गई कि उनमें अनुसन्धानजन्य विचारोंके लिये दृढ़ता उत्पन्न न न कर सके, उनमें यह साहस न हुआ कि उक्त किम्वदन्तिका प्रतिवाद कर वास्तविक स्थितिको बतावें।

रसशास्त्रमें दिया हुआ रस, महारस और उपरसका विभाग किसी वास्तविक क्रम विभाग या श्रेणी विभागसे सम्बन्ध नहीं रखता। पारदको रस और माक्षिक विमला आदिको महारस तथा हरताल, मैनसिल आदिको उपरस नहीं माना जा सकता। न तो पारद सजीव जगत्का अंश है, न सजीव जगत्के किसी अंगसे यह प्राप्त होता है। निर्जीव जगत्के पार्थिव भागका यह एक अंश है तथा धातु लक्षणों और धातुओंके तात्त्विक लक्षणोंसे इसके समस्त लक्षण मिलते हैं इसीलिये इसे धातु ही मानना चाहिये। पारदको धातु, धातुपति, द्रवधातु कहना ठीक है। हां पारदको प्राचीन कालके रासायनिकों (कीमियांगर) स्वर्णप्रस्तुतीकरणविधिमें उपयोजित करनेके कारण यदि इसके रस नाम को रूढ़ी अर्थमें लिया गया हो अथवा जरा व्याधि विनाशक होने से शरीरके लिये यह रसायन है ऐसा मानकर रसनाम दिया गया हो तो इन अर्थोंमें इस नामकी व्युत्पत्ति माननी ठीक है। उस तरह इसे धातुओंसे भिन्न नहीं रखना चाहिये। प्रत्युत रस उपरस, महारसका विभाग उडाकर धातु, अधातु खनिज नामसे द्रव्योंका विभाग बनाना चाहिये, जिससे वैद्योंका भ्रम मिटे।

पारदका उपयोग—हम पारदका उपयोग लगभग ढाई तीन हजार वर्षसे करते हैं। हमारे यहां पारदका उपयोग सर्व प्रथम लोह सिद्धि अर्थात कीमियांगरी में हुआ, तत्पश्चात् इसका उपयोग देह सिद्धिके अर्थ किया जाने लगा। यद्यपि कीमियांगर विदेश में भी काफी हुए हैं और वह कीमियां बनाने में पारदका काफी उपयोग करते रहे तथापि वह इस अनुसन्धान में कीमियांगरी की सीमासे बाहर नहीं जा सके। हमारे देशके रासायनी धातुविद्याके उपयोग कालमें जहां एक ओर पारदका

उपयोग रसायनके लिये करते थे। उसके कुछ यौगिक बनाकर पारदका उपयोग शरीर पर कर डाला। पारदमें अन्य साधारण धातुओंकी अपेक्षा कुछ दीप्ति विकरण शक्ति (Radioactivity) है। इसीलिये इसके मिश्रण व यौगिक रोगकी दशामें शरीर पर अच्छा प्रभाव डालते हैं। इसी कारण इसका देह सिद्धिके अर्थ उपयोग बढ़ता चला गया। जैसे २ इसके गुणोंका ज्ञान होता गया भिन्न २ वैद्यों द्वारा इसका उपयोग अधिकाधिक होता चला गया। उस समयके उपयोगमें एक ओर जहां इसके उपयोगसे लाभ हुआ वहां इसके कुछ यौगिकोंसे लाभकी अपेक्षा हानि भी होते देखी गई। इसके सेवनसे कुष्ठ, फोड़ा, फुन्सी निकलते देखे गये। जब वैद्योंने देखा कि इसके सेवनसे बीमारियां भी उत्पन्न हो जाती हैं तो वह इसके कारणोंकी जांचमें लगे। उस समयकी स्थितिके अनुसार उन्हें अनुभव हुआ कि पारदमें भूमि दोष, गिरिदोष, धातुदोष आदि कई दोष रहते हैं। इन दोषों की विद्यमानता के कारण ही इसके सेवनसे बीमारियां उत्पन्न हो जाती हैं। यदि इन दोषोंको दूर कर दिया जाय तो सम्भव है यह फिर हानि न करे। इसीलिये इसको शुद्ध करनेके क्रम मालूम किये गये। उसीके परिणाम स्वरूप पारदके अष्टादश संस्कार तक आविष्कृत हुए।

क्या पारदमें दोष होते भी हैं?—आज तक तो पारददोषोंके सम्बन्धमें जैसा शास्त्रकारोंने निर्देश कर दिया है, हम आंख मीचकर उनके कथनको सत्य मानते चले आये हैं, हमने इसपर कभी विचार नहीं किया कि जो जो दोष शास्त्रोंने पारद में बतलाये हैं वह सब इसमें होते भी हैं? या नहीं। इसपर अनुसन्धान करनेका शायद एक आध रासायनीने ही कष्ट उठाया हो। अभी थोड़ा समय हुआ कविराज प्रतापसिंहजीने खनिज विज्ञान लिखकर उसमें पारदके उक्त दोषों पर कुछ प्रकाश डाला है पर वहां भी अपने शास्त्र पक्षके समर्थनमें पूरी चेष्टा की है। स्वतन्त्रतया आपने अनुभवका परिचय बहुत ही कम दिया है। हम इस लेखमें पारदके दोषोंकी कुछ मीमांसा करेंगे। शास्त्रकार कहते हैं कि पारदमें निम्नलिखित दोष होते हैं:—

नागो बंगो मलं वह्निश्चापल्यं च विषं गिरिः।
असह्याग्नि महादोषा निसर्गात्पारदे स्थिताः॥
विषं वह्नि मलश्चेति दोषा मुख्यतयास्त्रयः॥

अर्थात् पारद में नाग दोष, बंग दोष, मल दोष, अग्नि दोष, चपलता दोष, गिरि दोष, असह्याग्नि दोष स्वाभाविक माने गये हैं। इन दोषोंमें भी विष वह्नि और मल यह तीन दोष मुख्य हैं। अब विचारणीय बात यह है कि जिन दोषोंका शास्त्रों में उल्लेख है वह सब इस समय के पारद में पाये भी जाते हैं कि नहीं? हम इसके एक-एक दोष पर विचार करेंगे।

नाग व बंग दोष—पारद में नाग बंग दोष जो माने हैं इसका अभिप्राय क्या है? पारद पृथ्वी पर उसी तरह पाया जाता है जैसे अन्य धातुएं। इसे भी भूगर्भ को खन कर खोद कर निकालते हैं जिन खानों में यह पाया जाता है जिन खनिज द्रव्यों में यह मिलता है, उनमें अनेक धातुएं, अधातुएं तथा वायु द्रव्यों का भी मिश्रण होता है यथा यशद, नाग, सोना, चांदी, लोहा, ताम्र, चूनजम् प्लाटिनम्, आंजनम् आदि धातुएं तथा गन्धक, संखिया, विस्मिथ आदि अधातुएं और ऊष्मजन् लवणजन् आदि वायुओंका मिश्रण पाया जाता है। इन अनेक खनिज द्रव्योंके साथ मिला हुआ पारद पृथ्वी-गर्भसे निकाला जाता है। उक्त खनिजों में पारद भी किसी न किसी धातु, अधातु या वायु रूप द्रव्यों के साथ यौगिकरूप में ही रहता है। इन खनिजों की रचना पत्थरवत् कठोर और भारी होती है। कहीं कहीं बहुत थोड़ी मात्रामें पारद अपने तरल रूप में भी पाया जाता है, जिसकी मात्रा बहुत ही न्यून होती है, पारद का मुख्य खनिज-खनिज हिंगुल (Cinnebar) माना जाता है अर्थात् पारद गन्धित योग में ही अधिक मिलता है। अन्य धातुओं, अधातुओं की मात्रा अल्प ही होती है। नाग और बंग के योग में पारद कम ही पाया जाता है। सुरमा (Galena) के साथ थोड़ा बहुत मिलता है किन्तु वहां भी यह गन्धक के साथ यौगिकरूप में ही पाया जाता है। बंग के खनिजों में पारा नहीं मिलता। यदि कहीं मिला भी है तो उसकी मात्रा इतनी कम होती है कि उसे निकालनेमें लाभकी अपेक्षा हानि ही रहती है। तो नाग बंग दोष इसमें कैसे आये?

पारद को शुद्ध करने की विधि—पारद को प्रायः खनिजहिंगुल या इसी प्रकारके जिन अन्य खनिजोंसे निकाला जाता है उसके निकालनेकी आधुनिक समयमें निम्न विधि है। एक छोटी कोठरी दोहरे खानेकी बनाई जाती है छोटे छोटे रन्ध्रयुक्त उसकी छत बनी होती है, उस छत पर खनिज हिंगुल

को पीस कर बिछा देते हैं और फिर उस कमरे को बन्द कर के उसके भीतर गरम हवा छोड़ते हैं गरम हवा के लगने से गन्धक तो उस हवाके साथ मिलकर द्विऊष्माइद बनकर उड़ता रहता है और पारा स्वतन्त्र हो कर उन रन्ध्रों से नीचे गिरता है और एक गड्ढे में सञ्चित होता रहता है। इस तरह जब समस्त पारा खनिज से भिन्न हो जाता है तो उस पारे की पुनः वाष्प बना कर उसको दूसरी बार शतन्नी भवन में लेजाकर ठण्डा कर लेते हैं। पहिली बार पतित करते हैं दूसरी बार श्रवित अथात् वाष्प बना कर उड़ा लेते हैं। पहिली विधिमें उसके अधातु अंश दूर कर दिये जाते हैं दूसरी प्रक्रियामें उसके धातु-अंशों को दूर कर देते हैं।

पारद एक द्रवरूप धातु है दूसरे यह काफी भारी है, यह द्रवरूप होने के कारण ही अन्य धातुओं को अपने में घुला लेता है इसीलिये सोना, चांदी, तांबा, नाग, बंग आदि इसमें घुल मिल जाते हैं। जिस पारे में धातुएं घुली मिली हों वह पारा अपनी स्वाभाविक द्रवता से कुछ गाढ़ापन लिये रहता है। दूसरे गाढ़े कपड़े में छानने से कुछ न कुछ धातु भाग अत्यन्त गाढ़ा होकर कपड़ेमें रह जाता है। इससे धातु मिश्रण का आसानीसे पता चल जाता है। पारदको धातु रहित करनेकी सरल विधि तो कपड़ेमें छानना है किन्तु इससे पूरी तरह समस्त धातु अंश दूर नहीं होते। इसीलिये इसको परिश्रुत करते हैं। पारदको ३७५ शतांशके उत्ताप पर रखा जाय तो पारेकीवाष्प बनने लग जाती है और पारा अन्य धातुओंसे भिन्न होजाता है।

पारद अन्य धातुओंसे भिन्न क्यों हो जाता है? यह स्मरण रहे कि समस्त धातुओंका द्रवांक एक नहीं होता और न क्वथनांक एक होता है। हम कुछ धातुओंके द्रवांक व क्वथनांक देकर इसको समझाएंगे।

नाम धातु	द्रवांक	क्वथनांक
पारद	८२	३७५
बंग	२३२	२२७०
नाग	३२७	१५२५
यशद	४१६	६१८
गन्धक	११४°५	४४४°५
विस्मिथ	२६६	१४२०
आंजनम्	६३०	१४४०

द्रवांकसे अभिप्राय है किसी धातुका गलना द्रवरूप होना और क्वथनांक का अभिप्राय है किसी धातुका उबाल खाना वाष्प बनकर उड़ना। उक्त सारणीको देखनेसे ज्ञात होगा कि नाग, बंग, गन्धक और विस्मिथ यह थोड़ी अग्निपर गल जाती हैं। पर इन सबके क्वथनांक गन्धकको छोड़कर पारदसे बहुत अधिक हैं। पारदकी वाष्प ३७५ शतांश पर जाकर कुछ बनती है। बंग की २२७० शतांश पर और नागकी १५२५ पर इसी तरह विस्मिथकी १४२०पर यशद भी ६१८ शतांशके उत्तापपर रखने से वाष्प बनने लगता है। गन्धक अवश्य ४४४°५ शतांश पर वाष्प बनकर उड़ने लगती है, इसीलिये तो इसे सर्व प्रथम द्विऊष्माइद बनाकर उड़ा दिया जाता है। जब गन्धक निकल गया तो अब केवलमात्र इसमें धातुएं ही रह जाती हैं।

सम्भव है पूर्वकालमें पारदको इस प्रकार श्रवित न करते हों इसी कारणसे धातु दोष बने रहते हों तो कोई आश्चर्य नहीं। क्योंकि उस समयमें धातुओंको शुद्ध रूपमें प्राप्त करनेकी इतनी अच्छी विधियां प्राप्त न थीं इसीलिये सम्भव है उस समयमें पारदमें नाग, बंग दोष मिलताहो। यह भी सम्भव है कि उस पूर्व कालमें जब कि पारद सुदूर देशोंसे आता था, व्यापारी इसमें नाग यशद या बंग आदि सस्ते मूल्य की धातुएं मिला देते हों— किन्तु इस समय जब कि पारद को श्रावक यन्त्रों से श्रवित कर लिया जाता है तो कोई भी उक्त धातुओंमें से उसके साथ उड़ कर नहीं आसकती।

क्या धातु यौगिकोंका क्वथनांक बदल जाता है?

यह देखा गया है कि एक धातुके साथ जब दूसरी धातुका मिश्रण करके उसको गलाया जाय, तो जो द्रवण विन्दु एक धातुका निश्चित है, ठीक उस द्रवणांकपर आकर वह नहीं गलता, प्रत्युत न्यूनाधिकपर गलता है। वङ्गका द्रवण विन्दु २३२ हैं, चांदीका ६६२ और सोनेका १०६३। यदि चांदी या सोनेमें वङ्ग मिलाकर गलावें, तो चांदी ७३२ के द्रवाङ्कपर ही गल जाती है और सोना भी एक हजार शतांशके नीचे ही गल जाता है। इसी प्रकार अन्य धातुओंके मिश्रणपर क्वथनांकके समय भी या तो क्वथनांक कम तापपर हो जाता है या अधिक पर। पारदमें बंग या नाग मिले हुए हों तो पारदका क्वथनांक ३७५ से बढ़कर क्रमशः ४५० और ५३५ तक जा पहुंचता है, किन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं कि इसके क्वथनांक या उबाल

बिन्दुके बढ़ जानेसे उक्त धातुएं भी इसके साथ उड़ने लगती हैं, यह बात नहीं। नाग और बङ्ग तो जब अपने उबाल बिन्दुपर ही जाकर उबाल खांयगी, तब उड़ेंगी। हां यह पारदको अवश्य अपने उबाल बिन्दुपर उड़नेसे रोकती हैं, इसका कारण उनके उच्च उबाल बिन्दुकी शक्तिका होना है। जो पारद परिश्रवित किया हुआ हो, उसमें धातुके मिश्रणकी सम्भावना नहीं होती। इस समय पारदमें नाग बंग दोषोंकी सम्भावना नहीं है। बशर्ते कोई व्यापारी लोभवश उसमें उक्त धातुएं न मिला दे। प्राय: बोतलोंमें बन्द जो पारा बाजारमें आता है, उसमें नाग, बङ्ग दोष नहीं होता।

मलदोष—मलका अभिप्राय है मलीनता। उस तरह नैसर्गिकरूपमें पारद स्वच्छ चांदीवत् चमकदार धातु है, किन्तु, यह द्रवरूप है, इसीलिये इसकेकण २ में मलिनताका उसी प्रकार मिश्रण हो जाता है जैसे जलमें किसी वस्तुकी मलीनताका। इसी कारण पारदमें कालिमा आई हुई दिखाई देती है, जिसके कारण पारद एक या कई प्रकारके मलिनावरणसे आच्छादित रहता है। शास्त्रकारोंने इस मलिनताका नाम कंचुक दिया है। कंचुकका अभिप्राय सर्प केंचुलवत् ऊपर चढ़े हुए आवरण या मैलसे है। शास्त्रों ने पारद पर चढ़ने वाले सात कंचुक माने हैं यथा—

पर्पटी, पाटनी भेदी द्रावी मलकरी यथा।
अन्धकारी तथा ध्वांक्षी विज्ञेयाः सप्त कञ्चुकाः॥

इससे ज्ञात होता है कि पारदमें धातुजन्य, अधातुजन्य व वायुजन्य कई प्रकार के संस्पर्श दोष उत्पन्न हो जाते हैं। उनसे पारदपर भिन्न भिन्न प्रकारकी मलिनता देखी जाती है। यथा—लोह पात्रमें पारा अधिक काल तक रहे, तो पारदपर जङ्गवर्णकी मलिनता चढ़ती है, सीसाके साथ पारद रहे, तो श्यामवर्णकी मलिनता चढ़ती है, गन्धकके साथ पारद मिला रहे तो उसपर अधिक श्यावर्णकी मलिनता आती है। विस्मिथके मिश्रणसे गाढ़ापन और भूरे रङ्गकी मलिनता आती है, केवल मिट्टी व गर्द गुबारसे भी मिट्टी रङ्गकी मलिनता देखी जाती है। जिस तरह पानी में हम भिन्न भिन्न वर्णके रङ्ग घोल दें, तो जो रङ्ग जलमें घुला होगा, वही रङ्ग पानीके घोलका हो जायगा यही बात पारद की है। पारद स्वच्छ द्रव रूप होनेके कारण अनेक चीजों धातुओंके ऊष्माइदों कणोंको—जो उक्त धातु को छोड़ चुके हैं अपनेमें घुला लेता है, इसीलिये जैसे रूप का पदार्थ इसमें घुलेगा वैसी ही मलिनता पारदपर होगी। किन्तु यह कहा जाय कि पारदमें सात कंचुक शास्त्रने बताये हैं वह हर एक देशसे निकलने वाले पारदमें स्वाभाविक होते हैं, तो प्रयोगोंसे इसकी सत्यता नहीं पाई जाती, पारदमें मैल बाहरसे आती है। किसी विशुद्ध परिश्रुत किये पारदको लेकर शीशीमें डाल दें, शीशीमें डालते ही उक्त शीशीका मैल देखते देखते लग जायगा। इस तरहकी मल ग्राह्यताका गुण इसकी द्रवताके कारण है, पर इसका अभिप्राय यह नहीं कि यह मलीनता दोष है। हां वह मलिनता अवश्य पारदको अशुद्ध करनेवाली है जो धातुऊष्माइदसे उस पर आती है। जिसको अच्छे गफ कपड़ेमें छान २ कर दूर किया जा सकता है अथवा परिश्रुत करने पर वह बिलकुल निकल जाती है। यूनानी हकीम आजतक पारदके संस्कारोंको न जानते हैं, न करते हैं। उनके यहां पारदको शुद्ध करनेका विधान केवल मोटे गाढ़े वस्त्रमें छान लेना है। वह कहते हैं कि १०० बारका मोटे गाढ़े वस्त्रमें छना पारा मैल औ धातुओंसे रहित हो जाता है। वास्तवमें इस प्रक्रियासे पारदका बहुत कुछ धातु मिश्रण और मलिनता कपड़ेमें लगती चली जाती है और धीरे२ पारा निर्मल व स्वच्छ होते देखा जाता है। ऐसे स्वच्छ पारदको पुनः परिश्रुत किया जाय, तो पात्रमें परिश्रवणके पश्चात् कुछ नहीं बचता। मर्क कम्पनी पारे को हवाशून्य कूपीमे डालकर ३७५° शतांशके उत्तापपर वाष्प बना कर शीतल कर लेती है, इसका वह परिश्रुत पारद समस्त रसायन कामोंमें व्यवहृत होता है परीक्षाओंसे इसमें कोई अशुद्धि नहीं पाई जाती। यदि पारदमें सचमुच सप्त कंचुक दोष हों तो जैसा कि शास्त्र कहते हैं उन्हें बिना अन्य संस्कारोंके दूर नहीं किया जा सकता था, और न केवल परिश्रवणसे दूर होने चाहियें। इसकी परीक्षा प्रत्येक वैद्य स्वयम् भी कर सकता है। आधुनिक समयमें वैक्रान्तकी ऐसी कुप्पियां आती हैं, जिन्हें आगपर चढ़ाया जा सकता है। उन कुप्पियोंके साथ ही कांचकी ऐसी बक्रग्रीव पतली नाली जो उसके साथजोड़ी जा सकती है उसे लगाकर कूपी के साथ जोड़ देते हैं फिर उसकी हवा निकाल देते हैं उसमें भरे पारे को स्टोप या चूल्हे पर रख कर ३७५ शतांश की अग्नि देते हैं पारा उड़ कर संचयकूपी में संचित होता रहता है उस पारे को लेकर आप कंचुक-दोषकी परीक्षा कर सकते हैं कि इस परिश्रुत पारदमें मलीनता रहती है या नहीं। हमने तो एक बार नहीं अनेकों बार देखा है कि इस

प्रकारके परिश्रुत पारदमें न कंचुकदोष रहता है न धातवदोष।

वह्नि दोष—अग्नि दोष क्या है कुछ वैद्य तो कहते हैं कि पारद खाने पर दाह उत्पन्न करता है इसी से शरीर में सन्ताप होता है। परन्तु प्रयोगोंसे देखा गया है कि केवल पारदके खानेसे वह शरीरमें जाकर नहीं पचता; जैसाका तैसा मल मार्गसे बाहर निकल जाता है। ऐसे पारदका शरीर पर दाहक प्रभाव नहीं होता। हां इसका कोई यौगिक बन जाय जो प्रायः क्षार रूप या लवण रूप यौगिक हो—तो वह शरीरमें पहुंच कर शीघ्र रक्तमें घुलमिल जाता है उससे अवश्य दाह उत्पन्न होती है। स्मरण रहे! पारद यौगिक और पारद एक चीज नहीं। शास्त्रकार यहांपर पारदमें वह्नि-दोष मानता है न कि उसके किसी यौगिकमें। पारा यौगिकके रूपमें बदल जाने पर फिर वह पारा नहीं रहता। वह तो अन्य तत्वके मेलसे एक नये रूपमें चला जाता है जैसे रसकपूर, दारचिकना। रसकपूर और दारचिकना में बहुत थोड़ा अन्तर है, रसकपूर को अंग्रेजीमें Sub chloride of mercury या केलोमल कहते हैं इसका संकेत सूत्र ($पा_2 \ ल_2 = Hg_2 \ Ci_2$) है और दारचिकना को Perchloride of mercury या Bichloride of Mercury या कोरोसिव सब्लीमेएट कहते हैं इसका संकेत सूत्र ($पा \ ल_2 = H,g \ Ci_2$) है। इन दोनोंमें केवल अन्तर इतना ही है कि रसकपूरमें पारदके दो परमाणुके साथ लवणजन वायुके दो परमाणु मिलते हैं। इस एक परमाणुके अन्तरसे ही दोनोंके गुणोंमें काफी अन्तर हो जाता है। इस प्रकारका बना एक यौगिक अधिक उपयोगी है, दूसरा नहीं। रसकपूर खाने पर दाह नहीं करता, पर दाराचिकना करता है। दारचिकनासे इतना जबरदस्त मुंह आता है कि जिसका कोई ठिकाना नहीं, रसकपूरसे ऐसा मुंह नहीं आता। बल्कि शायद ही किसीको आता हो। यह गुण इसके यौगिक बननेपर उत्पन्न होता है न कि पारद के स्वभावके कारण हैं। यदि यह दोष उसमें स्वाभाविक होता तो अन्य यौगिकोंमें भी देखा जाता, पर हम देखते हैं कि रससिंदूर या चन्द्रोदय जो गन्धक पारदका यौगिक है इसमें वह्नि-दोष का कोई चिह्न दृष्टि-गोचर नहीं होता। कई व्यक्ति कहेंगे कि रससिन्दूर तो पारदको शुद्ध करके बनाते हैं। इसलिये कोई और यौगिक बताइये! दूर न जाइये, बाजारी सिंगरफ लेकर इसे पीस डालिये और इसका सेवन कराइये यह तो शुद्ध पारदसे नहीं बनता यदि इसके सेवनसे दाह, सन्ताप हो तो कहिये कि पारदमें यह दोष है। और जाने ही दीजिये, केवल पारदको लेकर बराबरका जावत्री चूर्ण डाल कर खरल करिये पारदकी कज्जली वैसी ही बन जायगी जैसी गन्धकके योगसे बनती है, इसे दो-चार रत्ती की मात्रासे किसीको सेवन कराइये यदि यह दाह उत्पन्न करे तब भी आप वह्नि-दोष स्वीकार करिये। परीक्षासे इसकी सचाई देखिये।

चापल्य दोष—पारद द्रवरूप है, द्रववस्तु कभी स्थिर नहीं रह सकती, असमतल स्थान पर वह तल भागकी ओर बहेगी, द्रवताके कारण उसे हिलाओ तो हिलेगी इसको भी शास्त्रकारोंने दोष माना है। नैसर्गिक बातको दोष कहना या मानना उचित नहीं। पारदकी द्रवताको साधारणतया दूर नहीं किया जा सकता। हमने बनस्पति योगसे कठिन रूपमें पारदकी गोलियां बनती देखी हैं। वह गोलियां वास्तवमें वानस्पतिक अंशोंके योगसे तय्यार होती हैं जो एक तरहका पारद यौगिक बन जाती है। ऐसे कई धातव यौगिक भी तो बनते हैं जिनसे पारदकी गोली बन जाती है। इस तरह पारदका काठिन्यरूपमें आना चापल्य दोष रहित होना नहीं है। क्योंकि इन गोलियों को अग्नि पर रख कर फिर तपाया जाय और ३७५ श० के उत्ताप पर कुछ काल तक रखा जाय तो पारद वाष्प बन कर उड़ने लगता है और उसे शीतली भवनमें संग्रह किया जाय तो वह फिर पूर्व रूपको प्राप्त होजाता है। जब वह फिर द्रव होकर चपल होगया तो उसका चापल्यदोष दूर न हुआ? मेरे विचारमें तो चपलता दोष नहीं, प्रत्युत पारदका स्वाभाविक धर्म है।

विषदोष—विषदोषका अभिप्राय है पारदमें मारक शक्ति का होना। पारदको यदि इसी प्रकार खिला दिया जाय तो इसके खानेसे किसी प्रकार भी विषके चिह्न दृष्टि-गोचर नहीं होते। उस तरह तो जो भी पारदके यौगिक शरीरको हानि पहुंचाते हों सब ही विष-दोषयुक्त कहे जा सकते हैं किन्तु, यहां पर तो यौगिकका सम्बन्ध नहीं; न शास्त्र यौगिकरूप पारदके दोषोंकी चर्चा करता है। वह तो "विषवह्निर्मलश्चेति दोषा नैसर्गिका त्रयः" विष वह्नि और मलको पारदका नैसर्गिक अर्थात् स्वाभाविक दोष मानता है। खाली पारद सेवनसे विषके लक्षण उत्पन्न होजाते हैं, ऐसा न तो देखा जाता है न आधुनिक अनुसन्धान कर्ता ही बताते हैं। न्याय वैद्यक, धोपमेटरियामेडिका

आदिमें जहां पारद विषका उल्लेख है वहां इसके यौगिकोंके सेवनसे पारद विषको माना है, न कि केवल पारद सेवनसे। पारद और पारदयौगिक दोनों एक चीज नहीं, यह हम पीछे बतला चुके हैं और न पारदके गुणोंमें पारदयौगिकके गुणोंका ही समावेश किया जा सकता है।

गिरि-दोष—गिरिदोषसे अभिप्राय है पारदमें पार्वतीय दोष अर्थात् खानके अन्य धातु अधातुओंका उसमें विद्यमान रहना। इस दोषको नाग बंगके साथ परिगणित करना चाहिये या इसके भीतर नाग बंग दोषोंका समावेश करना चाहिये। गिरिदोष कहनेसे समस्त गिरिज खनिजोंका उसमें समावेश होजाता है।

असह्याग्नि—पारद थोड़े उत्तापपर उड़ने लग जाता है। जिसतरह अन्य धातुएं अधिक उत्ताप सहन करती हैं, उसतरह यह सहन नहीं करता इसीलिये इसको असह्याग्नि दोष माना गया है। पर क्या असह्याग्नि-दोष होता भी है? जब हम इसपर विचार करें तो आधुनिक अनुसन्धानसे ज्ञात होता है कि यह दोष नहीं। प्रत्येक धातु, अधातु एक निश्चित उत्ताप पर द्रव होते हैं, और निश्चित उत्ताप पर जाकर उड़ते हैं। जो धातु जिस उत्ताप पर द्रव होती है वह उसका द्रवांक कहलाता है और जिस तीव्र उत्ताप पर उबल कर उड़ने लगती है वह उसका क्वथनांक कहलाता है। परन्तु पारद स्वभावतः ३७५ शतांकके उत्ताप पर उबल कर उड़ने लगता है। अर्थात् गन्धकके उबाल बिन्दुसे कम उत्ताप पर उड़ने लगता है यह उसका अपना धर्म है इसे दोष नहीं कहना चाहिये। क्योंकि दोष वह है जो दूर किया जा सके। पारद पौने चार सौ शतांश पर उड़नेका धर्म रखता है इसे असह्याग्नि दोष नहीं माना जा सकता, क्योंकि अबतक अनेक परीक्षाओंसे देखा जा चुका है कि जबतक पारद अपने असली द्रवरूपमें रहता है तबतक उसका उक्त गुण नहीं बदलता। यदि उसका कोई उक्त गुण बदल दे तो उसे क्या दिखाई देगा कि वह पारद फिर पारद नहीं रहेगा वह अन्य धातुके रूपमें दिखाई देगा। रसायन शास्त्रका यह सिद्धान्त है कि जब तक पदार्थका रूप न बदले जब तक उसका गुण धर्म नहीं बदल सकता। इस विचारसे पारदके इस स्वाभाविक धर्म को दोष मानना उचित नहीं प्रतीत होता।

इस समय इसतरह पारदके दोषोंके सम्बन्ध में जो शास्त्रीय निर्णय पाया जाता है उसमें बहुत कुछ संशोधनकी आवश्यकता है। और इस विषय पर कोई अच्छा ग्रन्थ नहीं दिखता यह त्रुटि मैं अनुभव कर रहा था कि वैद्य सम्मेलन लखनऊमें स्वामी हरिशरणानन्द जी वैद्य द्वारा लिखित कूपीपक्व रसनिर्माण विज्ञान नामक एक वृहद् ग्रन्थ देखने को मिला ग्रन्थ लेजाकर जब आद्योपान्त पढ़ा तो हमारी आंखें खुल गईं, मैं तो इस ग्रन्थको अन्य ग्रन्थों जैसा ही ख्याल किये हुए था कि इधर उधरसे लेकर संग्रह कर दिया गया होगा, किन्तु नहीं इस ग्रन्थ में तो पारदकी आदि उत्पत्ति इतिहाससे लेकर रसशोधन मारण जारणादि समस्त विषयों पर बिलकुल मौलिक रूपसे विचारों का अद्भुत स्रोत बहाया गया है। जिसे पढ़कर मैं आपकी योग्यता और परिश्रमको देख कर हैरान रह गया।

ऐसी आशा है इस ग्रन्थमें सैकड़ों बातें ऐसी हैं जिनका आज तक वैद्योंको पता नहीं।

वैज्ञानिक डकैतियां

[लेखक—श्री चन्द्रिका प्रसाद, बी० एस० सी]

इस नवीन वैज्ञानिक युगमें विज्ञानका उपयोग चोरी और डकैती जैसे भीषण कार्योंमें भी किया जा रहा है। भारतवर्षमें ऐसी डकैतियां कम देखनेमें आती हैं, परन्तु अमेरिका और योरपमें जहां विज्ञान अति उन्नति पर है ये बातें बहुत देखनेमें आती हैं।

अभी कुछ दिन हुए एक भीषण डकैती अमेरिकामें हुई जब चोर रातोरात १५० मील लम्बा बिजलीका तार चुरा ले गये, उस समय इन तारोंमें काफी तेज बिजली जा रही थी। चोरोंने किसी तरह तारके खम्भोंपर चढ़कर, जानपर खेल कर तारोंको काटा होगा। तार काटनेमें इन्होंने बहुत खूबी दिखलाई, और अत्यन्त वैज्ञानिक ढंगसे अपने आपको बिजलीसे बचाया, क्योंकि तारोंमें १४४,००० वोल्टकी बिजली जा रही थी। इस तरह ये लोग लगभग चार सौ मन तांबेका तार लेकर चम्पत हुये और पकड़े नहीं गये।

अमेरिका की ही बात है, रातमें चोरोंने आधे मील तक सीसेका पानी का पाइप खोल डाला और उठा ले गये। जब सबेरे लोगोंको पानी नहीं मिला तो कारणका पता चला।

न्यूयॉर्क शहरके गोदामसे बहुत-सा बर्फ चोरी कर लिया गया। बर्फ जैसी चीजोंमें तो पहचान भी नहीं की जा सकती।

मोटरें चुरानेमें उतना फायदा नहीं रहता क्योंकि लगभग चारमें से तीन मोटरें पकड़ ली जाती हैं।

परन्तु एक साथ कई मोटरें उड़ा ले जाना दूसरी बात है। न्यूजरसीमें एक पुलिस वालेने अपना चक्कर लगाते हुए मोटर की एक दूकानमें बहुतसी शानदार नई मोटरें देखीं। कुछ घण्टे बाद जब वह फिर उधरसे आया तब सब मोटरें गायब थीं। पन्द्रह की पन्द्रह मोटरें उड़ा ली गईं और ताला टूटा न था। चोरोंका पता लगाना तो खुद शरलक होम्स के लिये भी कठिन था।

योरपमें चोर ज्यादा सोच समझकर चीजें चुराते हैं। कुछ चोर एक शौकीनके घरसे कीमती चित्र, ऐतिहासिक कालीनें, पर्दे और हाथी दांतकी मूर्तियां चुरा ले गये। ऐसी वस्तुओंका दाम केवल उनके पारखियोंसे ही मिल सकता है।

पिछले सालकी बात है कि पटना म्यूजियमसे पुराने सिक्के जिनका दाम सोने, चांदी या तांबे से कहीं अधिक था चोरी चले गये।

परन्तु ये सब चोरियां योरपके कुछ चोरोंके कारनामोंके सामने फीकी पड़ जाती हैं। एक छोटेसे देशके एक हिस्सेमें जो पिछले महायुद्धके पहले आस्ट्रियाके आधीन था, एक कम्पनीने एक सुरङ्ग खोदनेका ठेका लिया। सात साल तक आदमी लगे रहे, और कम्पनीकी रिपोर्टोंसे मालूम हुआ करता था कि सुरङ्ग बन रही है। सरकार भी ठेकेका दाम इन रिपोर्टों के आधार पर चुकता करती चली गई। अन्तमें उद्घाटनका दिन भी आया। अफसरोंने आदमियोंको सुरङ्ग साफ करते पाया। सुरङ्ग पूरी बन गई थी; ठेकेदारोंको बधाई दी गई।

पर इस सुरङ्गका भेद एक इञ्जीनियरने नशेकी झोंकमें खोल दिया, जब कि सब लोग सुरङ्ग पूरी होनेकी खुशीमें दावत खा रहे थे। उसने बतलाया कि यह सुरङ्ग आस्ट्रिया और जर्मनीकी फौजोंने ६ साल पहले खोदा था और लड़ाई का मैदान बदल जानेसे इसे छोड़ दिया था। कम्पनीको डेढ़ करोड़ रुपये एक ऐसी सुरङ्ग खोदनेके लिये मिले थे जो पहले ही से मौजूद थी।

यह बात विश्वास योग्य नहीं लगेगी परन्तु कुछ वर्ष पहले रूमानियाके प्रधान मन्त्रीने यह बतलाया था कि एक पूरी रेल की लाइन पटरियां, गाड़ियां, सिगनल, स्लीपर और खूंटी तक गायब हो गई। यह लाइन लड़ाईके समयमें बनी थी और इसकी लागत एक करोड़से ऊपर थी। जरूर ही लाइन पहले धीरे-धीरे खोलकर उठा ली गई होगी और फिर चुपके-चुपके बेच दी गई होगी।

गंगाजल पर वैज्ञानिक दृष्टि

[लेखक श्री ब्रजवल्लभ]

आयुर्वेद में गङ्गाजलको प्रायः सब कष्टोंका अपहर्ता कहा गया है। प्रश्न उठता है कि संसारकी समस्त नदियों के जलोंमें से उसे ही यह विशेषता क्यों मिली? इसी पर हम वैज्ञानिक प्रकाश डालेंगे।

धार्मिक हिन्दू पवित्र मान कर इसे अपनी सन्ध्या-पूजा आदिमें प्रयुक्त करते हैं। इसे तांबेके पात्रोंमें इस प्रकार बन्द करके रखते हैं कि उसमें वायु अन्दर न जावे। देखा गया है कि बहुत वर्षों तक यह जल अपने रूपको नहीं बदलता है। शेष अन्य जल इस प्रकार रखने पर भी खराब होजाते हैं। तो गङ्गाजलमें क्या विशेषता है?

सांसारिक उपयोगोंमें हम देखते हैं कि जहाजमें यह जल पीनेके लिये रक्खा जाता है और हुगलीसे लण्डन तक जानेमें यह जल खराब नहीं होता। अगर और किसी प्रकारका जल इस उपयोग में लाया जाये तो जहाज वालोंको हुगलीसे चल कर एडनमें ही जल बदल देना पड़ता है। अभी तक विज्ञान द्वारा उसका कारण नहीं मालूम पड़ा है।

जब हैजेके कीटाणु गङ्गाजलमें डाले जाते हैं तब २४ घण्टे के अन्दर ही उनकी मृत्यु होजाती है; परन्तु अगर वे किसी और जलमें डाले जाएं तब वे मरनेके बदले और अधिक मात्रामें उत्पन्न हो जाते हैं। जब गङ्गाजलको उबाला जाता है तब इसकी कीटाणुनाशक शक्ति कम हो जाती है। उसका रहस्य भी अभी तक मालूम नहीं हुआ।

काशी हरद्वार आदि गङ्गा तट स्थानोंमें यह किया जाता है कि शहरका सब गन्दा पानी इसीमें लाकर मिला दिया जाता है। काशीमें तो यहां तक होता है कि मरघटमें मृतक शरीरोंको आधा या उससे भी कम जला कर जलमें फेंक दिया जाता है। उससे कितनी गन्दगी जलमें मिलती है। परन्तु फिर भी अभी तक किसी गङ्गा जलमें स्नान करने वाले मनुष्यको कोई रोग उत्पन्न नहीं हुआ है। कुछ समय हुआ मदरास कारपोरेशनने शुद्ध जलकी कमीके कारण शुद्ध जलके साथ बिना छना हुआ जल भी मिला कर नगर-वासियोंको देना आरम्भ किया उसके पीनेसे रोग उत्पन्न हो गये और वे सब उसी बिना छने जलके कारण हुए फिर गङ्गा जलमें ऐसी क्या विशेषता है कि इतनी गन्दगी आदि मिलाने पर भी वह स्वच्छ रहता है? गङ्गाजलमें स्नान करनेसे शरीरमें अपेक्षाकृत अधिक स्फुर्ति आती है।

जलमें बिजलीकी धारा जाने देनेसे इनमेंसे बहुतसे प्रश्नोंका उत्तर निकल आता है। जब किसी द्रवमें विद्युत्की चिनगारियां लगाई जाती हैं तब उस द्रवमें परिवर्तन हो जाता है। मिस्टर एगास्करने इसको सबसे पहले मालूम किया था। इसके उपरान्त भारतीय डाक्टर श्री एस० एस० नेहरू ने इसका बहुत उपयोग किया। वे इस वैद्युत् चिनगारीको रोगी पौधों, पशुओं अथवा मनुष्योंके अङ्गोंके अन्दर पैदा करके उनको अच्छा कर देते हैं। जब पानीके अन्दर उच्च विभवकी चिनगारी भेजी जाती है तब कुल पानीमें परिवर्तन हो जाता है। अभी बिलकुल ठीक प्रकारसे तो इसका कारण समझमें नहीं आया है परन्तु फिर भी यह विश्वास किया जाता है कि पानीके अणुमें जो ओषजन होता है वह इस चिनगारी द्वारा टूट जाता है इस टूटनेके कार्य में न्यूट्रोन बनते हैं। इन्हींसे पानीके गुणमें निम्न परिवर्तन हो जाते हैं—

(१) पानीके स्वादमें उन्नति—इसका बहुत उपयोग उन गांवोंमें किया जा सकता है जहां पर पानी छानने और शुद्ध करने आदिकी सुविधायें नहीं।

(२) कीटाणुओंकी मृत्यु—जिससे फैलनेका डर कम हो जाता है। जब वैद्युत् चिनगारी लगा पानी जीवित कोषोंके स्पर्श में आता है। तब वह सम्भवतः उनको शक्ति प्रदान करता है। इस प्रभावके अनेकों सांसारिक उपयोग हैं। बीजोंको ऐसे पानी में डालनेपर उनकी उपज शक्ति बढ़ जाती है और उनसे अंकुर भी जल्दी निकलते हैं। खेतोंमें ऐसा जल देनेसे उपज और पौधों का स्वास्थ्य बढ़ जाता है। कीड़े लगे पेड़ोंपर ऐसे जलकी बौछार करके उनको स्वस्थ किया जा सकता है। ऐसे पानीके उपयोगसे जीव जन्तुओंके रक्तपर अच्छा प्रभाव पड़ता है और उनसे अशुद्ध वस्तुएं निकल जाती हैं उनके जीवित कोषोंमें उसके प्रभावसे

अधिक शक्ति आती है। ऐसे जलमें स्नान करने से मनुष्यमें स्फूर्ति भी बढ़ती है क्योंकि जल जीवित कोषों पर ऊपर लिखित प्रभाव डालता है।

जलमें उच्चविभव वाली बिजली डालनेसे उसकी जहरीली और खराब वस्तुओंको अलग करनेके अतिरिक्त उसकी शुद्धता भी बढ़ती है। इस उन्नतिसे वह जल एक उत्तम कीटाणु-नाशक हो जाता है। अमेरिकामें न्यूयार्क नगरके डाक्टर हेनोका ऐसे जलको लोशनके स्थान में काम लाते हैं। और उसीसे जख्मोंको धोते हैं। ऐसा जल हैजेके रोगीको देनेसे उसके अन्दरके कीटाणु मर जानेसे रोग अच्छा होजाता है। हैजा फैले हुए नगरोंमें ऐसे जलके सेवनसे रोगका फैलना बंद होजाता है।

ऊपर लिखे गुणोंकी कुछ मात्राऐं—गङ्गाजलमें हम देखते हैं कि गङ्गा संसारके सबसे ऊंचे पर्वतसे निकलती है। वहां पर सदैव बादलोंमें बिजली कड़कती रहती है। इतनी ऊंचाई पर वहां का वायु भी विद्युन्मय हो जाता है। इसलिये सम्भवतः गङ्गाजल अपने उद्गम स्थान पर ही वैद्युत् शक्तिसे प्रभावित होता है। §

जलअभेद्य कपड़ा

[लेखक—श्री लोकनाथ बाजपेयी, बी. एस. सी.]

जब हम वाटर-प्रूफ या बरसाती कपड़ोंका नाम लेते हैं तो हमारा ध्यान यकायक ऐसे कपड़ोंके ऊपर जाता है जिनके ऊपर रबड़ लिपा हुआ हो या जिनके दो पर्त रबड़से चिपका दिए गये हों। ऐसे कपड़े सिर्फ वाटर-प्रूफ ही नहीं होते बल्कि वायु अभेद्य भी होते हैं क्योंकि कपड़ोंके छिद्र जिनसे हवा आती जाती है रबड़से बिलकुल बन्द होजाते हैं। ऐसे कपड़े या बरसाती कोट खास कर हिन्दुस्तानके लिए बड़े ही दुःख प्रद हैं क्योंकि बरसातमें तो वैसे ही गर्मी होती है फिर बरसाती पहिननेसे न बाहरकी हवा भीतर जा सकती है और न भीतरकी बाहर। शरीर एक तरहसे वायु अभेद्य सन्दूकमें बन्द हो जाता है। नतीजा यह होता है कि पसीना छूटने लगता है, जी घबरा उठता है। अगर असुविधा केवल हिन्दुस्तानियों ही के लिये होती तो कोई बड़ी बात न थी। सर्द मुल्क वालोंको भी दो आपत्तियां हैं, वायु अभेद्य और बोझिल होना। गोरे देशोंमें साधन सुविधा और प्रोत्साहनकी कमी न होनेकी वजह से खोज हुई और सफलता भी मिली। अब ऐसे कपड़े बनते हैं जो जल-अभेद्य (वाटर-प्रूफ) होते हुए भी वायु अभेद्य नहीं होते। कपड़ोंकी न शक्ल बदलती है और न बोझ बढ़ता है। बल्कि अब तो पहिले सूत, रेशम या ऊनके धागोंको वाटर-प्रूफ कर लेते हैं और फिर वाटर-प्रूफ तानों और बानोंके कपड़े बुने जाते हैं।

एक अमेरिकन वैज्ञानिकका कहना है कि वे इस कामके लिए एक ऐसा खनिज पदार्थ काममें लाते हैं जो कसरतसे पाया जाता है और बहुत सस्ता पड़ता है। इससे जल अभेद्य किए गए कपड़ोंमें बड़ा भारी गुण यह है कि कपड़ेको पानी साबुन या सोडेमें उबालनेसे या स्पिरिट, पेट्रोल आदिमें डालने से भी कपड़े का जल-अभेद्य गुण नहीं जाता। इस वैज्ञानिक युगमें वह दिन दूर न समझना चाहिए जब हम लोग टोपी, कोट, कमीज, धोती आदि सब वाटर-प्रूफ ही पहना करेंगे। शायद भविष्यकी सन्तान हम लोगोंके सोख्ते जैसे कपड़े पहनने पर बिना हंसे न रहेगी।

अब हम देखेंगे कि कपड़ा जल-अभेद्य होते हुए भी वायु के लिए छिद्रमय कैसे रह सकता है। किसी मोटे दलके शीशे के बरतनकी पेंदीमें बारीक छेद करने पर और बरतनमें पानी भरने पर पानी छेदसे बहने लगता है। परन्तु यदि जरासा खनिज मोम ईथर घोलकर इस छेदकी दीवारोंपर चुपड़ दिया जाय (परन्तु छेद खुला ही रहे तो पानी छेदके रास्ते नहीं निकल पाता, क्योंकि मोमके चुपड़नेसे शीशे और पानीकी पृष्ठतनाव (Sufare jeusion) इतना बढ़ जाता है कि पानीको छेदमें घुसनेमें दिक्कत होती है। रुकावट निम्न बातों पर निर्भर है:—

(शेष १५२ पर देखिये)

§ बिजली बादलोंमें कड़ककर वह वायुको प्रभावित कर सकती है किन्तु, बादलोंकी बिजली गंगाजलको बिना स्पर्श किये किस तरह प्रभावित करती है, यह बात सिद्ध नहीं हुई। स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य

करवीरादि वर्ग

[लेखक—डा० इन्द्रसेन आयुर्वेदालङ्कार, B. A., M. B. B. S., D. T. M.
प्रो० गुरुकुल आयुर्वैदिक महाविद्यालय, गुरुकुल कांगड़ी]

सदाबहार को अंग्रेजीमें (Periwinkle) और लैटिन में Vinca कहकर पुकारते हैं। कई लोग इसे हिन्दीमें कलई भी कहते हैं। इसके फूल सारे साल खिलते रहते हैं। इसके दो भेद होते हैं। एक सुफेद फूलोंका और एक गुलाबी फूलोंका। इसे बागोंमें बोते हैं क्योंकि इसके फूल हमेशा खिलते रहते हैं।

करवीरादि वर्गमें सदाबहार, कनेर, कुटज, करौंदा, कु० कुटज, सर्पगन्धा, कुन्द, गुलाचीन, सप्तपर्णा आदि वनस्पतियां परिगणित होती हैं। इनमें से किसी एक वनस्पतिके फूल फल आदिकी रचनाका ज्ञान प्राप्त कर लेनेसे सारे वर्गका ज्ञान प्राप्त होता है। इस वर्गका नाम लैटिनमें Apocyanace है, और अंग्रेजीमें इसे Dog-bane family कहते हैं। हमने इसका नाम करवीरादि वर्ग रक्खा है। ऐसा करनेका कारण यह है कि भारतीय वनस्पतियोंमें कनेर सर्वत्र उपलब्ध होती है, जो इस वर्गके प्रतिनिधित्वका कार्य बखूबी करसकती है। इस वर्गका अच्छा ज्ञान प्राप्त करनेके लिये उपरोक्त सब वनस्पतियोंके फूलों व फलियोंकी रचनाका ज्ञान प्राप्त करना बहुत उत्तम होगा। इन उपरोक्त वनस्पतियों का परिचय कुछ शब्दों में निम्न प्रकार है:—

सदा बहार—जैसा कि ऊपर बताया है-दो तरहके फूलों वाला होता है। सफेद फूलों वालेको Vinca alba कहते हैं, और लाल फूल वाले को Vinca rosea कहते हैं। इसका पौदा डेढ़ दो फुट ऊंचा होता है। जमीनसे जरा ऊपर निकलकर कई शाखाओंमें विभक्त हो जाता है। इसकी जड़ें बड़ी लम्बी होती हैं। इसकी टहनी काटकर लगा दो तो उग जाती है। टहनियां और पत्तोंको तोड़ो तो दूध निकलता है। गर्मीमें जब जमीन सूखी हुई होती है और छोटे-छोटे पौदे सूखे से होते हैं तो यह हरा भरा होता है, क्योंकि इसकी जड़ें गहराई से पानी लेती हैं और इसके पत्ते चमकदार होते हैं और एक पदार्थसे ढके होते हैं जो इसका पानी नहीं उड़ने देता है।

इसके पत्ते हरे और एक एक गांठपर दो दो इकट्ठे आमने सामने लगे हुए होते है। ऊपरसे चमकदार अण्डाकृति होते हैं, इनकी छोटी सी डण्डी होती है। पत्र पुख रहित होते है।

इसका तना लकड़ीवाला (Woody) होता है। और इसके चारों ओर छाल होती है। यही वजह है कि पौदा मरता नहीं; कई सालों तक लगा रहता हैं।

इसके फूल पत्तोंके अन्तमें निकलते हैं, पुटपत्र (calyx) पांच भागोंमें विभक्त होता है। पंखड़ियां संयुक्त होती हैं और एक लम्बी नली बनाती हैं। पंखड़ियोंके ऊपरके भाग चौड़े चारों ओर फैलेहुए और संख्यामें पांच होते हैं। हरएक पंखड़ीका एक किनारा दूसरी पंखड़ीके एक किनारेसे ढका हुआ होता है। यदि गुलाबी सदाबहार हो तो पंखड़ियोंका रंग गुलाबी होता है और अगर सफेद सदाबहार हो तो पंखड़ियोंका रंग सफेद होता है। फूलके बीचका रंग गहरा लाल होता है। फूल बन्द सा दिखाई देता है। उसे तोड़कर चीरो तो इसके मुंहमें कुछ बालसे उगे हुए दिखाई देते हैं। इन बालोंके नीचे फूलकी नालीका ऊपर का सिरा कुछ फूला हुआ होता है। इस फूलेहुए भागमें अन्दर की ओर ५ पुंकेसर लगे हुए होते हैं, ये पुंकेसर (Fameus) दण्डिका रहित होते हैं। इनका प्रस्फुटन अन्दरकी ओर होता (Introrse) है। यह पुंकेसर अपने सिरोंपर एक दूसरेसे मिले हुए होते हैं और इस प्रकार योनिध्वज पर एक नोकीली टोपी सी बनाते हैं। योनिध्वज छोटासा डमरूके आकारका और चेपदार होता है। इसके नीचे एक लम्बी डण्डी होती है जो कि दो स्वतन्त्र बीजकोषोंसे निकली हुई होती है। ये बीज-कोष फूलके बीचमें होते हैं और (superior) होते हैं। यही बीजकोष बादमें जाकर फलियां बन जाते हैं। फलियां पककर फटती हैं और उनमें छोटे २ बहुतसे बीज होते हैं।

करौंदा—इसे लैटिनमें Carissa Carandas कहते हैं। कर्नाटकमें गर्जी और कोरिण्डा इन नामोंसे पुकारा जाता है। मलयालममें करन्ता, तामिलमें काली और तलगुमें कालिवी।

इसके पौदेमें कांटे होते हैं जो कि शाखाओंका रूपान्तर होते हैं। इसका फल खाया जाता है और दो-दो फल इकट्ठे आते हैं। फूलकी रचना सदा बहार जैसी ही होती है।

सप्तपर्णी—इसका लैटिन नाम Alstonia Scholaris है। यह एक वृक्ष है, इसकी छाल मलेरियाके बुखारके लिये बहुत अच्छी होती है। इसकी डण्डियोंपर पत्ते एक चक्कर में बहुतसे इकट्ठे के इकट्ठे निकलते हैं और चूंकि प्रायः ७ होते हैं (७ से अधिक या कम होते हैं पर प्रायः ७ होते हैं) सो इसलिये यह वृक्ष सप्तपर्णीके नामसे प्रख्यात हुआ है।

कुंद—शुभ्र पुष्प निकलते हैं। बागोंमें पत्तोंकी चमक और फूलोंकी सुन्दरताके लिये बहुत पसन्द किया जाता है। इसे लैटिनमें Tabernoemontana oronaria कहते हैं।

कनेर—लाल, सफेद और गुलाबी तीन तरहकी होती है पत्ते लम्बे भालाकार होते हैं। और एक २ गांठपर प्रायः ३-३ निकलते हैं कनेरको अंग्रेजीमें (Oleander) और लैटिनमें Nerium odorum कहते हैं।

गुलाचीन—गुलाचीनको कई लोग चम्पा कहते हैं। इसका लैटिन नाम (Plumeria acutifolia) है। देहरादूनमें यह वृक्ष बहुत लोक-प्रिय है। लोग अपनी कोठियों में लगाते हैं। अंग्रेजीमें इसे (Pagoda tree या Temple tree) कहते हैं। इसके बीज नहीं लगते। इसे शाखासे ही लगाया जाता है। बनस्पति शास्त्रवेत्ता इस वृक्षको मैक्सिकोका निवासी मानते हैं पर भारतमें तो इसका प्रचार न जाने कबसे है।

इङ्गलैण्डमें इस वर्गकी केवल एक वनस्पति ही पाई जाती है जिसे सदाबहार ही समझें। पर उसका क्षुप वहांके जङ्गलोंमें बेलकी तरह चलता है और नीले फूल वाला होता है इसे Vinca minor कहते हैं।

भारतमें एक और सदाबहार भी मिलता है जिसे Vinca pusilla कहते हैं। यह अपने स्वरूपमें बिल्कुल सदाबहार जैसा ही होता है पर पत्ते फूल फली सब छोटे होते हैं।

यह वर्ग उष्ण प्रधान देशोंमें मुख्यतः पाया जाता है। और इस वर्ग की अन्य वनस्पतियां जो भारतकी दृष्टिसे महत्त्व की हैं सो निम्न हैं।

(१) **कुटज**—इसे लैटिनमें Holarrhena antidysenterica कहते हैं। इसीका सत्त्व कूर्चीएक्सट्रैक्टके नाम से मशहूर होरहा है। यह औषध प्राचीनकालसे प्रवाहिका और संग्रहणीके लिए प्रयुक्त होती चली आरही है और आधुनिक युगमें परीक्षाओं द्वारा अमीवज प्रवाहिका (Amoebic dysentery) के लिये बहुत अच्छी सिद्ध हुई है। कुटजका फूल बहुत सुन्दर होता है। संस्कृत साहित्यमें इस फूलका वर्णन जङ्गलोंके वर्णनमें अनेकों स्थलों पर पाया जाता है। इसके बीज जौ जैसे होते हैं और इसलिए ये इन्द्रयव कहलाते हैं। इसी वृक्ष के सदृश एक और वृक्ष होता है जो कि लैटिनमें Wsightia tinctoria कहलाता है। इसे हम कु० कुटज अर्थात् कुत्सित कुटज कह सकते हैं। इसके फूलोंमें सुगन्ध होती है पर कुटजके फूलोंमें नहीं होती है। अन्य भेद भी हैं पर उनका उल्लेख यहां अभीष्ट नहीं है।

सर्पगन्धा—इसे छोटा चांदा कह कर भी पुकारा जाता है। रक्तचापकी उच्चता (High blood pressure) की बहुत अच्छी औषध सिद्ध हुई है लैटिन में इसे Rauwolfia serpentina कहते हैं। इसे निद्रा लानेके लिए भी दिया जाता है।

अब करवीरादि वर्गके परिचायक लक्षणों (पहिचानों) का उल्लेख किया जाता है। इस वर्गमें लताएं, क्षुप, झाड़ियां और वृक्ष सब मिलते हैं। पत्ते प्रायः एक एक ग्रन्थि पर दो या दो से अधिक लगते हैं। दूध जैसा रस होता हैं पुष्प उभयलिङ्गी तथा नियमित (Regular) होते हैं। पुट पत्र पांच और संयुक्त होते हैं। पंखड़ियां पांच और संयुक्त होती हैं Convolute होती हैं। पुंकेसर पांच होते हैं और पंखड़ियों से बनी नली पर लगे होते हैं। (Epipetalous carpels) संख्यामें दो और सर्वोपरि (Superier) होते हैं। ये carpels या तो सारेके सारे आपसमें जुड़े होते हैं या इनकी Slyles ही केवल एक दूसरेसे जुड़ी होती हैं। फूलकर फल रूप दो फलियां लगती हैं या गोदे (Berry) लगते हैं जैसे कि करौंदेमें। फलियोंके बीज पुंख (Tuft of hairs) वाले होते हैं।

शर्बत बनाने की सामग्रियाँ

[लेखक—श्री श्रीचरण वर्मा, एम. एस. सी.]

शर्बत नानाप्रकारके होते हैं। बहुतसे ऐसे हैं जो फलोंसे बनते हैं, कुछ फूलोंसे बनाये जाते हैं और कुछ जड़ या पत्तोंसे बनाये जाते हैं। सस्ते और बाजारी शर्बत असली फल और फूलसे तो बहुत कम बनाए जाते हैं वरन् उनके बने हुये सत्त और कार्ढ़ों, को चाशनीमें डाल कर शर्बत तैयार किये जाते हैं। इस प्रकार बनाये हुये शर्बत नकली होते हैं और सस्ते होनेके कारण अधिक बिकते हैं, लेकिन असली फल-फूलसे बने हुए शर्बतोंके समान लाभदायक नहीं होते। इसलिये हम यहां पर अधिकतर असली या स्वाभाविक शर्बत बनाने की विधि लिखते हैं। शर्बत बनानेके लिये निम्नलिखित सामग्रियों की आवश्यकता होती है:—

(१) पानी—साधारण पानी बिल्कुल शुद्ध न होनेके कारण उपयुक्त नहीं होता। शर्बत बनानेके लिये सदा खौलाया हुआ या भपकेसे चुआया हुआ पानी लेना चाहिये। परन्तु दैनिक प्रयोगके लिये मामूली पानी इस्तेमाल किया जा सकता है। वर्षाका पानी बिल्कुल शुद्ध होता हैं क्योंकि उसमें साधारण पानीकी तरह कीटाणु होनेकी सम्भावना नहीं होती।

(२) चीनी—दूसरी मुख्य वस्तु चीनी है जिससे चाशनी तैयारकी जाती है। चाशनी बनानेकी विधि आगे चल कर लिखी जायगी। यहां इतना ही कहना उचित है कि जहां तक हो सके स्वच्छ ही चीनी लानी चाहिये। सर्वोत्तम वस्तु तो मिश्री ही है। यह न ले सकें तो अच्छी दानेदार शक्कर लें। यदि मामूली ही चीनीका प्रयोग करना हो तो उसको दूध या अंडेसे इस प्रकार साफ कर लेना उचित है:—

(क) दूधसे साफ करना—पांच सेर चीनीमें एक सेर या कुछ अधिक पानी मिला कर आग पर गर्म करो और जब उबाल मारने लगे तो आधा कच्चा दूध और आधा पानी मिलाया हुआ साफ कपड़ेसे उसके ऊपर छिड़को और जो झाग निकलें उनको चम्मचसे निकालो। इसी तरह थोड़ी थोड़ी देर पर मिला हुआ दूध-पानी उस समय तक डालो जब तक कि झाग उठना बन्द न हो जाय। यह साफ की हुई चाशनी शर्बत में काम आ सकती है।

(ख) अंडेसे साफ करना—ऊपरकी तरह शक्करको पानीमें घोलो और इसमें से थोड़ासा शर्बत घोल लेकर १ अंडेकी सफेदी निकाल कर उसमें डालते जाओ और १ छटांकके लगभग और पानी डाल कर खूब फेंटो। जब अच्छी तरह झाग उठ जाय तो उसके बाकी घोलमें मिलाकर खूब फेंटो और जब उसमें भी झाग उठ आवें तो धीमी आग पर रक्खो। जो मैल ऊपर आता जाय उसको साफ चम्मचसे निकालते जाओ। जब उस में उबाल आने लगे, आग परसे उतार कर ठण्डी जगह पर रख दो। अगर उसमें फिरभी कुछ मैल ऊपर आये तो उसको भी चम्मचसे निकाल लो और घोलको एक साफ कपड़े से छान लो।

(३) फल—फलोंको चुननेमें जितनी ही सावधानीसे काम लिया जायगा उतना ही शर्बत भी अच्छा बनेगा। फल न तो कच्चे, न दागदार और न ज्यादा पके ही होने चाहियें। परन्तु पूर्ण रूपसे पके हुये फल ही लेने चाहिये और उनका स्वाद अच्छा हो। ऐसी अवस्थामें उनमें रस भी अधिक निकलता है। फलोंको पहले भली भान्ति धो लेना चाहिए परन्तु उनको फैला कर रखना चाहिये जिससे उनका पानी जल्दी ही सूख जाय। यों तो सभी फलोंका शर्बत बन सकता है परन्तु नीबू, सन्तरा, अनार, अंगूर, बेल, पपीता, केला, आम, फालसा रसभरी आदिके शर्बत अधिकतर पसन्द किये जाते हैं।

(४) फूल—इनको भी छांटनेकी आवश्यकता होती है। ताजे और पूर्ण रूपसे विकसित फूल अच्छे होते हैं। कुछ फूल जैसे गुलाब आदि भी सूख कर काममें आते हैं। फूलोंकी चुनी हुई पंखड़ियोंमें कुछ न कुछ धूल अवश्य ही होती है। इसीलिये उनको पानीके भरे हुए बर्तनमें डालकर हाथसे हिला कर जल्दीसे बाहर निकाल लो और फैला दो जिससे कि फूल या पंखड़ियां सूख जाएं। केवड़ा, गुलाब, गुड़हल, बेला, चमेली आदिके फूलोंके शर्बत अच्छे बनते हैं।

(५) फल और फूलोंके अतिरिक्त अन्य वस्तुयें भी शर्बत बनानेके काम आती हैं। जैसे—जड़, पत्ते, तने, मसाले इत्यादि खस, चन्दन, अश्वगन्धा, अड़ूसा इत्यादिके शर्बत स्वादिष्ट तथा लाभदायक भी होते हैं।

(६) **रंग**—शर्बत सुन्दर लगे इस अभिप्रायसे व्यापारी उसमें रंग मिला देते हैं। किन्तु रंग देनेमें जहां तक हो सके उस फल या फूलसे जिसका शर्बतहो मिलता-जुलता रंग मिलाना चाहिये। जैसे—अंगूरके शर्बतमें हरा, गुलाबमें गुलाबी तथा पीले फल फूलोंके शर्बतमें पीला रंग देना चाहिये।

पीला—यह रंग केसरसे बनाया जाता है।

(क) केसर १ तोला, पानी १ पाव, अलकोहल १ पाव

पानी और अलकोहलको मिला कर उसमें केसर डालदो और ४-५ दिन मामूली गर्म जगहमें रहने दो। बादमें छानकर कांचकी डाट वाली शीशीमें बन्द करलो और आवश्यकतानुसार प्रयोग करो।

(ख) यदि अलकोहल इस्तेमाल न करना हो तो केसरको खूब महीन पीस लो और जरासा दूध मिले हुये गर्म पानीमें मिला दो। जब अच्छी तरह मिल जाय तो छान कर रखलो।

(ग) थोड़ेसे गेंदेके फूलों की पंखड़ियां लो और उनको दो तीन दिन तक अलकोहलमें भिगो रक्खो। जब गहरा रंग आजाय छान कर शीशीमें बन्द करके रखलो।

नीला (क) पिसी हुई नील १ हिस्सा, गन्धकका तेजाब ४ हिस्सा, साफ पानी १२ हिस्सा।

नीलको तेजाबमें अच्छी तरह घोल कर पानी मिला दो, और दो चार दिन रखा रहने दो बाद नीचे बैठ जायगी ऊपर ऊपर से रंगदार पानी उतार लो या फिल्टरमें छान लो।

(ख) नील ३ हिस्सा, अंगूरकी शक्कर १ हिस्सा, पानी ६ हिस्सा।

नीलको पानीमें घिस कर शक्कर मिला दो। यह रंग बहुत दिनों तक नहीं रखना चाहिये।

हरा—(क) नीले और पीले रंगोंको मिलानेसे हरा रंग बन जाता है।

(ख) दूब, घास या हरे शाकोंके पत्ते महीन काट कर अलकोहलमें भिगो दो और २४ घण्टोंके बाद छान लो।

गुलाबी—(क) किरमिज़ी (Carmine) १ हिस्सा, अर्क पोटास ६ हिस्सा, पानी ५० हिस्सा।

इन सबको मिलानेसे गुलाबी रंग बन जाएगा। यदि रंग गहरा हो तो पानी मिलाकर हल्का करलो।

(ख) लाल सेबके छिलकोंको अलकोहलमें भिगो दो और थोड़ेसे देशी गुलाबके फूल डाल दो। २४ घण्टोंके बाद छान लो।

रसभरी—अनाटाका सार (Extraet Anatta) १ छटांक, पानी १½ पाव, अलकोहल ३ छटांक, टारटैरिक एसिड (Tartairic acid) ½ तोला, कैरेमल (Caramel) का काढ़ा आवश्यकतानुसार। कैरेमलके अतिरिक्त अन्य वस्तुओं को अच्छी तरह मिला लो और उसमें कैरेमलका काढ़ा इतना मिलाओ कि उसमें रसभरीका गहरा रंग आजाय।

नारंगी—(क) चन्दनकी लकड़ीका काढ़ा उसी प्रकार बनाओ जिस प्रकार कि केसरका काढ़ा बनाना पीले रंगमें बतलाया गया है उसमें Orlean का काढ़ा इतना मिलाओ कि नारंगी रंग बन जाय।

(ख) पीले रंगको नीचे लिखे हुए लाल रंगमें मिला कर भी नारङ्गी रंग तैयार किया जा सकता है।

लाल—(क) पिसी हुई कचनील (Cochineal) १ तोला, पोटैसियम कार्बोनेट (Potassium Carbonate) २तोला पानी, ५छटांक, टार्ट्रीकी क्रीम Cream oftartar ६ तोला, फिटकिरी ½ तोला, अलकोहल २ तोला।

पोटैसियम कार्बोनेट को पानीमें घोल कर कचनील को मिलाओ और २ दिन रक्खा रहने दो। तब टार्ट्रीकी क्रीम और फिटकरी मिलाओ। जब झाग उठना बन्द हो जाय तो छानने वाले कागज (Filter Paper) से छानलो। जो कुछ कागजके ऊपर बच रहे उसको २ तोले अलकोहलमें मिलाओ।

(ख) कचनील २ तोला, टार्ट्रीकी क्रीम (Cream of tartar) १ तोला, फिटकरी १ तोला, पानी २ पाव, मिश्री ४ तोला।

कचनील पानीमें उबालो और टार्ट्रीकी क्रीम और पिसी हुई फिटकरी उसमें मिला कर १० मिनट खौलने दो, जब रंग ठीक आजाय आगसे उतार कर मिश्री मिला लो।

२ बर्तन-भांडा

बड़ी मात्रामें शर्बत बनाना हो, या दुकानदारी करना हो,

तो निम्न लिखित वस्तुओंकी आवश्यकता होती है :—

(१) एक **तापमापक** (Thermometer) होना चाहिये जो २१८°-२४०° फारनहाइट तककी गर्मी नाप सके। इससे चाश्नी व फलोंके अर्कको गरम करते समय उनका तापक्रम नापा जाता है। इसलिये तैरने वाला तापमापक मोल लेना चाहिये।

(२) **घनत्वमापक** (Hydrometer) यह यन्त्र चाश्नीका घनत्व (Density) नापनेमें काम आता है। इससे जाना जाता है कि चाश्नी ठीक गाढ़ी होगई है या नहीं।

(३) **भपका** (Distilling Apparatus) यह बने बनाये (कांच या ताम्बे के) बाजारसे मिल सकते हैं। परन्तु अच्छा तो यह होता है कि अपनी जरूरतके अनुसार ताम्बेका जैसा कि चित्रमें दिखाया गया है बनवालो। इससे फल, फूल, जड़ इत्यादिका अर्क भाप बनाकर खींचा जाता है। देखो भपका
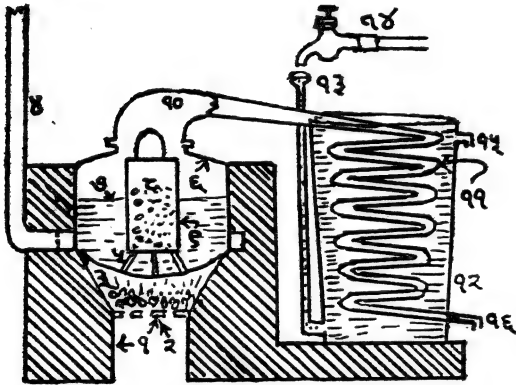
ऐसा भपका स्थानीय कारीगरोंसे आसानीसे बनवाया जा सकता है। १—भट्टी, २—राख भरनेकी जाली, ३—आग, ४—चिमनी, ५—तिपाई, ६—डेग, ७—पानी, ८—फूल आदि, ९—फूल आदि रखनेका बर्तन जिसमें बहुतसे छेद रहते हैं, १०—टोंटी या नली, ११—सर्पिलाकार खोखली नली, १२—बाल्टी, १३—बाल्टीमें ठंडा पानी जानेका मार्ग, १४—ठंडा पानी का बम्बा (नल), १५—बाल्टीके पानीके निकलनेका रास्ता, १६—अर्कके निकलनेका मार्ग इसके नीचे बोतल रखनी चाहिए।

यदि शर्बत गर्म विधिसे न बनाना हो तो धातके बर्तनों का प्रयोग कर सकते हो।

(४) **खौलाने का बरतन या कढ़ाई**—(Boiling Pan) मिट्टी, तामचीनी या चीनीमिट्टीका होना चाहिये, अगर ढकनेदार भगौने या कटोरदानकी शकलका हो और उठानेके लिये कुण्डे लगे हों तो अच्छा होता है।

(५) **कीटाणुनाशक** (Steriliser)—शर्बत या बोतलोंको कीटाणु रहित करनेके लिये टीन या अलूमिनियमका चौड़े मुंहका ढकनेदार बर्तनका प्रयोग किया जा सकता है। गर्म करते समय बोतलें पेंदेकी आंचसे चटख जाती हैं इसलिये उनके पेंदेके नीचे तह किया हुआ कपड़ा बिछाना चाहिये या उनके नीचे लकड़ीका पीढ़ा रख देना चाहिये अथवा बोतलोंके रखनेके लिये लकड़ीकी जाली बना लेनी चाहिये (चित्र देखो)
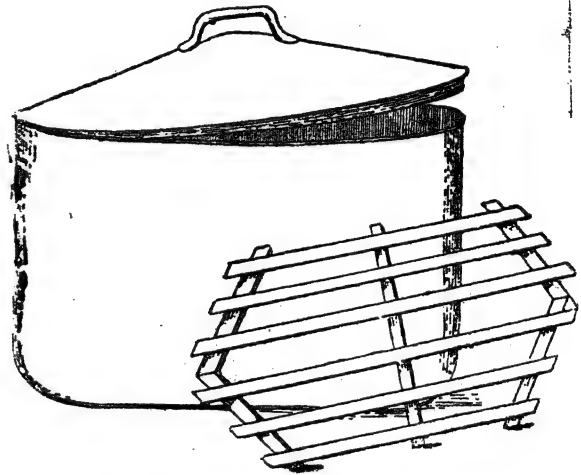
सामग्री भरी बोतलोंको कीटाणु रहित करनेके लिए ढक्कनदार भगौना चाहिए। इस चित्रमें लकड़ीकी जाली बाहर निकाल कर दिखायी गई है।

(६) **रस निचोड़नेकी मशीन** Juice Extractor थोड़े फलोंका रस तो कपड़ेमें दबा कर ही निकाल सकते हो, नींबू, नारंगीके रस निकालनेकी छोटी मशीनें बाजारमें बिकती हैं जिनके हैंडलको हाथसे दबा कर फलोंका रस निकाला जाता है। पर ज्यादह फलोंका रस निकालनेके लिये एक बड़ी मशीन लकड़ीकी तय्यार करानी चाहिये।

(७) **भट्टी** (Oven)—मामूलीतौरसे चूल्हे या अंगीठीसे काम चल जाता है, लेकिन शर्बतमें तेज आंच हानिकारक होती है। इसलिये ऐसी भट्टीका-जिसमें लकड़ी या नम पत्थरका कोयला जले और आंच घटाई बढ़ाई जा सके, प्रयोग करना उचित है।

फिल्म डेवेलप करना

प्रारम्भिक—बहुतसे शौकीन अपना फिल्म किसी दुकानदारसे डेवेलप कराते और छपाते हैं। यदि हो सके तो प्रत्येक फोटोग्राफर को डेवेलप करना और छापना सीख लेना चाहिये तब वह नेगेटिवकी त्रुटियोंको अधिक अच्छी तरह पहचान सकेगा।

फिल्म डेवेलप करनेका टैंक।
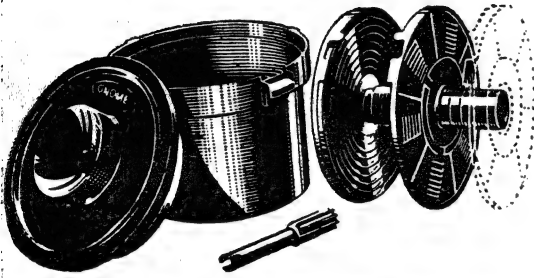
ऐसे टैंकके रहनेसे फिल्म डेवेलप करनेमें बड़ी सुविधा है

बाजारमें ऐसे यंत्र बिकते हैं जिनके प्रयोगसे रोल फिल्म बिना अन्धेरी कोठरीके ही डेवेलप किये जा सकते हैं। ये यन्त्र ऐसे टैंक (tank) या डिब्बे होते हैं, जिनके भीतर फिल्म बिना उसपर प्रकाश लगे ही खोला जा सकता है। तब टैंकमें एक छेद द्वारा डेवेलपर छोड़ दिया जाता है। इस छेदपर भी ऐसे अवरोध लगे रहते हैं, जिनसे प्रकाश भीतर नहीं घुस पाता, यद्यपि घोल घूमता-फिरता भीतर चला जाता है। इन टैंकोंके साथ पूरी प्रयोग विधियां मिलती हैं। इसलिये उनपर यहां विचार न किया जायगा। यहां केवल बिना टैंकोंके, अन्धेरी कोठरीमें, फिल्म और प्लेट डेवेलप करने पर विचार किया जायगा।

अन्धेरी कोठरी—कोई भी कोठरी रात के समय अन्धेरी कोठरी का काम दे सकती है। केवल, यदि दरवाजे चपक कर न बैठते हों तो, उनपर काला परदा छोड़ना पड़ेगा।

परन्तु सुविधा इसीमें होती है कि ऐसी कोठरी रक्खी जाय जो दिनमें भी अन्धेरी कोठरीका काम दे सके। इसके लिये ऐसी कोठरी चुननी चाहिये जिसमें एक दरवाजा और एक जंगला (या एक और दरवाजा) हो। अधिक दरवाजे और जंगलोंके रहनेसे अधिक बखेड़ा करना पड़ेगा। यदि कोठरीमें केवल एक दरवाजा हो और जंगला (या दूसरा दरवाजा) न हो तो वायुका आवागमन ठीक न रहनेसे कोठरीमें सीड़ रहेगी, और वह स्वच्छ भी न रक्खी जा सकेगी।

दरवाजे को प्रकाश अभेद्य करना।
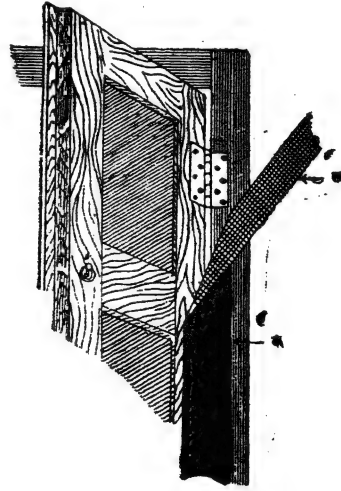
कब्जे वाले किनारे पर काला मोमजामा चिपकाना चाहिए और किनारोंपर लकड़ी की पट्टी जड़नी चाहिए।

पहले दरवाजे और जंगलेके पल्लोंके शीशोंपर काला कागज, दफ्ती या प्लाईवुड जड़कर उन्हें अपारदर्शक कर देना चाहिये। फिर कब्जे वाले किनारों पर काला मोमजामा चिपका कर उधरसे प्रकाश का आना रोक देना चाहिये। अन्तमें प्रत्येक पल्लेके अन्य तीन किनारोंपर आध इंच मोटी, दो इंच चौड़ी, लकड़ीकी पट्टियां इस प्रकार जड़नी चाहिएं कि इन संधियोंसे प्रकाश भीतर न आ सके। इन पट्टियोंकी भीतरी सतह को काला रंग देना चाहिये। काले रंगके लिये १ भाग चपड़े (लाह) को ५ भाग मेथिलेटेड स्पिरिटमें घोलो और उसमें आवश्यकतानुसार कालिख (कोरा काजल) मिलाओ।

यदि कोठरी ८ फुट × ८ फुट × ८ फुटसे छोटी हो तो वायुके आगमनका उचित प्रबन्ध करना चाहिये, नहीं तो ऐसी कोठरीमें लगातार आधे घण्टेसे अधिक समय तक रहने पर स्वास्थ-पर बुरा प्रभाव पड़ेगा। वायुके निकलनेके लिये छतमें, या छतके पास दीवारमें चिमनी चाहिए जो सीधी न होकर, एक-दो जगहसे इस प्रकार मुड़ी हो कि वायु तो निकल सके परन्तु प्रकाश न घुस सके। वायुके भीतर आने के लिए फर्शके पास दीवारमें छेद चाहिए, और इसपर भी इस प्रकार का अवरोध लगा रहना चाहिये कि केवल वायु ही भीतर आ सके, प्रकाश नहीं।

वायु आवागमन के लिए दीवारमें अवरोधयुक्त छेद
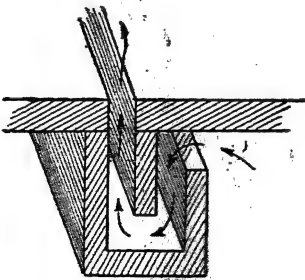
तीरोंसे वायुका मार्ग दिखलाया गया है।

अन्धेरी कोठरीको बन्द करके उसमें १० मिनट तक बैठे रहो। फिर ध्यानपूर्वक देखो; यदि कहींसे रोशनी न आरही हो तो कोठरी ठीक है।

अन्धेरी कोठरीमें पानी का नल और पनाला लगा हो तो अच्छा, नहीं तो एक सुराही पानी और एक खाली बाल्टी (पानी डालने के लिये) कार्यारम्भके पहले रख लेनी पड़ेगी। यदि अन्धेरी कोठरीमें मेज रहे तो अधिक सुविधा होगी। एक ऐसी बत्ती भी चाहिए जिससे लाल प्रकाश निकले यह किसी भी फोटोग्राफर की दूकान पर खरीदी जा सकती है; लैम्पपर लाल कपड़ा ओढ़ानेसे काम न चलेगा। बिजलीकी बत्तीमें सुविधा होती है। लाल बत्तीके अतिरिक्त दो या तीन जाइलोनाइट या सेलुलायड की तश्तरियां (इनमें से एक नेगेटिवोंसे चौगुनी बड़ी हो तो सुविधा होगी) मेजर-ग्लास (तरल मापक), तराजू और बाट, फोटो छापनेका चौखटा (प्रिंटिंग फ्रेम), साधारण गिलास और कुछ रासायनिक पदार्थ भी (जिनका नाम आगे

सरल अन्धेरी कोठरी
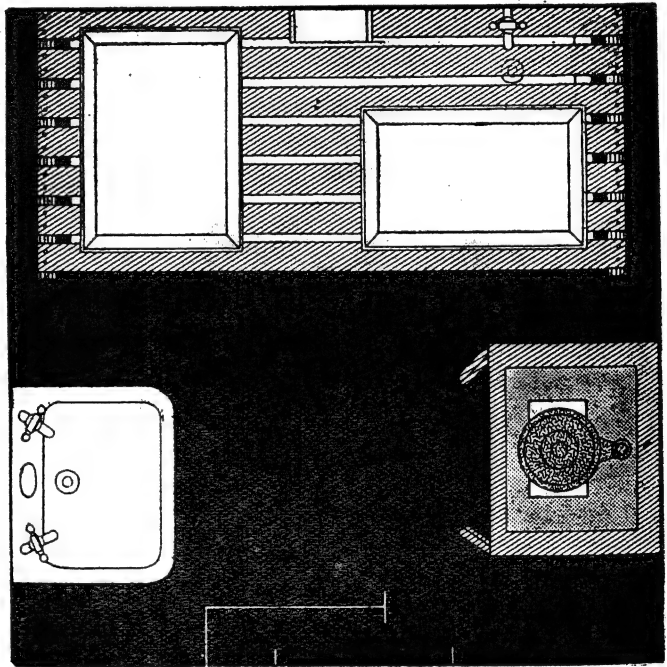
मेज पर दो तश्तरियां रक्खी हुई हैं। बीचमें लाल प्रकाश है। उसकी दाहिनी ओर पानीका कल है। कोठरीकी दाहिनी दीवारसे सट कर एनलार्ज करनेकी मशीन अलग मेज पर रक्खी है। बायीं ओर हाथ धोनेके लिए बेसिन, पानीका नल और साबुन है।

दिया जायगा) खरीदना पड़ेगा। एक घड़ी भी चाहिए। एक थरमामीटर खरीद लिया जाय तो अच्छा है, परन्तु इसके बिना भी काम चल सकता है। फिल्म पकड़नेके दो क्लिप भी ले लिये जांय तो सुविधा होगी।

अन्धेरी कोठरीके लिए लाल प्रकाश
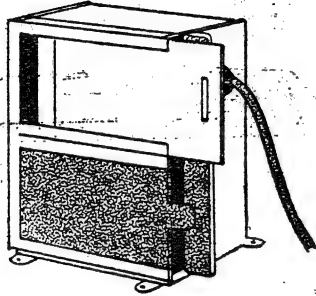
चित्रमें एक बढ़िया मेलका लैंप दिखलाया गया है जिसमें लाल शीशा खिसकाकर अलग किया जा सकता है और इसके बदले पीला, नारंगी या हरा शीशा लगाया जा सकता है चित्रमें बिजलीका लैंप दिखलाया गया है, परन्तु मिट्टीके तेल वाले लैंप भी बिकते हैं।

प्लेट घर बनाना—यदि प्लेटोंका इस्तेमाल किया जाय तो प्लेटघरोंमें पहले प्लेट (या कट फिल्म) भरना पड़ेगा। पहले उजालेमें प्लेट घरमें कोई प्लेटके नापका शीशा या पुराना (मंगनी का) नेगेटिव भर कर देख लिया जाय तो अच्छा होगा। प्लेट अपने बक्सके भीतर इस प्रकार बन्द रहते हैं कि ऊपर वाले पहले प्लेटका मसाला नीचे मुंह, दूसरे प्लेटका मसाला ऊपर मुंह तीसरे प्लेटका मसाला नीचे मुंह, इत्यादि इसी क्रमसे रहता है। इसलिए अन्धेरेमें भी वे ठीक-ठीक प्लेट घरमें भरे जा सकते हैं। अवश्य ही प्लेटका मसाला प्लेटघरके ढक्कनकी ओर रहे। सफेद रोशनी आने देनेके पहले प्लेटोंका बक्स बन्द करना न भूलना चाहिए।

गर्मीके दिनों में—गर्मीके दिनोंमें डेवेलप करनेमें विशेष कठिनाई पड़ती है। बर्फ मिल सके तो अच्छा है, नहीं तो सुराहीमें रक्खा बासी पानी या गहरे कुएँके पानीसे काम चलाना चाहिए, परन्तु कुएका पानी खारा न हो। नीचे जो डेवेलप करनेकी रीति दी गई है वह गर्मीके दिनोंके लिए है। जाड़ेके दिनोंमें पद ३ और ४ को छोड़ देना चाहिए।

डेवेलप करना (गर्मीके दिनोंमें)—साधारण फिल्म हो तो मन्द लाल प्रकाशमें, पैनक्रोमैटिक फिल्म हो तो अन्धेरेमें सब क्रिया करनी चाहिए। साधारण फिल्म हो तो भी यथा सम्भव लाल बत्तीसे दूर पर और ऐसे स्थान पर काम करना चाहिए जहां बत्तीसे फिल्म पर रोशनी सीधी न पड़े, केवल दिवारसे बिखर कर आये।

(१) पहले फिल्मको खोलो और इसके पीछे लगे कागज को निकाल कर फेंक दो। फिल्मके सिरों पर क्लिप लगा लो, नहीं तो फिसलनेका डर रहता है और फिर हाथकी गर्मी से भी हानि होती है। पहले दिन कोई सहायक साथमें हो तो फिल्ममें क्लिप लगाने इत्यादि में आसानी पड़ेगी, क्योंकि लम्बा फिल्म बेतरह ऐंठता है, ३६ चित्र वाला मिनियेचर फिल्म इतना लंबा होता है कि उसे टैंकमें ही डेवेलप किया जा सकता है।

(२) किसी बड़े और गहरे बर्तनमें रक्खे खूब ठंडे पानीमें फिल्मको एक मिनट तक चलाओ (तापक्रम ६५° फारनहाइट या कुछ कम हो तो अच्छा होगा और आगामी सब घोलोंका तापक्रम भी इतना ही रहे) चलाने की रीति चित्रसे स्पष्ट हो जायगी। इस चित्रमें गिलास दिखाया गया है, परन्तु गिलासके बदले बड़ा और गहरा बर्तन लेना चाहिए। बारी-बारीसे हाथ को बराबर ऊपर-नीचे चलाया जाता है जिसमें फिल्म सब जगह एक समान तर हो। इस क्रियासे फिल्म लचीला हो जाता है और आगामी क्रियाओंमें सुविधा होती है।

तश्तरी
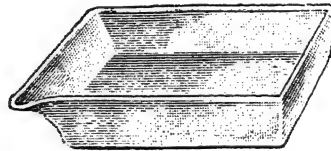
बड़ी कई एक तश्तरीयां हों तो सुविधा होगी, परन्तु कमसे-कम तीन तश्तरी अवश्य चाहिए।

(३) अब फिल्मको गिलासमें रक्खे फॉरमैलिन (Formaline) और पानीके खूब ठंडे मिश्रणमें इसी प्रकार तीन मिनट तक चलाया जाता है। फॉरमैलिनका नुसखा यह है—

फॉरमैलिन (तेज, ४०%वाला) ½ आउंस, पानी ४ आउंस।

फारमैलिन फिल्म पर सब जगह बराबर लगे। यदि अन्धेरी कोठरी इतनी गर्म हो कि ३ मिनटमें गिलासके गरम

हो जानेका डर हो तो गिलासको किसी बड़े बर्तनमें रखना चाहिए और उसमें खूब ठण्डा पानी डाल रखना चाहिए। फॉर्मैलिनसे जिलेटीन इतनी कड़ी होजाती है कि फिर गर्मी लगनेके कारण वह पिघलती नहीं। इस घोलको उठा कर बन्द बोतलमें रख दिया जाय तो यह फिर काम दे सकता है, परन्तु दोबारा काममें लानेके पहले बोतलको खूब ठंडे पानीमें घण्टे भर रख कर घोलको ठंडा कर लेना चाहिए (तापक्रम लगभग ६५° हो जाय)। एक ही घोल लगभग १० बार काम दे सकता है।

तरल-मापक

जल तथा अन्य तरल पदार्थ नापनेके लिए दो तरल-मापक (मेजर ग्लास) भी हों, जिनमें से एक से ८ आउंस तक और दूसरेसे २ आउंस तक नापा जा सके।

नोट—गिलासके बदले तश्तरीका प्रयोग किया जा सकता है, परन्तु ऐसा करनेसे फिल्म अक्सर तश्तरीकी पेंदीसे रगड़ खा जाती है, और फिल्म पर खरोंच पड़ जाते हैं फिल्मों में दोनों ओर जिलेटीन रहता है। गिलासके बदले चाय की प्यालीका प्रयोग किया जा सकता है। गिलास या प्याली आवश्यकतासे बहुत बड़ी न रहे।

(४) अब क्रिया नम्बर दो की तरह फिल्मको फिर ठंडे सादे पानीमें एक मिनट तक धोना चाहिए। बर्तनमें पानी अधिक रहे, जिसमें फिल्ममें लगा फालतू फॉरमैलिन बह जाय। यदि पानी दो बर्तनोंमें रक्खा जाय और फिल्मको पहले एकमें और फिर दूसरेमें धोया जाय तो धुन्ध (Fog) उत्पन्न होगा।

(५) अब गिलासमें रक्खे ठंडे डेवेलपर में फिल्मको डेवेलपरके तापक्रमके अनुसार ३ से ५ मिनट तक चलाओ। इस विषय पर व्योरे वार विचार आगे किया जायगा। वहीं नुसखा भी दिया जायगा।

(६) फिर क्रिया ४ की तरह फिल्मको सादे पानीमें धोओ परन्तु यदि कुछ डेवेलपर लगा भी रह जायगा तो हानि न होगी।

तराजू और बाट
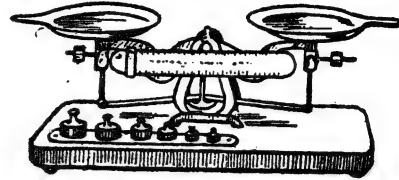
चित्रमें दिखलाये ढंगके तराजूसे सुविधा होती है, परन्तु साधारण छोटी तराजूसे भी जैसा सोनार लोग रखते है, काम चल जायगा।

(७) अब क्रिया नं० ५ की तरह फिल्मको गिलासमें रक्खे ठंडे हाइपोके घोलमें चलाओ। धीरे-धीरे फिल्मका दूधियापन मिट जाता है। दूधियापन पूर्णतया मिट जानेके बाद भी उसी घोलमें फिल्मको दो या तीन मिनट तक चलाते रहना चाहिए। तब सफेद रोशनी आने दी जा सकती है।

(८) अन्तमें सादे पानीमें फिल्मको १५ मिनट तक धोना चाहिए और इतने समयमें पानीको आठ-दस बार बदलना चाहिए। यदि नेगेटिवमें नाम मात्र भी हाइपो रह जायगा तो कुछ वर्षोंमें नेगेटिव बदरङ्ग होकर खराब हो जायगा।

विशेष घड़ी
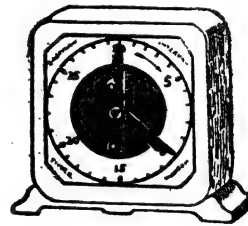
इस घड़ीसे, सुई ठीक कर देने पर, इच्छानुसार एकसे लेकर ३० मिनट पर घंटी बजती है। इसलिए ऐसी घड़ीसे विशेष सुविधा होती है इसके अभावमें किसी भी साधारण घड़ीसे काम चल जायगा।

(९) अब फिल्मको बिजलीके पंखेके नीचे या कहीं हवा-दार जगहमें सूखनेके लिए लटका देना चाहिए, परन्तु जगह ऐसी हो जहां गर्द पड़नेका या फिल्मके दीवारको छूनेका भय

न हो। बरसातके दिनोंमें बिजलीका पंखा या अन्य कोई ऐसा ही उपाय प्रायः आवश्यक हो जाता है क्योंकि इसके अभाव में फिल्मके सूखनेमें कभी-कभी आठ दस घण्टे भी लग जाते हैं। और इतने समयमें जिलेटीन सड़ने लगता है या उसे कीड़े खाने लगते हैं।

सूखने पर नेगेटिव काट-काट कर अलग किये जा सकते हैं। इनको किनारोंके बल ही पकड़ना चाहिए, नहीं तो अंगुलियोंके धब्बे लग जाएंगे, चाहे अंगुलियां कितनी भी स्वच्छ क्यों न हों।

क्लिप
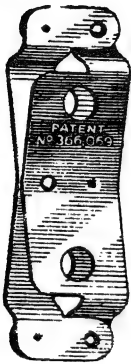
फिल्मके सिरों पर क्लिप लगा लेनेसे फिल्मको पकड़ने में आसानी पड़ती है। क्लिप अन्य डिजाइनोंके भी बनते हैं।

फिल्मको डेवेलप करना

हाथोंको बराबर ऊपर-नीचे चलाते रहना चाहिए।

जाड़ेके दिनोंमें—जाड़के दिनोंमें डेवेलप करना अधिक सरल है। उन दिनों ऊपरके पैरोंकी क्रियाएँ ३ और ४ छोड़ दी जा सकती हैं। पूरा डेवेलप होनेमें कुछ समय अधिक लगेगा। स्थायी होनेमें भी कुछ समय अधिक लगेगा। धोनेमें भी समय अधिक लगाना चाहिए। २५ या ३० मिनट तक धोना उचित होगा।

फिल्म पोंछना
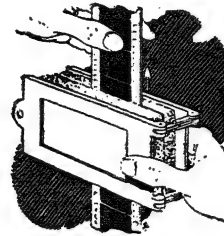
सुखानेके पहल फिल्मको विशेष रबर या शामी चमड़े की बनी गद्दियोंसे पोंछ देनेसे फिल्म स्वच्छ हो जाता है और शीघ्र सूखता भी है।

पोंछना—यदि धोनेके बाद और सुखानेके पहले फिल्म को विसकोज़ स्पंज (Viscose sponge) या शामी चमड़े (Chamois Leather) से पोंछ लिया जाय तो फिल्म अधिक शीघ्र सूखेगा और स्वच्छ भी अधिक होगा। इसके लिए विशेष चिमटे बिकते हैं जिनमें उपरोक्त पदार्थोंके टुकड़े लगे रहते हैं।

फिल्म को शीघ्र सुखाना हो तो इसे बिजलीके पंखे के नीचे रखना चाहिए

तापक्रम—जैसा ऊपर कहा गया है पहली बार का फिल्मको लचीला करने वाला पानी, (फॉरमैलिनका घोल,) धोनेका पानी और डेवेलपर ये सब यथा सम्भव ठंडे रहें और ये अन्त तक ठंडे रहें परन्तु ५५° से अधिक ठंडे न रहें। इस के बादके घोल धीरे-धीरे कम ठंडे हों तो हानि नहीं। जैसे, डेवेलपरके बाद धोने वाले पानीका तापक्रम डेवेलपरके तापक्रम से भी दो चार डिगरी अधिक हो और उसके बादके धोने का पानीका तापक्रम दो चार डिगरी अधिक हो तो कोई हरज नहीं होगा, परन्तु फिल्मका तापक्रम एकाएक न बदलने पाए।

यदि पहली बारका पानी काफी ठंडा न होगा तो फिल्म का जेलेटिन या तो पिघल जायगा, या यदि बात यहां तक न भी पँहुची तो जिलेटिन फूल जायगा। इसलिए यदि पानी काफी ठंडा न मिले तो फिल्मको सीधे फॉरमैलिनके घोल में छोड़ना चाहिए, परन्तु इसमें एक बातका भय रहता है। वह यह कि यदि फिल्मके ऐंठे या लिपटे रहनेके कारण फॉरमैलिन सब जगह एक समान नहीं लगेगा तो जेलेटिन कहीं कम, कहीं अधिक कड़ा होगा और इसलिये फिल्म पीछे कहीं अधिक कहीं कम डेवेलप होगा जिससे फोटो सब बिगड़ जायँगे। यदि काफी फॉरमैलिन लिया जाय तो यह कठिनाई शायद उपस्थित न होगी।

थर्मामीटर

थर्मामीटरके बिना भी काम चल सकता है, परन्तु इसके रहनेसे बहुत सच्चा काम हो सकता है।

(१४१ पृष्ठ का शेष)

(१) छेदकी लम्बाई या यों कहिए कि बरतनकी मुटाई पर।

(२) छेदके व्यास पर। जितनाही व्यास कम होगा उतनी ज्यादा रुकावट होगी।

(३) उस पदार्थका पृष्ठ तनाव जो छेदमें घुपड़ा जाय।

वायुका पृष्ठ तनाव जलकी अपेक्षा बहुत कम है। इसलिए छेद इतना बारीक बनाया जाता है कि पानी उसके पार न जा सके तो भी वायु सुगमतासे आर-पार जा सकता है।

कपड़ेको भी जल-अभेद्य करनेकी नवीन पद्धतिमें यही सिद्धांत काममें लाए जाते हैं, ऊपरसे यह मालूम हो कि कपड़ा जितना ही मोटा और घना बुना हुआ होगा उतना ही अच्छा वाटर-प्रूफ हो सकेगा।

व्याधि क्या है?

[लेखक स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य]

जिन कारणोंसे शरीरके सजीवकण (कोष-सेल) उत्पीडित होकर निष्क्रिय होने लग जायं अथवा जिन कारणों के द्वारा शरीरके उक्त कण उत्पीडित हो कर मृत होने लग जांय—ऐसी व्यथित करने वाली, नाश करने वाली शक्तिको व्याधि कहते है।

इसके दो कारण हैं (१) विकार, (२) कीटाणु = जीवाणु।

विकार और व्याधि

प्रकृतिने हमारे शरीरको ऐसा बनाया है कि, वह जीवन रक्षा के समस्त कार्य व्यवहारको विना किसी सहायताके—आपही कर लेता है और जीवनकी रक्षाके लिये जिन पदार्थोंको वह योग्य समझता है ग्रहण करता है, अयोग्यको त्याग देता है। इसकी बहुत कुछ तुलना रेलके इञ्जनसे की जा सकती है। जिस तरह इञ्जनको चलानेके लिये कोयला, पानी और अग्निकी आवश्यकता होती है, उसी तरह हमारे शरीरको सचेष्ट रखनेके लिये भोजनकी आश्यकता होती है। क्योंकि जिस तरह इञ्जनको कोयलेके द्वारा उत्ताप उत्पन्न होकर शक्ति मिलती है, उसी तरह भोजन द्वारा उत्ताप उन्पन्न होकर शरीरको कार्य करने की शक्ति मिलती है। इञ्जन निर्जीव पदार्थ होनेसे उसमें कोयला, पानी द्वारा गति शीलता उत्पन्नकीजाती है; शरीर सजीव है इसलिये वह भोजन द्वारा स्वयम् शक्ति प्राप्त कर लेता है तथा इससे अपनी क्षयपूर्ति और वृद्धि करता रहता है।

भोजन और विकार

जब इञ्जनको चलानेके लिये कोयला जलाया जाता है तो, उस कोयलेका कुछ भाग धुआं बन कर निकलता है और कुछ भाग जलनेके बाद भस्मके रूपमें नीचे रह जाता है, जो पुनः इञ्जनके किसी कामका नहीं होता, उसको कार्य-कर्ता बराबर बाहर निकालते रहते हैं। ठीक इसी तरह शरीरमें भी जब खाद्य पदार्थ पहुंचते हैं तो उस खाद्यका प्रत्येक कण शरीरके काम नहीं आता, प्रत्युत, उसका स्थूल भाग मल मूत्रके रूपमें निकलता है। जो सूक्ष्म होता है वह वायु रूपसे श्वास प्रश्वास मार्गसे निकल जाता है। स्थूल मल मूत्र गुदा मूत्रेन्द्रिय और त्वचा मार्गसे बाहर निकलता है। जो भाग सूक्ष्म होता है वह फेफड़ों द्वारा बाहर किया जाता है। इस मल निकालनेकी प्रक्रियाको उधर इञ्जनके कार्य-कर्त्ता, पूरा करते हैं, इधर शरीरके अङ्ग उपाङ्ग और सजीव कोष पूरा करते हैं। किन्तु हम देखते हैं कि दोनों ओर सफाईकी ठीक व्यवस्था रहने पर भी कुछ ऐसे सूक्ष्म मल होते हैं जो किसी न किसी पुरजेमें लग कर जमते चले जाते हैं, जिसके लिये इञ्जनकी यदि दो चार मासके बाद पुनः अच्छी तरह सफाई न की जाय तो अकस्मात् किसी न किसी दिन एका-एक किसी पुरजेमें रुकावट पड़तेही समग्र इञ्जनके पुरजोंमें रुकावट आने लगती है और इञ्जन चलते चलते रुकने लग जाता है, यही बात हम शरीरमें भी पाते हैं। हम देखते हैं कि शरीर की नित्य सफाई होते रहने पर भी कुछ न कुछ मलका सञ्चय होता रहता है। उस दशामें इसकी वृद्धि अधिक होने लगती है जब अनुचित आहार और दैनिक-चर्यामें विहारकी अधिकता होने लग जाती है। उस समय शरीरके अङ्ग उपाङ्ग ठीक समय पर अपना काम समाप्त नहीं कर पाते, इसका परिणाम यह होता है कि कुछ न कुछ शरीरमें सूक्ष्म और स्थूल मलका अंश सञ्चित होने लगता है औ' यदि उक्त मल शीघ्र शरीरके बाहर न निकले तो कुछ ही समयके बाद शरीर की क्रियामें व्याघात आने लगता है और इसीसे दैनिक व्यवहारोंमें बाधा पड़ने लग जाती है। यदि इसका शीघ्र उपचार न किया जाय तो शरीर रूपी इञ्जनके बिगड़ जाने या बीमार पड़ जानेका भय होता है।

विकारों का प्रभाव

जब कोई भी अयोग्य अहितकर पदार्थ एक नियत समय

से अधिक देर शरीरमें ठहर जाय तो, स्वाभाविकतया उसमें विकृति उत्पन्न होजाती है और उसके सूक्ष्म कण रक्तमें प्रवेश कर शरीरमें भ्रमण करने लग जाते हैं। जब वह रक्तके साथ भ्रमण करते हुए शरीरके जिस अङ्ग उपाङ्ग या अवयवसे टकराते हैं उन्हें वह प्रभावित करते रहते हैं। इसमें कोई संशय नहीं कि उक्त अवयव उसे अपने पाससे हटानेकी पूरी चेष्टा करते हैं, किन्तु यदि वह अवयव निर्बल हों या वह शक्तिसे अधिक काम कर रहे हों तो उक्त विकारी पदार्थोंकी शक्तिको नहीं रोक सकते। इसीलिये जब इन कणोंकी कुछ भी मात्रा एक स्थान पर संञ्चित हो जाती है तो वहांका काम रुकने लग जाता है। शरीरमें जहां ऐसे पदार्थका जमाव होने लग जाय जिसकी स्थानिक अवयवोंको आवश्यकता नहीं, तो ऐसे पदार्थके सञ्चय होते ही वह स्थान पूर्वकी अपेक्षा बढ़ने लग जाता है। दूसरे जब तक वह निकल न जाय शरीरावयवोंकी ओरसे सदा प्रयत्न होता रहता है। इस प्रतिद्वन्दतामें तीन बातें होती हैं प्रथम तो उक्त अवयव समूह (अङ्ग) विकार सञ्चयसे कुछ बढ़ जाते हैं, दूसरे जब उस विकारको निकालनेके लिये शरीर रक्षक आ जाते हैं तो वह स्थान और भी बढ़ जाता है अथात शोथ युक्त हो जाता है।

तीसरे जब उसको हटानेका प्रयत्न होता है तो वहां संघर्ष होता है और उस संघर्षमें उक्त स्थानका उत्ताप भी बढ़जाता है। जब शोथ और उत्ताप बढ़ने लगते हैं तो शरीरको इनका अनुभव मानसिक शक्ति द्वारा पीड़ा और दाहके रूपमें होता है। यदि उक्त विकार उस स्थानमें अधिक काल तक बने रहें और शोथ तथा उत्तापादि न घटें प्रत्युत इनकी अधिकता रहे तो इसका परिणाम यह होता है कि उक्त स्थानके विकारोंमें पुनः ऐसा रासायनिक परिवर्तन होने लगता है जो शरीरके योग्य नहीं होता, उक्त विकारोंकी विषाक्तशक्ति और उत्ताप अधिक बढ़ कर वे स्थानिक अवयवोंका नाश करने लग जाते हैं। जिसको शरीरका क्षय नाश, और निर्बलतादि कहते हैं। आदिमें यह विकार या मल जब शरीरके भीतर उत्पन्न हो कर बढ़ने लग जाते हैं, तो सिवाय शिथिलता अकड़ाव आदि के कोई निश्चित चिह्न नहीं देखे जाते, किन्तु जब उनका सञ्चय अधिक हो जाता है तो हमें इसका अनुभव पीड़ा, दाह आदिके रूपमें होने लगता है। यदि यह विकार अन्तर-भागसे चल कर त्वचा या मांसाश्रित आजांय तो इनके सञ्चय होने का स्पष्ट चिह्न शोथक रूपमें प्रदर्शित होता है और उक्त शोथ वृद्धीके साथ दाह, पीड़ा आदिके भी चिह्न स्पष्ट दिखाई देते हैं। जब तक उक्त विकार बने रहते हैं दाह, पीड़ा शोथादि भी बने रहते हैं। विकारके निकल जाने पर सब क्रमसे घट जाते हैं। यह दृश्य किसी फोड़ा फुन्सी आदि में अच्छी तरह दिखाई देता है। इसतरह इस विकारकी वृद्धिमें तीन बातें देखी जाती हैं सर्व प्रथम शोथ, पुनः दाह पुनः शरीर का नाश। जब तक शोथ नहीं होता कोई कष्ट नहीं होता। शोथके प्रारम्भ होते ही शरीरमें व्यथाका अनुभव होने लगता है जिसको हम पीड़ा कहते हैं इसके साथ ही दाह बढ़ता है और शरीर अवयवोंका नाश आरम्भ होजाता है और नाशमें जो मानसिक वेदना होती है उसीको लौकिकमें व्याधि कहते है। जो स्थानान्तर भेदसे अनेक नामरूप वाली होती है।

वृद्धा अवस्था भी व्याधि है

हम ऊपर बतला चुके हैं कि जो कुछ दिन-रात्रीमें खाया जाता है वह सबका सब शरीरमें नहीं खप जाता, प्रत्युत इसका बहुत सा भाग मलरूपमें बच जाता है। जिसको हम सब मल मूत्रके मार्गसे बाहर निकाल देते हैं, क्योंकि यह शरीरके योग्य नहीं होता किन्तु आप जानते हैं कि खाये पियेका मल उसी समय बाहर नहीं निकल जाता, प्रत्युत २० या २२ घण्टे शरीर में ठहर कर निकलता है। जो मल शरीरमें २० या २२ घण्टे रुक कर निकले आप समझते हैं कि क्या वह उसी तरह पड़ा रहता होगा? उसका जो रूप खानेके समय था वही २०-२२ घण्टेके बाद होगा? हरगिज नहीं। २२ या २४ घण्टे शरीरमें जब मल रुकता है तो शरीरके स्वाभाविक उत्तापसे तथा परिवर्तक रसों व उत्प्रेरकोंके प्रभावसे उसमें कुछ न कुछ रासायनिक परिवर्तन (सड़ाव) होता रहता है। और उसमें दुर्गन्धयुक्त कई पदार्थ भी बनते रहते हैं जिसको शरीर बहुधा अपान वायु द्वारा बाहर निकालता रहता है परन्तु इसका कुछ न कुछ भाग फिर भी शरीरमें घुस कर रक्तमें मिल ही जाता है और शरीर में भ्रमण करता रहता है किन्तु साधारणतः इससे कोई कष्ट नहीं होता। हां! जब विष्टब्धता होती है उस समय क्या प्रतीत होता है

एकाएक सिर भारी हो जाता है बहुतोंको दर्द भी होने लगता है। इसमें कारण यह है कि जो पदार्थ उदर मलसे निकल कर रक्तमें मिजते हैं हलके होनेके कारण रक्त परिभ्रमणके साथ सीधे ऊपर चढ़कर सिरमें जा टकराते हैं इसीसे विष्टब्धता होते ही सिरमें भार व दर्द होने लगता है जिसका रोगीको स्पष्टतयाभान होता है उसे ज्ञात होता है कि मेरे सिरमें कोई पदार्थ आकर जमा हो गया है, विष्टब्धता दूर होते ही बहुत कुछ सिर हल्का हो जाता है। इसका कारण स्पष्ट है कि मलके न रहने पर मलोद्भव-विकारी पदार्थोंका तारतम्य टूट जाता है; इसीसे सिरकी ओर तीव्र गतिसे पहुंचने वाला विकारी पदार्थ रक्त परिभ्रमणके साथ वापस आने लगता है, जिससे सिर हलका हो जाता है।

इन मलोद्भव विषैले पदार्थोंवत् और भी द्रव्य हैं जो शरीर में फिरते रहते हैं यथा—भोजन करनेके पश्चात् उस भुक्त पदार्थसे जो रस बनता है उसका भी समग्र भाग शरीरमें नहीं खपता। प्रत्युत उससे जब शरीरावयव अपनी क्षयपूर्ति व वृद्धि करते हैं तो वहां पर भी कई रासायनिक परिवर्तन ऐसे होते हैं जिससे कुछ पदार्थ टूट फूट कर शरीरके योग्य बन जाता है, कुछ अयोग्य मल रूप रह जाता है उसको स्थानिक अवयव रक्त को वापस कर देते हैं। इन मलोंकी शुद्धि वृक्कों और फुफ्फुसों द्वारा होती रहती है। इनका जो स्थूल अंश होता है वह मूत्र, प्रस्वेदके द्वारा बाहर निकल जाता है, सूक्ष्म अंश वायुमें सञ्चित होकर फुफ्फुसों द्वारा बाहर निकला करता है। किन्तु, इस तरह शुद्धि होते रहने पर भी शरीर पूरी तरह मलसे रहित नहीं होता। प्रत्युत मलका कुछ न कुछ भाग शरीरके हर एक स्थानमें बना रहता है क्योंकि जितना एक ओर निकलता है उतना ही बनता रहता है। इन दूषित पदार्थोंका बनना और इनकी अन्त्रमें या दूसरी ओर रक्तमें उपस्थिति से प्रकट और अप्रकट दोनों तरहसे हानि होती है। वह मल जब शरीरमें अधिक बढ़ जाते हैं और बढ़ कर कहीं विशेष सञ्चित होने लग जाते हैं तो शोथ उत्ताप नाश आदिद्वारा उनका प्रकट प्रभाव ज्ञात होने लग जाता है। जब वह विशेष सञ्चित होकर साधारण रूपमें रहते हैं तो उनका सदा ही अज्ञात प्रभाव शरीर पर होता रहता है। जिसको हम प्रत्यक्षमें तो देख नहीं सकते किन्तु समय पाकर उसका परिणाम वृद्धावस्थाके रूपमें दिखाई पड़ता है

वृद्धावस्था क्या है

आधुनिक विज्ञानने यह अच्छी तरह सिद्ध कर दिया है कि हमारे शरीरका संगठन एक बने हुए मकानके सदृश हुआ है। जिस तरह एक एक ईंटके जुड़नेसे मकान बना है उसी तरह एक एक सजीव ईंट (जीवकोष = सेल) के जुड़नेसे शरीर बना है। किन्तु, भेद इतना है कि मकान जड़ है, शरीर चलता फिरता एक चैतन्य पुतला है और इसका यह हिलना, जुलना, खाना, पीना, काम करना इस समूहरूप शरीरसे ही नहीं होता प्रत्युत, हिलना जुलना खाना पीना और कार्य करना यह सब बातें शरीरकी प्रत्येक सजीव ईंट को भी करनी पड़ती हैं।

इन सजीव ईंटों (कोषों) की जबसे रचना होती है तबसे इन्हें निम्न लिखित काम करने पड़ते हैं।

(१) अपनेको जीवित रखने के लिए कुछ न कुछ खा कर उस भुक्त रसके पदार्थोंको सातम्य रूप करना और इससे अपनी नष्ट होती हुई शक्तिको पुनः प्राप्त करना।

(२) अपनी वंश वृद्धि करना, अथात् अपने तद्वत् नई ईंटोंकी रचना करना।

(३) शत्रुओंसे अपनी रक्षा करना।

यह तीन काम ऐसे हैं जो प्रत्येक शरीरकी ईंटोंको आरम्भ से ही करने पड़ते हैं। अर्थात्—जिस दिनसे शरीरकी मूलईंट (वीर्याणु) गर्भमें आती हैं उसी दिनसे उसके उपरोक्त कार्य आरम्भ हो जाते हैं। इसलिये शरीर रूपी मकानकी नींव पड़ते (गर्भ धारण होते) ही क्रमसे अङ्ग प्रत्यङ्गोंकी रचना होने लगती है। और नौ महीनेमें शरीर रूपी कच्चा मकान खड़ा हो जाता है, जिसकी पुष्टि और वृद्धि करीब करीब चालीस वर्ष तक होती रहती है पैंतीस और चालीसके समीप पहुंच कर नई ईंटोंकी बाढ़बन्द हो जाती है जो वृद्धि व दृढ़ता-शक्ति आदि इस उमर तक प्राप्त हो चुकी होती है वहीं रुक जाती है। मनुष्यके शरीरकी वृद्धि और पुष्टि इस अवस्थामें पहुंच कर क्यों रुक जाती है, इसका क्या कारण है ? इसको अच्छी तरह मालूम कर लिया गया है इसके निम्न लिखित कारण ज्ञात हुए हैं। बड़ी २ परीक्षाओंसे सिद्ध हुआ है कि शरीररूपी गृहकी ईंटें व्यष्टि और समिष्टि रूपसे जो सदा अपनी क्षयपूर्ति व वृद्धि करती रहती हैं इनका इस क्रियामें खाद्य पदार्थका, तथा, रसका बहुत कुछ

भाग जो शेष बच जाता है प्रत्यक्षमें मल मूत्र प्रस्वेद और श्वांससे बाहर निकल जाता है। किन्तु हम पीछे बतला चुके हैं कि उक्त मल शरीरमें बनते ही नहीं निकल जाता प्रत्युत उदर का मल २०-२२ घण्टेमें एक बार निकलता है। मूत्र४ या ६ घण्टेमें निकलता है; स्वांस द्वारा निकलने वाला मल एक परिभ्रमण के साथ सदा धीरे धीरे निकलता रहता है और एक बारके भ्रमण चक्रमें आकर उसके रह जाने पर वह फिर दूसरे चक्रमें ५-७ मिनटके बाद फिरता हुआ आकर निकलता है। इस तरह यह मल कुछ न कुछ शरीरमें रुक कर या ठहर ठहर कर निकलता है। इस प्रकार मलोंका रुक कर निकलना हानिकर है। इसको आप प्रत्यक्ष भी देख सकते हैं। यथा—एक मैला या कूड़ा जो गलीमें २४ घण्टा पड़ा रहता है वह सड़ कर बदबू-दुर्गन्ध छोड़ देता है, जिस स्थान पर सदा पेशाब करते रहो वहां कितनी दुर्गन्ध आने लगती है, किसी संकुचित बन्द मकानमें अत्यधिक आदमी दो चार घण्टे बैठे रहें तो श्वांस खिंच कर आने लग जाता है अथवा जिस मकानमें धुवां भरा हो श्वांस खिंच कर आने लगता है। जब उपरोक्त मलोंके विकार शरीरसे बाहर दस पांच घण्टे एक स्थानमें पड़े रह कर मनुष्यको असह्य होने लगते हैं तो आपही बताइये! यही मल यदि शरीरमें रहें तो क्या शरीरको सह्य होंगे? हरगिज नहीं। शरीरमें इन मलोंकी उपस्थिति सह्य होकर भी सदा हानिकर होती है और इनका सदा गुप्त प्रभाव शरीर पर उसी तरह पड़ता रहता है जैसे किसी वाह्य विषका। किन्तु, जन्मसे लेकर युवावस्था प्राप्त होने तक इन मलोंका प्रभाव शरीरकी विवर्द्धित-शक्तिके कारण दबा रहता है, शरीर व्यष्टि और समिष्टि रूपसे इन विकारोंका प्रभाव सहन करता हुआ सदा अपना काम करता रहता है, किन्तु, इन मलों की विषाक्त-शक्ति उस पर गुप्त प्रभाव डालती रहती है। वह सदा शरीरको व्यष्टि रूपसे क्षीण करती रहती है, इसीलिये मनुष्य तीस चालीस वर्षकी अवस्थामें पहुंचते पहुंचते अपनी विवर्द्धन शक्ति नष्टकर लेता है। जब शरीरका वह बल, वह नवशक्ति जाती रहती है तब इन विषोंका जो प्रभाव शरीरपर प्रकट होता है। वह निम्न है शरीरकी धमनी शिरा मांस पेशी आदि जिनमें कोमलता, रसग्रह्यता, प्रसरणशीलता होती है वह घटने लग जाती है। धमनी शिराकी दीवारें कठिन पड़ने लगती हैं उनमें से होकर जो रसका परिश्रवण जिस वेगसे होता था उसमें काफी कमी आ जाती है। इसीलिये शरीर पोषक रसकी मात्रा भीतरसे चल कर त्वचा तक उस द्रुतगतिसे नहीं पहुंचती, इसीलिये शरीरके वह सजीवकोष जो अबतक परिपुष्ट थे दुर्बल होने लग जाते हैं धीरे, धीरे वह मृत होने लगते हैं। इसीलिये इस अवस्थाके बाद अङ्ग प्रत्यङ्ग शिथिल होने लग जाते हैं त्वचामें झुरियां पड़ने लग जाती हैं। ज्ञानेन्द्रियों तक पहुंचने वाले स्नायु तन्तु पतले पड़ जाते या सिकुड़ जाते हैं, मस्तिष्कके बहुतसे कार्यकर्ता भोजनाभावमें समाप्त हो जाते हैं, इसीलिये शरीर और मानसिक शक्तिका ह्रास हो जाता है, जिसे देख कर लोग कहने लग जाते हैं कि यह मनुष्य अब वृद्धावस्थाको प्राप्त होगया। जो कारण रोगके हैं वही सूक्ष्मरूपमें बुढ़ापेके भी हैं इसीलिये यह भी एक रोग ही है। वृद्धावस्थाको रोगसे भिन्न नहीं समझना चाहिये।

चौराई का साग

अप्रैलके आरम्भसे जुलाई के अन्त तक यह बोया जाता है। पहाड़ पर भी इन्हीं महीनोंमें बोना चाहिए। यह एक वार्षिक पौधा है। इसकी पत्तियोंकी तरकारी बनाकर खाई जाती है। इसकी कई एक जातियां हैं; परन्तु सबोंको पैदा करने की रीति एक-सी है।

बीजको किसी अच्छी जमीनमें बोया जाता है ½ इञ्च से लेकर ¾ इञ्च तक की गहराईकी मिट्टीमें बीज बोया जाता है, और जब पौधे उगें कुछ बड़े हो जाएं तब फाल्तू पौधेको उखाड़ देना चाहिए। यदि बचे हुए पौधे एक एक फुटकी दूरी पर रहें तो अच्छा होगा। इस अभिप्रायसे कि साग बहुत दिनों तक उगता रहे थोड़ा-थोड़ा बीज एक-एक सप्ताहके बाद अलग २ स्थान पर बोना चाहिए। साग बहुत आसानीसे उगता है और इसके लिए कोई विशेष सेवा करनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती; परन्तु यदि गर्मीके दिनोंमें साग बोया जाए तो चौथे-पांचवें दिन इसे अच्छी तरह सींचना चाहिए, कभी कभी निराई भी करनी चाहिए, चौराईके सागकी तरह मर्साका साग भी बोया जाता है।

पोई या पोयका साग

इसे जूनके महीनेमें बोना चाहिए। इसके अलावा बरसात के दिनोंमें कलम लगाकर भी यह साग पैदा किया जा सकता है। यह साग पहाड़ों पर नहीं होता। पोयका साग एक लता है जो एकसे अधिक वर्ष तक जीवित रहती है। इसकी पत्तियां पानके आकार की होती हैं। लोग इसकी पकौड़ी आदि बनाते हैं सागकी तरह काममें लाते है इसके पैदा करनेमें किसी विशेष सावधानी की आवश्यकता नहीं होती, परन्तु इसे ऐसे स्थानमें बोना या रोपना चाहिए जहां इसके चढ़नेके लिये कोई पेड़ या पौधा मिल सके।

पेठा (Nhite Gourd)

इसे मध्य मईसे मध्य जुलाई तक बोना चाहिए। तीन सौ फुटसे ऊंचे स्थानमें पेठा नहीं होता। यह एक लता है जो बहुत बड़ी होती है और इसके फल भूरे होते हैं। फल जब छोटा रहता है तो उसपर बारीक रोऐं रहते हैं परन्तु जब फल बड़ा हो जाता है और इसमें बीज पड़ने लगता है तब इसकी सतह सफेद और मोमकी तरह किसी पदार्थसे ढकी हुई दिखलाई पड़ती है पेठे का मुरब्बा प्रसिद्ध है। कच्चा रहने पर इसकी तरकारी भी बन सकती है, परन्तु विशेष स्वादिष्ट नहीं होती। पक्के पेठेका मुरब्बा बनता है। बंगालमें लोग इसे अपने मकानके छप्पर पर फैला देते हैं। सहारनपुरमें और संयुक्त प्रान्तके कुछ अन्य जिलों में भी, साधारणतः इसे जमीन पर ही उगाया जाता है।

पेठेके लिये जमीन बालु हो और उसमें थोड़ा बहुत खाद भी हो, पांच-पांच फुटकी दूरी पर बीज बोया जाता है और प्रत्येक स्थानमें तीन-तीन चार-चार बीज बोये जाते हैं। उगनेके बाद प्रत्येक स्थानमें केवल सबसे मजबूत पौधे को रहने दिया जाता है और बाकी सब पौधोंको वहांसे उखाड़ दिया जाता है। आस-पासकी जमीनमें घास और जङ्गली पौधोंको उगने नहीं देना चाहिए। जब लता बढ़कर जमीनको ढक लेती है तो निराई की कोई आवश्यकता नहीं रहती।

वैज्ञानिक संसारके ताजे समाचार

ब्रेक लगी मोटर चलाने पर सीटी

बहुतसे मोटर चलाने वाले, विशेष कर नौसिखिये मोटर चलानेके पहले हैंड-ब्रेक खोलना भूल जाते हैं। परिणाम यह होता है कि ब्रेक शीघ्र घिस जाता है। जब तक ब्रेक लगी गाड़ी चलाई जाती है तब तक पेट्रोल भी अधिक खर्च होता है। इस भूलसे चलाने वालेको सावधान करनेके लिए एक आविष्कारकर्त्ताने ऐसे यन्त्रका निर्माण किया है जिससे बिना ब्रेक खोले गाड़ी चलाने पर सीटी बजती है। सीटी का ढक्कन हैंड-ब्रेकके डंडेसे इस प्रकार जुड़ा रहता है कि ब्रेक कसने पर ढक्कन हट जाता है। सीटी नलीद्वारा इञ्जनसे विंडशील्ड वाइपर तक जाने वाली वैक्युअम-नलीसे जुड़ी रहती है। इसलिए इंजन के चलते ही सीटी बजने लगती है और तभी बन्द होती है जब ब्रेक ढीला किया जाता है।

उड़ाकुओं का गर्म वस्त्र

अभी एक ऐसा वस्त्र निर्माण किया गया है जो तोलमें कुल ३॥ सेर का है, परन्तु हवाई जहाजमें उड़ने वालोंको काफी गर्मी रखता है, चाहे वायुका तापक्रम शून्यसे साठ डिग्री कम भी हो। बात यह है कि इस वस्त्रमें बिजलीका तार लिपटा रहता है। बिजली चालू कर देने पर कपड़ा गरम हो जाता है।

प्लैस्टिकों की मेज़-कुर्सी

दांतके ब्रुशका हैंडल जिस पदार्थसे बनता है उसे प्लैस्टिक कहते हैं। कुछ लोग इसे सेलुलायड कहते हैं, परन्तु सेलुलायड एक विशेष वस्तु है; प्लैस्टिक उन सब वस्तुओंको कहते हैं जो गरम करने पर (या अन्य क्रियाओंसे) इतने नरम किये जा सकें कि ठप्पा मार कर या सांचेमें दबा कर इच्छानुसार रूपके किये जा सकें। इसीलिये हिंदीमें प्लैस्टिकको रूपद पदार्थ कहते हैं। इन दिनों रूपदोंका प्रचार बहुत बढ़ रहा है। हैंडल, बटन, प्याला, तश्तरी, मोटरके कई भाग, इत्यादि अब रूपदोंसे ही बनते हैं क्योंकि ये सुन्दर, रंग-बिरंगे और सस्ते होते हैं। अब रूपद चढ़ी लकड़ी भी बनने लगी है। ऐसी लकड़ी पर एक ओर कोई सुन्दर रूपद चढ़ा रहता है। रूपदको परत कुल १/५० इंच ही मोटी होती है, परन्तु नव-आविष्कृत रीतिसे यह लकड़ीको इस प्रकार चिपक कर पकड़ती है और स्वयं इतनी चिमड़ी होती है कि धूप, हवा या पानीसे ऐसी लकड़ी में कोई विकार नहीं उत्पन्न होता। तरह-तरह के रंग और डिजाइन वाले रूपद चढ़ी लकड़ी मिल सकती है। कारखाने वालों का कहना है कि ये रंग पक्के हैं, कभी भी वे फीके नहीं पड़ते। उन पर किसी प्रकारके पालिशकी आवश्यकता नहीं रहती। गन्दा हो जाने पर उसे साबुन और पानीसे धोकर पोंछ देना काफी है। रूपद इतना कड़ा होता है कि इस पर जल्द खरोंच नहीं पड़ता।

जूते धोबीसे धुलाइये

अमरीकाका एक कारखाना किरमिज (कनवस) के ऐसे जूते बनाता है जिनमें तल्ला अलग रहता है। जूतेका ऊपरी भाग तल्ले पर कमानीदार बटनोंसे जुड़ा रहता है। जूते जब गन्दे हो जाएं तो ऊपरी भागको उखाड़ कर उसे आसानीसे अन्य कपड़े की तरह धुलाया जा सकता है।

कृत्रिम ऑरोरा

पृथ्वीके उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवोंके पास रात्रिके समय आकाशमें विचित्र और अत्यन्त सुन्दर प्रकाश दिखलाई पड़ता है। इसी प्रकाशको ऑरोरा कहते हैं। वैज्ञानिकोंका बहुत दिनों से विश्वास था कि यह प्रकाश किसी प्रकारकी वैद्युत्-धाराके कारण उत्पन्न होता है, परन्तु वे इसका पक्का प्रमाण नहीं दे सकते थे। हालमें ही प्रोफेसर जोजेफ कैपलान और डाक्टर एस० एम० रूबेन ने कृत्रिम रीतिसे ऑरोरा उत्पन्न करनेमें सफलता पाई है। उन्होंने हीलियम और नाइट्रोजन गैसोंको एक विशेष अनुपातमें मिला कर एक शीशेकी नलीमें बन्द किया। फिर इस मिश्रणमें उच्च आवृत्ति (हाइ फ्रीक्वेंसी) की वैद्युत् धारा भेजी। इस प्रकारके वैद्युत्के प्रभावसे इन गैसोंसे रंगीन प्रकाश निकलने लगा। जब वैद्युत-धारा बन्द की गई तब

(शेष पृष्ठ १६० पर देखिये)

लुढ़कता मसखरा

यद्यपि लुढ़कता मसखरा आसानीसे बनाया जा सकता है, तो भी यह बच्चोंको बहुत ही प्यारा लगता है। इसके बनानेमें किसी विशेष औजारकी आवश्यकता नहीं पड़ती। यदि स्क्रोल सा या फ्रेट-सा हो तो मसखरेकी शकल काटनेमें सुविधा होती है, परन्तु इसके अभावमें चाकू और रुखानीसे भी काम चल सकता है।

पहले सीढ़ी बनानी चाहिए। इसके लिये दो ३/८ × ३/४ इञ्चकी २४ इञ्च लम्बी लकड़ी चाहिए। इसमें ८ डण्डे लगते हैं जिनमेंसे प्रत्येक १/८ इञ्च × ११/३२ इञ्च का और २३/४ इञ्च लम्बा होता है। डण्डोंके केन्द्रोंके बीचकी दूरी ठीक २७/८ इञ्च होनी चाहिए। डण्डे मामूली कील से ठोंके जा सकते हैं। जरा सरेस लगाकर उनको ठोंका जाय तो अच्छा ही है। पहले ही से सब डण्डोंको न जड़ देना चाहिए। एक डण्डेको अन्तमें मसखरे को फंसाकर जड़ा जाता है। प्रत्येक सिरे पर १ इञ्च मोटी लकड़ीका पाया लगा दिया जाता है जिसकी नाप ४ इञ्च × ४ इञ्च होती है। जैसा चित्रकी जांचसे स्पष्ट हो जायगा, सीढ़ी पाये के हिसाब से चौचक (लम्ब) नहीं रहती। यह पायोंमें तिरछे कटे खांचोंमें बैठाकर कीलसे या पेंचसे जड़ी रहती है। इसलिये जब पाया चौरस जमीन पर रक्खा जाता है तो सीढ़ी सीधी खड़ी होनेके बदले तिरछी खड़ी होती है।

परन्तु सीधी खड़ी रेखासे इसकी ढाल प्रति १० इञ्च में कुल १ इञ्च रहती है। यह कोई जरूरी बात नहीं है कि सीढ़ी २४ इञ्च की ही बनाई ज-स्कती है, परन्तु तब पायोंको भी अधिक बड़ा बनाना चाहिए जिसमें सीढ़ी लुढ़क न पड़े। यदि बहुत लम्बी सीढ़ी बनाई जाय तो यही अच्छा होगा कि पाया एक ही ओर जड़ा जाय; ऊपरका सिरा बिना पायेका ही रहे। परन्तु ऐसी सीढ़ीमें जब मसखरा लुढ़कते-लुढ़कते नीचे आ जायगा तब उसे हाथसे उठाकर फिर ऊपर वाले डण्डेपर रखना पड़ेगा। दोनों ओर पाया रहने पर सीढ़ी को उलट दिया जाता है; मसखरेको छूने की आवश्यकता नहीं पड़ती।
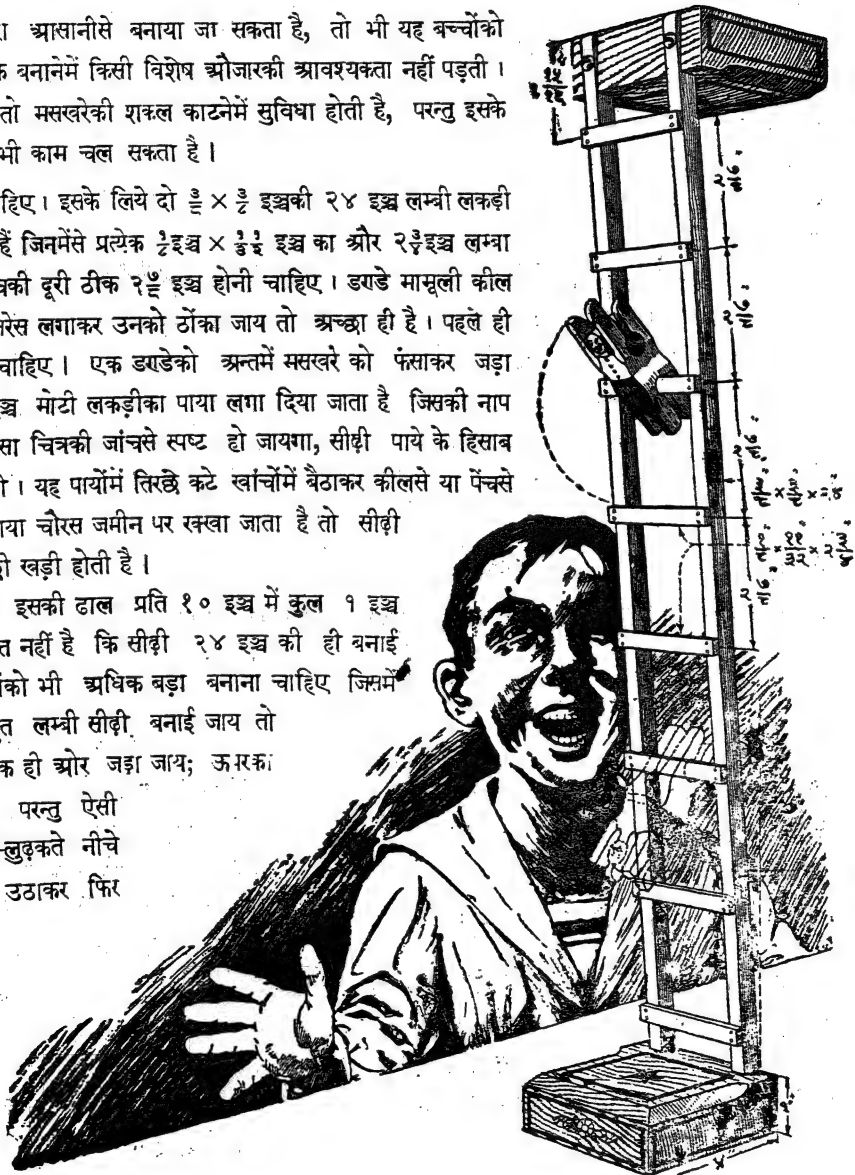
मसखरा ३ १/८ इंच लम्बा बनाया जाता है। यह नाप अंगुलियोंकी छोरसे लेकर पैर की छोर तक की है। मसखरे को ३/४ इंच मोटी लकड़ीसे काटना चाहिए; हो सके तो इसे स्कोल-सा से काटना चाहिए। मसखरे की चौडाई कुछ न्यूनाधिक हो तो भी कोई अन्तर नहीं पडता, परन्तु लेखकने जो खिलौना बनाया है वह कन्धे के पास १ इञ्च चौड़ा, कमरके पास ५/८ इञ्च चौड़ा और नितम्बों पर ७/८ इञ्च चौड़ा है। लकड़ी की मोटाई के ठीक बीचमें और सिरों से ३/४ इञ्च हट कर दो ३/१६ इञ्च व्यासके छेद आर-पार इरमेसे कर दिये जाते हैं और इन छेदोंसे लेकर सिरों तक दो ५/३२ चौड़े शिगाफ (चीर) काट दिए जाते हैं। यह आवश्यक है कि छेद और शिगाफ लकड़ीके ठीक बीचमें रहें, नहीं तो मसखरा ठीक तरह से न लुढ़केगा। शिगाफके भीतरी कोर गोल कर दिये जाते हैं जैसाकि दूसरे चित्रमें दिखलाया गया है।
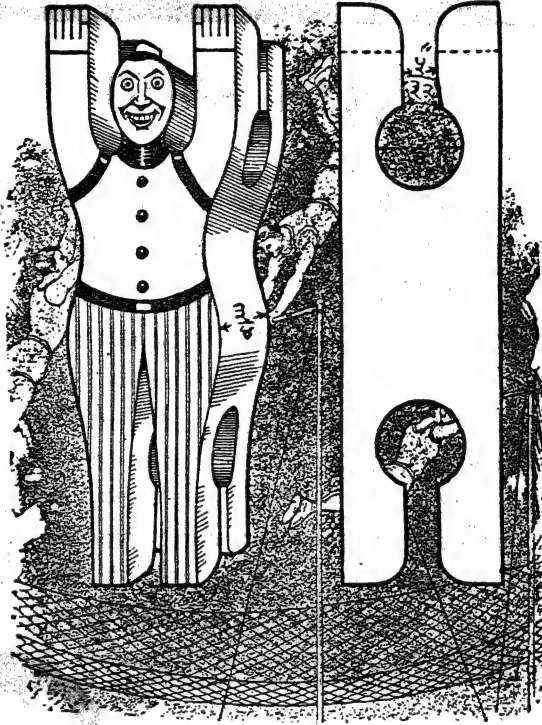
लुढ़कते मसखरे की बनावट।

जब सब चीजें तैयार हो जाती हैं तब मसखरेको सीढ़ीके उस स्थानपर रखते हैं जहां एक डण्डा लगाना अभी बाकी है। तब इस डण्डेको मसखरे के हाथोंके पास वाले छेदमें डाल कर सीढ़ीपर जड़ दिया जाता है। सीढ़ी को पाये के बल खडा करने पर मसखरा बड़ी खूबीसे लुढ़कने लगेगा। जब वह नीचे आ जाय तब सीढ़ीको उलट देना चाहिए। ऐसा करने से मसखरा ऊपर पहुंच जायगा, और वहांसे फिर लुढ़कने लगेगा यदि कहीं पर कोई लकड़ी फँसती हो तो चाकू से जरा-सा छील देने से शीघ्र ही सब बातें ठीक हो जाएंगी।

यह खिलौना चटक रङ्गोंमें रङ्ग दिया जाय तो और भी अच्छा लगेगा।

(१५८ पृष्ठ का शेष)

तब भी गैसें चमकती रहीं, परन्तु उनका रंग बदल गया। रश्मि विश्लेषक यन्त्रसे जांच करने पर पता चला कि इन गैसों से निकला प्रकाश वैसा ही है जैसा हमें औरोराका हरा प्रकाश ऑक्सिजन गैससे आता है।

अब छुरियां न डूबेंगी

नावों पर सैर-सपाटा करने वालों और मल्लाहोंके हाथसे छुरी छूटते ही पानीमें डूब जाया करती थी। इस असुविधासे मुक्ति पानेके लिये एक कारखाने वाला नावों पर इस्तेमाल करने के लिए छुरियोंमें काग (कार्क) का हैंडल लगाता है ऐसी छुरियां पानीमें उतराती हैं।

सख्त या नरम लकड़ी

एक वैज्ञानिकने पता लगाया है कि यदि लकड़ीको यूरिया (Urea) के घोलमें बहुत दिनों तक रक्खा जाय तो इसके गुणोंमें विशेषता आ जाती है। लकड़ी खूब कड़ी हो जाती है यहां तक कि इसमें कील नहीं ठोंकी जा सकती। यह केवल कड़े इस्पातके बने औजारोंसे ही काटी जा सकती है। परन्तु खौलते पानीमें डाल कर गरम करने से यह लकड़ी बहुत नरम हो जाती है। गरम रहने पर इसे इच्छानुसार मोड़ा या एंठा जा सकता है और ठंडा होने पर लकड़ी फिर पूर्ववत् कड़ी हो जाती है। ऐसी आशा है कि नवीन रीतिसे कड़ीकी गई लकड़ी हवाई जहाज, मोटर गाड़ियां और नावोंके बनानेमें विशेष उपयोगी सिद्ध होगी।

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५ ॥

भाग ५३ | सिंह, संवत् १९९८ विक्रमी अगस्त, सन् १९४१ | संख्या ५

क्रिश्चियन हाइगिन्स

(१६२९-१६९५)

[लेखक—श्री रामचन्द्र तिवारी]

हाइगिन्स सब प्रकारसे गैलीलियोंका महान् और प्रतिभाशाली वैज्ञानिक उत्तराधिकारी था। केपलरके पीछे उसने न्यूटनके अनुसन्धानोंके लिये भूमि प्रस्तुत करनेके लिये सबसे अधिक कार्य किया। उसके जीवन और कार्यका महत्त्व इस बातसे है कि वह एक ओर गैलीलियो और देकार्टे दूसरी ओर न्यूटनके बीच कड़ीके समान है। हाइगिन्सके जन्मके समय गैलीलियो और देकार्टे विज्ञानाकाशके देदीप्यमान नक्षत्र थे। इनका प्रभाव उस पर किसी न किसी रूपमें अन्त तक बना रहा। उसकी मृत्युके समय १६९५ में यद्यपि उसकी कीर्ति कम न थी तो भी वह न्यूटनके बढ़ते तेजके सम्मुख दब गई। यह सम्भव था कि हाइगिन्सके बिना विज्ञानकी एक विचारधारा गैलीलियोंके साथ न चल कर देकार्टेका नेतृत्व मानती और इससे उसे अन्त में बहुत भटकना पड़ता, परन्तु हाइगिन्स कारटेजियन प्रभावसे बच न पाया, इसका कारण यह था कि उसकी शिक्षा उन्हीं विचारोंके प्रभावमें हुई थी। हाइगिन्सने विज्ञानकी विशेष विचारधाराओंको विकसित करनेका कार्य किया जिससे वह भी लीबनिज और जौनबरनोलीके लिये "अद्वितीय हाइगिन्स" और अपने अंग्रेज प्रशंसकोंके लिये "वर्तमान युगके मुख्य गणितज्ञों में से एक" बन गया। गैलीलियोकी भांति वह प्रकृतिका सरल अनुसन्धानकर्ता था, उसने केवल कुछ ही दिशाओंमें महत्त्वपूर्ण उन्नति नहीं की वरन् उसके सामने जो कुछ आया सभीको उसने परखा और उसे नवीन खोजके कार्यमें लगानेकी चेष्टा की। क्योंकि उस समय इस प्रकारकी बहुत सी सम्भावनाएं थीं इसलिये यहां उसके कार्यकी प्रत्येक दिशा पर विचार नहीं किया जा सकता। ज्ञान की उन्नतिमें उसकी मुख्य सहायताओं पर ही विचार किया जायगा।

गैलीलियोने हमें साधारण गतिके विषयमें समझाया, परन्तु

वह शक्ति और गतिके बीच सम्बन्ध न निश्चित कर पाया। उसे भार तथा पिण्ड = मात्रा (Weight and mass) में भेद करनेकी आवश्यकता भी अनुभव हुई थी। देकार्टेके यन्त्र-शास्त्रके विचार इन प्रश्नोंको उलझा ही छोड़ चुके थे। हाइगिन्स आगे बढ़ा और उसने अत्यधिक जटिल गतियोंको समझनेके लिये प्रत्येक आवश्यक साधन जुटाये, यहां तक कि उसने कुछ जटिल उदाहरणों द्वारा लगभग पूर्ण सूक्ष्मतासे उसका अध्ययन कर डाला। उसने विशेषतया मिश्रदोलक (Compound pendulum) सेन्ट्रीफ्यूग (केन्द्रप्रसारी) शक्तिसे वृत्ताकार गति और टक्करकी घटनाका पूर्ण विवेचन किया। उसने प्रकाशकी तरङ्ग-प्रकृतिमें हमारी अन्तर्दृष्टिकी नींव डाली। उसने दोलक घड़ियोंका आविष्कार कर उनकी उन्नति की। उसने रेखागणितके महत्त्व-पूर्ण विभागोंकी सूक्ष्मतासे खोज की और इस विषयमें वृत्तजात वक्र रेखाओंके धर्म और स्वाभावकी ओर विशेष ध्यान दिया। वृत्तजात वह रेखा है जो कि घूमते हुए पहियेकी परिधिके एक विन्दु द्वारा—भूमि-रेखा जिसके सहारे पहिया घूमता है—स्थित धरातलपर बनाई जाती है।

उसका वैयक्तिक चरित्र उसके कार्य तथा उसके विषय में जो कुछ हमें ज्ञात है वह गैलीलियोके समान उच्च पूर्णतया दृढ़ और स्पष्ट है। किस प्रकार कोई वस्तु खोजी है इसका पूर्ण विवरण उसने दिया जिससे पाठक उसके अनुसन्धानोंको पूर्णतया समझ सकते हैं। उस समय इन्हें छिपानेकी कोई आवश्यकता भी न थी। उसके प्रस्तुत किये मार्ग द्वारा जैसे २ हमारी ज्ञानवृद्धि होती चली जायगी। हमें यह भी ज्ञात रहेगा वह किस प्रकारका मनुष्य था।

हाइगिन्सके प्रकृति अन्वेषणके कार्य बहुत समय तक गुप्त लिपिवत् छिपे रहे है। लगभग सभी आविष्कार जिन पर उसने कार्य किया बहुत दिनों तक वह अन्धेरेमें पड़े रहे। अधिकतर उसके आविष्कार उसकी मृत्युके पश्चात् प्रकाशित हुए।

हाइगिन्स हालैण्डके हेग नगरमें एक अत्यन्त प्रतिष्ठित, प्रभावशाली धनी परिवारमें पैदा हुआ था, इस कारण वह स्वन्त्रतासे जीवन भर अपना काम कर सका और लम्बी लम्बी यात्राएं उसके लिये सरल होगईं। उसने अपने भाई कौन्स्टेन्टाइनके साथ, जो उससे एक वर्ष बड़ा था, हेगमें कानून का अध्ययन किया। उसका पहिला कार्य आर्कमेडीज और देकार्टेके कार्यसे सम्बन्धित गणित विषय पर था। इसमें वह सम्भावनाके गणितके एक शिलान्यासककी भांति हमारे सम्मुख आता है। गणितका यह विभाग अब विज्ञानके लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण हो गया है। उसने १६६७ में दोलक घड़ीका आविष्कार किया और इसी कारण वह दूर २ तक प्रसिद्ध हो गया। उसने समय नापनेके यन्त्रको इतना समुन्नत किया जिसे देख कर आश्चर्य होत है। इस यन्त्रके निर्माणमें उसने सभी आवश्यक सूक्ष्मतम बातों को ध्यानमें रखकर उसमें सुधार किया। उस काममें उसने क्लाक रचना (घड़ी) में जो उन्नति की वह आज भी उसी प्रकार है। इस कार्यके साथ साथ उसने जो और प्रयोग त्मक सामग्री एकत्रित की। वह सब सन् १६७३ में (Horologicum Oscillatocum) के रूपमें प्रकाशित हुई।

उस समय तक समयको ठीक-ठीक नापनेके सब प्रयत्न निष्फल हो रहे थे और यह कार्य प्रायः असम्भव समझा जाने लगा था हाइगिन्सने दोलक घड़ीका आविष्कार कर साधारण जीवनमें समय की नापको अचानक सूक्ष्म कक्षा तक पहुंचा दिया। यह सच है कि सुइयोंकी घड़ी तथा बोझसे चलने वाली पहियोंकी घड़ी समय नापनेके कार्यमें बहुत दिनोंसे प्रयुक्त होती थीं, परन्तु उन्हें रगड़ घटा बढ़ा कर ठीक किया जाता था और रगड़का परिमाण सदा एकसा नहीं रहता था इसलिये वे सदा एक गतिसे न चलती थीं और विश्वसनीय न थीं। सुधारके तौर पर एक अच्छा खासा भार जो एक धुरे पर घूम सकता था अधिकतम गतिसे चलने वाले एक पहिये द्वारा इधर उधर हिलाया जाता था। पहियेकी चाल एक सीमा निश्चित कर देनेके लिये अधिकतम रक्खी गई थी, परन्तु इस योजनासे कुछ विशेष सुधार न हुआ। इस प्रकारकी घड़ियां गैलीलियोके समयमें भी प्रचलित थीं, परन्तु उन पर विश्वास नहीं किया जा सकता था, इसलिये स्वयं गैलीलियोने तिरछे तलके सहारे गिरती वस्तु का समय पानीकी घड़ीसे नापा था। प्राचीन लोग यही जानते थे कि पानी की घड़ी अधिक विश्वसनीय है। पीछे जब गैलीलियोने दोलककी गतिका पूर्ण अध्ययन कर लिया तो उसने दोलकके झोंटे गिन कर समय नापनेको अधिक शुद्ध बताया। दोलकोंकी विभिन्न लम्बाइयोंके कारण झोटोंके समयमें जो अन्तर पड़ता था वह सरलता से निकाल लिया जा सकता था। गैलीलियोकी रायके अनुसार डाक्टरोंने रोगियोंकी नाड़ीके गति परिवर्तन को दोलककी सहायतासे नापना प्रारम्भ किया। इस

दोलककी लम्बाई परिवर्तनशील थी और यह नाड़ी मापक कहलाता था। इसके लिये किसी लम्बाईके निरन्तर चलने वाले एक दोलक तथा उससे जुड़े समय बताने वाले यन्त्रकी आवश्यकता थी। गैलीलियोने इस ओर स्वयं प्रयत्न किया था। पीछे से उसके कागजोंमें इसके बनानेकी विधिके विषयमें उसकी सम्मति लिखी पाई गई। जब वह अन्धा होगया था तो उसने अपने बेटेको यह विधि लिखाई थी, उसके पुत्रने उसको सुरक्षित रक्खा, किन्तु उसको उपयोगी नहीं बना सका। हाइगिन्स ही पहला मनुष्य था जो निरन्तर दोलन करने वाले दोलक यन्त्र बना सका। उससे या तो सरल रीतिसे उनके झोंटे गिन कर अथवा पहिलेकी बनी घड़ियोंमें पहियोंकी योजनासे उसे जोड़ कर समय नापा। हिलना तथा दोलनमें मुख्य अन्तर यह है कि हिलने वाले पदार्थका कोई स्वाभाविक समय नहीं होता क्योंकि गति नियन्त्रण करने वाली शक्ति पहियोंकी योजना से आती है और पहियोंमें रगड़का परिमाण बदलता रहता है। इस के विपरीत दोलनकी गतिका नियन्त्रण करने वाली शक्ति उस के स्थिर बोझमें होती है, इसलिये उसके दोलनका समय भी स्थिर होता है; उस पर पहियेकी योजना की शक्तिका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। यह शक्ति दोलन और हवाकी रगड़को बराबर करनेके कार्यमें आती है दोलक जितना अधिक भारी होता है रगड़ उतनी ही कम होती है पुरानी घड़ीमें नया विचार रक्खा गया। घड़ीकी मशीनमें दोलकके अतिरिक्त और कोई परिवर्तन नहीं हुआ परन्तु इस परिवर्तन से एक दम नवीनता आगई अर्थात् अब समय विश्वसनीय रीतिसे नापा जा सकता था। हाइगिन्सने अपनी "दोलक घड़ी" में लिखा है कि यदि कहीं मशीनमें खराबी रह भी जाय तो तापक्रमके परिवर्तनसे बेरिंगके घूमने में कुछ कठिनाई भले ही हो—जब तक घड़ीकी चाल बिलकुल बन्द नहीं हो जाती किसी असमानता अथवा रुकावटसे डरनेकी आवश्यकता नहीं है, घड़ी या तो सही चलेगी अथवा बिलकुल न चलेगी। क्योंकि उसकी बनावटमें बहुत थोड़ा परिवर्तन था, इसलिये उन्हीं घड़ियोंमें हिलने वाले पदार्थोंके स्थान पर दोलक लगवा दिये गये। उन्हीं घड़ियोंके डायल पर—पुराने वर्ष जब कि घड़ी बनी थी—लिखा हुआ था और यह परिवर्तन कराते समय उसका रूप बदला नहीं गया इसलिये लोगोंका यह विचार होगया कि दोलक घड़ियां हाइगिन्सके पहिले से प्रचलित थीं किन्तु उस समयके साहित्यसे यह धारणा निराधार प्रमाणित की जा सकती है।

जहाजों पर समुद्रमें अपना सच्चा स्थान जानने तथा भौगोलिक अन्तरोंके सही नापनेमें अच्छी घड़ियोंका बड़ा महत्त्व है; परन्तु इस दशामें साधारण दोलक घड़ी हाइगिन्सके सारे प्रयत्न करनेपर भी जहाजके हिलनेके कारण ठीक कार्य न कर सकी। इसलिये उसने इन घड़ियोंमें लचक द्वारा नियन्त्रित दोलक प्रयुक्त किये। जेब घड़ियों तथा जहाजके समय मापकोंमें आज दिन भी वैसीही बनावट की वस्तु काममें लाई जारही है। देखना तो घड़ीका सही चलना था। पहियोंकी योजना द्वारा स्प्रिंगसे चलने वाली जेब घड़ियां पहिले थीं और अपने रूपमें तथा उद्गम स्थानके कारण 'नूरेमबर्गके अण्डे" कहलाती थीं। इङ्गलैण्डमें अच्छे समुद्री समय-मापकोंकी आवश्यकता बहुत थी। इन समयमापकोंमें हुक दोलकके स्थानपर स्प्रिंग नियन्त्रित बैलेंसह्वील का प्रयोग करनेमें हाइगिन्स आगे रहा, परन्तु यह प्रयोग तभी हुआ जबकि हाइगिन्स दोलक घड़ी बना चुका था। समय मापक यन्त्र इन्हीं घड़ियोंके नमूने पर बना था।

हाइगिन्स दोलक घड़ियोंको आश्चर्यजनक सीमा तक अत्यन्त सही बनानेका प्रयत्न करता रहा। उसने वृत्तजातके धर्मोंका गम्भीरतासे अध्ययन किया और वृत्तजात दोलकका आविष्कार किया। इस दोलकका समय बड़े झोंटोंमें भी एकसा रहता था। वृत्तजातके धर्मोंका अध्ययन अन्य विषयोंमें भी बड़े काम का प्रमाणित हुआ। यद्यपि हाइगिन्स द्वारा पूर्णतया वर्णित इस योजना विशेषको हमने छोड़ दिया है—क्योंकि हमने छोटे २ झोंटोंसे काम चलाना जान लिया है—तो भी 'दोलक-घड़ी' का नाम पढ़कर और यह जानकर कि हाइगिन्सने किस योग्यता से और कितनी पूर्णतासे यन्त्र शास्त्र तथा अधिकतम सूक्ष्म ज्यामितिके संश्लेषणसे इसका आविष्कार किया, पाठक प्रशंसाके भाव से भर जाते हैं।

दोलककी गति अध्ययन करते समय हाइगिन्सने दोलनकी लम्बाईसे उसका समय गणित द्वारा निकाला और उसके गुरुका पता लगाया। यह गैलीलियोके दोलन नियमों का सार था, दोलनके समयका कार्य मध्याकर्षणके कारण गति बढ़ोतरीसे वास्तविक सम्बन्ध भी बताया है। उसने यह भी देखा कि साधारण दोलनसे परिवर्तनीय झोंटोंका समय बिलकुल एक सा नहीं रह सकता। यह समानता तभी सम्भव है जब कि दोलक

का भार दोलक वृत्तजात मार्ग पर घूमे, साधारण वृत्त मार्ग पर नहीं। इस फल पर पहुंचनेके लिये उसने सरल दोलन गतिमें दोलकके पूर्व निश्चित मार्ग पर चलनेकी आवश्यकताको पहिचाना। दोलक मध्याकर्षणकी शक्तिके प्रभावमें इस मार्गपर तिरछे तलमें गैलीलियोंके गति के नियमोंके अनुसार चलता है। गैलीलियोंने वृत्ताकार मार्गपर पदार्थोंके गिरनेका भी अध्ययन किया था।

मिश्र दोलकों, अर्थात् वे दोलित वस्तुएं जो मोटे तौरसे भी एक बिन्दू नहीं समझी जा सकती—उदाहरणतया दोलित डण्डा—की गतिका गहरा अध्ययन हाइगिन्सको सामान्य वृत्ताकार गतिके आवश्यक धर्मके सूक्ष्म ज्ञानकी ओर ले गया। शक्तिके प्रभावसे सरल रेखामें गतिकी समस्याको गैलीलियो पहिले ही हल कर चुका था। यदि हम इस महत्वपूर्ण विषय में हाइगिन्सके विचारोंके विकासके साथ साथ चलने का प्रयत्न करें तो हमें अनुभव होगा कि अत्यन्त जटिल और पेचीदे विषयोंमें भी ज्ञानकी उन्नति विचारोंकी सरल धारा पर अवलम्बित रही है, चाहे इससे पूर्व विकासमें कितनी ही सूक्ष्मता क्यों न आ गई हो।

जब एक सिरेसे लटकता डण्डा दोलककी भांति दोलित है तो उसका प्रत्येक भाग दी हुई धुरीके इधर उधर हिलता हुआ सरल दोलन बनाता है और इन सरल दोलनोंमें से प्रत्येक दोलनका समय उसकी लम्बाईसे अलग अलग गणित द्वारा निकाला जा सकता है। छोटे इनमें तेजीसे हिलेंगे और लम्बे अपनी लम्बाईके अनुसार धीरे धीरे। परन्तु ये सब दोलन वास्तवमें दृढ़तासे एक डण्डेके रूपमें जुड़े हुए हैं और इसलिये एक ही गतिसे झूलने को बाध्य हैं। अब प्रश्न होता है कि यह गति क्या है? अपने देशवासी स्टेविन की भांति उसने भी एक प्रसिद्ध अनुभवकी सहायतासे शुद्ध उत्तर प्राप्त किया। वह सहायक मध्याकर्षण केन्द्रका विचार था। इस विषयमें वह कहता है कि जब दोलक डण्डा मध्याकर्षणके प्रभावसे हिलता है तो डण्डेके मध्याकर्षणका केन्द्र जहांसे वह प्रथम बार नीचे आया है उससे ऊंचा कभी नहीं उठेगा, चाहे गतिमें दोलक पर ऐसे प्रभाव भी पड़ रहे हों जिनका उसके भारसे कोई सम्बन्ध न हो। सरल दोलनके विषयमें गैलीलियोंने यह भली भांति समझ लिया था। उसने दोलक को बिना किसी बाहरी प्रभाव या रुकावटके दोलित किया और मार्गमें एक कील लगाकर भी हिलाया। दोलककी रस्सी कीलमें अटक गई और चलते २ मुड़ गई जिससे दोलक कीलको केन्द्र बनाकर एक वृत्ताकार मार्गमें घूमने लगा। इन प्रयोगोंमें दोलक जितनी ऊंचाईसे छोड़ा गया उससे ऊंचा कभी नहीं उठा और जब उसकी ऊंचाई कम रही तो वह रगड़की विरोधी शक्तिके कारण थी जिसका कि मुख्य क्रियासे कोई सम्बन्ध न था। हाइगिन्सने बिलकुल इसी प्रकार कदम बढ़ाया। उसने दोलित डण्डेसे कल्पित प्रयोग किया। स्टेविन्सके समयके पश्चात् काल्पनिक प्रयोग खोजमें अधिकाधिक महत्वपूर्ण हथियार बन चले थे। इनकी कल्पना सम्भावनाके अंतर्गत होनी चाहिये थी अर्थात् उनका सम्बन्ध उन्हीं क्रियाओंसे होना चाहिए जो मोटे तौर पर वास्तवमें की जा सकें। हम डण्डेको कल्पनामें एक ओर ऊंचा उठाकर छोड़ देते हैं और उसे तब तक हिलने देते हैं जब तक की वह सबसे नीची अवस्था (खड़ी अवस्था) में न पहुंच जाय। जब डण्डा इस दशामें होता है तो हम कल्पना करते हैं कि डण्डेके विभिन्न भागोंका सम्बन्ध टूट गया है और वे सरल दोलकों की भांति हिलते रहते हैं। इस दशामें भी सब विभागों का सम्मिलित आकर्षण केन्द्र उसी बिन्दु तक ऊँचा उठ सकता है जहांसे वह नीचे को आया है। क्योंकि सब साधारण दोलक हैं इसलिये उनकी गति ज्ञात है। ये दोलक उस गतिपर छोड़े गये थे जो कि उनके अलग २ होनेके समय थी। अर्थात् उनकी गति घूमनेकी धुरीसे उनकी दूरीके अनुपातमें थी। अब यदि इनमें से एक गति ज्ञात हो तो सब ज्ञात हो सकती हैं और जबकि सरल दोलकोंकी भांति हिलते हैं उनके आकर्षण केन्द्र की गति भी ज्ञातकी जा सकती है। उल्टे तौर पर सरल और ज्ञात रीतियोंसे हल किया जाने वाला प्रश्न अब यह है कि अलग २ होनेके समय भागों की गति कितनी रही होगी और अविभाजित दोलनके किसी दिये बिन्दुकी गति कितनी रही होगी। जिसमें कि आकर्षणका केन्द्र एक विशेष ऊंचाई तक उठ जाये। जिस ऊंचाईसे हिलाना प्रारम्भ किया था वह ज्ञात होने पर यह गति गणित की जाती है इससे हमें मिश्र दोलनके झोटोंका समय मिल जाता है और उस सरल दोलनकी लम्बाई भी मिल जाती है जिसके हिलने का समय इस मिश्र दोलनके समयके बराबर होगा।

जब यह गणित किया जाता है तो एक स्थान पर क्रिया में एक योग आता है। यह योग मिश्र-दोलनके प्रत्येक कणके

पिण्ड तथा घूमनेकी धुरीसे उनकी दूरीके वर्गोंके गुणनफलों का जोड़ होता है। यह योग सब वृत्ताकार गतियोंके गणितकी कुञ्जी है। यह पहले पहल हाइगिन्सने समझा था, बादको इसे पदार्थ (पिण्ड) की एक दी हुई धुरीपर 'मोमेंट आफ इनरशिया' का नाम मिला। मोमेंट आफ इनरशिया (जड़त्वका घूर्ण) सब वृत्ताकार गतियोंके लिये जड़त्वकी माप है, उसी प्रकार जैसे साधारण पिण्ड (mass) सब सरल रेखाओंमें गतिके लिये। एक भार कणकी धुरीसे दूरीका वर्ग, जैसा कि हाइगिन्स तर्क करता है—इसीलिये महत्त्वपूर्ण है कि गैलीलियोके गिरनेके नियमके अनुसार किसी पिण्डकी गतिका वर्ग अनुपातिक रूपसे यह बतलाता है कि किसी मार्गसे वह अपने भारके विरुद्ध कितना ऊंचा उठ सकता है (मार्ग कैसा भी चुना जाय उससे कोई अन्तर न पड़ेगा) और वृत्ताकार गतिकी दशामें गतियां धुरीसे दूरियोंके अनुपातमें होती हैं।

अपेक्षावादके सरल नियमसे चलकर वह समान और असमान पिण्डोंकी टक्करसे सम्बन्धित सब प्रश्न सुलझानेमें समर्थ हुआ। इस कार्यसे आवर्तन बलकी नश्वरता तथा गति-शक्तिके सही विचार प्राप्त हुए। इस प्रकार भार तथा गतिके वर्गका गुणनफल गति की क्रियामें महत्त्वपूर्ण स्थानपर ले जाने वाले पहले पहल हाइगिन्सके कार्य ही हमें मिलते हैं। विशेषतया लचकदार पिण्डों की टक्करोंकी खोजमें इस गुणनफलका महत्त्व यहां तक हाइगिन्सने स्वयं स्पष्ट किया है जहां तक कि वह यह प्रमाणित करता है कि यह गुणन फल जब टक्करमें भाग लेने वाले सब पिण्डोंके लिये जोड़ लिया जाता है तो उस जोड़ पर टक्करसे कोई प्रभाव नहीं पड़ता चाहे पिण्डकी गतिमें कितना ही परिवर्तन क्यों न हो जाये। यह सत्य है कि हाइगिन्स पिण्डके लिये भार तथा प्रायः आकार शब्दका प्रयोग mass पिण्डके लिये करता है। पिण्डकी विलक्षण प्रकृति इस अध्ययनको आगे बढ़ाते समय न्यूटन द्वारा स्पष्ट की गई।

टक्करकी क्रियाओंकी खोजने विशेष कठिनाइयां उपस्थित कीं। ये क्रियायें प्रति दिन हमारे चारों ओर होती रहती हैं। इनकी विशेषता यह है कि वे बहुत थोड़ेसे समयमें होजाती हैं। गैलीलियोने भी इस प्रकारकी समस्याके अध्ययनकी ओर ध्यान दिया था। हाइगिन्सके समकालीन (१६८८) इङ्गलैण्ड निवासी वालेस और रेन (प्रसिद्ध भवन निर्माता) ने भी इस दिशामें अध्ययन किया था। रेन और हाइगिन्सने लचकदार पिण्डकी टक्करका अनुसन्धान किया और इसमें महत्त्व पूर्ण बात यह है कि उन्होंने टकराते हुये पिण्डके परिमाण तथा टक्करसे पहिले और पीछे उसकी गतियोंमें सरल सम्बन्ध ज्ञात कर लिया। यह फल निकालनेके लिये उन्होंने कल्पना की—जब तनिक देरके लिये दो पिण्ड भिड़ते हैं तो वास्तवमें सूक्ष्मतया क्या क्रियायें होती हैं उसके जानने की आवश्यकता न थी। क्योंकि इस विषयमें हाइगिन्स औरोंसे कहीं आगे था वह इस समस्या पर जिस प्रकार आगे बढ़ा उससे ज्ञात होता है कि उसका मस्तिष्क कितना सुलझा और सही मार्गपर था, उसने उस समय बिलकुल नयी रीतिसे गैलीलियोकी खोज (कि विभिन्न उद्गमोंकी गतियां मिलनेपर भी एक दूसरेमें बाधा नहीं डालती) को अपने मिश्र-दोलनमें प्रयुक्तकर इसे सत्य से जोड़ दिया कि—आकर्षणका केन्द्र दोलनमें पहिली बारसे अधिक ऊंचा नहीं उठता। इन आधारों पर साधारण टक्करके कुछ प्रयोगोंके फलोंको मिला कर उसने टक्करके सम्बन्धमें अत्यन्त महत्व पूर्ण नियमोंकी एक बड़ी संख्या खोज निकाली। इस प्रकारके नियम कठोर लचकदार गेंदोंके फलसे समर्थित हुए और गतिकी क्रियाके ज्ञानको एक तर्क समर्थित रूप प्राप्त हो गया।

हाइगिन्सकी इन खोजोंमें हमें आकर्षणके अचल महत्ताके अतिरिक्त चल महत्व का पता भी मिलता है। इसकी खोज पिण्ड और गतिके गुणनफलकी महत्ताकी द्योतक है। जिसको कि गतिके परिमाण या आवर्तन-बल या घूर्णका नाम दिया गया है।

हाइगिन्स प्रारम्भमें सरल रेखा गति और वृत्ताकार गति दोनोंको स्वाभाविक निरपेक्ष मानता था। न्यूटनकी प्रिंसपिया प्रकाशित होनेके पश्चात् उसने वृत्ताकार गतिको निरपेक्ष मानना बन्दकर दिया और इसके सूक्ष्म अध्ययनकी ओर ध्यान दिया। उसने इस समस्याको पूरी तरह अध्ययन कर सुलझा लिया। जिस नियमका उसने पता लगाया उसके अनुसार यह शक्ति जो कि सदा मार्गकी वक्रताके केन्द्रसे दूरकी ओर कार्य करती है मार्गमें गतिके वर्गके अनुपातोंमें होती है, मार्गकी त्रिज्याके उल्टे अनुपातमें होती है और गतिवान पिण्डके अनुपातमें होती है। यह फल उसने दोलक घड़ियों पर अपने १६७३ के लेखमें छापे, परन्तु इसका पूरा हल टक्करके नियमोंके साथ उसकी मृत्युके पश्चात् छपा। यह पूर्णतया गैलीलियोके जड़त्वके नियम पर स्थित है और जड़त्वके फल स्वरूप शक्तिके इस रूपका

अध्ययन इसके प्रभावों सहित हाइगिन्सने अपनी योग्यतासे किया जिसमें आज भी जोड़नेको कोई महत्वपूर्ण बात शेष नहीं है।

गतिकी क्रिया पर हाइगिन्सके कार्यमें हमें वह तत्त्व वर्तमान मिलते हैं जिनसे न्यूटन शीघ्र ही आकाशीय पिण्डों सहित सारे यन्त्र शास्त्रका ढांचा तैयार कर सका।

उसका दूसरा काम

प्रकाशकी प्रकृति पर हाइगिन्सकी खोजें इन अनुसन्धानोंसे बहुत अधिक और भिन्न हैं। इस विषयको वह निरीक्षणों पर स्थित हो स्वयं नीव रखता है और एक दम नये तर्कोंसे उसका समर्थन करता है। उसके समयमें प्रकाशके विषयमें निम्नलिखित बातें ज्ञात थीं। यूक्लेडके समयसे प्रकाशका सरल रेखामें चलन और परिवर्तन ज्ञात था। प्रकाशकके आवर्तनका केप्लरने और अधिक शुद्धतासे स्नेलने अध्ययन किया था गैलीलियोने इसका सफलतासे दूरदर्शकमें प्रयोग किया और अन्तिम तथा विशेष महत्वपूर्ण बात यह थी कि कुछ ही समय पहिले ऐमरने पता लगाया था कि प्रकाश अपने उद्‌गम स्थानसे नेत्र तक एक सीमित ज्ञातव्य गतिसे चल कर आता है। हाइगिन्सने इन सब तथा प्रकाश और उसके उत्पन्न होनेके विषयमें अन्य बातोंको एकत्रित करके यह फल निकाला कि हमें प्रकाशको एक प्रकारके कम्पनसे बना हुआ तरङ्ग समझना चाहिये; जो कि अपने उद्‌गम से चारों ओर वायु रूपमें नादकी भांति और जलमें तरङ्गकी भांति फैलता है। परन्तु प्रकाश तरंगोंका आधार वायु नहीं हो सकता। गैरिक तथा बायलने रिक्त स्थानमें भी प्रकाश पाया था उस से हाइगिन्सने यह फल निकाला। आगे वह कहता है कि सब पदार्थसे रिक्त—स्थानमें अवश्य कोई ऐसी वस्तु रह जाती है जो प्रकाशके कम्पनका आधार बनती है। हाइगिन्सने इस पदार्थका नाम ईथर रक्खा। इस प्रकार ईथरका भौतिक अस्तित्व उससे प्रारम्भ हुआ। इसमें मुख्य बात वह प्रमाण है जिससे प्रकाशमें तरंगोंकी भांति फैलने वाले कम्पनके सब गुणों का वास्तविक अस्तित्व प्रमाणित होता है। इसकी पहिली साक्षी हाइगिन्सने दी। इसका महत्व आज भी कम नहीं है। वह सबसे पहिले यह प्रमाणित करता है कि प्रकाशकी तरंगे किसी भी दिशासे एक दूसरी दिशामें बिना बाधा या गड़बड़ी डाले घुस जाती हैं। यह कम्पन द्वारा प्रस्तारका एक गुण है। यह नादमें भी पाया जाता है और जैसा कि उसने दिखाया लचकदार पिण्डोंकी टक्करमें भी है। निरीक्षणके आधारपर वह कहता है कि टक्करसे गेंदोंमें क्षणिक चपटापन आ जाता है। यह प्रत्यक्ष है कि इस क्रियामें समय लगेगा इसलिये गेंदोंकी एक पंक्ति में गतिवान टक्कर कुछ बाधा अनुभव करेगी। प्रकाशकी सीमित गति इस अनुभवसे बिलकुल मेल खाती है। प्रकाशके उद्‌गम का उदाहरण एक मोमबत्ती है, जिसका प्रत्येक प्रकाशित कण स्वतन्त्र रूपसे तरंगें उत्पन्न करता है। परन्तु सब तरंगें मिल कर एक बड़ा तरङ्गाग्र (Wave front) बनाती हैं जो एकत्रित होकर प्रकाशके धारारूपमें आगे बढ़ता है आज भी इस विषयमें हमारे यही विचार हैं।

तरङ्गाग्र के फैलावके विषयमें हाइगिन्सने एक नियम दिया है। वह अब तक तरंगोंके फैलावके विषयमें सदा सच्चा पाया गया है और हाइगिन्सका नियम कहलाता है। इस नियम के अनुसार तरङ्ग द्वारा आन्दोलित फैलावके माध्यमका प्रत्येक भाग स्वयं अपने पड़ोसमें फैलावका नवीन केन्द्र बन जाता है जिससे कि माध्यमके एक बिन्दुसे प्राथमिक तरंगें चल कर फिर अपने मेलके सर्वनिष्ठ तल पर एक नवीन तरङ्गाग्र मुख उत्पन्न करती हैं। इस नियमके अनुसार हाइगिन्स प्रकाशके परिवर्तन, आवर्तन तथा इनसे सम्बन्धित नियमोंको पूर्णतया समझानेमें सफल हुआ। आवर्तनके विषयमें हमें यह कल्पना करनी पड़ती है कि आवर्तनके माध्यम (उदाहरणतः कांच या पानी) में प्रकाशकी गति आवर्तन सूचक आवर्तनाङ्क (Refractive Index) के अनुपातमें धीमी होती है। एक सौ चालीस वर्ष पश्चात् फ्रेनलने इसकी सत्यताको प्रमाणित किया और उसके चालीस वर्ष पश्चात् फोकोने इसे और अधिक प्रत्यक्ष रूपमें दिखाया। स्वयं हाइगिन्सने इन विचारोंकी एक दूसरी विशेष परीक्षा ली आइसलैंड स्पार (एक प्रकारके पत्थर) में दुहरे आवर्तनकी क्रिया पहिलेसे ज्ञात थी। परन्तु वह अब तक ठीक प्रकार समझी न गई थी। इसको समझनेके लिये हाइगिन्सने अपने सिद्धान्तका प्रयोग किया। जब एक प्रकाश किरण आइसलैण्ड स्पारमें प्रवेश करती है तो वह इस माध्यममें जाकर दो किरणोंमें विभाजित हो जाती है। इनमेंसे एक साधारण किरण कहलाती है और दूसरी असाधारण। साधारण किरण स्नेलके आवर्तनके नियमोंका पालन करती है परन्तु असाधारण किरणके लिये आवर्तनका कोई नियम लागू नहीं होता। विभिन्न अवस्थाओंके अनुसार यह विभिन्न दिशाओं में चली जाती है। उदाहरणतः प्रकाश किरण यदि आइसलैंड

स्पार पर लम्बरूपमें पड़े तो भी आवर्तनकी क्रिया हो सकती है हाइगिन्स अपने सिद्धान्त द्वारा इन विचित्र क्रियाओंको समझाने में समर्थ हुआ। अब वह इनके विषयमें पहिलेसे बता सकता था। इस कार्यके लिये उसने यह सीधी कल्पना की कि स्फटिकरवे के भीतर प्रकाश एकसी गतिसे चारों ओर नहीं फैलता। वह स्फटिक कलमकी धुरीकी दिशामें धीमी गतिसे फैलता है और ज्यों ज्यों इस धुरीसे वह अधिकाधिक कोण बनाता जाता है त्यों त्यों उसकी गति अधिक होती जाती है और धुरीसे समकोणकी दिशामें गति सबसे तेज होती है। यह कल्पना कि स्फटिक कलममें प्रकाश विभिन्न दिशाओंमें भिन्न गतियोंसे चलता है असम्भव न थी। अन्य गुणोंमें भी (उदाहरणतया दृढ़ताके विषयमें) स्फटिक कलम सामान्यत: विभिन्न दिशाओंमें विभिन्न धर्म रखनेकी विचित्र प्रवृत्ति दिखाती है यह कल्पना भी बड़े कामकी निकली। हाइगिन्सने अपने सिद्धान्तानुसार प्रकाशके फैलावके फलोंका मिलान आइसलैंड तथा बिल्लौरकी कलम (Rock crystal or quartz) पर बहुतसे निरीक्षणोंकी वास्तविकतासे किया। जिससे उसे प्रकाशके ध्रुवित (Palarise) होनेकी महत्वपूर्ण घटनाका पता लग गया। उसने देखा कि आइसलैंड स्पारकी एक कलममें से प्रकाशकी किरण पार होनेमें एक विशेष रूप धारण कर लेती है अथवा यों कहिये कि विशेष रीतिसे योजित हो जाती है जिससे कि जब वह आइसलैंड स्पारकी दूसरी कलममें जाती है तो विभिन्न दशाओंके अनुसार भिन्न भिन्न व्यवहार दिखाती है, इस विशेष घटनाकी प्रकृतिका पता १४० वर्ष पश्चात् फ्रेनलने लगाया। इससे ज्ञात होता है कि हाइगिन्स इन खोजोंमें कितना आगे बढ़ गया था। उसके यह आविष्कार पहिले पैरिसकी एकडेमीके एक भाषण में १६७६ में प्रकाशित हुए और फिर १६९० में प्रकाश नामक शीर्षकसे निकले। यह प्रारम्भिक वैज्ञानिक अनुसन्धानके लेखोंमें विशेष स्थान रखते हैं।

हाइगिन्सने लेंस घिसने और उनपर पालिश करनेकी रीतियों पर बहुत परीक्षण किये। उसके कार्यसे ही ज्योतिषियों ने गोल आकारके अतिरिक्त अन्य रूपके लेंसोंकी खोज की, हाइगिन्सको पिण्डोंकी स्वाभाविक प्रकृति जन्य आकर्षण शक्ति का सिद्धांत वाहियात जान पड़ता था। वह अमान्य विचारोंका कटुता से विरोध करता था।

उसका तीसरा काम

इसी समय लगभग १६५२ के पश्चात् हाइगिन्स दूरदर्शक सुधारनेमें भी लगा रहा। प्रकाशके आवर्तनका स्नेलका नियम जाननेके कारण वह लेंसोंके प्रकाश पर प्रभावको केपलर और गैलीलियोसे—जिन्हें यह नियम ज्ञात नहीं था—कहीं अच्छी तरह समझ सका। इस अध्ययनसे उसे लेंसोंकी कमियों (वृत्तीय तथा रङ्गीन फैलाव) और इन त्रुटियोंका लेंसकी नाभिकी लम्बाई तथा लेंसकी चौड़ाई (aperture) पर निर्भर रहनेका पता लग गया, वह लेंसको स्वयं भी घिसता था और इस कार्यमें उसका भाई कौंस्टेनटाइन भी उसकी सहायता करता था। उसने लेंसोंको धारी रहित करनेकी प्रारम्भिक परीक्षा का आविष्कार किया। दो सौ वर्ष पश्चात् ड्रेस्डनमें टोइपलरने इसे पूर्ण सूक्ष्मताकी सीमापर पहुंचा दिया। हाइगिन्सने केपलर दूरदर्शकके दृष्टिलेंसमें सुधार किया। हाइगिन्सका आई-पीस आज भी इस्तेमाल किया जारहा है। इसमें दो उन्नतोदर लेंस होते हैं। अन्दरवाला लेंस दूरदर्शकके वस्तु लेंसके साथ कार्य करता है जिससे वास्तविक बिम्ब आई-पीसके दोनों लेंसोंके बीच में बनता है। यह सब अनुसन्धान उसकी मृत्युके पश्चात् १७०३ में उसकी 'डाइओपट्रिक्स' में छपे थे। अपने दूरदर्शक का वह पहले ही एक महत्त्वपूर्ण कार्यमें प्रयोग कर चुका था। उसने अपने सुधारे दूरदर्शकसे शनि, चन्द्रमा को देखा तथा शनिके अधर चक्र को देखा और उसका विवरण १६६९ में "शनिकी योजना" में प्रकाशित किया। गैलीलियो को शनिका चक्र धुंधला दिखाई पड़ा था, जिससे शनि तीन टुकड़ोंमें विभाजित जान पड़ता था, उस समय यह दृश्य अदृश्य होता सा प्रतीत हुआ था। दूसरे निरीक्षकोंको भी शनिमें अनेकों विलक्षण दृश्य दिखाई पड़े थे यह अपने अच्छे दूरदर्शकसे वर्षों परिश्रमके पश्चात् सब दृश्योंको ठीक प्रकारसे समझनेमें समर्थ हुआ। उसने बतलाया शनिके चारों ओरका चक्र उससे जुड़ा नहीं है यह चक्र समतल और पतला है। सूर्य की कक्षाके तल की ओर बहुत झुका हुआ है और अपने समानान्तर रहता है इसी कारण शनि अपनी कक्षा पर एक चक्रमें (लगभग १५ वर्ष में) केवल दो बार पतले किनारों पर ही प्रकाशित होता है और समयमें बिलकुल नहीं अथवा धुंधला दिखाई देता है, परन्तु बीचके समयमें वह पूर्णतया प्रकाशित और दृष्टिगोचर होता है। हाइगिन्सने यह खोज उस दूरदर्शकसे की थी जिसमें उसके हाथके

घिसे लेंस लगे थे। उसका वस्तु लेंस अब भी यूट्रेक्टमें सुरक्षित रक्खा है। इसका व्यास ५½ सेन्टीमीटर और नाभिकी लम्बाई तीन मीटर है। दृष्टि लेंस सात सेंटीमीटर नाभिकी लम्बाई की ओर छोटा सा था। दूरदर्शकके पश्चात् हाइगिन्सने सूक्ष्मदर्शक पर भी कार्य किया और काले क्षेत्र पर अभिदीप्ति करने (Dark field illumination) की रीति निकाली। इसी यन्त्रमें वर्तमान साधनोंकी सहायता ली जानेसे हमारा परा-सूक्ष्म दर्शक बना।

इन अनुसंधानों तथा दोलक घड़ीके आविष्कारके कारण उसकी ख्याति ऐसी बढ़ी कि पेरिसकी एकाडेमीने उसे निमिन्त्रित किया वहां पर उसे अच्छा वेतन तथा रहनेको स्थान मिला। वहां उसे प्रभावशाली पद मिला। वह इसपर १६६६ से १६८१ तक रहा। इसके बाद चौदहवें लुईने जब हालैण्ड से लड़ाई छेड़ दी, उसका मंत्री हालवर्ट, जो हाइगिन्सका बड़ा प्रसंशक था, उसका प्रभाव नष्ट हो गया और देश निकालेकी नौबत तक आ पहुंची। उस समयमें हाइगिन्स फ्रांसका दिया सब कुछ छोड़ हालैंडमें हेगके पास हाफविक की अपनी पैतृक जागीरमें लौट आया। चौदह वर्ष निरन्तर कार्य करनेके पश्चात् ६७ वर्ष की अवस्थामें उसकी मृत्यु हो गई। उसने जीवन साथी नहीं बनाया। अकेला रहा, जीवनके अन्तिम दिनोंमें वह इङ्गलैंड गया और अपने समकालीन न्यूटनसे मिला, न्यूटन उसका मान करता था। उसने उसे केम्ब्रिज विश्वविद्यालयमें रखनेका प्रयत्न भी किया।

अन्तिम लेखमें, जो हाइगिन्सने स्वयं प्रकाशित किया और जिसे उसने अपने भाई कॉनस्टैनटाइन (Constantine) को समर्पित किया, गिपोरडैनो बुनोके विचार—कि ग्रह पृथ्वीकी ही भांति हैं, जीवनके योग्य हैं और कदाचित् कुछपर जीवका निवास भी है—का भली भांति विवेचन किया है। इस विषयमें हाइगिन्सको एक सुभीता यह था कि उसका देश लूथरके कार्यके कारण पोपकी सत्तासे बाहिर था और इसलिये उसे उनसे डरनेकी आवश्यकता न थी। न्यूटनको भी यही सुभीता था। इन लोगोंने अपनी सफलतासे यह प्रमाणित कर दिया है कि वैज्ञानिक उन्नतिके लिये विचार स्वातन्त्र्यका कितना बड़ा महत्त्व है।

[उक्त लेखकी सहायताके लिये मैं डा० डी० एस० कोठारीका कृतज्ञ हूँ।]

दुनियाँ छोटी है।

[मूल लेखक—सर आर्थर एडिंगटन; अनुवादक—श्री चन्द्रिका प्रसाद जी]

यदि पिछले कुछ महीनोंमें कभी भी सायंकालके समय आपने आकाशकी ओर देखा हो तो आपने दो चमकीले तारे पास-पास अवश्य देखे होंगे। दोनों ही चमकीले हैं, परन्तु उनमें एक बहुत ही चमकीला है। इन्हें पहचानने में आप भूल नहीं कर सकते; ये आप ही आप देखने वालेको अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं। परन्तु ये तारे नहीं हैं; ये ग्रहोंमें सबसे बड़े ग्रह, बृहस्पति और शनि हैं। मैं इन्हींसे विषय का आरम्भ करूंगा, और जो विशेष बात मैं आपको बतलाना चाहता हूं वह इनके वायुमण्डल की विचित्रता है। पृथ्वी की तरह ये भी ठोस गोले हैं और इनके चारों ओर वायुमण्डल है; परन्तु वहां ऐसी वायु नहीं है जिसमें मनुष्य सांस ले सकें। बृहस्पति का वायुमण्डल मुख्यत: दो गैसों, अमोनियां और मीथेनसे बना है। शनिका वायुमण्डल भी ऐसा ही है, परन्तु उसमें अमोनियां कम है।

यदि सोचा जाय तो यह बात अधिक आश्चर्यजनक नहीं। वास्तवमें हमारी ही दुनियां विचित्र है, और हमारा ही वायु मंडल असाधारण है। यह समझनेके लिये आपको जानना चाहिये कि अमोनियां और मीथेन दोनों हाइड्रोजनके योगसे बनते हैं, और जहां हाइड्रोजन अधिक मात्रामें होगा वहां इन गैसोंके होनेकी सम्भावना रहेगी क्योंकि हाइड्रोजन एक क्रियाशील पदार्थ है और अन्य पदार्थोंसे मिलकर इन गैसोंको बनाता है। दूसरे, इस विश्वके लगभग प्रत्येक स्थानमें हाइड्रोजन अधिक मात्रामें भी पाया जाता है। पिछले दस वर्षोंकी ज्योतिष की खोजों से यह एक महत्त्व पूर्ण बात निकली है। इसके पहले

हम यह नहीं जानते थे कि पृथ्वीके अतिरिक्त अन्य पिंड प्रायः सभी हाइड्रोजन में डूबे हुए हैं। इस खोज से हमें बहुत सी बातें समझने में सहायता मिली है जो पहले द्विविधामें पड़ी हुई थीं। पृथ्वी इस नियम का अपवाद है—यहां पर हाइड्रोजन बहुत ही कम है।

यदि पृथ्वी कुछ और छोटी होती तो हमारे साँस लेनेके लिये उपयुक्त हवा ही नहीं होती; इसके उपयोगी अंश न्यून आकर्षणके कारण उड़ गये होते और यदि कुछ बड़ी होती तो मीथेन और अमोनिया से हमारा दम घुट जाता।

शुक्र ग्रह लगभग पृथ्वीके ही बराबर है, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि वहां की वायु दूषित नहीं है। वहां पर हाइड्रोजनके योगिक नहीं है (क्योंकि पृथ्वी की तरह शुक्रसे भी हाइड्रोजन निकलता है), वहां हम कार्बनके यौगिक पाते हैं। शुक्र पर ऑक्सीजन स्वतन्त्र रूपमें न रहकर कार्बन डाइऑक्साइडके रूपमें है। इस कार्बन-डाइ-ऑक्साइड के वायुमण्डलमें घने बादल उड़ते दिखलाई पड़ते हैं परन्तु ये पानीके बादल नहीं हैं। ऐसा समझा जाता है कि ये टेढ़े-मेढ़े नाम वाले पॉली-ऑक्सी-मेथिलीन-हाइड्रेटके रवोंसे बने बादल हैं। विचारने पर ऐसा जान पड़ता है कि शुक्र नहीं, पृथ्वी ही असाधारण है। कदाचित् आरम्भ में दोनोंके वायुमण्डलमें कार्बनकी मात्रा बराबर थी, पर धीरे २ पृथ्वीके वायुमण्डलमें बहुत कम रह गई। इतना कार्बन गया कहां? उत्तर यह कि वह वायुसे उन पेड़ पौधों द्वारा ले लिया गया जो आवार्चीन कालमें पृथ्वी पर बहुतायत से उगे थे और इस समय कोयले और पेट्रोलियम के रूपमें भूमिके नीचे दबे पड़े हैं।

बहुत समय पहले चन्द्रमा पृथ्वीसे झटकेके साथ भिन्न होकर इलहदा हो गया जिससे पृथ्वीकी पपड़ी ऊँची नीची हो गई; इस कारणसे पृथ्वी धरातल अन्य ग्रहोंकी अपेक्षा अधिक ऊँचा नीचा है। उसमें गहरे गड्ढे हैं जिनमें समुद्रका पानी इकट्ठा हो सकता है, इसलिये भूमिके अन्यभाग सूखे रह जाते हैं। यदि यह ठीक है, तो हम सूखी भूमिके लिये चन्द्रमाके कृतज्ञ हैं। इसका यह भी अर्थ है कि अन्य ग्रह जहां हमारे ही जैसा विकास हुआ हो विरले ही होंगे, क्योंकि चन्द्रमा असाधारण वस्तु है। अन्य ग्रहोंके भी उपग्रह हैं, पर वे चन्द्रमा की बराबरी नहीं कर सकते और अपने ग्रहोंके लिये इतने अधिक महत्त्वके नहीं हैं। यदि किसी अन्य ग्रह निवासीसे मेरी भेंट हो जाय—तो यद्यपि मैं पृथ्वीके बारेमें अधिक नहीं डींग हांक सकता पर अपने चन्द्रमा की खूब प्रशंसा कर सकता हूं।

मंगलके बारेमें—जहांका वातावरण मनुष्यके लिये इतना असहनशील नहीं है, मैं कुछ नहीं कहूंगा क्योंकि यह स्वयं एक लेख ले लेगा। परन्तु इसके अतिरिक्त, ऐसा जान पड़ता है कि यदि पृथ्वीको छोड़कर जाना पड़े तो बड़ी लम्बी खोजके बाद ऐसा देश मिलेगा जहां हम बिना गैस-मास्कके रह सकेंगे। फिर भी जब हम देखते हैं कि आकाश तारोंसे भरा है, और प्रत्येक तारा एक सूर्य है जिसके ग्रहोंका भी एक परिवार हो सकता है, तो ऐसा लगता है कि यदि पृथ्वी एक अपवाद है तो ऐसे कई और अपवाद होंगे।

यदि परिस्थिति किसी तारे को टूटनेके लिये बाध्य कर तो साधारणतः वह तारा दो बराबर भागोंमें बँट जायगा। लगभग एक तिहाई तारे युग्म तारे हैं, अर्थात् वे ऐसे तारे हैं जो तीक्ष्ण निरीक्षण पर दो तारे सटे हुए जान पड़ते हैं। कदाचित् ये एक तारेके दो टुकड़ोंमें बँट जाने से बने हैं। एक तारेका दो बराबर भागोंमें न विभाजित होकर कई छोटे-छोटे ग्रहोंकी उत्पत्ति करना एक बिरली घटना है जो अन्तरिक्षमें विचरते हुए किसी दूसरे तारे के अत्यन्त निकट आने से ही हो सकती है। हमारे सूर्यके ऊपर यह घटना लगभग दो अरब वर्ष पहले घटी होगी; सूर्यके लिये तो यह एक दुर्घटना रही होगी, पर हमारे लिये यहां आज वर्तमान होने का कारण है। पर अन्तरिक्षमें इतना अधिक रिक्त स्थान है कि ऐसी घटनाकी सम्भावना बहुत ही कम रहती है। हमारा सूर्य जिस विश्व-दीपका एक तारा है उसमें एक खर्व तारे हैं। मैं यह ठीक बतलानेका दावा नहीं कर सकता कि ऐसी ग्रह-उत्पादक घटनायें कितनी हुई हैं; किंतु यदि हमारे ग्रहोंकी उत्पत्ति करने वाले संघर्ष की तरह कोई दूसरा संघर्ष न भी हुआ हो तो मैं आश्चर्य न करूँगा।

पृथ्वी इस विश्व-द्वीपमें अप्रतिरूप भी हो तो भी हमारी खोजका अन्त नहीं हो जाता। हमें अपने विश्व द्वीपसे दूर पर धुंधले प्रकाश-पुंज दिखलाई देते हैं जो अन्य विश्व-द्वीप हैं। इनमें से प्रत्येक हमारे विश्वकी तरह तारोंसे भरा है, और जहां तक हमारी दृष्टि जाती है ये एकके पीछे एक फैले हुए हैं। हमने इतनी दूर तक इन द्वीपोंका पता लगाया है कि दूरके

(शेष १७१ पृष्ठ पर देखिए)
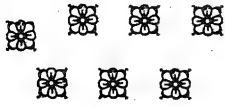
विज्ञान और निनाद
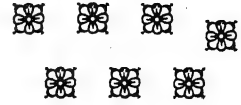
जब प्रकृतिने हमें आपत्तियोंसे बचनेके हेतु सूचना देने के लिये कान दिये तो उसके ध्यानमें यह बात नहीं आई कि मनुष्योंकी संस्कृति एक दिन इतनी निनाद पूरित हो जायगी, कि वे बहरे हो जायेंगे। नहीं तो जैसे आंखोंके ऊपर पलकें हैं; उसी प्रकार प्रकृति कानों पर भी कोई पर्दा बना देती जिससे अनावश्यक शब्दको भीतर आनेसे मनुष्य रोक सकते।

हालमें ही बॉयलर बनाने वालोंकी मीटिंग हुई थी और उनमेंसे ७.५ प्रतिशत अपने सभापतिकी बातोंको नहीं सुन सके, क्योंकि बॉयलर बनानेमें रिवेट ठोंकनेसे जो शब्द होता है उसकी प्रचण्डताके कारण कारीगर बहरे होजाते हैं।

कभी २ नादसे हमें उत्तेजना अवश्य होती है। परन्तु अधिकतर हम सन्नाटेमें ही सोच सकते हैं और मानसिक काम कर सकते हैं, इसलिये आज कलके इञ्जिनियरोंको यह आवश्यकता पड़ती है कि मशीनोंको इस प्रकार बनावें कि चलते समय उनमें अनावश्यक नाद न उत्पन्न हो। इसके अतिरिक्त ऐसे यन्त्रोंके बनाने की भी आवश्यकता पड़ती है जिनसे कानोंकी रक्षा हो सके ठीक उसी प्रकार जैसे आंखोंके लिए ठंडे चश्मे बनते हैं।

अब शीघ्र ही इञ्जिनियर इसमें सफल हो जाएंगे। ऐसा अनुमान है, थोड़े ही दिनोंमें नादकी ओरसे हम भी निश्चिन्त हो जायेंगे। साथ ही हमारा जीवन अधिक आनन्दमय हो जाएगा। निकट भविष्यमें तरह तरहके नये बाजे बनेंगे जिनसे ऐसा संगीत निकलेगा जिसे प्राचीन गवैयोंने स्वप्नमें भी नहीं सुना होगा। जो लोग कुछ ऊंचा सुनते हैं उनके लिये ऐसी मशीनें बन रही हैं जिनसे वे अच्छी तरह सुन सकेंगे और जो लोग कारखानोंमें काम करते हैं उनके कानोंकी रक्षा प्रचण्ड ध्वनियों से अब सहज ही में हो जायगी।

पिछले दस वर्षोंसे रेडियो और बोलती तस्वीरें निकली हैं, इनके सम्बन्धमें जो खोज की गई उससे शब्द-विज्ञानकी बड़ी उन्नति हुई है। बहुतसी ऐसी बातें मालूम हुई हैं जिनसे हम मकानोंको मशीन आदिके नादके लिए अभेद्य बना सकते हैं।

साधारणतः कड़ी दीवारोंसे टकरा कर शब्द गूंजा करता है। जिससे बात समझने में बड़ी कठिनाई होती है; परन्तु अब दीवारोंका निर्माण ऐसा किया जाता है कि शब्द वहां पहुंच कर मिट जाता है इसलिए वह गूंजने नहीं पाता। पहिले पहल जब इस सिद्धान्त को कार्य रूपमें परिणित किया गया तो ध्वनियां कानमें विचित्र सी प्रतीत होती थीं, इसलिए आधुनिक रेडियोके स्टूडियोमें दीवार इस प्रकार बनाई जाती है कि गूंजना बिल्कुल ही बन्द होजाय। इसका परिणाम यह हुआ कि सङ्गीत पहिलेसे अब अधिक वास्तविक और सरल जान पड़ता है।

कारखानोंके प्रचण्ड नाद से वहांके कार्य-कर्ता धीरे धीरे बहरे होजाते हैं, वे और शहरके रहने वाले उचित रीतिसे विश्राम नहीं कर पाते इससे अकसर ऐसे लोगोंको रोग पकड़ लेता है। उनका स्नायविक पतन (Nervous-break down) हो जाता है। ऐसी बीमारी पुराने जमानेमें कभी सुनी भी नहीं गई थी।

वैज्ञानिकोंने कानके लिये एक ऐसी ठेपी निकाली है जिस से शब्द बहुत कुछ मन्द पड़ जाता है। इसमें नरम रबर भरा होता है। इसे वैज्ञानिक ढंगसे बनाया जाता है जिससे शब्द बहुत ही धीमा होकर कानमें जाता है।

मामूली मोम या रबरकी ठेपियोंसे शब्दकी प्रचण्डताका लगभग पांचवां भाग ही भीतर जाता है, परन्तु वैज्ञानिक ठेपी से उसकी प्रचण्डता केवल दशम् भाग ही रह जाती है। इस प्रकार हवाई जहाजकी गरजती हुई मोटर केवल मेलेकी भीड़ के समान ही जान पड़ती है और मेलेकी भीड़में शब्द केवल इतना ही सुन पड़ता है जैसे कोई काना फूसी करता हो।

ऐसी ठेपियोंके लगानेसे भी कारखानोंके कारीगरोंकी पूरी रक्षा नहीं होती; क्योंकि केवल वही शब्द जो वायु द्वारा कानमें हम तक पहुंचता है इनसे रोका जा सकता है। परन्तु शब्द शरीर की हड्डियों द्वाराभी पहुंचा करता है। जिन कारीगरोंको ऐसी मशीनोंमें काम करना पड़ता है जिससे शब्द और थरथराहट हड्डियों द्वारा उनके अन्दर पहुंचे उनके लिये यह अच्छा होगा कि वे नरम रबरकी गद्दी पर खड़े होकर काम करें।

उपरोक्त ठेपियोंके बारेमें एक विचित्र बात यह है कि इन के पहिननेसे दूसरोंकी बात समझनेमें कठिनाई नहीं होती।

यदि बोलने वालेके कानमें ठेपी न भी लगी हो तो वह अवश्य इतना चिल्लाकर बोलेगा कि मशीनोंकी आवाजसे उसकी आवाज बुलन्द हो जाय। इस प्रकार ठेपी लगाने पर भी दूसरे उसके शब्द अच्छी तरहसे समझ सकते हैं। इसी प्रकार यदि बोलने वालेके कानमें ठेपी लगी हो तो वह अवश्य इतना जोरसे बोलेगा कि अपने शब्दको स्वयं सुन सके। दूसरा व्यक्ति ठेपी लगाने पर भी उसे सुन सकता है।

अनुमान किया जाता है कि कई करोड़ आदमी थोड़े-बहुत बहरे अवश्य होंगे। कुछ तो अपने बाप दादोंके बहरेपनके कारण पैदाइसी बहरे होते हैं। कुछ लोगोंमें रोग या बहुत प्रचण्ड ध्वनि आघातके कारण बधिरता आ जाती है।

कुछ लोग यह समझते हैं कि जानवरोंमें सुननेकी शक्ति अधिक होती है; परन्तु यह बात ठीक नहीं है। कई एक जानवरोंमें वायु द्वारा आये शब्द सुननेकी शक्ति प्रायः उतनी ही है जितनी मनुष्योंमें। परन्तु अकसर जानवरोंको उन शब्दोंका पता अधिक सुगमतासे लग जाता है जो पृथ्वी द्वारा चल कर उनकी हड्डियों से हो कर मस्तिष्कके भीतर पहुंचते हैं।

प्रत्येक व्यक्ति थोड़ा बहुत बहिरा अवश्य होता है; क्योंकि जितने शब्द उत्पन्न हो सकते हैं सबके सब कोई भी नहीं सुन सकता। बीस वर्षकी आयुके बाद तीव्र स्वर सुनने की शक्ति कुछ मन्द पड़ने लग जाती है। जैसे-जैसे आयु बढ़ती जाती है तैसे तैसे व्यञ्जनोंके समझनेमें कठिनाई पड़ने लगती है।

शब्दोंमें एक विचित्रता है जिससे मन्द स्वर तीव्र स्वरको छिपा देते हैं इसलिए बहिरोंकी सहायताके लिये जो यन्त्र बनते हैं उनमें कभी-कभी कठिनाई होती है। क्योंकि इसकी सहायता से अक्सर मन्द स्वर तो सुन पड़ते हैं परन्तु तीव्र स्वर नहीं सुनाई पड़ते। इसलिये एक वैज्ञानिकने ऐसा प्रबन्ध किया है कि एक कानमें तो सब मन्द स्वर पहुंचते हैं। और दूसरे में तीव्र इससे सभी शब्द स्पष्ट सुनाई पड़ते हैं।

यद्यपि टेलीफोनमें बड़ी उन्नति हुई है तो भी यह पूर्णतया दोष रहित नहीं बन पाया है। टेलीफोनमें कुछ तो तीव्र और अत्यन्त मन्द स्वर मिट जाते हैं और कुछ घट जाते हैं। इसके कारण जो लोग टेलीफोनका बराबर प्रयोग नहीं करते वे कभी-कभी टेलीफोन द्वारा बात समझनेमें असफल होते हैं। इसकी जांच आप स्वयं ही कर सकते हैं। क्योंकि यदि आप बराबर टेलीफोन नम्बर दाहिने कानमें लगाते हैं तो जब आप बायां कान टेलीफोन पर लगाइयेगा तो आपको शब्द कुछ विचित्र अवश्य जान पड़ेगा।

कानके डाक्टर जानते हैं कि लोगोंके दोनों कानोंमें अक्सर विभिन्नता होती है। एक कानमें दूसरेकी अपेक्षा कुछ अधिक सुनाई पड़ता है। भविष्यमें बहिरोंको सुननेके लिए ऐसे यन्त्र बनेंगे जिनमें दोनों कानोंके लिए टेलीफोन सरीखे यन्त्र बने रहेंगे। इन यन्त्रोंकी शक्ति कानकी आवश्यकताके अनुसार रहेगी, ठीक उसी प्रकार जैसे आंखमें चश्मा लगता है। डाक्टर कानोंकी परीक्षा अलग अलग करेंगे। दोनों कानोंमें यन्त्र लगानेकी आवश्यकता इसलिए पड़ती है कि केवल दोनों कानों में शब्द आने से ही यह पता चल सकता है कि शब्द किधर से आ रहा है। केवल एक कानसे सुननेमें इसका पता ठीक ठीक नहीं चल सकता।

हाल ही में एक ऐसे व्यक्तिकी जांचकी गई जिसके सुनने की शक्ति साधारण व्यक्तियोंके हिसाबसे केवल ४ प्रतिशत रह गई थी। आज कल टेलीफोन सरीखे सहायक यन्त्र लगने से उसकी सुननेकी शक्ति २१ प्रतिशत हो गई। रेडियोकी तरह वैक्यूम ट्यूब वाले यन्त्रकी सहायतासे उसकी शक्ति ४५ प्रतिशत हो गई और जब उसी प्रकार के बड़े यन्त्रकी सहायतासे उसकी जांचकी गई तो पता चला कि उसकी सुननेकी शक्ति ७२ प्रतिशत हो गई है। इससे आशाकी जाती है कि वे लोग जो बहिरे हो गये हैं कुछ ही वर्षोंमें इतनी अच्छी तरहसे सुनने लगेंगे कि लोगोंको पता भी न चलेगा कि उनके कानोंमें कोई दोष है। यह अवश्य ही खेदकी बात है कि जो किसी रोगसे या कर्ण नाड़ीके सूख जानेसे पूर्णतया बहरे हो गये हैं उनको इन यन्त्रोंसे कोई लाभ न होगा।

(१६६ पृष्ठ का शेषांश)

द्वीपोंसे प्रकाशके आनेमें पचास करोड़ वर्ष लग जाते हैं। जहां तक हमारे दूरदर्शक देख सकते हैं उससे कहीं अधिक दूर तक ये फैले होंगे, परन्तु अपरिमित दूरी तक नहीं। हिसाबसे हम इनका विस्तार ठीक-ठीक जान सकते हैं।

इस ब्रह्माण्डकी जन संख्या इतनी अधिक है कि हमारे मतसे पृथ्वी कदाचित् ही अद्वितीय हो; हां यह हो सकता है कि इसका सादृश्य पानेके लिये हमें बहुत दूर जाना पड़े।

[लिसनर से]

शिशु पालन

[लेखक—कैप्टन उमाशङ्कर प्रसाद आई. एम. एस.]

कई कारणोंसे छोटे बच्चोंको उनकी मां का दूध पिलाना असम्भव हो जाता है। ऐसे समयमें बच्चोंको मां के दूधके बदले ऐसा पीने योग्य पदार्थ देनेका प्रयत्न किया जाता है जिसकी बनावट उस आयुके बच्चेके लिए मांके प्राकृतिक दूधकी बनावटके समान हो। दाई या मां को इस प्रकारके बनावटी भोजन तैयार करनेके लिए इन बातों पर विशेष ध्यान रखना चाहिए;—

(१) उपयुक्त आहार का चुनाव।

(२) आहार तैयार करनेकी विधि।

(३) आहारकी २४ घण्टेके लिए उपयुक्त मात्रा।

(४) प्रत्येक बार आहार देने की मात्रा।

(५) कितने समयके अन्तरमें आहार देना चाहिए।

आहार का चुनाव—मांके दूधकी बराबरी कोई भी आहार नहीं कर सकता, पर लाचारीमें गायका ताजा दूध सबसे बढ़िया आहार है। बच्चे की अवस्थाके अनुसार गायके दूधमें पानी मिलाकर हल्का करना पड़ता है। पर गायका दूध लेनेमें कुछ बातोंपर बहुत ध्यान रखना चाहिए। ग्वालोंके गन्दे हाथ, गन्दे बरतन, या बरतनों को धोते समय गन्दा पानी काममें लाना; गायके थन और पेटका गन्दा रहना ये ऐसी बातें हैं जिनसे दूधमें बड़ी २ बीमारियोंके कीटाणु मिल सकते हैं और उस गन्दे दूधको पीकर बच्चा बीमार हो सकता है। तपेदिकके कीटाणुओंसे ही बचपनमें बच्चोंको तपेदिक हो जाता है। गन्दगीके कारण जिस दूधमें कीटाणु बहुत अधिक मात्रामें रहेंगे, उस दूधको उबालनेसे अवश्य ही अधिकांश कीटाणु मर जाएंगे, लेकिन इन मरे कीटाणुओंका शरीर और विष तो दूधमें ही रहेगा ऐसे दूधको पीनेसे बच्चोंको बदहजमी हो जाती है।

गायके दूधमें वसा (Fat) की मात्रा भी ऋतु, बछड़ेकी उम्र और गायके भोजन पर निर्भर है। दूधमें विटैमिन का भी उचित मात्रामें रहना आवश्यक है। जो गायें दिन-रात कोठरी में बन्द रहती हैं उनके दूधमें विटैमिन बहुत ही कम मात्रामें रहता है।

कितनी ही माताएं अपने नवजात बच्चोंको अपना स्तन पान दुर्भाग्यवश नहीं करा सकतीं और कुछ थोड़ी ऐसी भी माताएं हैं जो अपने बच्चोंको स्तन-पान कराना पसन्द नहीं करतीं। इसलिए बनावटी दूध पिलानेका सिद्धान्त तथा इसका ज्ञान आवश्यक वस्तु होरहा है। इस लेखमें इन्हीं सिद्धान्तोंपर विचार किया जायगा तथा उनको किस प्रकार कार्य रूपमें परिणित करना होगा, इसपर भी विचार होगा। परन्तु इसके पहले कुछ अन्य बातें भी जानना आवश्यक है।

सबसे पहले यह भली भांति समझ लेना चाहिए कि शिशुओंको बनावटी भोजन देनेमें कोई विशेष अड़चन तो नहीं आती। लोग इस बातपर शुरूमें जोर इसलिए देते हैं कि बहुधा लोगोंमें यह विचार पाया है कि शिशुओंको भोजन देना कठिन विषय है और इस विचारके कारण इस विषयपर उचित ध्यान नहीं देते। कुछ लोगोंके विचार हैं कि भोजनकी कई रीतियां हैं और प्रत्येक डाक्टरकी रीति तथा मत भी पृथक् ही है। वास्तवमें मुख्य दो प्रकारकी रीतियां हैं;—(१) वह रीति जिसमें दूधमें पानी मिलाकर हल्का किया जाता है, और तब क्रीम तथा शक्कर इसमें डाली जाती है जिससे घोलकी बनावट मां के दूध की बनावटके अनुसार प्रत्येक विभक्तियोंमें % बराबर अंशमें समान हो जाय। इसे "प्रतिशत रीति" कहते हैं। (२) रीति का नाम कुछ टेढ़ा है। दूध और पानीका घोल जिसमें कारबोहाइड्रेट (Carbohydrates) मिलाया जाता है इस रीतिसे दूधमें पानी और शक्कर मिलाकर घोल हल्का बनाया जाता है परन्तु शक्कर और पानीकी मात्रा बच्चे की अवस्था (उम्र) के ऊपर निर्भर होती है। इस रीतिमें मांके दूधकी प्रतिशत बनावटसे कुछ सम्बन्ध नहीं रहता।

अधिकांश लोगोंके मतानुसार दूसरी रीति अधिक उत्तम है। इस रीतिसे पोषित बच्चे की तोल तथा स्वास्थ पहली रीति के अनुसार पोषित बच्चेसे अच्छा या कमसे कम बराबर अवश्य रहता है। यह रीति बहुत सरल और बहुत ही अच्छी है। क्योंकि यह रीति सीखने तथा सिखलाने वाले, दोनोंके लिए ही बहुत ही सुगम है। अंतिम बात यह है कि इस रीति के द्वारा पले बच्चोंमें अधिक चर्बीके कारण बदहजमी (fat-dyspepsia) की शिकायत नहीं होती है जो "प्रतिशत वह रीति" में प्राय; हुआ करती है। इन्हीं कारणोंसे केवल दूसरी

रीति ही यहां बतलाई जायगी।

साधारण सिद्धान्त

यह रीति ६ सिद्धान्तों पर निर्भर है;—

(१) शरीरके प्रति पौंड तोलके लिए २४ घण्टेमें बच्चे को १½ आउन्स गायके दूधकी आवश्यकता होगी।

(२) बच्चे को २४ घण्टेमें ⅛ से १/१० आउंस शक्कर प्रति पौंड शरीर की तोलके आवश्यक होगी।

(३) बच्चेके प्रति पौंड शरीरकी तोलके लिए २४ घण्टे में २ से २½ आउंस तरल पदार्थ की आवश्यकता होगी।

(४) दूधकी ताप उत्पादक शक्ति (caloric value) प्रति आउंस प्रायः २० कैलोरी है।

(५) शक्करकी ताप उत्पादक शक्ति (caloric value) प्रति औंस प्राय; १२० कैलोरी है।

(६) बच्चेके प्रति पौंड शरीरके तोलके अनुसार ४५ से ५० कैलोरी देने योग्य भोजनकी आवश्यकता है।

इन्हीं सिद्धान्तोंके अनुसार साधारणतः १० पौंड तोल वाले बच्चेके लिए २४ घण्टेमें भोजनकी आवश्यकता इस प्रकार होगी।

दूध.........१½ × १० = १५ आउंस।
शक्कर......... ⅛ × १० = १¼ आउंस।
पानी.........२½ × १० = २५ आउंस।

लेकिन, ऊपरकी दूधकी मात्रामें १५ औंस पानी है इस लिए बच्चेके लिए केवल १० औंस पानी और चाहिए जिसे दूधमें मिलानेसे कुल २५ आउंस की आवश्यक मात्रा हो जाय।

दूध...............१५ आउंस।
शक्कर..............१¼ आउंस।
पानी............. १० आउंस।

इस भोजनमें दूधसे ३०० कैलोरी शक्ति प्राप्त होती है, १५० कलोरी शक्करसे मिलती है और पानीमें यह नहीं होती। इस लिए २४ घण्टेमें कुल ४५० कैलोरी शक्ति मिलेगी। इस प्रकार बच्चेके प्रति पौंड तोलसे ४५ कैलोरी शक्ति मिलती है।

दूसरे प्रकारके भोजन की बनावट इस तरह हो सकती है। इसमें प्रति पौंड शरीरके तोलके लिए १/१० आउंस शक्कर मिलेगी। वह इस प्रकार है;—

दूध...१½ × १० = १५ आउंस इससे ३००कैलोरी मिलेगी
शक्कर..१/१० × १० = १ आउंस इससे १२० कैलोरी मिलेगी
पानी...१० आउंस।

इस भोजनसे कुल ४२० कैलोरी शक्ति मिलती है परन्तु इसमें बच्चे की उम्रके अनुसार पूरी कैलोरी शक्ति बच्चे को नहीं मिलती, क्योंकि ४५० कैलोरीकी आवश्यकता है। इस कमी-को पूरा करनेके लिए दो उपाय हैं;—शक्करकी मात्रा बढ़ाई जा सकती है या शक्करकी मात्रा उतनी ही रख कर दूधकी मात्रा इतनी बढ़ा दी जाय कि आवश्यक कैलोरी-शक्ति मिल सके। इसलिये २ आउंस दूध बढ़ा दिया जा सकता है और तब २ आउंस पानी कम करना पड़ेगा जिससे कुल भोजन २५० आउंस ही रहे।

दूध ....१७ आउंस
शक्कर...............१ ,,
पानी...............८ ,,

इस भोजनसे ४६० कैलोरी शक्ति मिलती है जो प्रति पौंड ४६ कैलोरीके हिसाबसे पड़ता है।

ऊपर दोनों भोजनोंमें कैलोरी शक्ति तो बराबर ही मिलेगी लेकिन एकमें शक्कर अधिक है और दूसरेमें दूध। दोनों ही बराबर गुणके हैं और साधारण बच्चेके लिये किसी एकको काममें लाना चाहिये, परन्तु यदि बच्चेको पतले दस्त आने लगें तो तब कम शक्कर वाला भोजन देना चाहिये। ⅛ आउंस प्रतिपौंड शरीरके तोलपर दिये जाने वाले भोजनमें एक विशेषता है। ⅛ आउंसका १ ड्राम होता है और एक चाय वाला चम्मच भर शक्करकी तोल १ ड्राम होगी। (चम्मच केवल चौरस भरा जाय, यों तो यदि जितनी शक्कर चम्मचसे एक बार उठ सके उठाई जाय तो वह १ ड्रामसे-कहीं अधिक होगी) अधिक शक्करकी मात्रा वाला भोजन देनेमें बच्चेको प्रति पौंड शरीरके तोलके हिसाबसे २४ घण्टेमें १½ आउंस दूध चाहिये तथा मुंह तक भरा १ चाय वाला चम्मच बराबर शक्कर २४ घण्टेमें प्रति पौंड शरीरके तोलके लिए चाहिए तथा पानी इतना डालना चाहिये कि कुल २½ आउंस प्रति २४ घण्टेमें बच्चेको प्रति पाउंड तोलके अनुसार पीनेको मिले।

सभी बच्चे इतनी मात्रामें भोजन नहीं ले सकते उस दशामें घोलमें पानीकी मात्रा कम कर दें और केवल पानी ही बीचमें पिला दें तो कुछ हानि नहीं होगी। आज कल कुछ लोगोंका मत है कि गायका दूध बिना पानी मिलाए

ही पिलाना चाहिए। * यह विधि सरल और सस्ती है परन्तु दूध को पिलानेसे पहिले उबाल लेना आवश्यक है। इससे न केवल कीटाणुओंका ही नाश होता है बल्कि उबालनेके बाद बच्चा इसे जल्द पचा डालता है। शक्कर के लिए साधारण घरेलू शक्कर काममें लानी चाहिए।

सूखे दूधसे भोजन

बच्चोंको दूध पिलानेमें अब सूखे दूधका इस्तेमाल बहुत होता है और खर्चका ध्यान रखने पर यह सूखा दूध बड़े काम का है। बच्चोंको सूखा दूध पिलानेके लिये प्रत्येक कम्पनी प्रायः तीन प्रकारकी वस्तु बनाती हैं:—

(१) सूखा दूध जिसमें से मलाई नहीं निकली रहती। (Full cream dried Milk)

(२) सूखा दूध जिसमेंसे आधी मलाई निकली रहती है (Half cream dried Milk)

(३) सूखा दूध जिसको मां के दूधके समान बनाया रहता है (Humansied dried Milk)

पूरी मलाई वाले सूखे दूधके सम्बन्धमें वही बातें लागू होगीं जो ऊपर गायके दूधके लिये लिखी गई हैं। १ ड्राम पूरी मलाई वाले गाय के सूखे दूधसे कैलोरी शक्ति उतनी ही मिलेगी जितनी १ आउंस गायके दूधसे। अन्तर केवल यह है कि सूखे दूधमें पानी कुछ नहीं होगा। इसलिये ऊपरके १½ आउंस गायके दूधके स्थान पर १½ ड्राम सूखा दूध काममें लानेसे बच्चेको उचित मात्रामें प्रोटीन, चर्बी (fat) तथा लवण मिल सकेंगे। १० पौंड तोलके बच्चेको २४ घण्टे में इस प्रकार भोजनकी आवश्यकता होगी:—

सूखा दूध..........१५ ड्राम
शक्कर..............१½ आउंस
पानी ....२५ ,,
कैलोरी शक्ति ४५० होगी।

कुछ बच्चे गायके प्राकृतिक दूधकी कुल वसाको या पूरे मलाई वाले सूखे दूधकी कुल वसाको नहीं पचा सकते। इस लिये आधा मलाई वाला सूखा दूध बड़े कामका है। कुछ दिन पहिले तक सूखा दूध बनाने वाले, दूधसे थोड़ी मलाई निकाल कर बाकीको आधा मलाईका सूखा दूध करके बेचते थे, परन्तु अब सरकारी कानून बन गया है जिससे आधा मलाई निकाल कर उचित मात्रामें शक्कर मिला कर ही तैय्यार सूखे दूधके डिब्बों पर "आधा मलाई" का सूखा दूध लिखा जाता है। परन्तु (Messrs Cow & Ltd.Gate) अब भी पुराने तरहके दूधको बनाकर बेचती है लेकिन डिब्बे पर (Special Half cream Cow & Gate) लिखते हैं। इस दूधमें शक्कर नहीं मिली रहती है और प्रति ड्राम १४ कैलोरी शक्ति देता है। शक्कर मिले आधे मलाईके सूखे दूधसे शक्करके कारण प्रति ड्राम २० कैलोरी शक्ति मिलती है।

आधी मलाईके विशेष दूधको बच्चोंको पहले शुरूमें देना चाहिये और जब बच्चा १ माह या ६ सप्ताहका हो जाय तो साधारणतः पूरे मलाईके सूखे दूधको देना चाहिये। यदि पचने में कुछ गड़बड़ी हो तो बदल कर साधारण आधी मलाईका दूध देना चाहिये (Special Half cream Cow and Gate) में १४ कैलोरी शक्ति कम है इसलिये बच्चेको कुछ अधिक मात्राकी आवश्यकता होगी। प्रति पौंड तोलके लिये २४ घण्टेमें २—२½ ड्राम विशेष सूखा दूध देना पड़ेगा। शक्कर और पानीकी मात्राका हिसाब पहलेकी भान्ति लगाना पड़ेगा। यदि साधारण ब्रेण्डकी आधी मलाईका सूखा दूध काममें लिया जायगा तो मात्रा उतनी ही होगी जितनी पूरे मलाईके दूधकी अर्थात् प्रति पौंड तोलके लिये २४ घण्टे में १½ ड्राम।

मां के दूधके समान बने दूधका भी काफी इस्तेमाल होता है और यह अच्छा काम देता है। यह ध्यान रखना चाहिये कि इसमें शक्कर नहीं मिलानी पड़ती है। प्रति ड्राम २० कैलोरी शक्ति मिलती है इसलिये कुल मात्रा जाननेके लिये बच्चेकी कैलरी शक्तिकी आवश्यकताको २०से भाग देना पड़ेगा और जो संख्या होगी वही ड्राममें बच्चेको २४ घण्टेमें देनी पड़ेगी। जैसे ८ पौंड तोलके बच्चेको २४ घण्टे में प्रायः ४०० कैलोरी चाहिये; इसलिये ४०० ÷ २० = २० ड्राम। पानीकी मात्रा ८ × २½ = २० आउंस है जिसमें ऊपरकी मात्राका सूखा मां के समान दूध दिया जायगा।

दूध बनाने वाले डब्बेमें नापके लिये १ चम्मच बन्द कर देते हैं। इसी चम्मचसे नापना चाहिये और घरके चायके चम्मचसे नहीं नापना चाहिये एक और रीति दूध पिलानेकी है

* कुछ छोटे बच्चोंपर हमारा अनुभव है कि खालिस गाय का दूध पिलाते रहनेसे अक्सर बदहज्मी की शिकायत हो जाती है। स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य

जो बहुत सरल और बड़े कामकी है। इसे खट्टा दूध (Caetic Acid Milk) कहते हैं। इसे बनानेके लिये १ पाइन्ट दूधमें १ आउंस चीनी डाली जाती है। इस दूध-शक्करके घोलको उबाल आने पर ठण्डा किया जाता है। ठण्डा होने पर ६० बून्द लैक्टिक ऐसिड (British pharma copiea Lactic Acid 75%) बूंद दूधमें डाला जाता है और बराबर हिलाते हैं, अब खट्टा दूध तैय्यार हो जाता है जिसमें प्रति आउंस २६ कैलोरी शक्ति मिलती है। इस दूधको पिलानेके लिये, बच्चेकी कैलोरीकी आवश्यक मात्राको २६ से भाग देना पड़ता है। भाग-फल की संख्याके बराबर आउंसमें उपरोक्त खट्टा दूध २४ घण्टेमें पिलाना चाहिये।

इस रीतिमें पानी काफी नहीं है इसलिए बीच बीच में पानी भी पिलाना पड़ता है। सभी हालातमें और विशेष कर गर्मीमें पानी तो बीच बीचमें पिलाना ही चाहिये। माताओंको खट्टा दूध बनानेकी रीति बतलाते समय यह अवश्य कह देना चाहिये कि दूध खट्टा होकर दही बन जायगा अन्यथा मातायें वापस आकर शिकायत करेंगी कि दूध तो फट जाता है।

विटैमिन

प्रोटीन, वसा और लवण आदिके साथ विटैमिनकी भी बड़ी आवश्यकता है जिनमें, ए.सी. और डी. विटैमिन बहुत आवश्यक हैं। साधारण बच्चोंमें दूसेर मासकी अवस्थासे विटैमिन भी ए. और डी. देना शुरू करना चाहिये। दोनों ही कॉड मछली के तेलमें मिलते हैं, इसलिये कॉड लिवर ऑयलको नित्य दो बार ५ बूंदसे शुरू करना चाहिये और बढ़ाते बढ़ाते ६ मासकी अवस्था तक पहुंचने पर २४ घण्टेमें नित्य २ चायके चम्मच भर देना चाहिए। इस मात्रामें ३, ६०० अन्तर्राष्ट्रीय एकाई (Inetrntional Unit) में ए. विटैमिनहोगी और ५१० अन्तर्राष्ट्रीय एकाई विटैमिन डी. होगी, इतने डी. विटैमिनसे सूखा (Rickets) रोग न होगा। तेलको दूध पिलानेके पहले चम्मचसे पिलाना चाहिये। कभी-कभी बच्चे तेल हजम नहीं कर पाते, उस हालतमें बनी हुई ए. और डी. विटैमिनकी दवायें देनी चाहियें। पर साधारणतः तेल इन विशेष दवाओंसे अच्छा होता है। विटैमिनसे सूखा रोग नहीं होता है और यह संतरेके रस में मिलता है। सन्तरेका रस पहले मासकी अवस्थासे मिलना चाहिये। शुरूमें १ चायका चम्मच भर देना चाहिये और धीरे धीरे बढ़ाते रहना चाहिये जिससे ६ मास तकके बच्चेको नित्य आधे आउंस रस मिला करे। इतनी मात्रामें ७, ५ मिलीग्राम ऐस्कोबिक ऐसिड (7. 5 M. grum Ascrobic Aeid) होता है जो सूखा रोगसे बचानेको काफी है। संतरेका रस न मिलने पर दूनी मात्रामें टमाटरका रस देना चाहिये। *

पहले दिन और बादमें

ऊपर बच्चेको दूध पिलानेका साधारण सिद्धान्त दिया गया है, पर दो बातें विशेषकर बतलानी हैं। पहिली बात तो यह है कि प्रारम्भके कुछ दिनों तक बच्चे को पूरी कैलोरीका भोजन देना उचित नहीं है; इसलिए हिसाब लगानेसे आये परिणाम की आधी मात्रा देनी चाहिए। दूसरी बात यह है कि दूध छुड़ानेका समय तब है जब बच्चा ६ मासका हो जाय या जब उसका तोल करीब १५ पौंड हो जाय। इस अवस्था तक पहुंचने के पहले पानीकी मात्रा दूधसे धीरे धीरे कम करते रहना चाहिए, जिससे इस उम्र तक पहुंचते २ पानी मिलाना छूट जाय और खाली दूध ही दिया जाय। शक्कर अब भी उचित मात्रामें दूधमें मिलाई जाय। साधारणतः ६ मासकी अवस्थामें ६ औंस खाली दूध, शक्करके साथ दिया जा सकता है। परन्तु यदि पानी मिलाना पड़े तो ८ औंससे अधिक मात्रा नहीं होनी चाहिए।

परिणाम

यह ध्यान रहे कि सभी बच्चोंकी प्रकृति भिन्न २ होती है। कुछ दुबले पतले, कुछ फुर्तीले, और कुछ बहुत रोने वाले होते हैं। ऐसे बच्चोंको हिसाबसे निकली मात्रासे कुछ अधिक भोजन की आवश्यकता होगी। कुछ बच्चे मोटे और चुप्पे होते हैं। इन्हें कुछ कम भोजन चाहिए। अन्तमें सब बच्चोंके लिए इन बातोंका ध्यान रखना चाहिए :—**भोजन, तोल, तथा बच्चेकी साधारण हालत**। भोजनके सम्बन्धमें याद रखिए कि उचित मात्रामें प्रोटीन, वसा और कारबोहाइड्रेट हों और कैलोरी शक्ति पूरी मिल रही हो वजनमें ध्यान रखिए कि प्रति सप्ताह ५ औंस वजन बढ़ रहा है कि नहीं? बच्चेकी साधारण अवस्था ध्यानमें रखिए कि बच्चे की तृप्ति हो जाती है और शरीरकी लाली मांस वगैरह अच्छा बन रहा है यदि यह तीनों बातें सन्तोष जनक हैं तो भोजन भी ठीक मिल रहा है ऐसा ही समझें।

---

* टमाटर का रस इतना लाभदायक सिद्ध नहीं हुआ।

हरिशरणानन्द

क्या अन्य ग्रहों में जीवन सम्भव है ?

[लेखक—श्री सुरेश सरन अग्रवाल एम. एस. सी]

यह प्रश्न उतना ही पुराना है जितना कि मनुष्य स्वयं है। सभ्यताके उदयसे अब तक मनुष्य ग्रहोंको देखकर और पहचानकर यही प्रश्न करता है—'क्या इनमें जीवन सम्भव है' ? विज्ञान इसका उत्तर देनेकी सर्वदा चेष्टा करता है परन्तु अभी तक निर्णयकारी उत्तर न दे पाया, शायद दे पाये। परन्तु, हां ! इसके उत्तर की गुत्थियां सुलझती जाती हैं कुछ नई गुत्थियोंका पड़ जाना इस विषयको और भी रोचक एवं उच्च बना देता है।

उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर एक सांसमें देना असम्भव है। इस अंकमें हम उत्तर देनेके स्थान पर दो नवीन प्रश्नोंका पहले उत्तर देंगें। इन दो प्रश्नोंके उत्तरसे हमारा मुख्य प्रश्न शीघ्र ही हल हो जाएगा। वे दो प्रश्न इस प्रकार हैं :—(१) जीवन किन दशाओंमें सम्भव होता है ? (२) यह सम्भावना किन साधनोंसे परखी जाती है ? नीचे क्रमशः इन दो प्रश्नोंके विस्तृत उत्तर दिये जायेंगे।

सम्भावना की दशाएं

जीवन किन दशाओंमें सम्भव होता है ? पहले तो हमें यही निश्चित रूपसे मालूम नहीं कि पृथ्वी पर ही जीवन कैसे सम्भव हुआ ? मान लें कि किसी ग्रह या तारे आदिमें भी पृथ्वी जैसी दशाएं हैं तो क्या हम निर्भीकता से कह सकते हैं कि वहां भी पृथ्वी-सदृश जीवन होगा, इसके विपरीत यदि किसी अन्य स्थान की दशाएं उनसे भिन्न हैं जिनसे पृथ्वी पर जीवन सम्भव हुआ है, तो क्या यह परिणाम सत्य होगा कि वह स्थान जीवनसे शून्य है ? पृथ्वी पर जितने जीव हैं, उनके सेल्स (cells) का अनिवार्य अंग कार्बन है; हो सकता है किसी दूसरे लोकमें अनिवार्य अंग सिलीकन हो और इसके कारण वहां एक उच्च तापक्रम पर भी, जिसपर कि जीवन और वनस्पतिका अस्तित्व पृथ्वीमें असम्भव होता, जीवन तथा वनस्पति हो सकते हैं। यहांपर हमें जीव-शास्त्र Biology की सहायता लेनी होगी और देखें कि वह जीवन की बाबत हमें क्या शिक्षा देता है।

पृथ्वी और सूर्य के तत्त्व

समस्त प्रकारके द्रव्य-कार्बनिक अकार्बनिक या जीवित-भिन्न भिन्न तत्वोंके परमाणुओं (atoms) से बने हैं। रसायन शास्त्र हमें बताता है कि तत्त्वोंकी संख्या ९२ है। इन तत्वोंके परमाणु वह ईंटें हैं जिनसे सारा विश्व-रूपी विशाल मकान बनता है। पाठकोंको शायद आश्चर्य हो कि ९२ तत्त्वोंसे कैसे ऐसी महान् और सुन्दर वस्तु बन जाती है, परन्तु क्या यह कम आश्चर्यकी बात है कि केवल १६ स्वरों और ३६ व्यञ्जनोंके संयोगसे संस्कृत एवं हिन्दी जैसी महान् भाषायें और इनके साहित्य बन गये। अतएव पृथ्वी पर हम जो कुछ देखते हैं—ईंट पत्थर, हीरे, जवाहरात, मोती, लकड़ी, कोयला, तेल इत्यादि वह इन ९२ तत्त्वोंमें से कुछ तत्त्वोंके संयोगका परिणाम है। परन्तु यही तत्त्व सूर्य एवं निकटस्थ तथा दूरस्थ तारों आदिमें पाये जाते हैं। कोई तत्त्व ऐसा नहीं है जो सूर्य पर तो हो और पृथ्वी पर न हो। हां हिलियम् नामक तत्त्वका पता विलियम रैमजे ने भारतवर्षमें लगाया था, सूर्यमें इसका पता पहले लगा, परन्तु यह अब सर्व विदित है कि मोनाजाइट रेत जो ट्रावनकोर में मिलती है उससे एवं अन्य पदार्थोंसे हिलियम् प्राप्त की जा सकती है। यह नहीं, जो तत्त्व बहुमात्रामें पृथ्वीमें होते हैं वही सूर्यमें हैं और जो पृथ्वी में कम मिलते है वह सूर्यमें भी कम ही मिलते हैं। तत्त्वोंकी पृथ्वीमें एवं सूर्यमें अत्यधिकताकी तुलना नीचे की गई है:—

वर्ग	पृथ्वी	सूर्य
१	लोहा	मैगनीशियम
	मैगनीशियम	सोडियम
	अलुमीनियम	लोहा
	निकल	पोटेशियम
	कैलीशयम	कैलीशयम
	सोडियम	अलुमीनियम
	पोटेशियम	

२	टिटैनियम	मैंगनीज
	क्रोमियम	निकल
	मैंगनीज	क्रोमियम
	कोवाल्ट	कोबाल्ट
		टिटैनियम
३	ताम्र	बनैडियम
	वनैडियम	ताम्र
	जस्ता	जस्ता

उपर्युक्त सारिणीमें तत्त्वोंको ३ वर्गोंमें बांटा गया है। प्रथम वर्ग केवल दूसरे वर्गोंके तत्त्वोंकी अपेक्षा दस गुनी मात्रा में पाये जाते हैं और दूसरे तीसरेकी अपेक्षा दस गुने। दोनों स्थानोंमें एक समान धातुएं हैं और तीन वर्गोंमें वर्गीकरण भी लगभग एक सा है। हां कुछ अपवाद अवश्य है जिसकी चर्चा आगे की जायगी, परन्तु तब भी समानता इतनी भारी है कि सूर्य और पृथ्वी दोनोंका एक ही आरम्भिक द्रव्यसे निकलना विदित होता है।

तत्त्वों की रचना

अब तक तो वैज्ञानिक किसी पदार्थ में परमाणुको उसका सूक्ष्मतम अङ्ग मानते थे। परन्तु वर्तमान अनुसन्धानोंसे इसकी अपूर्णता विदित होती है। विभिन्न परमाणु स्वयं कई अन्य प्रारम्भिक कणोंसे बने हैं यथा—प्रोटोन, न्यूटोन और इलैक्ट्रोन आदि। प्रोटोनमें विद्युतका धनावेश होता है, इलैक्ट्रोनमें ऋणावेश और न्यूटोन उदासीन है। एक चौथा कण और है—पालिट्रोन इसका पता अभी लगा है, जिसका भार और आवेश इलैक्ट्रोन के समान होता है परन्तु आवेश ऋण नहीं धन होता है। आज कल एक परमाणुको एक मण्डल माना जाता है जिसके केन्द्रमें प्रोटोन और न्यूटोनसे बना न्यूकलियस होता है जिसमें ही परमाणुके लगभग सम्पूर्ण भार का समावेश होता है और इस न्यूकलियसके बाहर इलैक्ट्रोन इतने होते हैं जिनसे सारा परमाणु विद्युतके विचारसे उदासीन रहता है। इलैक्ट्रोन न्यूकलियसके गिर्द वृत्तोंमें घूमते रहते हैं। सबसे सरल परमाणु हाइड्रोजन गैसका है। इसके न्यूकलियस में केवल एक प्रोटोन होता है और इसके बाहर एक ही इलैक्ट्रोन होता है। दूसरा सरल परमाणु हिलियमका है जिसके न्यूकलियसमें दो प्रोटोन तथा दो न्यूटोन होते हैं और इनके बाहर इलैक्ट्रोन होते हैं। इस परमाणु का भार हाइड्रोजनके परमाणुके भारसे लगभग चौगुना है। इसी प्रकार नये परमाणु बनते जाते हैं और सबसे भारी तत्त्व यूरेनियम जिसकी संख्या ६२ हैं, इसके मण्डलमें ६२ इलैक्ट्रोन होते हैं। इससे स्पष्ट है कि अखिल विश्वमें परमाणु एक ही प्रकार के मिलेंगे और यह भी प्रकट है कि सूर्य पर विद्यमान तत्त्वोंके परमाणु पृथ्वी पर विद्यमान तत्त्वोंसे भिन्न क्यों हों ? जब एक ही रचनाके परमाणु सर्वत्र पाये जायें तो उन परमाणुओंमें जो नियम एक स्थान पर लागू है वही सर्वत्र होगा। उदाहरणार्थ यदि हाइड्रोजनके दो परमाणु और आक्सीजन के एक परमाणुसे पानी का एक अणु पृथ्वी पर जो बनता है, वह अन्य लोकोंमें भी वैसा ही होगा। यह नहीं हो सकता कि और किसी जगह पर हाइड्रोजन के ३ या ४ परमाणु आक्सीजनके एक परमाणुसे सम्पर्कमें आकर कोई स्थिर यौगिक (Compound) जलादि बनालें। वास्तवमें हमारा यह निष्कर्ष अति महत्वपूर्ण हैं। यह हो सकता है कि अन्य लोकोंमें जीवन और वनस्पति पृथ्वीसे भिन्न प्रकारके हों परन्तु, वह यौगिक जिनसे उनके पृथक् २ सैल (Cells) बनते हैं वही होंने चाहिये, जो पृथ्वी पर भी हो सकते हैं।

पृथ्वी पर जो जीवनका अस्तित्व है उसमें कार्बन नामके तत्त्वका एक विशेष स्थान है क्योंकि अन्य किसी भी तत्त्वकी अपेक्षा इसमें अपने एवं अन्य प्रकारके तत्त्वोंके संयोगमें आनेकी शक्ति कहीं ज्यादह है। यह कार्बन नाम धारी अणु (Molecules) ही हैं जो सारे जीवित प्राणियोंके आधार हैं। केवल सिलीकन ही एक दूसरा तत्त्व ऐसा है जो विचित्र अणु बना सकता है, परन्तु कार्बन नाम धारी अणु सिलीकन नाम धारी अणुओंकी अपेक्षा कहीं ज्यादह पेचीदा हैं। इसीकारण कार्बनिक रसायन नामसे रसायनकी एक महानतम शाखा बनी है जो स्वयं अध्ययन का एक सुन्दर विषय है।

तापक्रम

यह परिणाम हमारे प्रश्न (जीवन किन दशाओंमें सम्भव है ?) का उत्तर देनेमें पथप्रदर्शकका काम देगा। प्रकटतया जीवनकी सम्भावनाके लिये प्रथम आवश्यक है तापक्रम, जो न बहुत ऊंचा हो न बहुत नीचा। प्रत्येक रासायनिक यौगिकका विच्छेदन उसको ताप पहुंचानेसे किया जा सकता है। हां भिन्न भिन्न पदार्थोंके लिये तापकी भिन्न भिन्न मात्रा चाहिये। बहुत गरम नक्षत्रोंमें तो कोई यौगिक मिल ही नहीं सकता। सूर्यमें, जिसका तापक्रम ६०००° श० है बहुत थोड़े ही यौगिक—जो

विच्छेदका महा विरोध करते हैं—पाये जाते हैं। जैसे—सिलीकन, क्लोराइड और सायनोजन। सूर्य-कलंकका तापक्रम १०००° लगभग कम होता है और वहां टिटैनियम तथा टङ्कटके आक्साइड और मैगनीशियम तथा कैल्शियमके हाइड्राइड पाये जा सकते हैं। नियम यह है कि किसी पदार्थके अणुकी रचना जितनी जटिल होगी उतनी ही जल्दी, तापक्रमके बढ़ाने पर उसका विच्छेद होता है। अब जीव-द्रव्य (Living matter) के अणुकी जटिलताका तो कुछ ठिकाना ही नहीं और वे इतने कोमल होते हैं कि जरा सी ही गर्मी उनका काम तमाम कर देती है; एतदर्थ यह मान लेना अनुचित न होगा कि १५०° फा० तापक्रमके ऊपर जटिल जीवाणुओंका अस्तित्व असम्भव है। ऊंचे तापक्रमों पर तो जीवनकी असम्भवता ज्ञात हो गई, किन्तु नीचे तापक्रमोंका मुकाबला बहुतसे जीवाणु कर सकते हैं। नीचे तापक्रमों पर जीवनका नाश आवश्यक तो नहीं लेकिन उसमें शिथिलता या बेहोशी आ जाती है। अतएव जीवनकी सम्भावनाके लिये सर्व प्रथम आवश्यकता साधारण तापक्रम की है। इससे हम तुरन्त कह सकते हैं कि समस्त तारों पर जीवन असम्भव है। फलतः हमें जीवनकी खोज ग्रहों या इसी प्रकारके क्षुद्र पिण्डों (Planetary bodies) में करनी चाहिये जिनका तापक्रम तारोंसे कहीं कम है।

आक्सीजन और पानी

तदोपरान्त हम दूसरी आवश्यकता पर आते हैं। यह विदित है कि वह विचित्र चीजें जो वनस्पति और जीवोंसे बनती हैं तीन श्रेणियोंमें बांटी जा सकती हैं—कार्बोहाइड्रेट, फैट और प्रोटीन। साधारण हरा पौधा कार्बोहाइड्रेटके निम्नलिखित उपाय से बनता है। वह वायुसे कार्बन डाइआक्साइड लेता है और पानीके संयोगसे कार्बोनिक एसिड बनाता है। सूर्यकी धूपके प्रभावसे और अपने अन्दर एक हरे रङ्गके पदार्थ क्लोरोफिल के कारण उससे फार्मिकएसिड बनता है। इस नवीन एसिडसे फिर कार्बोहाइड्रेट बनता है और फिर उससे फैट तथा प्रोटीन बन जाते हैं। सारी वनस्पतियोंका जीवन कार्बन डाइआक्साइड पर अवलम्बित है। और कार्बन डाइअक्साइडकी मात्रा वायुमण्डल में तो ०.०३ या ०.०४ प्रतिशत है। लेकिन वायुमण्डलमें इतनी मात्रा सर्वदा बनी रहनेका कारण जलने (Combustion) की क्रिया है। जलनेमें आक्सीजन और कार्बनका संयोग होता है। हम जानते हैं कि प्रत्येक जीवित पदार्थ सर्वदा काम करते रहते हैं और एतदर्थ शक्तिका ह्रास करते हैं। यह शक्ति आती कहांसे है? इसका यह स्रोत जलनेकी क्रियासे ही है। फलतः जीवनके लिये दूसरी आवश्यक वस्तु आक्सीजन गैस है। शक्तिका एक और स्रोत सन्धान-क्रिया (Fermentation) है लेकिन सन्धानसे शक्ति इतनी कम मिलती है कि उससे सक्रिय जीवन तो सवर्था असम्भव है।

जीवनकी सम्भवताके लिये तीसरी आवश्यक वस्तु पानी है जो द्रव रूप या भाफ रूपमें मिलता है। वास्तवमें पानीकी आवश्यकता सबसे अधिक है; इसके बिना यद्यपि जीवनका नाश तो नहीं होता, परन्तु शिथिलता आजाती है और उन्नति तो कदापि होती ही नहीं; अब हमारा पहला प्रश्न लगभग पूरा हल हो गया। जीव शास्त्रके विद्वान् यही बताते हैं कि विश्वमें जहां कहीं भी उचित अवस्थायें या दशायें होंगी वहां जीवनकी सम्भवता अनिवार्य है।

परखने के साधन

दूसरा प्रश्न था कि जीवनकी सम्भावना किन साधनोंसे परखी जाती है? यह प्रश्न हमें गूढ़ भौतिक-विज्ञानमें ढकेल कर ले जाता है जो 'विज्ञान' के सामान्य पाठककी पहुंचके बाहर है। अतएव हम साधनके सरल सिद्धान्त बतला कर ही सन्तोष कर लेंगे। ग्रहों पर जीवनकी सम्भावना जाननेके पहले हम यह जानें कि ग्रहोंके अपने अपने वायुमण्डल भी हैं या नहीं और उनके धरातल पर तापक्रम क्या हैं?

ग्रहों के वायुमण्डल

वायु विभिन्न गैसोंका मिश्रण होता है। प्रत्येक गैसके अणु के चलनेकी गति भौतिकके प्रसिद्ध सिद्धान्त अणुवादके अनुसार होती है। इस गतिको हम मालूम कर सकते हैं और गणना करके वह गति भी मालूम कर सकते हैं जिस पर अणु चलकर पृथ्वी को छोड़ सकते हैं। यदि किसी पत्थरको हम ७.१ मील प्रति सेकेण्ड या इससे अधिक गतिसे फेकें तो वह भूमण्डलके परे ही जाकर गिरेगा, कहां गिरेगा यह कौन जान सकता है? सर जेम्स जीन्सने गणनासे सिद्ध किया है कि यदि छूट-गति गमन गतिसे चौगुनी हो तो वायुमण्डल पचास हजार वर्षोंमें नष्ट हो जायगा। इन दो गतियोंमें जितना ज्यादह अनुपात होगा उतने ही ज्यादह स्थायी और विशाल वायुमण्डल होंगे। इस सिद्धान्त से मालुम हुआ है कि बृहस्पति, शनि, यूरेनस, और नेपच्यूनके

वायुमण्डल पृथ्वीके वायु मण्डलसे कहीं बड़े हैं; मंगलका वायुमण्डल पृथ्वीके सदृश और शुक्र, बुध तथा चन्द्रमाके वायुमण्डल नहीं के समान हैं।

वायुमण्डल जाननेके बाद उसकी रचना जाननी चाहिये। इस कामके लिये एक विशेष यन्त्र होता है स्पैक्ट्रस्कोप। इच्छित वायुमण्डलसे जाने वाली प्रकाश-किरणोंको स्पैक्ट्रस्कोपसे देखते हैं, फोटो उतारते हैं, तो फोटो पर रेखायें सी आजाती हैं। प्रत्येक तत्वकी अपनी विशेष रेखायें होती हैं। इनसे यह जाना जा सकता है कि अमुक ग्रहके वायुमण्डल में अमुक तत्त्व हैं।

तापक्रम ज्ञात करना

किसी ग्रहके धरातलका तापक्रम ज्ञात करना उसके वायुमण्डल जाननेकी अपेक्षा अधिक कठिन कार्य है। कारण यह है कि पहिले तो तापक्रम परिवर्तनशील है और फिर उन ग्रहों का वायुमण्डल होनेसे उनके तापक्रमोंमें भेद पैदा हो जाते हैं।

जितने ग्रह हैं उनमें गर्मी सूर्यसे ही पहुंचती है। फलतः जो ग्रह जितना दूर होगा उतना ही ठंडा होगा। यदि पृथ्वी को सूर्यसे पूरा एक फुट मानलें तो अन्य ग्रहोंकी इसी अनुपात में सूर्यसे दूरी इस प्रकार होगी:—

शुक्र	४$\frac{१}{२}$ इञ्च
बुध	८$\frac{१}{२}$ इञ्च
मंगल	१८ इञ्च
बृहस्पति	५ फुट
शनि	६$\frac{१}{२}$ फुट
यूरेनस	१६ फुट
नेपच्यून	२० फुट
प्लूटो	४० फुट

ग्रहों के तापक्रम नापनेके दो यन्त्र हैं—थर्मोकपिल और बोलोमीटर। यह दोनों ही विद्युतीय प्रभावसे काम करते हैं।

आगामी अङ्कोंमें सब ग्रहोंको पृथक पृथक लेकर उपर्युक्त विवरणको ध्यानमें रख कर देखेंगे कि उन पर जीवन सम्भव है या नहीं।

—०—

गर्भाधान में पुंशक्ति बढ़ाना

[लेखक—स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य]

स्त्री जब ऋतुमती होकर शुद्ध हो तो सहवाससे पूर्व एक छोटी कांचकी पिचकारीमें सोडाबाईकार्व (सज्जीखार) $\frac{१}{२}$ माशा और उसमें जल एक तोला मिला कर पिचकारी भर कर स्त्री अपनी योनीके भीतरी भागको प्रक्षालन करके पुनः सहवासमें प्रवृत्त हो। इस प्रयोग के पश्चात यदि गर्भाधान रह जाय तो निश्चय ही लड़का होता है। यह अनुभव अब तक चार स्त्रियों पर लिया जा चुका है।

इस प्रयोगमें विशेषताका कारण—वैज्ञानिकों ने अनुसन्धानसे पता लगाया है कि विश्वमें दो प्रकारकी शक्तियां काम करती हैं एक ऋणात्मक (Negative) और दूसरी धनात्मक (Positive)। अम्ल प्रधान ऋणात्मक है और क्षार प्रधान धनात्मक है। बहुत सी स्त्रियोंमें अम्लप्रकृतिकी प्रधानता रहती है बहुत सी स्त्रियां अम्लत्व ग्राही होती हैं। इसी कारण जब समागम समयमें ऋणात्मक शक्ति बढ़ रही हो तो गर्भाधानमें कन्याकी रचना होती है। यदि गर्भाधानसे पूर्व क्षारीय प्रभावसे अम्लत्वको शिथिल कर दिया जाय और धनात्मक शक्ति बढ़ा दी जाय तो गर्भाधान होने पर बालकके अङ्गों की रचना होती है। इसी सिद्धान्त पर उक्त प्रयोग आजमाया गया और इसमें सफलता मिली।

नीम

[लेखक—रमेश वेदी आयुर्वेदालङ्कार]

संस्कृत नाम

परिचय ज्ञापक नाम—सुमना (सुन्दर, मनको अच्छा लगने वाला); शीर्षपर्ण (शाखाओंके सिरों पर पत्ते गुच्छोंमें होते हैं), पवनेष्ट (वायुका प्रिय वृक्ष) कीरेष्ट (तोतों को इसका फल बहुत प्रिय होता है), काक फल (कौए भी फलोंको चावसे खाते हैं) ।

गुण प्रकाशक नाम—नियमन (रोग नियन्ता), छर्दन (वामक), सुभद्र (उत्तम लाभकारी), सर्वतोभद्र (सब प्रकारसे अथवा जिसका प्रत्येक भाग उपयोगी है), वरतिक्त, सुतिक्तक (बहुत कड़वा), वर त्वच (श्रेष्ठ गुणकारी छाल वाला), अरिष्ट (अहिंसत, इसमें कीड़े नहीं लगते) ।

हिन्दी नाम नीम । **बंगाली नाम** नीम, निम्ब, गाछ ।
मराठी ,, कडु निम । **गुजराती** ,, लिंबडो ।
अंगरजी ,, इण्डियन लिलेक, दी नीम या मार्गेसा ट्री ।
लैटिन ,, मेलिया एजेडिरेक्टा लिन ।
नैसर्गिक वर्ग नाम मिलिएसी ।

प्राप्ति स्थान—

भारतके अधिक हिस्सोंमें यह वृक्ष सब जगह बोया हुआ या बोये हुए वृक्षोंसे स्वतः उगा हुआ आम मिलता है । उत्तर पश्चिमके शुष्क जल वायुमें और लंकामें सर्वत्र बोया जाता है । हिमालयके निम्न भागोंमें कर्णाटक और दक्षिणके कुछ भागोंमें इरावती घाटीके शुष्क प्रदेशमें प्रोम जिलेमें योमा पहाड़ोंमें, बृटिश फ्रंटियर से परे और सम्भवतः वर्मा के अधिक जङ्गलों में यह जंगली वृक्ष है । देहरादून और सहारनपुर जिलोंमें जंगली और बोया हुआ दोनों रूपोंमें मिलता है शिवालिक पर्वतोंके साथ साथ आम तौर पर मिलता है और यहां पर यह प्रकट रूपमें जंगली मालूम होता है । सतलुजके पश्चिम तक मिलता है और यहां यह अपेक्षाकृत कम है आकारमें भी छोटा हो गया है । झेलमसे परे यह सर्वथा लुप्त होजाता है । कुमायुमें पांच हजार फुट तक पहुंच गया है ।

उत्तरीय और पश्चिमीय भारतमें गांवकी चौपालों, धर्मशालाओं, गांवके बाहर जोहड़ों, घरों और बगीचोंके आस पास तथा सड़कोंके किनारे बहुधा लगाया जाता है ।

कृषि—

यह बहुत प्रकारकी जमीनोंमें हो जाता है । काली कपास की जमीन पर अच्छा होता है और चिकनी मिट्टी वाली जमीन पर भी बुरा नहीं होता । शुष्क पथरीली, कम गहरी और उसके नीचे जल रहित जमीनमें यह अच्छा होता है ।

शुष्क और अपेक्षाकृत कुछ कम शुष्क जगहोंमें, जहां कि वर्षा अठारहसे पैंतालीस इञ्च तक होती है और जहांका उच्चतम तापमान १२०° फार्नहाइट होता है, यह अच्छा फूलता फलता है । अधिक ठण्डको यह बर्दाशत नहीं कर सकता ।

प्राकृतिक अवस्थाओंमें बीज जब बरसातमें जमीन पर गिरते हैं, एक दो सप्ताहमें उनसे अंकुरोत्पत्ति हो जाती है । कंटकाकीर्ण छोटी बड़ी झाड़ियां प्रारम्भमें नवजात पौदेकी रक्षा करती हैं और धीरे २ यह अपने बलपर खड़ा हो जाता है । यदि बीजों को बोकर वृक्ष तय्यार करने हों तो बीजोंको इकट्ठा करनेमें सावधानी की आवश्यकता होती है । पूर्ण पक्व हो जाने पर जुलाई के लगभग वृक्षों परसे बीज उतार लिये जाने चाहिएं, और संग्रह करनेके बाद जितना सम्भव हो शीघ्र बो दिये जाने चाहिएं । क्योंकि बीज कमजोर होते हैं इसलिये देर तक जिन्दा नहीं रह सकते ।

पहली मौसममें पौदोंकी वृद्धि साधारण रहती है । आमतौर पर सालके अन्त तक पौदेकी उंचाई चारसे आठ इञ्च तक जाती है फॉरेस्ट रिसर्च इन्स्टिट्युट देहरादूनमें किये गए परीक्षणोंसे ज्ञात होता है कि यदि पानी आदि देने का ध्यान रखा जाय और उचित हिफाजत की जाय तो दूसरी मौसम के अन्तमें दो से चार फुट और तीसरी मौसमके अन्त तक पांच से सात फुट तक पौदे की ऊंचाई पहुंच जाती है । पाले का बच्चे पौदों पर अधिक प्रभाव पड़ता है । यदि ये एक बार मर कर जमीन की समतामें पहुंच जायं तो इनमें दुबारा उगने की शक्ति नहीं रहती । जमीनमें अत्यधिक नमी ये बर्दाशत नहीं कर सकते ।

वर्णन—

एक बड़ा चालीससे साठ फुट ऊंचा सदाहरा सुन्दर छायावान् अत्युपयोगी वृक्ष है । नीमका स्तम्भ सीधा और लंबा

नहीं होता। पौधा ६ से ६ फुट होता है। शाखाएं लम्बी, फैली हुई और चौड़ा गोल हरा मुकुट सा बनाती हुई फैलती हैं। छाल उतारे जाने वाले वृक्षके आकार और आयुके अनुसार छालकी आकृति भिन्न भिन्न होती है। तीन या चार सालसे अधिक आयुके वृक्षकी कागज छालके ऊपरका स्तर चौथाई से आधे इञ्च तक भिन्न भिन्न होती है। छोटी शाखाओं की छाल चिकनी मैलेसे जामनी रङ्गकी और उस पर ½ से ⅓ इञ्चके अन्तर पर राखके रङ्गकी लम्ब अंक्षमें रेखा होती हैं। छालके अन्दरकी स्तर ताजी अवस्थामें रक्ताभ भूरी या पीली सी सफेदसे रङ्गकी और स्वादमें बहुत कड़वी होती है। बाहर की अधिक गहरे रङ्गकी स्तरमें ग्राही गुण अधिक परिमाणमें होता है। छालमेंसे चमकीले अम्बरके रङ्गकी स्वच्छ गोंद निकलती है। यह छालकी तरह कड़वी नहीं होती। पानीमें पूर्णतया विलेय है। पानीमें विलेयताके कारण यह सदा अन्दर वायुमण्डलमें बह जाती है। भारतमें कहीं कहीं यह छोटे छोटे टुकड़ोमें इकट्ठीकी जाती है। वाह्य काष्ठ कठोरभूरी, और अन्तः काष्ठ गन्ध युक्त मैलै लाल रङ्गकी अच्छी सख्त होती हैं। पत्ते आठसे पन्द्रह इञ्च लम्बे, शाखाओंके सिरे पर अधिक घने, पत्तियां नौ से तेरह, एक से तीन इञ्च लम्बी, आधे से डेढ़ इञ्च चौड़ी, मालाकार, कुछ टेढ़ी, दन्तुर, पीली हरी, एक किनारे पर दूसरेसे लम्बी होती हैं। फूल छोटे सफेद, मीठी शहदकी सी तीव्र गन्धयुक्त, पांचसे आठ इञ्च लम्बी डण्डी पर लगते हैं। गन्ध रातमें विशेष आती है और हवाके झोकोंके साथ वायु में बहती है। सुगन्धित फूलोंके गुच्छे मार्चसे मईमें निकलते हैं और फल जूनसे अगस्तमें पकते हैं; कच्चे फल हरे, पकने पर पीले हरे, चिकने, लम्बोतरे गोल, ०·५ से ०·६ इच लम्बे, मीठे और गूदा कम होता है। कच्चे फलको दबानेसे सफेद दूध सा रस निकलता है। फल पकने पर यह रस मीठे लेसदार नीरङ्ग अर्द्धठोसके रूपमें होजाता है। फलोंको निमोली या निबौली कहते हैं, बीज पिस्तेकी शक्लका प्रायः एक और कभी कभी दो भी होते हैं।

नीम सामान्यतया सदा हरा वृक्ष है। केवल शुष्क प्रदेशों में बहुत थोड़े समयके लिये यह लगभग पत्र विहीन होजाता है। उत्तरीय भारतमें पौदेकी वृद्धि अक्टूबर नवम्बरमें रुक जाती है। पुराने सब पत्तोंके गिर जाने के बाद मार्च एप्रिलमें नये पत्ते निकल आते हैं।

इतिहास—

आधुनिक अनेक वनस्पति वेत्ता नीम वृक्षका वास्तविक उद्गम स्थान भारत होनेमें सन्देह करते हैं। बहुधा बोये हुये रूपमें वृक्षकी प्राप्ति ही इसमें मुख्य कारण है। परन्तु सहारनपुर और देहरादून जिलों व शिवालिक जङ्गलोंमें यह इतने अधिक अन्दरके गहन हिस्सोंमें देखनेमें आता है कि इसकी भारतीय मौलिक उत्पत्ति सन्देहास्पद नहीं रहती और वहां पर विश्वास करना असंगत जान पड़ता है कि अधिक या कम दूरी पर बोये हुये वृक्षोंसे इसका विस्तार उन जङ्गलोंके मध्य तक हो गया हो। यह तो निर्विवाद है कि दूसरी शताब्दी ईस्वी पूर्व अर्थात् चरक तथा सुश्रुतके जमानेसे यह हिन्दुस्तानमें औषधोपयोगी द्रव्य रूप में व्यवहार किया जा रहा है। दोनों ग्रन्थकार इसके ताजे पत्तों और छालको कषाय आदि विभिन्न रूपोंमें इस्तेमाल करते हैं। जिससे मालूम होता है कि उस कालमें यह सुगमतासे प्राप्य था और आम लोगों या चिकित्सकों की पहुंचमें था। यद्यपि निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता कि तब यह केवल बगीचों में ही लगाया हुआ मिलता था या जङ्गलोंमें स्वयं लगा हुआ फिर भी अनुमान होता है कि बगीचोंमें बोये हुये वृक्षोंसे निकलकर यह बस्तियोंके आस पास फैल चुका होगा।

उपयोगी भाग—

त्वक्, मूलत्वक्, कच्चे फल, बीज और उनसे निकलने वाला तेल, पुष्प, पत्र, काष्ठ, निर्यास, मद आदि; वृक्षका प्रत्येक भाग उपयोगमें आता है

संग्रह—

फल तब इकट्ठे करने चाहिएं जब बहुत छोटे हों या अपने स्वाभाविक आकारसे आधे आकार तक पहुंचनेसे पूर्व ही। इन्हें छोटे छोटे कतारोंमें काट कर धूपमें सुखा लें और नमी रहित शुष्क स्थान पर बन्द पात्रमें रक्खें

त्वक् और मूल त्वक्का बाह्य स्तर न लेकर अन्तः स्तर (छाल) ली जानी चाहिए, और सूखी तथा पुरानी छालकी अपेक्षा ताजी छाल लेना अधिक अच्छा होता है।

रासायनिक विश्लेषण—

कोर्निसने पहले १८५६ में अन्तस्त्वक्की परीक्षा की। उसने मालूम किया कि इसमें एक तिक्त, श्वेत, सूच्याकार क्षारीय पदार्थ है। इसका नाम उसने मार्गोसीन रक्खा, परन्तु यह बहुत कम परिमाणमें और दो लवणोंमें मार्गोसीन और

सोडाके रूपमें प्राप्त हुआ था। ब्रौटन (Broughton) १८६३ के अनुसार छालमें विद्यमान तिक्ततत्त्व एक रेजिन होता है जिसे शुद्ध अवस्थामें प्राप्त करना बहुत कठिन है।

बीजोंसे एक स्थिर तिक्त तेल इकत्तीस प्रतिशतक होता है। निशास्ता और टैनिन इनमें नहीं होते। तेल उबालने या निचोड़नेसे निकाला जाता है यह तेल रङ्गमें गहरा पीला होता है। इसका स्वाद तीव्र तिक्त होता है। गन्ध कुछ कुछ लहसनकी सी होती है। वार्डनने तेलकी परीक्षा करके मालूम किया कि १५. ५° शतांश पर इसका आपेक्षिक गुरुत्व ०.६२३५ है। लगभग १०°से ७° शतांश पर बिना अपनी पारदर्शकता नष्ट किये जम जाता है; तेलमें स्वन्तत्र और उड़नशील स्निग्ध अम्ल होते हैं। ताजे निकाले हुए तेलको छत्तीस घण्टा स्थिर रक्खा जाय तो एक सफेद निःक्षेप देता है, सूक्ष्म वीक्षण यन्त्र (माइक्रोस्कोप) से यह बेडौल दीखता है। यद्यपि स्निग्ध अम्लोंको कभी पृथक् करनेका प्रयत्न नहीं किया गया, परन्तु सम्भवतः स्टीरिक और गैलिक अम्लोंका और थोड़े परिमाणमें लैक्टिक अम्लका मिश्रण होगा।

राय और चटर्जीने १६२१में तेलका विश्लेषण किया। और निम्न तत्त्व मालूम किये।

(१) गन्धक ०.४२७ प्रतिशतक।

(२) तेलके एल्कोहलिक सत्त्व (एक्सट्रैक्ट) से एक बहुत तिक्त पीला सा पदार्थ, प्राप्त किया। सम्भवतः यह पदार्थ क्षारीय है, परन्तु यह बात अन्तिम रूपसे निश्चित नहीं की गई।

(३) रेजिन्स।

(४) ग्लूकोसाइडस, अनिश्चित।

(५) स्निग्ध अम्ल।

राय और चटर्जीने (१६७६-७८) इसके तेलसे एक अम्ल तय्यार किया जिसका नाम मार्गोसिकाम्ल रक्खा। यह रङ्गमें पीला होता है इस अम्लके सोडियम और पोटशियम लवण रङ्गमें लगभग सफेद होते हैं और जलमें घुलनशील होते हैं, स्वादमें अत्यन्त कड़वे होते हैं।

वास्टन (Waston) और उसके सहायक कार्यकर्ताओं (१६२३) के विचारमें नीमकी आपत्तिजनक गन्ध मुख्यतया गन्धकके ऐन्द्रिक समासोंके कारण होती है। ये कुछ उड़नशील होते हैं। तेलको और अधिक वाष्प तिर्यक् पातन करनेसे एक उड़नशील गन्धक समास धीरे धीरे ऊपर तिर्यक् पतित होजाता है और घनीभूत जलके ऊपर इकठ्ठा हो जाता है। इन अन्वेषकों ने लगभग दो सौवां अंश अधिक एक तिक्त तत्त्व पृथक् किया। तिक्त पदार्थके अन्तिम विश्लेषणसे मालूम होता है कि उसमें दो भिन्न भिन्न भाग हैं—एक बेडौल और दूसरा स्फटिकाकार-पदार्थ, स्फटिकाकार पदार्थका नाम मार्गोसोपिक्रीन रक्खा गया।

दत्त और उसके सहायक अन्वेषकों (१६३०) का विचार है कि तेलके गन्धयुक्त तत्त्वमें एक बुरी गन्धका आवश्यक तेल होता है जो कि तेलमें ही घोलकी अवस्थामें रहता है और आंशिक स्रवणसे पृथक् नहीं किया जा सकता।

सेन और बनर्जीके १६३१ के एक लेखमें दिखाया गया है कि तेलकी तिक्तता एक अम्लके सोडियम लवणकी उपस्थिति के कारण और कुछ अंशमें स्वतन्त्र अम्लकी उपस्थितिके कारण है जो कि तेलमें घुली हुई अवस्थामें रहते हैं। अम्लमें गन्धकके परमाणु होते हैं और यह असान्द्र हैं।

तेल निष्पीड़नके बाद अवशेषमें एक उदासीन तत्त्व, ऐन्द्रिक पदार्थ ८३ से ८४ प्रतिशतक, आर्द्रता, राख छहसे नौ प्रतिशतक, नत्रजन और फौस्फोरिक एनहाइड्राइड होते हैं।

पत्तोंमें उसी गुणका तिक्त पदार्थ थोड़े परिमाणमें होता है, परन्तु यह जलमें बहुत अधिक घुलनशील होता है। पत्तों को पानीमें तिर्यक्पातन करनेसे यह पदार्थ प्राप्त किया जा सकता है। प्राप्त द्रव्यमें लहसुनकी सी गन्धका एक समास होता है।

ग्वालियर राज्यसे प्राप्त नीमके मद या ताड़ी (Toddy) के एक नमूनेका रासायनिक विश्लेषण किया गया। इसके तत्त्वोंको मालूम करने और इसमें कहे जाने वाले गुणोंको देखने के लिये कि इसमें कोई क्रियाशील तत्त्व है व नहीं, इस बातका निर्णय करनेके लिये ही इसका विश्लेषण किया गया। मद हलके पीले रङ्गका दूध सदृश सफेद सा घोल था। स्वाद में यह मीठा था और इसमें पूर्ण पक्व निम्ब फलों जैसी विशिष्ट सुगन्ध थी। उबालने पर और निक्षिप्त एल्युमिनस पदार्थको हटाने पर एक हलका सा पीला स्वच्छ घोल प्राप्त हुआ। १५° शतांश पर इस घोलका (Angle of reaction + ११° शतांश था। इस तापमान पर इसका आपेक्षिक गुरुत्व १.५८६ था। इसका सामान्य समास निम्न है—

आर्द्रता................	८६.५६	प्रतिशतक
प्रोटीड्स................	०.३६	”
निर्यास और रञ्जक पदार्थ...	६.१७	”

ग्लूकोज (अंगूरी खाण्ड)... २·६६ „
इक्षुज (गन्नेकी खाण्ड)... ३·५१ „
राख..................... ०·४१ „

मदके शुष्क ठोससे निकाले हुए पैट्रोलियम ईथर में स्निग्ध और रेजिनस पदार्थ केवल अत्यल्प परिमाणमें थे। क्षारीय और ग्लूकोसाइडल तत्त्वोंके लिये की गई परीक्षाएं नकारात्मक थीं।

राखके गुणात्मक विश्लेषण से पोटाशियम' लोह, ऐलुमीनियम, खटिकम् , और कर्बन द्विअम्लजिद इसमें पाये गये।

प्रभाव—मार्गोसेट्सका प्रभाव—चैटर्जी और रॉयने मार्गोसेट्सके प्रभावका अध्ययन किया। प्रोटोजोआके प्रति इनका कार्य बहुत प्रबल है। दस हजारमें एकका घोल (Flagellate Prowazekia) फ्लैजिलेट प्रोवाजीकिया को पांच मिनटमें मार डालता है। इन अन्वेषकोंसे प्राप्त परिणाम इस प्रकार थे—

प्रयुक्त औषधि घोल जो पांच मिनटमें मारनेके लिए पर्याप्त है

कुनीन गन्धित्...............१००००० में
एमेरीन..................... १०००० में
टार्टार एमेटिक............... ५०० में
सोडियम मार्गोसेट (B.C.P.W.)...१०००० में

Paramœcium caudatum (पैरामीसियम कौडेटम) दो हजारमें एकके घोलमें इसी क्षण मर गया। अम्ल के सोडियम लवणकी Microfilarie (माइक्रोफिलिएरी) पर परीक्षा की गई। दो सौ में एककी सान्द्रतामें यह इन जीवाणुओंको पैंतीस सेकेण्डमें मार डालता है। इन अन्वेषकों का ख्याल है कि मार्गोसेट्समें पराक्रमीहर गुण बहुत तीव्र विद्यमान है और जीवाणुनाशक गुण बहुत कम। विलेय लवणों की कार्बोलिकाम्लको एफिशिएएट केवल दो हैं और इसीलिए मार्गोसेट्सका कृमिहर या कृमिनाशक गुण परीक्षानलीमें इतना स्पष्ट नहीं है। तथापि उनका यह भी ख्याल है कि शरीरस्थ कृमियोंके प्रति मार्गोसेट्सका तीव्र कार्य होता है इस बातको दिखानेके लिये क्लिनिकल प्रमाण पर्याप्त हैं।

मदका प्रभाव—मदके उपरोक्त विश्लेषणसे यह सुगमतासे देखा जा सकता है कि इसके चिकित्सा सम्बन्धी गुण विशेष नहीं हैं, यह अन्य ताड़ मदादिके सदृश है। यह पक्व निम्ब फलकी विशिष्ट गन्धका खाण्ड और थोड़ेसे एल्व्युमिनस और चिपचिपे गोंद सदृश पदार्थका मीठा घोल या पानक है। नीमका आवश्यक क्रियाशील तत्त्व जो कि कौर्निस क्षरीय और (broughton) के अनुसार रेजिनस पदार्थ है, इसमें अनुपस्थित है। इसलिये नीमका मद एक शीतल पोषक और उत्तेजक वल्य कहा जा सकता है। परन्तु इसमें कोढ़ और दूसरे त्वचाके रोगों के लिये उपयोगी कहा जा सकने वाला कोई पदार्थ प्रतीत नहीं होता।

ज्ञात गुण—त्वक्, मूल त्वक् और कच्चा फल ग्राही, वल्य और ज्वरवेगहर है। त्वक् कृमिहर भी है। फल विरेचक और उदर कृमिहर हैं। पत्ते शोथ शामक हैं। फलरस कृमिहर हैं। पत्तों और गुठलीसे निकाला तेल तथा बीज और पत्ते स्थानिक उत्तेजक, कीटाणुनाशक और कृमिहर हैं। तेलमें उदर कृमिहर गुण भी कहा जाता है। फूल उत्तेजक वल्य और दीपक हैं। छाल निर्यास लेपक वल्य और उत्तेजक है। तृषाहर, पोषक और रसायन वल्य है।

निम्बः शीतोलघुर्ग्राही कटु पाकोऽग्निवातनुत्।
अहृद्यः श्रम तृट् कास ज्वरारुचि कृमिप्रणुत्॥
व्रणपित्तकफच्छर्दिकुष्ठहृल्लासमेहनुत्।
निम्बपत्रं स्मृतं नेत्र्यं कृमिपित्तविषप्रणुत्॥
वातलं कटुपाकं च सर्वारोचक कुष्ठनुत्।
नैम्बं फलं रसे तिक्तं पाके तु कटु भेदनम्।
स्निग्धं लघूष्णं कुष्ठघ्नं गुल्मार्शः कृमिमेहनुत्॥

भावप्रकाश, गुडूच्यादि वर्ग, श्लोक ६५–६८॥

निम्बस्तिक्तः कटु पाके लघुशीतोऽग्निवातकृत्।
ग्राही हृद्यो जयेत्पित्तकफमेहज्वर कृमीन्॥
कुष्ठकासारुचिहृल्लासश्वयथुव्रणान्।
ग्राही प्रवालं निम्बस्य रक्तपित्त कफ कृमीन्॥
कुष्ठघ्नं वात जननं नेत्ररोगान् विनाशयेत्।
तद्वत्पत्राणि निम्बस्य व्रणघ्नानि विशेषतः॥
शलाका निम्बपत्रस्य कासश्वास विनाशिनी।
चक्षुष्यं निम्बपुष्पं च कृमिपित्तविषप्रणुत्॥
वातलं कटुपाकं स्यात् सर्वारोचक नाशनम्।
फलं तिक्तरसं पाके कटुकं भेदनं लघु॥
अरूक्षमुष्णं कुष्ठघ्नं गुल्मार्शं कृमिमेहनुत्॥
निम्बस्य पक्वंमधुरं सतिक्तं स्निग्धं फलं शोणितपित्तरोगे।
कफे प्रशस्तं नयनामयघ्नं क्षतक्षयघ्नं गुरु पिच्छलं च।
निम्ब बीजस्य मज्जा च कृमि कुष्ठ विशोधनः॥

कैयदेवनिघण्टु, औषधिवर्ग श्लोक ७६५–८०१॥

वैज्ञानिक संसार के ताज़े समाचार

शीघ्र पचने वाला दूध—साधारण दूधको कुछ समय तक स्थिर रक्खे रहने पर इसके मक्खनका अंश ऊपर उतराने लगता है। इसीको अंगरेजोंमें क्रीम (Cream) कहते हैं। इस क्रीममें दूधके प्रायः सभी विटैमिन, विशेष कर विटैमिन ए. डी. और ई. रहते हैं। इस प्रकार रक्खे रहने से जब क्रीम अलग हो जाता है तब दूध उतना पाचनशील नहीं रह जाता जितना तत्काल का दुहा हुआ दूध। इसीलिए, जैसा सभी जानते हैं, तत्कालका दुहा हुआ दूध अधिक लाभदायक होता है। आधुनिक बड़े शहरोंमें तुरन्त का दुहा हुआ दूध मिलना असम्भव ही होता है। इसलिए बहुत दिनोंसे वैज्ञानिक इस चक्करमें थे कि क्या उपाय किया जाय कि दूध से क्रीम अलग न होने पाए। हाल ही में इस ओर सफलता मिली है। पेरिस के गॉलिन महोदयने अब जो उपाय निकाला है उसके अनुसार दूध की बहुत ही सूक्ष्म धार बड़े वेगसे धातु की चादरों पर छोड़ी जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि मक्खनकी बूंदें जो पहलेसे ही इतनी छोटी होती हैं कि दिखलाई नहीं पड़तीं इस रीतिसे और पहलेसे दस गुनी छोटी हो जाती हैं। इसका परिणाम यह होता है कि मक्खनका अंश दूधमें प्राकृतिक दूधकी अपेक्षा और भी अच्छी तरह मिल जाता है और रक्खे रहने पर कई घण्टों तक उतरा नहीं पाता। इसलिए ऐसा दूध कई घण्टोंके बाद भी वैसाही पचनशील और लाभदायक रहता है जैसा तत्कालका दुहा हुआ दूध। इस विषय पर सचित्र और ब्योरेवार एक लेख अप्रैल १९४१ के सायंटीफिक अमेरिकनमें निकला है।

सच्ची घड़िया—ज्योतिष के लिए बनी प्रसिद्ध शॉर्ट (short) घड़ियां इतनी सची होती है कि एक घड़ी इस वर्ष लगातार चलती रही और कुल मिलाकर साल भरमें केवल ७/१० सेकण्ड का ही अन्तर पड़ा। १९२७ में पेरिसकी शॉर्ट घड़ीमें कुल १/१० सेकण्डका ही अन्तर पड़ा था।

अटूट शीशा—अमरीका की पिट्सबरा प्लेट ग्लास कम्पनी अब ऐसा शीशा बनाती है जो मोटर गाड़ियोंमें लगे अटूट शीशे (safty glass) से दस गुना मजबूत होता है। नए शीशे का नाम इस कम्पनीने फ्लेक सील रक्खा है। असल में यह शीशा बहुत ऊंचे उड़ने वाले हवाई जहाजोंमें लगता है जहां सब दरवाजे और खिड़कियां इस प्रकार बन्द रहती हैं कि भीतरकी हवा बाहर न निकलने पाए। बाहर तो ऊंचाईके कारण हवा इतनी पतली रहती है कि उसमें कोई जीवित रह ही नहीं सकता। इसलिए सब दरवाज़े वग़ैरह बन्द रहते हैं और वायु को स्वच्छ रखनेके लिए भीतर ऑक्सीजन की टंकियां और विशेष रासायनिक पदार्थ रहते हैं। ऐसे हवाई जहाजोंमें शीशे के टूट जाने से सबके मर जानेका भय रहता है। इसीलिए विशेष चिमड़े शीशेका आविष्कार किया गया है। यह शुद्ध शीशा नहीं है। शीशेके कई पतली पतली तहोंको पारदर्शक रूपद पदार्थसे जोड़ या जमा देनेसे बनता है। रूपद पदार्थ सेलुलायड की जातिका पदार्थ होता है जिसमें यह गुण होता है कि गरम करनेसे या किसी रासायनिक रीतिसे बहुत नरम (और चिप-चिपा) किया जा सकता है; इसी अवस्थामें यह शीशेके परतोंके बीचमें भर दिया जाता है। यह रूपद पदार्थ बड़ा होने पर भी इतना लचीला होता है कि शीशेके प्रत्येक परतके चटक जाने पर भी कोई परत छटकने नहीं पाता। वस्तुतः नवीन शीशा इतना चिमड़ा है कि कीलसे इसे लकड़ीके चौखटे पर ठोंक सकते हैं।

—०—

घरेलू डाक्टर

[संपादक—डाक्टर जी० घोष, डाक्टर गोरख प्रसाद, आदि]

कृत्रिम श्वास—कभी-कभी किसी दुर्घटनाके कारण साँस का चलना बन्द हो जाता है, परन्तु हृदयमें कोई रोग नहीं रहता या चोट नहीं लगी रहती। ऐसी दशामें यदि एक बार फिर साँस का चलना किसी प्रकार आरम्भ करा दिया जाय तो वह व्यक्ति फिरसे सँभल जाता है। कृत्रिम श्वासके लिये साधारणतः अब शेफर की रीति का ही प्रयोग किया जाता है।

इसके विभिन्न पद निम्नाङ्कित हैं:—

(१) गलेके पासका कपड़ा ढीला कर दो। रोगीको पट लिटा दो (पेट जमीन की ओर रहे), हाथ सिरकी ओर तान दो, सिर एक ओर घूमा रहे जिसमें नाक और मुँह दबे न रहें। मिट्टी या बालू पर रोगीको लिटाना पड़े तो विशेष ध्यान रक्खो कि नाकमें मिट्टी बालूके जानेका डर न रहे। मिल सके तो रोगीकी छातीके नीचे तकिया लगा देना चाहिये, किसी भी कपड़े को लपेटकर तकिये का काम निकाला जा सकता है।

(२) जैसे कोई घोड़े पर सवार होता है उसी तरह रोगी की कमर पर सवार हो, परन्तु रोगी पर जरा भी भार न रहे, तुम्हारा कुल भार तुम्हारे घुटनों पर रहे और घुटने जमीन पर रहें। इसके बदले रोगी की बगलमें घुटनोंके बल बैठनेसे भी काम चल सकता है। तुम्हारा मुंह रोगीके सरकी ओर रहे, अपने हाथोंसे रोगीके धड़ को अगल बगलसे पकड़ लो। रोगी की सबसे नीचे वाली पसलियोंके पास तुम्हारे हाथ रहें और अंगूठे रीढ़के पास पहुंच जायं। तुम्हारी अंगुलियां खुली रहें और कुछ २ रोगीके कन्धों की ओर रहें।

(३) अपनी भुजाओंको कड़ा रखते हुए ही आगे झुको, जिसमें तुम्हारा पूरा बोझ तुम्हारे हाथों पर आकर रोगी पर पड़े। इस प्रकार रोगी को काफी जोर से—परन्तु बिना किसी प्रकारके झटके के—दबाना चाहिये, जिसमें रोगीके फेफड़े से हवा दबकर बाहर निकल जाय और यदि वहां तक पानी पहुंच गया हो तो वह भी निकल जाए।

(४) अब पीछे मुड़ो और अपने हाथोंको ढीला करो, परन्तु रोगी परसे अपने हाथोंको हटाओ नहीं।

(५) ऊपर बतलाई गई दबाने और ढीला करने की क्रिया को बार-बार नियमित रूपसे मिनटमें १४ या १५ बार के हिसाबसे दोहराओ।

इस क्रमको कम-से-कम एक घण्टे तक जारी रखना चाहिये। उपर्युक्त कृत्रिम श्वास की क्रिया यथा सम्भव शीघ्र ही आरम्भ करनी चाहिए। डाक्टर यदि बुलाया जा सके तो उसे तुरन्त बुलाना चाहिए, परन्तु जबसे एक आदमी डाक्टर बुलाने जाय तब तक किसी दूसरेको यह कृत्रिम श्वास लानेकी क्रिया आरम्भ कर देनी चाहिए।

यदि मिल सके तो स्मेलिंग साल्ट (Smelling salts) या नौसादर और बुझा हुआ चूना, (खाने वाला चूना) दोनों मसलकर रोगीको सुघांना चाहिये। यदि चूना बिलकुल सूखा हो तो कुछ बूंद पानी मिला लेना चाहिये। जब रोगी आपसे आप श्वास लेने लगे तब दबाने और ढीला करनेके समयको रोगी की श्वासके अनुसार साध लेना चाहिए। जब रोगी अच्छी तरह श्वास लेने लगे तब कृत्रिम श्वासकी क्रियाको रोक देना चाहिए, परन्तु तब भी सावधानीसे रोगीको देखते रहना चाहिए और यदि श्वासके रुकनेके लक्षण दिखलाई पड़ें तो क्रिया फिर आरम्भ कर देनी चाहिए।

कृत्रिम श्वास लानेमें बड़ा परिश्रम करना पड़ता है और श्वास लाने वाला शीघ्र थक जाता है। इसलिए यदि दो व्यक्ति इस काममें लगें और बारी बारीसे काम करें तो अच्छा होगा।

शेफरकी रीतिमें रोगीके भीतर हवा डालनेकी कोई चेष्टा नहीं की जाती। केवल श्वास बाहर निकालनेकी चेष्टा की जाती है। जब रोगीके ऊपरका दबाव कम किया जाता है तब अपने आप श्वास भीतर आती है। शेफरकी रीतिमें विशेषता यह है कि केवल एक आदमी अकेले इस रीतिका प्रयोग कर सकता है।

मारशल हालकी रीति—अब इस रीतिका इतना प्रयोग नहीं किया जाता है जितना पहले था, परन्तु यह इतनी अच्छी और सम्भव रीति है कि जब शेफरकी रीतिसे किसी दशामें काम न चले तो यह रीति सफल हो जाती है।

यह भी प्रायः शेफरकी ही रीति है, परन्तु इसमें छातीके नीचे ऊंचा तकिया लगाना चाहिये, जिसमें छाती कमसे कम ६ इंच उठ जाय। यदि धोती, साफा, चादर कुछ भी न मिले तो छातीके नीचे पीढ़ा या और कोई लकड़ी पत्थर रक्खा जा सकता है।

सहायक उसी प्रकार बैठता है जैसे शेफरकी रीतिमें रोगीको वह ठीक उसी प्रकार दबाता है जैसे शेफरकी रीतिमें, परन्तु दबानेके बाद कन्धा पकड़ कर रोगीको करवटके बल कर दिया जाता है जिससे फेफड़े के ऊपरका बोझ बिलकुल हट जाय और उसमें अधिक हवा खिंच आवे। फिर रोगीको पट करके उसे दबाया जाता है और ऊपरकी क्रिया दोहराई जाती है। एक मिनटमें लगभग १५ बार दबाना और १५ बार करवट पर करना चाहिए। यह परमावश्यक है कि रोगीको हमेशा एक ही करवट घुमाया जाय। ऐसा करनेसे एक फेफड़ा बहुत जल्द चालू हो जाता है और फिर प्राण जानेका डर नहीं रहता, कुछ ही समयमें दूसरा भी चालू हो जाता है।

सिलवेस्टरकी रीति—यदि सहायक मिल सकें तो सिलवेस्टरकी रीति बहुत उपयोगी है, इस रीतिमें रोगी चित्त लिटाया जाता है, परन्तु आरम्भमें रोगीको पट लिटा कर

शेफरकी रीतिसे दो चार मिनट तक कार्य करना चाहिए जिसमें पानी आदि सब फेफड़ेसे निकल जाय। फिर रोगीको चित्त कर देना चाहिए। और कन्धोंके नीचे तकिया या कोई कपड़ा लपेट कर रख देना चाहिए। यदि किसी प्रकार रोगीका सिरहाना पैतानेके हिसाबसे कुछ ऊंचा किया जा सके तो और अच्छा होगा; इसके लिए रोगीको ढालू जमीन पर लिटाया जाय तो अच्छा होगा। गला खुला रखनेके लिए जीभको पकड़ कर बाहर खींच लेना चाहिए। इसके लिए जीभको कपड़ेसे पकड़ना चाहिए जिसमें वह हाथसे छूट न जाय।

तुम्हें रोगीके पास घुटनेके बल बैठना चाहिए। फिर रोगी की भुजाओंको कुहनियोंके पास (कुहनियोंसे जरा सा कलाईकी ओर हट कर) पकड़ना चाहिए। भुजाओंको उठा कर सरके पास ले जाओ और एक दो इतना गिनो। हाथ जब ऊपर जाता है तब श्वास भीतर जाती है। फिर रोगीकी कुहनीको पकड़ो; और उसे खींच कर रोगीकी छाती पर लाओ और जोर से दबाओ। दो तक गिननेमें जितना समय लगे उतनी देर तक दबाये रक्खो। इससे श्वास बाहर निकलती है। मिनटमें १५ बारके हिसाबसे ऊपरकी दोनों क्रियाओंको दोहराना चाहिए। जब तक ये क्रियाएं जारी रक्खी जाएं तब तक रोगीकी जीभ को कोई बाहर खींचे रहे। एक तीसरा व्यक्ति रोगीकी टांगोंको पकड़े रहे तो और भी अच्छा होगा।

चाहे किसी भी उपर्युक्त रीतिसे काम किया जाय, जब श्वास चलने लगे तो कृत्रिम-श्वासकी क्रियाको रोक देना चाहिए, परन्तु यदि फिर सांस रुक जाय, और ऐसा अकसर होता है, तो तुरन्त क्रिया फिरसे प्रारम्भ कर देनी चाहिए।

कृत्रिम श्वासकी क्रियाको घंटे भर तक जारी रखने पर भी श्वास चलना आरम्भ न हो तो रोगीके बचनेकी विशेष आशा नहीं की जा सकती, परन्तु कभी-कभी कृत्रिमश्वासकी क्रियाको कई घंटे तक जारी रखने पर श्वास चलना आरम्भ हुआ है। इसलिए शीघ्र निराश न होना चाहिए।

कुछ बड़े २ अस्पतालोंमें ऐसी मशीनें रहती हैं जिनसे कृत्रिम श्वासकी क्रिया बिना परिश्रमके घंटों जारी रक्खी जा सकती है। परन्तु ऐसी मशीनोंकी विशेष आवश्यकता तब पड़ती है जब श्वास लकवाके कारण बन्द होती है।

कभी-कभी नवजात शिशुको कृत्रिम श्वास देनेकी आवश्यकता पड़ती है। इसकी ब्यौरेवार चर्चा दम घुटनेके सिलसिलेमें की जायगी।

काटना, जानवरों का—सांपके काटने पर सांपका विष सांपके खोखले दांतोंके रास्ते शरीरमें घुस जाता है। यदि यह विष तुरन्त रोका न जाय तो मृत्यु होनेका विशेष डर रहता है इसलिये इसका पहला उपचार यही करना चाहिए कि विष दूर तक न जाने पाये। पागल कुत्तेके काटने पर भी ऐसा ही करना चाहिए।

चिकित्सा—जिस जगह पर सांप या पागल कुत्तेने काटा हो उसके और हृदयके बीच अङ्गको कहीं पर खूब कस कर रूमाल तथा पट्टीसे बांधना चाहिए जिससे उस अङ्गका रक्त संचार (Circulation of blood) रुक जाय और विष वहांसे रक्तधाराके साथ हृदय तक न पहुंचने पाये। हाथ या पैरोंमें सांप आदिने काटा हो तो यह उपचार अत्यन्त सरल होता है, परन्तु अन्य अङ्गोंके लिए यह जानना आवश्यक है कि रक्त किधरसे आता है और किधर जाता है। इस विषय पर रक्तस्राव के सम्बन्धमें विचार किया जायगा (देखो रक्तस्राव)। केवल एक जगह बांधनेसे अधिक अच्छा यह है कि दो या तीन स्थानों पर अङ्गको बांधा जाय। ये स्थान एक दूसरेसे थोड़ा-थोड़ा हट कर रहें। प्रत्येक पट्टी खूब कस कर बांधी जाय और तब तक न खोली जाय जब तक कटे स्थान पर अच्छी तरह दवा न लगा दी जाय। अङ्गके बांधनेके बाद घाव पर पानीकी धार छोड़ कर घावको अच्छी तरह धोना चाहिए। इससे भी यह और अच्छा होगा कि कोई घाव पर मुंह लगा कर जहां तक हो सके खून चूस ले और उस खूनको थूक दे, परन्तु ऐसे व्यक्तिके होंठ कहीं फटे न हों या मुखमें घाव न हों। काटे अङ्गको शरीरके अन्य भागोंसे नीचा रखना चाहिए जिसमें खून बह कर निकल जाय। खून निकलनेके साथ विष भी बहुत कुछ निकल आता है। सांपके स्थानको स्वच्छ किये (हो सके तो कीटाणुरहित किये) चाकूसे कुछ चीर कर उस पर पोटैसियम परमैनगट रगड़ना चाहिए, यह तुरन्त न मिल सके तो टिंचर आयडीन या मेथिलेटेड स्पिरिट लगाना चाहिए। इसके बाद रोगीको तुरन्त डाक्टरके पास ले जाना चाहिए। यदि डाक्टरके मिलनेकी आशा न हो तो कोई क्षतकारी औषध, जैसे नाइट्रिक ऐसिड या कारबोलिक ऐसिडके फाहेसे काटे हुए स्थानको दाग देना चाहिए (बांसकी तीली या सींकके अन्त पर थोड़ीसी रूई लपेट कर फाहा बनाया जा सकता है।) पागल कुत्तेके काटने पर इस

प्राथमिक चिकित्साके अतिरिक्त पागल कुत्तेके विषको नाश करने के लिए विशेष चिकित्सा कराना भी आवश्यक है। इसका अच्छा प्रवन्ध कसौलीमें है (देखो कसौली शीर्षक लेख)। सांप काटने पर सांपके विष मारने वाली विशेष औषधिका इंजेक्शन दिलाना अच्छा है। जिस कुत्तेने काटा हो यदि हो सके तो उसे बांध रखना चाहिए। उसकी जांचमें डाक्टरको पता चलेगा कि कुत्ता पागल है या नहीं। जिस सांपने काटा हो यदि हो सके तो उसे मार कर रखना चाहिए। उसे देखकर डाक्टर सांपका निश्चय कर सकेगा कि किस जातिका सांप है और इसके लिये किस औषधिका इंजेकशन लगाना चाहिए।

अन्य जानवरोंके काटने पर—ऐसे कुत्तोंके काटने पर जो पागल न हों या जो पागल न हो रहे हों, तथा अन्य शृगाल (गीदड़), कुत्ता, बन्दर, घोड़ा आदि जानवरोंके काटने पर साधारण घावोंकी तरह कटे स्थानोंकी चिकित्सा करनी चाहिए।

बिच्छू आदि—बिच्छू, मधुमक्खी, बर्रे तथा इसी प्रकार के अन्य कीड़े-मकोड़ोंके डंक मारने पर जो पीड़ा होती है वह डंकके घुसनेसे बने छोटेसे घावके कारण नहीं होती; वह उस विषके कारण होती है जो डंकके भीतरसे निकलकर शरीरके भीतर घुस जाता है। साधारणतः यदि कोई चिकित्सा न भी की जाय तो कुछ दिनों या कुछ घण्टोंमें पीड़ा आपसे-आप मिट जाती है, परन्तु मुख पर किसी भी जगह या जीभ पर काटनेसे विशेष हानि हो सकती है। मधुमक्खीका डंक अक्सर टूट कर घावमें रह जाता है, परन्तु अन्य कीड़े-मकोड़ोंके डंक भी कभी-कभी टूट कर शरीरमें रह सकते हैं, इसलिए पहली बात यह करनी चाहिए कि घावमें यदि डंक हो तो उसे निकाल डालना चाहिए। इसके लिए स्वच्छ सूईसे खोद दिया जा सकता है या पकड़नेमें आने वाला हो तो चिमटीसे निकाला जा सकता है बिच्छूके डंक मारने पर डंक मारे गये स्थान और हृदयके बीच कहीं कस कर बांध देना अच्छा है। डंकमेंसे जो तरल पदार्थ निकलता है वह कोई अम्ल (ऐसिड) होता है और उसके मारक अमोनिया, (सोडियम कारबोनेट) चूना आदि हैं। इसलिए डंक मारे स्थान पर थोड़ा सा अमोनिया (लिकर अमोनिया) या सोडा या चूना (पानीमें मसल कर) लगाना चाहिए, परन्तु इन सबसे लाभ तभी होता है जब ये वस्तुएं तुरन्त लगाई जायं अधिक समय बीत जानेसे विष बहुत दूर तक और बहुत गहरा मिल जाता है और इसलिए अमोनिया आदिसे विशेष लाभ नहीं होता। यदि पीड़ा असह्य हो तो डाक्टरको शीघ्र दिखलाना चाहिए। वे कोकेनका इंजेक्शन देकर उस भागको सुन्न कर सकते हैं जिससे पीड़ा मिट जायगी। यदि किसी कोमल अङ्ग में डंक मारा गया हो तो अमोनियां, चूना आदि बहुत न लगाना चाहिए। उसमें काफी पानी मिला लेना चाहिए।

चिकित्सा—जिस स्थान पर बिच्छूने काटा हो उस डङ्क स्थान पर ½ रत्ती पिसा हुआ टार्टरिक ऐसिड (निम्बूका सत) रखकर इतना ही पिसा हुआ पोटाशियम परमांगनेट (वह लाल दवा जो कुएं का जल साफ करनेके लिये कुंवेंमें डाली जाती है) उस निम्बू सतके ऊपर रखकर उसपर एक बून्द पानी टपका देना चाहिये। या ½ रत्ती संखिया सफेद पानीमें घिसकर डंक स्थान पर लेप करके उसे गीले कपड़ेसे ढक देना चाहिये।

गर्मीके कारण ज्वर आदि—धूप, गर्मी लू के कारण सर दर्दसे लेकर बेहोशी और तेज बुखार तथा सरसाम (सन्निपात) तक हो सकता है, मृत्यु भी हो सकती है। अधिक गर्मीके कारण बच्चे चिड़चिड़े हो जाते हैं और हल्का बुखार हो आता है उन्हें मचली और निन्द्राहीनता भी हो सकती है।

बचनेके उपाय—यदि किसी कारणवश धूप, गर्मी या लू में घरसे बाहर निकलना पड़े या गरम स्थानमें रहना पड़े तो पानी खूब पीते रहना चाहिए। इससे पसीना आता रहता है और त्वचा ठंडी रहती है इसलिए लू नहीं लगने पाती। नंगे बदन बाहर निकलनेके बदले कपड़ा पहन कर बाहर निकलना अच्छा है। छाता लगाना सर पर पगड़ी बांधना, या भीगा तौलिया शरीर पर लपेटे रहना बहुत अच्छा है।

चिकित्सा—रोगीको ठंडे और अन्धेरे स्थानमें चारपाई पर लेटे रहना चाहिए। उसके कपड़ोंको यथा सम्भव उतार डालना चाहिए उसे नींबू डालकर शर्बत खूब अधिक मात्रामें पिलाना चाहिए। बार बार ठंडे पानीमें भिगोए कपड़ेसे शरीर पोंछना चाहिए। सर पर बरफ या ठंडी पट्टी बांधनी चाहिए। लू तेज लगी हो तो डाक्टरकी दवाई करनी चाहिए क्योंकि तब हृदयके लिए तीव्र उत्तेजकोंकी आवश्यकता पड़ती है। ऐसे व्यक्तिको अच्छे हो जाने पर भी बहुत दिनों तक धूप या गर्मीमें बाहर न निकलना चाहिए।

जलना—आगकी लपट, लाल अंगारे, तप्त पत्थर या धातु,

बिजली, तेजाब, चूना, काष्टिक सोडा आदिसे खौलते पानी, भाप, तप्त तेल आदिसे व्यक्ति जल सकता है। परिणाम त्वचा की लालीसे लेकर गहरा घाव तक हो सकता है। घाव केवल इसी पर निर्भर नहीं है कि तप्त वस्तु कितनी गरम थी, यह इस पर भी निर्भर है कि शरीर तप्त वस्तुके स्पर्शमें कितने समय तक रहा। लाल अङ्गारों पर भी एक दो डग चटचट रख देनेसे पैर नहीं जलता; इसी कारण लोग लाल अंगारों पर चल सकते हैं। तम्बाकू पीने वाले अक्सर लाल अंगारोंको हाथसे उठा कर चिलम पर रख लेते हैं।

आग या तप्त वस्तुसे जलेकी चिकित्सा—जले व्यक्तिको अकसर गहरा मानसिक आघात (Shock) पहुंचता है; उसका उपचार करना चाहिए (ऊपर इसका वर्णन किया जा चुका है)। फिर विशेष ध्यान रखना चाहिए कि घाव पर कोई ऐसी वस्तु न लगने पाये जिससे घाव पकने लगे। अधिक जलने पर डाक्टरके हाथमें ही चिकित्सा छोड़ना उचित होता है। परन्तु यदि घाव छोटा हो और डाक्टरकी सहायता न ली जा सके तो घाव पर चाय (Tea) का गाढ़ा काढ़ा (चायके ठंडा होने पर) लगाना चाहिए। दिनमें दो तीन बार इससे घाव धोया जाए तो पपड़ी शीघ्र पड़ जायगी (अर्थात् उस पर खुद्री बन जायगी)। साथ ही घाव पर कोई हलका कीटाणुनाशक मरहम भी (जैसे बोरिक आइंटमेंट) लगाना चाहिए। जलनेकी पुरानी दवा यह यह है कि तीसी (अलसी) के तेलमें चूनेका पानी मिला कर लगाया जाय। चूनेका पानी इस प्रकार बनता है कि चूना पानी में झकझोर कर रख दिया जाय और जब चूना बैठ जाय तो ऊपरसे स्वच्छ जल ले लिया जाय। इस जलको तिसींके तेलके साथ फेटने पर मलहमसा बन जाता है। इसी मलहमको लगाना चाहिए। जितना भी पानी मलहमसे अलग हो सके उसे निकाल देना चाहिए। कोई मलहम न मिल सके तो जले स्थान पर घी या तेल लगाना चाहिए, ऐसा करनेसे जले हुए अंगमें जलन कम होती है।

चायके काढ़ेमें टैनिन रहता है और वही फायदा करता है जिन कारखानोंमें मजदूरों या कारीगरोंके जलनेका विशेष भय हो वहां विशेष पिचकारी और टैनिनका घोल सदा रखना चाहिए ये इसी कामके लिए बिकते हैं। पिचकारीसे टैनिनका घोल झींसी (Spray) के रूपमें छिड़क दिया जाता है।

यदि चेहरा जल गया हो तो शुद्ध कपड़े या लिन्ट (Lint) में आंख नाक और मुखके लिए छेद काट कर और उसे टैनिनके घोल या अन्य उचित लोशन या मलहममें तर करके चेहरे पर लगा देना चाहिए। होंठ, पलक और नथुनों पर जरा-सा बोरिक आइंटमेंट लगा देना चाहिए तथा आंखोंमें शुद्ध रेंडीका तेल (Castor Oil) डाल देना चाहिए।

जिस समय किसी तरह कोई जल जाय तो उसी समय दही या दूध की मलाई उतार कर उस जले स्थान पर इतनी पोत देनी चाहिए कि उसपर काफी मोटी तह बन जाय। और यह मलाई उस समय तक बराबर लगाते रहना चाहिये जब तक जलन बन्द न हो जाय। यदि मलाई शीघ्र ही लगाई जाय और उक्त मलाईके ऊपर बरफ रखकर उसे ठण्डा बनाए रखा जाय तो फफोले नहीं पड़ते। यदि ज्यादा शरीर झुलस गया हो तो ठण्डे ताजे दूधको बर्तनमें भरकर उस दूधमें जले हुए को बिठाये रखना चाहिए। और उस दूधको भी ठण्डा रखना चाहिए। जब तक जलन बन्द न हो दूधमें बिठाए रखें।

बचनेके उपाय—विशेष ध्यान रखना चाहिए कि बच्चे आग, गरम तेल या घी, गरम पानी आदि से दूर रहें। और अचानक उन स्थानोंमें उनके आजानेकी सम्भावना न रहे। रसोई बनाते समय स्त्रियोंको उचित संड़सी आदिसे बर्तनोंको उठाना चाहिए। आलसवश आंचलसे कढ़ाईके कंढ़ोंको पकड़ कर उतारनेके कारण सदाके लिए मुख और अंग कुरूप हो जाने या मृत्यु हो जानेके अनेक काण्ड हो गए हैं। स्टोव जलाते समय विशेष ध्यान रखना चाहिए कि जलते हुए स्पिरिटमें और स्पिरिट डालनेकी चेष्टा न की जाय। स्पिरिट इतनी प्रकाशहीन लौ से जलता है कि कभी-कभी धोखा हो जाता है—जान पड़ता है कि स्पिरिट बुझ चुका है किन्तु वस्तुतः वह जलता रहता है।

पहने कपड़ोंमें आग लगना—यदि किसी के कपड़े में आग लग जाय तो उसे तुरन्त जमीन पर लेट जाना चाहिए, जलती हुई ओर ऊपर रहे कोई पासमें हो तो उसे तुरन्त कम्बल, ऊनी चादर, ऊनी ओवरकोट आदि या यदि यह सब न मिल सकें तो दरी, टाट या रजाईसे दबाकर आग बुझा देनी चाहिए। यदि यह भी न मिलें तो साधारण धोती या चादरकी कई एक तहसे भी काम चल सकता है। आग लगने पर जलते व्यक्तिका दौड़ना बुरा है क्योंकि तब हवा लगने से आग और भड़क उठती है। कपड़ेमें आग लगने पर खड़े ही रहनेका परिणाम यह होता है कि चेहरा भी बहुत बुरी तरह जल जाता है इसी प्रकार, यदि

लेटने पर आग नीचे रहेगी तो सम्भव है कि जलते हुए कपड़े पूर्णतया दबने न पाएं; तब आगकी लपटें अगल-बगलसे निकल कर ऊपरके कपड़ेको भी जला सकती हैं। जब आग बुझ जाय तो आहत व्यक्तिको आश्वासन देना चाहिए और उसे गरम दूध हो सके तो ग्लूकोज, नहीं तो चीनी मिला कर देना चाहिए। फिर उक्त विधियोंसे जले भागोंका उपचार करना चाहिए।

तेजाब से जलना—यदि तुरन्त मिल सके तो जले भागको खारसे यथा अमोनिया या सोडा सज्जीखार जवाखारके घोल या चूनेके पानी से—धोना चाहिए। इसके बाद जले स्थानका वही उपचार करना चाहिए जो आगसे जलने पर किया जाता है

क्षारसे जलना—चूना, कास्टिक सोडा, आदिसे जल जाने पर उस भागको स्वच्छ जलसे तुरन्त धोना चाहिए। यदि मिल सके तो केवल जलके बदले नीबूके रस या सिरका और और पानीके मिश्रणसे धोना अधिक अच्छा होगा। यदि जले भाग पर चूना चिपका रह गया हो तो धोनेके पहले फालतू चूना साफ कर देना चाहिए।

बिजलीसे जलना—बिजलीसे वैसे ही घाव होते हैं जैसे आग से, परन्तु आगकी अपेक्षा अक्सर बिजलीसे अधिक गहरे घाव होते हैं यदि किसी व्यक्तिको, बिजली का तार चिपक गया हो तो उसे बचानेके लिए यह आवश्यक है कि तार हटा दिया जाय, परन्तु यदि यह काम सावधानीसे न किया जायगा तो बचाने वाला स्वयं खतरेमें पड़ जायगा। यदि स्विच उठा कर बिजली बन्द कर दी जा सके तो सबसे अच्छा है, अन्यथा विशेष सावधानीकी आवश्यकता पड़ेगी यह परमावश्यक है कि बचाने वाला सूखे काठके पीढ़े पर खड़ा होकर या रबड़के तल्ले वाला जूता पहन कर बिजलीके तारको हटाये, या वह बिजली की तारको सूखी लकड़ीसे हटाये, या सूखी रस्सीका फन्दा डाल कर हटाये। या हांथों पर सूखा कपड़ा लपेट कर हटाए।

बिजली बचाने वालेके हाथ और शरीरसे होकर पृथ्वीमें घुसना चाहती है, परन्तु सूखा काठ, सूखा कपड़ा, रबड़ आदिसे होकर बिजली नहीं जा सकती। इसलिए या तो पैर तले ऐसा पदार्थ हो जिसमें से बिजली न जा सके, या बिजलीके तार को केवल लकड़ी आदिसे हटाया जाय। पानी बिजलीका संचालक है। इसलिए यदि लकड़ी आदि भीगी रहेगी तो बचाने वालेसे होते हुए बिजलीको पृथ्वी तक पहुंचनेका मार्ग मिल जायगा। और बचाने वालेके स्वयं घायल हो जानेका डर रहेगा।

जब आहत व्यक्तिसे तार अलग कर दिया जाय तब मानसिक आघात दूर करनेके लिए कोई उपाय करना चाहिए और जले भागकी वही चिकित्सा करनी चाहिए जो जलने पर की जाती है।

आंखका जल जाना—तेजाब, क्षार, तप्त धातु, आग चिनगारी आदिसे आंख जल सकती है। तुरन्त उचित उपचार करना आवश्यक है। दो-चार सेकण्डकी देर होनेसे भी हानि हो सकती है। यदि आंखमें चूना पड़ जाय तो जितना भी चूना आंख की पुतलीको छुए बिना रुमालकी नोकसे (या अन्य कपड़े से) झाड़ कर अलग हो सके तो तुरन्त परन्तु बहुत हलके हाथसे झाड़ देना चाहिए और आंखको तुरन्त पानीमें जरा चीनी मिलाकर या जरा नींबूका रस या शिरका मिलाकर, कुछ न मिले तो सादे पानीसे ही खूब धोना चाहिए। चीनी, सिरका या नींबूका रस आदि पानीमें अधिक न छोड़ा जाय। पाव भर पानीमें एक चायके चम्मच भर चीनी, सिरका या नींबूका रस काफी होगा। परन्तु आंखके धोनेमें पानीकी कोताही न करनी चाहिए खूब खुला पानी लेना चाहिए। इसके बाद आंखमें थोड़ा सा तिल या रेण्डीका तेल डाल देना चाहिए। फिर आंख बन्द करके ऊपरसे रुई या कपड़े की गद्दी रखकर फुल-फुली पट्टीसे बांध देना चाहिए। स्मरण रहे कि ऊपरकी कुल क्रियामें आंख की पुतलीकी सतहको किसी प्रकार न छुआ जाय, नहीं तो घाव और बढ़ जायगा पट्टी बांधनेके बाद रोगीको डाक्टरके पास लेजाना चाहिये।

यदि आंखमें कोई तेजाब पड़ जाय तो उसे सोडियम बाइकारबोनेट (Sodium bicarbonate) के फीके घोलसे धोना चाहिए। आध सेर या तीन पाव पानीमें एक चाय का चम्मच भर सोडियम बाइकारबोनेट डालना चाहिए। फिर ऊपर की तरह तेल डालना और पट्टी बांधनी चाहिए।

यदि आंखमें पिघला हुआ सीसा पड़ जाय तो अक्सर यह सीसा नीचे वाली पलकके भीतर खिसक आता है। यदि यह आसानीसे रुमाल की नोकसे निकाला जा सके तो निकाल देना चाहिए परन्तु यदि यह आंखमें कहीं चिपक गया हो तो डाक्टर से ही उसे निकलवाना ठीक होगा। आंखमें तेल डालना और पट्टी बांधना यहां भी उपयोगी होगा।

पिघले सीसे से जली आंखको साधारणतः उतनी क्षति नहीं पहुंचती जितनी चूने या तेजाबसे। कारण यह है कि अक्सर सीसेके एक ही दो कण आंखमें पड़ते हैं। फिर आंखके पानी से ठण्डा होनेके बाद सीसा और कुछ हानि नहीं पहुंचाता, परन्तु तेजाब या चूना तो जब तक आंखमें रहता है नुकसान करता ही चला जाता है। इसीलिए यह परमावश्यक है कि तेजाब या चूना पड़ने पर आंखको तुरन्त धोया जाय, अधिक चूना या तेजाब पड़ जानेसे आंख चली ही जाती है।

जब आंख अच्छी होने लगती है तब कभी कभी पलक और अक्षिगोलक (आंखका सफेद भाग) एक दूसरेमें जुट जाते हैं। ऐसा तभी होता है जब अक्षि गोलक और पलक दोनोंकी सतह जल गई होती है, दोनोंके एकमें जुट जानेसे बड़ी असुविधा होती है। रोगी अक्सर यही चाहता है कि ऑपरेशन करके आंख ठीक कर दी जाय। परन्तु इसका ऑपरेशन बहुत ही कठिन है। केवल अनुभवी विशेषज्ञ ही इसे ठीक तरहसे कर सकते हैं। साधारण डाक्टरोंसे अक्सर आंख जाती रहती है।

खौलते पानी या भापसे जलना—खौलते पानी या भापसे जलेका उपचार भी ठीक वही है जो आगसे जलने पर किया जाता है।

पैर जलना—यदि रोगी जूता या मोजा पहने ही जला हो तो जूता या मोजा उतारने की चेष्टा न करनी चाहिए, क्योंकि इनके उतारनेमें घावके बढ़ जानेका डर रहता है, आवश्यकतानुसार जूते और मोजेको काट या चीर डालना चाहिए, परन्तु बराबर ध्यान रखना चाहिए कि छुरी या कैंची शरीरमें न लगे और किसी प्रकारसे रगड़ भी न लगे। फिर साधारण उपचार जैसा जलने पर किया जाता है करना चाहिए।

कण्ठ नालीका जलना—यदि तप्त जल, अधिक गरम चाय आदिसे गला भीतरसे जल जाय तो यह डर रहता है कि गला भीतर इतना सूज आए कि सांस लेना कठिन हो जाय और दम घुटने लगे। इसलिए रोगी को चारपाई पर लिटाकर बाहरी गलेकी सेंक खूब गरम गीले तौलिए या रुईसे करनी चाहिए। (देखो फोमेनटेशन) ठुड्डीसे लेकर हंसुलीकी हड्डीतक सब जगह अच्छी तरह सेंक होनी चाहिए। साथ ही रोगीको बरफ चूसने को देनी चाहिए। बरफ न मिले तो खूब ठण्डा जल धीरे-धीरे किसी पतली नलीसे चूसना या पीना चाहिए। यथा सम्भव शीघ्र डाक्टर की सहायता लेनी चाहिए।

डूबना—पानीमें डूबनेके विभिन्न परिणाम हो सकते हैं। यदि पानी ठण्डा नहीं है तो केवल दम ही घुटेगा, परन्तु बहुत ठण्डे पानीमें शारीरिक शक्ति बहुत शीघ्र क्षीण हो जाती है और मानसिक आघात भी बहुत लगता है। ऐसा भी सम्भव है कि डर या मूर्च्छाके कारण मृत्यु हो जाय। फिर बहुत ऊंचाईसे गिरने पर पानीकी चोटसे बेहोशी भी आ सकती है या यदि पानी छिछला हो तो पेंदीसे टकरा कर या पानीके नीचे छिपी किसी चट्टानसे टक्कर खाकर सर फट सकता है, या बेहोशी हो सकती है या अन्य कोई उपद्रव हो सकता है। यदि कोई व्यक्ति पानी पर गिरते ही डूब जाय और एक बार भी न उतराए तो समझना चाहिए कि सम्भवतः वह किसी प्रकार बेहोश हो गया है या सेवार (घास) कीचड़ आदिमें फंस गया है।

कृत्रिम श्वासकी रीति ऊपर बतलाई जा चुकी है। पन्द्रह मिनट तक पानीमें डूबे रह कर निकाले व्यक्ति भी कृत्रिम श्वासकी रीतिसे जीवित कर दिए गए हैं। इसलिए पूर्णतया मृत जानपड़ने वालोंको भी कृत्रिम श्वास देकर जीवित करनेकी चे अवश्य करनी चाहिए, विशेषकर यदि वह व्यक्ति पानीके अन्दर बीस पचीस मिनटसे अधिक डूबा न रहा हो। जब कृत्रिम श्वास की रीतिके उपयोगसे श्वास चलने लगे तो रोगीकी सेंक और मालिश करनी चाहिए जिससे रक्त संचार बढ़े।

पेटमें चोट—पेटकी चोट बड़ी भयानक होती है। दुर्भाग्यवश दुर्घटनाओंमें अक्सर पेट पर से मोटर या गाड़ी चली जाती है। यदि पेट फट जाय और अंतड़ी आदि निकल पड़ें तो आहत व्यक्ति को चित (पीठके बल) लिटा दो। कपड़ा खोलकर या काटकर किनारे कर दो। तौलिया या चादर खूब गरम (हो सके तो खौलते) पानीसे निकाल कर और अच्छी तरह निचोड़ कर घाव पर रखो। कपड़ा जहां तक सहा जा सके गरम रहे। इस तौलिए या कपड़े पर सूखा स्वच्छ कपड़ा काफी ओढ़ा देना चाहिए जिसमें भीगा कपड़ा न जल्द ठण्डा हो और न जल्द सूखे। रोगीको कुछ भी खाने या पीनेको नहीं देना चाहिए। डाक्टर जब तक न आए तब तक आधे-आधे घण्टे पर भीगा गरम कपड़ा बदलते रहना चाहिए।

यदि पेट फट गया हो परन्तु भीतरका कोई भाग बाहर न निकला हो तो भी रोगीको चित लिटाना चाहिए। यदि पेट

खड़े (ऊपरसे नीचे या नीचेसे ऊपरकी ओर) फटा हो तो रोगीको पैर तानकर लिटाना चाहिए, परन्तु यदि पेट बेड़े (दाहिने से बाएं या बाएंसे दाहिने) फटा हो तो पैर सिकोड़ देना चाहिए. और हो सके तो सर और पैरके नीचे तकिया लगा देना चाहिए। इस प्रकार घावका मुंह बहुत कुछ बन्द रहेगा। साधारण घाव पर जैसी पट्टी बांधी जाती है वैसी ही पट्टी इस घाव पर बांध देनी चाहिए। रोगीको कुछ भी खाने या पीने को नहीं देना चाहिए। काफी कपड़ा ओढ़ा देना चाहिए जिसमें रोगीको ठण्ड न लगने पाए। डाक्टरको तुरन्त बुलाना चाहिए क्योंकि सम्भव है भीतरके किसी अंगको चोट लगी हो।

कभी-कभी पेट पर चोट लगने से देखा जाता है कि पेटके भीतरी अवयव, साधारणतः आंत, पेटके किसी कमजोर हिस्से को फाड़कर या दबाकर पेटके किसी ओर चली जाती है यद्यपि यह त्वचाके अन्दर ही रहती है इसलिए वहां उभारके सिवा और कुछ दिखलाई नहीं पड़ता। जब अंतड़ी इतने जोरसे दब जाती है कि वह घुट जाती है (अर्थात् उसके भीतरका छेद दबनेके कारण बन्द हो जाता है) तब पीड़ा होती है और खूब मचली आती है। इसे अंत्रवृद्धि या आंत उतरना कहते हैं। (देखो अंत्रवृद्धि)। आंत उतरने पर रोगीको चित लिटा देना चाहिए और सर तथा जांघोंके नीचे तकिया लगा देना चाहिए। रोगीको अपना पैर सिकोड़ लेना चाहिए। फूले जगह पर बरफ या ठण्डे पानीसे तर पट्टी रखनी चाहिए, डाक्टरको तुरन्त बुलाना चाहिए।

प्रसव (अचानक)—कभी-कभी गर्भवती स्त्रियों को कहीं बाहर अचानक प्रसव हो जाता है (बच्चा पैदा हो जाता है) और वहां दाई उपस्थित नहीं रहती। ऐसी दशामें यह परमावश्यक है कि बच्चा और माता दोनोंकी जान बचानेके लिए उचित उपचार शीघ्र किया जाय।

चिकित्सा—स्त्रीको चित लिटा देना चाहिए। यथा-सम्भव वह हिले-डुले नहीं और न उसको कोई उठाए-बैठाए, चाहे कुछ भी हो उसे जरा भी हिलना न चाहिए। यथा सम्भव शीघ्र ही दाई, नर्स या डाक्टर बुलाना चाहिए। बच्चा स्त्रीसे नाल द्वारा जुड़ा रहता है जो कानी अंगुलीके बराबर मोटा होता है। इसपर किसी प्रकार खिंचाव या तनाव न पड़ने पावे। यदि दो चार घण्टेमें भी दाई आदि मिलनेकी सम्भावना न हो तो सहायकको चाहिए कि वह नाल को बच्चेकी नाभिसे लगभग ६ इंच हटकर कच्चे तागे, साड़ीके किनारेसे फाड़ी ½ इञ्च चौड़ी धज्जीके जरा मोटे धागेसे कसकर बांध देना चाहिए। बहुत बारीक धागेसे बांधने पर नालके कट जानेका डर रहता है। इससे एक इञ्च हटकर नालको फिर इसी प्रकार कसकर बांधना चाहिए। और इन बन्धे हुए दोनों भागोंके मध्यसे एक-दो इञ्च हट कर नालको स्वच्छ कैंची या छुरीसे काट देना चाहिए। देहातोंमें आवश्यकता पड़ने पर और छुरी या कैंचीके न रहने पर कोरदार खपड़ेसे ही नाल काट दी जाती है। बच्चे को ठण्ड न लगने पाये। जाड़ेके दिनोंमें गरम कपड़ा तुरन्त ओढ़ाना चाहिए। अन्य समय चादर आदि आवश्यकतानुसार ओढ़ा देनी चाहिए। यदि बच्चे की श्वास न चलती हो तो उसकी पीठको जोरसे थपथपाना चाहिए। यदि इतने पर भी श्वास न चले तो कृत्रिम श्वासकी रीतिसे श्वास चालू करना चाहिए।

उधर स्त्रीके पेड़ूको दबाए रखना चाहिए। यदि रक्तस्राव जोरसे होता हो तो पेड़ूको जोरसे दबाना चाहिए। रक्तके चकत्ते आदिको फेंकना न चाहिए क्योंकि उन्हींको देखकर दाईको पता चलता है कि खेरी=आंवल (Placenta) निकल आई है या नहीं।

बिजली—लोगोंकी धारणा है कि किसी पर प्राकृतिक बिजलीके गिरने पर उस व्यक्तिकी मृत्यु अवश्य हो जाती है, परन्तु यह बात सच्ची नहीं है। अक्सर वह व्यक्ति बेहोश तक नहीं होता। कभी २ तो वह कहीं जलता भी नहीं है। कारण यह है कि बिजली अक्सर बरसातके दिनोंमें ही गिरती है। उस समय प्रायः कपड़े पहले ही भीग गए होते हैं। इसलिये बिजली व्यक्तिके शरीरसे न जाकर भीगे कपड़ोंसे होकर चली जाती है। इसीलिये व्यक्तिको अधिक हानि नहीं पहुंचती। परन्तु सदा इसी प्रकार व्यक्ति बच नहीं जाता। कभी २ तो वह तुरन्त मर जाता है या बेहोश हो जाता है और एक दो जगह झुलस जाता है। झुलसनेसे केवल फफोलोंसे लेकर खूब गहरे घाव तक हो सकते हैं।

घरेलू बिजलीके तारको ऐसी जगह छू देनेसे जहां रबड़ या कपड़ा न चढ़ा हो ऐसा हीं धक्का लग सकता है और शरीर जल सकता है। बिजलीके तारको हटाने की रीति पहले बतलाई जा चुकी है। कृत्रिम और प्राकृतिक बिजली दोनोंसे विशेष अवस्थाओंमें हड्डी टूट सकती है, या लकवा मार सकता है, या व्यक्ति गूंगा या अंधा हो सकता है। डाक्टरोंकी दवा करनेसे

आहत व्यक्ति अक्सर अच्छा हो जाता है।

प्राथमिक चिकित्सा केवल आघात और जलनेकी सी की जाती है।

मरहम पट्टी—घावकी उचित रीति से मरहम पट्टी (dressing) करनी सबको जाननी चाहिये, क्योंकि छोटे २ घावोंके लिये डाक्टरों की सहायता लेना सबके लिये सम्भव नहीं है। ऐसा करना आवश्यक भी नहीं है; परन्तु स्मरण रखना चाहिये कि छोटे-से-छोटे घावकी चिकित्सा उसी सावधानीसे करनी चाहिये जैसे बड़े की, क्योंकि हानिकारक कीटाणुओंके घुस जानेसे घाव पक सकता है या रक्त विषाक्त (Septicaemia) विसर्प या सुर्खबादा (Erysipelas), अाक्षेप (tetanus), आदि भयंकर रोग हो सकते हैं।

मरहम-पट्टी केवल एक मुहाविरा है। इससे यह न समझना चाहिये कि घाव पर वस्तुतः मरहम लगाया जाता है। अवश्य ही पुराने जमानेमें मरहम लगाकर पट्टी बांधी जाती थी। इसीसे यह मुहावरा उत्पन्न हुआ है।

घाव पर पहले औषधसे तर कीटाणु रहित कपड़ा या औषधि लगा सूखा कीटाणु रहित कपड़ा रक्खा जाता है। फिर इस पर रूई रक्खी जाती है इस कपड़े और रूईको अंग्रेजीमें ड्रेसिंग (Dressing) कहते हैं। हिन्दीमें हम इसे उपचार वस्त्र या फाहा-रूई कहेंगे। शब्द सागरके अनुसार फाहा तेल, घी या मरहम आदिमें तर की हुई कपड़ेकी पट्टी या रूईको कहते हैं। जिस कपड़ेकी पट्टीसे फाहा-रूई बांधी जाती है उसे अंग्रेजी में बेंडेज (Bandage) कहते हैं। इसे हम पट्टी कहेंगे, यद्यपि साधारण बोल-चालमें पट्टी शब्द कभी बांधने वाले कपड़ेको कहते हैं, कभी फाहेको कहते हैं।

एक समय था जब पाश्चात्य डाक्टर लोग भी फाहेको औषधि युक्त तेलमें तर कर लिया करते थे (उदाहरणतः कारबोलिक तेलमें), पानीमें घोले रासायनिक पदार्थ वर्तमान समय में तेल और मरहमोंसे अधिक अच्छे समझे जाते हैं।

फाहा ऐसे कपड़ेका होना चाहिए जो पीब=राद, पंछा आदि को आसानीसे सोख सके और जो पूर्णतया कीटाणु रहित (Cerm free) हो। इसके लिए गॉज (Gauze), लिंट (lint), सूती कपड़ा, लिनेन (Linen) सभी उपयुक्त हैं। गॉज बहुत खखरा बुने कपड़ेको कहते हैं। यह इसी कामके लिए विशेष रूपसे बुना और कीटाणु रहित किया कराया दवाखानों में बिकता है। लिंट उस मोटे कपड़ेको कहते हैं जो इस प्रकार बुना रहता है कि एक ओर तो यह मोटा और गफ (घना बुना हुआ) कपड़ा सा लगता है, परन्तु दूसरी ओर ऐसा जान पड़ता है जैसे नरम रूई चिपकी हो। पहले मोटे कपड़ेको एक ओर खुरच कर लिंट बनाया जाता था। मरहम-पट्टी करनेके लिए विशेष लिंट कीटाणुहीन किया कराया दवाखानोंमें मिलता है। लिनेन देखनेमें सूती कपड़े-सा ही होता है, परन्तु रूईसे बने सूतका नहीं बुना रहता, यह यूरोपमें होने वाले विशेष पौधेके रेशोंसे बुना रहता है।

यदि बजारसे कीटाणुहीन गॉज आदि खरीदा जाय तो बात दूसरी है, परन्तु यदि साधारण कपड़ेका फाहा बनाया हो तो उसे पानीमें कमसे कम बीस मिनट तक उबाल लेना चाहिए। इस के बाद तन्दूरमें रूई और कपड़ा अच्छी तरह सेंक कर यह कीटाणु रहित किये जा सकते हैं। कीटाणुनाशक घोलमें डुबानेसे भी ये कीटाणु रहित किये जा सकते हैं; उदाहरणतः २½ प्रतिशत कारबोलिक ऐसिडका घोल या प्रतिशत लाइसोल (Lysole) का घोल। परन्तु यदि कुछ भी न मिल सके और तुरन्त पट्टी बांधना नितान्त आवश्यक हो तो बिना माड़ी किये हुए स्वच्छ कपड़का प्रयोग करना चाहिए।

पके अर्थात् पीबयुक्त घाओंको १ प्रतिशत लाइसोल, १प्रतिशत कारबोलिक ऐसिड या ½ ऐक्रिफ्लेविनके घोलसे धो कर और फाहेको इसी घोलमें तर करके परन्तु अच्छी तरह निचोड़ कर घाव पर लगाना चाहिए।

मरहम-पट्टी करने वाला कार्यारम्भ के पहले अपना हाथ साबुनसे धोकर कीटाणु नाशक घोलसे धो ले और हाथोंको बिना तौलिये आदिसे पोंछे ही सब काम करे।

बफारा या गीला सेंकके लिए देखो 'फोमेनटेशन'। ठंडी पट्टी (Cold compress) ऊपर कहीं कहीं ठंडी पट्टी रखनेके लिए लिखा गया है। ठंडी पट्टीकी रीति यह है कि तौलिया, फलालैन या कई तह सूती कपड़ा ठंडेसे-ठंडे पानीमें जो मिल सके तर कर लिया जाय फिर इसे जरा सा निचोड़ लिया जाय जिसमें इससे पानीका टपकना बन्द हो जाय, परंतु इतना न निचोड़ना चाहिए कि यह सूखा-सा हो जाय। जहां पट्टी रखनी हो वहां इसे रख देना चाहिए, परन्तु इसे किसी वस्तुसे ढकना नहीं चाहिए, क्योंकि पानी के उड़ते रहनेसे ही पट्टी ठंडी रहती है।

(शेष अगले अङ्कमें)

अष्ट पाद और कटल मछली

[लेखक—श्री गिरीश चन्द्र शिवहरे बी. एस. सी.]
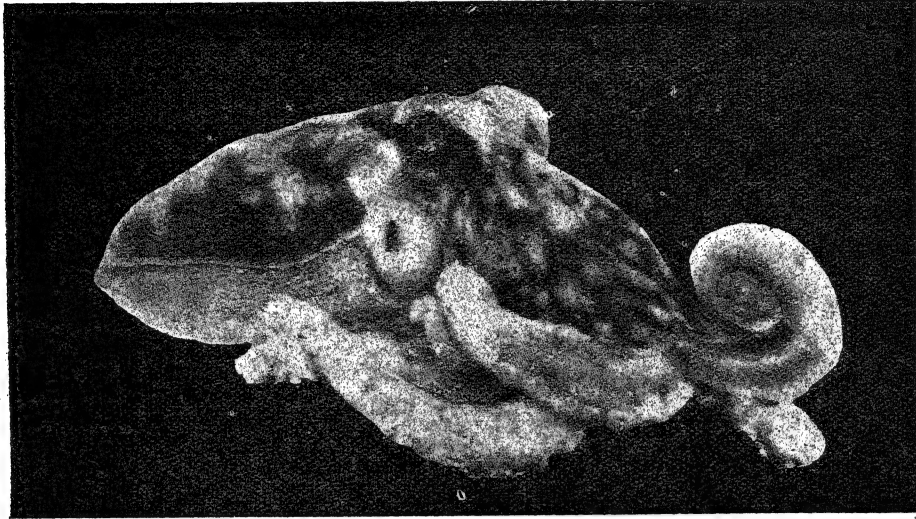
अष्टपाद

इसके आठ पैर होते हैं। पैरों पर जो गड्ढे दिखाई पड़ते हैं चूसके (Suckers) हैं। दोनों ओर उभरे हुये स्थानों पर एक एक आंख है। बाईं तरफ आवरण प्रकोष्ट है। इसमें शरीरके अन्य कोमल अवयव हैं।

अष्टपाद और कटल मछली शंख और घोंघे आदिकी जाति के जल जन्तु हैं, यद्यपि यह अपनी जातिके अन्य जन्तुओंसे बहुत भिन्न हैं। इनका इंद्रिय विन्यास, अन्य शङ्ख और घोंघे आदिसे अधिक उत्तम और श्रेष्ठ है। बहुत सी बातोंमें, यथा—आहार पकड़नेमें, धूर्तता और भयङ्करतामें ये मछलियोंसे भी बढ़ कर हैं। इस श्रेणीमें अष्टपाद और कटल मछलीके अतिरिक्त मोतिया, नौटिलस, कागजी नौटिलस, दशपाद, सेपिया इत्यादि भी सम्मिलित हैं। यह सब सामुद्रिक जन्तु हैं तथा इनमेंसे कोई भी स्थल, झील या नदियों आदिमें नहीं पाया जाता।

यह मांस भक्षी अति भयङ्कर होते हैं। छोटे-छोटे अष्टपादों और कटल मछलियोंसे तो नहीं, लेकिन बड़े अष्टपादों और कटल मछलियोंसे मछुए और गोता खोर भी भयभीत रहते हैं।

अष्टपाद और कटल मछलीका शरीर मांसल थैली (Sac) का बना हुआ होता है, जिसमें गलफड़े और पाचक अंग बन्द रहते हैं। शरीरके सन्मुख एक सिर होता है। यह बहुतसे पेरों — बहुधा इन्हें हाथ भी कहा जाता है——से घिरा होता है (मोतिया नौटिलस को छोड़ कर) इन पैरों या हाथों पर गोल गोल गड्ढे होते हैं। प्रत्येक हाथमें यह दो पंक्तियोंमें होते हैं। इनके किनारे मोटे और उठे हुए होते हैं। जिस प्रकार पिचकारीमें ढट्टा (Piston) होता है उसी प्रकार इन गड्ढोंमें भी ढट्टे के समान एक बटन होता है यह ऊपर और नीचे आ जा सकता है। किसी वस्तुके छूने और स्पर्श करने पर यह ढट्टा ऊपर खींच लिया जाता है। ढट्टेके खिंचते ही वह स्थान पूर्णतया शून्य (Vacuum) हो जाता है और किनारे कसकर उस वस्तुसे चिपक जाते हैं। इन अद्भुत यन्त्रोंके कारण अष्टपाद और कटक मछली जिस वस्तुको पकड़ना चाहती है बहुत दृढ़ता से पकड़ लेती हैं। एक बार इनकी पकड़ाईमें आनेके पश्चात् बिचारे शिकारका छूटना एक प्रकारसे असम्भव सा हो जाता है।

इन गड्ढोंको चूसक (Suckers) कहते हैं और यह प्रत्येक पांव पर आरम्भसे लेकर अन्त तक होते हैं।

इस विभागके जन्तुओंके कोमल अंग एक प्रकारके आवरण से ढके रहते हैं। इस आवरणके ऊपर एक कड़ा खोल होता है। इस विभागकी कुछ श्रेणियोंमें (अष्टपाद आदि पर) कड़ा खोल नहीं रहता और अन्दरका कोमल आवरण ही बाहर रहता है। ऐसी दशामें आवरणके दोनों छोर मिल जाते हैं और एक प्रकोष्ठ बना लेते हैं। शरीरके अन्य कोमल अवयव इसी प्रकोष्ठ में रहते हैं कुछ जातियोंमें कोमल आवरण द्वारा बने हुए प्रकोष्ठ में कड़ा खोल भी होता है।

अष्टपादके सिरके नीचे एक चौड़ा छिद्र होता है, इसमेंसे पानी गलफड़ (Gills) में जाता है। यह छिद्र आवरण प्रकोष्ठ के भीतर होता है। नीचे की ओर एक छोटी नलिका बाहर निकली रहती है। उसमेंसे मल मूत्र बाहर निकलता है। यह नालिका विशेष कार्यमें भी लाई जाती है। जिस समय यह जन्तु एका-एक भयभीत हो जाता है या अपने शत्रुसे हारने लगता है तो यह इस समय नलिकामें से एक स्याहीके सदृश तरल पदार्थ बाहर निकालता है। इससे समीप का पानी गंदला हो जाता है और शत्रु कुछ देख नहीं पाता, ऐसे अवसरमें यह भाग निकलता है। यह स्याहीके समान तरल पदार्थ, एक विशेष ग्रंथिमें जिसको मसि ग्रंथि कहते हैं—बनता है। वहांसे यह मलाशयमें से होकर नलिका द्वारा बाहर निकलता है।

मध्यमें हाथोंके बीच मुंह है। मुंहके दोनों ओर एक-एक बड़ी-बड़ी आंख है। मुंह एक जोड़ी पैनी दाढ़ों (Jaws) से सशस्त्र रहता है। यह दाढ़ें तोतेकी चोंचसे बहुत कुछ समानता रखती हैं। अष्टपाद आगे पीछे, दायें या बायें सब ओर जा सकता है। चलते समय इसका सिर पैरोंकी तरफ नीचेको रहता है। इस कारण इस श्रेणीका वैज्ञानिक नाम पैर युक्त सिर वाला जंतु है। यह बहुत अच्छी तरह तैरता भी है। ऐसी दशामें हाथ पतवार का काम देते हैं।

पैर युक्त सिर वाले जन्तुओंमें दो विभाग हैं। एकमें केवल दो गलफड़े (Gills) होते हैं और दूसरे विभागमें चार गलफड़े होते हैं।

पहिले विभागमें अष्टपाद, कटल मछली और कागजी नौटिलस सम्मिलित हैं। इनमें बाहरी कवच नहीं होता और यदि होता भी है तो केवल दो ढालके समान, परन्तु नरम पट्टियोंके रूपमें और यह भी आवरण प्रकोष्ठमें पूर्णतया छिपे रहते हैं।

अष्टपादकी दाढ़ें (Jaws)

तोते की चोंच से समानता होने के कारण इनको 'चोंच' भी कहते हैं।

साधारण अष्टपाद कुछ आलसी होता है, लेकिन शिकार पकड़ते समय या शत्रु द्वारा आक्रमण किये जानेके समय यह जीवन के लिये बहुत अच्छी तरहसे लड़ता है। दिनके समय यह बहुधा चट्टानोंकी दरारोंमें पड़ा रहता है। कभी कभी यह अपनी खोहके मुंहके आस पास चक्कर लगाता है और मछलियों या जल जन्तुओं को, जो कि इसके लम्बे हाथोंकी पहुंच में आ जाते हैं, पकड़ कर खा जाता है। यह संध्या समय बाहर निकलनेका साहस करता है। एक बीभत्स कृत्रिम राक्षसकी भांति यह अपने सर्प स्वरूप पैरोंसे समुद्रकी तलहटी पर रेंगता है। तैरते समय हाथों को जोड़ने वाली छातेके समान झिल्लीकी सहायतासे यह बड़ी मन्थर गतिसे तैरता है। लेकिन सर्वदा इसकी दुष्टता भरी आंखें चौकस रहती हैं।
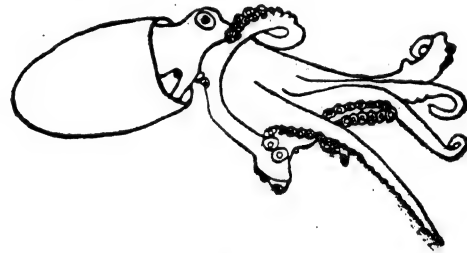
अष्टपाद तैरते हुए

यह चुपके चुपके किसी बेसुध अभागे शिकारके पास जाता है और एकाएक झपट कर उसको चारों ओरसे अपने जोरसे ऐंठे हुए हाथों द्वारा जकड़ लेता है। इन हाथोंसे बच निकलने की आशा बहुत ही कम होती है। तब अपने शिकारको मुंहके समीप लाकर अष्टपाद उसे अपनी चोंचसे चीरता है और अपनी दृढ़ और मांसल जीभ द्वारा उसे खाता है। जीभ पर नुकीले दांतोंकी पंक्तियां रहती हैं। प्रात; काल तक अष्टपाद अपनी क्षुधा शान्त कर फिर अपनी सुरक्षित खोहमें भोजन पचानेके लिये घुस जाता है।

यद्यपि अष्टपाद इतना क्रूर जन्तु है, लेकिन नारी अष्टपाद बहुत ही सावधान जननी है और अपने अण्डोंको सफलता पूर्वक सेनेके लिये बहुत कष्ट उठाती है। एक बड़ी नारी अष्टपादके चालीससे लेकर ५० हजार तक अण्डे होते हैं। श्रीयुत हेनरी ली. एफ. एल. एस., जिनको अष्टपादके स्वभावके निरीक्षणका भाग्यवश अवसर मिला था इसका वर्णन इस प्रकार करते हैं—"भाग्यवश हमारे अष्टपादने एक ऐसा स्थान चुना जहांसे उसकी प्रत्येक गतिको भली भांति देखा जा सकता था। उसका सारा शरीर खोहके मुंहमें आ जाता था तिस पर भी उसने सम्भवतः दो दर्जन जीवित घोंघों को पकड़ कर उनको एक दूसरे पर रख बाड़ा बनाया और उसके पीछे वह स्वयं बैठा। उस पर चढ़ कर वह दिन रात निद्रा रहित आंखोंसे देखा करता, उसके दो हाथ सर्वदा बाहर निकले रहते, मानो पहले ही से किसी शान्ति भंग करने वालेकी राह देख रहे हों। उसके साथी भी उन लम्बे २ हाथोंके निकट जाना भयावह समझते थे; यह तक कि वह अपनी स्त्रीको भी अविश्वासकी दृष्टिसे देख कर दूर ही रखता था। यदि कभी वह निकट आनेका साहस भी करती तो उसको देखकर एक डरावनी मुद्रा धारण कर उठता, उसके शरीरमें क्रोधकी लहर दौड़ जाती और वह अपने हाथोंको सीधा और लम्बा कर अपनी स्त्रीका स्वागत करनेको उद्यत होता। बेचारी अपमानित स्त्रीउस भीषण स्पर्शके विचार मात्र ही से कांप कर, पैर युक्त सिर वाले जन्तुओंके अल्प सामयिक दाम्पत्य सुख पर उदास मनसे विचार करते हुये एक ओर चली जाती।"

"जब कभी नारी अष्टपादको छेड़ा जाता तो वह अपने दोनों ओरकी झिल्लीको चौड़ा कर उसे नौकाके समान बना कर उसमें अंडोंको भर लेती। कभी कभी वह मुंहके नीचे वाले छिद्रसे पानी की धार छोड़ कर उन्हें धोती भी थी। वह केवल आहार प्राप्त करनेके समयको छोड़ कर सर्वदा अंडोंके पास रहती थी।"

अष्टपादके अंडे छोटे और चिकने होते हैं, उनका उपरी खोल लचीला होता है। अंडे अंगूरोंके गुच्छेके समान इकट्ठे रहते हैं यह एक दूसरेमें एक रज्जु द्वारा जुड़े रहते हैं। बच्चा पैदा होनेमें सम्भवतः पचास दिन लगते हैं। अंडेसे निकलते समय तक बच्चेके सम्पूर्ण अवयव पूर्ण रूपसे बन जाते हैं। अंडेसे निकलनेके पश्चात् थोड़े समय तक अष्टपाद समुद्रकी ऊपरी सतह पर धूपमें घूमता रहता है लेकिन बड़े होने पर शनैः शनैः प्रकाश से दूर भागता है और अचल आलसी होने लगता है। कुछ अण्डे इनमें से हजारों मछलियों और जल जन्तुओंके शिकार हो जानेके कारण परिपक्व नहीं हो पाते।

कागजी नौटिलस पेपर नौटिलस

कागजी नौटिलस और अष्टपादमें इतना ही अन्तर है कि कागजी नौटिलसमें बहुत सुन्दर बना हुआ बाहरी कवच होता है। यह कवच अन्य शंख घोंघे आदिमें मांस पेशियों से बंधा होता है, लेकिन कागजी नौटिलसमें यह दो हाथोंकी सहायतासे अपने स्थान पर रहता है। इसके हाथ विशेष रूपसे इस कार्यके लिये ही बन गए हैं। कागजी नौटिलसका कवच वास्तविक कवच नहीं है क्योंकि यद्यपि यह शरीरकी रक्षा करता है लेकिन इसका मुख्य उद्देश्य अंडोंकी रक्षा है केवल स्त्री नौटिलस ही में कवच होता है। नर नौटिलसमें नहीं।

कागजी नौटिलस
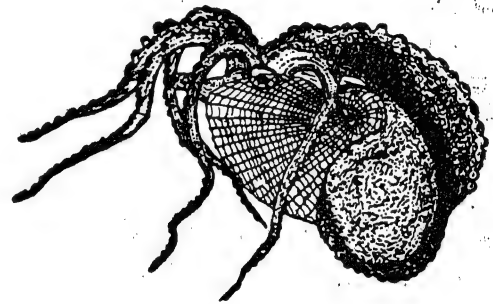
यह नारी नौटिलस है। शरीर पर कवच है।

कागजी नौटिलस पुराने समयके लोगोंको भी मालूम था। (अरस्तू) अरीस्टोटेल ने शान्त समुद्रमें तैरते हुये नौटिलसकी उपमा महासागरमें तैरते हुए उस जहाजसे दी है जिसके पास हवा भरनेके लिये पाल उठे हुये हों।

नौटिलस समुद्रकी तलहटी पर रेंगता हुआ चलता है। जब यह तैरता है तो इसके हाथ पतवारका काम नहीं देते, लेकिन सिरके नीचेके छिद्रसे पानीकी धारा पीछे फेंक कर उसके कारण आगे बढ़ता है।

नौटिलसके बच्चोंमें अण्डेसे निकलने के दस या बारह दिन पश्चात् कवचका बनना आरम्भ होता है।

कटल मछली

कई बातोंमें कटल मछली अष्टपादसे भिन्न है। मुंहके चारों

और आठ हाथ होते हैं। यह अष्टपादके हाथोंसे छोटे होते हैं। इन हाथोंकी भीतरी सतह पर चूसकोंकी कई पंक्तियां रहती हैं। हाथोंके मुंडमें से दो विशेष हाथ निकले रहते हैं, इनकी लंबाई कभी कभी सम्पूर्ण शरीरसे तिगुनी होती है। इनके सिरे मोटे होते हैं और इन स्थानोंको छोड़ कर और कहीं चूसक नहीं होते। चूसक हाथकी सतहसे मिले नहीं होते, लेकिन छोटी छोटी नालों पर स्थित होते हैं। यह एक चक्रसे घिरे रहते हैं जो कि चिकना या दांतीदार होता है और किन्हीं किन्हीं जातियोंमें इनमें बिल्ली के समान पंजे होते हैं। कटल मछलीकी दाढ़ें, अष्टपादके ही समान होती हैं या कुछ छोटी होती हैं। अष्टपाद और इसमें एक विशेष अन्तर यह भी है कि इनमें आन्तरिक कवच होता है।

कटल मछलियोंके शरीरका परिमाण भिन्न २ होता है। कुछ ६० फुट लम्बी होती, हैं कुछ दो इञ्चसे भी अधिक नहीं बढ़ने पातीं। इसी प्रकार इनकी बाहरी बनावट भी भिन्न होती है।

कटल मछलियां भुण्डमें और समुद्रके किनारे के समीप रहती हैं। यह सभी समुद्रोंमें पाई जाती हैं लेकिन शीतोष्ण समुद्रोंमें अधिक पाई जाती हैं।

इस वर्णनसे ऐसा प्रतीत होगा कि अष्टपाद और कटल मछली अजेय हैं और समुद्रके अन्य जीव इनसे कभी न जीत पाते होगें, लेकिन सर्वदा ही ऐसा नहीं होता है। एक व्हेल और कटल मछलीके युद्धका वर्णन श्री एफ. टी. बुलेनने लिखा है— "रातके ११ बजे के समय मैं जहाज परसे झुक कर समुद्रको देख रहा था कि एकाएक पानीमें बड़े जोर की हलचल दिखाई दी। मैं समझा कि कदाचित् समुद्रमेंसे कोई ज्वालामुखी पर्वत उभर आया है। रातके समय दूरबीन लाकर देखनेसे एक आश्चर्यजनक दृश्य दिखाई पड़ा। एक बड़ी व्हेल अपने ही बराबर की कटल मछलीसे भयङ्कर और डरावने रूपमें फंसी हुई थी। व्हेलके मुंहमें कटल मछली की पूंछकी ओर का हिस्सा था और व्हेलके चारों ओर कटल मछली के हाथ लिपटे हुए थे उनको देखने मात्रसे ही मुझे डर लगता था। कदाचित् सुपने में भी ऐसी लड़ाई का विचार न आया होगा। कटलकी आंखें बहुत बड़ी और काली काली थीं। चांदनीमें मटियाले शरीर पर वे आंखे बहुत चमक रही थीं। चारों तरफ बहुत सी मछलियां तथा अन्य जानवर घूम रहे थे। यह लूट खसोट की चिन्तामें थे। इस भयङ्कर लड़ाईका अंत नहीं मालूम हुआ लेकिन कदाचित् व्हेल अधिक शक्तिशाली साबित हुई।"
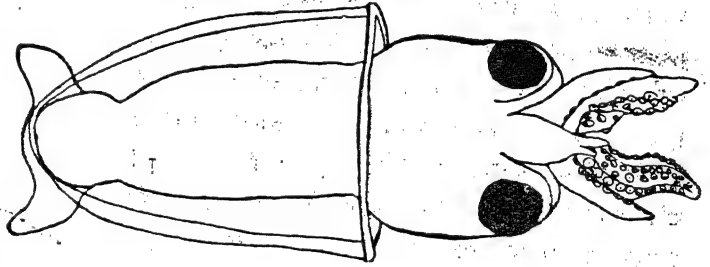
कटल मछली का बच्चा

कभी कभी स्त्री अष्टपाद और कटल मछली बहुत भयङ्कर हो जाती हैं और वे नर अष्टपाद या नर कटल मछलीको जो उनके समीप आते हैं खा डालती हैं। लेकिन जातिका उत्पादन तो करना ही पड़ता है अतः, नर अष्टपाद या कटल मछली अपने एक हाथमें शुक्र भरकर उसे स्त्री अष्टपाद या कटल मछलीके समीप फेंक कर भाग आता है। वह हाथ बहुधा स्त्रीके आवरण प्रकोष्ठमें पहुंच जाता है इस प्रकार स्त्रीके अण्डों का बीजारोपन हो जाता है।

—०—

शरबत

[लेखक—श्री श्रीचरण वर्मा, एम. एस. सी.]

चाशनी बनाना

चाशनी बनानेमें इस बातका ध्यान रखना चाहिए कि चीनी बहुत साफ तथा पानी भी साफ और खौलाया हुआ हो। १ सेर चीनीके लिए ½ सेर पानी हो। चीनी और पानीके भाग शर्बतके गाढ़े और पतले रखनेके अनुसार घटाये, बढ़ाये जा सकते हैं। किन्तु साधारणतः २ भाग चीनी और १ भाग पानीकी चाशनी अच्छी समझी जाती है, क्योंकि इसको खौलानेके बाद न तो इसमें दाने पड़ते हैं और न यह खटाती ही है। चीनी को एक बर्तनमें रखो और गर्म पानी डालकर चलाओ। इस घोलको धीमी २ आँच पर गर्म करो। आगका बहुत धीमा रखना इसलिये आवश्यक है कि घोल पानीके खौलनेके ताप तक पहुंचने पर भी फटने लगता है। इसलिये सर्वोत्तम यह है कि चीनीके ऊपर ठण्डा पानी डालो और उन दोनोंको एक ढके हुए बर्तनमें रख दो और धीरे २ हिलाते जाओ फिर धीमी २ आंच लगाओ। यदि चाशनीका बर्तन एक दूसरे पानी भरे हुए बर्तनमें रखकर खौलाया जाय तो और भी अच्छा हो। चाशनीको उस समय तक गर्म करना चाहिए जब तक कि उसकी धार तेल की तरह गिरने लगे और उसको उंगली पर लेकर छूनेसे तार बंधने लगे। जब उसको फूंकने पर बारीक झिल्ली सी पड़ने लगती है तब चाशनी को संतृप्त समझना चाहिये। इन साधारण विधियोंसे चाशनी की तैयारी देखनेमें बहुधा भूल हो जाती है। अतः शर्बतके कारखानोंमें एक चाशनी मापक यन्त्र (Baums' Saccehoro meter) को चाशनीमें डालकर उसका गाढ़ापन और घनत्व (Specific gravity) को नापते हैं।

दो आउंस संपृक्त चाशनी तोलमें १½ छटांक और उसका घनत्व (Specific gravity) १·३२ या ३५° गुरुत्वांक (Baume) उसका क्वथनांक (खौलने का ताप) २२०°F, उसका घनत्व २१२°F के ताप पर १·२६ या ३०° गुरुत्वांक Baume होना चाहिये।

ठीक बनी हुई चाशनी पारदर्शक होनी चाहिये, और रखने पर उसमें दाने न पड़ने चाहिये। इसीलिये इतनी शक्कर पानीमें नहीं डाली जाती कि वह अधिक संपृक्त हो जाय। परन्तु यदि उसमें दाना पड़ जानेका सन्देह हो तो प्रति गैलन दो या तीन ड्राम साइट्रिक ऐसिड मिला देना चाहिये। क्रीम आफ टारटार (Cream of Tartar) भी कुछ लोग मिलाते हैं। यदि शर्बत खुले रहें और उचित रीतिसे बन्द करके न रखें जायें तो शीघ्र ही खट्टे हो जाते हैं। इसीलिये उनको अच्छी तरह बन्द करके ऐसी जगह रखना चाहिये जहां का ताप ५५° के लगभग हो। यदि खौलते समय ही शर्बत इस प्रकार बोतलोंमें बन्द कर दिये जायं कि उनमें हवा न जा सके तो वह कई वर्षों तक बिना खटाये रह सकते हैं। इसकी सरल तरकीब यह है कि गर्मकी हुई बोतलोंमें शर्बतको करीब २ पूरा भरकर काग लगा दें। जब बोतलें ठण्डी हो जायं तो थोड़ा सा अलगसे गर्म किया हुआ शर्बत उनमें डालकर बोतलोंको बिलकुल भरकर पक्के काग लगाकर उनको मोम, चपड़ा या झिल्लीसे मढ़ दें। यदि शर्बतमें पोटैशियम सलफेट (Sulphuric Potash) या सैलिसिलिक ऐसिड (Salicylic Acid) मिला दिया जाय तो वे कभी खटाते नहीं। उनको ठीक रखनेके लिए बीस हिस्सेमें एक हिस्सा स्प्रिट भी मिलाई जाती है। यदि शर्बत खट्टा भी हो जाय तो शर्बत की बोतलें एक दूसरे पानी भरे हुए बर्तनमें रखकर खौला देनी चाहियें।

यदि मिश्रीकी चाशनी गुलाब जलमें बनाई जाय या दोबार साफ की हुई चीनीका शर्बत पानीमें तैयार करके खौलाया जाय तो यह न तो खट्टा हो सकता है और न दाने ही पड़ सकते हैं।

फलों का रस निकालना

दैनिक प्रयोगके लिये साफ फल लो और उनको हाथ से मल कर या निचोड़ कर रस निकालो या नींबू, नारंगीकी तरहके फलोंका रस निचोड़नेके लिये—सरौतेकी शक्लकी मैशीन बनी हुई मिलती है—इसमें एक ही फलका रस एक बारमें निकाला जा सकता है। गूदेदार फल या उनके टुकड़े भी इस मैशीनमें कुचले जा सकते हैं। इस तरह कुचल कर गूदेको एक कपड़ेकी थैलीमें लटकादो और नीचे साफ बर्तन रख दो जिसमें रस टपके। जो गूदा थैलीमें रह जाय उसको मजबूत कपड़ेमें समेट कर बाकी रस निकाल लो।

जब बहुत से फलोंका रस निकालना हो तो रस निकालने

की लकड़ीकी मैशीन बनवा लेनी चाहिये। कुचले या टुकड़े किये हुये फल कपड़ेमें लपेट कर मैशीनके पेंदेमें रख कर ऊपरसे लकड़ीका गोल तख्ता जो कि अन्दरके बर्तनमें अच्छी तरह बैठता है रक्खा जाता है। इसके बाद ऊपरका पेच धीरे-धीरे घुमाया जाता है और फलों पर दबाव पड़नेसे रस मैशीनके नीचे रक्खे हुये बर्तनमें एकत्रित हो जाता है।

जब रस निकल आये तो साफ की हुई बोतलोंमें बन्द कर लो, और आवश्यकतानुसार प्रयोग करो। लेकिन जिस तरह चाशनी बिना सुरक्षित (Preserve) किये थोड़े ही दिनोंमें खटा जाती है उसी प्रकार फलोंके रस भी अगर कीटाणु रहित (Sterilise) न किये जांय, अथवा बिना रासायनिक वस्तुओं के मिलाये ही रखे जायें तो उनका स्वाद स्थिर नहीं रहता। इसीलिये रसभरी बोतलोंको कीटाणु नाशक यन्त्र (Steriliser) के पानीमें डुबो कर कीटाणु रहित (Sterilise) करो। लगभग एक घंटे तक पानीका ताप १७०°F—१७५°F तक रखना चाहिये। दूसरी तरकीब यह है कि रसको बोतलोंमें बन्द करने से पहले सोडियम बानजोइट (Sodium Benzoate) का एक प्रति सैकड़ा घोल बनाकर दस हिस्से शर्बतमें आधेसे एक भाग तक मिला देना चाहिये। रसको अच्छे रखनेकी तीसरी तरकीब यह है कि रस निकाल कर उसमें तुरन्त ही दानेदार शक्कर धीरे-धीरे डाल कर चलाते जांय जिससे कि वह घुल जाय। इसके बाद बोतलोंको कीटाणुरहित करके बन्द करना चाहिये। ऐसा करनेसे रसका स्वाद बिलकुल स्वाभाविक बना रहता है। पांच बोतल रसमें १½—२ सेर तक चीनी ठीक होती है। जब सब चीनी घुल जाय तो हाइड्रोमीटर (Hydrometer) से उसका घनत्व नापो कि २५° गुरुत्वांक (Baume) है या नहीं। अगर इससे कम हो तो थोड़ी थोड़ी शक्कर और मिलाओ कि उतना हो जाय। परन्तु यदि २५° Baume से ज्यादा हो तो थोड़ा सा फल का रस और मिलादो। कीटाणुनाशक यन्त्रसे निकालने के बाद बोतलोंको लाख या मोम से मढ़ देना चाहिये।

शरबत बनाने की विधियां

स्वाभाविक शर्बत दो प्रकारसे बनाये जाते हैं। एक वह है जिसमें फलके रस बिना गर्म किये ही शर्बत बनाये जाते हैं। इसी रीतिको ठण्डी रीति (Cold Process) कहते हैं। इस प्रकार बनाये हुये शर्बत बन तो सरलता पूर्वक जाते हैं परन्तु एक या दो सप्ताह से अधिक नहीं ठहर सकते। परन्तु जो शर्बत गर्म करके अथवा गर्म रीतिसे बनाये जाते हैं वह बहुत दिनों तक ठीक रहते हैं।

जिस फलका शर्बत बनाना हो पहले उसको छील काट कर साफ करलो और निम्न लिखित विधियोंमें से किसी एक से बनाओ:—

(१) रसीले फलोंके लिये—

फल २ सेर, ठंडा पानी १½ सेर, टारटैरिकऐसिड २ तोले फलोंको कुचल कर चीनी या कांचके बर्तनमें रख लो। टारटैरिकऐसिडको थोड़ेसे पानीमें घोललो और बाकी पानी फलों में डाल दो और घुला हुआ ऐसिड धीरे-धीरे कुचले हुये फलों पर डालो और लकड़ी या कांचके चम्मचसे मिलाओ। इसको तीन या चार दिन तक रक्खा रहने दो। परन्तु प्रतिदिन एक या दो बार चला देना चाहिये। इसके बाद साफ कपड़ेमें छान लो और तीन पाव रसमें एक सेरके हिसाबसे दानेदार चीनी मिलाओ। जब चीनी घुल जाय तब साफकी हुई सूखी बोतलों में भर कर ठंडी जगहमें रखदो, परन्तु इनकी काग कड़ी न बन्द करो। क्योंकि इनमें थोड़ा खमीर उठने लगता है। जब खमीर उठना बन्द हो जाय तब काग अच्छी तरह बन्द कर देना चाहिये। इस प्रकार के शर्बत भारतवर्षके गर्म भागोंमें और विशेषतः ग्रीष्म ऋतुमें अच्छे नहीं बनते परन्तु ठंडे भागोंमें या शरद ऋतुमें अच्छे होते हैं। इनमें चीनी यथेष्ट मात्रामें होनेके कारण जल्दी खराब नहीं होते।

(२) जिस फलका शर्बत बनाना हो उसका रस निकाल लो और एक बोतल रसमें एक सेर दानेदार चीनी डालो और काग लगा कर मामूली ठंडी जगहमें रख दो। इन बोतलोंको एक दो बार नित्य हिला देना चाहिये जिससे कि शक्कर घुल जाय। यह शर्बत चीनीका संयुक्त घोल होनेके कारण स्वादमें अच्छा बना रहता है परन्तु मीठा अवश्य ही अधिक होता है।

(३) ऊपरकी दोनों विधियोंमें चीनी डालनेके बजाय यदि चाहो तो तैयारकी हुई चाशनी डाल कर बनाओ।

(४) सबसे अच्छी विधि जिससे शर्बत बिक्रीके लिए बनाया जाता है, यह है—जिस फलका शर्बत बनाना चाहो उसके डंठल इत्यादिको साफ करके लकड़ी वाली कुचलनेकी मैशीनमें जिसकी चर्चा ऊपरकी जा चुकी है अच्छी तरह कुचल लो। तब उनको निकाल कर चार दिन तक ऐसे कमरेमें रक्खो जिसका ताप ६८°F—के लगभग हो। इसके बाद साफ कपड़ेमें रख कर उन

का पूरा रस निचोड़ लो और दो दिन तक ठंडी जगहमें रखदो; फिर दो सेर रसमें तीन सेर पिसी हुई मिश्री मिला कर धीमी आंच लगाओ। जब सब मिश्री घुल जाय और दस या पन्द्रह मिनट शर्बत खौल चुके तब आग परसे उतार लो। गर्म रहने पर ही हल्के फलालैनके कपड़ेमें छान कर जो रंग मिलाना चाहो मिलादो और तुरन्त ही स्वच्छ बोतलोंमें भर दो। जब बोतलें ठंडी हो जायं तब उनमें खुशबू मिलानी हो तो मिला दो और जो जगह खाली हो उसमें गर्म किया हुआ शर्बत भर कर कड़ी काग लगादो। बोतलोंमें भरनेसे पहले रसके ऊपर जो झाग आई हो उसको अलग कर देना चाहिये और नीचे बचा हुआ तलछट भी बोतलमें न जाने दो।

अगर बहुत अच्छा शर्बत बनाना हो तो फलोंको कुचलके पांच सेर फलोंमें आधा पाव पिसी हुई मिश्री छिड़क कर रखने चाहिएं।

(५) शर्बत बहुधा फल या उनके रस या चीनीको गर्म करके तैयार किए जाते हैं। परन्तु आवश्यकतासे अधिक गर्म हो जाने पर शक्कर का घोल फट जाता है। जिससे कि शर्बत ठण्डा होने पर उसमें दाने पड़ जाते हैं। इसलिए जितनी आवश्यकता हो उतना ही खौलाना चाहिए। एक दफेसे अधिक जोश न आना चाहिए। अधिक देर तक खौलानेसे शर्बतका स्वाद भी कुछ बिगड़ जाता है। इसका उपाय यही है कि पानी भरे हुए या भाप भरे हुए दूसरे बर्तनमें उसको गर्म करें।

यदि बिक्रीके लिए अधिक मात्रामें बनाना हो तो वायु हीन पात्र (Vacuum Pan एक विशेष प्रकारकी दोहरी बनी हुई कड़ाई जिसमें हवा नहीं जाती) काममें लाएं। पहिले फलोंके रसको थोड़ा गर्म करो और चीनी डाल कर चलाते जाओ। तब आग भी तेज कर दो। उसका ताप १३५°F तक पहुंच जाना चाहिए।

अगर वायु हीन पात्र न हो तो रसके बर्तन को कनस्तर या किसी बड़े बर्तनमें रखकर बाहरी बर्तनमें इतना पानी भरो कि खौलने पर फल वाले बर्तनमें न जा सके और तब आग पर रख कर इतनी आंच लगाओ कि खौलने लगे। इस समय रसका ताप १७५°F–१८५°F के लगभग रहेगा और रसका स्वाद न बिगड़ेगा। वायु-हीन पात्रमें गर्म करनेका यही लाभ है कि उसमें १३५°F तक ही ताप लगाना पड़ता है। परन्तु यदि रसके बर्तन को बिना किसी पानी भरे हुए बर्तनमें रक्खे आग पर पकाया जाय तो चीनीमें जलाइंद आ जायगी, वह स्वाद हीन हो जायगा, और रंग भी बदल जायगा।

दूसरी बात जो इस रीतिसे शर्बत बनानेमें होती है यह है कि खुली हवामें खौलानेसे बहुत कुछ रसका स्वाद भाप बन कर उड़ जानेसे नष्ट हो जाता है। इसलिये बन्द बर्तनमें गरम करना चाहिये। अच्छा तो यही है कि रस भपके में गरम करो; और जो रस भाप बन जाय, उसे फिर ठण्डा करके रस बना लिया जाय, और बादको शर्बतमें मिला दिया जाय कि जिससे उसका पूरा स्वाद बना रहे।

शर्बत का रक्षण और बोतलोंमें भरना

जिस प्रकार चाशनी बनानेके बाद यदि उसमें कुछ रासायनिक वस्तुएं न मिलाई जांय और वह अच्छी तरह बन्द करके न रक्खी जांय तो वह जल्दी ही खराब हो जाती है, उसी प्रकार शर्बत बन जानेके बाद उसके स्वादको स्थिर रखनेके लिये कई तरकीबें की जाती हैं।

सबसे आसान तरीका जो काममें लाया जाता है वह कीटाणु रहित करना (Sterilisation) ही है, जैसा कि चाशनी बनानेके सम्बन्धमें बताया जा चुका है। कभी कभी कार्बन द्विओषिद, गन्धक द्विओषिद और सोडियम बानज़ोयेट आदि मिलाए जाते हैं। किन्तु रासायनिक चीजोंके मिश्रण की अपेक्षा कीटाणु रहित (Sterilise) करना या पेस्टुराइज (Pasteurise) करना कहीं अच्छा है। बोतलोंमें भरा हुआ फलोंका खालिस शर्बत जो खौलते हुए पानीमें कीटाणु रहित (Sterilise) कर लिया गया हो ठण्डी जगहमें रखनेसे बहुत दिनों तक अच्छा बना रहता है।

कीटाणु रहित (Sterilise) करनेके लिये शर्बत को वायुहीन बोतलोंमें अथवा गर्म की हुई साधारण बोतलोंमें इस प्रकार भरना चाहिये कि वे १ या ½ इञ्च खाली रहें। तब उनको काग द्वारा बन्द कर दो और कीटाणु नाशक यन्त्र (Steriliser) में पानी भर कर डुबा दो और ऐसा गर्म करो कि एक घण्टेमें उसका ताप १६०°F पहुंचे और आधे घण्टे इसी ताप पर स्थिर रहे। फिर बोतलोंको इस यन्त्रसे निकाल कर पिघले हुए सफेद मोममें डुबोकर चपड़ेसे मढ़ दो। इस प्रकार बन्द करनेसे बोतलोंमें हवा न जायगी और शर्बत भी जल्दी खराब न होगा।

ठण्डी विधिसे बनाए हुए शर्बत को रखनेके लिये अगर

(पृष्ठ २०० के दूसरे कालमके नीचे)

बड़ी सेम (Sword Bearn)

मध्य अप्रैलसे जूनके अन्त तक इसे बोया जाता है। चार हजार फुटसे अधिक ऊंचे स्थानमें सेम नहीं होती। बड़ी सेम एक लता है। जिसमें तलवारकी तरह फली लगती है। जो कभी कभी एक फुटसे भी कुछ अधिक लम्बी होती है उसमेंसे लाल या सफेद दाने निकलते हैं। जब फली नरम होती है तो दाने और छिलके दोनों की तरकारी एक साथ ही बनती है।

किसी भी अच्छी जमीनमें जहां काफी खाद पड़ी हुई हो बीजको बोना चाहिये। बीज पांच पांच फुटकी दूरी पर पंक्तियों में बोया जाता है, प्रत्येक पंक्तिमें बीज एक फुटकी दूरी पर लगाया जाय तो अच्छा है।

जमीनमें थोड़ा बहुत खाद अवश्य ही चाहिये परन्तु बीज बोनेके ठीक पहले ही बहुत सा खाद देना अच्छा नहीं है। जब पौदे दो चार इंच लम्बे हो जांय तो निराई करनी चाहिये और पौदोंके अगल बगलमें लकड़ी गाड़ देनी चाहिये। जिसपर पौदे चढ़ सकें। इसके बाद इसकी विशेष सेवा करनेकी आवश्यकता नहीं रहेगी, केवल कभी कभी निराई कर देनी चाहिये।

मिर्च (लाल मिर्च)

अङ्गरेजी नाम चिल्ली (Chilli or Capsicum)

इसे अप्रैलसे लेकर जूनके मध्य तक बोया जाता है। यह मध्य भारतके प्रायः सब जिलोंमें होती है और बहुतायतसे बोयी जाती है। मिर्च की कई एक जातियां हैं; परन्तु सबके नाम और भेद बतलाना आवश्यक नहीं जान पड़ता। साधारणतः फल जितना ही बड़ा होता है उतनी ही उसमें तिक्तता कम होती है। छोटा फल अक्सर बहुत तिक्त होता है।

क्यारियोंमें बीज छींटकर उनको बोया जाता है। जब पौदे दो दो चार-चार इञ्च लम्बे हो जाते हैं तो उनको एक एक फुट की दूरी पर बो या रोप देना अच्छा होगा। पंक्तियां 1½ फुटसे लेकर दो फुटकी दूरी पर हों। जमीनमें खाद हो तो अच्छा है। परन्तु यदि मिर्च ऐसी जमीनमें बोई गई हो जहां पर दो चार महीने पहिले किसी भी दूसरी फस्लके लिये खाद दी गई हो तो फिर खादकी जरूरत नहीं होती। अन्यथा सड़ी खाद डालने पर कुछ सप्ताह बाद जमीन पूरी तरहसे अच्छी होगी। बोनेके बाद केवल निराई और यदि आवश्यकता हुई तो सिंचाई करनी पड़ती है।

कुछ पौदोंके फल बहुत बड़े होते हैं और उनमें तिक्तता इतनी कम होती है कि उनकी तरकारी बनाई जाती है। इसका बीज प्रत्येक अच्छा बीज बेचने वालेके यहांसे मिल सकता है।

ककड़ी

ककड़ी वस्तुतः खरबूजे की ही एक जाति है। इसके फल पतले, लम्बे और खीरे ही की तरह होते हैं। जब यह छोटी (बतिया) रहती है तो इस पर नरम और नन्हे २ बाल रहते हैं और रंग हल्का हरा होता है, परन्तु जब पकने लगती है तब रंग पीला हो जाता है। साधारणतः बहुत नर्म रहने पर लोग इसे कच्चा ही खाते हैं। अधिक पकने पर लोग इसकी तरकारी बनाते हैं।

ककड़ी साधारणतः खरबूजेसे कम सेवासे ही उत्पन्न की जा सकती है और इसे किसी भी जमीनमें पैदा कर सकते हैं, लेकिन अगर जमीनमें खूब खाद रहे और जमीनमें बालू हो तो फल अच्छा लगता है। बीज अक्सर एक एक गजकी दूरी पर बोया जाता है।

मध्य फरवरीसे लेकर अप्रैलके अंत तक यह बोई जा सकती है। इसके बीजको क्यारियोंमें इस प्रकार बोया जाय कि पौदों को आसानीसे पानी दिया जा सके।

---

३० मिनट तक १४०°F के ताप तक गर्म किया जाय तो सारे जीवाणु (Bacteria) थोड़ी ही देरमें मर जायंगे। कभी २ उनके बीजाणु रह जाते हैं जो इस प्रकार पैस्टुराइज (Pasteurise) करने पर भी नहीं निकलते। इनको भी नष्ट करनेके लिए दो दिन पीछे एक बार फिर पैस्टुराइज (Pasteurise) कर लिया जाय तो फिर कोई गड़बड़ होनेकी सम्भावना न रहेगी।

शर्बत तैयार हो जाने पर भरी हुई बोतलोंमें यदि तेज रोशनी लगती रहे तो रंग फीका पड़ जाता है। अतः बोतलोंको कागजमें लपेट कर ऐसे गोदाममें रखना चाहिए, जहां धीमी रोशनी पहुंचे और वह स्थान ठण्डा और सूखा होना चाहिए।

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५ ॥

भाग ५३ | कन्या, संवत् १९९८ विक्रमी | सितम्बर, सन् १९४१ | संख्या ६

चलचित्र (सिनेमा)

[लेखक—श्री रामनाथ श्रीवास्तव]

सिनेमा तो आज कल सभी देखते हैं; लेकिन भौतिक शास्त्रके वैज्ञानिकों या इंजिनियरोंके सिवाय शायद ऐसे बहुत कम लोग होंगे जिन्होंने सिनेमा भवन की गद्देदार कौचों पर बैठ कर सुमधुर वाद्य व गाने सुनने व सुन्दर चलते फिरते दृश्य देखनेके सिवाय यह जानने का प्रयत्न किया होगा कि हमारे समाज के इस सस्ते मनोरंजन के पीछे कितना इतिहास तथ्य और रहस्य भरा हुआ है; और आखिर यह सब होता किस तरह है ?

हमारी आज कलकी टाकीका इतिहास तो बहुत ही छोटा इस बीसवीं शताब्दी का ही है लेकिन मौन (Sileut) चलचित्र–सिनेमा (Cinema) जो इससे पुराना समझा जाता है वह भी १६ वीं शताब्दी से पहले का नहीं है।

तमाम वैज्ञानिक खोजों की तरह सिनेमा भी किसी एक वैज्ञानिक के द्वारा अकस्मात् ही आविष्कृत नहीं हो गया; बल्कि धीरे २ अपने आधुनिक रूप में आया है।

चलचित्र बनाने व दिखानेके सबसे पहले जो प्रयत्न हुये वह मनोरञ्जक और उल्लेखनीय हैं। सिनेमाके बारेमें उनका ऐतिहासिक काफी मूल्य है।

चलचित्र दिखानेका आरम्भ सबसे पहिले एक गोल तख्ती से हुआ। एक गोल तख्ती पर दस तसवीरें बनाई गईं थीं। पहिली तसवीर एक आदमी के मुंह की थी जिसके सामने एक लड्डू था। दूसरी तसवीरमें लड्डू उसके मुंहके पास दिखाया गया था। तीसरीमें और भी पास। इस तरहसे होते होते आठवीं तसवीरमें लड्डू उसके खुले मुंहसे छूता हुआ दिखाया गया था। नवींमें लड्डू उसके मुंहके अन्दर था और दसवीं एक बन्द मुंहकी तसवीर थी। यह तख्ती तेजीसे ग्रामोफोनके तवे या टर्नटेबिल (Turn Table) की तरह घुमाई जाती थी। यह तसवीरें एक ढकनेमें से तसवीरके बराबर कटी हुई

दराजोंसे देखी जाती थीं। इसमें ऐसा मालूम होता था जैसे कुछ दूरपर रखा हुआ एक लड्डू उस आदमीके मुंहमें उड़ कर पड़ गया हो। इस तरहका या इससे मिलता जुलता बच्चोंका खेल सभी सभ्य देशोंमें कभी न कभी होता रहा होगा, लेकिन प्रकट रूपमें इसे पहली बार बनानेका श्रेय श्री हेर्नर नामक एक अंग्रेजको १९वीं शताब्दीके शुरूमें प्राप्त हुआ। यह जोट्रोप (Zoetrope) कहलाता था। इसके बाद जोट्रोपमें तरह तरहकी ऐसी तसवीरें बनाई गईं जिनसे आदमियोंके चलने, घोड़ा दौड़ने या ऐसी ही अन्य वस्तुओंके चलने फिरने का दृश्य दिख सके। यह है हमारे सिनेमा के इतिहास का पहला पृष्ठ।

इस अनोखे खिलौने के कोई पचास वर्ष बाद अमरीका के एक वैज्ञानिक ने चलचित्र (Moving Pictures) खींचनेके लिये फ़ोटोग्राफिक कैमरेका प्रयोग किया। तब लम्बी सेलुलाइड की फ़िल्में तो नहीं बनती थीं, और न कोई ऐसी तरकीब ही थी जिससे जल्दी जल्दी एक ही कैमरेसे चलती फिरती वस्तुओंके चित्र लिये जा सकते। उस अमरीकन ने तमाम कैमरे सड़कके एक किनारे एक लाइनमें पास पास लगाये और हर एक के शटर (Shutter) से एक डोरा बांधा। यह डोरे सड़कके दूसरी तरफ खुटियोंसे खिंच कर बंधे हुए थे। डोरों के खिंचे रहनेके कारण कैमरोंके शटर बन्द रहते थे फिर उसने सड़क पर घोड़ा दौड़ा दिया। घोड़ेके दौड़नेसे एक एक डोरा टूटता जाता था और हर कदम पर घोड़े की एक एक फ़ोटो खिंचती जाती थी। इन तमाम तसवीरोंको एक लाइनमें क्रमसे छापने पर एक चलचित्र बन गया। इसमें कोई विशेष सफलता नहीं मिली, चूंकि थोड़ी देर भी चलचित्र-फ़ोटो खींचनेके लिये हजारों कैमरोंकी जरूरत पड़ती और इतने कैमरे आते कहां से।

१९ वीं शताब्दीके अन्तमें विलायतमें सेलुलाइडकी फ़िल्म बनी और तभी एक ऐसा कैमरा भी बना जिसमें कि छिदे हुये किनारोंकी फ़िल्म दानेदार चर्खियोंपर चल सके। इस परभी पहले पहल बिना किनारों वाली सादी फ़िल्में जो स्पूल (Spools) पर चलती थीं प्रयोगमें लाई गईं।

इस तरहसे बने हुये चलचित्रोंको देखनेके लिये एडिसनने एक ऐसा यन्त्र बनाया जिसमें कि तसवीरें हाथसे एक हैंडिल द्वारा चलाई जाती थीं। और एक शीशे (Eye Piece) द्वारा देखी जाती थीं। इन सबमें कमी यह थी कि इन्हें एक दफेमें केवल एक ही मनुष्य देख सकता था।

धीरे २ इन चलचित्रोंको पर्दे पर लानेका प्रयत्न किया गया। इसके लिये आवश्यकता यह थी कि आटोमेटिक मूवी (Automatic movie) कैमरे बनें और उसी तरह आटो-मेटिक मूवी मैजिक लैन्टर्न अर्थात् मूवी प्रोजेक्टर्स (Projectors) बनें इनका वर्णन आगे आयेगा। १९ वीं शताब्दी के खतम होते होते रावर्ट पाल नामक एक अंग्रेज पर्दे पर चलचित्र प्रदर्शन करनेमें सफल हुआ। सेलुलाइड फ़िल्म पर बना हुआ पहला चलचित्र बहुत ही छोटा था। कहा जाता है कि फिर भी लोगोंने उसे एक साथ पूरा २ देखनेसे इन्कार कर दिया। मजबूरन आधा फ़िल्म सोमवारको और आधा बुधवारको दिखाया गया; जब कि आज कल हम लोग सिनेमा हाउसमें बैठ कर उससे लगभग पांच गुनी १५०० हजार फुटके करीब लम्बी फ़िल्म आसानीसे देख लेते हैं।

२० वीं शताब्दीके शुरूमें ही सिनेमा हमारे मनोरञ्जनका एक आवश्यक अंग बन गया किन्तु—भारतवर्षमें इसका आगमन कुछ देरसे हुआ। तब भी बहुत दिनों तक केवल मूक Silent सिनेमा ही प्रचलित रहा। अब हम पहले थोड़ा सा साइलेन्ट मूवी कैमरे व प्रोजेक्टरको समझाने का प्रयत्न करेंगे।

हमारी आंख कुछ ऐसी है कि यदि कोई वस्तु सामनेसे एकाएक हट जाय तो उसके हटनेके बाद भी वह हमारी निगाहों में $\frac{1}{10}$ सेकण्ड तक बनी ही रहती है। इसलिये एक पर्देपर यदि कोई तसवीर दिखाकर हटा ली जाय और हटनेसे $\frac{1}{10}$ सेकण्ड बीतने के पहले ही यदि दूसरी तसवीर पर्दे पर आ जाय तो हम यह कभी नहीं जान पायेंगे कि थोड़े समय तक पर्दा बिल्कुल खाली रहा है, बल्कि यही समझेंगे कि पहली तसवीर ही दूसरीमें बदल गई है।

कैमरेका सम्पूर्ण विवरण तो यहां पर न दिया जा सकेगा लेकिन मोटे रूपसे उसके बारेमें कुछ बातें बताई जा सकती हैं। फ़िल्मके किनारे जैसा कि पहले लिखा जा चुका है छेद दार होते हैं और वह दांत वाली चर्खियों पर चलती है। एक रील या चर्खी कैमरे में ऊपर लगी होती है और एक नीचे। फ़िल्म चर्खी से खुल कर दूसरीमें लपटती जाती है। यह फ़िल्म बराबर चलती नहीं रहती। यदि ऐसा हो तो सब तसवीरें हिल कर खराब हो जांय। इसलिये पहले फ़िल्म का एक हिस्सा लेन्स (Lens) के सामने आकर कुछ देरको रुक जाता है। जैसे ही फ़िल्म रुकती है कि लेन्सका शटर खुल जाता है और सामनेके

चल या अचल दृश्य का एक पोज (Pose) आ जाता है। सामनेकी वस्तुके हिलने का असर फिल्म पर इसलिये नहीं आता कि बहुत जल्दी अर्थात् करीब १/१६ सेकण्डके बाद ही शटर बन्द होजाता है और करीब इतने ही समय तक बन्द रहता है। जितने समय तक शटर बन्द रहता है प्रकाश दर्शन पायी हुई (Exposed Film) सामने से हट जाती है और ताजी फिल्म सामने आ जाती हैं यह भी उसी फिल्मकी तरहसे प्रकाश दर्शन (Exposure) पाकर कर हट जाती है। जितनी देर शटर खुला रहता है फिल्म बिल्कुल स्थिर रहती है। यह सब इतनी जल्दी होता है कि एक मिनटमें लगभग २००० तसवीरें खिंच जाती हैं। शटर और फिल्म को बिजली द्वारा बिना हाथ लगाये (Automatically) चलाया जाता है कैमरा एक स्टैण्ड पर चढ़ा रहता है, जिससे वह हर तरफ घुमाया जा सके।

इसके बाद फिल्म बड़ी २ नालियोंमें डेवेलप (Develop) की जाती है और फिर एक बड़े ढोल drum पर लपेट कर सुखाई जाती है। चूंकि आज कल टाकी का युग है इसलिये यहीं पर ध्वनि-लेखन (Sound-recording) के बारेमें भी कुछ लिख देना अनुचित न होगा।

चलचित्रके साथ साथ ध्वनि के लिये प्रथम प्रयास ग्रामोफोन रिकार्डों द्वारा हुआ। यह तरीका बिल्कुल असफल साबित हुआ, चूंकि रिकार्ड बदलते रहने पर भी आवाजको चित्रके साथ ठीक २ तालमें (In syncfronization) रखना मुमकिन नहीं था और फिर यह तरीका बहुत खर्च वाला था रिकार्ड खराब भी बहुत जल्दी होते थे। इसलिए ध्वनिका लेखन भी फिल्म पर ही कर लेनेके प्रयत्न किये गये और इसमें सफलता भी मिली; किन्तु ऐसा फोटो एलेक्ट्रिक सेल (Photo-electric cell) का आविष्कार होने के बाद ही सम्भव हो सका, क्योंकि यही एक ऐसी वस्तु है जिसके द्वारा फिल्म पर किया हुआ ध्वनि लेखन स्वर में बदला जा सकता है। जिस फिल्मपर चित्र-लेखन होता है ध्वनि-लेखन उसी पर नहीं होता। यह एक अलग फिल्म पर लिया जाता है।

ध्वनि-लेखन (Sound recording) दो तरह का होता है। एक तो वह जो केवल कम या अधिक चौड़ी गहरी या हल्की बराबर लम्बाईकी लाइन में फिल्म पर देखा जा सकता है इसे अंग्रेजीमें वेरीएबिल डेन्सिटी मेथोड (Veriable density method) कहते हैं दूसरी तरहके ध्वनि-लेखन में एक तरफ तो बराबर गहराईका कालापन रहता है और दूसरी तरफ बिल्कुल साफ। इसमें जो रेखा इन दोनोंको अलग करती है वह टेढ़ी मेढ़ी चील बिलाव (Zigzag) सी देखी जा सकती है। उसमें केवल छोटी बड़ी एक तरफ काली और दूसरी तरफ साफ घाटियां व चोटियां—सी दिखती हैं। इसे अंग्रेजीमें वेरिएबिल एरिया रिकार्डिंग (Veriable area recording) कहते हैं। कैमरों द्वारा फोटोग्राफी कैसे होती है यह तो पुस्तकमें अन्यत्र लिखा गया है। लेकिन ध्वनि का चित्र फिल्म पर किस तरहसे लिया जाता है इसका यहां पर लिखना अनिवार्य है।
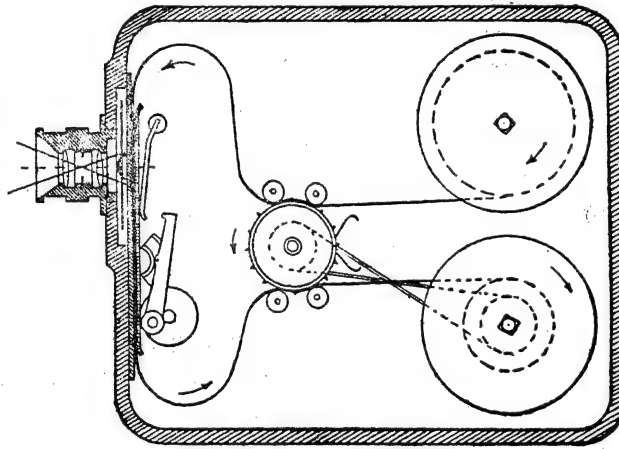
सिनेमा कैमरा की भीतरी बनावट।

तीरोंसे फिल्मके चलनेकी दिशा सूचित की गई है।

वेरिएबिल डेन्सिटी रिकार्डिंग के दो तरीके प्रचलित हैं।

पहला तरीका यह है कि एक बिजलीके लैंप (Excitor Lamp) का प्रकाश एक लेन्स द्वारा एक पतली दराज पर फोकस किया जाता है जो कि एक सीधी खड़ी हुई तख्ती में ऐड़ी बेड़ी कटी रहती है। दराज (Slit) के ठीक पीछे एक ड्यूरेल्यूमीनियम (Duraluminium) की पट्टी अर्थात् रिबन का सीधा फन्दा एक नाल (Horse-shoc) की तरह का लगा रहता है। वह ऐसा होता है कि उसकी एक पट्टी (Limb) तो दराज के ऊपर होती है और एक नीचे। इस तरहसे तख्तीकी दराजके पीछे रिबनकी एक दूसरी दराज तयार

हो जाती है। खिनके दोनों सिरे एम्प्लीफायर (Empli-Fier) से होते हुए माइक्रोफोनसे जुड़े होते हैं जो कि स्टूडियो में जहां पर कि तसवीर ली जाती है, बोलने वालेके मुंहके ऊपर टंगा रहता है। माइक्रोफोन ही टेलीफोनकी तरह ध्वनिको पकड़ता है और विद्युत्-कम्पनों (Electrical fluctuations) में परिवर्तित करके उसे खिन तक पहुंचा देता है। खिनके चारों तरफ एक चुम्बक (Electro-magnet) द्वारा चुम्बकीय क्षेत्र (Magnetic field) तैयार किया जाता है। चूंकि खिनके फन्देकी दोनों पट्टियों (Limbs) में विद्युत्-धारा (Electric current) विपरीत दिशाओंमें बहती है। इस लिए जब माइक्रोफोनसे आती हुई विद्युत्-धारा तेज हो जाती है तो पट्टियोंके बीचकी जगह जो केवल $\frac{१}{५०}$ इञ्च होती है; चुम्बकीय विकर्षण (Magnetic repulsion) की वजह से बढ़ जाती है। जब विद्युत्-धाराकी शक्ति कम होती है तो दोनों पट्टियां पास २ आ जाती हैं इस प्रकार ध्वनिका कम्पन व उतार चढ़ाव दो समानान्तर (Parallel) पट्टियोंके बीचकी दूरी के कम्पन (Vibration) में बदल जाता है। इस खिनके बीचकी दराजकी तसवीर एक लेन्स द्वारा एक चलती हुई फिल्म पर बनती जाती है। यह दराजकी तसवीर खिनकी दराजकी आधी अर्थात् केवल $\frac{१}{१००}$ इञ्च होती है। खिनकी पट्टियोंके बीचकी जगह कम ज्यादा होते रहनेके कारण ही लैम्पसे अधिक या कम प्रकाश दराज द्वारा फिल्म पर पड़ता है और साथ ही साथ दराजकी जो तसवीर चलती हुई फिल्म पर बनती जाती है उसकी चौड़ाई भी कम ज्यादा होती रहती है। यही फिल्म पर का ध्वनि-लेख (audio-graph) है।

दूसरा तरीका यह है; कि माइक्रोफोन से आया हुआ विद्युत्-कम्पन केवल एक पिण्डी (Coil) में से बहता है। इसी पिण्डी (Coil) के चारो ओर एक दूसरी पिण्डी भी होती है जो एक बड़े वोल्टेज की (High Tension) बैटरी द्वारा एक वैक्रान्त (Quartz) की नली के दोनों ओर जुड़ी रहती है। नली के अन्दर बहुत कम चाप पर (at a very low pressure) एक गैस भरी रहती है। गैस में से विद्युत्-धारा प्रवाहित होती रहती है और उससे एक प्रकाश उत्पन्न होता है। इस प्रकाशकी उत्पत्तिका कारण पुस्तक में अन्यत्र दिया हुआ है। यह प्रकाश एक दराज पर पड़ता है जो केवल $\frac{३}{५०}$ इञ्च चौड़ी होती है। फिल्म उस दराजसे चिपटी हुई चलती रहती है। इस तरहसे फिल्म पर दराजके बराबर की तसवीर बनती रहती है। माइक्रोफोन वाली पिंडी (Goil) की विद्युत्-धारा लैम्प वाली विद्युत्-धारा पर भी अपना असर (Induction) दिखा देती है इसलिये माइक्रोफोनके कम्पनके साथ साथ ही लैम्पके प्रकाश कम्पनमें कमी या अधिकता होती रहती है। इस तरहसे भी कम या अधिक प्रकाश वाली बराबर लम्बाईकी लाइनोंके रूपमें फिल्म पर ध्वनि-लेखन हो जाता है।

अब हम एक तीसरा तरीका वेरिएबिल एरिया रेकार्डिंग (Variable area recording) का लिखेंगे। एक तारका फन्दा (Loop) एक हल्के धागे (Fibre) द्वारा एक नालके रूपमें जो चुम्बक (Hors-shoe Electromagnet) बीचमें बहुत शक्तिशाली होता है, लटका रहता है। यह तार माइक्रोफोनसे जुड़ा रहता है। फन्दे पर एक बहुत छोटा और हल्का दर्पण (Mirror) लगा होता है। जैसे जैसे माइक्रोफोनसे फन्देमें आती हुई विद्युत्-धारामें कम्पन होता है वैसे वैसे ही चुम्बकीय क्षेत्र (Magnetic field) के कारण फन्दा भी इधर उधर घूमता है। एक लैम्पका प्रकाश लेन्स द्वारा फन्दे पर लगे हुए दर्पण पर डाला जाता है। इसका प्रतिबिम्ब एक छोटी खिड़की पर पड़ता है जिसके पीछेकी फिल्म चलती रहती है। खिड़कीके अन्दरसे फिल्म पर पड़ते हुए प्रकाशके प्रतिबिम्बका क्षेत्र फल (Area) जैसे २ दर्पण हिलता जाता है वैसे ही कम या अधिक होता जाता है। इस तरीकेमें प्रकाशकी तेजी (Intensity of illumination) तो एक ही रहती है; केवल फिल्मपर पड़े हुए प्रतिबिम्ब का क्षेत्रफल (area) बदलता रहता है।

चूंकि ध्वनि-लेखन एक अलग कमरेमें या एक मोटर बस (Motor bus) के अन्दर होता रहता है इसलिये ध्वनि-लेखन व चित्र-लेखन दोनों एक ही फिल्म पर नहीं किये जाते।

ध्वनि-लेखन व चित्र-लेखन दोनोंकी फिल्में (Negative) अलग अलग धोकर सुखाई जाती हैं

ध्वनि-लेखन होते समय इस बात का ध्यान रक्खा जाता है कि ध्वनि-लेखनमें फिल्मकी चाल चित्र-लेखनमें फिल्मकी चाल के बराबर हो।

अब यह दोनों फिल्में एक तीसरी फिल्म पर साथ ही अगल बगल छापी जाती हैं। यह तीसरी फिल्म पाजिटिव

फिल्म (Positive film) कहलाती है; और यही सिनेमा हाउसमें दिखाई जाती है। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है। चित्र-लेखन (Photography) में फिल्म हर वक्त चलती नहीं रहती; लेकिन ध्वनि-लेखनमें ऐसी बात नहीं होती। उसमें फिल्म एक ही वेगसे हर समय चलती रहती है। यदि ऐसा न हो और ध्वनि लेखन वाली फिल्म भी बनते समय उसी तरह से चले जिस तरहसे कि तसवीरों वाली फिल्म रुक रुक कर चलती है तो बीच बीचमें एक आध शब्द या स्वर ही टूट जाय। इस कारणसे ध्वनि-लेखन पाजीटिव फिल्म पर चित्र-लेखन से १४½ इञ्च आगेसे छापा जाता है। तरीका यह है कि पहले चित्र-लेखन छापा जाता है और तब तक ध्वनि लेखन के लिये छूटी हुई जगह एक अपारदर्शक (Opaqne) कागजकी पट्टीसे ढक दी जाती है और जब ध्वनि-लेखन छापी जाती है तब चित्र-लेखनकी जगह उसी तरह बन्द कर दी जाती है फिर यह फिल्म धोकर (Develop) तैयार कर ली जाती है।

इसके बाद फिल्मका सम्पादन अर्थात् एडीटिंग (Editing) होती है एडीटिंगमें फिल्म एक मेज पर लगी हुई दो चर्खियों पर हाथसे घुमाई जाती है। सम्पादक (Editor) ऊपरसे देखता जाता है; और जो हिस्से उसे नहीं जंचते उन्हें वह कैंचीसे काट देता है; और बाकी फिल्म फिर एक विशेष गोंदसे जोड़ दी जाती हैं। जो शाट (Shot) यानी दृश्य बिल्कुल खराब हो जाता है वह फिरसे खींच (Shoot) कर यथा स्थान जोड़ दिया जाता है।

इस तरहसे तैयारकी हुई फिल्म रीलों पर चढ़ा कर और डिब्बोंमें बन्द करके प्रदर्शनके लिये सिनेमा घरोंमें भेज दी जाती है। फिल्में जो कि हम सिनेमामें देखते हैं; वह ३६ मिलिमीटर फिल्म कहलाती हैं। चूंकि इनकी कुल चौड़ाई ३६ मिलिमीटर होती है। फिल्म कैमरे व प्रोजेक्टर दोनों पर ६० फुट एक मिनटमें चलाई जाती है। अब हमें यह जाननेकी आवश्यकता है कि यह फिल्म सिनेमागृहमें किस प्रकार प्रदर्शित की जाती है।

जैसा प्रबन्ध कैमरेमें चल चित्र खींचनेके लिये किया जाता है ठीक वैसा ही प्रबन्ध प्रोजेक्टर (Projector) में रहता है जिस प्रकार हम चलते फिरते दृश्योंकी तसवीर फिल्म पर खींच लेते हैं। ठीक उसी प्रकार हम प्रोजेक्टरमें उस फिल्मको चला कर पर्दे पर चलते फिरते दृश्य फिरसे पा जाते हैं। रह गई ध्वनिकी बात, सो जब फिल्म प्रोजेक्टरके लेन्ससे होती हुई नीचेकी चर्खी में लिपटती है तो वह एक डिब्बे (Sound reproduction) से होती हुई जाती है। इस डिब्बेमें ही फिल्मसे ध्वनि निकाली जाती है। चित्र प्रदर्शनमें तो फिल्म रुक रुक कर चलती है। और हर मिनटमे ६० फुट निकल जाती है; लेकिन एक दूसरी मोटर (Motor) द्वारा इस डिब्बे के अन्दर फिल्म उतनी तेजीसे (१८ इञ्च प्रति सेकण्ड) अनवरत गतिसे चलाई जाती है। जो १४½ इञ्च फिल्म एक दृश्य और उसके साथकी ध्वनि-लेखनके बीचमें रहती है वह प्रोजेक्टर व डिब्बे (Re-production unit) के बीचमें ढीली पड़ी रहती है जिससे कि दोनों तरहकी चालोंके कारण फिल्म खींचा तानीमें न पड़ कर ठीकसे चले। अब शायद पाठकोंको ध्वनि-लेखन चित्र-लेखनसे १४½ इञ्च आगे छापनेका कारण ठीकसे समझमें आगया होगा।

अब हम यह बताएंगे कि उस डिब्बेमें फिल्म पर बना हुआ ध्वनि-लेख किस प्रकार ध्वनिमें बदल कर सुनाई देने लगता है। मोटे रूपसे यह बता देना ही पर्याप्त होगा कि ठीक उसी तरह जैसे कि रेकार्डिंग (Recording) की गई थी, अबकी बार एक लैम्प से प्रकाश लेन्स और दराजों (Slits) द्वारा फिल्म पर डाला जाता है। यह प्रकाश फिल्म के दूसरी ओर 'फिल्म पर अंकित लेखन के अनुसार कम या अधिक होता रहता है'। क्योंकि जहां फिल्म अधिक काली होगी वहांसे कम प्रकाश दूसरी ओर जाता है; जहां पर फिल्म साफ होती है वहांसे अधिक प्रकाश दूसरी ओर जाता है। यही प्रकाश एक बिजलीके बल्ब (Electric bulb) की शक्लकी बनी हुई वस्तुपर पड़ता है जिसे फोटो एलेक्ट्रिक सेल (Photo Electric cell) कहते हैं। फोटो एलेक्ट्रिक सेलकी विशेषता यह है कि यदि इस पर प्रकाश पड़े तो इसके सिरों (Terminals) को जोड़ देने पर एक विद्युत्-धारा प्रवाहित होने लगेगी। और यदि उसमेंसे विद्युत्-धारा पहले ही से किसी बैटरी इत्यादि द्वारा प्रवाहित की जा रही हो तो सेल (Cell) पर प्रकाश पड़ने से वह विद्युत्-धारा बढ़ जाती है। इस प्रकार से जो विद्युत्-धारा प्रवाहित होती रहती है वह सेल पर पड़ते हुये प्रकाश के घटने या बढ़ने के साथ ही घटती बढ़ती जाती है। इस प्रकार फिल्म पर बना हुआ ध्वनि लेखन विद्युत्-धाराके कम्पनों (Electrical fluctuations) में परिवर्तित हो जाता है। यह विद्युत्-धारा

एम्प्लीफार्यस (Amplifiers)से होती हुई पर्दे के पीछे लगे हुए लाउडस्पीकर Loud (speakers) में जाकर ध्वनि में परिवर्तित हो जाती है। फोटो एलेक्ट्रिक सेल द्वारा पैदा हुई विद्युत्-धारा बहुत क्षीण होती है, इसीलिए वह एम्प्लीफायरमें भेज कर इतनी बढ़ा दी जाती है कि वह ठीक से सुनी जाने लायक ध्वनिमें परिवर्तित हो सके। एम्प्लीफायर से ही पर्देसे आती हुई ध्वनि घटाई बढ़ाई भी जा सकती है।

सिनेमा घर बनानेमें इस बात का ध्यान रक्खा जाता है कि उसकी दीवालें पर्दे परसे आती हुई ध्वनि को हाल (Hall) भरमें गूँजा दें। पर्दे के पीछे रक्खे हुए लाउड-स्पीकर भी ठीक ऐसे स्थानों पर लगाए जाते हैं जहां से कि पर्दे पर बोलते हुए पात्रों की आवाज अधिकसे अधिक अकृत्रिम जान पड़े। आवश्यकतानुसार पर्देके पीछे एकसे लेकर चार लाउड-स्पीकर तक लगाए जा सकते हैं। सिनेमामें जो हर समय कड़कड़ाहटसी सुनाई दिया करती है वह आर्कलाइट (arc light) (जोकि प्रोजेक्टरमें प्रयोगकी जाती है।) के ही कारण होती है। [चोक क्वाइल्स (Choke coils) द्वारा यह आवाज़ मिटा देनेमें सफलता प्राप्त हो चुकी है।]

यह वर्णन अधूरा ही रह जायगा यदि इसमें साथही साथ स्टूडियोके बारेमें भी कुछ छोटी मोटी जरूरी बातें न लिखी जांय।

स्टूडियो (Studio)में जहां कि शूटिंग होती है, वहां पर एक अजब शांति छाई रहती है। वहांकी दीवालें ऐसी वस्तुओंसे मढ़ी रहती हैं कि वे आवाज को रोक लेती हैं और गूंजने नहीं देतीं। यदि ऐसा न हो तो अनावश्यक खटपटकी आवाज़ भी माइक्रोफोनमें पहुँच जाय और फिल्म को बिगाड़ दे। दृश्य (Shooting) शुरू होने के पहिले निर्देशक सब कर्मचारियों को पूर्ण शांति रखनेकी सूचना दे देता है और उसके बाद सभी आदेश प्रकाश के संकेतों द्वारा दिये जाते हैं।

ध्वनि लेखक शीशेकी खिड़कीसे शूटिंग शुरू होनेकी बाट देखा करता है या उसे संकेत देदिया जाता है और तब वह ध्वनि लेखन आरम्भ कर देता है। कैमरा विद्युत् यन्त्रों द्वारा बिना कोई आवाज़ किए चला करता है। आमतौरसे एक दृश्य (Shot) दो या तीन मिनटसे अधिक का नहीं होता।

हम सिनेमामें जितने दृश्य देखते हैं वह सब हमेशा सचमुच के नहीं होते और न जितनी आवाजें हम सिनेमामें सुनते हैं वही सब असली होती हैं। अप्राप्य दृश्य व ध्वनियां स्टूडियोके अन्दर ही किसी न किसी प्रकार तैय्यार करके इस धोखेके साथ चित्रित की जाती हैं कि यह ज़राभी नहीं मालूम होता कि यह ध्वनियां और दृश्य सचमुचके नहीं हैं। ऐसे कामोंके लिये प्रयोगकी जाने वाली तरकीबें एक मनोरञ्जनका विषय हैं। हम पाठकों के लिए यहां कुछ ऐसी बातोंका भी वर्णन करेंगे।

सिनेमामें कभी २ बड़ी बड़ी आंधियां व तूफान देखने को मिलते हैं। फिल्म बनाने वाले डाइरेक्टरको इस बातकी प्रतिक्षा नहीं करनी पड़ती कि जब इच्छित स्थान पर आंधी आवे तो वह दृश्यकी शूटिंग करे और फिर आंधी जैसी वह चाहे वैसी न हो, या दृश्य समाप्त होनेके पहिले ही खत्म हो जाय। इन सब झंझटोंसे बचनेके लिए कृत्रिम आंधी स्टूडियोके अन्दर ही बनाई जाती है। कुछ हवाई जहाज खड़े करके उनके प्रोपेलर्स (Propellers) तेजीसे घुमाए जाते हैं। उनसे हवा निकलती है वह स्टूडियोके अन्दर आंधीका काम देती है। बड़े २ उबलते व उफनाते हुए समुद्रभी स्टूडियोके अन्दर केवल छोटे गड्ढोंमें पानी उछाल २ कर ही बना लिए जाते हैं। जब कभी हम सिनेमामें बड़े २ जहाजोंको डूबते देखते हैं तो यही सोचते हैं कि क्या इसको दिखानेके लिए सचमुच ही एक पूरा जहाज डुबो दिया जाता है। बात कुछ और हीं होती है। एक छोटेसे गड्ढेमें जहाजका एक छोटा सा खिलौना (Toy-model) डुबो दिया जाता है और उसकी फोटो ले ली जाती है। यही हमको पर्दे पर एक बड़े जहाजके डूबनेके रूपमें दिखाई देता है। दौड़ती व लड़ कर चूर होती हुई रेलें व मोटरें भी केवल एक मेजके ऊपर चलाए गए कुछ खिलौने ही होते हैं। कुछ ईंटें व लकड़ियां ही बारूदसे उड़ा कर जो दृश्य लिया जाता है उसे हम पर्दे पर जब देखते हैं तो जान पड़ता है कि बड़े २ महल व शहर उड़ा दिये गए। इन सब धोखा देने वाले खिलौनोंको बनानेके लिए हर अच्छे स्टूडियोमें कारखाना (work shop) होता है। बैक ग्राउन्ड Back ground में ऊंची इमारतें व जंगल इत्यादि दिखानेके लिये भी केवल रंगे हुए पर्दे या दफ्तीके टुकड़े ही काममें लाए जाते हैं। फूल पत्तियां भी सब कागज ही की बनी होती हैं; और सच तो यह है कि कागजके फूल असली फूलसे सिनेमाके पर्दे पर ज्यादा सुन्दर व प्राकृतिक मालूम पड़ते हैं। कागजकी कुटी हुई लुगदी को लकड़ीके सांचोंमें दाब दाब करके ही ऐसे खम्भे बना लिये जाते हैं; जो बिल्कुल पत्थरके मालूम पड़ते हैं। ऐसी सब तर-

कीबोंके लिखने ही में एक पुस्तक भर सकती है।

केवल चित्रमें ही धोखेबाजीसे काम नहीं लिया जाता बल्कि आवाजें भी खूब पैदाकी जाती हैं। जैसे एक ढोल में मूँगफलीके छिलके डाल कर उसके अन्दरकी पंखी घुमा देने पर हवाई जहाज की सी आवाज सुन पड़ती है। किसीका गला सुरीला न होने पर दूसरा मनुष्य उसकी जगह गा देता है। उसकी आवाज चित्रमें ओठोंके चलनेसे ऐसी मिलाई जाती है कि मालूम होता है कि जो मनुष्य पर्दे पर है वही गा रहा है।

सिनेमामें सबसे मेहनतका काम है मिकी माउस (Mickie mouse) के समान चलते-फिरते रेखा चित्रोंका बनाना। तमाम चित्रकार मिल कर हजारों तसवीरें हर एक दूसरीसे थोड़ी ही फर्क वाली बनाते हैं। सब तसवीरें क्रमसे एक कागजकी पट्टी पर चिपका दी जाती है फिर यह टेबिल पर दो चर्खियों पर चलाई जाती है। छतसे लटका हुआ कैमरा इसकी फोटो लेता रहता है। यही फिल्म जब दिखाई जाती है तो हंसाने वाले कुत्ते, बिल्ली व मूसाके अजब करिश्मे देखनेको मिलते हैं। इस में जैसा कि लिखा जा चुका है एक एक पोजका चित्र हाथसे खींचना पड़ता है।

सिनेमाकी प्रगति यहीं नहीं रुक गई। हाल ही में रंग बिरंगी फिल्में भी बनने लगी हैं। अब तो चित्र सभी रंगके ज्यों के त्यों दिखाए जा सकते हैं। इसमें व्यय कुछ अधिक पड़ता है।

सिनेमामें केवल एक कमी थी और वह यहकि हमें पर्दे पर दृश्यके अन्दरकी दूरीका अनुमान नहीं होता। सब चीजें एक दूसरेके ऊपर चिपकी हुई सी दिखाई देती हैं दृश्य में उभड़न (Relief effect) नहीं होता। यदि हम केवल एक आंख से देखें तो हमें भी सामनेकी वस्तुओंकी दूरीका अनुमान नहीं होगा। इसका एक प्रत्यक्ष सबूत यह है कि हम एक आंख बन्द करके सुईमें डोरा नहीं डाल सकते। कैमरामें भी केवल एक ही लेन्स रहता है इसीलिए हमें वस्तुओंकी मुटाई व उभाड़ ठीकसे नहीं समझ पड़ती। आंखों ही की तरह एक कैमरेमें भी यदि दो लेन्स हों तो शायद हम दृश्यका उभाड़ (Depth of scenery) देख सकें। इसी सिद्धान्त पर चल कर वैज्ञानिकोंको ऐसी फिल्में बनानेमें भी सफलता मिल चुकी है जिन्हें अंग्रेज़ीमें आडिआस्कोपिक्स (Audioscopics) कहते हैं। ऐसी फिल्मोंके बनानेमें विशेषता यह होती है कि एक कैमरेमें दो लेन्स लगे रहते हैं। एक लेन्सके सामने की फिल्म पर हरी तसवीर खिचती है और दूसरे के सामने वाली फिल्म पर लाल। दोनों फिल्में एक ही पाजिटिव पर एकके ऊपर एक छाप दी जाती हैं। पर्दे पर यों तो देखनेसे केवल भद्दी आधी लाल व आधी हरी एकके ऊपर एक चढ़ी सी तसवीरें दिखती हैं। लेकिन एक ऐसा चश्मा लगा लेने पर जिसमें एक शीशा लाल और एक हरा लगा हो तो हमें साफ साफ उभड़े हुए व जिसमें दूरी व गहराई ठीक ठीक मालूम होती हो, ऐसे दृश्य दिखाई देते हैं। ध्यान रखनेकी बात यह है कि यदि कैमरेके बांए लेन्ससे लाल तसवीर ली गई हो तो लाल शीशा बांई आंख पर ही होना चाहिये, इत्यादि।

यह युग ही ऐसा है कि हम लोग जो पा लेते हैं उससे हमको सन्तोष नहीं होता। हम हमेशा और आगे बढ़ने की ही सोचा करते हैं, सिनेमामें भी हम यहीं आकर नहीं रुक गये। अब तो ऐसे आविष्कार हुए हैं जिनसे फिल्ममें गन्धका चित्रण हो सकता है और हम सिनेमा-हालमें बैठ कर दृश्य देखने के साथ साथ, फूलोंकी सुगन्धि व गन्दी नालियोंकी दुर्गन्धि का भी अनुभव कर सकेंगे।

आडिआस्कोपिक व गन्धयुक्त चल-चित्रोंका प्रचार अभी पूर्ण रूपसे नहीं हुआ है; और गन्धयुक्त फिल्में तो सार्वजनिक सिनेमाके क्षेत्रमें अभी आई भी नहीं हैं।

लोहा और इस्पात

लेखक
[श्री चन्द्रिका प्रसाद बी. एस. सी.]

तांबेसे लोहा और लोहेसे इस्पात जैसी कठोर धातु यही मनुष्य की उन्नति की कहानी है।

लोहेने तांबेकी जगह ले ली। इस्पातने लोहेकी जगह ले ली, क्योंकि यह लोहे से अधिक मजबूत है। कई धातु संकर (मिश्रधातु) आज कल इस्पातसे भी कई बातोंमें बढ़ कर हैं।

लोहेके गुण अनेक प्रकारसे बदले जा सकते हैं। अन्य धातुओंको लोहेमें मिलानेसे कई तरहके लोहे बनते हैं। केवल भिन्न भिन्न तापक्रमों तक गर्म करने ही से इस्पातके गुणों में अनेकों परिवर्तन किये जा सकते हैं। जितने कार्यों में लोहेका व्यवहार किया जाता है लगभग उतने ही प्रकारके लोहे भी हैं। और इनकी संख्या बढ़ रही है। एक मोटर ही में चालीस प्रकार के भिन्न भिन्न लोहे लगे रहते हैं! इसके अतिरिक्त अन्य सहस्रों कार्योंमें लोहे और इसके धातु-संकरोंका प्रयोग होता है।

इन धातु-संकरोंके गुणोंको जाननेके लिये हमें पहले इनके जन्मदाता लोहेके गुणोंको जानना होगा। लोहा आधुनिक सभ्यता की नींव है, यह होते हुए भी हमें यह नहीं मालूम कि लोहे की खोज किसने की। लोहा सोनेकी तरह शुद्ध अवस्थामें नहीं पाया जाता, इसलिये अवश्य ही कभी न कभी लोहेको खनिजों से निकालनेकी क्रियाका आविष्कार हुआ होगा। आदि मनुष्यों ने कभी लोहेकी मिट्टी पर खूब आग जलाई होगी; हवासे प्रज्वलित यह आग बहुत गर्म हो गई होगी। आग बुझने पर कुछ लोहेके रवे राखमें पाये गये होंगे। इसीप्रकार किसी आकस्मिक घटनासे लोहेका पता लगा होगा।

लोहेका पता किसीभी तरह लगा हो, किन्तु जल्दी ही यह ज्ञान उस समयके सभी सभ्य देशोंमें फैल गया। प्राचीन समयके लोहेके टुकड़े और पुरानी लोहेकी भट्ठियां भारतवर्ष, इजिप्ट और ग्रीसमें पाई जाती हैं। तेरहवीं शताब्दीके अन्तमें (कोलंबस के अमेरिकाकी खोज निकालनेके १५० वर्ष पहले) स्पेनमें कैटेलन भट्ठीका आविष्कार हुआ। यह भट्ठी आज कलकी भट्ठियोंकी पूर्वज थी। खनिजसे लोहा निकालनेमें पहले लोगोंको कठिनाई पड़ती थी। इसका कारण यह है कि खनिजमें लोहा आक्सिजन के संयोगमें रहता है। लोहेको आक्सिजनसे अलग करनेके लिये खनिजको कोयलेके साथ बहुत अधिक तापक्रम तक गर्म करना पड़ता है। पहलेकी भट्ठियोंसे एक छोटा सा नरम लोहेका गोला प्राप्त होता था। तब एक नई बातका पता लगा कि यदि भट्ठीमें आवश्यकता से अधिक कोयला रहे तो यह कोयला लोहेमें काफी मात्रामें घुल कर लोहेके गुणोंको बदल देता है। भट्ठीकी गर्मीसे यह लोहा पिघल जाता है। नरम लोहा भट्ठीमें पूर्णतया पिघलता नहीं। पिघला हुआ लोहा जिसमें कोयला घुला है सांचोंमें ढाला जा सकता है इसीलिये इसको ढलवां लोहा कहते हैं यह लौह युगके लिये एक बड़ी बात मालूम हुई कि लोहेमें ३½ से ५ प्रतिशत कार्बन मिलानेसे लोहा गर्म करने पर पिघल जायगा और ठंडा होने पर खूब कड़ा हो जायगा।

इसके बाद इस्पात का आविष्कार हुआ। इस्पात न तो नरम लोहे की तरह (जिस में कार्बन बहुत कम मात्रा में होता है) नरम होता है, न ढलवां लोहेकी तरह (जिसमें कार्बन अधिक मात्रामें होता है) कड़ कड़ा होता है। पहले के इस्पात बनाने वाले लोहे को कोयले के साथ बंद बर्तन में गर्म करते थे। जब लोहे में कोयले की मात्रा २ प्रतिशत के रहती थी तो उसे निकाल लेते थे। यह पहले का इस्पात था। इसकी बनी तलवारें गर्म करके पानीमें ठंडा करके कड़ी कर ली जाती थीं। इन तलवारोंसे नरम लोहा काटा जा सकता था और तब भी इनकी धार मन्द नहीं पड़ती थी।

नरम लोहा, ढलवां लोहा और इस्पात, ये तीनों लोहेके कारोबारके नींव थे। ज्यों ज्यों सभ्यता बढ़ी, लोहेकी मांग भी बढ़ी। इस मांगको पूरा करनेके लिये वायु वेगी भट्ठीका आविष्कार हुआ। यह बृहत् भट्ठी लम्बे घंटेके आकारकी होती है।

खनिज, कोयला और चूनेका पत्थर ऊपरसे झोंका जाता है, और गर्मकी हुई वायुको नीचेसे वेगके साथ प्रविष्ट कराते हैं। कोयला खनिजका अवकरण करके लोहा बनाता है और चूने का पत्थर लोहेको पिघलानेमें मदद देता है। पिघला हुआ लोहा भट्ठीके तलेमें इकट्ठा होता है और स्लैग (सिलिकेट इत्यादि) पिघल कर इसके ऊपर तैरता रहता है। लोहा और स्लैग अलग अलग निकाले जाते हैं। यदि उसी समय इस्पात बनाने की

आवश्यकता हुई तो यह लोहा बड़ी २ "थरमस बोतलों" में भर लिया जाता है। जब लोहेकी इसी समय आवश्यकता न रहे तो उसे चौखुटे सांचोंमें ढाल देते हैं। यह लोहा "पिग आयरन" कहलता है।
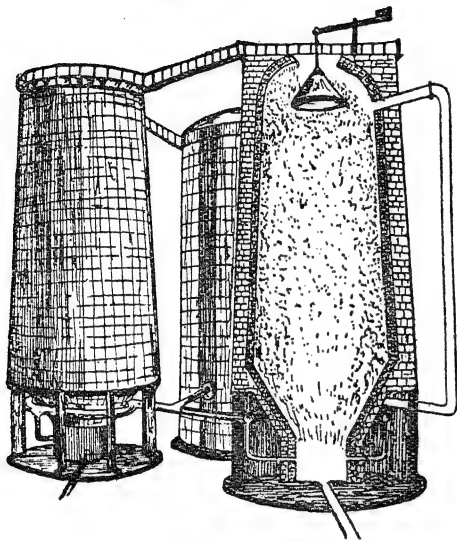
इस भट्ठीमें लौह खनिजसे लोहा निकाला जाता है। ऊपरसे खनिज कोयला डालते हैं। नीचेसे गर्म वायुको वेगसे प्रविष्ट करते हैं। पिघला हुआ लोहा नीचे जमा होता है।

ठंडा पिग आयरन बहुत कड़कड़ा होता है, इसमें कार्बन की मात्रा अधिक होती है और खींचने या दबानेसे इसके टूट जाने की अधिक आशंका रहती है। इसको नरम लोहेमें परिवर्तित करनेके लिये फिर भट्ठीमें पिघलाया जाता है और आयरन ऑक्साइड डाल कर चलाया जाता है। आयरन ऑक्साइड लोहे में के कार्बनको जला डालता है। गन्धक फास्फोरस आदि वस्तुएं स्लैगके रूपमें अलग हो जाती हैं। कार्बनकी मात्रा जब कम हो जाती है तो लोहा जम कर गुंधे आटेकी तरह हो जाता है। हथौड़ेसे पीट कर इसमेंसे स्लैग निकाल डालते हैं।

पहले इस्पात बनानेके लिये नरम लोहेको कोयलेमें बन्द करके गर्म करते हैं, जिससे लोहा कुछ कोयला शोषण कर लेता है। फिर इसे पिघलाते हैं जिससे लोहा भीतर बाहर एक हो जाय। यह विधि बहुत ही मन्द और मूल्यवान् है।

बेसमर परिवर्तकके आविष्कारने इस्पातको सरलतासे प्राप्य बना दिया। इस विधिमें पिघले हुए पिग आयरनको एक बृहत अंडाकार बर्तन (परिवर्तक) में रख कर उसमेंसे गर्म वायुको भेजते हैं। वायुका ऑक्सीजन सब कार्बन तथा अन्य अशुद्धियोंको जला डालता है। इन वस्तुओंके जलनेसे इतनी गर्मी पैदा होती है कि लोहा पिघला ही रहता है। अब इसमें कार्बनकी उपयुक्त मात्रा स्पिजेल (मेगनीजका एक खनिज जिसमें कार्बन काफी मात्रामें रहता है) के रूपमें डाल देते हैं।

बेसमर परिवर्तक भट्ठी
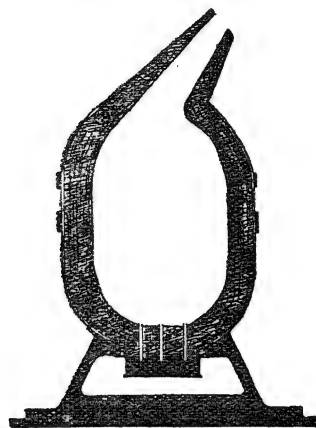
बेसमर परिवर्तक ने इस्पात बनाने की क्रिया सरल तथा सस्ती बना दी।

बेसमर परिवर्तक ने, जो कि जलते समय दूर तक रोशनी करता है, इस्पातको अधिक मात्रामें पैदा करके इसके दाममें बहुत कमी कर दी। परन्तु अब इस्पात बनानेके लिये अधिकतर खुली भट्ठीका प्रयोग करते हैं, क्योंकि ये अधिक अच्छा और एक समान इस्पात बनाती हैं। एक भट्ठीमें २५०० मन या अधिक लोहा आता है और इन भट्ठियोंकी पूरी एक पंक्ति होती है। वायुवेगी भट्ठीसे पिघला हुआ लोहा, लोहेकी कतरन, अन्य धातु इत्यादि धातु-संकर बनानेके लिये खुली भट्ठीमें डाल देते हैं, यहां पर धातु घंटों चुरती रहती है। गैस और तेलको पहले से खूब गर्म करके जलानेसे ३००० डिग्रीका तापक्रम पैदा किया जाता है।

थोड़ीसी बानगीकी रासायनिक जांचसे जब पता चलता है कि धातु ठीक होगई है तो मिट्टीका एक बड़ा डाट ठोंक कर गिरा दिया जाता है और तब शोर करता हुआ और चिनगारियां छटकाता पिघला इस्पात बड़े बेगसे निकल पड़ता है और नीचे रक्खे भीमकाय करछुलमें चला जाता है, इस कर-

छुलको एक दैत्याकार क्रेन उठा लेता है और इस्पातको सांचोंमें डाल देता है एक करछुलमें १०० या १२५ मन लोहा आता है। इन सांचोंको रेलगाड़ी खींच कर मैदानमें ले जाती है और वहीं इस्पात ठंडा होता है। जब इस्पात जम कर ठोस हो जाता

बेसमर परिवर्तक जलते हुए
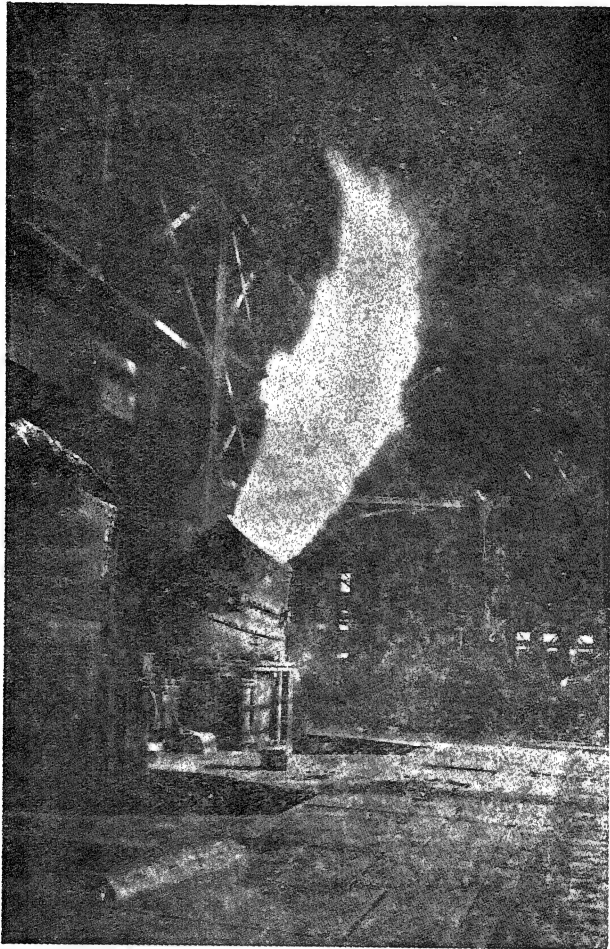
ये दूर तक रोशनी करते हैं। आज इनका स्थान खुली भट्ठियां ले रही हैं।

है तो मशीनोंसे सांचा खोल दिया जाता है और क्रेन इस्पातके लाल सिल्लोंको पकड़ कर भठ्ठीमें डाल देते हैं। यहां इस्पात सब ओर एक समान लाल हो जाता है। तब इन सिल्लियोंको दैत्याकार संड.सियां खींच कर बेलने वाली मशीनोंमें ढकेल देती हैं।

इन मशीनोंके अनेक बेलनोंसे बारी बारी दबकर ये सौ सौ मनकी सिल्लियां अन्तमें इच्छानुसार मोटाईकी होकर निकलती हैं। कुछ मशीनोंसे तो अन्तिम चादर कागजके समान पतली निकलती है।

बेलनेके कारण इस्पात कमजोर हो जाता है। इसलिये इन चादरोंको बड़ी २ भट्ठियोंमें फिर तपाया जाता है और धीरे २ कई दिनमें ठंडा होने दिया जाता है। इसके बाद चादरों की सफाई, उन्हें ठंडा बेल कर अधिक पतला करना, जस्ते या रांगेकी कलई करना, पालिश करना, इत्यादि अनेक क्रियाएं आवश्यकतानुसार पीछे की जाती हैं।

रासायनिक दृष्टि-कोणसे शुद्ध जंचने वाला लोहा बड़ी कठिनाई ही से बन सकता है। साधारण लोहेमें अन्य पदार्थोंकी थोड़ी वहुत मात्रा अवश्य वर्तमान रहती है। अब लोहेमें दूसरे धातु जान-बूझ कर मिलाये जाते हैं और इनसे विशेष गुण के इस्पात बनते हैं। निकल (Nickel) से कड़ा परन्तु चिमड़ा इस्पात बनता है इसलिये ऐसा इस्पात बन्दूककी नली और जहाजोंका कवच बनानेके काममें आता है। क्रोमियम डालनेसे मुर्चा न लगने वाला इस्पात (Stainless Steel) बनता है जिससे आधुनिक छुरियां और अन्य वस्तुएं बनती हैं। मैंगनीज डालनेसे इतना चिमड़ा इस्पात बनता है कि उसको काटना या छेद करना कठिन होता है। इसलिये ऐसे इस्पातसे तिजोरियां (Safes) बनती हैं। टंगस्टन या मलिडेबनम डालने से ऐसा इस्पात बनता है जो तपा कर लाल करने पर भी नरम नहीं पड़ता। ऐसे इस्पातसे लोहा, पीतल तथा अन्य कड़े धातुओंको काटनेकी मशीनोंकी छुरी आरी बनती हैं, यह भी स्मरण रखना चाहिये कि बिना लोहे के आज-कलके डायनमो और मोटरें बन ही नहीं सकतीं। क्योंकि इनमें लोहेके वैद्युत्-चुम्बकीय गुणोंका उपयोग किया जाता है। वैद्युत कामोंके लिये प्रस्तुत लोहेमें जरा-सा सिलिकन डालना पड़ता है।

हर्ष का विषय है कि अब भारतवर्ष में बहुत अधिक मात्रा में लोहा बनने लगा है। टाटा कंपनी, इण्डियन आयरन ऐण्ड स्टील, स्टील कॉरपोरेशन ऑफ बंगाल आदि कारखानों में साधारण कामों के लिए प्राय: सभी प्रकार के लोहे और इस्पात बनते हैं।

श्वसनक सन्निपात (फुफ्फुस प्रदाह)

[लेखक—कविराज श्री सतीन्द्र नाथ भिषग्रत्न, आयुर्वेद शास्त्री, एल. ए. एम. एस.]

लोबर न्यूमोनिया (Lober Pneumonia)

संज्ञा—श्लेष्म प्रकोपक आहार विहार से, ठंढी हवा लगने से, नंगे वदन घूमने से तथा अन्य दूसरे कारणोंसे, फुफ्फुसमें विकार सञ्चित होकर उनमें प्रदाह पैदा हो जाता है इससे ज्वर, छातीमें दर्द, श्वास-कष्ट वगैरह लक्षणों के साथ एक प्रकारका अवधि बन्धी सन्निपात ज्वर उत्पन्न होता है उसीका नाम श्वसनक सन्निपात या फुफ्फुस प्रदाह है। पाश्चात्य शास्त्रोंके अनुसार न्यूमोकोकस (Pneumo coccus) नामक एक प्रकारके जीवाणुसे यह रोग उत्पन्न होता है।

भेद—साधारणतः फुफ्फुसमें प्रदाह दो प्रकारका दिखलाई पड़ता है। (१) जब एक ही फुफ्फुसका कुछ अंश या पूर्णांश आक्रान्त होता है, उसे श्वसनक सन्निपात कहते हैं। पाश्चात्य शास्त्रमें इसीको लोबर न्यूमोनिया (Lober Pneumonia) कहा जाता है इसमें ज्वर अवधि बन्धी होता है जो या तो दस बारह रोजमें मुक्त होकर रोगी निरामय हो जाता है या मृत्युकी ओर बढ़ता है

सप्तमो द्विगुणा चैव नवम्येकादशी तथा।
एषा त्रिदोष मर्यादा मोक्षाय च बधाय च ॥

(२) किसी किसी क्षेत्रमें दोनों फुस्फुसका कुछ अंश या सर्वांश आक्रान्त होता दिखलाई पड़ता है। उसमें रोगी दीर्घ दिन तक बीमार रहते हैं और सहसा ज्वरमुक्ति न होकर धीरे धीरे ज्वर वेग कम होता है और रोगी अच्छे हो जाते हैं। पाश्चात्य शास्त्रोंके अनुसार यह रोग कई प्रकारके जीवाणुओंसे उत्पन्न होता है। इनके अन्तर्गत न्यूमोकोकस (Pneumo coccus) प्रधान है। स्टफाइलो कोकस (Staphylo coccus) स्ट्रेप्टोकोक्स (Strepto coccus) इन्फलुएंजा बेसिलेस (Influenza Bacillus) वगैरह भी मिलते हैं।

इतिहास—आर्य युगसे ही यह रोग होता चला आया है आयुर्वेदोक्त औषधियोंसे इस रोगकी चिकित्सा बड़ी सफलताके साथ होती है। इस चिकित्सामें श्वसनक सन्निपातके रोगियोंकी मृत्यु प्रति शत ५ से अधिक होती हुई नहीं देखी गई। पाश्चात्य चिकित्सकोंको इस रोगके विषयमें सम्पूर्ण ज्ञान १८१६ ई०से होना मानते हैं। वे यह भी मानते हैं कि ग्रीक देशीयचिकित्सा कालमें इस रोगका वर्णन मिलता है, परन्तु इतना सुस्पष्ट रूपसे नहीं।

निदान—प्रत्येक अवस्थाओंमें यह रोग उत्पन्न हो सकता है परन्तु छोटे छोटे बच्चों, युवकों और प्रौढ पुरुषोंमें यह अधिक दिखलाई पड़ता है। स्त्रियोंकी अपेक्षा पुरुषोंको यह रोग अधिक होता है। घनी बस्तियोंमें निवास, शैत्यसेवन, अथवा नंगे वदन रहना और विशेष परिश्रम आदि इस रोगमें सहायक होते हैं। स्थूल आदमियोंको, शराब पीने वालों को, और कमजोर आदमियोंको इस रोगके जीवाणु शीघ्रतासे आक्रान्त कर सकते हैं। शरद ऋतुका आखिरी भाग और बसन्त ऋतुका प्रथम भाग इस रोगके आक्रमणका प्रधान काल है। यद्यपि हर ऋतुमें यह रोग दिखाई पड़ता है। सहसा ऋतु परिवर्तन, शीतल वायुका अधिक स्पर्श, सहसा शीतान्त (जाड़ा चले जाने) से, ऊष्ण वस्त्र-त्याग, आदि इस रोगके हेतु कहे गये हैं।......

"हेमन्ते निचिते श्लेष्मा बसन्ते कफ रोग कृत्"

गुंजान नगरोंमें शीत ऋतुका आधिक्य और धूम्र मय वायु इसका दूसरा कारण मालूम होता है। पाश्चात्य शास्त्रोंके मतानुसार इसका जीवाणु वायु सञ्चारी माना गया है। यह जीवाणु नासिका और मुख गह्वर आदिमें रह कर अवसर पाते ही फुफ्फुस के अन्दर घुस कर उक्त रोग को उत्पन्न करता है।

सम्प्राप्तिः—रोगावस्थामें फुफ्फुस पर प्रभावः—रोगाक्रमणसे अन्त तक फुफ्फुसमें चार प्रकारका परिवर्तन होता है **(१) (प्रदाहावस्था)** फुफ्फुसमें अधिक खून संचारित होने के कारण फुफ्फुस रक्ताभ, कठिन स्पर्श, और नीरन्ध्र सा जान पड़ता है। तथापि इस समय फुफ्फुसका कोई भाग काट कर पानीमें फेंकनेसे वह तैरता रहता है।

(२) (रक्तिमावस्था) फुफ्फुस अधिकतर कठिन, नीरन्ध्र और वायु शून्य होता है। फुफ्फुस के अन्दर छोटे २ कमरे रक्त और लसिकासे भरे रहते हैं प्रदाहावस्थाके अनुसार उसका वर्ण बदलता रहता है। इस अवस्थाकी विशेषता यह होती है कि

फुफ्फुसका कोई टुकड़ा दबानेसे टूट सकता है।

(३) (श्यावावस्था) इसमें फुफ्फुसके कमरों के रंगोंकी पृथकता शीघ्र ही ज्ञात हो जाती है। प्रथम और द्वितीय अवस्थाकी रक्त वर्णता श्याव वर्ण या धूसर वर्णमें बदल जाती है फुफ्फुसका ऊपरी भाग उतना रूक्ष नहीं रहता। थोड़ा बहुत आर्द्र हो जाता है, परन्तु फुफ्फुस अधिकतर भंगुर हो जाता है। खूनके अन्दर वाली उसकी लाल २ कणिकाएं नष्ट हो जानेसे ही यह श्यावावस्था आ जाती है। इस समय फुफ्फुसके कमरे पूय युक्त लसिकासे भरे रहते हैं। किसी किसी क्षेत्रमें क्षुद्र व्रण वत् आकृति उत्पन्न हो जाती है और किसी २ क्षेत्रमें कई व्रण एक साथ मिल कर बड़ा सा व्रण पैदा करते हैं।

(४) (विगालितावस्था) इस अवस्थामें फुफ्फुसके कमरोंकी पूय युक्त लसिका गल जाती है और बलगम कई वर्णका निकलता है। कुछ भाग पेशाबके साथ और कुछ भाग खांसी के साथ निकल जाता है और कुछ अन्दर ही अन्दर स्थानान्तरित होकर सात्म्यरूपको प्राप्त होता है। इस अन्तिम समयमें कई कारणोंसे मृत्युभी होती है। रोगसे उत्पन्न हुए जहरसे, हृत्पिण्डकी दुर्बलतासे और फुफ्फुसकी क्षमता शक्ति घट जानेसे प्रायः आदमी मर जाते हैं। यदि एक तरफका फुफ्फुस आक्रान्त हो तो उक्त चारों अवस्थाओंके व्यतीत होनेमें सातसे दस बारह रोज तक लग जाते हैं और दोनों तरफके फुफ्फुस आक्रान्त होने पर उक्त अवस्थाओंके परिवर्तनका कोई निर्दिष्ट समय नहीं रहता। प्रायः देखा जाता है कि रोगी दूसरे सप्ताहके अन्तसे प्रारम्भ हो कर चौथे सप्ताह तक कभी कभी छः सप्ताह तक इस रोगसे आक्रान्त पड़े रहते हैं।

पूर्वरूपः—इस रोगमें पूर्वरूप केवल दो चार रोज पहिले ही प्रकट होते हैं। कभी कभी ऐसा भी देखा गया है कि दो एक रोज पहिले तक किसी भी प्रकारके लक्षण नहीं दिखाई देते। बिल्कुल तन्दुरुस्त आदमी एकाएक ज्वराक्रान्त हो जाते हैं साधारणतः मामूली जुखाम, मामूली ज्वर, थोड़ी बहुत खांसी अवसाद और कोष्ठ बद्धता दिखलाई पड़ती है।

रूपः—सहसा जब वेग बढ़ता है तो पहिले दिन प्रायः ज्वर आते समय जाड़ा मालूम पड़ता है इसप्रकार यह रोग सहसा आक्रमण करता है कभी२ देखाजाता हैकि स्वस्थ आदमी प्रातःकाल काम पर गया और दोचार घण्टेके बाद वहां जाड़ा देकर ज्वर आगया; कभी २ किसीको थोड़ा सा जुखाम हो कर पुनः एकाएक जाड़ा मालूम होने लगता है और फिर ज्वर हो कर तमाम बदन में दर्द होने लगता है। दो एक रोज के अन्दर या कभी कभी आठ दस घण्टे के अन्दर पसली के नीचे दर्द होने लगता है और श्वास लेने में कष्ट तथा सूखी खांसी उठती है। खांसते समय सीने में अधिक दर्द मालूम पड़ता है, प्रायः रोगी छाती को दबा कर खांसते हैं। जिस ओर का फुफ्फुस आक्रान्त होता है रोगी उसी करवट में रहना पसन्द करता है। क्योंकि दूसरे करवट में लेट जाने से उस तरफ के फुफ्फुस की क्रिया बढ़ जाती है और आक्रान्त फुफ्फुसके ऊपर वायुका दबाव अधिक पड़ता है आक्रान्त फुफ्फुसमें वायु घुसनेकी वजहसे तथा उसके काम करने की चेष्टाके कारण तकलीफ ज्यादा हो जाती है। परन्तु आक्रान्त फुफ्फुसको दबा लेनेसे उसका काम बन्द हो जाता है, और दूसरा फुफ्फस सारा काम करता रहता है, इसी कारण रोगी आक्रान्त फुफ्फुसकी करवटमें लेटे रहनेसे सुख मानता है। रोगकी वेगावस्था में मुख-मण्डल भारीपन लिये गालोंमें लालिमासे पूरित रहता है श्वास प्रश्वास द्रुत वेगसे होता है और साथ ही हर बार खांसी आकर रोगीको कष्ट देती रहती है। निश्वासके साथ एक प्रकार की आवाज सुनाई पड़ती है। किसी-किसी क्षेत्रमें प्रश्वासके समय नाशा पुटका प्रसरण होता है। यह एक विशिष्ट लक्षण है। फुफ्फुसमें आक्सीजनकी कमीकी वजहसे रोगी ज्यादा हवा मांगता है। उसीके कारणसे वह नाशापुटका प्रसारण कर अधिक हवा लेनेकी चेष्टा करता है। आंखें प्रायः लाल रहती हैं, नेत्र-पुतलियां असमान रहती हैं। निकला हुआ बलगम पहिले पहल कुछ लालसा पिच्छल और तन्तुमय होता है। नाड़ीकी गति द्रुत, आकृति स्थूल, यति नियमित, और संहति पूर्ण रहती है। ज्वर वेग१०३ से १०५ डिग्री तक हो सकता है। प्रातःकाल या उतरते समय दो-एक डिग्रीसे अधिक नहीं उतरता। श्वास प्रश्वास अति द्रुत होता है। नाड़ीकी गति, ज्वर-मात्राके अनुसार बराबर परन्तु श्वास-प्रश्वासके साथ नाड़ीकी गति-विधिमें अन्तर दिखलाई पड़ता है। स्वस्थ अवस्थामें श्वास प्रश्वास नाड़ीकी गतिका चतुर्थांश रहता है। परन्तु श्वसनक ज्वरमें एक तृतीयांश और कभी २ अर्धांश तक भी होता है। सिवाय गुरुतर क्षेत्रके प्रायशः ५-६ दिन तक मानसिक विकार नहीं दिखलाई पड़ता, तथापि रातको ज्वर वृद्धिकालमें प्रलाप आदिके लक्षण दिखलाई पड़ते हैं। पेशाब कम और रक्त वर्ण होना इस मर्जमें साधारण है। प्रायः कोष्ठबद्धता रहती है। पेटमें कोई भी अवस्थान्तर परिलक्षित

नहीं होतीं। तथापि ज्वरवृद्धि काल या गुरुतर क्षेत्रमें ध्मान दिखलाई पड़ता है। रोगीको सीनेका दर्द सबसे अधिक कष्ट देता है। ऐसा भी होता है कि रोगी को परीक्षा करते समय श्वास लेनेके लिए कहनेसे रोगी थोड़ा बहुत श्वासकी कोशिश करके रोने लगता है। पूरा श्वास लेनेमें अधिक कष्ट होता है, क्योंकि रोगके कारण फुफ्फुसका काम बढ़ जाता है किन्तु आक्रान्त फुफ्फुस काम नहीं कर सकता। हां फुफ्फुसका जो भाग आक्रान्त नहीं होता वही काम के काबिल रहता है इसीलिये श्वास लेनेमें कष्ट मालूम होता है। स्वस्थ अवस्थामें श्वास-प्रश्वासकी गति प्रति मिनट १८ से २० तक रहती है। इस क्षेत्रमें दूसरे दिनमें ही ३० और चौथे पांचवें दिनमें ४० से ५० तक प्रति मिनट हो जाती है। बच्चोंके श्वास प्रश्वासकी गति इस बीमारीमें ८० से १०० तक हो सकती है, हर मर्तबे खांसते समय असहनीय दर्द और बलगम न निकलनेकी वजहसे या कष्टके साथ निकलनेकी वजहसे और उसको निकालनेके लिये कोशिश करनेकी वजहसे रोगी निस्तेज हो जाते हैं। पहले पहल सूखी खांसी रहती है और सिवाय मामूली पतले बलगम के और कुछ नहीं निकलता। धीरे २ बलगम पूर्वापेक्षा कुछ सरलतासे निकलता है और गलितावस्थामें पूय मिश्रित बलगम पीला मटमैला अधिक गाढ़ा बहुत अधिक निकलता है। बलगम का वर्ण धीरे २ बदलता है, पहले पहल यह रक्ताभ लसिकायुक्त और बादमें धीरे २ तन्तुमय चिप-चिपे हुए पूय मिश्रित आकारका होता है। किसी २ को कुछ कालिमा लिये बलगम निकलता है। जिह्वा मिट्टी वर्ण मलिन रहती है। क्षुधा-मन्द, शिरमें दर्द, कोष्ठ-बद्धता वगैरह दिखलाई पड़ते हैं। फुफ्फुसका शीर्ष देश आक्रान्त होनेसे रोग-जनित विष-क्रिया ज्यादा होती है। और प्रलाप, तथा चित्त विभ्रम ज्यादा होता है। फुफ्फुसका तल देश आक्रान्त होनेसे श्वास कष्ट बहुत ज्यादा होता है। इस दशा में बहुतोंको हिक्का व वमन भी होता है।

रोगी-दर्शन—रोगीके आक्रान्त पार्श्वके फुफ्फुसमें क्रिया शिथिलके कारण जो गति होती है वह बहुत कम दिखलाई पड़ती है। सिर्फ फुफ्फुसका तल देश आक्रान्त हो तो ऊपरका हिस्सा ज्यादा काम करता है। सीने पर हाथ रखनेसे आक्रान्त पार्श्वमें अपेक्षाकृत मृदु संचालन मालूम होता है। सीने पर हलका हाथ रखकर रोगीको एक ही बात कई मर्तबे कहलानेसे उसका कम्पन स्वस्थफुफ्फुसके उसी हिस्सेकी उसी तरहकी परीक्षा की तुलनामें कुछ ज्यादा मालूम होता है। फुफ्फुसके ऊपर उंगली रखकर धीरे धीरे ठेपन करनेसे प्रदाहावस्था में आवाज जोरसे सुनाई पड़ती है और दूसरी तीसरी अवस्थामें वह आवाज अति मृदु और नीरन्ध्र चीजके ऊपर पड़ती सी सुनाई पड़ती है। चौथी अवस्थामें वह आवाज फिर जोरसे सुनाई पड़ने लग जाती है।

वक्ष-परीक्षा-यन्त्र सहयोग (स्टेथस्कोप) से देखने पर प्रथमावस्था में श्वास प्रश्वास जैसे किसी दबी हुई जगहसे निकल रहा हो ऐसा मालूम होता है। कभी कभी दो एक रोज के अन्दर बुद्बुद् जैसी आवाज और बाल घिसने जैसी आवाज होती है यह आवाज साधारणतः श्वास परिसमाश्रित के साथ सुनाई पड़ती है। फुफ्फुस के छोटे छोटे कमरों के अन्दर और फुफ्फुस के अन्दर घुसी हुई श्वास-नली के छोटे छोटे हिस्सोंके अन्दर जमा हुए बलगमके भीतर हवा घुसनेकी वजहसे यह आवाज पैदा होती है। पहले पहल आवाज मृदु और शुष्क रहती है, गलितावस्थाके प्रारम्भसे ही यह आवाज और जोरसे निःश्वासके साथ निकलती है किन्तु ऐसी आवाज अधिकतर कोमल मालूम होती है।

सहसा ज्वर मुक्ति—एक तरफके फुफ्फुस प्रदाहमें यह एक बड़ा खतरनाक लक्षण है सातवें रोजसे होकर कभी २ बारह रोजके अन्दर किसी दिनमें किसी समय झटसे ज्वर उतर जाता है। कभी २ पांचवें दिनमें भी ऐसा होता हुआ देखा गया है, परन्तु बहुत कम।

लक्षणः—ज्वर वेग बहुत ज्यादा रहते हुए कभी २ झटसे आठ दश घण्टेके अन्दर और कभी २ चार पांच घण्टेके अन्दर बहुत अधिक उतर जाता है। कभी २ स्वाभाविक तापसे भी कम हो जाता है, नाड़ीकी गति अति मृदु, आकृति सूक्ष्म और संहति बहुत कम हो जाती है और धीरे २ नाड़ी लोप हो जाती है। पसीना ललाटसे शुरू होकर तमाम बदन उस ठंडे पसीने से भीग जाता है क्रमशः वह पसीना बढ़कर रोगीके कपड़े और बिस्तर भी भिगो देता है। निःश्वासके साथ निकलती हुई घर घर की आवाज बढ़ती है। रोगीकी चेतना लोप हो जाती है। नेत्र मणियोंका विस्फारण और श्वास प्रश्वासकी गति अति मृदु होजाती है, जैसे रोगीका अन्तिम काल आ जाता है इस क्षेत्रमें उपर्युक्त चिकित्सासे रोगीको आठ दश घण्टेके अन्दर और कभी कभी २४ घण्टेके अन्दर चेतना आ जाती है और वह स्वस्थता का अनुभव करता है। श्वासका कष्ट, सीनेमें दर्द और तकलीफें

बहुत कम मालूम होती हैं। खास कोई तकलीफ उस समय नहीं रहती है। रोगीको ज्वर नहीं आता और धीरे धीरे रोगीको आराम हो जाता है।

उपसर्गः—मन्थर ज्वरवत् इसमें कोई विशेष उपसर्ग नहीं आता। फुफ्फुस धरा कला का प्रदाह कभी कभी कलान्तराल (कला के बीच) में लसिका श्राव होना और कभी कभी पूय श्राव होना इस बीमारीका खास लक्षण है इस उपसर्गका इलाज दूसरे अध्यायमें कहा जायगा। कभी कभी ऐसी अवस्थामें सहसा ज्वर मुक्ति होकर पुनः ज्वर होना दिखलाई पड़ता है। कभी कभी यह कई रोज रहता भी है। साधारणतः ऐसा होनेसे फुफ्फुस धरा कलाके प्रदाहमें, लसिका संचय और पूय संचयका संदेह होता है। कभी कभी सहसा ज्वर मुक्त होने के दो एक रोज बाद अथवा कभी २ आठ दश रोजके बाद पुनः ज्वर चढ़ता है और फुफ्फुस प्रदाहका पूरा लक्षण प्रकट होता है, परन्तु साधारणतः यह पहलेके अनुसार तेज नहीं होता, यद्यपि इसे उसी बीमारीका पुनराक्रमण ही समझना चाहिये। फुफ्फुस के अन्दरसे बलगम पूरी तरहसे न निकलनेकी वजहसे तथा परिपाक न होनेकी वजहसे यह पुनराक्रमण होता है। हिक्का इस बीमारीमें एक साधारण और प्रधान उपसर्ग है जो बीमारीके पैदा हुए जहरके न निकलनेसे होती है, कभी कभी दूसरे मर्जके साथ भी यह हिक्का उपसर्गके रूपमें होती है।

साध्यासाध्यत्व विचारः—नई बीमारियोंके अन्दर श्वसनक-सन्निपात एक भीति जनक व्याधि है। बच्चे और बुढ्ढों को यह बीमारी ज्यादा होती है। परन्तु इस बीमारीसे मृत्यु कम होती हैं। यौवनावस्थामें इस मर्जसे आक्रान्त आदमी ज्यादा मरते हैं। एक वार जिसको यह बीमारी हो चुकी है उनके लिए इसका पुनराक्रमण खतरनाक है। एकवार यह बीमारी हो जानेसे फुफ्फुस जीवन भरके लिए कमजोर हो जाते हैं और फुफ्फुसको जो नुकसान पहुंच जाता है प्राय; वह नुकसान तो सुधरता नहीं और आक्रान्त आदमी श्लेष्म प्रवण हो जाते हैं। बहुधा ऐसे आदमियोंको झटसे शरदी लग जाती है, जुखाम और खांसी हो जाती है। रोगी स्थूल और कमजोर होनेसे दूसरी वार इस बीमारीसे आक्रान्त होने पर अथवा लक्षण वगैरह पूरी तरहसे प्रकट होने पर यह बीमारी खतरनाक होती है।

रोग निर्णयः—इस रोगको पहिचाननेमें कोई विशेष बात नहीं समझनी होती। तेज बुखार, सीनेमें दर्द, और श्वास कष्ट वगैरह देखनेसे ही पहिले इसी मर्जका सन्देह होता है। इससे बढ़कर रोग परिचयके लिए पहले जो जो पद्धतियां और बीमारी के लक्षण वगैरह कहे गए हैं उनकी सहायतासे इस मर्जको पहचानना कोई मुश्किल बात नहीं है। दोनों तरफके फुफ्फुसके प्रदाह, फुफ्फुस धराकलाका प्रदाह और कलान्तरालमें श्राव संचय होना तथा इसके साथ पार्थक्य आदि का उल्लेख आगे किया जायगा। इस समय पाश्चात्य शास्त्र द्वारा निकले हुए बलगमकी परीक्षा करके इस मर्जको पहिचाननेकी अनेक सुविधाएं हैं। यथा—

बलगममें अनुविक्षण यंत्रकी सहायतासे न्यूमोकोकस (Pneumo coccus) स्ट्रेप्टो कोकस (Strepto Coccus) स्टफाइलोकोकस (Staphylo coccus) इनफल्युएंजा वेसिलस (Influenza Bacillus) रेड ब्लाडकारपसल्स (Red Blood Corpuscles) डेड ह्वाइल्वाड कारपसलस (Dead white Blood Corpuscles) इलास्टिक फाइबर्स (Elastic fibers) और लंग्स टिसुज (Lungs Tissues) वगैरह देखे जाते है।

चिकित्सा

साधारण व्याख्याः—यह व्याधि संक्रामक नहीं है, रोगीके लिये कमरा शैय्या हर तरहसे सुश्रषा आदिका अच्छा प्रबन्ध होना चाहिये। रोगी को सर्वदा आरामसे रखनेके लिये कोशिश करनी चाहिये। निकला हुआ बलगम बड़ी सावधानतासे एक बन्द पात्रमें लेना चाहिये। विशेषतः छाती तो किसी भी समय खुली नहीं रखनी चाहिये, हवा और उत्तम प्रकाशमय शुष्क कमरे में सब खिड़की और दरवाजा खोलकर रोगी को लिटाना चाहिये। बड़ी रात में जाड़ों के दिन एक दो दरवाजे बन्द कर सकते हैं। परन्तु यह ध्यान हर समय रखना चाहिये कि कमरेके अन्दर विशुद्ध वायु आ सके। आमने सामनेके दरवाजे या खिड़कियां खुली हुई रखनी चाहियें और रोगी को उस दरवाजा या खिड़कीके बगलमें ही रखना चाहिए। बहुत जाड़ेके समय रोगीको गरम रखनेके लिए बिस्तरेके अन्दर गरम पानी भरी हुई थैली या बोतल रख सकते हैं। परन्तु खिड़की या दरवाजा बन्द करके कमरा गरम करनेकी कोशिश कभी भी न करनी चाहिए। कमरेके दरवाजे या खिड़कियां बन्द करके दोपहरके समय कुनकुने पानीसे रोगीका बदन पोंछ दें तो अच्छा है। रोगीको पीने के लिये काफी उबला हुआ पानी देना चाहिये। उदराध्मान और पतले दस्त न आरहे हों और ज्वर

भी कम हो तो थोड़ा दूध पीपल के साथ उबालकर या साबूदाना बार्लीके पानीके साथ मिलाकर दे सकते हैं। खाली दूध कभी भी न देना चाहिये। तेज ज्वर रहते समय दूध देना ठीक नहीं है। क्योंकि दूध उदराध्मान बढ़ा देता है। कोष्ठ बद्धता रहने पर भी कभी जुलाब न देना चाहिये। आवश्यकता होने पर अनुवासनवस्ति (अनीमा) द्वारा मल निकालने की चेष्टा करनी चाहिये या ग्लिसरीन की बत्ती अथवा पिचकारीसे मल निकालना चाहिये। पेट साफ न रखने से भी उदराध्मान हो सकता है। अनार, बेदाना, अंगूर, सेव, वगैरह के रस दे सकते हैं। छातीमें मालिश करना और सेंकना इस मर्जमें बड़ाही लाभकर होता है। पुराना घी और अद्रकका स्वरस बराबर और जरा-सा कपूर मिलाकर गरम करके या कड़ुआ तेल, अद्रकका रस और सेंधानमक मिलाकर गरम करके मालिस करें। दर्द ज्यादा रहने से तारपीनका तेल और कड़ुआ तेल बराबर मिलाके छातीमें मल सकते हैं। गरम पानीमें ऊनी कपड़ा भिगो कर निचोड़के मलनेके बाद छाती सेंक सकते हैं। यही हमारा देशी तरीका है। छाती पर अलसी की पुल्टिस भी कर सकते हैं, परन्तु यह ख्याल रखना चाहिये कि जितनी देर तक वह पुल्टिस गरम रहे तभी तक छाती पर रख सकते हैं, ठण्डी हो जानेके पहले ही उतार कर दूसरी नई पुल्टिस लगानी चाहिए। ठण्डी पुल्टिस थोड़ी देर तक भी छाती पर रखने से बहुत नुकसान पहुंचता है। रोगी की छाती और पीठ रुई से बांध कर रखना चाहिये। पानी देने में कभी अवहेलना न करनी चाहिये। क्योंकि श्वसनक-ज्वरमें रोग जीवाणुओंको निकालनेका सबसे उत्तम उपाय पेशाब है। जितना ही पेशाब साफ रहेगा उतना ही इस रोगसे पैदा हुए जहरको निकलने का मौका रहेगा। इस ख्यालसे काफी पेशाब करवाना इस मर्ज में अत्यन्त आवश्यक है। डाक्टर लोग छातीमें लगानेके लिए ऐन्टिफ्लोजिस्टीन (Antiphlogistin) ऐन्टिफलोमिन (Antiflamin) वगैरह चीजों की पुल्टिस छाती लगा देते हैं। उससे भी बहुत लाभ पहुंचता है।

दवाइयां—रोग-निर्णय होने के पहिले पहिल दो एक रोज शृङ्गिक घटित दवाइयां दे सकते हैं। सौभाग्यवटी, मृत्युंजय-रस, रामबाण रस, पतला दस्त रहने से आनन्द भैरवी वगैरह दवाइयां दी जा सकती हैं। महालक्ष्मी विलास आधी मात्रा और मकरध्वज आधी रत्ती, दिन में एक मर्तबा देनेसे लाभ पहुंचता है। श्लेष्मशैलेन्द्र रस भी दे सकते हैं। मकरध्वज और शुभ्र पर्पटी मिलाकर दिनमें दो मर्तबा देना चाहिये, इससे पेट ठण्डा रहेगा और पेशाब अधिक होगा। वायु का लक्षण रहनेसे कृष्ण चतुर्मुख, हृद्वात चिन्तामणि, चतुर्भुजरस वगैरह दवाइयां फायदे-मन्द हैं। कम से कम दो मर्तबा शृंगाराभ्र देना चाहिये। शृंगाराभ्र पहले व दूसरे सप्ताहमें शोधित नौसादरके साथ मिला कर तीन रत्ती से छः रत्ती तक हर मर्तबा देना चाहिये, इससे कफ पतला हो जाता है और जल्द निकल आता है। सूखी खांसी की तकलीफ कम हो जाती है। तीसरे सप्ताह में अगर बलगम काफी निकलता न हो तो नौसादर चालू रखना चाहिये। तीसरे चौथे सप्ताहमें कैलशियम मूल की दवाइयां यथाः—प्रवाल भस्म, मुक्ता शुक्ति भस्म वगैरह देना चाहिये। कैलशियम पहले सप्ताहमें देनेसे यह बीमारीका गुरुत्व कम कर देता है। ऐसा ही तीसरे चौथे सप्ताहमें देनेसे रोगीको जल्दी आराम कर देता है। फुफ्फुसके क्षत पूर्ण करनेमें सहायता करता है। शृङ्गाराभ्रके साथ मिलाकर नहीं तो अलग से मकरध्वजके साथ दे सकते हैं। कभी कभी शृङ्गराभ्र, प्रवाल भस्म मकरध्वज मिलाकर भी दिया जाता है। जुखाम ज्यादा रहनेसे और खांसी रहनेसे इसके साथ पीपलका चूर्ण मिला कर भी दे सकते हैं। वस्तुतः श्वसनक सन्निपातमें फुफ्फुसकी हर बीमारियोंमें कैलशियम श्रेणीकी दवाइयां अपरिहार्य हैं। पाश्चात्य शास्त्र इन बीमारियोंमें कैलशियमकी बहुतही तारीफ करते हैं, प्रारम्भसे अन्त तक कैलशियमके प्रयोगसे बहुत ही लाभ पहुंचता है। रोगीकी बल रक्षाके लिये तथा सहसा ज्वर मुक्त होने पर सावधानतासे एक मर्तबे जरूरत होनेसे दो मर्तबे भी बृहद् कस्तूरी भैरवका इस्तेमाल कर सकते हैं। वस्तुतः रोग निर्णय हो जानेके बादसे ही चाहे सुबह चाहे शामको एक मर्तबे बृहद् कस्तूरी भैरव नुसखेमें रखना ही चाहिए, स्वल्प कस्तूरी भैरवमें विष रहनेकी वजहसे इस्तेमाल नहीं किया जाता। खांसीके लिए चन्द्रामृत रस, ताल मिश्रीके साथ चूसनेको दिया जाता है। लेकिन इसके देनेसे कफ सूख जाता है इसीलिए बहुत सावधानीसे प्रयोग करना चाहिए। इसकी जगहमें अष्टांगावलेह, बृहद्वासावलेह, वगैरह दवाइयां अवलेह रूपमें दे सकते हैं। बहुतसे वैद्य लोग पूर्वोक्त अवलेहके साथ शोधित नौसादर मिलाके इस्तेमाल करते हैं। इससे भी कफ निकलनेमें सहायता मिलती है। रोगीको पिपासा न रहने पर भी काफी पानी पिलाना चाहिए, इससे दवाका काम भी निकलता है। २४ घंटेके अन्दर कमसे कम ढ़ाई या तीन सेर पानी तक पिलाना चाहिए।

पथ्य मिश्रित पानीय पदार्थ भी जल विभागकी पूर्ति करते हैं। ज्वर ज्यादा बढ़े या प्रलाप ज्यादा रहनेसे सिर पर बर्फकी थैली रखनी चाहिए। बर्फ न मिलने पर ठंडे पानीसे सिर धुलाना और कपाल पर भीगी हुई पट्टी रखना आवश्यक है। मुंह और दांत रोजाना धुलाने चाहिए। इस बीमारी का एक साधारण नुसखा दिया जाता है। यथा—प्रातःकाल कृष्णचतुर्मुख रस सेंके हुए परवलके रस और शहदके साथ दें जुखाम ज्यादा रहनेसे मकरध्वज और महालक्ष्मी विलास मिला कर या बृहद् कस्तूरी भैरव पानके रस और शहदके साथ अथवा शृंगाराभ्र और नौसादर गरम पानीके साथ देना चाहिए और दो बार मकरध्वज शुभ्र पर्पटी सौंफके पानी और मिश्रीके साथ दे सकते हैं। वायुका लक्षण अधिक रहनेसे एक वार बृहद्वात चिन्तामणि भी दे सकते हैं। पीनेके लिए षडंग पानीय, गोक्षुर और बालछड़ मिला हुआ तृण पंच मूलका पेय, बिना गरीके कच्चे नारियलका पानी, और मिश्रीका पानी दे सकते हैं। अवहेल रूपमें अष्टांगावलेह, वासावलेह, शहदके साथ दिया जाता है।

सहसा ज्वर मुक्तिकी चिकित्साः—सहसा ज्वर वेगका स्वाभाविक ह्रास हो रहा हो तो उसी समय उत्तेजक दवाइयां देनी चाहिएं। इसलिए बृहद्कस्तूरी भैरव, कस्तूरीभैरव, मकरध्वज, मृतसंजीवनी, सुरा, मृगमदासव दिया जाता है पसीना अधिक आने पर चून (कैलशियम) जातीय दवाइयां यथा—प्रवाल भस्म, मुक्ता भस्म, मकरध्वजके साथ देनेसे फायदा पहुंचता है। तमाम वदनका पसीना पोंछवा कर फाग या किसी किस्मका सुगन्धित पाउडर, आरारोट, वार्ली वगैरह जो कोई चीज मिले बदनमें मलना चाहिए। हाथ पैर ठंडे हो जाने पर गरम पानीसे सेंकना अथवा गरम पानीकी थैली या बोतल हाथ पैरोंमें और बगलमें रखना चाहिए। गरम कपड़े और कम्बल वगैरह ओढ़ा देना चाहिए। सर्प विष घटित दवाइयां देनेका यही प्रकृष्ट क्षेत्र है; सूचिकाभरण रस, अघोर नृसिंह रस, ब्रह्मरन्ध्र रस, वगैरह इस क्षेत्रमें बड़े ही फायदेमन्द हैं। यह सब सर्प विष घटित दवाइयां क्रमशः एक एक घंटा बाद ३ मात्रा तक दे सकते हैं। परन्तु साधारणतः दो मात्रासे अधिक देनी नहीं पड़ती हैं।

यह दवा देने के बाद रोगीको शीत क्रिया (ठंडा) करनेके लिए तैय्यार रहना चाहिए। यह दवा देनेके बाद नाड़ीकी गति फिरसे अनुभव होने लगती है और रोगीका शारीरिक ताप बढ़ जाता है। इन सब लक्षणोंसे रोगीके जीवनकी आशा होने लगती है, तभीसे शीत क्रिया प्रारम्भ करनी चाहिए। रोगीको अत्यन्त दाह होता है। नेत्र रक्त वर्ण हो जाते हैं। और रोगीका तमाम बदन आगमें जलता हुआ सा प्रतीत होने लगता है। उस समय शिर पर वर्फ या वर्फ न मिलनेसे कुएंके पानीसे तमाम बदनको पोंछना पड़ता है, तथा धोना पड़ता है। पीनेके लिए ठंडी चीज तथा कच्चा नारियलका पानी, मट्ठा, मिश्री या चीनीका शरबत वगैरह देना आवश्यक होता है। नहीं तो विष क्रियासे रोगीकी जिन्दगीका खतरा है या उन्मादकी अवस्था उत्पन्न होनेसे हानि होनेकी सम्भावना रहती है। पाश्चात्य मतानुसार इस समय उत्तेजक औषधियां दी जाती हैं।

उपसर्गों की चिकित्सा लक्षणानुयायिनी होनी चाहिये। पुनराक्रमण होने पर पूर्ववत् इलाज करना चाहिये। इस बीमारीमें उपसर्गके रूपमें हिक्का दिखलाई पड़ता है। हिक्काका इलाज सबसे पहिले होना चाहिये। समझ लेना चाहिए कि यह हिक्का बीमारीसे पैदा हुए इस रोगके जहरकी वजहसे ही है। उस जहरको नाश न करने की वजहसे और उसे न निकाल देने से इसकी चिकित्सा व्यर्थ है। पहिले ही कहा गया है कि इस जहरको निकाल देनेका प्रकृष्ट उपाय पेशाब बढ़ाना है। इसलिये काफी मात्रामें पानी पीनेके लिये देना आवश्यक है। शुभ्र पर्पटीयुक्त चन्द्रप्रभा, अभ्रपर्पटी युक्त मकरध्वज, वगैरह दवाइयां, षडंग पानीय, गोक्षुर और बालछड़ मिला हुआ तृण पंचमूल का काढ़ा वगैरह प्रयोग करने से लाभ पहुंचता है। वृक्क प्रदेशमें सेंकना अथवा पुल्टिस लगाना बड़ा लाभकर है। अलसी की पुल्टिस यहां बहुत अच्छा काम देती है। पाषाण भेद का रस वरुणके वकलेका रस, या काढ़ा देनेसे भी पेशाब ज्यादा होता है। वस्ति प्रदेशमें पाषाण भेद और सोरा एक साथ पीसकर प्रलेप भी किया जाता है। पहिले कहा गया है कि पतला करके मिश्रीका पानी अधिकाधिक पिलानेसे मूत्र आने लगता है, प्रारम्भ से ही पेशाब की तरफ ध्यान रखकर इलाज करनेसे प्रायः हिक्का नहीं आता।

इस बीमारीमें उदराध्मान और कोष्ठबद्धता रहने से देवदारू, सौमाञ्जन बीज, कूठ, बच, हींग, सेन्धानमक, कांजीके साथ पीसकर पेट पर लेप लगानेसे फायदा पहुंचता है। पुनः २ फुफ्फुसका प्रदाह होनेसे बहुत शीघ्र यक्ष्मा होनेका डर रहता है।

—o—

मकरध्वज सम्बन्धी नवीन प्रयोग

[लेखक—श्रीयुत् रमेश बेदी आयुर्वेदालङ्कार]

चिकित्साकी भारतीय पद्धति-आयुर्वेदका एक महत्वपूर्ण अंग रसायन शास्त्र है। संस्कृतमें पारेको रस कहते हैं क्योंकि हिन्दु रसायनमें मुख्य रूपसे पारा ही महत्वपूर्ण भाग लेता है। इसलिए रस शास्त्रका नाम ही रसायन शास्त्र या रस तन्त्र रखा गया है।

आयुर्वेदके प्राचीनतम उपलब्ध ग्रन्थ चरक और सुश्रुतके अध्ययनसे हम कह सकते हैं कि ईसासे एक हजार साल पहले से भारतीय पारा, लोहा, सोना, चांदी आदि धातुओंके रोग नाशक उपयोगको जानते थे। यद्यपि यह ठीक है कि इस कालमें रोग निवारणके लिए काष्ट औषधियोंका ही प्रयोग बहुधा होता था और दवाके रूपमें खनिजों तथा अनैन्द्रिक पदार्थोंका प्रयोग प्रायः कम होता था। रस विद्या या हिन्दु रसायन चरक, सुश्रुतके समय बहुत उन्नत नहीं थी। हिन्दु रसायनका विकास करने वाला सर्व प्रथम विद्वान् नागार्जुन माना जाता है। वह बौद्ध सम्प्रदायका था और लगभग तीसरी शताब्दी ईस्वी पूर्वमें यह हुआ। इसने पारेके गुणोंका अधिक गहराईसे अध्ययन किया और तत्सम्बन्धी रासायनिक ज्ञानमें वृद्धि की। इसके लिखे रस रत्नाकर ग्रन्थमें और शैव सम्प्रदायके रसार्णव ग्रन्थमें हमें इस विषयका बहुत उपयोगी ज्ञान मिलता है, जिससे ज्ञात होता है कि ईसासे तीन सौ साल पहले हिन्दुओंका धातुविषयक और रासायनिक ज्ञान काफी उन्नत हो चुका था।

रस तन्त्रके ग्रन्थोंमें पारा, गन्धक और सोनेके एक योग मकरध्वजका उल्लेख मिलता है। मकरध्वज रस तन्त्रकी एक अद्भुत, उपयोगी और आश्चर्यजनक अनुपम देन है। इसमें सोना पारे और गन्धकके साथ मिल कर एक ऐसा समास बनाता है जिसमें सोना बहुत सूक्ष्म रूपमें होता है। जब मकरध्वज मुख द्वारा दिया जाता है तो अन्न प्रणालीका श्लैष्मिक आवरण (Mucous membrane) उसको ग्रहण करके शरीरका अंग बना सकता है। रस ग्रन्थोंके अनुसार मकरध्वज निर्माणमें सोना कुप्पीके तल भागमें शेष न रह कर पारे और गन्धकके साथ ही सूक्ष्म रूपमें मिल कर ऊर्ध्वगामी हो जाना चाहिए और जिस समय हम कुप्पीकी ग्रीवामें से मकरध्वज खरच कर प्राप्त करते हैं तो रासायनिक परीक्षासे वह केवल पारे और गन्धकका समास (Red sulphide of mercury) ही नहीं मिलना चाहिए, अपितु वह एक ऐसा समास होना चाहिए जिसमें पारे और गन्धकके साथ सोनेका अंश भी हो।

रस तन्त्र का गौरवास्पद काल—समयकी गतिविधि के अनुसार धीरे २ ह्रासाभिमुख होता गया और कोई भी ऐसा रसायनज्ञ न रहा जो शास्त्रीय मकरध्वज बना सकता हो अर्थात् ऐसा मकरध्वज जिसमें सोना विद्यमान हो। कुप्पीकी ग्रीवामें लगे हुए पारे और गन्धकके योगको ही मकरध्वज समझा जाता था और अधिक हुआ तो पाक प्रक्रियामें कुप्पीकी तलीमें बची हुई सोनेकी भस्मको मकरध्वजके साथ मिला कर पीस दिया जाता था और यह योग स्वर्ण घटित मकरध्वज आदि नामोंसे व्यवहारमें लाया जाता था। स्पष्ट है कि यह योग सोनेका पारे के साथ मिश्रण होता था, समास नहीं। निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता कि इस मिश्रणमें सोना इतने सूक्ष्म रूपमें होता था या नहीं कि वह शरीरमें जाकर श्लैष्मिक आवरणसे ग्रहण किया जा सके और शरीरका अङ्ग बन सके।

पाश्चात्य रसायन (Modern chemistry) के ज्ञाताओंने भारतीय चिकित्सकों द्वारा प्रस्तुत किये गये मकरध्वज के डलों या स्फटिकोंके अनेक नमूनोंकी आधुनिक नवीनतम उपकरणोंसे सुसज्जित रसायन शालाओंमें परीक्षाकी और यही पाया कि किसी भी नमूनेमें सोनेका अंश मात्र भी नहीं है प्रस्तुत द्रव्य पारे और गन्धकका समास है। छैः गुने गन्धकसे बने हुए मकरध्वजमें १३-७८ प्रतिशतक गन्धकका भाग था और सोना नाम मात्र को भी नहीं था। वस्तुतः यह कितना हास्यास्पद और लज्जास्पद था कि जिस द्रव्य पर हमारे शास्त्रकार जिन्हें हम ऋषिकी उच्च पदवी देते हैं, और हम इतना गर्व करते थे तथा जो भारतीय चिकित्सा शास्त्र की चमत्कारिक चीज समझी जाती थी वह एक सामान्य सी चीज समझी जाने लगी, क्योंकि हम यथार्थ रूपमें उसे बना नहीं सकते थे, जैसा कि हमारे शास्त्रकारों ने लिखा था।

भारतीय पद्धति द्वारा चिकित्सा करने वाले विद्वत् समुदाय

के लिए स्वर्ण ग्रसित मकरध्वज बनाना देरसे एक अबूझ पहेली रही है। अनेकोंने अपना सारा जीवन इसीको सुलझानेमें अर्पित कर दिया और न जाने कितना धन और समय इसके पीछे नष्ट किया गया। हमें यह जान कर प्रसन्नता होती है कि निरन्तर परिश्रमके बाद काशी निवासी हमारे एक रासायनप्रेमी श्रीयुत् कृष्णपाल शास्त्रीने इस गूढ़ रहस्यका पता लगा लिया है। अनेक प्रतिष्ठित तथा गणयमान्य विद्वान् चिकित्सकोंके सामने शास्त्रीजीने अपने प्रयोगको क्रियात्मक रूपमें करके दिखाया है। शास्त्रीय विधिके अनुसार कांचकी कुप्पीमें पारा, गन्धक और सोनेका मिश्रण डाल कर आग पर रखा गया और कुछ समय बाद जब मकरध्वज उड़ कर कुप्पीकी ग्रीवामें लग गया तो ठंडा हो जाने पर उसकी परीक्षाकी गई। उपस्थित चिकित्सक समुदायने स्वीकार किया कि इस मकरध्वजमें सोना अवश्य विद्यमान है और विशेष विधिसे वह मकरध्वजसे पृथक् करके भी दिखाया गया। कलकत्ताके साइन्स कालेज और प्रेसीडेन्सी कालेजमें भी इनके स्वर्ण ग्रसित मकरध्वजकी परीक्षाकी गई, दोनों कालेजोंके परीक्षकोंने स्वीकार किया है कि इसमें स्वर्ण विद्यमान है।

इस प्रयोगने वास्तवमें हिन्दुओंके महत्वपूर्ण लुप्त ज्ञानको प्रकाशमें ला दिया है। केवल भारतीय चिकित्सामें ही नहीं अपितु चिकित्साकी अनेकों प्रणालियोंमें स्वर्ण ग्रसित मकरध्वज का निर्माण एक नवीन अध्याय आरम्भ करेगा और हमें विश्वास है कि इससे आधुनिक संसार भारतके गौरवास्पद चिकित्सा शास्त्रकी ओर उत्सुकता-पूर्ण जिज्ञासासे झुकेगा।

पायोरिया और दन्त रक्षा

[लेखक—स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य]

लाला लाजपतराय दातव्य औषधालयमें उदर सम्बन्धी रोग-यथा बदहज्मी, अम्लपित्त, अतिसार, अग्निमान्द्य आदिके जो रोगी आते हैं हम प्रायः ऐसे रोगियोंके दन्त पुप्पुटों (मसूढ़ों) की स्थितिका निरीक्षण करते रहते हैं। हमने देखा है कि प्रायः ८० प्रतिशत रोगियोंके दन्तमूलमें एक रोग-जिसे आधुनिक समयमें पायोरिया = गोश्तखोरा = हमारे यहां दन्तवेष्ट कहते हैं अधिक देखा जाता है। केवल दान्तोंका ही जीवन लेने वाला यह रोग होता तब भी इतना भयङ्कर नहीं था, क्योंकि विज्ञानकी कृपासे नकली दांत लगाने वाले बहुत पैदा हो गए हैं, जहां एक दांत उखड़ा नहीं कि उसके स्थान पर नकली दांत लगाने वाले हर जगह तय्यार मिलते हैं। यह रोग दन्तमूलमें उत्पन्न होता है और शरीरमें अनेक रोगोंका निमित्त कारण बनता है इसका ज्ञान बहुत कम वैद्योंको है। इसीलिये आवश्यकता दिखाई दी कि इस रोगका मूल कारण व रोगकी पहिचान तथा उससे बचनेके उपाय बतलाये जांय, जिससे वैद्य व जनता लाभ उठा सके।

पायोरियाकी उत्पत्तिका कारण—अनेक लोगोंकी धारणा है कि यह रोग उन व्यक्तियोंको अधिक होता है जो दन्त-धावन या ब्रुश आदिसे दांत साफ नहीं करते। कुछ लोगों का ख्याल है कि जो जातियां मांस सेवन अधिक करती हैं उनको यह रोग होजाता है। यह दोनों ही कारण बहुत सीमा तक सही नहीं हैं। जो लोग प्रभातको स्नान करनेके पूर्व और रात्रीको सोनेसे पूर्व ब्रुशसे या किसी वृक्षकी दातुनसे दांत साफ करते हैं उनका इस प्रकार दांत साफ करना उन्हें पायोरियासे नहीं बचा सकता। क्योंकि ब्रुश या दातुन करनेका उद्देश्य दांतको साफ करना, दांत पर आई हुई मैलको दूर करना है। ब्रुश या दातुन दांतोंको साफ रखने या उन्हें मांजने वाली चीज है जो केवल दांतों पर फिरती रहती है इसके दांतों पर फेरनेसे पायोरिया होनेसे नहीं रोका जा सकता। पाठक कहेंगे इसका कारण ? इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि पायोरिया दांतोंको नहीं लगता प्रत्युत् जिन मसूढ़ोंमेंसे दांतका उद्गम होता है उन मसूढ़ों और दांतोंकी सन्धियोंमें यह रोग उत्पन्न होता है। यह रोग दन्तको आवेष्टन करने वाले मांसको लग कर बढ़ता है इसीलिये आयुर्वेदज्ञोंने इसका नाम दन्तवेष्ट और यूनानी वालोंने मसूढ़ाके मांसको गलानेके कारण मांसखोरा नाम दिया। जब रोग मांसमें हो तो दांतोंको साफ करनेसे वह भला कैसे दूर किया जासकता है ? इसीलिये इसकी उत्पत्तिका कारण उक्त त्रुटि नहीं;

प्रत्युत् निम्न लिखित कारण है:—

यह स्पष्ट है कि हमारे दांत एक पंक्तिमें परस्पर सट कर ऐसे बैठे हैं कि बहुतोंके दांतोंमें—एक दूसरोंके मध्य बहुत कम सन्धि पाई जाती है। इन दांतोंकी सन्धियां इतनी अधिक समीप समीप हैं कि जब हम भोजन करते हैं तो इनमें खाद्य वस्तुका कुछ न कुछ अंश अवश्य फंस जाता है। बहुतसे व्यक्तियोंके विचार हैं कि भोजनके पश्चात् कुल्ला करने या पानी द्वारा मुख प्रक्षालन करनेसे मुख और दन्तसन्धिकी शुद्धि हो जाती है, यह विचार बहुत अंशमें अपूर्ण है। मुख प्रक्षालन करने पर भी दांतोंकी सन्धियोंमें खाद्य द्रव्यका कुछ न कुछ अंश फंसा ही रहता है। इसी खाद्य द्रव्यके अति सूक्ष्म अंशके कुछ घण्टों फंसे रहने पर इसमें क्या विकार उत्पन्न होता है? इसका बहुत कम ज्ञान पाठकोंको है। परीक्षाओं और सूक्ष्म निरीक्षणोंसे देखा गया है कि जो अन्नका सूक्ष्म भाग दांतोंकी सन्धियों में फंसा रह जाता है दो चार घंटे पश्चात् ही उसमें विकृति उत्पन्न हो जाती है। मुंहकी लारका जल जब उसको भिगो कर फुला देता है तथा उस लारमें विद्यमान सन्धानी जैव (खमीर उठाने वाले) उस फूले हुये अन्न भाग में विकृति उत्पन्न कर देते हैं इससे वह अन्नका सूक्ष्म भाग सड़ने गलने लगता है और उसमें कई प्रकारके तीव्र अम्लीय पदार्थ उत्पन्न हो जाते हैं जो मसूढ़ोंको प्रभावित करते हैं। ऐसे समयमें ही यदि पूयोत्पादक जीवाणुओंका वहां प्रवेश हो जाय तो रोग उत्पन्न हो जाता है। क्योंकि जीवाणु एक प्रकारसे सर्वव्यापि हैं। वह उस विकृत अन्न के आश्रयसे दांतोंके आवेष्टक किनारोंको गला कर उसे अपना खाद्य बना लेते हैं। बस, यहांसे इस रोगकी उत्पत्ति होती है।

जब किसी मसूढ़ेमें इस प्रकार पायोरियाका प्रादुर्भाव हो जाय तो आरम्भमें इसके कष्टका अनुभव बहुत कम होता है। इसका कारण? अनुसन्धान से मालूम हुआ है कि उस सड़ने गलने वाले पदार्थ में कोई ऐसा विष होता है जो उक्त मसूढ़े में विद्यमान ज्ञान तन्तुओंको उसी प्रकार प्रसुप्त कर देता है जैसे कोकेन आदि विष, इसीसे पीड़ाका अनुभव कम होता है। जब किसी मसूढ़ा और दन्तसन्धि में उक्त रोगका प्रादुर्भाव हो जाता है तो इस रोगके जीवाणु धीरे धीरे दन्त और दन्तवेष्ट सन्धिके मध्यमें होकर मसूढ़ेकी जड़की ओर बढ़ते हैं और धीर धीरे यह रोग जब मसूढ़ेके भीतरी भाग तक फैल जाता है तब वहां तक औषध पहुंचाना कठिन हो जाता है। क्योंकि दांतके आस पासका मांस भाग उस विकृतिको ढंके रखता है केवल किनारोंसे रोगका भान होता है। जब यह रोग एक दांत में लग जाय तो भीतर ही भीतर धीरे धीरे आस पासके अन्य दन्तवेष्ट सन्धियोंमें होकर फैलता जाता है। इस रोगके उत्पन्न होने पर फिर दांतोंसे पूय और रक्त जाने लगता है उस पूयोत्पत्ति से सदा मुखसे दुर्गन्ध आती रहती है। धीरे धीरे मसूढ़ोंका मांस गलता चला जाता है और दांत उनसे बाहर निकलते चले आते हैं जब यह रोग दन्तमूल बन्धक नाड़ियों तक पहुंच जाता है और वह बन्धन भी रोगके शिकार होने लगते हैं तो दांत हिलने लग जाते हैं और धीरे धीरे गिरते चले जाते हैं। इस रोगके होने पर जो मसूढ़ोंके मांस गलने पर पूयोत्पत्ति होती है उस पूयमें उस रोगके जीवाणु तथा अनेक प्रकारके विष होते हैं। यही विष शरीरको बहुत हानि पहुंचाते हैं। जिनको पायोरिया हो जाय वह मुंहमें उत्पन्न उस पूयको पेटमें जानेसे नहीं रोक सकते; पूय (राद) लारमें घुलमिल कर सदा उदरदरीमें पहुँचती ही रहती है और वहांसे वह लसिका वाहनियों द्वारा समस्त शरीरमें व्याप्त हो कर अनेक भयङ्कर रोगोंका कारण बनती है।

रोगोत्पत्ति से बचने का सरल उपाय

भोजन करके जब उठो जलसे मुखका प्रक्षालन कर लेनेके पश्चात् बांसकी या नीमकी सींक या आलपीन (जो पीतल की हो) दान्तोंकी सन्धियोंमें खूब अच्छी तरह फेर कर उसे साफ करो। सींककी नोकसे दांतोंकी जरा जरासी सन्धिको देखो, जीभसे स्पर्श कर मालूम करो कि कहीं कोई चीज फंसी हुई तो नहीं है? जब तक समस्त दांतसन्धि बिलकुल साफ न करलो बराबर सींक या आलपीन फेरते और फंसी वस्तुको छुड़ाते जाओ। कई बार रेशे वाली वस्तुओंके रेशे ऐसे फंस जाते हैं कि वह बड़ी मुश्किलसे निकलते हैं उन्हें भी जैसे हो निकाल डालो। दिनमें यदि आप चार बार भोजन करो साधारणसे साधारण फल आदि वस्तुएं क्यों न खाओ, उन्हें खानेके पश्चात् दांतोंको उक्त विधिसे अवश्य साफ करो। विश्वास रखो इस विधिसे दन्तसन्धियां साफ करने वाले व्यक्ति यदि मांसभोजी भी होंगे तो उनके दांतमें कभी पायोरिया या दन्तवेष्टकी बीमारी नहीं लगेगी। पायोरियासे बचनेका उपाय दन्तसन्धियोंको भोजनके कणोंसे शुद्ध रखना है। दातुन दांत साफ कर सकती है दन्तसन्धि साफ नहीं कर सकती। दातुन प्रभातमें करो पर दांतोंकी सन्धियोंमें सींक या आलपीन भोजनके पश्चात् फेरो। इसे कभी न भूलो। मरते दम तक आपके दांत दृढ़ स्वस्थ और सबल रहेंगे।

सजीव और निर्जीव पदार्थ

[लेखक—श्री जगमोहन]

संसारमें जितने पदार्थ विद्यमान हैं उन्हें तीन वर्गोंमें विभाजित किया जा सकता है:—(१) **जीवित** (२) **मृत** (३) **निर्जीव**। जीवित पदार्थोंमें जीवनके गुण पाये जाते हैं। जब जीवित पदार्थ से जीवन की विशेषताएं नष्ट हो जाती हैं तो उसे मृत पदार्थ कहते हैं। मसलन लकड़ीकीमेज मृत-पदार्थ है, क्योंकि यह लकड़ीसे बनी हुई है जो एक समय जीवित वृक्षों का अङ्ग थी। इसके विपरीत लोहेकी छड़ अथवा पत्थर की प्रतिमा मृत पदार्थोंके समान हैं, क्योंकि इनमें जीवनके गुण नहीं पाये जाते परन्तु मृत पदार्थोंसे इस बातमें विभिन्न हैं कि ये किसी समय जीवित थे।

यद्यपि 'जीवन' की पूर्ण परिभाषा करना कठिन है, तथापि जीवनके कुछ गुणोंका वर्णन किया जा सकता है जिनसे जीवित पदार्थ निर्जीव पदार्थोंसे विभिन्न हो पहिचाने जा सकते हैं। सब जीव अपने जीवन निर्वाहके लिये स्वयं निरन्तर बदलते रहते हैं और परिस्थितिके अनुसार भी अपनेमें परिवर्तन करते रहते हैं। इस मतलबके लिये जीवित पदार्थों में कुछ गुण पाये जाते हैं। इन्हीं मुख्य गुणोंका वर्णन यहां किया जायगा:—

गति—इसका अर्थ चलनेकी क्षमता है। साधारणत: हम चलने वाली चीजोंको ही जीवित समझते हैं परन्तु बहुत सी चीजें ऐसी भी हैं जो चल नहीं सकतीं अथवा चल भी सकती हैं तो बहुत कम। विपरीत इसके बहुत सी निर्जीव चीजें मसलन रेल, मोटर इत्यादि चलती हैं।

(२) **क्षोभ**—सब जीवित पदार्थ अपनी परिस्थिति के कुछ गुणोंका अनुभव करते हैं। इस अनुभव शक्तिको क्षोभ कहते हैं। यथा—यदि तुम्हारी उंगली गरम थालीसे छू जाय तो तुम शीघ्र ही उसे हटा लेते हो। थाली की गरमी उत्तेजक का काम करती है और उँगलीको थालीसे तेजीसे हटा लेना उसकी प्रतिक्रिया है। तुममें क्षोभकी क्षमता है क्योंकि तुम उस गरमीके द्वारा उत्तेजित हो प्रतिक्रिया करते हो। एक निर्जीव पदार्थ इस तरह प्रतिक्रिया नहीं कर सकता।

(३) **वृद्धि**—सब जीवित पदार्थोंमें वृद्धि अवश्य होती है। बहुतसे प्राणियोंमें एक विशेष आयुमें पहुंचकर वृद्धि रुक जाती है, परन्तु बढ़वार फिर भी किसी न किसी रूपमें होती ही रहती है। क्योंकि जब कभी शरीरमें व्रण पड़ जाता है तो वह भर जाता है और दुर्बल शरीर फिर पुष्ट हो जाता है।

(४) **भरण पोषण**—जीवित रहनेके लिये भोजन करना एक अनिवार्य क्रिया है। यदि भोजन ठोस हालतमें प्राप्त हो तो आवश्यकता इस बातकी होती है कि जीव उसे द्रव हालतमें बदले। इस क्रियाको पाचन कहते हैं। फिर पचा हुआ भोजन रस बनकर शरीरका अङ्ग बन जाता है। इस क्रिया को सात्म्यीकरण कहते हैं। भोजन प्राप्त करना, उसे खाना, पचाना और सात्म्यीकरणकी क्रियाओंको भरण पोषण कहते हैं।

(५) **संचालन**—प्राणियोंमें बहुधा एक प्रकारका द्रव होता है जो उनके शरीरमें सदा चक्कर काटा करता है उसीके साथ भोजन तथा अन्य चीजें शरीरके एक स्थानसे दूसरे स्थान तक पहुंचती हैं और विकारी पदार्थ उसीमें मिलकर बाहर निकलते हैं। यह द्रव, रक्त और लिंफकी सूरतमें मौजूद होता है।

(६) **मल त्याग**—जीवित प्राणियोंमें रासायनिक क्रियाओंके परिणाम स्वरूप नायट्रोजनके यौगिक तैयार होते हैं जो बिल्कुल बेकार होते हैं। यह पदार्थ जीवके लिये हानिकारक होते हैं इसलिये शरीरके बाहर निकाल दिये जाते हैं।

(७) **श्वासोच्छ्वास**—जीवनके लिये जो क्रियायें आवश्यकीय हैं उन्हें करनेके लिये जीवको शक्ति व्यय करनी पड़ती है। यह शक्ति भोजनसे प्राप्त होती है अतएव भोजनकी आवश्यकता केवल वृद्धिके लिये ही नहीं वरन आवश्यकीय शक्ति प्राप्त करनेके लिये भी होती है। जब जीवित शरीरमें पेचीदा भोजन सादा चीजोंमें टूटता फूटता है तो शक्तिका सञ्चार होता है। साधारणतया भोजन हवा की ऑक्सीजनसे मिलकर टूटता फूटता है। इसका परिणाम यह होता है कि कारबनडाई ऑक्साइड बाहर निकलता है।

(८) **वंश वृद्धि**—लगभग सब जीवित पदार्थ युवा-

वस्था प्राप्त होनेके बाद अपने सदृश नये जीव उत्पादन करने की क्षमता रखते हैं। पूर्ववर्तीय जीवोंसे नये जीवोंकी उत्पादन क्रियाको वंशवृद्धि कहते हैं।

(६) **मृत्यु**—जो जन्म लेता है एक दिन मरता जरूर है। अतएव हम मृत्युको भी जीवनका एक गुण मान सकते हैं, परन्तु भिन्न भिन्न जीवोंके जीवन काल भिन्न भिन्न होते हैं।

ऊपर जीवनके कुछ प्रधान गुणोंका वर्णन किया गया है। अब हम इस बातको सिद्ध करनेका यत्न करेंगे कि पौधे भी जीवित पदार्थ हैं और इनमें भी उपरोक्त गुण न्यूनाधिक मात्रा में पाये जाते हैं।

बीज क्या वस्तु है ?

पौधे जानदार हैं क्योंकि वह खाते और सांस लेते हैं। इनमें जानवरोंकी भांति बढ़वार और अनुभव शक्ति होती है यह भी जानवरोंकी भांति वंश वृद्धि करते हैं। एक ओर देखो ! केलीफोर्नियाके गगन चुम्बी वृक्ष जिनकी ऊँचाई तीन सौ फुटसे अधिक होती है और जिनकी आयु तीन हजार वर्षके लगभग होती है। दूसरी ओर ऐसे छोटे छोटे पौधे भी हैं जिन्हें जीवाणु कहते हैं जो बिना खुर्दबीनके दिखाई नहीं देते। इनमें से कुछकी जीवन-आयु आध घंटेमें समाप्त हो जाती है। इन दो वर्गोंके बीचमें असंख्य रूप और कदके पौधे होते हैं।

प्रत्येक सपुष्प पौधेके जीवनमें एक क्रम होता है। यह अपना जीवन बीजसे प्रारम्भ करता है, फिर उपज कर एक छोटा सा पौधा बन जाता है। यदि परिस्थिति अनुकूल रहे तो यही छोटा पौधा बढ़ कर जवान हो जाता है जिसमें जड़, तना, पत्तियां भिन्न भिन्न अङ्ग होते हैं और जिनके अलग अलग काम हुआ करते हैं। अवसर पाकर इन पौधोंमें फूल, फल और फिर बीज पैदा होते हैं। सपुष्प पौधेके जीवनका निरीक्षण हम किसी अङ्गसे प्रारम्भ कर सकते हैं, केवल इस बात पर ध्यान करते जायं कि सब अङ्गोंका निरीक्षण क्रमानुसार किया जा सके। फिर भी सपुष्प पौधेकी जीवनीके निरीक्षणका श्री गणेश बीजसे करना उचित होगा, क्योंकि बीज पौधेका एक छोटा रूप है। इसके सिवाय इसमें एक सुविधा और है कि बड़े पौधे की अपेक्षा बीजसे पैदा हुये छोटे पौधेका निरीक्षण आसानीसे हो सकता है।

बीजों की रचना कैसी होती है ?

सेमके बीज—कई तरहके सेम बाजारसे मंगा लिये जांय, फिर इनके रूप, रंग, कद और अन्य चिन्होंकी तरफ ध्यानसे देखा जाय और उनकी तुलना करके यह देखा जाय कि इनमें ऐसे कौनसे गुण हैं जो सबमें पाये जाते हैं। देखनेसे पता चलेगा कि सब बीजोंके ऊपर एक कठोर और चमकीला **छिलका** होता है। बीजके झुके हुये भागमें एक सफेद अंडाकार **धब्बा** होता है। सेम की फलीको खोलकर देखनेसे मालूम होगा कि बीज फलीमें इस अंडाकार चिन्ह पर जुड़ा रहता है धब्बेके कोनेमें एक महीन **छिद्र** है जिसे अभिवर्द्धक कांच द्वारा आसानीसे देखा जा सकता है। भीगे हुये बीज नर्म और फूले हुये होते हैं। भीगे बीजको दबानेसे छिद्रसे पानी निकलता है। इससे सिद्ध होता है कि बीजने पानी सोख लिया है। छिलका चमड़ेकी भांति कड़ा रहता है और अन्दरके भागोंको सुरक्षित रखता है। छिलका अलग करनेके पश्चात् **बीजांकुर** दिखाई देता है जिसमें मुड़ा हुआ हिस्सा होता है। इस मुड़े हुये हिस्सेकी नोक छिद्रके पास रहती है। मुड़े हुये हिस्सेसे दो अर्ध-गोलाकार भाग दो छोटे छोटे डंठलोंके जरिये जुड़े रहते हैं। नोकदार हिस्सा **बीज-मूल** कहलाता है। मुड़ा हुआ हिस्सा, जिसमें दो छोटी छोटी पत्तियां भी लगी रहती हैं, **बीज-तना** कहलाता है और दो अर्ध अंडाकार भाग **बीज-पत्ते** हैं।

अरंडी का बीज—इस बीजका छिलका बहुत कड़ा और चित्रीदार होता है। बीजके एक किनारे पर घुंडीके आकारका एक उभरा हुआ हिस्सा होता है। बीजको पानीमें रखनेसे घुंडी नुमा हिस्सा नर्म और स्पंजी हो जाता है, लेकिन इसके छिलके के अन्दर पानी नहीं जा सकता। बीजका आकार गुबरीले कीड़ेसे बहुत मिलता जुलता है। छिलका निकाल देनेके पश्चात् एक चिकना सफेद हिस्सा दिखाई देता है। इस हिस्सेको कुछ देर तक शराबमें रखने के बाद इसे लम्बाकार बीचसे दो हिस्से कर दिया जाय तो बीजांकुर दिखाई देगा। इसमें बहुत छोटी बीज-जड़ दिखाई देती है जो घुंडीकी तरफ होती है। बीज-जड़ से दो बड़े पतले बीज-पत्ते लगे रहते हैं जिनमें पत्तियोंकी तरह नसें फैली रहती हैं। अगर सफेद हिस्सेको काफी देर तक शराब में भिगोया जाय तो बीज-पौधेको सफेद भागसे अलग किया जा सकता है। बीज-पत्तोंके अलग करनेसे एक छोटा सा उभरा हिस्सा दिखाई देता है जो बीज-तना है। अरंडी और सेमके बीजमें एक बड़ा अन्तर यह है कि अरंडीके बीजमें बीजांकुरके सिवाय एक पदार्थ और होता है जो उसे चारों तरफसे घेर रहता

है। इस पदार्थ को **बीज-भोजन** या दल कहते हैं।

मक्का—यह वस्तुतः फल है जिसके भीतर सिर्फ एक ही बीज होता है। फलका छिलका और बीजका छिलका आपसमें इतना चिपटा हुआ होता है कि अलग नहीं हो सकता। दानेकी शकल खूंटी सी होती है। यह दाना नुकीले किनारेके जरिये भुट्टेपर लगा रहता है। दानेके एक पहलूमें नुकीले किनारेके निकट एक अंडाकार चिन्ह है जिसका रंग बीज के अन्य भागोंसे हलका है। इसके नीचे बीजांकुर रहता है। इस चिन्ह के बीचसे दाने को छीलने पर छिलके के अन्दर बीजांकुर दिखाई देता है जिसमें एक ही बीज-पत्ता होता है। बीज-जड़ नुकीले किनारे की तरफ होती है और बीज-तना इसकी सीधमें दूसरी तरफ होता है। बीज-तना गिलाफसे ढका रहता है। बीजांकुर बीज-भोजनसे लगा रहता है। इन तीनों बीजोंमें हम देखते हैं कि प्रत्येकमें बीजांकुर होता है जिनमें थोड़ा

सेम और अरडी के बीज और मक्का का दाना।
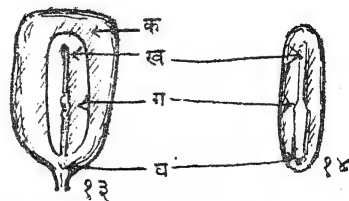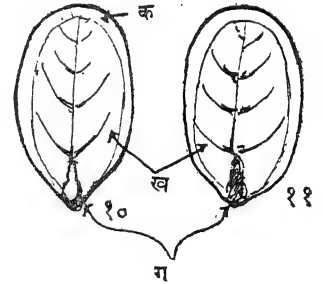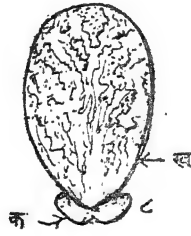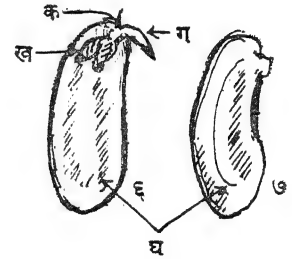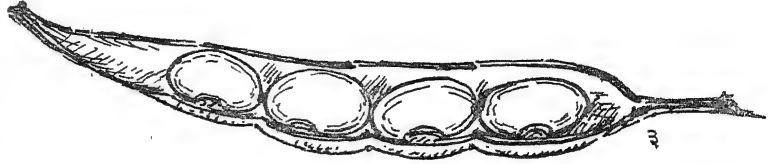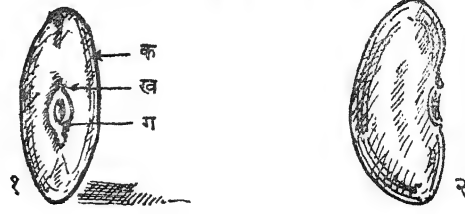
१—सेम का बीज, (क) छिलका, (ख) छिद्र, (ग) धब्बा। २—बीजकी बाह्य रचना। ३—फलीके बीज धब्बे पर जुड़े रहते हैं। ४—बीज-पौधा। ५—बीज-पौधा। ६,७—(क) बीज-तना, (ख) पत्तियां, (ग) बीज-जड़ (घ) बीज-पत्ते। ८—अरंडीका बीज, (क) घुंडी, (ख) छिलका। ९—छिलका निकला हुआ बीज। १०-११—(क) बीज-भोजन, (ख) बीज पत्ते, (ग) बीज-जड़। १२—मक्काका दाना, (क) फल और बीजका मिला हुआ छिलका, (ख) अंडाकार चिह्न। १३-१४—(क) बीज-भोजन, (ख) बीज-तना, (ग) बीज-पत्ता, (घ) बीज-जड़।

थोड़ा भेद होता है। बीजांकुर छिलकेसे ढका रहता है। अनाजोंके दाने वास्तवमें फल हैं। इनमें केवल एक ही बीज होता है और बीजका छिलका फलके छिलकेसे चिपटा रहता है। बीजांकुर या तो पूरे बीजमें फैला रहता है या इसके साथ बीज-भोजन होता है। जब बीजमें बीज-भोजन नहीं होता जैसे सेमके बीजोंमें तो बीजांकुरके बीज-पत्ते बहुत फूले हुये होते हैं। लेकिन जब बीज-भोजन मौजूद होता है तो बीज-पत्ते पतले होते हैं और इनकी शकल पत्तियोंकी सी होती है जैसेकि अरंडीके बीजमें। बीजोंको दो वर्गोंमें विभाजित किया जा सकता है **दो पत्तिया-बीज**—मसलन सेम, अरंडी, चना, बादाम जिनमें दो बीज-पत्ते होते हैं। **एक पत्तिया-बीज** मसलन मक्का, गेहूं, धान, खजूर जिनमें केवल एक बीज-पत्ता होता है।

बीजों के उपजने के लिये किन किन चीजों की ज़रूरत है ?

बीजोंमें यह गुण है कि जब तक उन्हें यथेष्ट मात्रामें पानी हवा और गरमी न मिले वह चुप चाप पड़े सोते रहते हैं। हिन्दुस्तानमें गरमीकी कमी नहीं होती इसलिये प्रत्येक ऋतुमें बीज उग सकते हैं मगर ग्रीष्म ऋतु की अपेक्षा शीत कालमें बीज जल्दी नहीं उगते। संसारके ऐसे स्थानोंमें जहां वर्फ जमी रहती है पौधोंका नामो निशान नहीं मिलता।

दोनों ध्रुवोंकी हालत पौधोंकी उपजके लिये उपयुक्त नहीं मगर ज्यों ज्यों हम भूमध्य रेखाकी तरफ बढ़ें तो पौधोंकी उपज बढ़ती जाती है। ध्रुवके नीचे उतरनेसे बहुत छोटे छोटे पौधों का मैदान टुन्ड्रा पाया जाता है। इसमें काईकी किस्मके पौधे पाये जाते है। टुन्ड्राके नीचे शीतोष्ण कटिबंधका जङ्गल मिलता है जिसमें **मखरूती** वृक्ष होते हैं। इसके बाद घास का मैदान मिलता है, जहां गेहूँ और जौ इत्यादि पैदा होते हैं। भूमध्य रेखा के उत्तरकी तरफ भूमध्य सागरके आस पासका देश है जहां अंजीर, नारंगी, जैतून और दूसरी चौड़ी पत्तियोंके झाड़ होते हैं, इसके बाद जमीनके गरम हिस्से अथवा ऊष्ण कटि बंधकी मरु-भूमि दूर तक फली हुई है जहां कांटेदार झाड़ोंके अतिरिक्त और कुछ नहीं उगता। इस हिस्सेके बाद मौसिमी हवाओंका देश है जहां घने जंगल हैं और वृक्षोंकी पत्तियां बड़ी २ होती हैं। इस देशमें प्रकृतिने बड़ी उदारतासे काम लिया है। यदि तुम यह मालूम करना चाहो कि बीजोंके उगनेके लिये गरमीकी जरूरत है तो सेमके कुछ बीजोंको एक संदूकमें बो दो और उन्हें पानी से सींचते रहो। इस सन्दूकको बर्फमें रख दो। इसी तरह दूसरे सन्दूकमें बीज बोये जायं मगर उन्हें बर्फमें न रखा जाय। इन दोनों सन्दूकोंको कुछ दिनों बाद देखनेसे मालूम होगा कि बर्फ वाले सन्दूकमें बीज नहीं उगते। अधिक शीत केवल पौधोंकी बढ़वारके लियेही नहीं, वरन् उनके जीवनके लिये भी हानिकारक है। इसीलिये जब पाला पड़ता है फसल की फसल नष्ट होजाती है।

यह बात सबको मालूम है कि जब तक बीज सूखा रहता है उसका विकास नहीं होता। गरमीके मौसममें जमीन पर हरि-याली नहीं दिखाई देती, लेकिन बरसात होनेके कुछ बाद ही बहुतसे पौधे उग आते हैं। अगर सेमके कुछ बीजोंको बिल्कुल सूखी मिट्टीमें और कुछको गीली मिट्टीमें बो दिया जाय और गीली मिट्टीके बीजोंको उचित रीतिसे सींचा जाय तो मालूम होगा कि गीली मिट्टीके बीज उग आये हैं मगर सूखी मिट्टीके बीज नहीं उगे। बहुधा देखा जाता है कि मोटे छिलकेके बीज आसानीसे नहीं उगते। तीसरा कारण यह है कि बीजांकुरमें तर पानी पहुंचता ही नहीं। बीजांकुरमें जब तक तर पानी न पहुंचे इसकी बढ़वार असम्भव है। अतएव मोटे छिलकेके बीजों को उगानेके लिये इस बातकी आवश्यकता है कि किसी तरह से छिलके को इतना पतला कर दिया जाय कि पानी इसके अन्दर पहुंच सके। इस उद्देश्यसे बहुधा बीजके छिलकेको घिस दिया जाता है अथवा उसमें एक छेद कर देते हैं। कभी कभी छिलकेको गलानेके लिये तेजाब प्रयुक्त होता है अथवा बीजको थोड़ी देरके लिये उबलते हुये पानीमें डाल देते हैं। उबलते हुये पानीमें डालते समय इस बातका ध्यान रखना पड़ता है कि अन्दरके भागों पर गरमीका प्रभाव न पड़ सके, क्योंकि उबा-लने अथवा भूननेसे बीजका जीवन रस नष्ट होजाता है। बीजों को फारमेलीनके हलके घोलमें भिगो देनेसे बीज जल्द उपज जाते हैं।

हवा

हवा प्राणीमात्रके जीवनका साधन है। इसके बिना पौधे जीवित नहीं रह सकते और न बीज ही उपज सकते हैं। यदि बीजोंको एक गिलासमें रख कर पानी से ढ़क दिया जाय और कुछ दिनोंके बाद देखा जाय तो मालूम होगा कि बीज फूल कर मर गये हैं। इसका कारण यह है कि बीजोंको जीवन प्रदान करने वाली हवा नहीं मिल सकी। बीजोंको सींचते समय इस

बातका ध्यान रक्खा जाय कि खेतों या क्यारियोंमें पानी बहुत देर तक ठहरा न रहे। यदि बहुत देर तक पानी ठहरा रहेगा तो बीज को हवा न मिल सकेगी और वह सड़ जायंगे बहुधा अति वृष्टिके समय इसी ठहरे पानीके कारण फसल की फसल नष्ट हो जाती है। गमलोंमें मिट्टी भरने से पहले पेदोंमें छेद कर दिया जाता है और इनमें मिट्टी इस तरह भरी जाती है कि जो अधिक पानी हो वह छेदसे बह जाय।

"बीज क्या चीज है" शीर्षकमें यह बतलाया जा चुका है कि बीजांकुर-भोजन या तो बीज-पत्तोंमें या उनके बाहर रहता है। प्रत्येक अवस्थामें यह भोजन बीजांकुरके बढ़नेमें सहायता देता है परमात्माने बीजांकुरके लिये एक ऐसा कलेवा साथ बांध दिया है, जो बीजांकुरका पालन उस समय तक करता है जबतक वह अपने पैरों खुद खड़े होकर हरी पत्तियों द्वारा अपना भोजन स्वयं तैय्यार करनेकी शक्ति नहीं प्राप्त कर लेता। यदि उपजते हुये पौधेके बीजांकुर बीज-पत्तोंको देखा जाय तो मालूम होगा कि वह धीरे २ सूखते जाते हैं। इसका कारण यह है कि बीज पत्तोंमें इकट्ठा किया हुआ भोजन बीजांकुरके पालन और बढ़ानेमें खर्च होता जाता है। इस अनुमानके अनुसार यदि उपजते हुये बीजांकुरके बीज-पत्तोंको काट दिया जाय या बीज-भोजन को अलग कर दिया जाय तो पौधेकी बढ़वार रुक जाती है और कभी २ तो जब कि पौधा बिलकुल छोटा होता है बीज-पत्ते काटनेसे यह मर भी जाता है।

बीजोंमें एक विशेष गुण यह भी है कि उनके आरामका एक समय होता है। जब तक वह समय पूरा न हो जाय यह अपनी नींदसे जागते ही नहीं। इसलिए हमको चाहिए कि हाल ही के तोड़े हुए बीजोंको न बोयें। दूसरे साथ २ यह भी ध्यान देनेकी एक बात है कि बीजोंकी उपजनेकी शक्ति उम्रके साथ २ कम होती जाती है। भिन्न-भिन्न बीजोंमें उपज शक्तिका समय अलग २ होता है कुछ बीज ऐसे हैं जिनको एक वर्षके अन्दर ही बोना चाहिये, कुछ ऐसे भी हैं जिनमें यह शक्ति दो तीन वर्ष तक बनी रहती है। ऐसे भी बीज हैं जिनमें उपज शक्ति कई वर्षों तक बनी रहती है। कंवलके बीजोंके सम्बन्धमें कहा जाता है कि इनमें सौ डेढ़ सौ वर्ष तक उपज शक्ति नष्ट नहीं होती। मगर प्रायः पुराने बीजोंमें उपज शक्ति कम हो जाती है, अतएव सदा नए बीजोंको बोना चाहिये।

———o———

यात्रा करने वाले बीज

[ले० श्रीमती प्रभा अस्थाना, बी. ए.]

पशुओं और वृक्षोंमें एक बड़ा अन्तर यह है कि वृक्ष एक स्थान पर ही रहते हैं, जब कि पशु इधर उधर आ जा सकते हैं परन्तु यह सदा ही सत्य नहीं है। बहुतसे ऐसे जीव जन्तु हैं, जो आयु भर एक ही स्थान पर पड़े रहते हैं। उदाहरणके लिये हम समुद्री 'एनोमोन' को ले सकते हैं जो जीवन भर समुद्रकी तहमें छिपे हुये किसी चट्टान पर पड़ा रहता है अगर इसको कोई केंकड़ा इत्यादि जीव अपनी पीठ पर न उठा ले दूसरी जगह नहीं जाता। इसके विपरीत वृक्ष-बीज इधरसे उधर आते जाते रहते हैं। एक वृक्षके बीज उड़ कर बहुत तक चले जाते हैं। पानीमें होने वाली घासें जिनमें जड़ें नहीं होतीं दूर तक तैर कर चली जाती हैं, और पृथ्वीपर भी एक ऐसे पौधेका पता चलता है जो पूरा एक स्थानसे दूसरे स्थान पर चला जाता है।

मरु भूमिके वृक्ष—बहुधा सड़क पर ऐसे बीज बेचने वाले मिलते हैं जिनके पास बहुतसे रंगोंके बीज होते हैं और उन्हें पानीमें डालनेसे उनमें से छोटे छोटे कृत्रिम फूल निकल आते हैं। इससे भी अधिक आश्चर्यकी वस्तु है एक सूखी और भूरी गेंदकी आकृतिका पदार्थ जो पानीमें डालते ही एक पौधेके रूपमें हो जाता है और उसमें साइप्रसकी सी पतियां निकल आती हैं। यह वृक्ष बहुत दिन तक सूखा रहने के बाद भी फिरसे हरा हो जाता है। इस तरहके दो वृक्ष होते है एक तो 'रीजरेक्शन' वृक्ष जो एक प्रकारकी काई होता है और दूसरा 'जैरिको का गुलाब' जिसमें बीज होते हैं। यह दोनों ही मरुस्थलके वृक्ष हैं जो वर्षों सूखे रहनेके बाद हरे होजाते हैं।

जैरिकोका गुलाब बहुत घूमने घाला है। सूखे समयमें जब कि इसके बीज पकते हैं इसकी पत्तियां गिर जाती हैं और डालें फलोंकी रक्षा करने के लिये अन्दरको मुड़ जाती हैं, जड़ें सूख जाती हैं और उखड़ा हुआ वृक्ष मरुभूमि भरमें इधर से उधर लुढ़कता रहता है, जब तक कि हवा इसको किसी नम स्थानमें नहीं पहुंचा देती है अथवा वर्षा आरम्भ नहीं हो जाती तब तक यह वृक्ष नहीं पनपनाता और वर्षा होते ही यह फिर हरा हो जाता है।

सौ वर्ष तक जीवित रहने वाले बीजः—ऐसे बहुत से बीजोंका पता चला है जो वर्षों गड़े रहनेके बाद फिर उगे

हैं। एक फ्रांसीसी वैज्ञानिककी खोजसे ज्ञात हुआ है कि कुछ ऐसे बीज भी हैं जो अस्सीसे अधिक बर्ष तक रक्खे रहनेके बाद उग आया करते हैं। यह भी कहा जाता है कि भारतका कमल जिन बीजोंसे होता है वह सौ सौ वर्ष तक उगनेकी शक्ति रखता है।

यह सब होते हुये भी जो 'ममीके गेहूं' की कथा है वह केवल कथा ही है। कुछ मनुष्योंका कहना है कि मिश्र देशकी 'ममी' के साथ गडे हुये गेहूं अब तक भी बाजारमें मिलते हैं और उन्हें बोनेसे अंकुरभी निकलते हैं, परन्तु यह झूठ है, क्योंकि ऐसे गेहूं को बोने पर उसमेंसे जो फसल निकली वह आधुनिक गेहूंवत् थी, जब कि होना चाहिये उसको फेरोंके समयकी फसलके समान था। वैज्ञानिकोंने परीक्षा करनेके लिये ऐसे बीजों पर प्रयोग किया था परन्तु यह देखा गया कि अब उनसे फसल नहीं हो सकती।

उछाले हुये बीजः—कुछ वृक्ष अपने बीज अपने पास ही गिरा देते हैं। उदाहरणके लिये पौपीके फूलको लीजिये। इसका बीज कोष बहुत बड़ा होता है और उसके ऊपर छेद दार ढकना होता है। यह फूल अपनेको नीचे झुका देता है जिससे सब बीज गिर पड़ते हैं। तब भी कुछ हलके बीज वायु द्वारा उड़ कर दूर भी चले जाते हैं।

यदि सभी वृक्षोंके सभी बीज वृक्षके पास ही रह जायँ तो बीज बढ़ कर एक दूसरे पौधेको नष्ट कर देते हैं, इसीसे वृक्ष अपने बीजोंको दूर २ तक भेज देते हैं। कभी २ बीज अकेले ही यात्रा करते हैं और कभी कोषमें बन्द रह कर। बीजोंको दूर भेजनेका एक मार्ग यह भी है कि जब फल जोरसे फूटता है तो उसके अन्दरके बीज छिटक कर दूर चले जाते हैं। अमेरिकामें एक ऐसा वृक्ष होता है जिसके फलको जरा सा दबानेसे ही उसके बीज बाहर निकल पड़ते हैं। गर्मीके दिनोंमें ऐसे बहुतसे वृक्ष हैं जिनके बीज-कोष धूप लगनेसे जोरकी आवाज करके फट जाते हैं और उनके अन्दरके बीज दूर २ तक छिटक जाते हैं। स्वीटपी, जिरोनियम, पैंजी और वायलेटके पौधे बहुत कुछ इसी भांति आचरण करते हैं।

पैराशूट का उपयोग करने वाले बीजः—बहुतसे बीज वायु द्वारा उड़ाये जाते हैं। वह या तो बहुत छोटे और हल्के होते हैं या चपटे होते हैं जिससे सरलतासे उड़ सकें। परन्तु बहुतसे उदाहरणोंमें उड़नेके लिये विभिन्न वस्तुओंकी आवश्यकता पड़ती है। एक ऐसा वृक्ष है जिसके बीज परदार होते हैं बहुतसे वृक्ष जैसे ऐरा एल्म, बर्च, मेपल, नींबू, (एक प्रकारका) और डौक आदिके बीज साधारणतः परदार होते हैं। बिलो नामक घासके भी बीजमें पर होते हैं। भारतीय सेंवल, आक, मेढ़ासिंगी आदिके बीजोंमें ऐसे रोयें लगे रहते हैं जिनके द्वारा वह उड़ कर बहुत दूर २ चले जाते हैं।

डैंडी लिवनका फलभी कोमल रोयें वाला होता है। इसके सिरे पर बहुतसे छोटे २ फूल होते हैं और उनके बाद फल। असलमें प्रत्येक भाग जो उड़ जाता है एक अलग फल होता है, परन्तु बीज और फल अथवा बीज-कोष मनुष्यको दिखाई नहीं देता। जो कुछ दिखाई देता है वह बीजको घेरे हुए रेशमी तन्तुओंसे घिरा हुआ एक छोटा सा फल मात्र है। यही तन्तु पैराशूटका काम देते हैं। बीज वायुमें दूर तक तैरता जाता है और जब अन्तमें यह पृथ्वी पर गिर जाता है तो इसके रेश्मी तन्तु इसे नम पृथ्वी पर लगा देते हैं।

पशुओं द्वारा फैलाए हुए बीज—पशु अधिकतर बीजों को इधर उधर ले जानेमें सहायक होते हैं। कभी कभी जानवरोंके पैरोंमें लगी हुई कीचड़में बीज भी छिपे रहते हैं और उनके एक स्थानसे दूसरे स्थान पर जानेमें बीज भी साथ ही साथ चले जाते हैं। इसी प्रकार चिड़ियां भी फल खाती हैं और उनके बीजोंको दूर २ तक पहुंचानेमें सहायक होती हैं। बड़े २ वृक्षों पर जो कभी एक प्रकारकी बेल उगी हुई मिलती है उसके बीजभी इन्हीं चिड़ियों द्वारा वहां पहुंचाये जाते हैं। पीपल और बटके फल जब पक्षी खाते है तो उनके बीठ करने पर उक्त वृक्षके बीज उसकी विष्टासे जहां गिरते है उग आते हैं। मनुष्य भी फल खानेके बाद इन बीजों अथवा गुठलियोंको इधर उधर फेंक देते हैं।

इन बीजोंके इधर उधर फैलने का एक और भी रास्ता है वह यह कि कुछ बीज कोशों पर कांटेसे लगे रहते हैं जो किसी जानवरके बदन पर लग जांय तो वह अपने कांटों द्वारा बालोंमें फंस जाते हैं और बड़ी दूर २ तक उन जानवरोंके साथ चले जाते हैं तब कहीं जाकर उनमेंसे बीज बाहर निकलते हैं। भेड़ बकरी इत्यादि ऐसे बीजोंको अक्सर अपने बालोंमें लगा कर ले जाते हैं। लटजीरा और कुत्ता घासके बीज भी इसी तरह एक जगहसे दूसरी जगह पहुंचते हैं।

———०———

धरती फूल अथवा आकाश फूल

[ले० श्रीमती प्रभा अस्थाना, बी. ए.]

ऐसे धरतीफूलकी जातियां जो वास्तवमें विषाक्त हैं, बहुत कम हैं और खानेके योग्य धरतीफूल उनसे कहीं अधिक हैं। तब भी कोई २ फूल इतने अधिक विषैले होते हैं कि इन सभी प्रकारके फूलोंके उपयोगमें अत्यधिक देख रेखकी आवश्यकता है। यह कहा जाता है कि विषैली जातिके फूल पकाते समय चांदी के चम्मच को काला कर देते हैं और उसी से उनका असली स्वभाव प्रकट हो जाता है। खाने योग्य धरतीफूलकी पहिचान यह है कि वे शीघ्र छिल जाते हैं परन्तु ऐसी साधारण पहिचानसे काम न लेना चाहिए, और जब तक कोई वृद्ध विज्ञान-वेत्ता अच्छी तरह उनका पूर्ण तथा पता न लगाले इन फूलोंको खानेके काममें न लाना चाहिये।

भक्ष्य धरतीफूल, आकाश फूल, खुम्भी, छत्रक या कुकुरमुत्ता।

कई विषैली जातियां—ब्रिटेनमें केवल साधारण धरती फूल और घोड़ोंके खानेका धरती-फूल उपयोगमें लाया जाता है परन्तु फ्रांस और जर्मनीमें अन्य प्रकारके फूल भी खाये जाते हैं। खानेके समय इन्हें बिल्कुल ताजा लेना चाहिये जो कीड़ोंके खाये हुये न हों। इनके बारेमें एक साधारण परन्तु गलत बात यह है कि चटक रंग वाले फूल विषैले होते हैं और फीके रंगके नहीं। परन्तु बहुतसे फीके रंगके फूल ही विषैले होते हैं और एक चटकीले नारंगी रंगके फूल ऐसे हैं जो योरोप भरमें खाये जाते हैं।

धरतीफूल के पौधेकी जो रचना होती है उसे अंग्रेजीमें मशरूम अथवा टोडस्टूल कहते हैं। इसकी आकृति छातेके समान होती है जैसी और किसी पौधेमें नहीं पाई जाती। इसके सिरे पर एक टोपी होती है और उसके नीचे एक तना जो पृथ्वी के नीचे पड़े हुये एक सफेद डोरोंके ढेरमें से निकलता है। इस टोपीको (Pileus) और उन सफेद तारोंको (Mycelia) कहते हैं बाटिका लगाने वाले यह 'मिसीलिया' कई प्रकारकी खाद डाल कर बाजारमें बेचा करते हैं। इन तारोंको अलग अलग करके भी नम मिट्टीमें रक्खा जाय—विशेष कर किसी गर्म स्थानमें तो इसमें फल निकलते हैं। परन्तु अधिकतर लोगोंके लिये यह काम करना ठीक नहीं, क्योंकि इस भांति सदैव ही फल नहीं निकला करते।
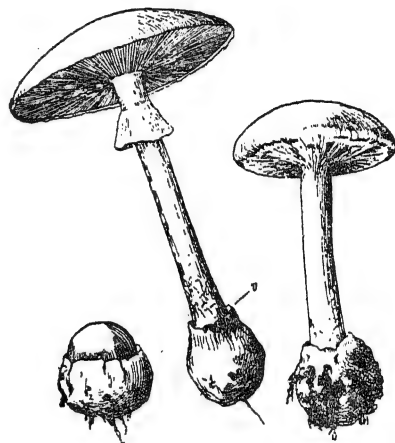
विषाक्त धरतीफूल की एक जाति
(Amanita phalloides)

धरती फूलका भोजनः—यह फूल अधिकतर जंगलोंमें अथवा खेतोंमें लगते हैं जहां इन्हें नमी और सड़ी हुई बनस्पति इत्यादि का भोजन मिलता रहता है, जिसे पाकर यह बढ़ते हैं। इस पौधेमें हरे रंगका वह पदार्थ जिसे क्लोरोफिल कहते हैं नहीं होता जो दूसरे पौधोंमें भोजनको पचानेका एक मुख्य अंश होता है। धरती फूलको अन्य पौधोंकी भांति कार्बन डाइआक्साइड अपने भोजनमें लेनेके लिये सूर्यके प्रकाशकी आवश्यकता नहीं होती। उन्हें पृथ्वीके गये हुये अथवा सड़े हुये अन्य पौधोंसे कार्बन मिल जाता है। क्योंकि यह पौधे अपना सारा भोजन जमीनके भीतरसे खींच लेते हैं इसलिये इनकी डोरेदार जड़ें पृथ्वी

के अन्दर ही रहती हैं और केवल फल वाला भाग ऊपर दीखाई देता है जिसमेंसे बीज चारो ओर फैल जाते हैं।

इस फूलकी टोपीका उभरा भाग चिकना होता है और यह नर्म तथा मोटा होता है। टोपीके नीचेसे बहुत सी लम्बी और पतली डोरियां लटकती रहती हैं। इसका तना मोटा और मांसल होता है। कभी कभी यह जड़में मोटा होता है और अक्सर टोपीके पास इसमें घेरा सा बना रहता है। यह घेरा अथवा झालर टोपीके तोड़ लेनेके बाद भी रहता है। छोटे धरती फूलोंमें (कम आयु वाले) यह महीन डोरियां नहीं दीखतीं और टोपी भी जरा सी एक लट्टूके समान लगती है।

यह डोरे कभी कभी बड़े वृक्षोंके तनोंमें बहुत अन्दर तक घुस जाते हैं। एक वार जब एक बड़े वृक्षको आरेसे काटा तो उसके अन्दरसे अंडाकार धरती फूल निकले। इसी प्रकार धरती फूलके डोरे कई वार वृक्षोंके भीतर पाये गये हैं।

धरती फूलकी पहिचानः—खाया जाने वाला साधारण प्रकार का फूल जो बेचने के लिये लगाया जाता है वह जंगली घास की तरह गर्मी और बरसात के बाद होता है। पहिले पहल यह एक छोटे से गोल सफेद बटन की तरह होता है। फिर धीरे धीरे यह ऊपर से चौड़ा और बड़ा होता जाता है और अपने सफेद रंग के स्थान पर भूरा सा हो जाता है। तब इसके ऊपर एक पतला सूखा छिलका चढ़ जाता है जो आसानी से निकाला जा सकता है। इस समय इसके गुलाबी तारोंका रंग भी बदल कर बैंजनी मिला हुआ भूरा होजाता है। इसका

भक्ष्य धरतीफूल या ढींगरी इसकी तरकारी बनती है।

गूदा मोटा और नरम होता है और तोड़ने पर सफेदसा लाली मिला हुआ भूरा होजाता है। तना मोटा और सफेद होता है और उसके ऊपरी भागमें एक घेरा होता है। विषैले फूलके लटकते हुये तार सफेद अथवा हरे होते हैं।

परियों के घेरेः—चरागाहोंमें कभी कभी गहरे हरे रंग की घासके गोल टुकड़े पाये जाते हैं जिनके आस पासकी घास न तो उतनी हरी ही होती है और न घनी। इन्हीं गलों अथवा परियोंके घेरोंसे यह प्रकट होता है कि वहां धरती फूलों की अधिकता है। जैसे २ वह फूल अपना भोजन पृथ्वीमें से लेते जाते हैं वहांकी पृथ्वी भोज्य पदार्थोंसे रिक्त हो जाती है और कुछ दिनोंमें यह पौधे सूख कर मर जाते हैं, परन्तु इनसे उड़े हुये बीज कुछ दूर जाकर फिर एक घेरेकी रचना कर देते हैं। क्रम से यह घेरा बढ़ता जाता है और तब मध्यका भाग कुछ समय तक उजाड़ रहनेके बाद फिर हरी घाससे भर जाता है।

मक्खी पकड़नाः—एक जातीका धरती फूल जो अत्यन्त विषैला होता है मक्खी पकड़नेके लिये जो कागज बनता है उस के काम आता है। इस फूलकी टोपी सात इंच लम्बी चौड़ी होती है और इसका रंग चटक लाल होता है जिस पर सफेद धब्बे पड़े होते हैं। इसका लम्बा तना सफेद अथवा पीला होता है और तार सफेद।

फरीद पुर का प्रार्थना करने वाला ताड़ वृक्ष—किसी समय भारत भरके यात्री इस ताड़ वृक्षके दर्शन करने जाते थे, जिसके लिये यह कहा जाता था कि वह नित्य संध्या समय जब मन्दिर में पूजा की घंटियां बजती थीं अपना सिर झुकाता था। यद्यपि यह उस विशेष समय (संध्या) के तापक्रम के कारण होता था परन्तु मनुष्य कुछ और ही कहते थे। यह एक साधारण वृक्ष था जो तूफान से कुछ झुक सा गया था जिसके कारण घटते और बढ़ते ताप क्रममें इसकी ऊपरी पत्तियां क्रमशः नीची ऊंची होती रहती थी। प्रातः ऊंची होतीं और संध्या को लग भग छः गज नीचे झुक जाती थीं। क्योंकि यह वृक्ष कुछ तिरछा था इसलिये इसका झुकना अधिक स्पष्ट मालूम होता था।

गतांक से आगे

घरेलू डाक्टर

[संपादक डाक्टर जी. घोष, डाक्टर गोरख प्रसाद जी आदि]

समय समय पर पट्टी पर जरा पानी छिड़कते रहना चाहिए जिस में पट्टी सूखने न पाये। यदि उस पानीमें जिसमें पट्टी तरकी जाती है और पट्टीपर पीछे छिड़का जाता है थोड़ा सा मेथिलेटेड स्पिरिट मिला लिया जाय तो अधिक ठंडक पहुंचेगी। (एक पाव पानीमें दो चायके चम्मच भर स्पिरिट डालना काफी होगा।)

मूत्राशय पर चोट—यदि ऐसी चोट लगे कि कूल्हा टूट जाय तो सम्भव है कि मूत्राशयमें भी चोट लग जायगी। ऐसी अवस्थामें आहत व्यक्ति मूत्र त्याग न कर सकेगा, या यदि मूत्र उतरेगा भी तो उसमें कुछ रक्त भी उतर आयेगा। ऐसी दशा भयङ्कर होती है।

चिकित्सा—डाक्टरको तुरन्त बुलाओ, चारपाई या स्ट्रचर पर लिटा कर आहत व्यक्तिको तुरन्त अस्पताल ले जाओ व्यक्ति चुपचाप लेटा रहे। उसे ठंड न लगने पाये।

मूर्च्छा—जब संज्ञाका लोप सम्पूर्ण नहीं होता तो उस अवस्थाको सम्मोह (Stupor) कहते हैं। जब संज्ञाका लोप पूर्ण होता है तब उसे मूर्च्छा (Coma) कहते हैं। मूर्च्छा और सम्मोह दोनों को बेसुधी या बेहोशी कहते हैं। निद्रासे व्यक्ति आसानीसे जगाया जा सकता है, सम्मोहसे बड़ी कठिनाईसे और सो भी वह अपनी समस्त शक्तियोंको तुरन्त प्राप्त नहीं कर पाता। मूर्च्छित व्यक्ति जगाया नहीं जा सकता; जब मूर्च्छा दूर होगी तभी वह व्यक्ति अपनी शक्तियोंको प्राप्त करेगा। सम्मोहमें आंखकी पुतलियों पर प्रकाशका प्रभाव पड़ता है। यदि पुतलियों पर तेज रोशनी डाली जाय तो वे सिकुड़ कर छोटी हो जायंगी। इसी प्रकार यदि अक्षिगोलक को छूआ जाय तो पलकें बन्द हो जायंगी, परन्तु मूर्च्छा (Coma) में यह बातें नहीं होतीं।

मूर्च्छाकी यहां पर केवल प्राथमिक चिकित्सा ही दी जायगी, इसका उद्देश्य यह होता है कि हृदय की गति रुकने न पाये, श्वास का चलना बराबर जारी रहे और जिस कारणसे मूर्च्छा आई हो उस कारणको दूर किया जाय।

मूर्च्छित तथा सम्मोहित व्यक्तिका उपचार करते समय निम्न नियमोंका पालन करना चाहिए :—

(१) लोगों की भीड़ न लगने पाए। अचेत व्यक्ति तक बराबर स्वच्छ वायु पहुंचती रहे। मुख पर पंखा किया जाय।

(२) अचेत व्यक्तिको चित लिटा दो, मुंह एक ओर फिरा रहे। यदि रक्त चढ़ आनेके कारण चेहरा लाल हो गया हो या आंखे लाल हो गई हों तो तकिया लगाकर सर और कन्धोंको ऊंचा कर देना चाहिये। परन्तु यदि चेहरा पीला पड़ गया हो तो पैरोंको ऊंचा कर देना चाहिये।

(३) गला, छाती और कमरके कपड़ोंको ढीला कर दो।

(४) डाक्टरको बुला भेजो।

(५) यदि कहीं से रक्त बह रहा हो तो उसे रोको (नीचे देखो रक्त स्राव), परन्तु छोटे चोट और घावोंकी देख भाल होश आने पर ही करनी चाहिए।

(६) यदि कहीं हड्डी टूटी हो तो हाथसे उसे सम्भाले रहना चाहिए, परन्तु होश आनेके पहले खपच्ची बांधना उचित नहीं है।

(७) रोगीको धूप, लू, सर्दी आदिसे बचाना चाहिए। चाहे कोई भी ऋतु हो मुंह छोड़ कर शरीरके अन्य भागों पर कपड़ा ओढ़ा देना चाहिए।

(८) जब तक रोगीको होश न आए उसे पानी या भोजन देनेकी चेष्टा नहीं करनी चाहिए। होश आने पर पानी देना चाहिए, और रोगी उसे धीरे धीरे करके पिए। यदि कमजोरी अधिक हो, परन्तु रक्त न बहा हो और भीतर ही भीतर कहीं रक्त बहनेके लक्षण न हों तो गरम दूध पीनेको दे।

जबसे ऊपरका उपचार होता रहे इसका पता लगानेकी चेष्टा करनी चाहिए कि रोगी जीवित है या नहीं और वह क्यों बेसुध हुआ।

बेसुध व्यक्ति की जांच—(१) पता लगाओ कि बेसुधी एकाएक आई या धीरे धीरे और यह भी पता लगाओ कि यह वास्तविक मूर्च्छा है या केवल सम्मोहन है।

(२) नाड़ी टटोल कर पता लगाओ कि हृदय चालू है या नहीं? कलाई, माथे या गले की नाड़ीसे इस बातका पता चल

सकता है। इसके बदले छाती पर हथेली रख कर देखनेसे भी पता चल सकता है। यदि नाड़ी चलती है या हृदय धड़कता है तो अवश्य ही अचेत व्यक्ति जीवित है।

(३) छाती देख कर पता लगाओ कि सांस चल रही है या नहीं, देखो कि सांस धीरे धीरे चल रही है या जल्दी जल्दी। यह गहरी चल रही है या ओछी और सांसके चलनेमें कोई शब्द हो रहा है या नहीं। यह भी देखो कि सांसमें कोई गन्ध है या नहीं, यदि मदिराकी गन्ध आती हो तो यह न समझ बैठना चाहिए कि बेसुधी मदीरा ही के कारण है। सम्भव है कि मदिरा बहुत थोड़ी सी पी हो; यह भी सम्भव है गिरकर सरमें चोट लगी हो या और कोई ऐसी दवा पी गई हो जिसमें मदिरा पड़ी हो। परन्तु यदि वस्तुत; मदिराके कारण ही इतनी बेहोशी हुई हो तो समझना चाहिए कि मामला टेढ़ा है और तब यथा सम्भव शीघ्र डाक्टर बुलाना चाहिए।

(४) सरकी जांच अच्छी तरह करनी चाहिए कि उसमें किसी प्रकारकी चोट लगी है या नहीं। फिर कान और नाक भी देखने चाहिएं कि वहांसे रक्त तो नहीं आ रहा है। मुख खोलकर देखना चाहिए कि उसमें रक्त, फेचकुर आदि तो नहीं हैं या किसी घातकारी रासायनिक पदार्थके कारण घाव तो नहीं हो गया है।

(५) आंखोंकी जांच करो। पुतलीके उपतारे अफीम खा लेने पर बहुत छोटे हो जाते हैं और सरमें चोट लगने पर या लकवा मारने पर वे असमान नापके होते है (अर्थात् एक छोटा एक बड़ा होता है)। आंखके बीचका काला भाग पुतली कहलाता है; इसके भीतर एक छेद सा दिखता है जो नीली और भूरी पुतलियोंमें आसानीसे और काली पुतलियोंमें ध्यान पूर्वक देखने पर दिखलाई पड़ता है। इसको अंग्रेजीमें आइरिस (Iris) और वैद्यकमें उपतारा कहते हैं। ऊपर इन्हीं उपतारोंके छोटे बड़े रहने की बात लिखी गई है। पुतलियोंके ये उपतारे मृत्युके पश्चात् बड़े हो जाते है, दम घुटने या बेलाडोना (Belladonna), मदिरा और कुछ अन्य विषोंके खानेसे ये बड़े हो जाते हैं। मानसिक आघात या उत्तेजना में भी बड़े हो जाते हैं।

(६) हाथ, पैर और धड़की जांच भी अच्छी तरह करनी चाहिये कि कहीं घाव तो नहीं हुआ है या कहींकी हड्डी टूटी तो नहीं है, शरीरके दोनों ओरके (अर्थात् दाहिने और बायें) अङ्गोंकी तुलना करनी चाहिये। सरमें चोट लगने पर ऐसा भी हो जाता है कि शरीरका एक अंग नरम रहे और दूसरा कड़ा हो जाय।

(७) अपने हाथकी हथेलीको बेसुध व्यक्ति की छाती पर रखकर देखो कि उसका शरीर गरम है, ठण्डा है या साधारण।

मृत्युके प्राथमिक लक्षण—(१) श्वासका पूर्णतया रुक जाना; (२) हृदय की गतिका बन्द हो जाना; (३) शरीर का ठण्डा हो जाना; (४) आंखका ज्योतिहीन और नरम हो जाना; (५) त्वचाका पीला पड़ जाना और कड़ा हो जाना।

बेसुधकी चिकित्सा—यदि सांस चल रही तो चिकित्सा इस बात पर निर्भर है कि हाथ पैर ऐंठ रहे हैं या नहीं।

क—यदि हाथ-पैरमें ऐंठन न हो—

यदि हाथ पैर में ऐंठन न हो तो बेहोशी कई कारणोंसे हो सकती है। ये नीचे दिये जाते हैं।

(१) **सर पर चोट**—जिससे मस्तिष्क थर्रा उठता है और अपना साधारण कार्य करनेमें कुछ समयके लिये असमर्थ हो जाता है। पैर या पीठके बल गिरने पर भी इस प्रकार की मूर्च्छा उत्पन्न हो सकती है। चोट लगते ही पहले सम्मोहन और फिर शीघ्र वास्तविक मूर्च्छा हो जाती है। चेहरा पीला पड़ जाता है, श्वास ओछा चलता है, नाड़ी जल्द जल्द परन्तु बहुत कमजोर चलती है।

(२) **मस्तिष्क पर चाप**—रक्तके चकत्ते या टूटी हड्डीके मस्तिष्क पर दबाव पड़नेसे बेहोशी आ जाती है और तब परि-स्थिति साधारणतः बड़ी विकट रहती है। सर पर चोट लगनेसे भी मस्तिष्क दब सकता है। मस्तिष्क पर चाप पड़नेसे चेहरा रक्तसे भर जाता है, नाड़ी मन्द वेगसे परन्तु जोरदार धड़कनके साथ चलती है। पुतलियों के उपतारे असमान (एक छोटा एक बड़ा) दिखलाई पडते हैं। और श्वास गहरी और धीरे धीरे चलती है। मस्तिष्कके थर्रा जाने पर बेहोशी तुरन्त होती है, परन्तु उसपर दाब पडनेका परिणाम दुर्घटनाके कई घण्टे बाद दिखलाई पड़ सकता है।

थर्राने और दाब पड़नेके कारण उत्पन्न बेहोशीमें उपचार एक सा ही है, ऊपर उपचारमें बतलाये गए नियमोंका पालन करना चाहिए। यदि कहीं घाव दिखलाई पड़ता हो तो उस पर पट्टी बांधनी चाहिए। सर पर बरफ या ठंडी पट्टी रखनी चाहिए। या ठंडे पानीका छींटा मारना चाहिए।

शारीरिक दुबर्लताके कारण बेहोशी तीन विभिन्न कारणों से हो सकती है, मानसिक आघात (Shock), पक्षाघात या संन्यास (Aplexy) और लू या धूप।

इनमें से आघातका विवरण और उपचार पहले बतलाया जा चुका है। साधारणतः आघातकी चिकित्सा तुरन्त करनेसे बेहोशी नहीं होने पाती। भूख, प्यास, चुस्त कपड़ा, डर, शोक-जनक समाचार, अत्यन्त हर्ष आदिसे भी सम्मोह या मूर्छा हो सकती है। चेहरा पीला पड़ जाता है, सांस ओछी चलती है, नाड़ी भी बहुत कमजोर हो जाती है, शरीर शिथिल हो जाता है और सब अङ्ग ठंडे पड़ जाते हैं, होश लानेके लिए उपचार यह है कि रोगीको लिटा दिया जाय, मुख पर पंखा झला जाय। भीड़ न लगने देनी चाहिए, दरवाजे बन्द हों तो खोल देने चाहिएं। चुस्त कपड़ोंको ढीला कर देना चाहिए। मुख पर ठंडे पानीका छींटा मारना चाहिए। मिल सके तो स्मेलिंग साल्ट (Smelling salts), नहीं तो नौसादर और चूनाका मिश्रण दो चार बूंद पानी डाल कर सुंघाना चाहिए। हाथ पैर पर इस प्रकार मालिस और रगड़ करनी चाहिए कि उनमें गरमाहट आजाय। पेट पर भी सेंक किया जाय तो अच्छा है। होश आ जाने पर गरम दूध, कहवा (Coffee) या थोड़ा सा ब्राण्डी (बढ़िया शराब) देना चाहिए। शरीरको गरम रखना चाहिए। उसे आरामसे पड़े रहना चाहिए जिसमें दोबारा बेहोशी न आ जाय।

पक्षाघात, फालिज या लकवा—यह वस्तुतः रोग है। इसमें शरीरके अङ्ग, अधिकतर केवल दाहिने या बायें किसी एक पार्श्वके सब अङ्ग क्रियाहीन हो जाते हैं। बूढ़े लोगोंमें धमनियोंका लचीलापन जाता रहता है और वे कड़ी हो जाती हैं। इसलिए कभी-कभी मस्तिष्ककी कोई धमनी फट जाती है, और रक्त मस्तिष्कमें फैल जाता है, इससे बेहोशी आजाती है। इसके लक्षण ये हैं (१) ऐसे बेसुध व्यक्ति अधिक आयुके होते हैं (वह अधेड़ या बूढ़े होते हैं)। (२) चेहरा रक्ताधिक्यके कारण लाल हो जाता है। सांस चलनेमें शब्द होता है (घर-घराहट होती है) और सांस धीरे-धीरे चलती है। नाड़ी नियमित और बलिष्ठ चलती है। साधारणतः आधे शरीरके अङ्ग क्रीयाहीन हो जाते हैं। सरमें कहीं चोट नहीं लगी रहती, मुंह या कानसे रक्त नहीं निकलता। उपचार यह है कि रोगी को चित लिटा दिया जाय और तकिया आदि लगा कर सर और कन्धों को ऊपर उठा दिया जाय। कपड़ा कहीं चुस्त हो तो ढीला कर दिया जाय और स्वच्छ वायु बराबर लगती रहे, परन्तु कोई उत्तेजक (चाय, कहवा या मदिरा) न दिया जाय। सर पर बर्फ या ठंडी पट्टी रक्खो। रोगीको किसी प्रकार हिलने डुलने मत दो।

लू धूप या गरमीके कारण बेहोशीके बारेमें ऊपर लिखा जा चुका है।

(ख) यदि हाथ-पैरमें ऐंठन कंप-कंपी हो या रह रह कर हाथ-पैरमें आपसे-आप झटका लगता हो तो निम्न कारण हो सकते हैं:—

(१) अपस्मार या मिरगी रोग (Epilepsy)—इस रोगका पूरा विवरण अपस्मार शीर्षकके नीचे मिलेगा। साधारण लक्षण ये हैं कि रोगी एकाएक पृथ्वी पर गिर पड़ता है और हाथ पैर मारने लगता है। कदाचित् मुंहसे फेचकुर भी निकलने लगता है और रोगी दांत पीसने लगता है। पीछे रोगी कुछ समय तक शान्त पड़ा रहता है और सांस भारी चलता है। अपस्मार ग्रस्त व्यक्तिका उपचार यह है कि उसे विपदके स्थानसे दूर रक्खा जाय। उदाहरणतः उसे अग्नि या नदी आदिसे दूर रखना चाहिए। यदि पासमें कोई ऐसी वस्तु हो जिससे उसके छटपटाने पर चोट लगनेकी सम्भावना हो तो उसे हटा देना चाहिए। रोगीको पकड़ कर उसके हाथ-पैर बांध कर पटकनेके जोरको कम करदेना चाहिए उसके सरको सहारा देना चाहिए। दांतोंके बीच दतुन टहनी या पेनसिल डाल कर ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए कि दांतोंके बीच पड़कर जीभ न कट जाय। जब दौरा मिट जाय तो रोगीको सोने देना चाहिए। यदि ठण्ड लगने का डर हो तो रोगीको कम्बल या रजाई ओढ़ा देना चाहिए।

(२) हिस्टीरिया—यह रोग साधारणतः जवान औरतों को होता है (देखो हिस्टीरिया)। रोगिणी हाथ-पैर पटकती है, जिस वस्तुको या जिस किसीको पा सकती है जोरसे पकड़ लेती है, बारी-बारीसे हंसती और रोती है, इत्यादि। कई बातोंमें हिस्टीरिया रोग अपस्मार (मिरगी) की ही तरह होता है, परन्तु हिस्टीरियामें कभी कभी पूरी बेसुधी नहीं होती। यदि रोगिणी को सम्मोह हो गया हो (वह अचेत हो गई हो) तो सर पर पानीके छींटे मारो या ठंडी पट्टी रक्खो और हाथ-पैर इस प्रकर रगड़ो कि सिरमें गरमाहट आजाये। यदि इस रोगका दौरा बार-बार आता हो तो डाक्टरकी सलाह लो।

(३) बच्चों की बेहोशी और आक्षेप (Infantile convulsions) पूतना रोग—यह रोग छोटे बच्चोंको होता है। हाथ-पैर रह २ कर झटका खाते व खिंचते हैं, चेहरा नीला हो जाता है और कभी कभी मुंहसे फेचकुर भी निकलता है।

केवल एक दौरेके बाद बेहोशी आ सकती है या कई एक दौरे एकके बाद एक आ सकते हैं। इस रोगमें डाक्टरको तुरन्त बुलाना चाहिए। तब तक बच्चेको कुनकुने पानीमें बैठाना चाहिए, केवल सर पानीके ऊपर रहे और सर पर तर पानीसे तौलिया या कई तह कपड़ा रखना चाहिए। पन्द्रह-बीस मिनटके बाद बच्चेको पानीसे निकाल, पोंछ, कपड़ा पहना कर सुला देना चाहिए।

(४) कई एक विष ऐसे हैं जिनसे मूर्च्छा और ऐंठन होती है। इनका वर्णन नीचे विषोंके सम्बन्धमें किया जायगा।

मोच और चमक—शरीरके किसी अंगके जोड़ पर झटका लगनेसे वहांकी बन्धनियां (Ligaments) खिंच या टूट जाती हैं आस-पासके तन्तु भी टूट जाते हैं, परन्तु यदि जोड़ उखड़े न हों तो इसे मोच (Sprain) कहते हैं। कहींके मांस पेशियों (Muscles) और पेशी रज्जुओं (Tendons के झटका खा जानेको बितान या चमक (Strain) कहते हैं। मोचमें एक या अधिक बन्धनिया टूट जाती हैं; इसलिए सन्धिके पास रक्त भीतरही-भीतर एकत्रित हो जाता है और सन्धि कमजोर भी जान पड़ने लगती है। त्वचाके नीचे एकत्रित रक्तका पता बाहर चलता है कुछ समयमें वहां नीलापन आ जाता है। रक्तके अतिरिक्त वहां अन्य तरल पदार्थ भी एकत्रित हो जाता है। इसलिए वह जोड़ सूज जाता है और अंगके चलानेमें पीड़ा होती है।

चिकित्सा—मोच अकसर पैरमें पड़ता है। यदि घरके बाहर पड़े तो जूता उतार कर पट्टी या रुमाल इस प्रकार बांध देना चाहिए कि पैरका बोझ सन्धि पर पड़नेके बदले टांग पर पड़े। इसके लिए पट्टीको तलुवेके नीचे रक्खो। पट्टीके छोरोंको ऊपर लाओ। दाहिने छोरको बाईं ओर ले जाओ और बाईं ओरको दाहिनी ओर। फिर इन छोरोंको घुट्ठी (टखने) के पीछे ले जा कर कस कर बांध दो। मोच पर बरफ या ठंडी पट्टी रखनेसे लाभ होता है। हो सके तो किसी सवारी पर चढ़ कर घर जाओ। घर पहुंच कर चारपाई पर लेटना चाहिए और पैर तकिया लगा कर उठाये रहना चाहिए बर्फ या ठंडी पट्टी रखने से और पैर उठाये रहनेसे मोच खाये स्थान पर अधिक रक्त नहीं जाने पाता। मोच खाये सन्धि पर कुछ कस कर पट्टी बांध देनेसे भी वहां अधिक रक्त नहीं उतरने पाता। घंटे दो घंटे बाद गीला सेंक (Fomentation), अर्थात् खूब गरम पानी में डुबाये और फिर निचोड़े, कपड़ेसे सेंक करना चाहिए, (देखो फोमेनटेशन) फिर कुछ दिनों तक दिनमें दो तीन बार साधारण सेंक और मालिस करते रहनेसे मोच अच्छा हो जायगा। आरम्भमें तो मोच खाये सन्धिको विश्राम देना चाहिए, परन्तु एक दो दिन बाद, या इतने समयके यथा सम्भव शीघ्र बाद उस सन्धिको धीरे-धीरे इस्तेमाल करना चाहिए। यदि मोच अधिक आई हो तो आरम्भसे ही डाक्टरकी सहायता लेनी चाहिए, क्योंकि सम्भव है कोई नस टूट गई हो। एक्स-रश्मि (x-ray) से इस बातका ठीक पता चल सकता है।

लू—गर्मीके दिनोंकी गरम हवाको लू कहते हैं। लू मारना या लू लगना—शरीरमें इस गरम हवाके लगनेसे उत्पन्न विकारको कहते हैं। लू लगनेका परिणाम भी वही होता है जो अधिक गरमीसे होता है ऊपर गरमीके कारण ज्वर शीर्षक खण्ड देखो।

रक्तस्राव (Haemorrhage):—आकस्मिक चिकित्सा और विशेष कर रक्तस्रावका उचित उपचार करनेके लिए शरीर रचनाका थोड़ा-बहुत ज्ञान आवश्यक है। इसलिए पहले इसी विषय पर विचार किया जायगा। सम्भव हो तो किसी मेडीकल कालेज या विश्वविद्यालय या अजायबघर (म्यूजियम) में जाकर चिरे हुए मानव शरीरकी मूर्ति (Model) को अपनी आंखोंसे देखना और अध्ययन करना चाहिए।

हृदय रक्तको संचालित करनेमें पम्प या पिचकारीका काम करता है। (चित्र देखो) हृदयकी बाइ ओरसे रक्त सर्वत्र जाता है। यह धमनियों (Arteries) में से होकर जाता है। शिर तक रक्त पहुंचाने वाली धमनियां दो हैं जिसमेंसे एक बाईं ओर ओर दूसरी दाहिनी ओर है। इन्हें शिरोधीया धमनी (Carotid artery) कहते हैं। इनमेंसे प्रत्येक हंसली (Clavicle) के भीतरी छोरसे नीचे वाले जबड़ेके कोनेके पास प्रत्येक शिरोधीय धमनी दो शाखाओंमें बंट जाती है जिन्हें भीतरी (Internal) और बाहरी (External) शिरोधीया धमनी कहते हैं। शिरोधीय धमनी खोंपड़ीके भीतर जाती है और मस्तिष्कको रक्त पहुंचाती है बाहरी शिरोधीया धमनी खोंपड़ीके बाहर वाले भागोंको रक्त पहुंचाती है।

दो हजार बीघे में नमक की खेती

[एक प्रसिद्ध नमक की खान का दिग्दर्शन]

सफेद कपड़ा पहने स्वच्छ और शीतल नमक की खानोंमें काम करना कोयलेके कारखानेके मजदूरोंको स्वर्गके समान जान पड़ता होगा, वस्तुतः नमक की खानोंमें बड़ी सफाई और बहुत आराम रहता है, अमरीका की रेटसॉफ नामक खान ऐसी ही है और दो हजार बीघेसे भी अधिक विस्तृत भूमिमें है ।

नमक की खान का बाहरी दृश्य ।
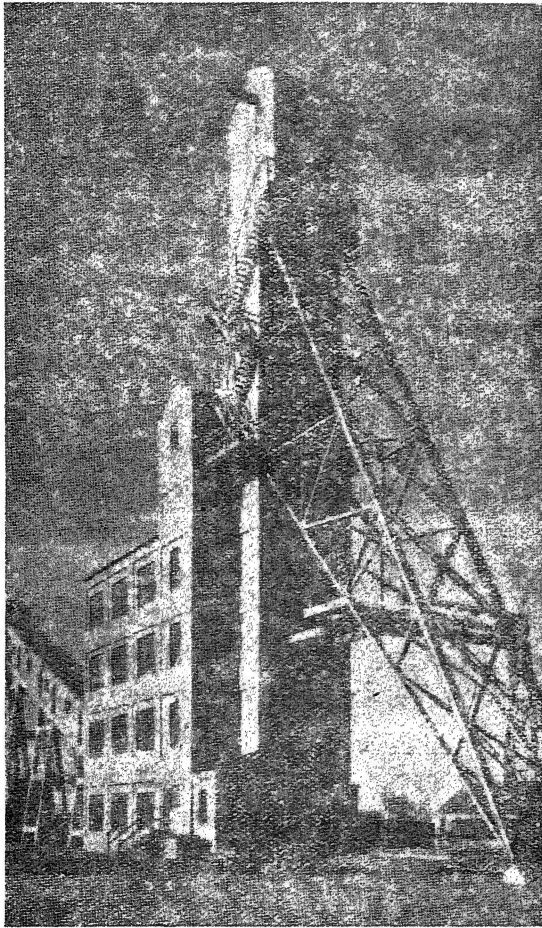
इस मकानमें नमक पीसनेकी चक्कियां और गोदाम वगैरह हैं ।

दफ्तर, और कारखाना सब खानके भीतर ही बनाये गये हैं। वे नमकको काट कर बनायी गई गुफाओंमें रक्खे गये हैं क्योंकि यहां बाहरकी अपेक्षा का वायु मंडल अधिक सुख कर है ।
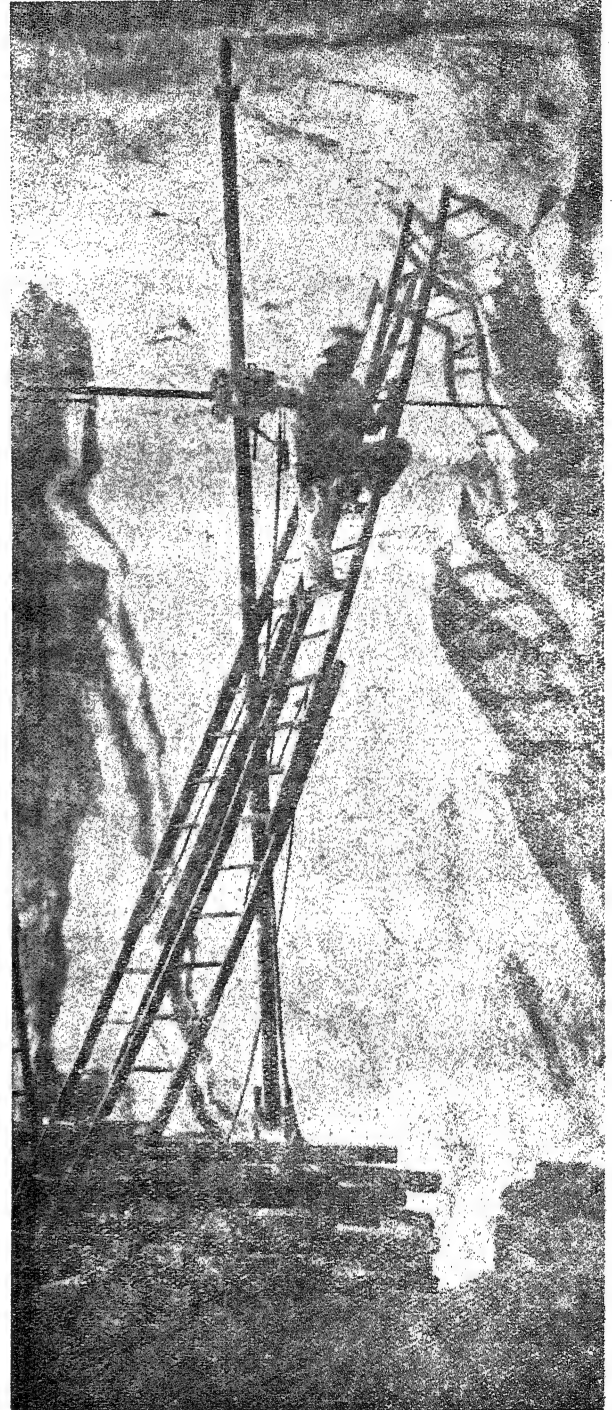
नमक की दीवारको मोटर संचालित आरी से काटा जा रहा है ।

अन्य खानोंके भीतर सीड़के कारण बड़ी गरमी पड़ती है, परन्तु नमककी खानोंमें वायुके जलके वाष्पको नमक खींच लेता है। इसलिये नमककी खानोंके भीतर बड़ा आनन्द रहता है, वहां न अधिक गरमी रहती है न अधिक ठंड। तापक्रम प्रायः सभी ऋतुओंमें ६३ डिगरीके लगभग रहता है, रेटसॉफ और इसके संगत खानों में कहीं-कहीं इसकी सीधी और स्फटिक के समान स्वच्छ दीवारें दो-दो मील लम्बी हैं। लम्बे से लम्बा व्यक्ति बिना सर झुकाये ही इसकी पूरी १५ मील लम्बी खाई में टहल सकता है। यह सब जमीन के नीचे हैं।

नमक निकालने के लिये बड़े-बड़े बिजली की मोटर से संचालित आरे पहले खड़ी और बेड़ी दिशाओं में नमक की दीवारों को चीर डालते हैं। ये दीवारें कहीं-कहीं तो १०० फुट मोटी हैं। फिर उचित स्थानों में छेद करके डायनामाइट (विशेष बारूद) भर दिया जाता है। डायनामाइट के दागने पर नमकके बड़े-बड़े ढोंके दीवार से तड़क कर गिर पड़ते हैं। आरे से पहले ही चिरे रहने के कारण दीवार को ऐसा धक्का नहीं लगने पाता कि खानकी छत बैठ जाय या अन्य कोई हानि हो। इसके बाद बिजली की माल-गाड़िया वहां आती हैं और नमकको गोदाममें ले जाती हैं, पास ही में बड़ी-बड़ी चक्कियां रहती हैं। जो इन ढोंकोंको दर देती हैं, इनसे ढोंकें टूट जाते हैं और आठ आठ इंचके या इससे छोटे ही रोड़े रह जाते हैं, ये चक्कियां खान के मुँहके पास ही रहती हैं। यहांसे नमक बड़ी-बड़ी बाल्टियोंमें लद कर ऊपरकी मंजिल में जाता है जहां बारीक पीसने वाली चक्कियोंमें नमक पिस कर चूर्ण हो जाता है।

यह सेंधा नमककी तरह होता है और जिस प्रकार सेंधा नमक में नमकके अतिरिक्त अक्सर अन्य रासायनिक पदार्थ भी रहते हैं इसी प्रकार इसमें भी, खानेके लिये अक्सर पानीमें घोल कर निकाला नमक काममें लाया जाता है क्योंकि रासायनिक दृष्टि से वह अधिक शुद्ध होता है। इस प्रकारका नमक दो विभिन्न रीतियोंसे बनता है। एकमें तो प्राकृतिक खारे पानीसे नमक निकाला जाता है। दूसरेमें नमककी खानमें पानी डाल दिया जाता है। और जब पानीमें नमक अच्छी तरह घुल जाता है तो इस पानीको पंप द्वारा खींच कर सुखा लेते हैं। भारतवर्षमें समुद्रके पानीसे बहुत-सा नमक निकाला जाता है और इसके लिए पानीको छिछली क्यारियोंमें लाकर सूखने दिया जाता है, परन्तु अमरीकामें भीमकाय कड़ाहोंमें सुखाया जाता है जो ४५ फुट ऊँचे होते हैं और एक दिनमें दो हजार मन नमक तैयार कर सकते हैं। ये कड़ाह खुले मुँहके नहीं होते। ये डेगके आकारके होते हैं। भापको पंप द्वारा खींच लिया जाता है जिससे पानी जल्द उड़ जाय।

नमक के कड़ाह
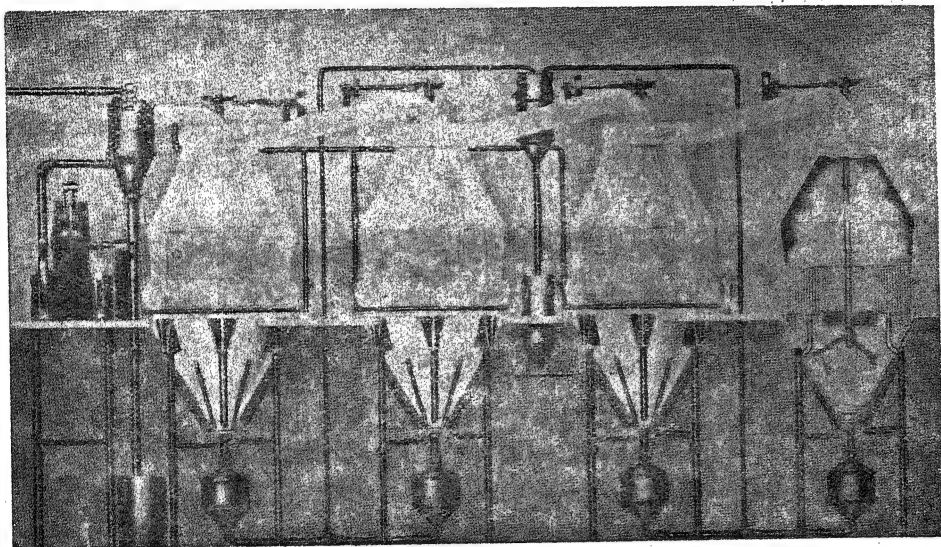
इन कड़ाहों में दो हजार मन नमक रोज तैयार होता है।

बहुत शुद्ध न होनेके कारण खानसे काट कर निकाला नमक आइसक्रीम बनानेके काममें आता है। फिर, जब सड़कों पर बरफ जम जाता है तो उस पर नमक छिड़क दिया जाता है जिससे बरफ पिघल कर मोरियों द्वारा बह जाता है।

खीरा (Cucmber)

बोने का समय—मध्य मार्चसे जुलाईके अन्त तक। पहाड़ पर भी मध्य मार्चसे मध्य जुलाई तक।

यह एक वार्षिक लता है जिसका फल नरम रहने पर ही खाया जाता है। इसकी कई एक जातियां होती हैं। विदेशसे आई हुई जातियोंको पैदा करनेमें अधिक सावधानी और सेवाकी आवश्यकता होती है। देशी जातियोंके लिये विशेष सेवाकी आवश्यकता नहीं पड़ती।

खीरा किसी भी अच्छी जमीनमें आसानीसे उत्पन्न किया जा सकता है और इसमें विशेष खादकी आवश्यकता भी नहीं पड़ती, बल्कि थोड़े बहुत खादसे ही काम चल जाता है। पांच पांच फुटकी दूरी पर पांति लगा कर उसमें छः छः इंचकी दूरी पर बीज बोना चाहिए। पौधेके चढ़नेके लिये यदि लकड़ी बांध दी जाय तो अच्छा है, परन्तु बिना लकड़ीके भी अर्थात् जमीन पर ही फैल कर पौधा बढ़ने दिया जा सकता है। गर्मीके दिनों में चौथे, पांचवे दिन सिंचाई करनी चाहिये, परन्तु बरसातमें विशेष ध्यान देनेकी आवश्यकता नहीं है। केवल कभी-कभी निराई कर देनी चाहिए।

गोल खीरा

बोनेका समय मध्य मार्चसे मईके अन्त तक।

गोल खीरा साधारण खीरेकी ही एक जाति है। परन्तु इसका पौधा लताकी तरह बढ़नेके बदले छोटे पौधेके रूपमें रहता है। इसमें अंडेके आकारका और गाढ़े हरे रङ्गका फल लगता है जिसमें सफेद चित्तियां पड़ी रहती हैं।

साधारण खीरेकी तरह यह किसी भी अच्छी जमीनमें बोया जाता है, परन्तु थोड़ी-बहुत खाद देनेसे फल अधिक और बड़े लगेंगे। बहुतसे लोग छः-छः इंच चौड़ी और पन्द्रह-पन्द्रह इंचकी दूरी पर मेंड़ बांध देते हैं और मेंड़के अगल-बगल तीन-तीन चार-चार इंचकी दूरी पर बीज बोते हैं। इस मेंड़के बीचकी जमीनको प्रत्येक तीसरे या चौथे दिन पानीसे सींचना चाहिए और पानीके सूख जानेके बाद खुरपीसे जमीनको खुरपिया देना चाहिए। यदि बीज पन्द्रह-पन्द्रह दिन पर आरम्भ मार्चसे मई के अन्त तक बोया जाय तो कई महीने तक यह बराबर फल देता रहेगा।

फ्रांस बीन या फ्रेञ्च बीन

बोनेका समय आरम्भ मईसे जूनके अन्त तक। पहाड़ों पर भी इसे इन्हीं महीनोंमें बोया जा सकता है।

फ्रेञ्च बीनका अर्थ है फ्रांसीसी सेम जो एक तरहकी सेम है। इस शब्द का अपभ्रंश होकर इसका फरास बीन नाम पड़ गया है। कोई कोई इसको 'घीया सेम' या 'मक्खन सेम' कहते हैं।

फ्रेञ्च बीन एक लता है और एक से अधिक वर्ष तक रह सकती है, परन्तु प्रत्येक वर्ष पौधा उत्पन्न कर लेना ही सुविधा जनक होता है। इसकी कई एक जातियां हैं जिनमेंसे कुछमें फली सीधी लगती है और कुछमें तलवारकी तरह टेढ़ी। कुछकी फली चिकनी होती है और कुछकी चिंगुरी हुई। परन्तु साधारणतः लोग उसी फलीको पसन्द करते हैं जो चिकनी और हल्के हरे रंगकी होती है।

इस पौधेमें बहुत अधिक खादकी आवश्यकता नहीं होती, थोड़ी बहुत यदि खाद दे दी जाय तो अच्छा है। बरसातमें पौधा खूब बढ़ता है। जब बरसात समाप्त होने लगती है तब फल फूल लगने लगते हैं और जब तक अधिक सर्दीके कारण पौधा मर नहीं जाता तब तक फल लगा ही करता है।
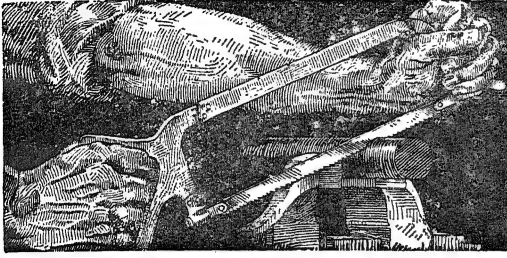
दर्पण बनाना

स्वच्छ शीशेकी पीठ पर चांदीकी कलई करनेसे बढ़िया दर्पण बन सकता है। बाजारमें बिकने वाले अच्छे दर्पणोंमें भी चांदीकी ही कलई रहती है। सस्ते दर्पणोंमें पारा और रांगेकी कलई रहती है, परन्तु यह न तो चांदीके समान चमकीला और न उतना टिकाऊ होता है, इसलिये यहां पर चांदीकी कलई करनेका ढङ्ग बताया जायगा।

शीशे पर केवल कलई वाला घोल उँड़ेलनेसे ही दर्पण नहीं बन जायगा। दर्पण बनानेमें सफलताका गुर स्वच्छता है। शीशा रासायनिक और भौतिक रीतिसे पूर्णतया स्वच्छ होना चाहिए। अन्यथा कलई सर्वत्र नहीं हो पायेगी, और यदि होगी भी तो शीघ्र उखड़ जायगी।

प्राय: सभी शीशों को पहले नाइट्रिक ऐसिड (शोरेके तेजाब) से या कास्टिक सोडासे धोना पड़ता है। यदि शीशे पर जरा भी तेलका अंश हो तो कास्टिक सोडासे धोना आवश्यक है। इससे धोने के बाद शीशेको तेजाबसे भी धो लिया जाय तो और भी अच्छा है। साफ हो जानेकी पहचान यह है कि पानी शीशे पर सर्वत्र चिपका रहे, किसी स्थानको छोड़ न दे। जैसा अकसर शीशे पर तेल या चिकनाहट लगे रहनेसे होता है। सफाई करते समय कोनों पर विशेष ध्यान देना चाहिए क्योंकि अकसर वे गंदे ही रह जाते हैं।

जब शीशा कास्टिकसे, या तेजाब से, (या दोनोंसे) स्वच्छ कर लिया जाय और पानीसे धो लिया जाय तो इसे पूर्णतया सुखा लेना चाहिए और तब उसे प्यूमिस पत्थर के अत्यंत बारीक चूर्ण (Pumice stone) से रगड़ कर साफ करना चाहिए। यदि शीशे की सतह पूर्णतया सूखी न रहेगी तो प्यूमिस से रगड़ने पर शीशे पर खरोंच पड़ जायंगे। इसीलिए यह परमावश्यक है कि प्यूमिस से रगड़नेके पहले शीशेको पूर्णतया सुखा लिया जाय। प्यूमिस रगड़नेकी सबसे अच्छी रीति यह है कि इसे केनवस या गफ बुने मोटे कपड़े पर जरा सा छिड़क लिया जाय और तब शीशेको इसीसे रगड़ा जाय। इससे शीशेकी सतह खूब साफ हो जायगी।
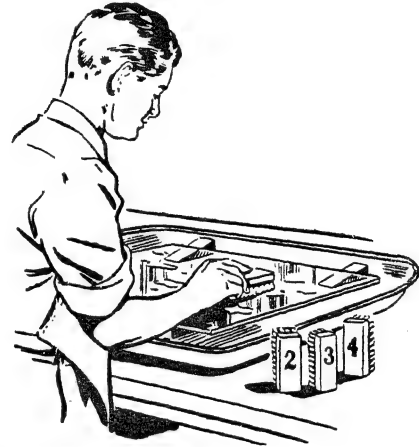
सफाई करनेमें चार ब्रशोंकी आवश्यकता पड़ती है इनपर नम्बर डाल देना चाहिए हाथ फुल फुले परन्तु तेजीसे चलाओ शीशेकी सतहको या किनारोंको अंगुलियोंसे मत छुओ।

इसके बादकी क्रियाओं के लिये चार ब्रशोंकी आवश्यकता पड़ेगी। उन पर पहलेसे १, २, ३ और ४ स्पष्ट अक्षरोंमें लिख देना अच्छा है, क्योंकि तब किसी प्रकारकी गड़बड़ी का डर नहीं रहता। ब्रश कामके अनुसार छोटे या बड़े हो सकते हैं, परन्तु यह परमावश्यक है कि वे पूर्णतया स्वच्छ हों। ब्रशोंका इस्तेमाल करते समय उनको कामके समय जोरसे दबाना नहीं चाहिए क्योंकि ऐसा करनेसे एक तो ब्रश खराब हो जाता है, दूसरे ब्रशके बाल मुड़ जाते हैं जिससे काम अच्छी तरह साफ नहीं होता क्योंकि तब बालोंकी नोकके बदले बालों की बगलें काम पर पड़ती है।

प्यूमिससे साफ करनेके बाद ब्रश नम्बर १ से पानीकी धारके नीचे शीशेको साफ करना चाहिए जिससे प्यूमिसके एक एक कण बह जांय। फिर शीशे को ब्रश नम्बर २ और स्टेनस

चिपकी हुई गर्दको दूर करने के लिए शीशेको प्यूमिस पत्थरके बारीक चूर्ण और कपड़ेसे रगड़ना चाहिए, परन्तु शीशा सूखा हो। शीशेको लकड़ीकी चार फन्नियों पर रखनेसे शीशे को उठानेमें आसानी होती है।

क्लोराइडके घोलसे धोना चाहिए। इसके लिए १ गैलन पानीमें एक आउंस स्टैनस क्लोराइड (Stannons Chloride) रहे। इससे चांदीकी तह अच्छी तरह चिपकती है। इस घोल से धोने के बाद शीशे को पानी की धार के नीचे रखकर और ब्रश नंबर २ से रगड़ कर अच्छी तरह धो डालना चाहिए। तब शीशे को स्वच्छ जल से अच्छी तरह धो डालना चाहिए और अब की बार ब्रश नंबर ३ का प्रयोग करना चाहिए, जिसमें शीशे में स्टैनस क्लोराइड के लगे रहने की कोई शंका न रहे। इस बार भी कोनों को अच्छी तरह धोना चाहिए।

अंत में शीशे को ब्रश नम्बर ४ और स्रवित जल (डिस्टिल्ड वाटर, Distilled water) से इतनी अच्छी तरह धोना चाहिए कि साधारण जल या किसी रासायनिक पदार्थ का लेश मात्र भी शीशे में लगा न रहे। डिस्टिल्ड वाटर दवा खानों में और मोटर की दूकानों पर बिकता है। यदि किसी स्थान से स्रवित जल हट कर दूर हो जाय तो समझना चाहिए कि शीशा ठीक प्रकार से स्वच्छ नहीं हुआ है इस लिए फिरसे स्वच्छ करनेकी क्रिया आरम्भसे दोहरानी चाहिए। किसी समय भी अंगुलीसे शीशेको या इसके किनारेको न छूना चाहिए। यदि बिना अंगुली लगाये काम न चले तो हाथों पर रबड़का दस्ताना पहनना चाहिए।

अब लकड़ीकी चार फन्नियों पर शीशेको एक दम चौरस रखना चाहिए। फन्नी (Wedge) ऐसी आकृतिको कहते हैं जो गावदुम हो (अर्थात एक ओर मोटी और दूसरी ओर पतली हो) इसकी आकृति यहां दिये गये चित्रों से समझमें आ जायगी। फन्नियोंको घटा-बढ़ा कर शीशे को पूर्णतया चौरस समतल कर देना चाहिए। कोई किनारा नीचा न रहे। इसकी जांच शीशे पर डिस्टिल्ड वाटर डाल कर की जा सकती है। सफाई और कलई करनेके लिए किसी बरतनकी आवश्यकता नहीं है: केवल उस पानीको रोकनेके लिए जो शीशे परसे बह कर नीचे टपक पड़े, किसी भी पुराने और काफी बड़े थाल या तश्तरीको इस्तेमाल किया जा सकता है। शीशेको पूर्णतया चौरस रखना इसी लिए आवश्यक है कि इस पर कलई करने वाले घोलके छोड़ने पर यह घोल सब जगह एक गहराईका होकर पड़ा रहे। किसी एक ओरके नीचा रहनेसे यह उधरसे तुरन्त बह न जाय।

अब एक बार शीशे पर डिस्टिल्ड वाटर छोड़ कर देखना चाहिए कि बिना बहे इसपर कितना पानी टिक सकता है और कलई करनेका घोल कुल उतना ही या थोड़ा अधिक बनाना चाहिए।

कलई करनेके लिए चार घोलोंकी आवश्यकता होती है। इन के नुसखे नीचे दिये जाते हैं:—

१—सिलवर नाइट्रेट	१ आउंस
डिस्टिल्ड वाटर	१ पाइंट
२—पोटैसियम हाइड्राक्साइड	
अर्थात् कॉस्टिक पोटाश	२¼ आउंस
डिस्टिल्ड वाटर	१ पाइंट
३—लिकर अमोनिया (तेज बिना पानी मिला)	
४—डिस्टिल्ड वाटर	१ पाइंट
स्वच्छ रवादार चीनी	१½ आउंस
नाइट्रिक ऐसिड (तेज)	½ ड्राम
ऐलकोहल	३ आउंस

उपरके घोलोंको बनानेमें शुद्ध पदार्थों का उपयोग करना चाहिए। चौथे घोलको रेड्यूसिंग (Reducing) घोल कहते हैं इसे पहलेसे बनाकर रखना चाहिए, रक्खे रहने से यह बढ़िया हो जाता है। कमसे कम १ सप्ताह पहलेसे इसे अवश्य बना रखना चाहिए। सिलवर नाइट्रेट वाले घोलको रखना हो तो लाल या

भूरी बोतलोंमें या बोतलको काले कागजमें लपेट कर रखना चाहिए। अन्यथा यह खराब हो जाता है।

यह आवश्यक नहीं है कि ऊपरके घोल ऊपर बतलाई गई मात्रा में ही बनाये जायं। वे न्यूनाधिक मात्रा में आवश्यकतानुसार बनाये जा सकते हैं, परन्तु उसमें पड़ने वाले बिविध पदार्थों का अनुपात न बदलना चाहिए।

कलई करने वाले घोलका नुसखा यह है:—

घोल नम्बर १	१५ भाग
,, ,, २	५ भाग
,, ,, ३	आवश्यकतानुसार
,, ,, ४	६ भाग

इन घोलोंको मिलानेकी रीति नीचे दी जाती है आवश्यकतानुसार मात्रा में ही इन घोलोंको मिलाना चाहिए। क्योंकि मिश्रित घोल उठा कर रक्खा नहीं जा सकता।

पहले सिलवर नाइट्रेट वाले घोलको स्वच्छ शीशेके गिलासमें डालो। यह गिलास शोरेके तेजाबसे, फिर पानीसे, फिर डिस्टिल्ड वाटरसे साफ किया हुआ रहे। इसमें अमोनिया बूंद बूंद करके छोड़ना चाहिए आंखमें दवा छोड़नेके लिए जो ड्रापर (Dropper) बिकता है वह इस कामके लिए अच्छा है। अमोनियाकी पहली बून्द पड़ते ही घोल गन्दा हो जाता है परन्तु काफी अमोनिया पड़नेसे घोल फिर स्वच्छ हो जाता है, अमोनिया केवल उतना ही छोड़ना चाहिए जितनेसे घोल फिर स्वच्छ हो जाय। एक बून्द भी अमोनिया अधिक न पड़ने पावे। अमोनिया छोड़ते समय घोलको स्वच्छ शीशेके छड़से चलाते रहना चाहिए। घोल स्वच्छ हो जानेका अर्थ है कि नाम-मात्र अमोनिया अधिक है। इसलिए फिर नाम-मात्र सिलवर नाइट्रेट वाला घोल डालना चाहिए जिसमें घोल स्वच्छके बदले नाम-मात्र मटमैला हो जाय। अब इसमें पोटेसियम हाइड्रॉक्साइड वाला घोल मिला दो। इससे घोल काला हो जायगा। अब फिर बून्द-बून्द करके अमोनिया छोड़ो और पूर्णतया स्वच्छ हो जानेके जरा सा पहले ही रुक जाओ। यदि भूलसे अमोनिया एक बून्द अधिक पड़ जाय तो फिर नाम-मात्र सिलवर नाइट्रेट वाला घोल डाल दो जिसमें घोल जरा सा मटमैला ही (पुआल के रंगका) रह जाय।

दूसरे शीशेके गिलासमें नपी मात्रामें रेड्यूसिंग घोल तैयार रक्खो। अब शीशे परका डिस्टिल्ड वाटर छोड़ दो (जब तक ऊपरके घोल मिलाये जाते हैं तब तक शीशे पर बराबर डिस्टिल्ड वाटर पड़ा रहे और वह कहीं सूखने न पाये) और उसे फिर पुराने स्थान पर रख दो।

रेड्यूसिंग घोलको दूसरे घोलमें मिलाओ और तुरन्त उसे
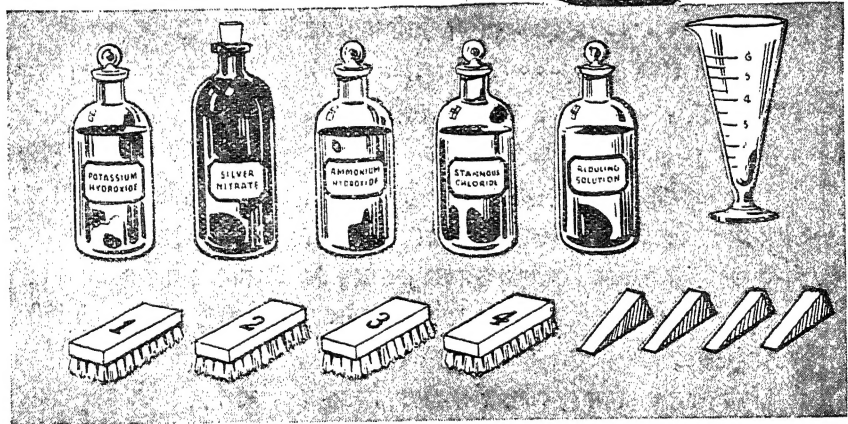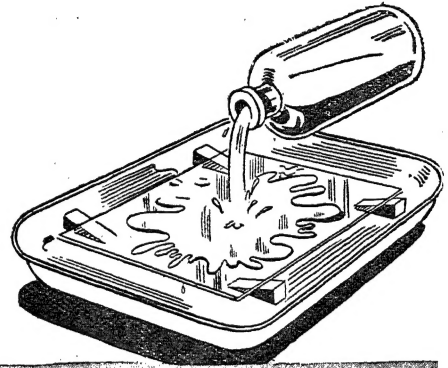
ऊपरके दाहिने कोनेमें दिखलाया गया है कि किस प्रकार शीशे को चौरस रख कर उस पर डिस्टिल्ड वाटर छोड़ना चाहिए।

चौरस रक्खे शीशे पर उंडेल दो। इसमें देर मत करो परन्तु ऐसी भी हड़बड़ी न करनी चाहिए कि घोल का कोई अंश नीचे गिर पड़े। इसके छोड़ने के १० मिनट बाद (गरमीमें कम समय लगता है, जाड़ेमें अधिक), शीशे परका घोल फेंक दो और शीशेको डिस्टिल्ड वाटरसे सावधानीसे धोओ, धोते समय शीशे पर जमी चांदी को फुलफुले हाथ गर्द रहित बढ़िया रूईसे रगड़ना चाहिए। इस कामके लिए डाक्टरोंकी दूकान पर बिकने वाली रूई बहुत उपयुक्त होती है। यदि कलईके उस पार रख कर बिजलीकी बत्ती या अन्य कोई चटक रोशनीके देखने पर वह दिखलाई पड़े तो समझना चाहिए कि कलई काफी मोटी नहीं है। इसलिए ऐसी अवस्थामें शीशेको फिर पुराने स्थान पर चौरस रख कर और उस पर डिस्टिल्ड वाटर डाल कर पड़े रहने देना चाहिए और तबसे कलई करनेका थोड़ा और घोल बना कर शीशे पर डालना चाहिए। स्मरण रहना चाहिए कि कलई करने वाला घोल मिला कर रखने पर धोखा होनेका डर रहता है, क्योंकि इससे सिलवर फलमिनेट बननेका डर रहता है जो आपसे आप बारूदकी तरह उड़ता है।

जब इच्छानुसार मोटी तह शीशे पर चढ़ जाय तब उसे धो और रूईसे साफ करके दर्पण को सूखनेके लिए रख दो। जब यह पूर्णतया सूख जाय तो कलई पर ऐसा लैकर (Lacquer) पोत दो जो जलअभेद्य और वायुअभेद्य हो। ऐसे लैकर बिकते हैं। अल्युमिनियम या ब्रौंज पाउडर मिला लैकर सबसे अच्छा होता है।

यदि पहली वार अच्छा दर्पण न बन सके तो निराश न होइए दूसरी बार अवश्य कुछ अधिक सफलता मिलेगी। केवल अभ्याससे ही पूर्ण सफलता मिलेगी। (पापुलर साइन्स से)।

वैज्ञानिक संसार के ताज़े समाचार

सूक्ष्म नलिका—खोखली नली कितनी पतली बन सकती है? मच्छरकी चोंच या दंशनी खोखली होती है; तभी तो वह उससे खून चूस सकता है। पहले तो मच्छरकी चोंचकी तरह पतली किसी धातुकी नली बनाना भी मनुष्यके लिए सम्भव नहीं था, परन्तु अब ०·००१९ इंच व्यास की नली बनाई जा रही है। इसकी दीवार कुल ०·०००७५ इंच मोटी होती है और भीतरी छेद ०·०००४ इंच। यह नली इतनी सूक्ष्म है कि एक सेरमें ३६ मील लम्बी नली चढ़ती है।

मोटर पर रंगकी मोटाई—मोटर पर जो रंग किया जाता है उसकी मोटाई कितनी है इसे अच्छी तरह और बिना रंगको खुरचे या उखाड़े ही नापनेके लिये एक यन्त्र अब बना है। इस में चुम्बकीय सिद्धान्तों का उपयोग किया गया है। एक वैद्युत्-चुम्बकको रंगे सतह पर रख दिया जाता है और तब नापा जाता है कि रंगके नीचे वाले लोहेमें चुम्बकीय क्षेत्रका बल कितना है रंगकी तह जितनी ही मोटी होती है चुम्बकीय क्षेत्र उतना ही कम होता है। फोर्ड मोटर कम्पनी अब इसी यन्त्रसे अपनी सब गाड़ियोंकी जांच कर लेती है।

नवीन रंग—बी० एफ० गुडरिच कम्पनीने एक नवीन रंग निकाला है जिसका नाम उन्होंने कोरोसील रक्खा है। इसमें यह गुण है कि इससे रंगे हुए बरतनमें तेजाब, कॉस्टिक क्षार आदि जो चाहे रक्खा जाय, रंग कटेगा नहीं, केवल ऐसेटिक ऐसिड और फॉरमिक ऐसिडसे ही इस रंगको हानि पहुंच सकती है। यह रंग वस्तुतः सेलुलायड या बेकलाइटके समान रुपद पदार्थोंकी जातिका है, परन्तु सूखनेके पहले यह तरल रहता है। इसे ब्रुश से या स्प्रेगन (Spraygun) से किसी भी धातु के बरतन पर लगा सकते हैं।

अभेद्य टंकी—हवाई जहाजके पेट्रोल की टंकीमें गोली लगने से पेट्रोल बहने लगता है और अकसर इसमें आग भी लग जाती है। अब रबड़की ऐसी टंकीका आविष्कार किया गया है जो अल्युमिनियम या लोहेकी टङ्कीके भीतर रख दी जाती है और जो छिद जानेके बाद आपसे आप (रबड़के फूलनेके कारण) ठीक हो जाती है। आजसे २० वर्ष पहले भी इसी तरहका आविष्कार हुआ था, परन्तु प्रयोगमें असफल निकला। देखना चाहिए नवीन टंकी की क्या गति होगी।

---o---

आग पर चलना

[जुलाई के विज्ञान का शेषांश]

दो विशेषज्ञोंने उनके पैरोंको देखाकि कहीं उन्होंने कोई रासायनिक पदार्थ तो नहीं लगा रखा है—उसके लिए उनके पैरोंको ठंडे पानीसे धोया गया। हुसैनने १५ फुट गहरी चार फुट चौड़ी और १२½ फुट लम्बी एक खाई खुदवानेके लिए कहा। उसके कहे अनुसार गढ़ा खोदा गया और पहिलेकी तरह आग भर दी गई।

अग्निका ऊपरी तापक्रम ५७५ डिग्री सें० था और अग्नि के अन्दरका तापक्रम ७०० डिग्री सें० था। हुसैनने कुरानकी आयतें पढ़ कर आग पर चलना शुरू किया और १·३ सेकेंड में ३ कदम रख कर उस गढ़ेको पार कर दिया। इसके बाद हुसैनने कहाकि वह दूसरोंको भी आग पर चला सकता है उनके पैर भी नहीं जलेंगे। चार पांच आदमियोंने चलनेके लिए उसके पीछे एक लाइन बनाली। सबसे पहिला आदमी हुसैन की पेटी पकड़े हुए था और बाकी एक दूसरेका हाथ पकड़े थे। उन्होंने १·५ सेकण्डमें गढ़े को पार किया। थोड़ी २ जलन सबको लगी थी किन्तु एक आदमी जिसके पैरमें राख लग गई थी उसका पैर वास्तवमें जल गया था।

एडकाक नामका व्यक्ति फिर अकेला अग्नि पर चला और १·४ सेकेन्ड में उसने गढ़ेको पार किया। वे लोग कुछ कुछ जल गए थे इसका कारण उनके क्रमानुसार संयत कदम न रखना था—इसके साथ साथ जो पैर आग पर पड़ा था उसमें ही जलन अधिक थी।

इसके बाद हुसैनने कहा कि वह कितनी ही देर तक आग पर चल सकता है। इसके लिए उससे कहा गया कि इस आग पर ही तुम कुछ चक्कर लगाओ। हुसैन उस आग पर आगे पीछे न चल कर केवल आगेकी ही ओर चलता था।

दूसरे दिन वह खाई २० फुट लम्बी की गई। उसकी अग्निका ऊपरी तापक्रम ७४० डिग्री था। हुसैनने अपनी आयतें पढ़ीं और फिर २·३ सेकेन्डमें ६ कदम रख कर गढ़ेको पार कर दिया। इस बार इसके पैर जल गए थे। एक पैरमें तो छाले पड़ गए थे और दूसरा पैर आगके कारण लाल हो गया था। दुबारा चलनेके लिए हुसैनने इनकार कर दिया—इसका कारण उसने बताया कि उसका विश्वास कम हो गया है।

इसके बाद एडकाकने चार कदम रख कर गढ़ेको पार कर दिया—उसको बहुत थोड़ी सी जलनेकी तकलीफ हुई। इसके बाद उसने सूखी रस्सियोंके तले वाले जूते पहिन कर ७ कदम रख कर गढ़ेको पार किया—तले बिलकुल भी नहीं जले थे। इसके बाद दो और व्यक्ति अग्नि पर चले उनको भी चलनेसे थोड़ी सी तकलीफ हुई।

इसके बाद रस्सीके तले वाला जूता पानीमें भिगोया और अग्निके पास लाया गया। कई सेकेंड बीतने पर उसमेंसे भाप निकलनी शुरू हुई—इससे यह सिद्ध हुआ कि चलते समय तुरन्त बनी भापकी कोई सतह स्थित नहीं रहती—(भाप की सतहके कारण गर्मी उस वस्तु तक नहीं पहुँचती है, जब कोई लोहेका बरतन या तवा बहुत गरम होता है तो उस पर पड़ी बूंदे जल्दीसे भाप बन कर नहीं उड़तीं बल्कि पारेकी बूंदोंके समान हिलती रहती हैं बूंदों और गरम सतहके बीचमें भाप की एक तह बन जाती है जो बूंदोंको जल्दी नहीं जलने देती।

इसके अतिरिक्त पैर अग्निमें दो या तीन इंच तक नीचे चला जाता था जिसके कारण केवल तलवेका ही भाग अग्निसे नहीं छूता था बल्कि पैरका ऊपरी भाग भी अग्निसे छूता था।

तीसरे प्रयोगमें ६ इंच गहरा, १२ फुट लम्बा एक गड्ढा तैयार किया गया। तेज चलनेके कारण अग्निकी ऊपरी सतह का तापक्रम ८०० सेंटीग्रेड था। हुसैनने चार कदम रख कर उसे पार कर दिया, उसे बिल्कुल भी तकलीफ नहीं हुई थी। फिर एडकाक १·८ सेकेण्डमें ३ कदम रख कर उस गड्ढेको पार कर गया। उसका पैर बिलकुल भी नहीं जला। उसने कहा कि पहले कई बार आग पर चलनेके कारण मुझे विश्वास हो गया था इसलिए मैंने कदम जमा जमा कर रक्खे थे।

वास्तवमें इन प्रयोगोंकी रिपोर्ट बड़ी दिलचस्प है क्योंकि वह शक्ति जो हुसैन और खुदाबख्सने बड़ी प्रार्थना और संयम नियमसे प्राप्त की थी, वही शक्ति एक तमाशा देखने वाले (एडकाक) ने केवल देख कर प्राप्त करली। उन तीनोंके चलने का ब्योरा इस प्रकार है कि खुदाबख्स, हुसैन तथा एडकाकका क्रमशः वजन ६०, ५३, और ८० सेर था, चलनेकी दूरी ११, १२ और १२ फुट थी; कदम जो चले वे ४, ४ और

३ थे, चलनेका समय ২'২, १'६ और १'८ सेकेण्ड था; कमसे कम समय जितनी देर तक कदम आग पर रहा '५५, '४० और '६० सेकेण्ड था; अग्निकी सतहका तापक्रम क्रमशः ८०६, १४७२ और १४७२ डिग्री फा० था। रिपोर्टसे यह प्रदर्शित होता है कि एडकाक खुदाबख्शसे अधिक सिद्ध हस्त रहा; क्योंकि जिस अग्नि पर एडकाक चला था उसका तापक्रम, खुदाबख्श जिस अग्नि पर चला था, उससे लगभग दूना था। इसके अतिरिक्त कदम रखनेका समयभी एडकाक का इन दोनोंसे अधिक था!

"आग पर चलनेमें कोई खास बात नहीं है। नंगे पैर, बिना कुछ लगाये साधारण रूपमें आगपर चला जा सकता है"

"कुछ लोगोंका ख्याल है कि आगकी सतह तापक्रममें सम नहीं होती है इसलिए चलते समय तलवोंका कभी एक भाग अग्निसे छूता है और कभी दूसरा, इस कारण अग्नि पैर पर असर नहीं करती, यह विचार भ्रम मात्र है। इसके अतिरिक्त संभल कर चलनेसे काम होता है क्योंकि ऐसा करनेसे एक पैर पर मात्रासे अधिक भार नहीं पड़ता, जो आग पर चलते समय याद रखनेकी बात है। 'पैर पर सीलका होना हानिकारक है'

"पैर और अग्निके मध्यमें भापकी कोई तह उत्पन्न नहीं होती।"

"पैरोंका अधिक कठोर होना इसके लिए कोई आवश्यक नहीं है।" "व्रत इत्यादि कोई भी आवश्यक नहीं।"

"इसका कोई भी सबूत नहीं मिल सका कि एक आदमी दूसरेको ऐसा कर सकता है कि उसे अग्नि न जलाए।"

"आग पर चलनेके पश्चात तलवोंका तापक्रम जो कम हो जाता था उसका कारण प्रयोगके स्थान तक घास पर चलना हो सकता है। क्योंकि जहां पर जाकर पैरोंका तापक्रम लिया जाता था वह स्थान गढ़ेसे पर्याप्त दूरी पर होता था।"

"कोयलों पर राख होनेके कारण पैर न जलते हों सो बात नहीं है। खुदाबख्श चलने से पहले कोयलोंकी राख हटवा लेता था इसके अतिरिक्त पैर अग्निमें काफी दूर तक धंस जाते थे जिससे यह स्पष्ट था कि पैर आगसे बिलकुल छू रहे थे।"

"एक नये आदमी (एडकाक) और विशेषज्ञके चलनेमें कोई विशेषता नहीं। फिर दूसरे आदमी को ऐसा कर सकना कि वह आग पर चलनेसे न जले संभव नहीं; इसलिए अग्नि पर चलना विश्वास या मंत्रसे सम्बन्ध नहीं रखता।"

"सूखी रस्सीके तले वाले जूतेका न जलना (क्योंकि सूखे तलेमें विश्वासका कोई स्थान नहीं) यह सिद्ध करता है कि आग पर चलनेका कारण लकड़ीका चालन बल कम होना है (अर्थात् गर्मी लकड़ीमें एक सिरेमेंसे दूसरे सिरे तक धातुके समान नहीं चलती, इसी कारण कढ़ाइयोंके दस्ते प्रायः लकड़ीके होते हैं) इसके अतिरिक्त तांबेका ताप चालन बल लकड़ीसे १००० गुना अधिक है।"

"शरीरके किसी भागके जलनेके लिये इतनी बातें होनी चाहिएं। एक नियत समयमें एक नियत ताप किसी वस्तुसे शरीरमें जाना चाहिए। यदि ताप तो उतना हो जाय और समय अधिक हो तो भी शरीर नहीं जलेगा क्योंकि उस समय में बहुत सा ताप शरीरमें बंट जायगा तथा धीरे २ ताप चालन बल द्वारा शरीरके अन्य भागोंके कम तापसे मिल कर प्रभाव हीन हो जायगा। इसीलिये अग्निका तापक्रम अधिक होते हुए भी जो गर्मी शरीरके भीतर जाती थी वह बहुत कम होती थी। इसके दो कारण हो सकते हैं एक तो अग्निसे शरीरके छूनेका समय बहुत कम होना तथा दूसरा ताप चालन बलका कम होना जिसके कारण कम गर्मी ही नियत समयमें शरीरमें जा सकती थी, कोयलों पर चलनेमें राख और कोयले दोनोंका ताप चालन बल बहुत कम है। इसके अतिरिक्त गर्मी भी कदम रखते समय पैरों पर जमा होती रहती है जिसके कारण ५०० डिग्री तापक्रम वाली आग पर एक पैर दो बारसे अधिक नहीं रखा जा सकता यदि दो बारसे अधिक रखा जाता है तो छाले पड़ जाते हैं।

"इसके अतिरिक्त अन्य छोटी छोटी बातों के विषय में कहते हुए डाक्टर ब्राउन ने कहा, "वे आदमी जो ऊष्ण जल वायु के रहने वाले हैं और अपने देश में गरम जमीन पर नंगे पांव चलते हैं, आग पर सुगमता से चल सकते हैं। इंगलैण्ड या अन्य ठंडे देश के रहने वाले मनुष्यों के लिये आग पर चलना ऊष्ण देश के लोगों से अधिक कठिन होगा। इस कारण भारतवर्ष के लोगों का अग्नि पर आसानी से चल सकना स्वाभाविक ही है। यद्यपि मेसमरेजम के द्वारा जलने की तकलीफ को कम किया जा सकता है किन्तु इससे असली समस्या का ठीक ठीक हल नहीं होता। असली समस्या के लिये तो, पैरका थोड़ी देर तक आग पर रहना, जलने वाली वस्तुका कम ताप चालन बल तथा कम बार कदम रखना ही आवश्यक है"

इस प्रकार अग्नि पर चलना किसी अदृश्य या मानसिक शक्तिसे सबन्ध नहीं रखता यह तो साधारण सी भौतिक बात है।